प्रकाशक
श्रीचन्द्रसेन वर्मा
संजीवन-इन्स्टीट्यूट, दिल्ली

मुद्रक
श्री दुलारेलाल भार्गव
गंगा फाइनआर्ट प्रेस, लखनऊ

Foreword

This Treatise known as "**Arogya Shastra**" written by Acharya Shri Chatursen Shastri who is well known in the literary and medical world is really a work of great public utility and marks an epoch in scientific instruction to the public In plain and understandable language the hidden secrets of medical science have been discovered and ways and means have been laid down for the guidance of those who wish to keep themselves healthy and fit, free from disease and numerous ailments likely to attack the unusing I have no doubt that the author's reputation will be thoroughly maintained by this publication and that the vast masses for which it is written will derive immense advantage from it. I welcome the book and wish that every homestead will keep one copy for daily use.

(Hon'ble Munshi) NARAYAN PRASAD ASTHANA,
(Advocate High Court, Allahabad,
Member Council of State,
Vice Chancellor, Agra University)

प्रस्तावना

श्रीग ास्त्रिवर्यैश्चतुरै निबद्ध' गाम्भीर्यसौशब्द्यगुणैरुपेतम् ।
'आरोग्यशास्त्रं' परमोपयोगि लोकस्यकल्याणकरचभूयात् ॥

आदौस्वास्थ्यस्य विज्ञानं शारीरञ्चतत परम् ।
शरीरयन्त्र विस्तारो गर्भाधानादिक तत ॥

शिशुपालन रीतिश्च स्नानपद्धति वर्णनम् ।
भोजनस्य विधिःकृत्स्न फलाहारोपयोगिता ॥

विषभोजन दोषाश्च रोगकीटाणुवर्णनम् ।
काष्ठौषधि प्रकरण मुष्टियोगस्तत परम ॥

औषधाना विधानच सामान्येनविशेषत ।
धातुभस्म प्रकरण माकस्मिक विधानकम् ॥

रोगिसेवा प्रकारश्च क्षयरोगनिवारणम् ।
महामारीप्रकरण 'प्लेग रोगनिवारणम् ॥

महारोग प्रकरणं स्वाभाविक चिकित्सनम् ।
युवावस्था रक्षणच स्त्रीसर्गात विधानकम् ॥

नारीस्वास्थ्य विधानच सौंदर्यस्य च रक्षणम् ।
दीर्घायुष्ट्व प्रकरणं गृहनिर्माण कौशलम् ॥

हस्तरेखादि विद्यानां विचारस्तदनन्तरम् ।
एवविधै प्रकरणै शोभित परमाद्भुतम् ॥

मनोहराकर सम्याड् नेत्रानन्दकरम्परम् ।
भूयात्सज्जनतोषाय लोकोपकृतयेतथा ॥

इत्याशास्ते

(महामहोपाध्याय, डा०) श्री गगानाथ झा शर्मा
(एम्० ए०, डी० लिट्०, एल-एल० डी०
वाइस-चैंसलर, इलाहाबाद-विश्वविद्यालय)

अध्याय चौथा
गर्भाधान और प्रसव

अध्याय पाँचवाँ
शिशु-पालन

अध्याय छठा

स्नान-पद्धति

अध्याय सातवाँ

भोजन

अध्याय आठवाँ

फलाहार और फलों की रोगनाशक शक्ति

अध्याय नवाँ

विष-भोजन

अध्याय दसवाँ

रोग-कीटाणु और घर के दुश्मन जंतु

अध्याय ग्यारहवाँ

जड़ी-बूटी

अध्याय बारहवाँ

मुष्टि-योग

अध्याय तेरहवाँ

प्रसिद्ध नुसखे

अध्याय चौदहवाँ

खास नुसखे

अध्याय पंद्रहवाँ

धातुओं की भस्म

अध्याय सोलहवाँ

आकस्मिक उपचार

अध्याय सत्रहवाँ

रोगी की सेवा

अध्याय अठारहवाँ

तपेदिक

अध्याय उन्नीसवाँ

हैज़ा

अध्याय बीसवाँ

प्लेग

अध्याय इक्कीसवाँ

कुछ महत्त्व-पूर्ण रोग

अध्याय बाईसवाँ

स्वाभाविक चिकित्साएँ

अध्याय तेईसवाँ

यौवन-रक्षा

अध्याय चौबीसवाँ

व्यभिचार

अध्याय पच्चीसवाँ

स्त्रियों का स्वास्थ्य और व्यायाम

अध्याय छब्बीसवाँ

सौंदर्य-विज्ञान

अध्याय सत्ताईसवाँ

दीर्घजीवन

अध्याय अट्ठाईसवाँ

गृह-निर्माण-कला

अध्याय उनतीसवाँ

उपयोगी विद्याएँ

अध्याय तीसवाँ

अध्यात्म-तत्त्व

सादे चित्रों की सूची

रंगीन चित्रों की सूची

आरोग्य-शास्त्र

अध्याय पहला

स्वास्थ्य-विज्ञान

प्रकरण १

स्वास्थ्य-रक्षा का महत्त्व

संसार मे बहुत-से बहुमूल्य पदार्थ है। परतु इनमे जीवन सबसे बढ़कर है। जीवन के सम्मुख पृथ्वी-भर की संपदाएँ तुच्छ है। यदि कोई आपसे कहे कि आप जीवन चाहते हैं या समस्त पृथ्वी की सपदा, तो निश्चय ही आप जीवन चाहेंगे।

इस जीवन की सार्थकता स्वास्थ्य से है। स्वास्थ्य ठीक होने पर ही जीवन स्वर्ग की विभूति बन जाता है, और स्वास्थ्य ठीक न रहने पर जीवन नरक के समान दु:खदायी और भार-रूप हो जाता है।

रोगी मनुष्य केवल कष्ट और पीडा ही नही भोगता—वह संसार के सब कार्यों में विवश और अशक्त भी हो जाता है। वह स्वय दु ख पाता है, और घर के सब लोगो को दु ख और दुश्चिता मे डालता है। इसके सिवा प्रतिक्षण उसके जीवन-नाश की आशंका बनी ही रहती है, और अंत मे उसका जीवन नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार सारे ससार मे प्रतिवर्ष लगभग १॥ अरब मनुष्य स्वास्थ्य-रक्षा न कर सकने के कारण असमय ही मे अपने पुत्र, पति-पत्नी और परिवार को दु ख-सागर मे रोता छोडकर मर जाते हैं। मनुष्य-जाति के लिये, जो ससार की सर्वश्रेष्ठ जाति है, यह महा दुर्भाग्य का विषय है।

रोगी मनुष्य परिजन और पडोसियो को कष्ट और दुश्चिताओ के सिवा ख़तरो मे भी डालता है, क्योकि बहुत-से रोग उडकर औरो को लग जाते हैं, और अनेक जानें व्यर्थ जाती हैं।

स्वास्थ्य का अमूल्य रत्न एक बार खोकर फिर पाना कठिन है। एक बार रोगी होने पर फिर पहले-जैसा ही स्वस्थ और सबल बनने मे बहुत समय और ख़र्च लगता है, और इससे मनुष्य बरबाद हो जाता है।

इसलिये प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपनी स्वास्थ्य-रक्षा का भरपूर ध्यान रक्खे, और कभी इस विषय में लापरवा न रहे।

प्रकरण २

स्वास्थ्य और सौंदर्य

आरोग्य ही सच्चा सौंदर्य है। वास्तव में आरोग्य और सौंदर्य में अविच्छिन्न संबंध है। इनमें जहाँ भेद किया कि दोनों ही हाथ से गए। बहुत-से लोगों की धारणा है कि आरोग्य का अर्थ है 'रोग का अभाव'। परंतु रोग क्या है, यह बात भी बहुत कम विद्वान् जानते हैं, सर्वसाधारण की तो बात ही क्या।

एक विद्वान् डॉक्टर का कथन है—"To define health is not less difficult than to define disease" अर्थात् "स्वास्थ्य की व्याख्या करना रोग की व्याख्या करने से कुछ सरल नहीं है।"
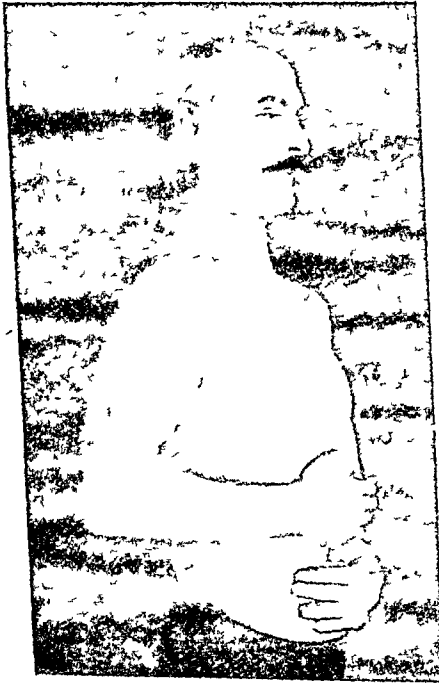
स्वस्थ पुरुष

एक विद्वान् स्वास्थ्य का अर्थ करते हैं 'शरीर के प्रत्येक अंग की स्वाभाविक क्रिया'। परंतु अंग की स्वाभाविक क्रिया क्या और अस्वाभाविक क्रिया क्या, यह जानना भी असाधारण बात है।

आरोग्य ही की तरह सौंदर्य के विषय में भी मनुष्यों का बहुत बड़ा अज्ञान है।

'सौंदर्य की प्रतिमा', ये शब्द कान में पड़ते ही मन में एकदम स्त्री-जाति का चित्र खड़ा हो जाता है। पर क्या यह बात सत्य है कि स्त्री-जाति ने ही सौंदर्य का ठेका ले रक्खा है? आप संसार के समस्त प्राणियों को ध्यान से देखिए, तो आपको एक विचित्र भेद मालूम होगा कि प्रत्येक प्राणी में स्त्री की अपेक्षा पुरुष-वर्ग ही अत्यंत सौंदर्य-युक्त है—चिड़ियों की अपेक्षा चिड़ा, गाय की अपेक्षा साँड, बिल्ली और कुतिया की अपेक्षा बिलाव और कुत्ता।

स्वस्थ पुरुष के शरीर की गठन

इस प्रकार जगत् के तमाम जीवों को देखिए, तब क्या मनुष्यों के लिये ही यह नियम उलटा बनाया गया है? यह एक साधारण बात है कि जिस व्यक्ति में जिस वस्तु की कमी होती है, वह उसकी पूर्ति सदा किया करता है। हम देखते हैं कि स्त्रियाँ सदा शृंगार करती रहकर अपने सौंदर्य की मरम्मत करती रहती हैं।

इसके सिवा पुरुष पर स्त्री-जाति इस कदर मोहित है कि जिसके प्रमाण ढूंढने की आवश्यकता नहीं। पुरुषों पर स्त्रियाँ पतंग की तरह मरती और उनको आकर्षित करने में अंत तक प्रयत्नशीला रहती है। इन कारणों से प्रमाणित होता है कि स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष ही अधिक सुंदर हैं। परन्तु अपने रूप पर मोहित होना प्राणी का स्वभाव नहीं। जैसे सुंदरी स्त्री पर कोई स्त्री मोहित नहीं होती, उसी प्रकार सुंदर-पुरुष पर पुरुष मोहित नहीं होते। इसके सिवा ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती है, स्त्री का सौंदर्य बरसाती धूप की तरह कुम्हलाता जाता है, परंतु पुरुष वृद्धावस्था तक कसे हुए और सुंदर रहते हैं। वास्तविक बात ऐसी है कि मनुष्य के शरीर में कुछ अंग-प्रत्यंग ऐसे हैं, जिन्हें देखते ही स्त्री को पुरुष के प्रति और पुरुष को स्त्री के प्रति वासना-जन्य आकर्षण होता ही है, और यह आकर्षण जो स्त्री या
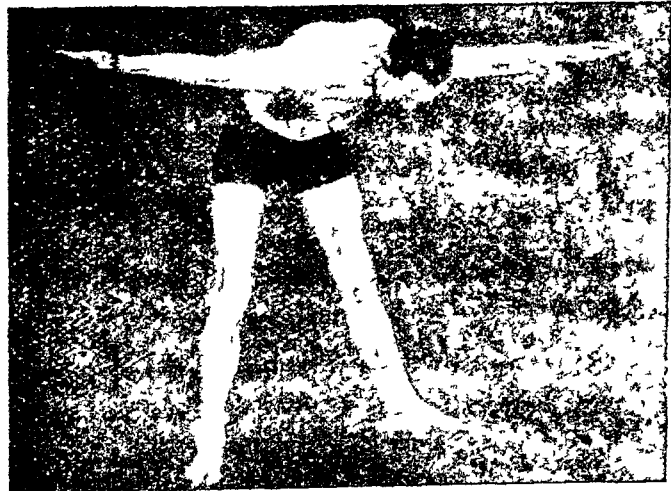
स्वस्थ पुरुष की मांस-पेशियाँ

पुरुष अधिक-से-अधिक कर सकता है, आम तौर पर उसको सुंदर कहकर पुकारा जाता है।

सौंदर्य की इस झूठी परख से स्त्रीत्व के लाक्षणिक तत्त्वों में अस्वाभाविक रीति से वृद्धि करने का हानिकर प्रयत्न अनेक जातियों में शताब्दियों से चला आता है। स्वाभाविक रीति से एक तदुरुस्त व्यक्ति के पेट का घेरा छाती के घेरे की अपेक्षा कम होना चाहिए, इसी धारणा पर कृत्रिम रीति से कमर पतली करने के अनेक प्रकार के कमरबंद, कार्सेट आदि का उपयोग योरप में पीढ़ियों से जारी रहा है। इसके फल-स्वरूप ऐसी चेष्टा करनेवाली स्त्रियों की संतान अत्यंत अस्वस्थ हुई है। बड़े पैरों की अपेक्षा छोटे पैर सुंदर होते हैं, इस विश्वास पर चीनियों ने स्त्रियों को जन्मते ही लोहे का जूता पहनाकर लूला बना दिया। वहाँ बड़े घर की स्त्रियाँ पग-सौंदर्य की बदौलत बिना सहारे टट्टी-पेशाब को भी नहीं जा सकती। इसी प्रकार उभरी हुई छाती अच्छी मालूम होती है, इस विश्वास पर योरप की स्त्रियाँ तो लकड़ी की छातियाँ पहनने लगी थीं, और आस्ट्रेलिया और आफ्रिका में तो यह विश्वास फैल गया कि जो स्त्री अपने स्तनों को कृत्रिम रीति से इतना लंबा बनावे कि बालक को पीठ पर बाँधकर और कंधे पर बैठाकर दूध पिला सके, वही सर्वाधिक रूपवती है। भारतवर्ष में भी कठोर और उभरे हुए स्तन दिखाने के लिये कसकर बाँधी हुई बारीक मलमल की चोली और कमर पतली दिखाने को खूब कसी हुई घाँघरी तथा मुख का सौंदर्य बढ़ाने के लिये गोदना गुदवाने का रिवाज है। गुजरात में दाँतों को लाल रँगना सौंदर्य का चिह्न माना जाता है। वहाँ स्त्रियाँ दाँतों को रँगने के लिये गढ़े मजीठ आदि को बाँधकर मोती के समान दाँतों को लाल कर लेती हैं। ये सब प्रक्रियाएँ स्वास्थ्य-नाशक हैं, स्वास्थ्य-वर्धक नहीं।
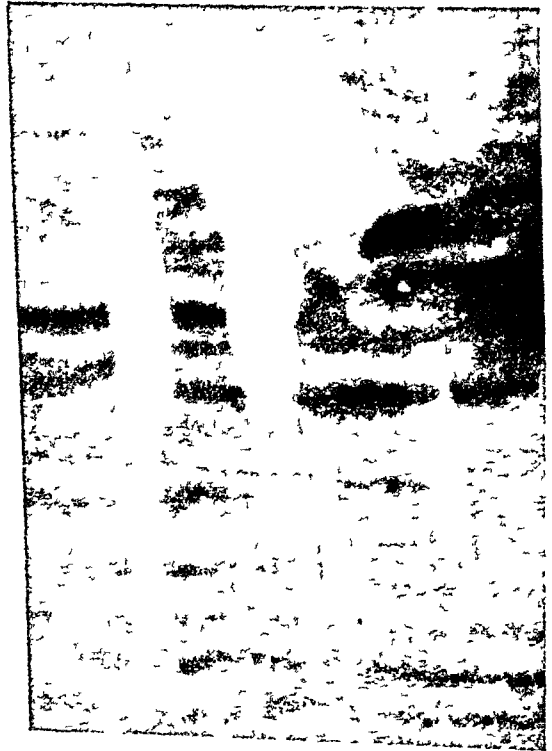
स्वस्थ शरीर की बाहरी गठन

वास्तविक बात तो यह है कि ठीक-ठीक तदुरुस्त मनुष्य १ करोड़ में एक भी मिलना

कठिन है। ये असंख्य डॉक्टर, ऊँट वैद्य, हकीम, अत्तार और अगणित रोगी इसका प्रमाण हैं। इस दशा मे अगोपाग के स्वाभाविक आरोग्य-दर्शक परिमाण और शरीरातर्गत अनेक अंगों की क्रियाओ के स्वाभाविक रूप, खान, पान, शयन और व्यायाम आदि की ठीक-ठीक मात्रा, अकृत्रिम, सरल और निष्पाप जीवन, इन सब बातो की समस्या बडी दुरूह है।

ग्रीक के प्राचीन इतिहास से पता लगता है कि यह सुदर जाति किस तरह ऐश-आराम और व्यसनो मे फँसकर अपने आरोग्य और सौंदर्य को खो बैठी। वह प्राचीन आर्य-संस्कृति, जिसका सौंदर्य अपूर्व था, आज घृणित, काले जंतुओं की अधमरी जाति बन गई है।

शरीर एक बहती हुई नदी के समान है, जिसमे एक तरफ से तो सूक्ष्म और स्थूल पदार्थ प्रवेश करते और दूसरी तरफ से निकलते हैं। इस प्रवाह का समतोलपना जहाँ नहीं रहता, वहाँ मुर्दार परमाणु शरीर में इकट्ठे होने लगते और शरीर के आरोग्य में विघ्न करते है। ये मलिन परमाणु ज्यो-ज्यो शरीर में जमा होते रहते है, त्यो-त्यो शरीर की विविध सौंदर्य-दर्शक रेखाएँ चर्बी के समान पदार्थ से भरती जाती हैं, और शरीर मोटा और बेडौल होता जाता है। इस प्रकार सौंदर्य घटने के साथ ही आरोग्य भी घटता जाता है। फिर साधारण कारण होते ही रोग का आक्रमण हो जाता है।

यहाँ हम एक सारिणी देते है, जिसमे एक पूर्ण स्वस्थ शरीर के अग-प्रत्यगो की माप है—

नैरोग्य शरीर की स्वाभाविक माप

शरीर का भाग	सीधे तनकर खडे हो जाने पर पूरी ऊँचाई की अपेक्षा	
	स्त्री	पुरुष
विना बाल का माथे का गोल घिराव	३३२	३६२
एक कान के छेद से माथे के ऊपर होकर कान के दूसरे छेद तक .	२०६	२१८
गर्दन	११७	२२०
बग़ल से कुछ ऊँचा छाती का घेरा .	४६६	—
स्तन की घुडी के आगे छाती का घेरा	५०६	५४५
स्तन की घुंडी के नीचे का घेरा	४४२	५१२
नाभि से दो इंच ऊपर पेट का घेरा	४२६	—
नाभि से आगे	२०६	४८१
नाभि के नीचे पेट का घेरा ..	५६८	५१७

नितंब के आगे का घेरा	५६१	
दाहनी जॉघ के बीच का घेरा	२१७	२१०
दाहने पैर की पिडली का घेरा	२२०	२१०
दाहने कंधे और कुहनी के बीच का घेरा	१५८	१५३
बाईं कुहनी के नीचे के हाथ का ज्यादा से-ज्यादा घेरा	१४१	१५६
बाएँ पैर की पिडली का घेरा	२२३	२०८
बाईं जॉघ के बीच का घेरा	३११	२८५
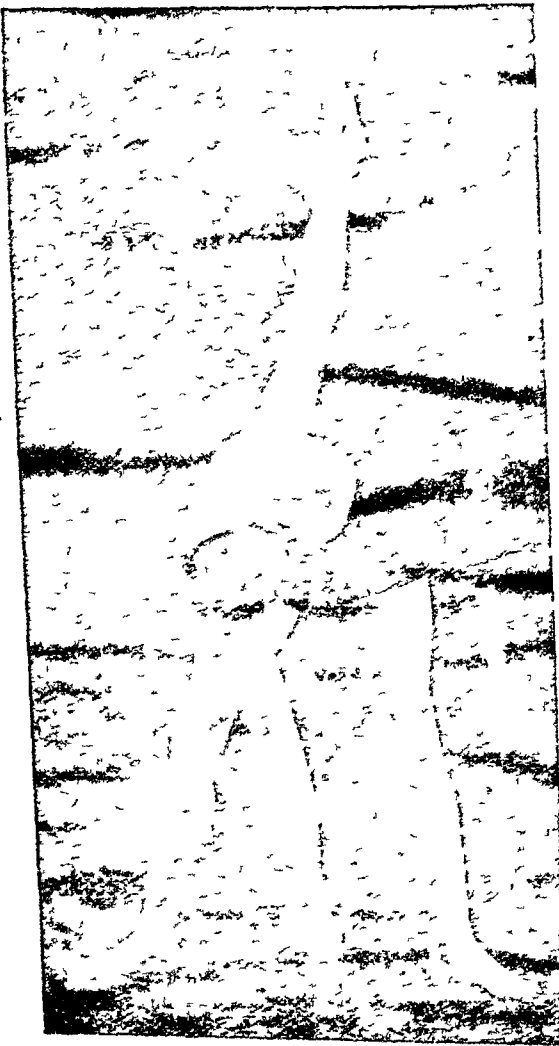
स्वस्थ शरीर की दृढ़ता

ऊपर बताए हुए परिमाण के शरीर में शरीर-क्रियाएँ किस तरह होती हैं, यह आगे बतलाते हैं—

क्षुधा—भोजन के प्राकृतिक रूप से यथासंभव कम विकृति करके भोजन करने की रुचि हो। स्वाद-पूर्वक खा सके। खबर भी न पड़े, इस तरह पच जाय। शरीर को योग्य परिमाण में पुष्टि प्राप्त हो, उतना ही आहार लेने की नियमित इच्छा उत्पन्न हो। मिर्च-मसाले से रहित सादा फल-मूल ही खाने की विशेष इच्छा हो।

प्यास—जो सिर्फ निर्मल जल या फलों के रस से ही तृप्त हो जाय। चा, काफी, शराब आदि उत्तेजक पेयों की रुचि ही न हो।

दॉत—स्वच्छ, निर्मल हो और जीवन-पर्यंत गिरें नहीं।

मूत्र—स्वच्छ, दुर्गंध-रहित, रख देने पर भी उसमें गाद नहीं जमे, उज्ज्वल सुनहरी रंग-युक्त।

दस्त—पीला, बादामी रंग का, बँधा हुआ। उसका कोई भाग गुदा

में चिपटा न रहे। दिन में जितनी बार भर-पेट भोजन किया जाय, उतनी ही बार दस्त होना चाहिए।

पसीना—गंध-रहित।

चमडी—चिकनी और नर्म, स्थितिस्थापक, कुछ गीली, कपाल और आँख के नीचे से आसानी से चुटकी से पकडी जा सकने योग्य हो, क्योंकि इन स्थानो पर चमडी और हाड के बीच में चर्बी की तह नहीं होती। शरीर के किसी भी भाग पर उँगली का पोरुआ दबाकर उठाते ही तत्काल गड्ढा भर जाय।

नाखून—किसी प्रकार की लकीरें या दाग न हो। उज्ज्वल गुलाबी रंग हो।

चेहरा—न फीका, न बहुत लाल, उस पर दाग़, झाईं, मुँहासे या मस्से न होने चाहिए। चमडी मे चमक हो, पर तैल में डूबी हुई-सी न हो, न अस्वाभाविक रग की हो।

बाल—पूरे भरावदार, स्वाभाविक रंगवाले हों, गंज न हो।

आँख—पानीदार और निर्मल।

ज्ञानेंद्रिय—अति तीव्र या मंद न हो, किंतु स्वाभाविक और सतेज हो।

श्वास-प्रश्वास—बिना आवाज़ और बिना कष्ट के आवे, सदा नाक के मार्ग से चले, और उसमे किसी तरह की गंध न हो।

नींद—स्वस्थ, थकान दूर करनेवाली और बीच मे न टूटनेवाली हो।

गर्दन—गठी हुई और बिना चर्बी की, चचल स्नायुवाली तथा दिखाव मे कुछ लबी हो।

पेट—पिचका हुआ और छाती की अपेक्षा कम घिराववाला हो।

माथा—शरीर की मध्य रेखा से छूता हुआ और चमकदार हो।

शरीर के दोनो बाज़ू—समान क़द और आकार के हो।

दोनो खवे—गर्दन से समान आकृति में, और क्षितिज रेखा से समानातर हो।

शरीर के तमाम अवयव—समान, प्रमाण-युक्त, जीवन और बलप्रद हो।

चलने का ढंग—बिना परिश्रम, सरल।

वातावरण का परिवर्तन—सरदी, गर्मी अथवा बरसात के उलट-फेर से किसी प्रकार की हानि शरीर में न हो।

विषय-भोग की इच्छा—केवल संतानोत्पत्ति ही के लिये ऋतुकाल में हो।

मन—स्थितप्रज्ञ के समान। सदा स्वाभाविक आनद में मग्न रहे।

चिता—अस्वाभाविक तीव्रता या जडता-रहित हो।

चमडी, मुख, गला, नाक, आँख, कान और जननेंद्रिय मे से किसी प्रकार की कोई रसी या श्लेष्म न निकलता हो।

स्वस्थ लडके-लडकियों का कद और वज़न अनुमान से

लडके			लडकी		
आयु	उँचाई	वज़न	आयु	उँचाई	वज़न
५ वर्ष	४१। इंच	२० सेर ४ छ०	५ वर्ष	४१ इंच	१६ सेर १२ छ०
६ ,,	४४ ,,	२२ ,, ७ ,,	६ ,,	४३। ,,	२१ ,, २ ,,
७ ,,	४५॥ ,,	२५ ,,	७ ,,	४५ ,,	२४ ,,
८ ,,	४७॥ ,,	२७ ,, ६ ,,	८ ,,	४७ ,,	२६ ,, १ ,,
९ ,,	४९॥ ,,	३० ,,	९ ,,		२८ ,, ६ ,,
१० ,,	५१॥। ,,	३३ ,, ४ ,,	१० ,,	५१ ,,	३१ ,, ४ ,,
११ ,,	५३॥ ,,	३५ ,, ९ ,,	११ ,,	५३। ,,	३४ ,, ८ ,,
१२ ,,	५५ ,,	३६ ,, ४ ,	१२ ,,	५५॥। ,,	४० ,, ,, ,,
१३ ,,	५७ ,,	४२ ,, १ ,,	१३ ,,	५८ ,,	४४ ,, ,, ,,
१४ ,,	५९॥ ,,	४८ ,,	१४ ,,	६० ,,	५० ,, ,, ,,
१५ ,,	६२। ,,	५३ ,,	१५ ,,	६१ ,,	५४ ,, ,, ,,

पाठक इस सारिणी को यदि गौर से देखेंगे, तो मालूम होगा कि लडकियों का कद और वज़न भी ११ वर्ष की आयु तक लडको से कम रहता है, पर १२वाँ वर्ष लगते ही उनका कद और वजन लडको से बढ़ जाता है।

स्वस्थ पुरुषों का वजन और कद

आयु	फु० इं० ५—०	फु० इं० ५—२	फु० इं० ५—४	फु० इं० ५—६	फु० इं० ५—९	फु० इं० ५—१०	फु० इं० ६—०
	म० से०	म० से०	म० से०	म० से०	म० से०	म० से०	म० से०
१६	१ ९	१ ११॥	१ १५	१ १९	१ २३	१ २७	१ ३२
२०	१ १३।	१ १६	१ १९	१ २३	१ २७	१ ३१	१ ३५
२५	१ १७	१ १९	१ २३	१ २७	१ ३०	१ ३४	१ ३८
३०	१ १९	१ २०	१ २४	१ २८	१ ३२	१ ३५	२ १
३५	१ २०	१ २२	१ २६	१ ३०	१ ३२	२ ०	२ ८
४०	१ २१	१ २३	१ २७	१ ३१	१ ३३	२ २	४ ४
४५	१ २१	१ २३	१ २७	१ ३१	१ ३३	२ २	२ ५
५०	१ २१	१ २३	१ २७	१ ३१	१ ३३	२ ०	२ ५

४० वर्ष की आयु के पीछे पुरुषो का वज़न कदाचित् ही बढ़ता है।

स्वस्थ स्त्रियों का वजन और कद

आयु	फु०	इं०	फु०	इं०	फु०	इं०	फु०	इं०	फु०	इं०	फु०	इं०
	४	८	५	०	५	४	५	६	५	८	५	१०
वर्ष	म०	से०	म०	से०	म०	से०	म०	से०	म०	से०	म०	से०
१६	१	८	१	१०	१	१०॥	१	१३।	१	१७॥	१	२०
२०	१	१०	१	१४	१	१६॥	१	२०	१	२७	१	३१
२५	१	१२	१	१६	१	२१	१	२४	१	२९	१	३२
३०	१	१३	१	१७	१	२२	१	२५	१	३०	१	३४
३५	१	१५	१	१९	१	२४	१	२६	१	३२	१	३६
४०	१	१६	१	२०	१	२५	१	२७	१	३३	१	३७
४५	१	१७	१	२१	१	२६	१	२८	-१	३३	१	३८
५०	१	१८	१	२२	१	२७	१	२८	१	३४	१	३९

पाठक नोट करें कि स्त्रियों का वज़न ५० वर्ष की आयु तक निरतर कुछ-न-कुछ बढ़ता रहा है।

प्रकरण ३

स्वास्थ्य-रक्षा के नियम

वाग्भट का कथन

नित्य हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्त ,
दाता समः सत्यपरः क्षमावान्, आप्तोपसेवी च भवत्यरोग ।

(१) नित्य हितकारी आहार और विहार करनेवाला ।
(२) देख-भाल और सोच-समझकर काम करनेवाला ।
(३) विषयों में असक्त पुरुष ।
(४) दाता ।
(५) समदर्शी ।
(६) सत्यवक्ता ।
(७) क्षमा करनेवाला ।
(८) बुद्धिमानों की सगति करनेवाला ।

इन आठ गुणों को नित्य धारण करनेवाला पुरुष पूर्ण आरोग्य रहता है । इन आठो गुणो की नीचे हम सक्षेप से व्याख्या करते है—

१—अपने शरीर, प्रकृति, आयु, ऋतु, काल, देश, इन सब बातो पर विचार करके अनुकूल और लाभदायक खाने-पीने की वस्तुओं का सेवन करे । तथा इसी प्रकार स्नान, व्यायाम, चलना-फिरना, जागरण, शयन, परिश्रम आदि विहार करे । वह मनुष्य स्वस्थ रहेगा ।

२—जो मनुष्य प्रत्येक कार्य सोच-विचारकर करेगा, जोश और झोक मे न पडेगा, वह बहुत-से शारीरिक और मानसिक कष्टो से बच सकेगा, जिसका स्वास्थ्य पर बडा भारी प्रभाव पडता है । जो लोग सोच-विचारकर काम नही करते, वे सदा चिताओं और दु ख मे डूबे रहते है, और इस तरह स्वास्थ्य नष्ट कर बैठते है ।

३—दान देनेवाला मनुष्य दाता कहाता है । जो दाता है, उसका हृदय आनद और उदारता से परिपूर्ण रहेगा । उसके सब परिजन, नौकर-चाकर, प्रसन्न रहेंगे और ठीक कार्य करेंगे । यश मिलेगा । कटक और कजूस की स्त्री भी निंदा करती है ।

४—समदर्शी वह पुरुष है, जो हर्ष मे आपे से बाहर न हो जाय और शोक मे पागल न हो जाय । जो शत्रु-मित्र सबको बराबर समझे । ऐसा पुरुष बहुत शात और सबका प्रिय रहेगा ।

५—सत्यवक्ता आदमी सदा निष्पाप और निर्भय रहता है। वह निश्चिंत सोता है, और निर्भय विचरण करता है।

६—क्षमावान् को कभी क्रोध नहीं आता। और क्रोध के बराबर मनुष्य का घातक दूसरा शत्रु नहीं है।

७—बुद्धिमानों और सज्जनों की संगति से अच्छे कर्म सीखे जाते हैं, इससे मन में गंभीरता, स्थैर्य और विवेक बढ़ता है।

महर्षि वाग्भट का उपर्युक्त श्लोक प्रत्येक पुरुष को अपने कमरे में लगाना और उसका मनन करना चाहिए।

स्वास्थ्य-रक्षा के ६ वैज्ञानिक नियम

शरीर की रक्षा के लिये नीचे लिखी ६ बातों पर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए—

(१) शरीर के पोषण के लिये उचित अन्न-जल।

(२) प्रकाश और शुद्ध वायु।

(३) मल, मूत्र, पसीना आदि का यथानियम निकलना।

(४) सर्दी और गर्मी से शरीर की रक्षा।

(५) उचित व्यायाम, परिश्रम और विश्राम।

(६) विषाक्त द्रव्यों और कीटाणुओं से बचना।

इन नियमों का यदि पालन किया जायगा, तो दीर्घायु की प्राप्ति होगी। इनका विस्तार इस पुस्तक में आगे किया जायगा।

अन्न

शास्त्र में लिखा है "अन्नो वै प्राण" अर्थात् अन्न ही प्राण हैं। वास्तव में देखा जाय, तो यह सत्य है। अन्न से ही शरीर और मन की पुष्टि होती है। मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव उत्तम अन्न खाय, जिससे उसका जीवन और स्वास्थ्य ठीक बना रहे। अन्न सड़ा गला न हो, सतोगुणी हो अधिक विकृत करके न पकाया गया हो। हलका और पुष्टिकारी हो। तथा ताजा हो। गंदा, जूठा, बासी और संदिग्ध अन्न जीवन और स्वास्थ्य दोनों को नष्ट करता है। गीता में कहा है—

"सात्विक आहार आयु, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाला, रसीला, चिकना, पुष्ट और हृदय को आनंद देनेवाला होता है।"

"कड़ुआ, खट्टा, नमकीन, बहुत गर्म, तीक्ष्ण, रूक्ष और दाह करनेवाला आहार रजोगुणी है, वह दुःख शोक और रोग को उत्पन्न करता है।"

"एक पहर का रक्खा हुआ, नीरस, सड़ा हुआ, बासी, जूठा और अपवित्र अन्न तमोगुणी है, वह मृत्यु को देता है। हम इस संबंध में भोजन के अध्याय में विस्तार से लिखेंगे।"

जल

जल को शास्त्रकार अमृत कहते हैं। यह जल प्राणी के लिये परमेश्वर की अद्भुत देन है। संसार में $\frac{3}{4}$ भाग जल और $\frac{1}{4}$ भाग पृथ्वी है। मानव-शरीर में $\frac{7}{10}$ भाग जल है। यदि शरीर का वजन १०० सेर है, तो उसमें ७० सेर जल और शेष ३० सेर अन्य वस्तु, हड्डी, मांस आदि है। ऐसी दशा में आप सहज में ही समझ सकते हैं कि जल शरीर के लिये वास्तव में कितना आवश्यक है। यह तो सभी जानते हैं कि विना जल के प्राणी जीवित नहीं रह सकते। परंतु जल पीने में कितनी सावधानी की आवश्यकता है, और जल के साथ कितने भयानक रोग जंतु शरीर में पहुँच जाते हैं, यह बात सब लोग नहीं जानते।

भोजन जल ही के सहारे घुलकर शरीर का पोषण करता है।

नदियों का जल, जो निरंतर बहता रहता है, शुद्ध और पीने के योग्य होता है परंतु नगरों की गंदी नालियाँ इन नदियों में डाल दी जाती हैं और लोग मुर्दे डालने एवं और रीति से भी नदियों को गंदा करते हैं। इस कारण कभी-कभी नदियों का जल दूषित हो जाता है, इन सब बातों के लिये प्रतिबंध नियत करने की आवश्यकता है। कुओं का जल प्रायः सर्वत्र ही पिया जाता है। पर गहरे कुएँ का जल अधिक उत्तम होता है किन्तु यदि आस-पास भी जमीन अच्छी हो, तो उथले कुएँ का पानी भी उत्तम होता है। यदि कुओं के पास तालाब-चहबच्चे या दलदल हो, तो उनका असर कुएँ पर पहुँचकर उसके जल को ख़राब कर देता है। बहुधा कुओं पर इस बात का प्रबंध नहीं होता कि गंदा पानी उनमें न जाय। नहाने, तथा वस्त्र और बर्तन धोने का गंदा पानी कुएँ में जाता रहता है, इससे उसके जल में काले मुँहवाले बाल कीड़े हो जाते हैं। बहुत लोग मिट्टी से माँजकर मिट्टी-सहित बर्तन कुओं में डाल देते हैं। बहुत लोग रोटी, पूरी, चावल आदि कुओं में डाल देते हैं। इन सबसे उनका पानी ख़राब हो जाता है। वृक्षों के पत्तों के गिरकर सड़ने से भी कुओं का पानी ख़राब हो जाता है। इसलिये कुओं के ऊपर वृक्ष का होना अच्छा नहीं है। यदि हो, तो उस पर छतरी लगवा रखनी चाहिए। उनकी जगत भी ऊँची होनी चाहिए, जिससे बाहर का गंदा पानी उनके भीतर न जाने पावे। हर हालत में कुएँ के पानी की उतनी ही सफ़ाई रखनी चाहिए, जितनी कि पीने के पानी के घड़े की रक्खी जाती है। कुआँ बनाने की सरल और उत्तम रीति यह है कि कुएँ का गोला बहुत उम्दा पक्की ईंटों का बनवाया जाय और गोले और मिट्टी के बीच दो फुट कंकरीट कुटवा दी जाय। इससे जल बहुत शुद्ध मिलता है।

आजकल बड़े बड़े शहरों में प्रायः नल के द्वारा पानी पहुँचाया जाता है। यह जल बहुधा नदियों से लिया जाता है। नदी का पानी एंजिन द्वारा खींचकर बड़े-बड़े पक्के चहबच्चों में भर लिया जाता है। जिनमें रेत आदि जल शुद्ध करने की वस्तु भरी रहती है। वहाँ से वह भाप उठाकर शुद्ध करके तब नलों द्वारा पीने के लिये पहुँचाया जाता है। ये नल लोहे के होते हैं, और उन पर जस्त की कलई की हुई होती है। पुराने होने पर यह कलई गल

कुएँ का गोला
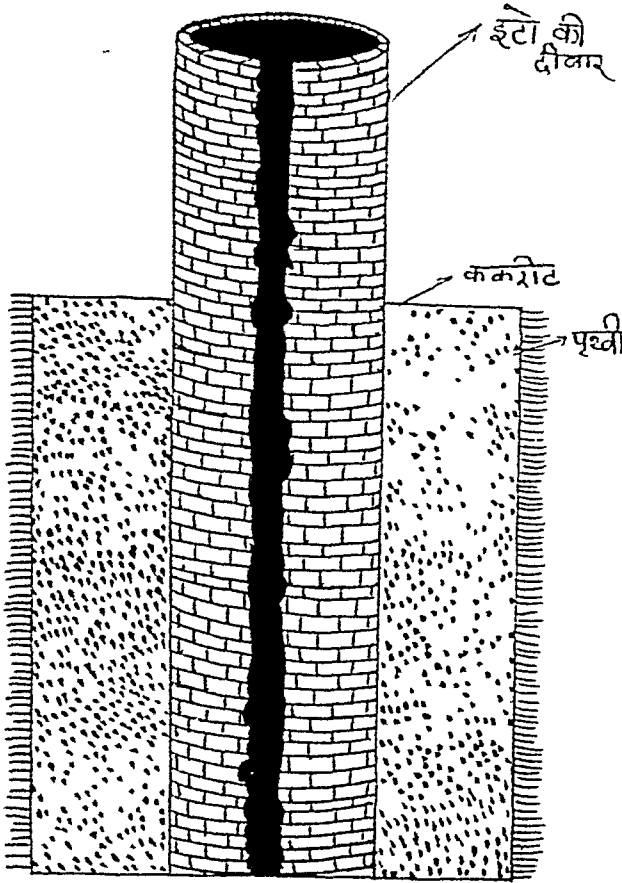
जाती है। और लोहा निकल आता है। वह लोहा पानी में घुलने लगता है, तो वह स्वास्थ्य के लिये हानिकर होता है। हाल में ही कई नगरों में जाँच में देखा गया, तो मालूम हुआ कि नल पुराने हो जाने से उनमें टाइफाइड के रोग-जंतुओं का प्रभाव हो गया है और नगर में यह रोग स्थायी रीति से जड पकड गया है।

अशुद्ध जल को घरेलू रीति से शुद्ध करने की साधारण रीति यह है कि एक तिपाई पर ऊपर-नीचे चार घडे रखकर पहले में कोयला, दूसरे में कंकड, तीसरे में रेत और चौथे में शुद्ध जल भरकर रख दे। नीचे एक ख़ाली घडा रख दिया जाय। उपर्युक्त तीनो घडो की पेंदी में छेद रक्खे जायँ, जिससे चू-चूकर पानी नीचे के पात्र में संगृहीत होता रहे। यह जल पीने के लिये शुद्ध और ठडा रहता है।

एक बार उबालकर भी पानी ठीक-ठीक शुद्ध हो जाता है।

यदि कुएँ के पानी में लाल जंतु हो गए हो या वह जल गंदा प्रतीत हो, तो Permanganate of Potash-नामक दवा, जिससे पानी लाल हो जाता है, कुएँ में डाल देनी चाहिए। एक कुएँ के लिये १० तोले दवा काफी है। इसे डालकर दो दिन उसका पानी न निकालो। इसके बाद उसका जल साफ हो जायगा।

बिना फुका चूना भी यदि १० सेर कुएँ में डाल दिया जाय, तो पानी शुद्ध हो जाता है।

घर में जल संग्रह कर रखने के लिये ताँबे के पात्र या मिट्टी के घड़े सर्वोत्तम है। पर घडे कम-से-कम प्रतिमास बदलते रहने चाहिए। और प्रतिदिन उन्हें अच्छी तरह धोते रहना चाहिए। उचित तो यह है कि प्रति सप्ताह घडा बदल दिया जाय। मिट्टी के घडे में जो खुर-खुरापन है वह जल की अशुद्धि को चूस लेता है, उसकी यह शक्ति पुराने होने पर जाती

रहती है। धातु के बर्तनों को भली भांति मांज-धोकर तब जल भरना चाहिए।

सुराही जो छोटा मुँह होने के कारण भीतर से धोई नहीं जा सकती, प्रति सप्ताह अवश्य बदल देनी चाहिए।

जल को घरेलू रीति से शुद्ध करने की रीति
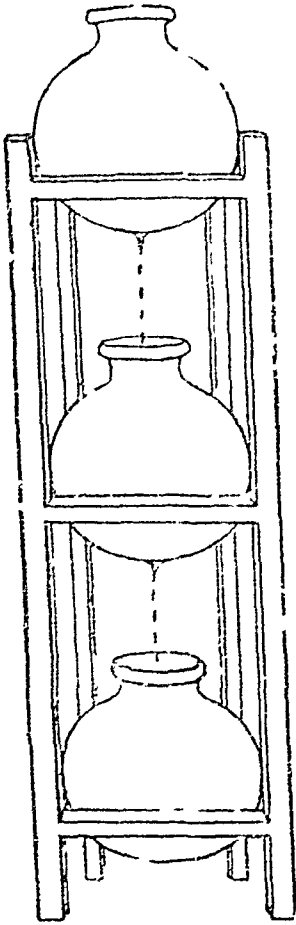
वायु और प्रकाश

यह सम्भव है कि प्राणी अन्न और जल के बिना कुछ दिन जीवित रह सके। परन्तु वह बिना वायु के तो क्षण-भर भी जीवित नहीं रह सकता। अन्न और जल दिन-भर में ४-७ बार लेना पड़ता होगा, पर वायु तो प्रति मिनट १५-२० बार श्वास द्वारा लेना पड़ता है। इसलिये वायु की हमें अत्यंत आवश्यकता है।

वायु बहुत बड़ी संख्या में सदा हमारे चारों तरफ रहती है। इस वायु में और भी बहुत-सी वस्तु मिली रहती है। १०० भाग वायु में ७६ ०२ भाग नत्रजन, २० ९४ ओषजन और ०४ कर्बनद्विओषित होती है। इनके सिवा भाप, धूल और कुछ सूक्ष्म कीटाणु भी होते हैं।

नत्रजन सबसे अधिक होती है। प्रत्यक्ष में मानव-शरीर के लिये इसकी कुछ भी आवश्यकता नहीं, परन्तु इसके द्वारा ओषजन जैसी तीक्ष्ण हवा हलकी हो जाती है।

ओषजन के बिना कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता। शरीर की गर्मी इसी के जलती, और इसी से भोजन पचता है। वायु किस भांति फेफड़ों में श्वास-नाली के द्वारा पहुँचकर शरीर के रक्त को शुद्ध करती है, यह हम आगे शरीर-यन्त्र के अध्याय में खुलासा करके बतावेंगे। कर्बनद्विओषित मनुष्य और पशुओं के शरीर में पैदा होती है। अग्नि और लैम्प के जलने से भी उत्पन्न होती है। इसकी प्राणियों के शरीर को जरा भी आवश्यकता नहीं है। वे इसे श्वास द्वारा बाहर फेंक देते हैं। परन्तु वनस्पति और वृक्ष आदि के लिये यह वायु जीवन-मूल है। जिस प्रकार वायु में से ओषजन को प्राणी ग्रहण करके जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार वायु में से कर्बनद्विओषित को ग्रहण कर वनस्पति फलती-फूलती है। यह ईश्वर की विचित्र माया है। यदि वृक्ष इस वायु को न चूसें, तो समस्त वायु-मंडल ज़हरीला हो जाय। वृक्ष आदि इस वायु को सूर्य की किरणों से

ही चूस सकते है । घरेलू गमले आदि जो अँधेरी जगहों मे रक्खे रहते है, प्राय सूख जाते हैं ।

यह अंदाज लगाया गया है कि आराम से बैठा हुआ मनुष्य प्रति घंटे ० ६ घनफुट कार-बनद्विओपित अपने श्वास से बाहर निकालता है । यदि बाहर से ताजी हवा का आना रोक दिया जाय तो इस हवा का जहरीला प्रभाव फौरन् मालूम हो जायगा । इसके विषैले प्रभाव को नष्ट कर ताज़ा हवा मे साँस लेने के लिये मनुष्य को प्रति घंटा ३ ००० घनफुट स्वच्छ वायु की आवश्यकता है । खेद है कि इस विषय पर बहुत कम मनुष्य ध्यान देते है और तंग गलियों और तंग घरो मे रहकर आयु को नष्ट करते है । बडे-बडे शहरों मे तो खास तौर से स्वच्छ हवादार मकान मिलना कठिन होता है । दु:ख की बात है कि धन के लालच मे आकर छोटे-बडे सभी लोग बड़े शहरों मे अति घृणित रीति से रहते और जीवन नाश करते है ।
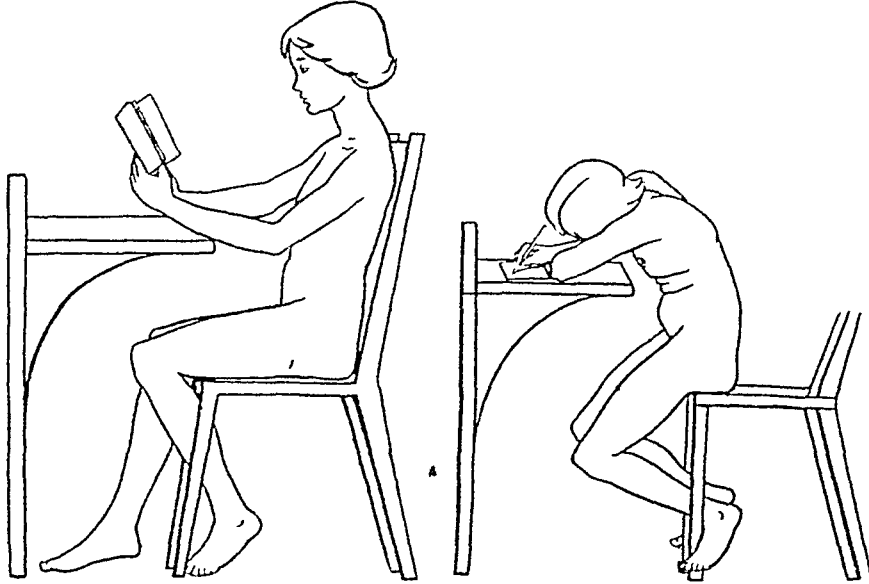
पढ़ने के लिये बैठने की शुद्ध रीति — लिखने के लिये बैठने की गलत रीति

यह आवश्यक नही कि आपके रहने का कमरा खूब बडा हो । छोटा कमरा भी बुरा नहीं, परंतु इसमें स्वच्छ वायु का आवागमन ठीक-ठीक होना चाहिए । २४ घंटे मे मनुष्य २५ तोले भाप श्वास द्वारा हवा मे मिलाता है ।

यह हम प्रथम बता चुके है कि अग्नि जलने से भी कर्बनद्विओपित पैदा होती है, इसलिये जिस कमरे मे आग जल रही हो, उसे बंद करके सोना भी भयानक भूल है । बहुधा लोग कोयले जलाकर खिडकी बंद करके सो गए है और रात-भर मे मर गए है । ऐसे उदाहरण कम नहीं । बहुत-से लोग अपने कमरो मे मिट्टी के तेल का लैंप जलाकर सो जाते हैं । एक लैंप सात मनुष्यो के बराबर हवा खराब करता है । सरसों के तेल का दिया भी हवा को अशुद्ध करता

है। साधारणतया एक मनुष्य के लिये १००० घनफुट स्थान काफी है, यदि उसकी वायु प्रति घंटा तीन बार बदली जा सके। हम आगे एक अध्याय में विस्तार से यह बतावेंगे कि किस प्रकार मकानों का निर्माण किया जाय, जिससे कमरे हवादार और उजाले से संयुक्त रहें।

मुंह ढांपकर सोना भयानक भूल है। बहुत लोग अच्छे मकानों तथा शुद्ध हवादार स्थानों पर तो रहते हैं, पर सदा मुंह ढांपकर सोया करते हैं। यह बड़ी गंदी और आत्मघाती आदत है। शुद्ध वायु इतना काम करती है—

१—शुद्ध वायु रक्त शुद्ध करती है।

२—जहरीली वायु को शुद्ध रखती है।
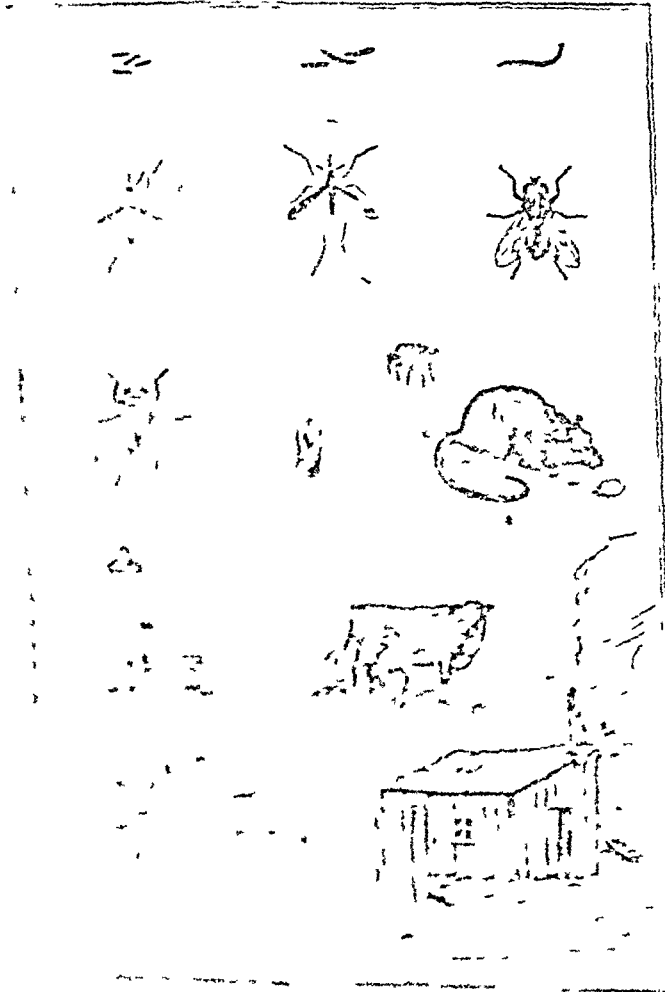
३—हवा अपनी वाहक शक्ति से अच्छे और बुरे परमाणुओं को शरीर में प्रवेश करती है। ऋतु की वनस्पति तथा पौष्टिक द्रव्यों द्वारा हवन करने से वायु शुद्धि में बहुत लाभ होता है।

रोगोत्पादक साधन

प्रकाश

जहाँ अंधकार है, वहाँ मृत्यु है। जहाँ प्रकाश है, वहाँ जीवन है। सूर्य की सुनहरी किरणें जिस घर पर प्रभात ही में पड़कर आनंद प्रदान करती हैं, वही घर सुख, धन, धान्य और लक्ष्मी का वास-स्थान होता है। प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि वह अपने घरों में प्रकाश का पूर्ण प्रबन्ध करे।

मक्खी, मच्छर, चूहे, भंगार, पशुओं की गंदगी, कीचड़, सील, और कूड़ा-कर्कट रोगोत्पादक साधन हैं।

मल-मूत्रादि त्याग का नियत काल

हम इसी अध्याय में आगे चलकर बतावेंगे कि मल-मूत्रादि के ठीक-ठीक समय पर त्याग न करने से कितने रोग पैदा हो जाते है।

सर्दी-गर्मी से रक्षा

सर्दी-गर्मी से शरीर की रक्षा करने के लिये आवश्यक है कि ऋतु के अनुकूल वस्त्रो को धारण किया जाय। वस्त्र धारण करने के दो अभिप्राय है—प्रथम, बाहरी शीत और उष्णता से शरीर की रक्षा की जाय। दूसरे, भीतरी उष्णता को सुरक्षित रक्खा जाय। शरीर सुंदर प्रतीत हो, यह वस्त्रो का एक गौण उपयोग भी है। वस्त्र प्राय तीन प्रकार के होते है—ऊनी, सूती और रेशमी।

ऊन भेडो और ऊँटों के बालों की बनाई जाती है। ऊन के वस्त्र मे यह गुण है कि इसमे गर्मी का कम प्रवेश होता है। और इसके होते हुए शरीर की गर्मी नष्ट नही होती। यह हवा की नमी को चूस लेती है, तथा शरीर को उससे बचाती है। ऊनी वस्त्र शरीर से मिला रहे, तभी उससे यह लाभ होता है।

रेशम भी नमी को बहुत चूसता है। और अपने में गर्मी को बहुत प्रवेश करता है। इस-लिये शरीर की गर्मी को नष्ट करता है। इसमे बिजली का प्रवेश नहीं होता।

सूती वस्त्रो मे माँड दी जाती है, जो आटा, चावल या चर्बी की होती है। मिल के कपडो में चर्बी की माँड होती है, जिनमें बहुत-से रोग-जतु होने का भय है। इसलिये मिल के वस्त्रों को बिना अच्छी भाँति धुलाए काम मे लाना ठीक नहीं। सूती कपडों में सबसे बडा गुण यह है कि वे आसानी से धुल सकते है, परंतु वे नमी को कम चूसते है और इसलिये शरीर की गर्मी को बहुत ख़र्च करते है।

वस्त्र के साथ उसके रगो का भी स्वास्थ्य पर ख़ासा प्रभाव पडता है। सफेद रंग सबसे कम गर्मी चूसता है। उसके बाद क्रम से पीला, लाल, हरा, नीला और काला रंग है। इसके सिवा रंगों मे विष भी होता है। लाल रग मे रक्त पडता है। इससे चमडी को बहुत नुकसान होता है। इसलिये नीचे का वस्त्र तो सफेद ही रहना उत्तम है।

देश-काल की दृष्टि से मोटा खद्दर भारत के लिये प्राय सब ऋतुओ के लिये उपयुक्त है। वह नमी को चूसता भी है। इसके सिवा सस्ता, सफेद और सरलता से धुलनेवाला है।

प्राय देखा जाता है कि लोग सब ऋतुओं मे बहुत-से वस्त्र लादे फिरा करते है। ऐसे मनुष्यो के फेफडे कमज़ोर हो जाते है। वस्त्र न ढीले हो, न तंग, प्रत्युत वे समान हो। बहुधा लोग गले के कालर, वास्कट, पाजामा बहुत तग पहनने के शौकीन होते हैं, इससे शरीर में रक्त का प्रवाह रुक जाता है। वस्त्रो के विषय मे इतनी बातें सोचनी चाहिए—

१—वे स्वच्छ हो।

२—शरीर पर जँचे हुए हो।

३—यथासंभव कम हो।

सदैव सिर को ठंडा रखना और पैरों को गर्म रखना आवश्यक है। सर्दी में प्राय: सभी मोज़ा पहनते हैं, पर उन्हें स्वच्छ शायद ही कोई रखता होगा। जूते ज्यादा कसकर न पहने जायँ, जिससे पैर विकृत हो जायँ। यह आवश्यक है कि मोज़ा २४ घंटा पहनने के बाद में धो डाला जाय। भीतर की गंजी भी प्रतिदिन धोना आवश्यक है।

काढ़ने के लिये बैठने की शुद्ध रीति
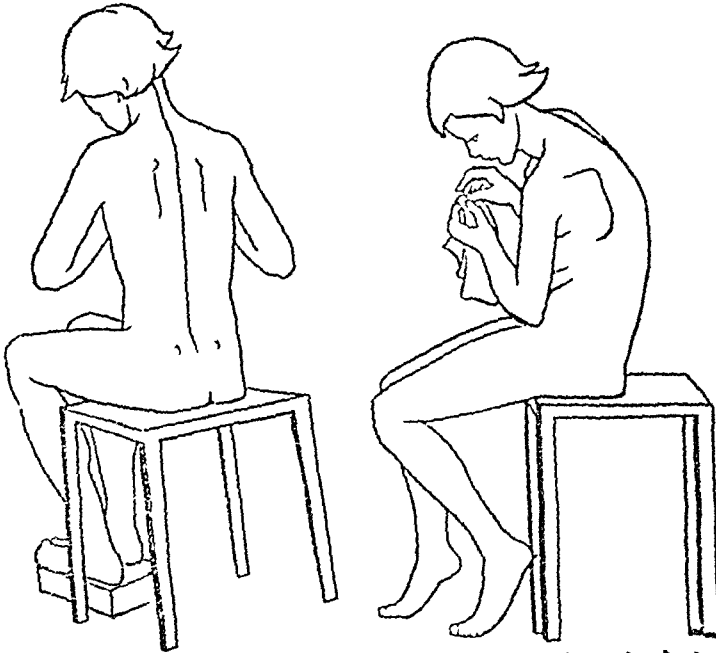
काढ़ने के लिये बैठने की गलत रीति

स्वास्थ्य-रक्षा के संबंध में स्त्रियाँ बहुत पिछड़ी हुई हैं। यद्यपि उनको पुरुषों से अधिक स्वस्थ होना चाहिए, क्योंकि उन्हें बच्चे उत्पन्न करना है। पर खेद है, वे सदा मैले वस्त्र पहनने की अभ्यासी तथा कच्चा-पक्का, बासी-कूसी अन्न खाने की शौकीन होती है। हम आगे, व्यायाम के अध्याय में बतावेंगे कि स्त्रियों को भी व्यायाम की कितनी आवश्यकता है। यहाँ सिर्फ यह कहना है कि पुरुषों की भाँति उन्हें भी नियमित समय पर, नियमित रीति से नित्यकर्म करना। और खुली हवा में घूमना चाहिए। प्राय आजकल की विदुषी युवतियाँ घर के परिश्रम के कामों से दूर रहती हैं, इससे उनका शरीर नाजुक तथा रोग का घर बन जाता है। पर याद रखने की बात है कि स्त्रियों को प्रसव करना पड़ता है, और यह साधारण काम नहीं। वही स्त्री आसानी से, बेतकलीफ प्रसव कर सकती है, जो खूब परिश्रमशील और हृष्ट-पुष्ट हो।

परदा स्त्रियों का पाप है। प्रत्येक पुरुष-स्त्री का कर्तव्य है कि इसका नाश करे। और स्त्रियों को स्वतंत्र रीति से, मित्र की भाँति, रक्खे।

स्वास्थ्य के संबंध में बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिनके विषय में लोगों का खयाल बहुत कम जाता है, पर जो वास्तव में बहुत महत्त्व-पूर्ण हैं। जैसे पढ़ने के लिये झुककर बैठना शरीर को बेडौल बनाता है। चलने में तिरछे पैर डालना भी शरीर को कुडौल बनाता है। सीने-पिरोने
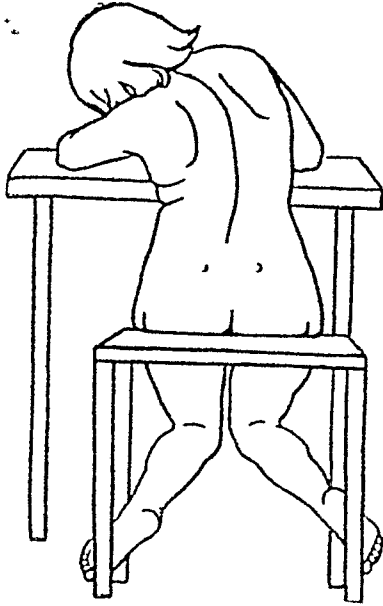
लिखने के लिये बैठने की गलत रीति
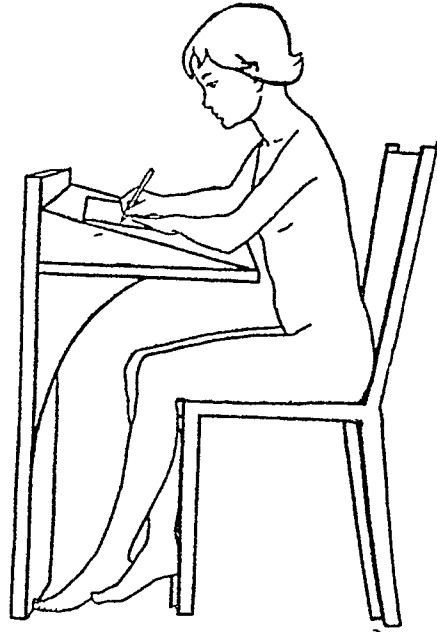
लिखने के लिये बैठने की शुद्ध रीति

चलने की गलत रीति

चलने की शुद्ध रीति

के लिये प्राय स्त्रियाँ झुककर बैठी रहती है। ऐसा बैठना ठीक नहीं। कुर्सी पर बैठने के लिये भी शरीर को आराम के साथ रखना चाहिए। पत्थर की मूर्ति की भाँति अकड़कर बैठना ठीक नहीं।
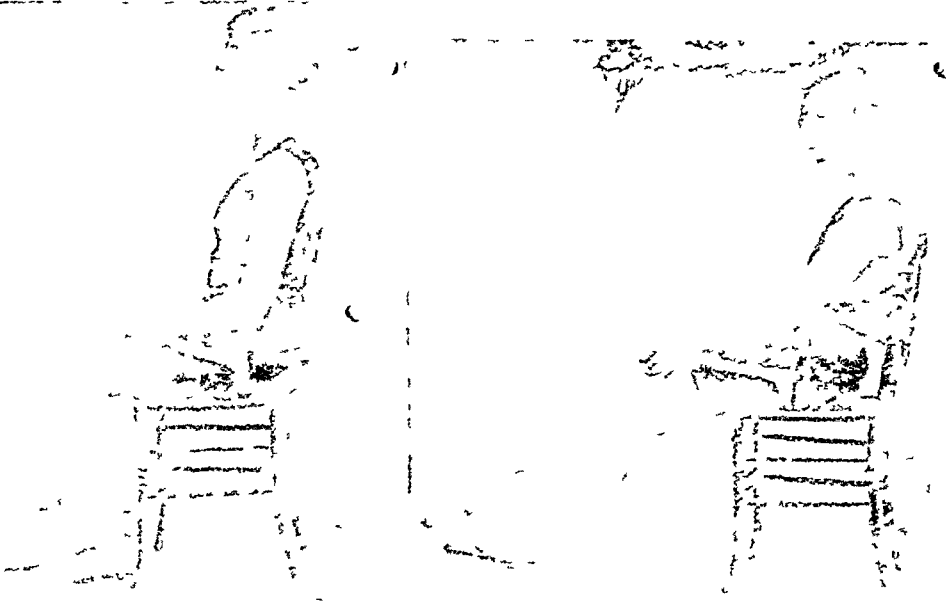
वैठने की गलत रीति

वैठने की शुद्ध रीति

प्रकरण ४

दिनचर्या

तंदुरुस्त मनुष्य को इस प्रकार अपने नित्यकर्म की दिनचर्या बनानी चाहिए—

प्रातःकाल जागना

उसे उचित है कि वह प्रात काल, सूर्य निकलने से प्रथम, उठे। अपनी मगल-कामना तथा आरोग्य-रक्षा के लिये सर्वशक्तिमान परमात्मा का स्मरण करे।

मल-त्याग

सोकर उठने के बाद प्रथम कर्म मल-त्याग है। बहुत-से लोग तबाकू पीकर, बहुत-से चाय पीकर और बहुत-से कुछ खा-पीकर मल-त्याग करते है—यह बुरी आदत है। यदि बस्ती छोटी हो, तो मल-त्याग को बाहर, दूर मैदान मे, जाय। यदि पाख़ानो मे जाना है, तो वे अति शुद्ध होने चाहिए। महात्मा गाधी का मत है कि "पाख़ाने पुस्तकालयो की भॉति शुद्ध रहने चाहिए।" वह जेल मे इसी वचन को प्रमाणित करने के लिये गीता का पाठ पाख़ाने मे करते रहे है। गदे और दुर्गंधित पाख़ाने कब्ज, बवासीर और अन्य गंदे रोगो को उत्पन्न करते है। दिन मे दो बार से अधिक दस्त जाना भी रोग है।

मल-त्याग के लिये देर तक बैठे रहने की आदत अच्छी नहीं। पाख़ाने मे बीडी-सिगरेट पीना भी गदी आदत है। यदि मल-त्याग में देर लगे तो भोजन में चिकित्सक की सम्मति से परिवर्तन करे। लोग भंग, अफीम, शराब, मिठाइयॉ आदि खाने के आदी होते है, जिससे मल-त्याग देर मे और ठीक-ठीक नहीं होता। वे उसके असली कारण को दूर न करके विरेचन दवाएँ खाते हैं। यह बुरी बात है। तदुरुस्त आदमी का मल बँधा हुआ, चिकना, एकसा, पीला और एक ही बार में आसानी से निकलनेवाला तथा कम दुर्गंध का होता है। इससे कोठा साफ़ और हल्का हो जाता है। चित्त प्रसन्न होता है।

मल-त्याग के बाद गुदा-द्वार को भीतर तक शीतल जल से भली भॉति धोना चाहिए। गर्म जल इस काम मे नही लेना चाहिए। थोडे जल से या कागज आदि से मल-द्वार की ठीक-ठीक शुद्धि नही होती।

हाथ-मुँह धोना

बहुधा यह समझा जाता है कि यह साधारण-सा काम है। परतु आपको सावधान रहना चाहिए कि हाथ-मुख धोने के लिये शुद्ध और यथासंभव ऐसा जल लेना चाहिए जो उबालकर ठंडा किया गया हो। कच्चा—तालाब-नदी का—जल बहुधा बहुत-से रोग-जतुओं से परि-

पूर्ण रहता है। और ये जंतु मुख और दाँतों की जड़ में जमकर बैठ जाते हैं तथा इनसे जो भयानक रोग होते हैं, उनका बयान आप दाँतों के अध्याय में पढ़िए।

मुख धोने में नेत्रों का धोना भी अत्यंत सावधानी से होना चाहिए, वरना नेत्रों का सारा सौंदर्य ही नष्ट हो जायगा। क्योंकि रात्रि में बहुत-सा मैल नेत्रों में जमकर सूख जाता है। दाँत और जीभ को भी अच्छी तरह साफ करना चाहिए, और जमा हुआ कफ निकाल डालना चाहिए। और उसके बाद अच्छी तरह बार-बार कुल्ला करना चाहिए।

दाँतन या मंजन

दाँत शुद्ध करने को यदि ताजा दाँतन मिल सके, तो वह सबसे उत्तम है। रोग-जंतु मारने के लिये नीम की दाँतन अद्वितीय है। परंतु दाँतों को दृढ़ करने के लिये बबूल की उत्तम है। और भी कई वृक्षों की दाँतन की जा सकती है। दाँतन १२ अंगुल लंबी और कनिष्ठिका उँगली के समान मोटी तथा नरम रहनी चाहिए। आक, बड़, खैर, करंज, अर्जुन आदि की दाँतन भी उत्तम होती है।

अजीर्ण के रोगी को या जिसे उल्टी आ रही हो, श्वास और कास के रोगी को तथा नवीन ज्वरवाले को या जिसे प्यास लगी हो या जिसका मुख पक रहा हो या जिसे हृदय, नेत्र, सिर, कान आदि की बीमारी हो, उन्हें दाँतन नहीं करना चाहिए।

चौर

प्रतिदिन या प्रति दूसरे दिन चौर करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के लिये हमारी दृढ़ सम्मति है कि वह स्वयं यह क्रिया करने का अभ्यास करे। इससे एक तो फ़जूल-खर्ची बचती है, दूसरे, दूसरों की पराधीनता नहीं रहती। तीसरे, अशुद्ध और असंख्य रोग-जंतुओं से परिपूर्ण नाई के गंदे वस्त्र, हाथ और उस्तरे आदि से जान बचती है।

संध्या-वंदन

संध्या-वंदन—ज्यों-ज्यों पाश्चात्य शिक्षा हमारे घर में प्रवेश करती जाती है, हमसे छूटती जाती है, यह बड़े लज्जा और दुःख का विषय है। मुसलमान भाई नमाज़ के कितने पाबंद हैं। योरपियन लोग भोजन और शयन के समय परमेश्वर को स्मरण करते हैं। प्रत्येक समझदार स्त्री, पुरुष और बालक को स्नान के बाद कुछ समय परमेश्वर का स्मरण, अपनी रुचि, शिक्षा एवं ज्ञान के अनुसार, अवश्य करना चाहिए। यह इसलिये नहीं कि परमेश्वर ख़ुशामद से प्रसन्न होगा, प्रत्युत इसलिये कि इससे आपके विचार और भावना शुद्ध होंगे।

सुगंध-धारण

चंदन-केसर-कस्तूरी-लेपन, सुगंध-द्रव्य जलाकर धूप से वस्त्रों को बसाना तथा पुष्प-माला, गुलदस्तों अथवा इत्र-फुलेल और सेंट आदि से वस्त्र, शरीर और घर को सुवासित करना उत्तम है। ये सब कार्य ऋतु के अनुकूल होना चाहिए। देशी इत्रों में गर्मी में गुलाब, वर्षा में ख़स और शीत में हिना उत्तम है।

वायु-सेवन

सायं-प्रातः स्वच्छ वायु का सेवन करना स्वास्थ्य के लिये अत्यावश्यक है, पर आजकल जिस प्रकार रईस लोग मोटर, गाडियों में बैठकर वायु-सेवन करते हैं, उससे कुछ लाभ नहीं है। धूल-रहित स्थान में, जहाँ चारो तरफ हरियाली हो, तथा फूलो की सुगंध भर रही हो, धीरे-धीरे टहलकर वायु-सेवन करे। मुख बंद करके नाक से गहरे श्वास ले। यदि मित्र साथ हों, तो साधारण प्रमोद के विषय पर बातचीत करे।

ग्रीष्म, वसंत और शरद्-ऋतु मे नियम से वायु-सेवन ख़ास तौर से करे।

वायु के गुण

पूर्वी वायु—भारी, गरम और चिकनी होती है। रक्तपित्त, गठिया, बवासीर, विष-विकार, कृमिरोगी, ज्वर, सन्निपात, श्वास, व्रण (फोडे-फुंसी) इन रोगों के रोगियो को इससे बचना चाहिए। यह वायु खाद्य पदार्थों मे स्वाद उत्पन्न करती है, पर जल का स्वाद बिगाड देती है। तथा रोम-कूपों को बंद करती है।

पछवा वायु—तेज़, शीतल, बल-हरण करनेवाली और रूखी है। चर्बी और कफ को सुखाती है। घावों को खुश्क करती है।

उत्तर वायु—शीतल, चिकनी, गीली और स्वास्थ्य-रक्षक है।

दक्षिण वायु—मन प्रसन्न करनेवाली, पित्त और रुधिर के विकारो का नाश करनेवाली, हल्की, ठंडी, बलकारी और नेत्रो को लाभदायक है।

इन गुणों का ध्यान करके वायु-सेवन करे। वायु के ये धर्म प्राय. उत्तर और मध्य भारत के लिये ठीक-ठीक है।

नेत्रांजन

नेत्र तेजोमय हैं। उन्हे कफ के आक्रमण का अधिक भय है। बहुधा मोतियाबिंद मनुष्यों को हो जाता है। इसलिये सप्ताह मे एक बार रसौत अवश्य लगा लेना चाहिए।

नेत्र-प्रकरण मे जो सुर्मा हमने लिखा है, वह भी बहुत उत्तम है। और उसका सदैव ही सेवन करना चाहिए। वहीं नेत्रो की रक्षा के लिये जो विशेष विवरण दिया है, उस पर ख़ास तौर से ध्यान देना आवश्यक है।

रत्न-धारण

विविध रत्नो का धारण करना भी स्वास्थ्य और मंगल-कामना के लिये परमावश्यक है। भिन्न-भिन्न रत्न मे भिन्न-भिन्न ग्रह का समावेश है।

मानिक मे सूर्य, मोती मे चंद्रमा, पुखराज मे मंगल, फिरोजे मे बुध, मरकत (पन्ना) मे बृहस्पति, हीरे मे शुक्र, नीलम मे शनि और वैडूर्य मे राहुका वास है।

शुद्ध प्रकार के निर्दोष रत्न धारण करने से उपर्युक्त ग्रहो की शांति होती है। रत्नोंके धारण करने से रोग भी दूर होते है—

हीरे से भ्रम और नेत्र रोग, मानिक से दाह, विष और क्षय, मोती से दाह, विष और नेत्र-रोग, मूँगा से पाण्डु रोग और प्रदर, मरकत (पन्ना) से उल्टी, अम्लपित्त, बवासीर और कुष्ठ, नीलम से श्वास, बवासीर और विषम ज्वर, गोमेद से वात-व्याधि और वैदूर्य (लहसुनिया) से कफ के रोग दूर होते हैं।

इन रत्नों को परखकर वैद्य की सम्मति से उपयुक्त मात्रा और विधि से, खाने से उक्त रोगों में लाभ करते हैं।

वेगों को रोकने से हानि

अपान वायु, दस्त, मूत्र, छींक, प्यास, भूख, नींद, खाँसी, हाँफनी, श्वास, जँभाई, आँसू, वमन और वीर्य, इनका वेग कभी न रोके। इससे भयानक रोगों के होने का भय है।

(१) अपान वायु को रोकने से वायुगोला, अफारा, दर्द और बेचैनी होने का भय है। तथा दस्त-पेशाब में बंध लग जाने का भी भय है। इससे दृष्टि और अग्नि भी नष्ट हो जाती है।

(२) दस्त को रोकने से पिंडलियाँ फटने लगती हैं। जुकाम हो जाता है, तथा सिर दर्द हो जाता है, वायु ऊपर घुमड़े लेने लगती है, पेट में कैंची से कतरने-जैसी पीड़ा होती है। मुख से कभी-कभी विष्ठा की वमन भी होती है। तथा अपान वायु के रोकने से जो रोग होते हैं, वे उत्पन्न हो जाते हैं।

(३) पेशाब रोकने से अंग-भंग, पथरी, वस्ति, लिंग, वंक्षण में दर्द तथा पूर्वोक्त रोग हो जाते हैं।

(४) डकार के रोकने से अरुचि, कंप, छाती का जकड़ जाना, पेट फूलना, हिचकी, खाँसी आदि उपद्रव हो जाते हैं।

(५) छींक को रोकने से सिर में दर्द, जबाड़े का जकड़ जाना तथा लकवा मारने का भय हो जाता है।

(६) प्यास को रोकने से अंग सूखने लगता है, बदन टूटता है, बहरापन हो जाता है, मोह, भ्रम और हृदय की बीमारी हो जाती है।

(७) भूख को रोकने से अंग-भंग, अरुचि, ग्लानि, दुर्बलता, शूल, भ्रम आदि रोग होते हैं।

(८) नींद को रोकने से मोह, मूर्च्छा, आँखों का भारीपन, सिर-दर्द, जँभाई, आलस्य, हड़फूटन आदि रोग होते हैं।

(९) खाँसी के रोकने से खाँसी की वृद्धि, श्वास, अरुचि, हृद्रोग, शोष, हिचकी आदि रोग होते हैं।

(१०) हाँफनी के श्वास को रोकने से गुल्म, हृद्रोग, मोह आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

(११) जँभाई के रोकने से छींक रोकने के समान रोग होते हैं।

(१२) आँसू रोकने से पीनस, आँख, सिर, हृदय में दर्द, मन्यास्तंभ, अरुचि और भ्रम हो जाता है।

(१३) उल्टी रोकने से विसर्प, ददोड़े, कोढ़, आँख में खाज, पाण्डुरोग, ज्वर, खाँसी, श्वास, सूजन, ये रोग हो जाते हैं।

(१४) वीर्य का वेग रोकने से वीर्य-स्राव, गुह्येंद्रिय में दर्द, सूजन या ज्वर उत्पन्न हो जाता है।

इनके उपाय

(१) अपान वायु रोकने से यदि कोई उपद्रव हो जाय, तो गुदा में ग्लेसरीन की बत्ती लगावे, एनीमा दे। गर्म, चिकना और हलका भोजन करे।

(२) दस्त रोकने पर भी उपर्युक्त क्रिया करनी चाहिए। तथा तेज जुलाब देना चाहिए।

(३) पेशाब रोकने की तकलीफ में ज्यादा घृत डालकर भात खाय। तथा पेड़ू को गर्म जल की बोतल से मद-मद सेंके।

(४) डकार रोकने पर कोई उपद्रव हो, तो हिचकी के समान कार्य करे।

(५) छींक रुकने पर बत्ती, नस्य आदि से फिर छींक लावे।

(६) प्यास रोकने पर ठंडी क्रिया करे। शर्बत आदि पिए।

(७) भूख रोकने पर हलका और चिकना भोजन करे।

(८) नींद रोकने पर सोवे तथा शरीर को मर्दन करावे, थपथपावे।

(९) खाँसी के रोकने पर उसकी दवा सेवन करे।

(१०) श्वास (हफनी) रोकने पर वात की क्रिया करे।

(११) जँभाई का इलाज छींक की भाँति करे।

(१२) आँसू रोकने से उपद्रव होने पर खूब सोवे।

(१३) वमन रोकने पर फिर वमन करे।

(१४) वीर्य-रोध हुआ हो, तो लघु, स्निग्ध भोजन करे, प्रिय स्त्री का संसर्ग करे।

प्रकरण ५

ऋतुचर्या-विज्ञान

काल भगवान् है, स्वयंभू है, अप्रतिहत-गति है, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय काल के ही हाथ में है। कालानुसार न करने से कोई कार्य भी सिद्ध नहीं हो सकता, फिर काल (ऋतु) के अनुकूल आहार-विहार न होने से स्वास्थ्य तो कैसे स्थिर रह सकता है ? इसलिये यहाँ पर ऋतुचर्या-विज्ञान का वर्णन करते हैं।

यहाँ, भारतवर्ष में, छ ऋतुएँ होती हैं—

चैत्र-वैशाख = वसंत, ज्येष्ठ-आषाढ = ग्रीष्म, श्रावण-भाद्रपद = वर्षा, आश्विन-कार्तिक = शरत्, मार्गशीर्ष-पौष = हेमंत और माघ-फाल्गुन = शिशिर।

भारत के जिन प्रांतों में चार मास तक वर्षा होती है (आषाढ़-श्रावण, भाद्रपद और आश्विन में), वहाँ वर्षा के दो भेद होते हैं–एक प्रावृट्, दूसरा वर्षा।

इस दशा में ऋतुओं का क्रम यों होता है—

आषाढ-श्रावण = प्रावृट्, भाद्रपद-आश्विन = वर्षा, कार्तिक-मार्गशीर्ष = शरत, पौष-माघ = हेमंत, फाल्गुन-चैत्र = वसंत और वैशाख-ज्येष्ठ = ग्रीष्म। इस क्रम में शिशिर ऋतु छूट जाती है। गुणों में प्रावृट् बराबर है वर्षा के, और शिशिर बराबर है हेमंत के।

एक वर्ष में दो अयन होते हैं—उत्तरायन और दक्षिणायन। मकर की संक्रांति से कर्क की संक्रांति तक छ मास का समय उत्तरायन और कर्क की संक्रांति से मकर की संक्रांति तक छ मास का समय दक्षिणायन कहलाता है। ऋतु-विभाग से शिशिर, वसंत और ग्रीष्म ऋतु उत्तरायन में और वर्षा, शरद् और हेमंत ऋतु दक्षिणायन में गिनी जाती हैं। वैद्यक-परिभाषा में उत्तरायन को आदान काल और दक्षिणायन को विसर्ग काल कहते हैं।

उत्तरायन (आदान काल) में भगवान् सूर्य बलवान् होते हैं। वे अपनी प्रखर किरणों को चारों तरफ़ फेंककर जगत् की चिकनाई और तरी को सोख लेते हैं। वायु तीव्र, रूक्ष हो जाता है। सब प्राणी, यहाँ तक कि ओषधि और अन्न भी बल-हीन हो जाते हैं। जठराग्नि मंद हो जाती है। सिर्फ कटु, तिक्त और कषाय ये तीन रस (जो स्वभाव से रूक्ष हैं) बलवान् हो जाते हैं।

दक्षिणायन (विसर्ग काल) में सूर्य देवता मेघ, वायु और वर्षा से हतप्रताप हो जाते हैं, वर्षा से पृथ्वीतल का संताप नष्ट हो जाता है, और भगवान् चन्द्रमा बलवान् होकर सोम की

वर्षा करते है, इससे ओषधि, अन्न और प्राणियों मे बल का संचार होता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है और मधुर अम्ल और लवण ये तीनो (रूक्ष) रस बलवान् हो जाते है।

सब ऋतुओ मे प्राणियों मे बलाबल का क्रम इस प्रकार रहता है—विसर्ग काल के आदि और आदान काल के अंत (वर्षा और ग्रीष्म) मे प्राणी हीनबल होते हैं।

विसर्ग और आदान के मध्य (शरद् और वसंत) मे प्राणी मध्यबल होते है। एवं विसर्ग काल के अंत और आदान काल के आदि (हेमंत और शिशिर) में प्राणी विशेष बलवान् होते है *।

अब हम प्रत्येक ऋतु का क्रम से वर्णन करते है—

वसंत-ऋतु-लक्षण

वसत-ऋतु मे दिशाएँ निर्मल होती है, पलास, कमल, मौलसिरी और आम्रादि वृक्ष फूलते है, वन उपवनो की शोभा विचित्र होती है, शीतल, मद, सुगंधित पवन बहती है, वृक्षो मे कोमल और नवीन पत्ते निकलते है।

गुण

वसंत-ऋतु मधुर और स्निग्ध है, हेमंत और शिशिर ऋतु में मधुर, स्निग्ध और गरिष्ठ पदार्थों के सेवन करने से जो कफ शरीर में सचित हो गया था, वह अब सूर्य की तीक्ष्ण किरणो से पिघल-पिघलकर कुपित होता है, इसी से लोगों को प्राय. प्रतिश्याय (जुकाम), खाँसी और कफ के ज्वर हो जाया करते है।

पथ्यापथ्य

इस कफ को दूर करने के लिये वमन और नस्यादि किसी उत्तम वैद्य की सम्मति से लेने चाहिए, व्यायाम, उबटन, चदन, केसर और अगर का लेप, भ्रमण, गेहूँ, चावल, मूँग, जौ, रूखे, चरपरे, गर्म और हल्के पदार्थों का सेवन पथ्य है। मीठे, चिकने और गरिष्ठ पदार्थ, खटाई और दही का सेवन, दिन मे सोना और रात को जागना कुपथ्य और हानि-कारक है। अदरक विशेष सेवन करना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु-लक्षण

ग्रीष्मऋतु मे सूर्य की किरणें प्रचड होती हैं, तीक्ष्ण धूप पडती है, नैऋत्य कोण का दु खदायी और जलानेवाला पवन चलता है, पृथ्वी उष्ण तथा कठोर दिशाएँ जलती हुई-सी प्रतीत होती है, जीव जतु मारे प्यास के विकल हो जाते हैं, जलाशय सूख जाते हैं, छोटे पौदे घास और लताएँ कठिन धूप से दग्ध हो जाती हैं।

---

* आदावन्ते च दौर्बल्यं विसर्गादानयोर्नृणाम् ।
मध्ये मध्यबल त्वन्ते श्रेष्ठमग्रे च निर्दिशेत् । (चरक०)

गुण

ग्रीष्म ऋतु अत्यंत कटु, पित्तकारक और रूखी है । इस ऋतु में स्निग्धता नष्ट हो जाती है । अन्नादि रूखे निस्सार और हल्के हो जाते हैं, इसी से इस ऋतु में दुर्बल शरीरों में वायु का सञ्चय होता है, परंतु ऋतु उष्ण होने के कारण से कोप नहीं होता ।

पथ्यापथ्य

इस ऋतु में मधुर, स्निग्ध, शीतल और पतले पदार्थों का विशेष सेवन करना चाहिए । शिखरन, शर्बत, रसाला, दूध, मीठा, दाल-भात का भोजन, रात को चन्द्रमा की चाँदनी में सबसे ऊपर की छत पर सोना, दोपहर को ठंडे कमरे, तहखानों या फव्वारेदार लता-भवनों में आराम करना, खस की टट्टी, खस के पंखे, गुलाब, केवड़े का [illegible], चंदन और कपूर का लेपन, श्वेत, शीतल, सुंदर और हलके वस्त्र, शीतल जलपान, प्रातःकाल का वायु-सेवन हितकारी है । ताजा छाछ विशेष सेवन करना चाहिए ।

वर्षा-ऋतु

वर्षा-ऋतु में वायु प्रबल होता है । ग्रीष्म का संचित पित्त उसका सहायक होता है । इस ऋतु में धरती आकाश सब दूषित हो जाते हैं और नाना प्रकार के सेंद्रिय पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं—इसलिये हितकारी और पथ्य भोजन करना उचित है । हवा में तरी रहने से शरीर गीला रहता, और अग्नि मन्द हो जाती है * ।

पथ्यापथ्य

वर्षा-ऋतु में घृत-युक्त मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय, सब रसों के पदार्थ सेवन करने चाहिए । जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं, पृथ्वी आकाश सबके दूषित हो जाने के कारण जठराग्नि, और भी मंद हो जाती है, उसके शुद्ध रखने का प्रयत्न बराबर रखना चाहिए । थोड़ा सिर्के का सेवन इस ऋतु में जठराग्नि शुद्ध रखने के लिये अत्यंत लाभदायक होता है । नीबू विशेष सेवन करना चाहिए ।

शरद्

वर्षा-काल का संचित पित्त सहसा अधिकतर सूर्य-किरण प्राप्त हो जाने से कुपित हो उठता है । इसलिये विरेचन द्वारा पित्त को शांत तथा रक्त-शुद्धि करना चाहिए । इस ऋतु में सूर्य पिंगल वर्ण उदय होता है । दोपहर को सख्त गर्मी और रात को हल्की-हल्की सर्दी होती है । आकाश प्रायः साफ होता है । फल-फूल फलते हैं । घृत, मीठा, कसैला और

* वर्षासु प्रबलो वायुरतस्मान्मिष्टादयस्त्रयः,
रसाः सेव्या विशेषेण पवनस्योपशान्तये ।
भवेद्वर्षासु वपुषः क्लिन्नत्वं यद्विशेषतः ;
तत्क्लेशशान्तये सेव्या अपि कट्वादयस्त्रयः । (भावमिश्र)

कड़वा रस, गेहूँ, जौ, चना, मूँग, चावल, दूध, मिश्री, रायता आदि शीतल आहार करना चाहिए। दिन-भर धूप में रक्खा हुआ और रात-भर चाँदनी में रक्खा हुआ जल पीना लाभकारी है। निर्मल और हल्के वस्त्र पहनने चाहिए। प्रातःकाल की सुनहरी किरणों का सेवन करना चाहिए। अधिक व्यायाम और अधिक सरदी खाना निषिद्ध है। इस ऋतु में नींबू का सेवन विशेष करना चाहिए।

हेमंत

इस ऋतु में उत्तरी वायु चलती है। दिशाएँ धूल और धुएँ से भरी-सी प्रतीत होती हैं। कोहरा और पाला पड़ता है। पशु प्रसन्न होते हैं। यह ऋतु शीतल, स्वादु और बलवर्धक है। इसमें जठराग्नि प्रदीप्त होती है। बलवर्धक, पुष्टिकारक वस्तुओं का सेवन, तेल-मर्दन, परिश्रम, व्यायाम, उड़द, बाजरा, मक्का, तिल, ईख, केसर, कस्तूरी आदि पदार्थ खाने चाहिए। गर्म, ऊनी, रेशमी और रुई-भरे कपड़े पहनकर सरदी से बचना चाहिए। घी-गुड़ का सेवन विशेष करना चाहिए।

शिशिर

इस ऋतु में भी हेमंत की भाँति वर्तना चाहिए। परंतु आदान काल का आरंभ हो जाने से शरीर में खुश्की विशेष हो जाती है, इसलिये तेल की मालिश खूब करना चाहिए। घृत विशेष सेवन करना चाहिए।

सारांश

शीतकाल और वर्षा-ऋतु में मधुर, खट्टे और नमकीन पदार्थों का, वसंत में चरपरे, कड़वे और कसैले पदार्थों का, ग्रीष्म में मीठे पदार्थों और शरद् में मीठे, कड़वे और कसैले पदार्थों का विशेष सेवन करना चाहिए। ऋतु के आदि और अंत के सप्ताह ऋतु-संधि कहलाते है, जिनमें विगत ऋतु की विधि धीरे-धीरे छोड़नी चाहिए और आगामी ऋतु की ग्रहण करनी चाहिए। एकदम परिवर्तन करने से रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रेम-पूर्ण विनोद, गायन, वाद्य आदि अपनी-अपनी रुचि और प्रकृति के अनुकूल सदैव करने चाहिए।

अध्याय दूसरा

शरीर-विज्ञान

प्रकरण १

जीवन-कार्य

चौबीस तत्त्व

पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, वायु, ये पाँच महाभूत कहाते हैं। गंध, रस, शब्द, रूप और स्पर्श ये इनके क्रमश गुण हैं। ये ही इन्द्रियार्थ कहाते हैं। नाक, जीभ, कान, नेत्र और त्वचा ये पांच ज्ञानेंद्रिय हैं और उपर्युक्त पांचो इन्द्रियार्थ क्रमश. इनमें निवास करते हैं। हाथ, पैर, लिंग, गुदा और वागेंद्रिय ये पाँच कर्मेंद्रिय कहाती हैं। ये सब बीस तत्त्व हुए, इन सब पर हुक्म चलानेवाला मन, मन पर अधिकार रखनेवाली बुद्धि, बुद्धि पर शासन करनेवाला अहंकार और उसका अधिष्ठाता जीवात्मा। इस प्रकार सब मिलकर २४ तत्त्व हुए। स्थूल शरीर इन्हीं चौबीस तत्त्वों के संयोग से बनता है।

जीव क्या है ?

जीव एक अनादि, अनंत सत्त्व है, उसमें इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान है, वह शरीर में रहकर नाना प्रकार के शुभ-अशुभ कर्मों को करता है। और मृत्यु के बाद भी वह नष्ट नहीं होता। वह ईश्वर की प्रेरणा से अपने किए शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ही फिर असंख्य योनियों में से किसी भी योनि में जन्म धारण करता है। वह प्रत्येक शरीर में व्यापक है, और प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न है।

जीव-कोष

विज्ञान के पंडितों ने बहुत खोजकर निश्चय किया है कि प्राणी-मात्र के शरीर में असंख्य कोषों (cell) का एक समूह है। यह कोष अति सूक्ष्म रीति से जीवन-शक्ति का एक-एक आधार है। वे अति सूक्ष्म हैं। उनका व्यास १ इंच का ६०००वाँ भाग हो सकता है। उनकी आकृति भी भिन्न-भिन्न है। शरीर के सभी उपादान—अस्थि, मज्जा, मांस आदि—इसी कोष से निर्मित तथा परिवर्द्धित होते हैं। जो अति सूक्ष्म जीवाणु वीर्य-बिंदु द्वारा माता के गर्भ में जाकर जन्म धारण करता है, वह भी उक्त प्रकार का एक कोष-मात्र है। यदि

अत्युत्तम सूक्ष्म यंत्र से उसे देखा जाय, तो उस कोष में अति स्वच्छ वर्ण-विहीन क्षारमय तरल पदार्थ भरा रहता है। प्राणी की अणुप्राणनी शक्ति इसी में है।

प्राण क्या है ?

यह महा कठिन प्रश्न है। अब तक तत्त्वज्ञानी पुरुषों ने जो कुछ जाना है, वह यह है कि मस्तिष्क-हृदय और श्वास-यंत्र की अप्रतिहत स्वाभाविक गति का नाम ही प्राण है। परंतु प्राणों का मुख्य अधिष्ठान हृदय और फुफ्फुस (श्वास-यन्त्र) ही है। क्योंकि बहुधा यह देखा गया है कि मस्तिष्क के आघात से कभी मृत्यु नहीं होती। परंतु हृदय और फुफ्फुस के आघात से होती है।

जीवन क्या है ?

मस्तिष्क-हृदय और श्वास-यंत्र की अप्रतिहत स्वाभाविक गति और उनके आधार पर प्राणों का संचार ही जीवन है।

मृत्यु क्या है ?

इसके विपरीत होना ही मृत्यु है। परंतु मृत्यु के दो प्रकार हैं—एक स्थानिक, दूसरा सार्वांगिक। स्थानिक मृत्यु शरीर में प्रतिक्षण होती रहती है। शरीर के भीतरी और बाहरी त्वक् में सर्वदा असंख्य जीव-कोष नष्ट होते और नए उत्पन्न होते हैं। इसी से प्राण-रक्षा भी होती है। सार्वांगिक मृत्यु हृदय, मस्तिष्क और फेफड़े के संपूर्ण कार्य-निवृत्ति को कहते हैं। और यही शरीर का निधन कहाता है।

प्रकरण २

त्रिदोष

वायु, पित्त, कफ ये त्रिदोष कहाते हैं। ये समस्त शरीर में व्याप्त हैं, परंतु वायु का मुख्य स्थान पक्वाशय, पित्त का पित्ताशय और कफ का आमाशय है। पित्त में सूर्य का, कफ में चंद्र का और वायु में वायु-तत्त्व का गुण सन्निवेशित है। जिस प्रकार सूर्य, चंद्र और वायु तमाम जड जगत् वनस्पति आदि की उत्पत्ति और पालन करते हैं, उसी प्रकार शरीर में वात-पित्त-कफ करते हैं।

वायु

वायु ५ प्रकार का है—

(१) प्राण-वायु मूर्धा (सिर में) में स्थित रहता है। छाती और कंठ में विचरता है। बुद्धि, हृदय, इंद्रिय और चित्त को धारण करता है। थूकना, छींक, डकार, श्वास-प्रश्वास अन्न का निगलना उसी से होता है।

(२) उदान—इसका स्थान छाती है। नाक, नाभि और कंठ इनमें विचरण करता है वाणी, चेष्टा, बल, वर्ण, स्मृति आदि क्रियाएँ इसी से होती हैं।

(३) व्यान—इसका स्थान हृदय है। यह अति तीव्र वेगवाला है और समस्त शरी में विचरण करता है। चलना-फिरना, हाथ पैर मारना, पलक मारना सब इसी से होता है शरीर की समस्त क्रियाएँ इसी के द्वारा होती हैं।

(४) समान—कोष्ठ में रहता है। अन्न को ग्रहण करता और पकाकर उसके र अवयवों को पृथक्-पृथक् करने में मदद देता है।

(५) अपान—गुदा-द्वार में रहता है। वस्तिस्थान, जननेंद्रिय, जंघा आदि में विच करता है। वीर्य, आर्तव, दस्त, पेशाब, गर्भ आदि को बाहर यही निकालता है।

वायु के रूप

प्राय. सब प्रकार का वायु रूक्ष, लघु, सूक्ष्म, शीतल, गतिशील, आशुकारी, मृदु और योगवाही है। उपर्युक्त गुण-वर्धक आहार-विहार करने से वायु कुपित होता कुपित होकर शरीर में सन्धि-पीड़ा, शूल, सुई चुभाने के समान दर्द, अंग को सुन्न देना, मल-मूत्र को रोक देना, अंग जकड देना, रोमांच, कंप, कर्कशता आदि ८० प्र के रोग पैदा कर देता है। ताकतवर के साथ कुश्ती करने से, अधिक व्यायाम करने अधिक मैथुन करने से, बहुत पढ़ने से, ऊँचे से गिरने से, तेज़ चलने से, चोट लगने

लंघन और रात्रि-जागरण करने, बोझ ढोने, मल-मूत्र, वायु, छींक, डकार, भूख, प्यास, आँसू रोकने मे, कड़ुआ, चरपरा, रूखा-सूखा खाने आदि-आदि कारणो से वायु कुपित हो जाता है तथा घृत-तेल आदि खाना, तेल मालिश करना, विरेचन देना, मीठा, खट्टा, गर्म भोजन करना आदि-आदि से वायु का प्रशमन होता है।

पित्त

पित्त भी ५ प्रकार का है—

(१) पाचक—यह आमाशय और पक्वाशय के बीच मे रहता है। यह अग्निसञ्ज्ञक है। यही भोजन को पचाता है। सार और किट्ट को पृथक् करता है। अन्य पित्तों को उनके कार्य मे सहायता देता है। शक्ति भी देता है।

(२) रजक – पित्त आमाशय मे आश्रित है। यह रस, धातु को रँगकर रक्त बनाता है, इसीलिये इसका नाम रंजक है।

(३) साधक—हृदय मे स्थित है, यह मेधा, बुद्धि, अभिमान आदि का सहायक है।

(४) आलोचक—नेत्रों मे स्थित है, इसमे रूप-ग्रहण करने की शक्ति है।

(५) भ्राजक यह चमड़ी मे रहता है। यह लेप-मालिश आदि का शोषण करता है।

पित्त के रूप

पित्त स्वभावत द्रव, तीक्ष्ण, पीला (पक्का), नीला (कच्चा), गर्म, कटु और अम्ल (दूषित होने पर) तथा दस्तावर है।

सताप, दाह, रक्त, पाडु, मूर्च्छा, ये पित्त के कुपित होने के कार्य हैं।

क्रोध, शोक, भय, श्रम, उपवास आदि करने से, कटु, खट्टे, तेज और विदाही पदार्थ-जैसे तिल-तेल, कुरथी, सरसों, शाक, दही शराब, मिर्चा आदि अधिक सेवन करने से यह कुपित होता है। तथा घृत-पान, मधुर भोजन, ठडा जुलाब, सुगध, चदन-लेप, कपूर, खस, चद्र-किरण, शीतल वायु, गीत-वाद्य, प्रेम-सभाषण आदि से शमन होता है।

कफ

कफ भी ५ प्रकार का है—

(१) अवलबक—यह छाती मे रहता है। कधों को पुष्ट रखता है। और उन्हे उनके कार्यों मे सामर्थ्य देता है।

(२) क्लेदक—यह आमाशय मे रहता है। और खाए हुए अन्न को गीला करता है।

(३) रोचक—जीभ मे रहता है। स्वाद ग्रहण करने की शक्ति इसी मे है।

(४) तर्पक—सिर मे रहता है, आँखों को तृप्ति देता है।

(५) श्लेषक—संधियो मे रहता है—जोडो को चिकना रखता है।

कफ के गुण

कफ सफ़ेद, ठडा, भारी, चिकना, लसदार, देर से काम करनेवाला और स्वाद मे मीठा

तथा खारी (दूषित होने पर) होता है। कुपित होने पर भारीपन, खाज, स्रोतों का अवरोध, सूजन, मंदाग्नि, कुपच, अति निद्रा आदि रोगों को उत्पन्न करता है।

दिन में सोने, अधिक भोजन, अजीर्ण में भोजन, अधिक मीठा खाने, खट्टा खारी खाने, उर्द, गेहूं, दही, खिचड़ी, सिंघाड़ा, केला आदि अधिक खाने से कुपित होता है।

तीक्ष्ण वमन और विरेचन, व्यायाम, रूखा, गर्म खाना, इनसे शमन होता है।

प्रकृति

गर्भ धारण के समय, माता-पिता का रज-वीर्य, खान-पान ऋतु आदि किसी भी कारण से जिस दोष के प्रभाव में होता है—बच्चे की वही प्रकृति बन जाती है। तीनों दोष समान होने पर सम और दो दोष मिलने पर दोनों दोषों के लक्षणवाली प्रकृति होती है।

वात-प्रकृति के मनुष्य

जिसका शरीर रूखा, रोम-कूप फटे हुए, दुबले-पतले, कभी-कभी शरीर का कोई अंग टूटा-फूटा या एकाध अंग हीन, चपल, गंभीरता-रहित स्वर, अधिक जागनेवाला, तेज चलने और बोलनेवाला, जल्दी-जल्दी काम करनेवाला, बहुत बकवादी, शरीर पर उभरी हुई बहुत-सी नसें हों, जिसे जल्दी क्रोध आवे, जो जल्दी डर जाय या विरक्त हो जाय या प्रसन्न हो जाय, ठंड न सह सके, शरीर ठस हो, बाल कड़े हों, मूछों के बाल टेढ़े और असुंदर हों, दांत, नाखून और अंग सख्त हों, चलती बार जोड़ चट्-चट् चटखें। और जो बारंबार पलक मारे। वह वात-प्रकृति का पुरुष है। यह पुरुष बहुधा भाग्यहीन, अल्पायु और अविश्वासी होगा। चालाक और खटपट में पड़नेवाला होगा।

पित्त-प्रकृति के मनुष्य

जो गर्मी सहन न कर सके, जिसका गोरा और नाजुक शरीर हो, भूरे बाल और आँखें हो, रोम बहुत कम हों। अग्नि और पराक्रम तेज हो। अधिक भोजन का अभ्यासी हो, कष्ट न सहन कर सकता हो, जिसमें द्वेष-भाव बहुत हो, अल्प-वीर्य, अल्प-रति और अल्प संतानवाला हो, जिसके मुँह, आँख, मस्तक और अन्य अंगों में भी गंध रहती हो। सर्वांग में तिल, मस्सा, खुजली आदि होती हो। बाल जल्द पक जायँ या उड़ जायँ। वह पित्त-प्रकृति का मनुष्य है। यह पुरुष बहुधा मध्यायु, मध्यबल, क्रोधी और दुःखी रहेगा।

कफ-प्रकृति के मनुष्य

जिसकी प्रकृति शांत हो, अंग चिकने और सुडौल, रंग गोरा, आँखें बड़ी-बड़ी, शरीर सुकुमार, अंग पुष्ट, धीरे-धीरे काम करनेवाला, प्रसन्न-मुख, प्रसन्न-इंद्रिय, प्रसन्न-दृष्टि, मधुरभाषी, बलवान्, तेजस्वी, दीर्घजीवी और अल्प भोजनवाला हो। जिसकी चाल हाथी के समान, नींद अधिक तथा जो वैर को देर तक छिपाकर रखनेवाला हो, वह कफ-प्रकृति का मनुष्य है। इसके संतान अधिक होती है। यह विश्वासी, धैर्यवान् और श्रेष्ठ होता है।

प्रकरण ३

त्वचा

शरीर के ऊपरी हिस्से को त्वचा कहते है। त्वचा के द्वारा शरीर के भीतरी हिस्से को रक्षा होती है। बाहर से मास के ऊपर तक क्रमश सात त्वचा होती है। बाहर की पहली त्वचा एक धान्य के १८ भाग के एक भाग के बराबर पतली है। इसी मे शरीर का रंग होता है, और सफ़ेद कोढ आदि रोग इसी मे होते है। जलने से इसी मे फफोला पडता है।

दूसरी त्वचा धान्य के १६वे भाग के समान है। लहसनिया-तिल, झाई आदि रोग इसी मे होते है।

तीसरी त्वचा धान्य के १२वे भाग के समान है। मस्से, चर्मदल आदि रोग इसी में होते है।

चौथी त्वचा धान्य के ८वे भाग के बराबर है। कोढ आदि की बीमारी इसी मे होती है।

पाँचवी त्वचा धान्य के ५वे भाग के बराबर है। कोढ और विसर्प रोग इसी मे होता है।

छठी त्वचा धान्य के समान मोटी है, गाँठ, रसोली, अर्बुद, फीलपा और कठमाल रोग इसी मे पैदा होता है।

सातवी त्वचा दो धान्य की बराबर मोटी है। भगंदर, विद्रधि और बवासीर आदि रोग इसी मे होते है।

त्वचा का यह परिमाण साधारण है, पर ललाट, उँगली आदि स्थानो मे त्वचा कम पतली है।

त्वचा के भीतरी परत मे असख्य छोटी-छोटी पसीने की गाँठें होती है। इनमे से प्रत्येक मे एक नल होता है, जो त्वचा के बाहर तक चला गया है। यदि हाथ गर्म हैं, तो उंगली के छोर मे छूने से पसीने की छोटी-छोटी बूँद नली के मुख पर मालूम होगी। यह पसीना केवल पानी ही नही है, इसमें नमक और अन्य सारहीन वस्तुएँ भी मिली है। ये सारहीन वस्तुएँ मूत्र के समान है। हथेली के एक वर्गइंच स्थान मे कोई २८ सौ ऐसे छेद है। संपूर्ण शरीर मे २४ लाख के लगभग छेद है।

यदि त्वचा द्वारा या मूत्र द्वारा ये सारहीन द्रव्य बाहर न निकाले जायँ, तो शरीर मे तत्काल ज़हर चढ़ने लगे। त्वचा बहुत-सा विष पसीने के द्वारा बाहर निकाल देती है। यदि त्वचा पर कोई ऐसा रोग़न मल दिया जाय, जिससे रोम-कूप बंद हो जायँ, और पसीना न निकल सके, तो अवश्य कुछ ही घंटो मे मृत्यु हो जायगी। यह न समझना चाहिए कि जब बहुत-सा पसीना शरीर पर निकलता दीखे, तभी यह समझें कि अब पसीना निकला—पसीना तो सदैव ही धीरे-धीरे निकलता और हवा मे सूखता रहता है। गर्मी और व्यायाम से अधिक निकलता है। पसीना निकलने से ही रक्त अत्यंत साफ़ रहता है।

अच्छी तरह पसीना निकलने पर त्वचा के ऊपर एक पतली नमक की तह जम जाती है। यह पसीने के साथ बाहर आई है। इसमें और भी विषैले तत्त्व मिले हैं। इसे शरीर पर से दूर करने के लिये प्रतिदिन स्नान करना आवश्यक है। स्नान का सूक्ष्म विवेचन हम आगे करेंगे।

स्पर्शेंद्रिय

स्पर्शेंद्रिय त्वचा में है। त्वचा में असंख्य ज्ञान तंतु फैले हुए हैं। और किसी भी शरीर के अवयव का संबंध जब किसी वस्तु से होता है, तभी स्पर्श-ज्ञान होता है, जिसका तारतम्य मस्तिष्क से होता है, जो उन तमाम ज्ञान-तंतुओं का मूल केंद्र है।
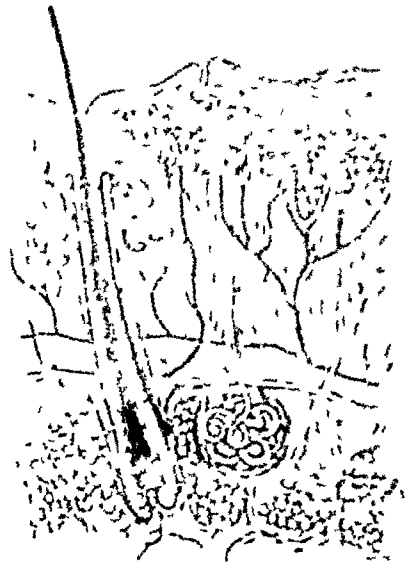
केश और त्वचा

त्वचा की भीतरी बनावट

केश और रोम त्वचा पर ही उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक बाल की जड़ पर एक छोटी-सी गाँठ होती है, जिसमें से तेल निकलता रहता है। यह तेल त्वचा के ऊपर निकलता है और उसे चिकना और निरंतर कोमल रखता है। तथा बालों को भी चिकना रखता है। सिर के बालों को चिकना और सुंदर रखने का उत्तम उपाय यह है कि प्रतिदिन उनको कंघी से या ब्रुश से जोर-जोर से झाड़ा जाय, और समय-समय पर गर्म पानी और साबुन से सिर धोते रहें। साबुन कदापि घटिया न लेना चाहिए।

गंजापन

त्वचा के तेल की गाँठों में एक प्रकार का कीड़ा हो जाता है, जो बाल की जड़ को खा जाता है, जिससे बाल उड़ जाते हैं। यह रोग पराई कंघी और ब्रुश काम में लाने से बहुधा फैलता है। इसलिये प्रत्येक आदमी को अपनी कंघी, ब्रुश पृथक्-पृथक् रखना चाहिए। सदैव टोपी या भारी चीज पहने रहने से भी गंज हो जाता है। स्त्रियाँ बहुतायत से तेल बालों में लगाती हैं, इससे भी गंज हो जाता है, या बाल झड़ जाते हैं। प्रतिदिन अच्छी तरह कंघा-ब्रुश करने से बाल अच्छे रहते हैं।

प्रकरण ४

हड्डियाँ

अस्थि-कंकाल
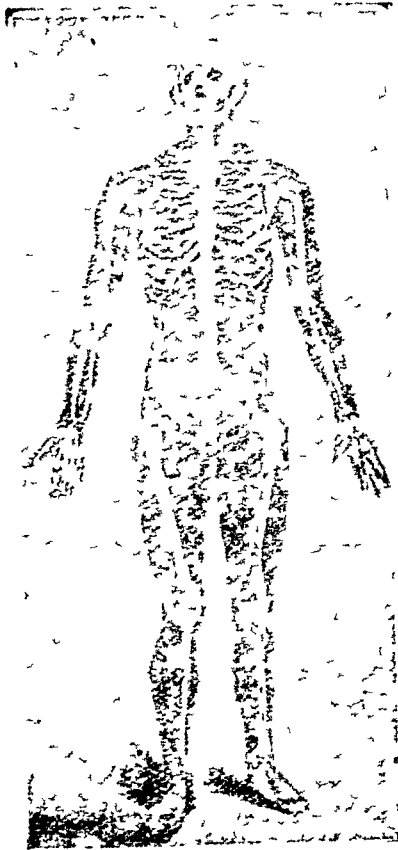
यदि मनुष्य के शरीर से मांस, त्वचा, नसें आदि सब वस्तुएँ हटा दी जायँ, तो हड्डियों का कंकाल बच रहेगा। इस कंकाल को देखने से परमेश्वर की कारीगरी को धन्य कहना पडता है। सारे अंग-प्रत्यंग कैसी सुघराई से बनाए गए हैं कि वाह! खोपडी एक पोली, मजबूत गेंद-सी बनाई है, जहाँ मस्तिष्क हिफाज़त से रक्खा जाय। इसी प्रकार छाती एक खोखले संदूक की भाँति है, जिसमें बहुत-से नाजुक अवयव ढके रहते हैं। हाथ-पाँव की हड्डियाँ लंबी और सुगमता से इधर-उधर घूमनेवाली होती हैं।

यदि यह कंकाल न होता, तो मनुष्य खडा नहीं रह सकता था। उसे कीडे की भाँति रेंगकर चलना पडता। कुल शरीर में ३०० के लगभग हड्डियाँ है। यह सुश्रुत का मत है। चरक और वाग्भट कुछ कोमल हड्डियों को गिनकर ३६० मानते है। पाश्चात्य विद्वान् मुख्य-मुख्य हड्डियों को गिनकर कुल २०६ मानते है। इन हड्डियों का हिसाब इस प्रकार है—

हड्डियों की संख्या की सारिणी

अंग	चरक और वाग्भट का मत	सुश्रुत का मत	पाश्चात्य विद्वानों का मत
हाथ-पैरों में—	११०	१०६	१२०
धड में—	१३८	१२८	५०
सिर और ग्रीवा में-	११२	६६	३६
कुल—	३६०	३००	२०६

हड्डियों की जाति

हड्डियों की जाति ५ प्रकार की है—

(१) तरुण—नाक, कान, आँख, लिंग आदि में।

(२) कपाल—जानु-चूतड़, कंधा, गाल के ऊपर, तालु, कनपटी में।

(३) वलय—हाथ-पैर, पसली, पीठ, छाती आदि में।

(४) नलक—वही जिनमें छेद है।

(५) रुचक—दाँतों में।

हड्डियों के जोड़

हड्डियों के २१० जोड़ हैं। इन जगहों पर एक पतला कफ भरा रहता है, जिससे वह स्थान चिकना और रपटनेवाला बना रहता है।
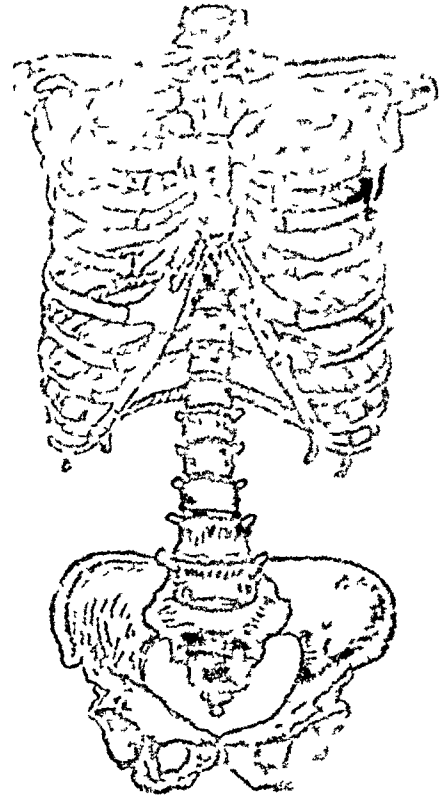
वक्षगह्वर और वस्ति

प्रकरण ५

मांस-पेशी

मांस की बोटियों को मांस-पेशी कहते हैं। शरीर मे ये ५०० है। ध्यान से देखने पर यह लाल रग का तंतुमय पदार्थ-सा है। शरीर पर इसी का लेप है। इसी से शरीर पुष्ट रहता है। इनमें कुछ चलनेवाली है और कुछ अचल।

जब हम घूमते-फिरते है, तभी पेशी अपना काम करती हैं। जब हम सीधे खडे होते हैं, तब बहुत-सी स्नायुओं को निरंतर संकुचित होना पडता है। बहुत-से लोग खडे होने के समय मास-पेशियो को ढीला छोड देते हैं। इसका परिणाम यह निकलता है कि उनका कूबड निकल आता है। ये लोग शीघ्र कुरूप बन जाते है। छाती सिकुड जाती है, और लबी साँस लेना कठिन हो जाता है।

हाथ की मांस-पेशियों की गठन

इसलिये जब कुर्सी पर बैठो या मेज पर काम करो या खडे हो, तो शरीर को सीधा रक्खो। और अपनी पूरी लबाई मे खडे रहो। कसरत करने से मास-पेशियो को कैसी पुष्टि मिलती है, यह इस चित्र की मांस-पेशी की गठन से अनुमान कीजिए।

पृष्ठ-वंश कशेरुका
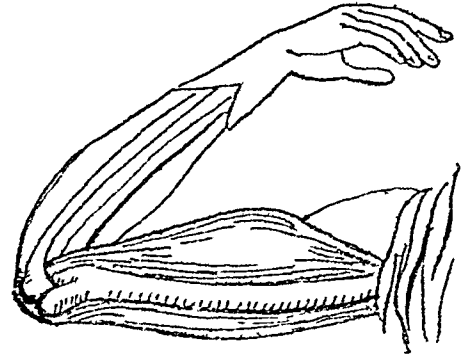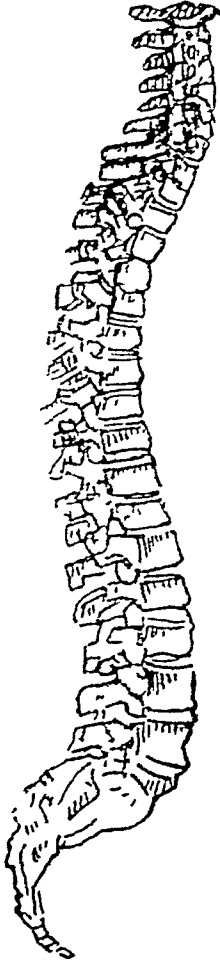
प्रकरण ६

स्नायु

पेशियों के द्वारा शरीर का सचालन होता है। परतु वास्तव मे पेशियो को यह शक्ति स्नायु के द्वारा मिलती हैं। अर्थात स्नायु के सहारे से ही सब पेशी काम करती हैं। चलना-फिरना, दौडना सब स्नायु द्वारा होता है। भूख-प्यास, काम-क्रोध सब इसी से होता हैं। देखना, सुनना, सूँघना, छूना सब इसी से होता है। शरीर के सभी यन्त्र इन्हीं से प्रेरित होकर कार्य करते है। सोचना-विचारना भी इन्हीं से होता है।

इनका मुख्य सबध दो भागो से है। एक मस्तिष्क और दूसरा पीठ का बॉस, जिसके ऊपरी भाग को सुषुम्नाकाड कहते है। मस्तिष्क खोपडी मे रहता है, जिसका ज़िक्र आगे करेंगे। पीठ का बॉस एक मोटी बटी हुई रस्सी के समान है, जो कनिष्ठिका उँगली के बराबर मोटा है। यह बॉस 'भेजा' के नीचे के हिस्से से जुडा हुआ है, और खोपडी मे एक बडे छेद के द्वारा बाहर निकला है। यह बॉस बाहरी चोट से खास तौर पर सुरक्षित रहे, इसका विचार किया गया है। इसके ऊपर २४ हड्डियो के छल्ले, जिन्हें कशेरुका कहते है, नीचे तक चले गए है। इस पृष्ठ-वंश से असख्य महीन रेशम के समान तागे सारे शरीर मे फैल गए है। यह एक घना जाल बन गया है, और वह बारीक रेशमी मलमल से भी घना है, यहाँ तक कि यदि आप एक सुई कही भी ज़रा चुभो दे, तो किसी-न-किसी ततु मे ज़रूर छिद जायगी।

चेतना-गाँठ

हम यह बता चुके है कि ये असख्य अति महीन धागो से बने है। प्रत्येक धागो के छोर पर एक गाँठ-सी है, यह चेतना-गाँठ या अणु कहाती है। ये सब छोटे-छोटे चेतना अणु मस्तिष्क और पीठ के बॉस मे हैं। ये चेतना अणु मस्तिष्क से सबध रखते है, जिन पर ज्ञान की धारा दौडती है। इसी से शरीर के सब भागो की गति का प्रबध होता है। ठीक जैसे दूर देशस्थ बिजली के पखे और बत्तियो को तार द्वारा एक केंद्र से शक्ति मिलती है।

शिरा और धमनी

जिन नालियों के द्वारा रक्त हृदय से सारे शरीर मे सचालित होता है, उसे 'धमनी' कहते है।

शरीर की सब धमनियाँ दो प्रधान धमनी की शाखा-प्रशाखाएँ है। इनमे एक का नाम आदि-कडरा है। यह हृदय के बाएँ उदर से उत्पन्न हुई है, इसके उत्पत्ति-स्थान के पास से धमनी की ३ शाखाएँ फैलकर दो मस्तिष्क, ग्रीवा और ऊपर के अगो मे चली गई है। इसके बाद आदि-

कंडरा छाती और पेट में चली गई है। पेट से उसकी दो शाखाएँ दोनों जाँघों तक फैल गई है। इसी से जाँघों का पोषण होता है।

दूसरी सबसे बड़ी धमनी का नाम फुप्फुस धमनी है। यह हृदय के दक्षिण उदर से निकली है। यह प्राय दो इंच लंबी है। इसी से दूषित रक्त हृदय से फुप्फुस में जाता है। आगे चलकर यह दो भागों में विभक्त हो गई है।

धमनी सर्वदा शुद्ध रक्त से परिपूर्ण रहती है और इसी से सारे शरीर का पोषण होता है। इसका मूल पृथक् होने पर भी परस्पर मिला हुआ है। ये धमनियाँ शरीर के गंभीर प्रदेश में सुरक्षित रहती है और एकाएक चोट का उन पर प्रभाव नहीं पड़ता। सबकी गति सीधी और परस्पर मिली हुई है।

धमनी शिराओं से अशुद्ध रक्त लेती है। शिरा अशुद्ध रक्त शरीर से खींचकर ले आती हैं। ये सब शिराएँ कैशिक नालों से उत्पन्न हुई हैं। और उसी के द्वारा धमनी से उसका संबंध है।

कंडरा

आदि कंडरा ही धमनी की जड़ है। इसका कुछ अंश छाती-गह्वर में और कुछ उदर-गह्वर में है। इन्हीं के सिरे नाड़ूत कहाते है।

प्रकरण ७

मर्मस्थल

शरीर में १०७ मर्मस्थल हैं। शिरा, स्नायु, हड्डी, मांस-पेशी आदि जहाँ मिलती हैं, वह स्थान मर्म कहाता है। यहाँ प्राण विशेष रूप से ठहरते हैं। इनमें से कुछ मर्म ऐसे हैं, जहाँ चोट लगने से मृत्यु होती है, और कुछ ऐसे हैं, जहाँ चोट लगने से हमेशा वह स्थान दर्द करता रहता है। कुछ मर्मस्थलों का हम यहाँ पर वर्णन करेंगे—

(१) सिर पर बाल जहाँ चक्कर खाते हैं, उस स्थान से जरा पीछे हटकर गुद्दी है। वह चार अंगुल का एक शिरा-मर्म है। इस स्थान पर आँख, कान, नाक और जिह्वा के ज्ञान-तंतु एकत्रित होते हैं। यहाँ चोट लगने से आदमी तत्काल मर जाता है।

(२) मस्तिष्क के बीचोबीच में जहाँ कपाल की चारों हड्डियाँ मिलती हैं, एक संधि-मर्म आध अंगुल का है, इसे ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं। यहाँ चोट लगने पर भी तत्काल मृत्यु होती है।

(३) कान और ललाट के बीच में डेढ़ अंगुल का एक हड्डी का मर्म है। यह कनपटी में है। यहाँ चोट लगने पर भी तत्काल मृत्यु होती है।

(४) गुह्य द्वार के भीतर गुह्य नाडी में चार अंगुल का एक मर्म है। वह भी तत्काल मारक है। यह मांस-मर्म है।

(५) दोनों स्तनों के बीच, बाईं ओर, सातवीं पसली के नीचे हृदय एक नाज़ुक मर्म है। उसमें चार अंगुल का शिरा-मर्म है, जहाँ चोट लगने से तत्काल मृत्यु होती है।

(६) नाभि, पीठ, कमर, गुह्य, वंक्षण और लिंग के बीच में बस्ति-स्थान है। उसमें एक शिरा-मर्म है। यहाँ चोट लगने से भी तत्काल मृत्यु होती है।

(७) दोनों स्तनों के दो अंगुल नीचे और ऊपर मर्मस्थल हैं। और दोनों कंधों के सिरों के नीचे पसवाड़े के आधा अंगुल ऊपर दो मर्म हैं। यहाँ चोट लगने से कुछ दिन में मृत्यु होती है।

(८) मस्तिष्क में जो मर्म बताए हैं, यदि उनमें कम चोट लगे या प्रांत भाग में लगे, तो मृत्यु न होकर उन्माद, भय, भ्रम आदि रोग हो जाते हैं।

(९) बीच की उँगली के ठीक पीछे तलवे में एक मर्म है, वहाँ चोट लगने से अत्यंत दर्द बना रहता है।

(१०) अँगूठा और तर्जनी उँगली के बीच में एक शिरा-मर्म है। यहाँ चोट लगने से आक्षेप रोग होकर कालांतर में मृत्यु हो जाती है।

(११) प्रकोष्ठ और जंघा के बीच दो अंगुल का मर्म है। यहाँ चोट लगने से रक्त-क्षय होकर तत्काल मृत्यु हो जाती है।

(१२) मेरु-दंड के नीचे चूतड के संधि-स्थल के दोनो ओर आधे अंगुल के बराबर दो अस्थि-मर्म हैं। इनमें चोट लगने से रक्त-क्षय होकर रोगी को पाडु-रोग हो जाता है।

(१३) चूतड के दोनो तरफ आधे अंगुल बराबर दो अस्थि-मर्म है, इनमें चोट लगने से कमर से पैर के तलुवे तक अर्धा ग मे शोथ और दुर्बलता हो जाती है।

(१४) कधे के नीचे बगल के पास आधे अंगुल का एक शिरा-मर्म है। इनमें चोट लगने से पक्षाघात-रोग हो जाता है।

(१५) दोनो घुटनों से तीन अंगुल ऊपर आधे अंगुल का एक स्नायु-मर्म है। इसमें चोट लगने से सूजन होती है तथा पैर मारे जाते है।

(१६) जंघा और ऊरु की सधि में दो अंगुल का एक सधि-मर्म है। इसमे चोट लगने से मनुष्य लूला हो जाता है।

(१७) दोनो जघो के बीच और कोहनी से बगल तक बीचोबीच एक अंगुल का शिरा-मर्म है। इसमे चोट लगने से दोनो हाथ-पैर सूख जाते हैं।

(१८) वंक्षण और अडकोष के बीचवाले स्थान के दोनो तरफ एक अगुल का एक-एक स्नायु-मर्म है। इसमें चोट लगने से मनुष्य नपुंसक हो जाता है।

(१९) दोनो कोहनियों में दो अगुल के दो सधि-मर्म हैं। इनमें चोट लगने से हाथ सिकुड जाता है।

(२०) छाती और बगल के बीच मे एक अंगुल का स्नायु-मर्म है। इसमें चोट लगने से पक्षाघात-रोग पैदा होता है।

(२१) दोनो कानों के पीछे बीच की तरफ आधे अंगुल का एक स्नायु-मर्म है, उसमें चोट लगने से मनुष्य वहरा हो जाता है।

(२२) मस्तक और गर्दन की संधि के दोनों तरफ आधे अंगुल के दो सधि-मर्म हैं। इनमें चोट लगने से सिर कॉपने लगता है।

(२३) दोनो स्तनो मे आधे अंगुल के दो स्नायु-मर्म हैं। इनमें चोट लगने से दोनो हाथों की क्रिया लोप हो जाती है।

(२४) पीठ के ऊपर जहाँ गर्दन और मेरु-दंड की संधि है, दोनो तरफ आधे-आधे अंगुल का एक-एक अस्थि-मर्म है। इसमे चोट लगने से दोनो हाथ शून्य हो जाते एवं सूख जाते है।

(२५) दोनो ऑखो के सिरे पर नीचे की ओर आधे अंगुल के दो शिरा-मर्म है। इनमे चोट लगने से मनुष्य अधा हो जाता है।

(२६) गले में दोनो ओर चार धमनी है। इनमे दो को नीला और दो को मन्या कहते है। इन चारो धमनियों में चार शिरा-मर्म हैं। प्रत्येक का परिमाण दो-दो अंगुल है। इनमे चोट

लगने से मनुष्य गूँगा और विकृत-स्वरवाला हो जाता है। तथा जिह्वा की स्वाद ग्रहण करने की शक्ति का लोप हो जाता है।

(२७) नाक के छेद के भीतर आधे अंगुल के दो शिरा-मर्म हैं। इनमें चोट लगने से घ्राण शक्ति नष्ट हो जाती है।

(२८) भौं के ऊपर और नीचे आधे अंगुल के दो संधि-मर्म हैं। इनमें चोट लगने से मनुष्य अंधा हो जाता है।

इसी प्रकार और भी अनेक मर्मस्थल हैं। बुद्धिमान् पुरुष को इनकी रक्षा का ध्यान रखना चाहिए।

शरीर के मुख्य संस्थान

१—अस्थि-संस्थान—हड्डियाँ।

२—संधि-संस्थान—हड्डियों के जोड़।

३—मांस-संस्थान—मांस की पेशियाँ।

४—रक्त और रक्त-वाहक संस्थान—रक्त और हृदय तथा रक्त-वाहक नालियाँ।

५—श्वासोच्छ्वास-संस्थान—नाक, टेटुआ, फेफड़े आदि।

६—पोषण-संस्थान—आमाशय, अन्त्र, यकृत।

७—मूत्र-वाहक संस्थान—वृक्क, मूत्राशय आदि।

८—वात-नाड़ी-संस्थान—मस्तिष्क, सुषुम्ना और नाड़ी-वात, सूत्र आदि।

९—ज्ञानेन्द्रिय—आँख, नाक, कान, जिह्वा और त्वचा।

१०—उत्पादन-संस्थान—अंड, शिश्न, योनि, गर्भाशय आदि।

अध्याय तीसरा

शरीर-यंत्र

प्रकरण १

शरीर के तीन मुख्य विभाग

शरीर के मुख्य तीन विभाग हैं—(१) सिर (२) धड (३) हाथ और पैर।

सिर और उसके यंत्र

सिर के भीतर मजबूत खोपडी मे इतने यंत्र सुरक्षित है—मस्तिष्क, अनुमस्तिष्क और सुषुम्ना-शीर्षक। ये तीनो निखिल संज्ञा और चेष्टा के मूल है। पृष्ठ-वंश के अतर्गत सुषुम्ना-काड इसी मे जुडा है। यही समस्त चैतन्य ततु का केंद्र है। आँख, नाक, कान, मुख आदि ज्ञानेंद्रिय भी इसी मे हैं। इन सबका विस्तृत वर्णन आगे देखिएगा।

धड़ और उसके यंत्र

धड मे दो प्रधान गढ़े है—एक उरोगुहा दूसरा उदर-गुहा।

उरोगुहा मे दोनो फेफडे हैं। इनमें वाम फेफडे मे हृदय है। दोनो फेफडे श्वास-नाली के दो भागों मे जुडे हैं, ये श्वास-यंत्र हैं। हृदय कमल केसमान है। रक्त इकट्ठा करना और फिर फेकना इसका कार्य है। यही जीवन का उत्तम आधार है तथा शिरा और धमनी का मूल है।

उरोगुहा और उदर-गुहा के भीतरी अंग

उदर-गुहा में आमाशय, पक्वाशय, अंत्र-मंडल या मलाशय, क्षुद्रांत्र, बृहदंत्र, यकृत, प्लीहा,
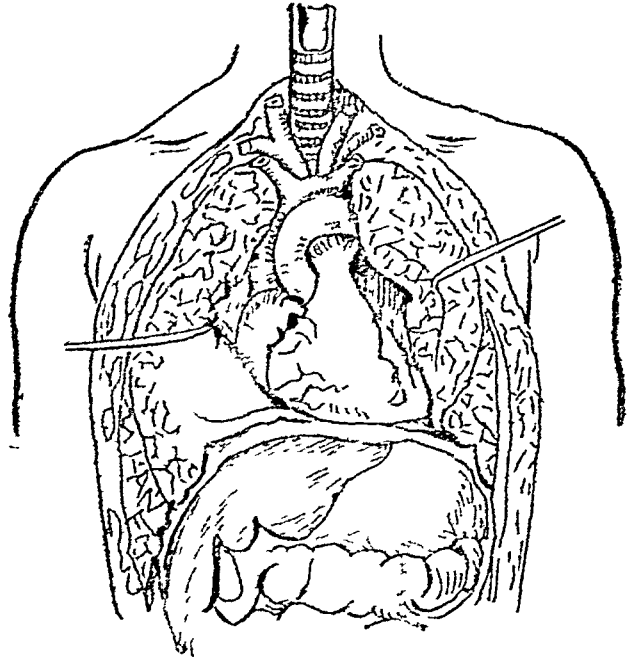
अग्न्याशय वा क्लोम और मूत्रोत्पादक महाशिवी बीजाकार दोनो गुर्दे है। ये कमर के पार्श्व से है।

नीचे मूत्र-बस्ति है, जो नाभि के नीचे है। यही गर्भाशय भी है। इसके दोनो ओर बीज-कोश है, जो नाली द्वारा गर्भाशय से संलग्न है।

हाथ-पैरो के अग प्रत्यक्ष है।

प्रकरण २

फुफ्फुस या फेफड़ा और श्वास-प्रश्वास-क्रिया

फेफडे दो हैं, एक दाहना और एक बायाँ। दोनो फुफ्फुस स्पंज की तरह छोटे-छोटे छेदोंवाले होते है। और ये पसलियों के नीचे तमाम छाती को घेरे हुए हैं। ये फेफडे एक कफ की पतली झिल्ली से लिपटे हुए हैं। देखने में ये फेफडे शृड के आकार के प्रतीत होते है।

वजन और आकृति

बाएँ फुफ्फुस की अपेक्षा दाहने की लंबाई कम है। पर यह चौडाई में अधिक तथा वज़न में भारी है। दोनो फेफडो का वजन साधारणत ढाई पौंड (सवासेर) से कुछ अधिक है। स्त्रियो का फेफडा पुरुषो की अपेक्षा वजन मे चौथाई कम होता है। गर्भस्थ शिशु का फेफडा गहरा लाल, नवजात का गुलाबी और प्रौढ का कुछ नीलापन लिए होता है।

श्वास-नाली या टेटुआ

मुँह के भीतर पीछे की तरफ दो छेद हैं। उनमे से एक में होकर खाया हुआ अन्न पाकस्थली मे जाता है, उसे अन्नवहा नाली कहते है। और दूसरी से वायु फेफडो मे जाता है। इसे श्वास-नाली कहते है।

टेंटुआ

फुफ्फुस या फेफडा

इस श्वास-नाली के मुँह पर एक ढकना है। भोजन के समय वह ढकना श्वास-नाली का मुँह बंद कर रखता है। इसलिये खाया हुआ द्रव्य उसमे न जाकर अन्नवहा नाली में जाता है। नाक का छेद भी इसके पास तक फैला हुआ है।

लंबाई और गढ़न

श्वास-नाली का अग्र भाग और सब स्थानो की अपेक्षा बडा है। इसमे पाँच नरम हड्डियो के छल्ले हैं। यही से कंठ-स्वर उत्पन्न होता है। यही स्वर-यन्त्र है। मुख के पीछे से आरंभ
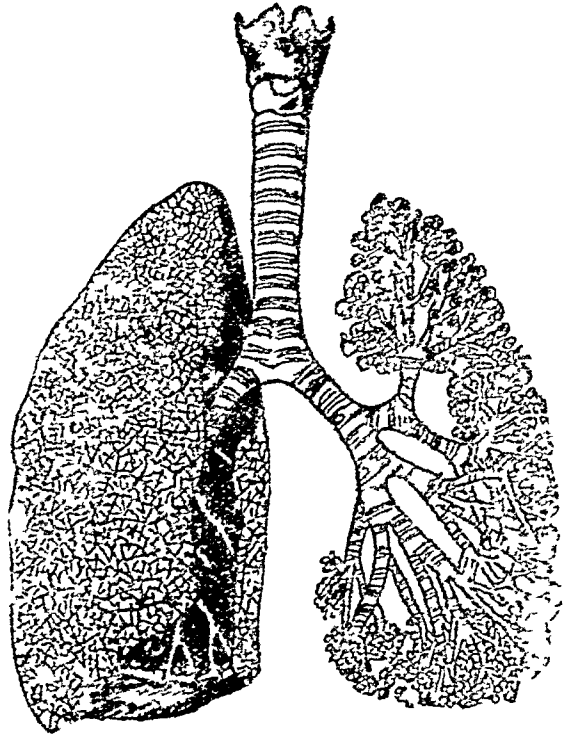
होकर गर्दन के भीतर से होती हुई श्वास-नाली छाती में घुस गई है। गले के सामने हाथ लगाने से श्वास-नाली साफ़ मालूम होती है। छाती मे यह दोनो फेफड़ों मे दो भागो मे विभक्त होकर घुस गई है। वहॉ से उसमें से असख्य शाखाएँ तमाम फेफड़ो मे फैल गई है। ज्यो-ज्यों यह पतली होती गई है, नरम हड्डी के स्थान पर पेशी ने काम दिया है। इसके ऊपरी अश की परिधि प्राय १ इच और नीचे जाकर १ इंच का चालीसवॉ भाग रह गई है।

श्वास-क्रिया

जवान आदमी १ मिनट में १४ से १८ दफ़े श्वास लेता है। प्रत्येक श्वास मे वह २० घन इच वायु ग्रहण करता है। इस प्रकार तमाम दिन-रात मे अर्थात् २४ घटे मे वह ५,८६,००० घन इच वायु फेफड़ा मे पहुँचाता और निकालता है। प्रत्येक घटे मे १,९८४ घन इच वायु ग्रहण और १,२८६ इच घन वायु हदम्ल अगार वायु का परित्याग करता है। परिश्रम और आहार के बाद श्वास कुछ तेज हो जाता है।

श्वास की विशेषता

मनुष्य कई हफ्तो तक भोजन और जल के विना रह सकता है। परतु श्वास के बद हो जाने पर कुछ मिनट मे ही मर जाता है। इससे यह परिणाम निकलता है कि लगातार ताज़ी हवा का मिलते रहना परम आवश्यक है। आग भी विना वायु के नही जी सकती। यदि आप एक मोमबत्ती जलाकर इस प्रकार ढक दें कि हवा न जाय, तो वह अवश्य बुझ जायगी। आग जलाने के लिये जैसे वायु आवश्यक है, वैसे ही जीवन के लिये भी वह आवश्यक है। हम श्वास द्वारा स्वच्छ वायु अपने फेफड़ों में खींचते हैं। इसमे से फेफड़े प्राण-वायु (आक्सिजन) ग्रहण कर लेते है। प्राण-वायु अदृश्य है। वह उस हवा मे से जो श्वास द्वारा फेफड़ो मे पहुँचा दी गई हो, पृथक् होकर रक्त को शुद्ध करती है। इससे शरीर मे गर्मी, उत्साह और जीवन उत्पन्न होता है। जो वायु शरीर से प्रश्वास के द्वारा निकलती है, उसमे अनेक दूषित तत्त्व मिले रहते है, और वह फिर श्वास लेने के योग्य नहीं रहती।

जो वायु प्रश्वास के द्वारा बाहर निकलती है, उसमे एक ख़ास विष मिला रहता है, जो दूषित रक्त से उसमे मिल जाता है। यदि आप एक बद या छोटे-से कमरे मे बहुत-से मनुष्यो की भीड़ मे बैठेगे, तो आपको इस वायु की दुर्गंधि तत्काल मालूम हो जायगी। बहुतो को सिर-दर्द हो जायगा। सभव है, कोई-कोई बेहोश भी हो जायँ।

यदि आप ऐसी छोटी कोठरियो मे सदा रहते हैं, जहाँ सील है, वायु और प्रकाश का ठीक-ठीक आवागमन नहीं है, तो उस दूषित वायु मे श्वास लेने के कारण आपको तपेदिक और निमोनिया रोग तथा सर्दी-जुकाम के होने का भय है।

घर के प्रत्येक कमरे मे ऊँचाई पर खिड़कियाँ और रोशनदान होने चाहिए, जिनसे स्वच्छ वायु का आरपार प्रवाह वहाँ बना रहे। खिड़कियो के सामने कपड़े और चिक डाल देने से चमक और धूल से रक्षा होगी, जिससे नेत्रों को बहुत लाभ होगा।

मनुष्य की भाँति प्रत्येक चराचर जंतु और वनस्पतियाँ भी श्वास लेती है। पौधा अपनी पत्तियों द्वारा श्वास लेता है। मेढक और कई जंतु अपनी त्वचा के रोम-कूपों द्वारा श्वास लेते हैं। मछली गलफड़ों के द्वारा श्वास लेती हैं। प्राणी चाहे सोवे, चाहे जागे, वह निरंतर श्वास लेता रहेगा। श्वास और हृदय की धड़कन ही चेतना का लक्षण है। यह ईश्वर की माया है कि वह बराबर चलता रहता है।

यदि हम यह कहें कि श्वास लेना एक स्वाभाविक गति है, तो यह पक्का उत्तर नहीं। चेतना-यंत्र किस भाँति हृदय और श्वास की गति को चलायमान रखता है? यह गति प्रारंभ ही किस भाँति हुई, और किसकी आज्ञा से कब तक चलती रहेगी? इन सब बातों पर विचार करने से हमें मानना पड़ेगा कि एक सर्वोपरि शक्ति है, जो मनुष्य के शरीर में जो कुछ है, उस सबसे भिन्न और सबसे श्रेष्ठ है, उसी का श्वास और जीवन पर असाध्य अधिकार है। वही शक्ति परमेश्वर के नाम से पूजित है।

श्वास और प्रश्वास द्वारा जो पदार्थ बाहर निकलते तथा भीतर जाते हैं, वे इस प्रकार हैं—

अवयव	श्वास-वायु—प्रति १०० भाग	प्रश्वास-वायु—प्रति १०० भाग
ओषजन	२०.८	१६.०
कर्बनद्विओषित	०.०४	४.०
नेत्रजन	७८.८७	७८.८७
जलीय वाष्प	यत्किंचित्	अधिक मात्रा
हानिकारक पदार्थ	कुछ नहीं	अनेक

जलीय वाष्प और हानिकारक पदार्थों के सिवा खास भेद ओषजन और कर्बनद्विओषित गैसों के परिमाण का है। जो ऊपर की सारिणी में स्पष्ट है। श्वास में ओषजन अधिक और कर्बनद्विओषित अणु-मात्र होती है। अर्थात् १००० भाग में सिर्फ चार भाग। पर प्रश्वास-वायु में इसके बिलकुल विपरीत १०० भाग में ४ भाग। हर हालत में जिस वायु में ओषजन अधिक हो, वही श्वास लेने के लिये उत्तम है। ओषजन गैस जीवन के लिये अति उत्तम है। कोई भी प्राणी उसके बिना जीवित नहीं रह सकता। कर्बनद्विओषित में ज़हरीला असर है। यदि किसी कोठरी में यही गैस भरी हो, तो उसमें कोई प्राणी जीवित न रह सकेगा।

फेफड़े इन दो भिन्न गुणवाली गैसों से रक्त को शुद्ध करते हैं। आप कल्पना कीजिए कि दो कोठरियाँ हैं एक 'अ' दूसरी 'ब'।
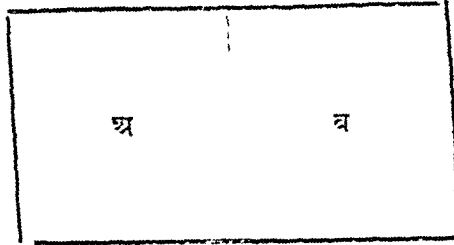
अ	ब

इनमें से एक में ओषजन गैस भरी है, दूसरी में कर्बनद्विओषित। दोनों कोठरियों के बीच एक ऐसा छेद है, जिसमें से वायु गुज़र सकती है। ऐसी दशा में आप देखेंगे कि दोनों कोठरियों की वायु कुछ मिल गई है। अर्थात न एक में स्वच्छ ओषजन है, न दूसरी में स्वच्छ कर्बनद्विओषित। दोनों गैसों का यह स्वभाव है कि वे इधर-उधर फैलना चाहती हैं। इस प्रकार वे 'क' से 'ख' में और 'ख' से 'क' में चली गई हैं। इन गैसों में एक गुण यह भी है कि जहाँ वे कम मात्रा में हों, वहाँ वे स्वयं चली जाती हैं, यदि उन्हें बाधा न पहुँचाई जाय।

अब आप यह समझिए कि फेफड़ों में दो कोठरियाँ (वायु-कोष्ठ) हैं—एक में वायु भरी है, दूसरी में रक्त। दोनों के बीच एक परदा है। इस परदे में से गैसें आ-जा सकती हैं। रक्त जो केशिका में भर गया है उसमें ओषजन और कर्बनद्विओषित दोनों गैस हैं—उधर वायु-कोष्ठ में भी ... वायु है, उसमें भी दोनों गैस हैं। अंतर सिर्फ इतना है कि वायु-कोष्ठ में ओषजन अधिक है और रक्त में कर्बनद्विओषित। अब गैसों के स्वाभाविक गुणों के अनुसार ओषजन वायु-कोष्ठ में से रक्त में प्रवेश करती है, और कर्बनद्विओषित रक्त से निकलकर वायु-कोष्ठ में आ जाती है। इस प्रकार अदला-बदली हो जाती है। यह अदला-बदली सिर्फ ऊपर के बताए गुणों पर ही निर्भर नहीं है। कोष्ठों के सेलों में भी यह स्वाभाविक शक्ति है कि वे रक्त से कर्बनद्विओषित को खींचकर वायु में फेंक देती हैं और ओषजन को खींचकर रक्त में पहुँचा देती हैं। इन दोनों कारणों से रक्त में कर्बनद्विओषित बहुत कम हो जाता है और ओषजन अधिक हो जाता है। इसी को रक्त का शुद्धिकरण कहते हैं। अब आप विचार कर देख लें कि शुद्ध वायु में श्वास लेने की कितनी आवश्यकता है।

सीधे बैठना और खड़े होना

बैठने और खड़े होने के समय हमें सीधे रहना चाहिए, ताकि प्रत्येक बार जब हम श्वास लें, तो फेफड़ों को फैलने की काफी गुंजाइश मिल सके। इस रीति से शरीर को ताजा वायु का अधिकांश मिलता है। जब हम सीधे बैठते और खड़े होते हैं, तो न केवल सुंदर दीखते हैं, वरन् उससे स्वस्थ होने में हमें सहायता मिलती है। झुककर चलना या बैठना अंत में क्षय, कूबड़ और अन्य कई रोग पैदा कर देता है।

घर के भीतर काम करनेवाली स्त्रियों को और उन लोगों को, जिन्हें अधिकतर एक स्थान पर बैठकर ही अधिक काम करना पडता है, इस बात का अभ्यास खास तौर पर करना चाहिए कि दिन में कई बार सीधे खडे होकर लंबी श्वास लें, ताकि फेफडों में ताजी वायु भरे और विषाक्त वायु बाहर निकल जाय।

मुख से श्वास लेना

मुख से श्वास लेना अत्यंत बुरा है। श्वास लेने का यथार्थ अंग नाक और भोजन का मुख है। नाक के अंदर अनेक सूक्ष्म केश होते हैं, जिनसे छनकर वायु भीतर जाती है, और धूल तथा कीटाणु रह जाते हैं। इसके सिवा वह गीली और गर्म भी हो जाती है। जब मुँह द्वारा श्वास लेते हैं, तब वायु न गर्म और न नम्र ही होती है। और श्वास-नल में सूखी ही चली जाती है, इसी से अधिक कफ निकलता है। इसी कारण सर्दी और खाँसी आने लगती है। जब नाक से श्वास नहीं लेते, तो वह बंद हो जाती है। और उसमें गदूद निकल आते हैं, टेंटुए फूल जाते हैं। इसीलिये मुँह से श्वास लेना अति हानिकारक है, और ऐसा कदापि न करना चाहिए।

यदि कोई बालक मुँह से साँस लेता हो, तो उसे डॉक्टर के पास ले जाकर उसका गला और नाक दिखा दो। यदि कोई गदूद उत्पन्न हुए हों, तो उनको निकलवा डालो, नहीं तो ऐसा बालक कदापि स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट न होगा।

धूल और श्वास

वायु के साथ जो धूल-गर्द उडती है, और जो प्राय बहुतायत से नाक में जाती रहती है, निरी धूल ही नहीं है, उसमें अनगिनत रोगोत्पादक कीटाणु भी हैं। जब वायु के साथ यह धूल हमारे श्वास में प्रवेश करती है, तो वह फेफडों में जाकर वहीं रह जाती है। और इससे तपेदिक, निमोनिया, खाँसी, जुकाम आदि रोग हो जाते हैं। इससे बचने को घर के आस-पास सडकों पर छिडकाव करना चाहिए और सडकों पर न थूकना चाहिए। ज़ुकाम का रोगी और तपेदिक के रोगी का थूक असख्य रोग-कीटों से भरा होता है। ऐसे रोगियों को खास तौर पर असावधानी से नहीं थूकना चाहिए।

फ़र्श को झाडते समय पानी छिडक लेना उचित है, ताकि धूल उडे नहीं।

श्वास के लिये मुख्य बातें

(१) घर में पूर्ण रीति से वायु का संचार रहे।

(२) दिन में यथासंभव ताजा वायु में रहो।

(३) रात को सब कमरे की खिडकियाँ खोल दो, ताकि ताज़ा हवा आती रहे। रात की हवा से ठंड हो जायगी, इसका भय न करो। जैसी दिन की हवा है, वैसी ही रात्रि की भी है।

(४) मुँह ढककर अथवा किसी के साथ एक ही बिस्तरे में मत सोओ।

(५) जब भी श्वास लो पूरी हवा फेफड़ों में भर लो। श्वास लेने के समय सीधे खड़े रहो। कंधों को पीछे झुकाओ, छाती उभार लो और उसे गले से न लगने दो।

(६) धूल के स्थान से बचो।

(७) तंबाकू, हुक्का, बीड़ी, सिगरेट और शराब आदि न पिओ।

(८) कमर में पट्टी आदि कसकर न बाँधो।

(९) प्रतिदिन कुछ-न-कुछ प्राणायाम करो।

घर कैसे हों ?

ऐसे घरों में जो ऐसी नीची भूमि में बने हों कि जहाँ जब पानी गिरे, इकट्ठा हो जाय, तो उनमें मच्छर अवश्य पैदा हो जाते हैं तथा घर में रहनेवालों को मलेरिया-ज्वर आने लगता है। इसके सिवा पानी में जो कुछ पड़ता है, वह सड़ने लगता है, जिससे स्वास्थ्य को भारी धक्का पहुँचता है।

मुर्गी, सुअर, कुत्ते तथा ढोर घर में या घर के नीचे के खंड में न रखने चाहिए, उनका मैला घर को दुर्गंध-पूर्ण कर देता है। तथा इनके शरीर में पिस्सू आदि जंतु होते हैं, जो भयानक रोगों के कीटाणु साथ में रखते हैं।

फर्श इतना पक्का और साफ होना चाहिए कि चूहा, चुहिया आदि बिल न कर सकते हों।

पालतू जानवर

बहुत लोग जो कुत्तों को पालने के शौकीन होते हैं, वे कुत्तों को साथ खिलाते, साथ सुलाते और साथ ही रखते भी हैं। स्मरण रखना चाहिए कि एक तो हिंदुस्तानी लोग कुत्तों को ठीक-ठीक शुद्ध रख ही नहीं सकते, दूसरे कितना भी शुद्ध रखने पर कुत्ते में कीटाणु-संबंधी बहुत-से खतरे होते हैं। कुत्ता स्वाभाविक रीति पर एक गंदी आदत का जानवर है, उसके प्रेम और अन्य कई गुण होते हुए भी स्वास्थ्य के ख्याल से उसे घर से पृथक् रखना तथा भोजन के पात्रों और शयन के वस्त्रों से दूर रखना चाहिए।

तोता-मैना पक्षी आदि के पालनेवाले भी सफाई का ध्यान नहीं करते। फलत: ये बेचारे जानवर तो अनेक कीटाणु-संबंधी रोगों के कारण शीघ्र मर ही जाते हैं—इस पर वे अनेक रोगों की सृष्टि भी करते हैं। हमारी सम्मति में जिन सज्जनों को जानवरों के पालने का शौक है, वे चिड़ियाघरों में उनके पालने के नियमों को जाकर सीखें। इस ग्रंथ में भी हमने इस विषय में अन्यत्र थोड़ा-सा लिखा है।

प्रकरण ३

हृदय और रुधिराभिसरण

अनंत काल से कवियों ने हृदय की बडी-बडी महिमाएँ गाई हैं। इस हृदय ने न-जाने कब से करोडो प्राणियो के रक्त बहाए है। यह हृदय ही संसार की बडी-बडी भयानक और करुण घटनाओं का केंद्र है। इसने बडे-बडे साम्राज्यो को हिला डाला है।

वही हृदय शरीर-विज्ञान की दृष्टि से एक तुच्छ मास-खड है!

यह एक पोला पैशिक यंत्र है। यह बाएँ फेफडे के मध्य में सातवीं पसली के नीचे रक्खा है। इसका आकार एक बंद कमल के फूल के समान है।

इसकी लंबाई प्राय ५ इंच और चौडाई ३½ इच और मोटाई २ इंच है। जवान मनुष्य का हृत्पिंड ९ से १० औंस भारी होता है। प्रौढ़ावस्था तक इसका वजन बढ़ता जाता और बुढ़ौती मे कम होना शुरू होता है।

हृदय का कल्पित चित्र
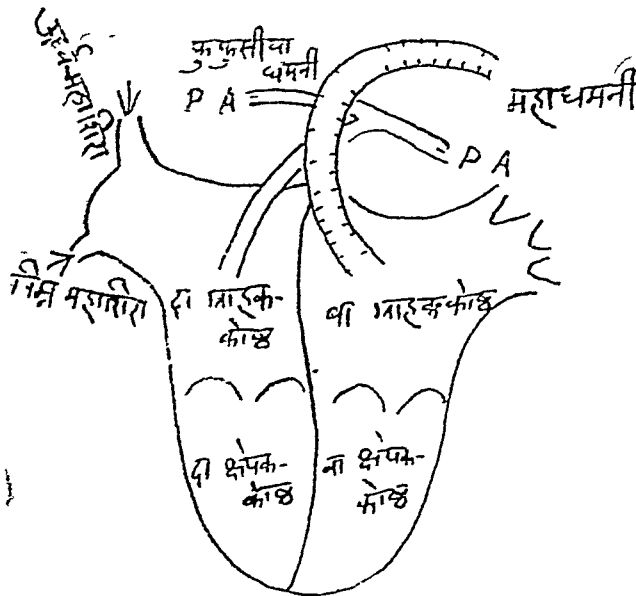
हृदय के चार मुख्य विभाग हैं—दक्षिण और वाम ग्राहक कोष्ठ, दक्षिण और वाम क्षेपक कोष्ठ। दक्षिण ग्राहक कोष्ठ के साथ दक्षिण क्षेपक कोष्ठ का तथा वाम ग्राहक कोष्ठ के साथ वाम क्षेपक कोष्ठ का संयोग दिखाई देता है। परंतु दाएँ तरफ के दोनो विभागो का बाएँ विभागो से कोई प्रत्यक्ष सयोग नही है। बाएँ कक्ष की धमनी-शोणित प्रवाहित होकर दक्षिण कक्ष में लौट आता है। यह शरीर के उर्ध्व और अधोदेश के कैशिक नाली-नामक अति छोटी-छोटी शिराओं से परस्पर मिला हुआ है।

रक्त

रक्त क्या है? वह एक खारा पतला पदार्थ है। इसके १०० भाग में ७९ भाग जल तथा

२१ भाग सूखा, कठिन द्रव्य है। मोटे हिसाब से ४ आना कठिन द्रव्य और १२ आना केवल पानी है। इस २१ भाग कठिन द्रव्य में १२ भाग सफेद और लाल कण तथा बाकी ९ भाग में ६ भाग एलब्यूमेन-नामक पदार्थ और ३ भाग नमक, चर्बी और शक्कर है। इनके सिवा शरीर की शक्ति क्षय होने पर जो पदार्थ शरीर के बाहर निकलते हैं, उसका कुछ अंश और फाईब्रिन-नामक एक प्रकार का तंतु-सदृश पदार्थ का कुछ अंश रक्त में दिखाई देता है।

वायव्य पदार्थ

रक्त का आधा हिस्सा वायव्य पदार्थ इसमें मिला है। अर्थात प्रति १०० इंच गाढ़े रक्त में कुछ कम ५० इंच गाढ़ा वायव्य पदार्थ है। इस पदार्थ को अंगाराम्ल, अम्लजन और जवाखारजन कहते हैं। यह पदार्थ बाहरी हवा में भी हैं। रक्त में प्रायः १० आना अंगाराम्ल और कुछ कम ६ आना अम्लजन और बहुत कम जवाखारजन है।

आयु, आहार, धातु, प्रकृति और स्त्री-पुरुष में भेद के कारण इस परिमाण में परिवर्तन भी हो जाता है। स्त्री की अपेक्षा पुरुष के रक्त में लाल कण अधिक रहते हैं। इस लिये स्त्री से पुरुष वजनी होता है। इसके सिवा गर्भिणी स्त्री के रक्त में से लाल कण और भी कम हो जाते हैं।

नवजात शिशु के शरीर में दो मास पर्यंत लाल कण अधिक रहते हैं। बालक अवस्था में वे नीचे बैठ जाते हैं, यौवन काल में वे फिर ऊपर को उठ आते हैं। तथा बुढ़ौती में फिर कम हो जाते हैं।

तामसिक प्रकृति के मनुष्य के रक्त में भी लाल कण अधिक होते हैं। शाकाहारी की अपेक्षा मांसाहारी के शरीर में भी वे अधिक परिमाण में होते हैं। फस्त लेने से इन लाल कणों का परिमाण कम हो जाता है।

वर्ण-भेद

शरीर के सब स्थानों के रक्त का रंग एक-सा नहीं है। शिरा का रक्त अम्लजन कम होने से नीला तथा धमनी का लाल होता है। धमनी का रक्त जल्द जम जाता है। फेफड़े, जिगर और तिल्ली की रक्त-शिराओं का रक्त शिराओं के रक्त की अपेक्षा भिन्न रंग का होता है।

रक्त का परिमाण

शरीर में रक्त का परिमाण क्या है, यह जानना बहुत कठिन है। परंतु बहुधा वह शरीर के बोझ के १२वें या १४वें भाग के बराबर होता है।

उपादान

रक्त के चार प्रधान उपादान है—(१) रस (२) कस (३) कणिका (४) तंतु।

रक्त के पतले अंग में जो कण तैरते हैं, वह 'रस' कहाता है। रक्त से जो गाढ़ा भाग निकालकर मैला, पतला द्रव बचता है, वह कस कहाता है। कणिका दो प्रकार की है। श्वेतवर्ण-हीन और लाल। स्वस्थ शरीर में सफ़ेद कणिका की अपेक्षा लाल कणिका अधिक रहती है। कारण, वही

कणिका रक्त का सार पदार्थ है। इसी की सत्ता से रक्त का रंग लाल होता है। ये कणिकाएँ तिल्ली में उत्पन्न होती हैं। और सफेद कणिकाएँ ही समय पर लाल कणिकाएँ बन जाती हैं।

रक्त की क्रिया

रक्त जैसे जीव का प्रधान साधन है, वैसा ही यह शरीर के बाहरी और भीतरी सब यंत्रों का जीवन-स्वरूप है। कारण, इससे सब क्रिया की कुशलता साधित होती है। मस्तिष्क में जो चिकना गूदा है, वह रक्त के ही सार भाग से बनता है। रक्त के ही द्वारा छाती, हड्डी की झिल्ली और मज्जा, पेशी, स्नायु, पाचकाग्नि, मुख की लार, यकृत का पित्त, गुर्दे का मूत्र, आँख का आँसू, चमड़ी का पसीना, मस्तक के केश और उँगलियों के नख की योजना कर सबको पुष्ट करता है।

रक्त की गति

रक्त रगों में निरंतर बहा करता है। यदि बाँह की त्वचा और रक्त की नाली शीशे की बनी होती, तो हम देखते कि इन नसों के भीतर हाथ की ओर से कंधे की ओर रक्त अति शीघ्रता से बहता रहता है।

रक्त का प्रधान आधार हृदय है। रक्त हृदय से धमनी और धमनी से शिरा-मंडल में घूमता रहता है। यहाँ से फिर फेफड़ों में होते हुए हृदय में लौट आता है। तथा वहाँ से फिर शिरा और धमनी में चला जाता है। इसी तरह यह क्रिया चलती ही रहती है। इस धमनी या शिरा में कोई विष या दूसरा जहर प्रविष्ट हो जाय, तो आनन फानन वह सारे रक्त को दूषित कर देता है।

हृदय के दाहनी ओर की फुप्फुस-धमनी से रक्त फुप्फुस में प्रवाहित होता है। तथा फिर फुप्फुस के कैशिक नाली और शिरा-समूह से हृदय के बाईं तरफ लौट आता है। इससे साफ़ जाहिर है कि रक्त दो रास्तों से प्रवाहित होता है। एक रास्ता छोटा और दूसरा बड़ा है। हृदय के बाईं ओर से प्रवाहित होकर रक्त सारे शरीर में घूमकर हृदय की दाहनी ओर लौट आता है। यह बड़ा रास्ता कहाता है। परंतु वास्तव में तो समस्त रक्त-प्रवाह एक ही समय में फुप्फुस के भीतर से प्रवाहित होता है।

इस प्रकार रक्त वाम कोष्ठ से वाम उदर में और वाम उदर से सारे शरीर में व्याप्त होता है। प्रत्येक हृदय में प्राय ४ से ६ औंस तक रक्त रहता है। उसके प्रति बार सिकुड़ने पर इतना ही रक्त निकलकर शरीर में फैल जाता है और प्रति बार खुलने पर इतना ही भर जाता है।

इसी प्रकार हृदय के सिकुड़ने और बंद होने से ही बारंबार रक्त प्रवाहित होता है, और रक्त-नालियाँ रक्त से भरपूर रहती हैं।

जवान मनुष्य का हृदय एक मिनट में प्राय: ७० बार धड़कता है। दौड़ने या व्यायाम से और भी वेग से धड़कता है। ज्वर में भी यह धड़कन बढ़ जाती है। स्त्रियों का हृदय पुरुषों

की अपेक्षा प्रति मिनट ८-१० बार और शीघ्र चलता है। बालक का इससे भी अधिक चलता है। १ वर्ष के बालक का हृदय एक मिनट मे ६० से १०० बार तक धडकता है।

रक्त मे जीवन है

यदि एक उँगली मे डोरी कसकर बाँध दी जाय और उसे कुछ समय तक यो ही छोड़ दिया जाय, तो प्रथम वह सुन्न हो जायगी, फिर वह काली पड जायगी और यदि उसे दो दिन इसी दशा मे रक्खा जाय, तो वह सड जायगी। यह रक्त के प्रवाह को रोक देने से हुआ।

यह हृदय जो रक्त की गति और जीवन का मूल-कारण है, गर्भ के चौथे या पाँचवे मास मे धडकना प्रारभ होता है, और तब से ८०-६० वर्ष की आयु तक एक क्षण को भी नहीं रुकता। वह एक अद्भुत इजन की भाँति चलता ही रहता है।

जब शरीर के किसी भाग मे चोट लगती है, तब केवल रक्त ही उसे अच्छा करता है। जब रोग के कीटाणु शरीर मे प्रवेश करते है, तब रक्त-जल ही उसे नष्ट कर डालता है। पर जब इसी की शक्ति किसी कारण वश क्षीण हो जाती है, तब वह निर्बल पड जाता है।

यदि उत्तम खुर्दबीन से देखा जाय, तो ये अणु रोग के कीटाणुओ को पकडकर नष्ट करते हुए दीख पडेगे।

हमे रक्त की बहुमूल्यता को समझना चाहिए और सदैव उसे शुद्ध और उत्तम बनाए रखना चाहिए।

प्रकरण ४

आहार-नालिका—पाचन-यंत्र और पचन-क्रिया

भोजन किस तरह शरीर का पोषण करता है

आहार-नालिका

हम जो कुछ खाते हैं, वह इसी नालिका द्वारा पेट में पहुँचता है। यह नली नौ-दस गज़ लंबी होती है। इसका एक सिरा मुख से लगा होता है, दूसरा गुदा से। यह नली सब जगह, आदि से अंत तक, एक-जैसी नहीं, कहीं फूलकर थैली-जैसी हो गई है, कहीं पतली और तंग है। गले से छाती तक तो यह सीधी गई है और पेट में साँप की तरह इँडी-बीडी पडी रहती है। इस नली के सब भाग भिन्न-भिन्न काम करते है, और उनके नाम भी भिन्न-भिन्न हैं।

पहला भाग

इसका मुख है। यहाँ दाँत और जीभ के द्वारा भोजन चबाया जाता है। मुख में लार की गाँठें होती हैं, मुँह चलाने से उनसे लार टपक-टपककर भोजन को गीला कर देती है। यह लार बडी पाचक होती है। बच्चों के मुख से लार बहुत टपका करती है, इससे वे पचा भी ख़ूब सकते हैं। दिन-भर खाते हैं।

आहार-नालिका

ईश्वर की माया है, न खायें, तो करें कैसे? भोजन बिना चबाए जायगा, उसको भी लार निकलेगी। इसलिये भोजन खूब चबाकर खाना चाहिए। इतना चबाना चाहिए कि भोजन का मुँह में पानी हो जाय और उसमें स्वाद न रहे। अर्थात् खूब चबाकर खाना चाहिए। पुरानी कहावत है कि दाँतों का काम आँतों से नहीं लेना चाहिए।

दूसरा भाग

गला या कंठ है। वास्तव में नली शुरू यहीं से होती है। इसे अन्न-प्रणाली कहते हैं। यह भाग करीब १० इंच लंबा होगा। इसमें होकर खुराक गले और छाती के बीच होती हुई तीसरे भाग में पहुँचती है। यह स्थान नाजुक और तंग है। सख्त चीज खाने से इसमें अटक जाती है। बिना पानी लिए भोजन करने से भोजन इसमें अटक जाता है, जिससे उसे घुटकर प्राण तक निकलने का भय रहता है। कभी-कभी असावधानी से पानी पीने से वह इस नली में आ जाता है, जिससे फंदा लग जाता है। इससे भोजन को नरम करके धीरे-धीरे सावधानी से थोड़ा-थोड़ा गले से उतारना चाहिए।

तीसरा भाग

थैली के समान है। इसे मेदा या आमाशय कहते हैं। यहाँ भोजन पचने के लिये कुछ देर ठहरता है। इसकी लंबाई अंदाजन १२ इंच होती है और चौड़ाई कोई ४ इंच। इस छोटे से भाग को मज़ेदार पुतलीघर कहना चाहिए। ज्यों ही लार से मिला हुआ भोजन यहाँ पहुँचता है, तो तुरंत वहाँ चहल-पहल मच जाती है। और एक तरह का खट्टा रस बनना शुरू हो जाता है, इस काम में कोई आधा घंटा लग जाता है। तब तक लार का रस भोजन को गलाता रहता है, पर ज्यों ही आमाशय का रस भोजन से मिला, त्यों ही लार का असर दूर हो जाता है, क्योंकि यह रस खट्टा होता है। आमाशय की सूरत कुछ मशक-जैसी होती है। उसके दाहने और बाएँ दो किनारे होते हैं। दाहना फूला हुआ और लंबा होता है और बायाँ चिपका हुआ और छोटा। तो उस खट्टे रस से मिल-मिलकर थोड़ा-थोड़ा भोजन बाएँ तंग भाग में जाने लगता है। यह भाग भंडार का काम देता है, अर्थात् यहाँ भोजन पड़ा ही रहता है। एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि आमाशय का खट्टा रस एकाएक सब भोजन से नहीं मिल जाता, थोड़े-थोड़े से मिलता है। शेष में वही लार का रस अपनी कारस्तानी करता रहता है।

अब बीच के भाग में लहरें उठने लगती हैं। इससे मांस के सकोच से इस भागकी शक्ति बढ़ जाती है और भोजन पर दबाव पड़ता है और भोजन दक्षिणांश में जाने लगता है। यहाँ वह खूब मथा जाता है और भरपूर आमाशय का रस मिलकर वह पतला हो जाता है। जब तक भोजन पतला नहीं बन जाता और उसके मोटे-मोटे टुकड़े नहीं पिस जाते, तब तक दक्षिणांश में बराबर हलचल होती रहती है। अच्छा, यहाँ पर इस कारखाने का अंत होता है। दूसरे कारखाने में खुराक भेजनी होती है। इस जगह एक छेद होता है, जो मांस के एक टुकड़े से बंद होता है। ज्यों ही रस बन-बनाकर माल तैयार हो जाता है, तब दक्षिणांश उस पतले

भोजन को बड़े वेग से पक्काशय मे ढकेल देता है। इसके बाद मध्यांश से और भोजन आता है। वह भी इसी प्रकार मथा जाकर नीचे ढकेल दिया जाता है। इस तरह धीरे-धीरे सब भोजन पक्काशय में ढकेल दिया जाता है।

मामूली भोजन आमाशय में ३-४ घंटे ठहरता है। पर जो भोजन दाँतो द्वारा नही चबाया गया, वह आमाशय में दो घंटे तक ठहरता है, क्योंकि जहाँ तक होता है, आमाशय किसी सख्त चीज़ को आँतो मे नहीं उतरने देता।

आमाशय के खट्टे रस के कारण दूध वहाँ जाकर फट जाता है। शर्करा का कुछ स्वरूप बदलता है। पर वह रहती है शर्करा ही। घृत, तैल आदि स्नेह पिघल जाते हैं, और कोई अंतर नहीं पड़ता। जल और लवण ज्यो-के-त्यो रहते है।

चौथा भाग

इसका नाम क्षुद्रांत्र है, और इसे पक्काशय भी कहते है। यह नली कोई २२ फ़ुट की है, चौड़ाई १½ या १¾ इंच होती है। इसका नीचे का सिरा बृहदंत्र से जुड़ा रहता है, जिसे मलाशय भी कहते है। क्षुद्रांत्र सर्प की तरह गेंडली मारे पेट मे रहती है। आमाशय से ढकेला जाकर जो खटमिट्ठा रस इस अंत्र में आता है, तब इसका रस उसमें और मिलता है। पर यह रस खारा होता है। इस अंत्र में फड़कन-सी हुआ करती है, अर्थात् कभी यह सिकुड़ती है, कभी फूलती है। आपने केचुओं और जोको को सिकुड़ते, फैलते देखा होगा, बस वही दशा इसकी होती है। इस क्रिया का प्रभाव बड़ा भारी पड़ता है, इससे भोजन धीरे-धीरे नीचे को खिसकता जाता है और उसमें सार पदार्थ बारीक-बारीक छेदों द्वारा श्लैष्मिक कला (एक प्रकार की झिल्ली) में छनकर रक्त मे पहुँच जाता है। आहार-रस तक पहुँचता है, तब तक इस अंत्र के छोर तक बहुत-सी चीज़े रक्त मे मिल जाती हैं।

पाँचवाँ भाग

बृहदंत्र है, जिसे मलाशय भी कहते है। जितनी चीज़े पचकर रक्त मे मिल गई है, उनको छोड़कर शेष सब-का-सब आहार-रस बृहदंत्र में चला जाता है। यह क्षुद्रांत्र से अधिक चौड़ी होती है। इसकी लंबाई पाँच फुट के लगभग होती है। जहाँ दोनो अंत्र मिलते हैं, वहाँ कफ की झिल्ली का एक किवाड़ होता है। यह इस कारीगरी से बनाया गया है कि क्षुद्रांत्र का रस तो बृहदंत्र मे जा सके, किंतु उसका इसमे न आ सके। यह अंत्र क्षुद्रांत्र के प्रायः चारो ओर लपेट खाता है। दाहनी ओर से उठकर जिगर को छूता हुआ बाईं तरफ तिल्ली के पास होकर नीचे मल-द्वार तक आती है। क्षुद्रांत्र की तरह इसमे भी फड़कन होती है, पर धीमी चाल से। इसके प्रभाव से रस पहले ऊपर को चढ़कर जिगर की ओर जाता है, फिर तिल्ली की ओर। इसमे कोई ख़ास रस नहीं बनता। अभी तक क्षुद्रांत्र से आया हुआ रस पतला था, पर ज्यो-ज्यों बृहदंत्र मे नीचे को उतरता है, गाढ़ा होता जाता है। कारण, उसमे से द्रव भाग बारीक नलियो द्वारा रक्त मे मिलता रहता है। यही गाढ़ी चीज़ मल या विष्ठा है।

बाहरी सहायता

आमाशय, क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्र में जो भोजन पचता है, उसमें उसे कुछ बाहरी सहायता भी मिलती है। यह सहायता खासकर दो स्थानों से मिलती है—एक जिगर या यकृत और दूसरी क्लोम—या पिपासा-स्थान से जिगर शरीर में सबसे बड़ी गांठ है, इसका वज़न कोई दो सेर का होता है। यह पेट के ऊपर दाहनी तरफ़ पसलियों के नीचे छिपा रहता है, बीमारी की दशा में बढ़कर बाहर निकल आता है। रस में एक प्रकार का पाचक रस बनता है, जिसे पित्त कहते हैं। यह पित्तपीले-हरे रंग का कड़ुवा, पतला और गर्म रस है। सड़ने पर खट्टा हो जाता है। जिगर में पित्त की एक अलग थैली लटकी रहती है, जिसकी सूरत नासपाती के समान होती है, इसी में पित्त भरा रहता है। जब भोजन पक्वाशय या क्षुद्रान्त्र में होता है, तब यह भी उससे जाकर मिल जाता है। क्षुद्रान्त्रों में आमाशय के खट्टे रस के साथ घुला हुआ खाद्य आता है। और अन्न के खारी रस से मिलकर उसकी खटाई नष्ट होने लगती है। पित्त भी उसमें मदद देकर उसकी खटाई को नष्ट करता है। खासकर स्नेह को पचाने में पित्त की मदद की बहुत जरूरत पड़ती है। जब पित्त कम बनता है या किसी कारण से अन्त्र में नहीं पहुँच सकता, तब स्नेह बहुत कम पचता है और उसका अधिक भाग मल के द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है। यन्त्र में पित्त के रहने से उसमें सड़ाव कम होने पाता है। जब यंत्र में पित्त नहीं पहुँच पाता, तब सड़ाव अधिक होता है, और विष्ठा दुर्गंधित और लसदार आती है, क्योंकि स्नेह कच्चा निकल रहा है। दूसरी वस्तु है क्लोम। यह वह गाँठ है, जहाँ प्यास लगा करती है। इसकी शकल पिस्तौल-जैसी है। यह पेट में पीछे की ओर लगी रहती है। इसमें भी एक प्रकार का पाचक रस बनता है, जिसे क्लोम-रस कहते हैं। यह बिलकुल साफ़, पतला, खारा रस होता है। इसका काम भोजन में से भिन्न मूल अवयवों का विश्लेषण करना है। यह क्षुद्रान्त्रीय रस और क्लोम से मिलकर अपना काम करता है। बल्कि क्षुद्रान्त्र के रस में कुछ ऐसी विशेषता है कि इसके मिलने से क्लोम के रस का बल बहुत बढ़ जाता है।

धन्य है उस विश्वकर्ता कारीगर को, जिसने यह शरीर रूपी गोरख-धंधा बनाया है।

भोजन पचने में कितनी देर लगती है?

इसका परिमाण भिन्न-भिन्न खाद्य का भिन्न-भिन्न है। कोई भोजन देर से पचता है, कोई जल्दी। साधारणतया इस प्रकार है—

आमाशय में ४ से ५ घंटे तक ठहरता है।
क्षुद्रान्त्र में　४ से ५　,,　,,
ऊर्ध्वगत बृहदन्त्र में २ से ३ ,,　,,
अधोगामी में २ से ३　,,　,,
मलाशय में ५ से ६　,,　,,

इस प्रकार साधारणतया भोजन को पचने में कोई १८ घंटे या १६ घंटे लगते हैं।

विष्ठा

सार-रहित पदार्थ जब मलाशय मे पहुँच जाता है, तब दस्त की हाजत मालूम होती है। मल-द्वार पर एक मास का टुकडा अटका रहता है, जो विना इच्छा मल का बाहर नहीं निकलने देता।

दस्त जाती बार हम गहरा साँस लेते हैं, जिससे छाती और पेट के मास के पुट्ठे सिकुडकर पेट की ओर उतरते हैं, इससे पेट सिकुडकर अंत्र पर दबाव डालता है। बृहदन्त्र के अतिम भाग में एकदम दबाव पडता है और द्वार की मांस-पेशी हट जाती है और मल बाहर निकल जाता है।

विष्ठा में क्या होता है

भोजन की सब वस्तुएँ शरीर में नहा पचतीं। अतएव जो रह जाती हैं, वे सब मल द्वारा निकल जाती हैं। उसमें ये पदार्थ है—जल, भोजन का कच्चा अश, शाको के डठल या रेशे, फलो के छिलके, बीज, गुठलियाँ, मिर्चों के बीज और कई प्रकार के लवण।

इनके सिवा कई प्रकार की खट्टी सडाइंद जो रोगी-शरीर मे हो जाती है। अनेक प्रकार के बारीक-बारीक कीडे, अंत्र-मार्ग के गिरे हुए छिछडे। पाचक रसो के कुछ फालतू भाग।

मल दुर्गंधित क्यों होता है

भोजन चाहे जितना सुगधित खाया जाय, मल दुर्गंधित होता है। इसका कारण यह है कि दोनो अत्रो मे तरह-तरह के सूक्ष्म जंतुओ की बडी भारी बस्ती है, जो वहीं के बचे-खुचे भोजन पर निर्वाह करते हैं। ये कई प्रकार के विष उत्पन्न करते है, जो दुर्गंधित होते है। जिन मनुष्यों को कब्ज और अजीर्ण रहता है, उनकी अत्र मे सडाव भी अधिक होता है। जिससे कई तरह की गैसें बन जाती है और मल-द्वार मे शब्द करके निकला करती हैं। जब इनकी मात्रा बढ जाती है, तब इनका प्रभाव रक्त पर भी होता है और अनेक रोग उत्पन्न होते है।

आपको यह देखकर आश्चर्य होता होगा। अनेक साधु-सज्जन पुरुष जो ब्रह्मचारी और पवित्र हो, उनके मुख निस्तेज होते है, किंतु अनेक दुराचारी, व्यभिचारी सुर्ख़ पडे रहते है। इसका कारण कब्ज़ है, जिन्हें कब्ज का रोग है, उनके रक्त मे उपर्युक्त विष फैल गया है। वह मैला, पीला, पतला और जहरीला हो गया है। और-ब्रह्मचर्य का कोई भी प्रभाव मुख पर नहीं जमने देता। इसलिये कब्ज़ से बचो। झटपट दस्त जाने की आदत डालो। यह दोष अल्पायु भी करनेवाला है।

प्रकरण ५

गुर्दे (मूत्र-यंत्र)

कार्य

आपने देखा होगा कि भाफ का एंजिन कोयले जलाकर चलाया जाता है। कोयलों के जलने में जो राख उत्पन्न होती है, वह साफ करनी भी उतनी ही आवश्यक है, जितना कि कोयले झोंकना।

ठीक शरीर भी इसी प्रकार का एक एंजिन है और वह खाने और पीने से पुष्ट होकर चलता है। पर जल और खाद्य द्रव्यों में जो फुजले का भाग है, वह शरीर में रह जाय, तो शरीर का नाश ही हो जाय।

हमने बताया है कि विषाक्त वस्तु को पसीने और श्वास के साथ किस प्रकार फेफड़े और त्वचा निकालती है। अब हम गुर्दों का वर्णन करते हैं, जो इसी प्रकार की बहुमूल्य सेवा शरीर की करते हैं।

आकृति

ये दो होते हैं, और इनका आकार बड़े सेम के बीज की भाँति होता है। यह कमर के भीतर रीढ़ की हड्डी के अंत में दोनों तरफ लगे हुए हैं। हरएक गुर्दे के पीछे बारहवीं पसली लगी हुई है। इनका रंग गुलाबी, लंबाई ४ इंच, चौड़ाई २½ इंच और मोटाई १½ इंच है। पुरुष के गुर्दे का वजन प्राय ४ औंस तथा स्त्री के गुर्दे का वजन कुछ कम होता है।

क्रिया

ये मूत्र उत्पादक यंत्र हैं। ये इस कौशल से बने होते हैं कि रक्त का दूषित जलीय अंश छन-छनकर इनमें संचित होता रहता है और फिर मूत्राशय में जाता है। जब मूत्राशय मूत्र से परिपूर्ण हो जाता है, तभी मूत्र की हाजत होती है। मूत्राशय का गुर्दों से एक नली के द्वारा संबंध है।

गुर्दे और मूत्र-वस्ती

गुर्दे रक्त की शुद्धि किस भाँति करते हैं ?

बृहत धमनी की दो शाखाओं द्वारा रक्त दोनों गुर्दों में पहुँचता है। भीतर इन धमनियों की छोटी-छोटी बहुत-सी शाखाएँ हो जाती हैं। एक-एक शाखा प्रत्येक नली के फूले हुए भाग में जाती है, इसी से रक्त केशिका के मुंड में पहुँचता है। केशिका की दीवारों में से कुछ जलीय अंश रक्त में से चूकर नली की दीवारों में से होकर उसके भीतर पहुँच जाता है। नली का फूला हुआ सिरा छन्ने का काम देता है। यह जीवित छन्ना उस जलीय अंश को बिलकुल छान देता है।

रक्त में पोषक तत्त्व और शर्करा मिली होती है, यह हम बता चुके हैं। पर ये द्रव्य स्वस्थ शरीर में इस छन्ने में छनकर मूत्र में नहीं आ सकते, सिर्फ रक्त का नमक तो उसमें घुला रहता है। नली की मोटी-मोटी नसें उस लसीका में से यूरिया, यूरिक अम्ल आदि पदार्थों को सेलें खींच लेते हैं। और फिर उसे नली में पहुँचा देते हैं। और वहाँ वे सब दूषित द्रव्य उस जल में मिल जाते हैं। यह जल फिर पहली नलियों में बहता हुआ बडी-बडी नलियों में पहुँचता है, जो किनारे में रहती हैं। वहाँ के शिखरों के छिद्रों में से निकलकर यह तरल मूत्र-प्रणाली के प्रारम्भिक चौडे भाग में पहुँचता है। यही तरल वास्तव में मूत्र है।

मूत्र-प्रणालियाँ दो हैं। प्रत्येक के भीतरी पृष्ठों पर श्लैष्मिक झिल्ली लगी होती है। प्रत्येक नली की लंबाई १० से १२ इंच तक होती है। मूत्र-प्रणाली के दो सिरे हैं। ऊपर का भाग वृक्क से जुडा रहता है। इसी मूत्र-प्रणाली में पथरी रोग होता है।

इन मूत्र-प्रणालियों द्वारा मूत्र गुर्दों से मूत्राशय में आता है, मूत्राशय बस्ति-गह्वर में विटप-संधि के पीछे रहता है। पुरुषों के शरीर में उससे बिलकुल मिले हुए ठीक पीछे दो शुक्राशय रहते हैं। और इनके पीछे बृहत् अंत्र का अंतिम भाग या मलाशय रहता है। स्त्रियों के मूत्राशय के पीछे गर्भाशय और गर्भाशय के पीछे मलाशय रहता है।

मूत्राशय का आकार कुछ तिकोना-सा है। जब वह मूत्र से खूब भर जाता है, तो गोलाकार हो जाता है। बस्ति-गह्वर से ऊपर को निकलकर उदर की अगली दीवार के पीछे आ लगता है।

इसके सबसे निचले भाग में एक नली है, वही मूत्र-मार्ग है। जवान पुरुष की यह नली लंबाई में ७-८ इंच होती है। इसके प्रारंभ में प्रायः १ इंच भाग के चारों ओर एक ग्रंथि रहती है। उसी में होकर यह मूत्र-मार्ग जाता है। स्त्रियों के मूत्र-मार्ग की लंबाई केवल १½ इंच होती है। यह नली योनि की अगली दीवार से जुडी होती है। इसका छिद्र योनि के छिद्र से भिन्न होता है। मूत्र-मार्ग का जहाँ प्रारंभ है, वहाँ की दीवार का मांस सिकुडकर मूत्र-मार्ग को बंद रखता है। जब मूत्र त्यागना चाहते हैं, तब वह ढीला पड जाता है, और रास्ता खुल जाता है। किसी-किसी रोग में जब यह द्वार बंद नहीं हो सकता, तो मूत्र सदा टपकता रहता है।

मूत्र का परिमाण

सारे दिन-रात में एक बलवान मनुष्य आधा सेर से १½ सेर तक मूत्र निकालता है। इसमें २३ छटाक जल और १ छटाक रासायनिक पदार्थ होते हैं। जब वह नीरोग है, यथेष्ट पानी पीता है, तो मूत्र का रंग हल्का पीला होगा। और जल के समान साफ होगा। पर यदि वह लाल या भूरा हो, तो यह अवश्य कम जल पीने का चिह्न है। शीतकाल में पसीना कम आने से मूत्र का परिमाण बढ जाता है। ग्रीष्म काल में पसीना आने से कम हो जाता है।

ज्वर चढने की दशा में गुर्दों का काम बढ जाता है। इसलिये रोगी को उचित है कि यथेष्ट जल पीवे। इससे पसीना और पेशाब यथेष्ट होगा।

शराब, तम्बाकू, गर्म मसाला, सालन, अदरक आदि पदार्थ गुर्दे के लिये हानिकर हैं, इसलिये इन्हें कम खाय। रक्त में से किसी भी विजातीय वस्तु को बाहर कर देना गुर्दे का काम है। इसलिये गुर्दों में कोई दोष न उत्पन्न होने दे।

प्रकरण ६

प्लीहा (तिल्ली) और यकृत (जिगर)

वजन और आकार

प्लीहा एक बड़ा यंत्र है। यह पेट में बाईं तरफ है। उसके दाहिने पाकाशय है। इसका आकार पिष्टकाकार, रंग गहरा बैंगनी है। आकार निरन्तर एक-सा नहीं रहता। रक्त की कमी-बेशी से आकार भी घटता-बढ़ता रहता है। साधारणतः इसकी लंबाई ५ इंच, चौड़ाई ३-४ इंच और मोटाई १½ इंच तथा वजन ६-७ औंस होगा। वृद्धावस्था में इसका आकार और वजन कम हो जाता है। मलेरिया में यह कई पौंड तक बढ़ जाता है। इससे रक्त के सफेद और लाल कण बनते हैं।

यकृत

यकृत एक गाँठदार यंत्र है। यह शरीर के सब यंत्रों से बड़ा है। और यह दाहिने उदर का अधिकांश ढके हुए है। इसका ऊर्ध्वप्रदेश न्युब्जाकार, नीचे के प्रदेश में पाकाशय, अनुग्रन्थ में अंत्र-मूल, अंत्रांश और दक्षिण मूत्र-पिंड के ऊपर स्थित है।

यकृत १०-१२ इंच चौड़ा होता है। इसका जो अंश सबसे मोटा है, उसका परिमाण २½ से ३½ इंच तक है। और वजन ३-४ पौंड होगा। यकृत दो असम खंडों में विभक्त है। इन दो अंशों को वाम और दक्षिण खंड कहते हैं। ये दोनों खंड परस्पर अविच्छिन्न भाव से संबद्ध हैं। इसके सामने और पीछे एक छेद है। पित्त का निकालना ही यकृत का काम है इससे पित्त के परिपाक-कार्य में सहायता मिलती है।

पित्त यकृत से उत्पन्न होकर अंत्र में जाता है और जब परिपाक-कार्य बंद होता है, तब वहाँ से पित्त-कोष में जाता और वहाँ से जुरूरत होने पर निकल आता है। पित्त से मिलकर क्लोम रस अपनी सब क्रियाओं में प्रबल हो जाता है। पित्त के ही कारण क्लोम रस की चर्बी को पृथक् करने की शक्ति अधिक बढ़ जाती है।

वास्तव में चर्बी को पचाने और शरीर में मिलाने के लिये पित्त बहुत आवश्यक चीज़ है। यदि पित्त कम बने अथवा किसी कारण-वश अंत्र में न पहुँचे, तो चर्बी बहुत कम पचती है और उसका अधिक भाग विष्ठा में चला जाता है।

अम्ल प्रति क्रियावाले आहार-रस की अम्लता क्षारीय पित्त और क्लोम रस के क्षार के कारण जाती रहती है। अब आहार-रस क्षारीय हो जाता है, और क्लोम रस का प्रभाव क्षारीय वालों पर अच्छी तरह होता है।

पित्त-कोष अमरूद के फल की भाँति यकृत के नीचे लगा हुआ है। यह सामने और पीछे झिल्ली ढका है, तथा इसका चौड़ा भाग सामने—नीचे और दाहनी ओर है। तथा संकीर्ण अंश अर्थात् ग्रीवा नीचेवाली नली में मिल गई है। इसकी लंबाई ३-४ इंच और चौड़ाई १½ इंच है। इसमें प्रायः २½ औंस पित्त तैयार रहता है।

उपवास के समय को छोड़कर निरंतर यकृत से पित्त निकलता रहता है। दिन-रात में इतना पित्त निकलता है, जितना यकृत का वजन है। पित्त-कोष में पथरी पैदा होने से यदि पित्त न बहे, तो रक्त घुल जाता तथा पाण्डुरोग हो जाता है।

पित्त का प्रधान कार्य अन्न पचाना है। यह हम अन्न-परिपाक के प्रकरण में कहेंगे।

इसके सिवा अन्य कार्य इस प्रकार हैं—

१—पित्त बनाना।

२—रक्त में अधिक शर्करा जाने देने से रोकना। यह काम वह शर्कराजन बनाकर करता है। यह शर्कराजन यकृत की सेलों में संचित रहती है, जब आवश्यकता होती है, तब फिर शर्करा भी इसी से बन जाती है। इस प्रकार एक तौर से यकृत शर्करा के आय-व्यय का हिसाब-खाता भी रखता है।

३—मूत्र में जो यूरिया या यूरिक एसिड निकलते है, वे भी यकृत में बनते हैं।

क्लोम

यह ग्रंथि उदर की पिछली दीवार से लगी रहती है। इसकी आकृति पिस्तौल के समान है। इसका दाहना भाग मोटा होता है तथा सिर कहलाता है। बायाँ भाग पतला होता है और पुच्छ कहलाता है। सिर और पुच्छ के बीच का भाग शरीर है। सिर पक्वाशय के घेरे में रहता है और पुच्छ का सिरा प्लीहा से मिला रहता है। क्लोम के सामने अनुप्रस्थ बृहत अंत्र और आमाशय रहते हैं। इस ग्रंथि का भार ६० से १०० माशे तक होता है और लंबाई ५ से ६ इंच तक।

इसमें जो पाचक रस बनता है, उसे क्लोम रस कहते हैं। यह पतला, स्वच्छ, क्षारीय द्रव है। यह रस क्षुद्रांत्रीय रस और पित्त से मिलकर अपनी क्रिया और भी प्रबलता से करता है।

प्रकरण ७

मस्तिष्क

एक हड्डी के मजबूत डब्बे मे, जिसे खोपडी कहते है, यह अद्भुत वस्तु खूब सुरक्षित रक्खी हुई है। इसकी आकृति ठीक अखरोट के गूदे की भाँति है। इसके चार विभाग हैं —

(१) बृहत् मस्तिष्क।

(२) क्षुद्र मस्तिष्क।

(३) सीता या सफेद रंग की रस्सी।

(४) मातृका मूलाधार।

इसके सिवा इसमें ३ झिल्ली हैं, जिनमे यह चारों तरफ आच्छादित रहता है।

खोपडी का ऊपरी पृष्ठ

वजन

पूरी आयु के आदमी का मस्तिष्क प्राय डेढ सेर वजन का होता है। मनुष्य का मस्तिष्क हाथी और ह्वेल मछली-जैसे विशाल जीवो की अपेक्षा भी वजनी होता है। पुरुष की अपेक्षा स्त्री का मस्तिष्क २½ छटाक कम वजन का होता है।

इसके चार भागो में बृहत् मस्तिष्क ही सबसे बडा है। इसका वजन ४३ से ५३ औंस तक है। यह खोपडी के ऊपरी अंग मे रहता है। यह स्नायुमय पिंड पदार्थ अडे की भाँति होता है।

झिल्ली और स्नायु

पीठ का बाँस या मेरु-रज्जु, जिसका हम पीछे जिक्र कर आए हैं, जिन तीन झिल्लियो से घिरा है, वह झिल्ली अनेक अशो मे मस्तिष्क की झिल्ली से मिली है। मेरु-मज्जा मे ३१ युग्म
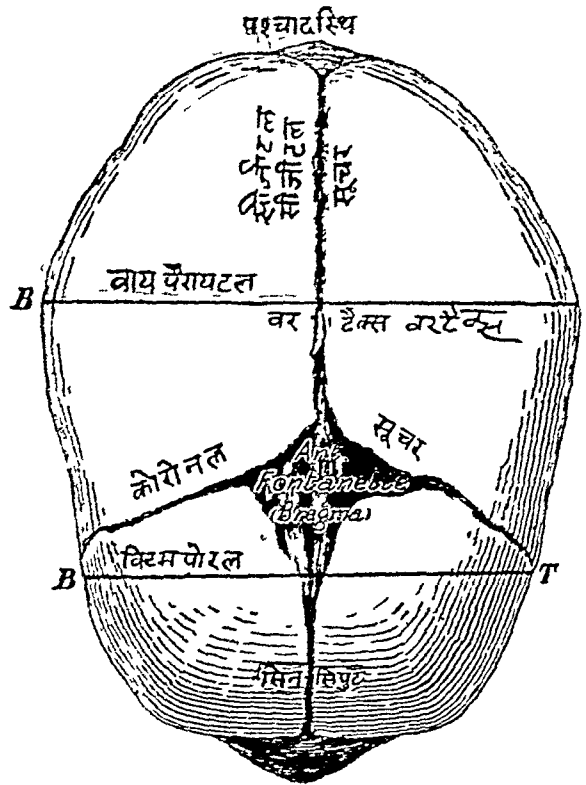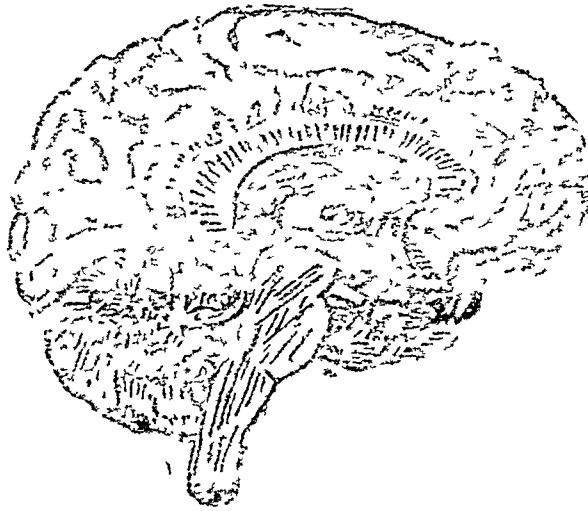
बृहत्मस्तिष्क

अनुमस्तिष्क

सुषुम्नाकांड

मस्तिष्क

स्नायु निकली है। यह जिस-जिस कशेरुका के पास है, उस कशेरुका का वही-वही नाम है।

हम पीछे स्नायु के प्रकरण में बता चुके हैं कि स्नायु किस प्रकार तारबर्की की भाँति फैले हुए हैं। मस्तिष्क में केवल भिन्न-भिन्न भागों से संदेश ही नहीं आता, वह आज्ञाएँ भी बाहर भेजता है। इसी से स्नायु में गति उत्पन्न होती है। यही सब इंद्रियों को आज्ञा देता है कि वे क्या करें। यदि किसी अंग से मस्तिष्क के ये तार कट जायें, तो वह अंग शून्य हो जायगा। प्रायः मदिरा पीने से तथा गर्मी की बीमारी से अर्धांग हो जाता है, क्योंकि इसका विष ज्ञान-तंतुओं को नष्ट करता है।

मस्तिष्क

Motor Nerve

Sensory Nerve

मांस पेशी (Motor organ)

(Sensory organ)
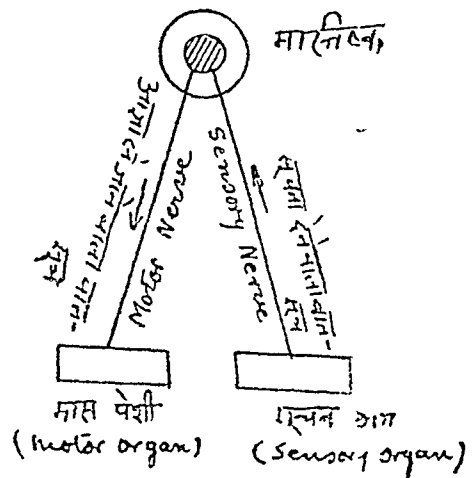
मस्तिष्क की कार्य-प्रणाली

सुषुम्ना और पिंगला नाड़ी-मंडल

सुषुम्ना मस्तिष्क से संलग्न है। इसकी लंबाई पुरुषों में १८ इंच और स्त्रियों में उससे कुछ कम होती है। इसका वजन ½ छटाक समझिए। इसका रंग बाहर से सफेद होता है और भीतर से मटमैला। मस्तिष्क की भाँति इस पर भी झिल्ली के तीन आवरण हैं। सुषुम्ना से नाड़ियों के ३१ जोड़े होते हैं। प्रत्येक नाड़ी सुषुम्ना से दो भागों द्वारा जुड़ी रहती है। प्रत्येक सौषुम्न नाड़ी का पिंगल नाड़ी-मंडल से संबंध रहता है।

ग्रीवा, वक्ष और उदर में पृष्ठ-वंश के सामने या उसके इधर-उधर दो डोरियाँ-सी पडी रहती हैं। प्रत्येक डोरी में थोडी-थोडी दूर पर छोटे या बडे गाँठों-जैसे उभार होते हैं, जिनके कारण वह डोरी माला के समान दीख पडती है। ये उभार माला के दाने हैं। इन्हें नाडी-गंड कहते हैं। ये कुछ पिंगल वर्ण की होती हैं। इन्हीं गंड-शृखला से जो नाडियाँ अन्न-मार्ग को या अन्न-मार्ग-संबंधी ग्रंथियों को जाती हैं, इडा नाडियाँ कहाती हैं।

ये गंड सौषुम्न नाडियों से नाडी सूत्रों द्वारा संबंध रखती हैं। गंडे परस्पर भी एक दूसरे से तारों द्वारा संबंधित हैं। इन गंडों और तारों से जाल बन गए हैं। शरीर में तीन बडे पिंगल-नाडी-जाल हैं। एक वक्ष में, जिसमें से निकली हुई नाडियाँ फुप्फुस, हृदय, महाधमनी को जाती हैं, दूसरा उदर के ऊपर के भाग में। इसकी शाखाएँ आमाशय, अंत्र, यकृत, क्लोम, महाधमनी इत्यादि को जाती हैं। तीसरा उदर के नीचे के भाग में, जो वस्ति-गह्वर के अंगों—मूत्राशय, गर्भाशय आदि की ओर जाती है।

ये मास्तिष्क सौषुम्न तार जो पिंगल नाडी के मंडल से होकर जाते हैं, सब गति-संबंधी हैं। शेष वेदना वाहक।

ये सब तार बिजली के तार के समान काम करते हैं। मस्तिष्क इन्हीं के द्वारा सब शरीर पर राज्य करता है। ये गति की दृष्टि से दो प्रकार के हैं। एक केंद्रत्यागी जो मस्तिष्क से आरंभ होकर और अंगों को जाते हैं। दूसरे केंद्रगामी जो और अंगों से आरंभ होकर मस्तिष्क और सुषुम्ना को जाते हैं। केंद्रत्यागी तारों द्वारा तो मस्तिष्क अंगों का संचालन करता है। यदि हमें हाथ उठाना होगा, तो मस्तिष्क हाथ की पेशियों को इंद्रिय द्वारा संवाद भेजेगा। केंद्रगामी तारों द्वारा विविध सूचनाएँ मस्तिष्क तक पहुँचती हैं। यदि आपके पैर में काँटा चुभेगा, तो यह सूचना ये ही तार आपको देंगे। योग-शास्त्र में इन्हीं तारों का गंभीर महत्त्व है।

मस्तिष्क की रक्षा

मस्तिष्क की दशा स्वस्थ रहे, इसके लिये संपूर्ण शरीर को पुष्ट और शक्तिमान होना आवश्यक है। उत्तम भोजन, शुद्ध वायु, नींद और शारीरिक तथा मानसिक व्यायाम का यथोचित अभ्यास करने से यह यंत्र ठीक दशा में रहता है।

मन का भाव मस्तिष्क को अच्छी दशा में रख सकता है। क्योंकि जब मन में संकोच या लज्जा होती है, तो ज्ञान-तंतु रक्त की नलियों को त्वचा में ढीला करा देते हैं। और इससे चेहरे की त्वचा लाल पड जाती है। घबराहट में हृदय जल्दी-जल्दी धडकने लगता है। भयभीत होने से शरीर गर्म न होने पर भी पसीना निकलने लगता है। इसी प्रकार अकस्मात् घटना का आघात मस्तिष्क को अचेतन भी बना देता है। अति क्रोध और शोक में भूख ही नहीं लगती। चित्त प्रसन्न होने पर भूख भी लगती है, और शरीर के प्रत्येक भाग उत्तमता से अपना-अपना नियत कार्य करते रहते हैं। इससे हम जान सकते हैं कि मन का मस्तिष्क पर कैसा प्रभाव है। बुरे विचारों के निरंतर मन में रहने से बहुधा मनुष्य पागल हो जाते हैं।

मनुष्य के लिये मस्तिष्क ईश्वर की अलभ्य देन है। बचपन में अच्छे विचारों का अभ्यास करने से मस्तिष्क शुद्ध रहता है।

मन

मन क्या है, इस विषय में बड़े-बड़े लोगों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। पर वही एक वस्तु है, जिसका शरीर पर सामान्य अधिकार है और उसका अधिष्ठान मस्तिष्क है। कोई-कोई अंत-करण को ही मन कहते और उसका अधिष्ठान हृदय को मानते हैं।

जो कुछ भी हो। मन एक गुप्त शक्ति-पूर्ण शक्ति-केंद्र है। मनुष्य की उन्नति, अवनति, सुख-दुःख, मंगल, अमंगल का कारण मन है। मन की यह गुप्त शक्ति ही विचार या संस्कार के द्वारा बुद्धि को प्रदीप्त करती और शरीर को प्रेरणा करती है। परंतु यदि हमारा मन दृढ़ है, तो उसमें सदैव उत्तम विचारों का प्रभाव होगा। यदि वह दुर्बल है, तो खराब विचार आते रहेंगे।

यह बात भी विचारने के योग्य है कि मानसिक विचारों के कारण भी शरीर रोगी हो जाता है। चिंता, भय, क्रोध, क्षोभ, वेदना, शोक, क्रोध आदि से प्रमेह, मंदाग्नि, कामला, रक्त की कमी, चर्म-रोग, मृगी, उन्माद आदि रोग हो जाते हैं। वेद में इसीलिये मन को सदा शुभ संकल्पवाला होने की प्रार्थना की है।

गीता में भी श्रीकृष्ण ने मन को दुर्निग्रह कहा है। हम मन के संबंध में आगे मनोविज्ञान-नामक प्रकरण में कुछ लिखेंगे।

प्रकरण ८

नेत्र और कान

नेत्र एक महत्त्व-पूर्ण अवयव है। यह अवयव सबसे नाजुक भी है। प्रत्येक वस्तु की तस्वीर मस्तिष्क मे खींचना इसका काम है। उसमे थोड़े भी आघात से अपकार हो सकता है। इसलिये वे खोपड़ी के सामने के दो गढ़ो में, भौं और पलको के द्वारा, सुरक्षित है। इनकी बनावट भी परमेश्वर की कारीगरी का एक नमूना समझना चाहिए। ये नेत्र हड्डी की बनी हुई एक कोठरी में ऐसी सावधानी से रक्खे गए है कि सम्मुख भाग को छोड़ और किसी भी ओर से उन पर कोई आघात नही हो सकता। सामने पलक है, जो तत्काल उनकी रक्षा करने को समुद्यत है। माथे के पसीने को भौं के बाल और धूल-मिट्टी को पलको के बाल आँखो तक नही पहुँचने देते।

आँखों की बनावट बिल्कुल फोटो खींचने के एक केमरे के समान है। केमरा एक अँधेरी कोठरी है, इसमे एक ओर एक छेद रहता है, जिसमे एक शीशा लगा रहता है। दूसरी ओर काँच का एक मसाला लगा हुआ तख्ता रहता है। उसी पर प्रकाश की किरणो का प्रतिबिंब, जो ताल मे होकर आता है, पड़ता है। ताल के सामने ऐसा बदोबस्त होता है कि प्रकाश को यथेच्छ कम-अधिक किया जा सकता है। कोठरी को भी यथेच्छ छोटा-बड़ा किया जा सकता है। यही केमरे की स्थूल बनावट है।

अब आँख की बनावट से इसका मुकाबला कीजिए। केमरे की भाँति उसमे भी एक अँधेरी कोठरी है, जिसके आगे के भाग मे एक ताल लगा है। यह कोठरी गोल है, चौकोर नही। यह कोठरी केमरे की भाँति छोटी-बड़ी नहीं की जा सकती, पर इस काम के लिये आँख के ताल की मोटाई को छोटा-बड़ा किया जा सकता है। प्रकाश को कम-अधिक प्रवेश करने देने के लिये ताल के सामने एक पर्दा लगा रहता है, जिसमें छेद होता है। यह छेद चाहे जब छोटा-बड़ा किया जा सकता है। प्रकाश को बिल्कुल रोकने के लिये दो पलक होते है। केमरे के प्लेट के स्थान पर आँख के पीछे की ओर एक स्पर्शवेदनिक झिल्ली होती है, इसी पर वस्तुओ का प्रतिबिंब पड़ता है।

आँख की बनावट

यदि हम दो गोले लें। एक छोटा और एक बड़ा। और दोनो के दो-दो टुकड़े कर लें। एक छोटा और एक बड़ा। अब बड़े गोले के बड़े टुकड़े मे छोटे गोले का छोटा टुकड़ा जोड़ दें, तो आँख की आकृति ठीक ठीक बन गई समझिए। आँख का अगला ⅙ भाग छोटे गोले के छोटे भाग के बराबर और पिछला ⅚ भाग बड़े गोले के बराबर है। अगला भाग स्वच्छ पार-

दर्शी है और पिछला भाग मटमैला है। पिछला भाग कैमरे की अँधेरी कोठरी के समान है। और अगला भाग उसकी नली है, जिसमें होकर प्रकाश भीतर प्रवेश करता है। यह आँख का गोला तीन तहों से बना हुआ है। तीनों तहों या पटलों का रंग जुदा-जुदा है। बाहरी पटल सफ़ेद है। बीच का काला। और भीतर का नीला-लाल। आँख के आगे के पिछले हिस्से मे तीनो पटल मिल रहते है।

आँख का अगला भाग काला या नीला दीखता है, पर यह काली चीज़ वास्तव में ऊपर नहीं है। वह एक काँच-जैसी स्वच्छ चीज़ मे से चमकती हुई दिखाई देती है। यह वही बाहरी सफ़ेद पटल है, जो आँख के अगले हिस्से मे आकर काँच की भाँति पारदर्शी हो गया है।

इस स्वच्छ पर्दे के भीतर जो काला या नीला पर्दा दिखाई देता है, वह मध्य पटल का अगला भाग है। इसके बीचोंबीच एक गोल छेद है, जो फैलता और सिकुड़ता रहता है। यही छेद पुतली या तारा कहलाता है। आँख के पिछले भाग में यह पटल भी पहले से मिल जाता है। जिस पर्दे मे यह छेद है, उसे उपतारा कहते है।

तीसरा पटल जो भीतरी है, वह आगे आकर अत्यन्त पतला हो गया है, जो तारे के पीछे झिल्ली की भाँति चिपका हुआ है। उपतारा के पीछे आँख का ताल रहता है, जिसका काम वही है, जो कैमरे के ताल या लेंस का है। यह वृद्धावस्था मे धुँधला हो जाता है। इसी को मोतियाबिंद कहते है। जिस प्रकार धुँधले शीशे में प्रतिबिम्ब साफ़ नही दीखता, उसी प्रकार ताल धुँधला हो जाने पर मनुष्यो को भी कम दीखने लगता है। यह ताल मसूर के दाने की आकृति का होता है। और इसका वज़न दो रत्ती के लगभग होता है। इसके ऊपर एक गिलाफ चढ़ा रहता है। और वह एक बंधन से उपतारा-मंडल से बँधा रहता है। ताल के पीछे आँख का बड़ा कोष्ठ है। इसमें एक गाढा कुछ लसदार स्वच्छ अर्ध-तरल द्रव्य भरा रहता है, जो बिल्लौर के समान है। इसका काम आँख की आकृति को ठीक रखना है।

आँख के तीनो पटल बहुत बारीक रेशों से बनाए गए है, और इस अंग में बड़ी कारीगरी विधाता ने ख़र्च की है। दृष्टि-नाड़ी जिसमें लगभग ५ लाख बारीक तार होते है, आँख के पिछले भाग में होकर कपाल के भीतर पहुँचती है। और बृहत्मस्तिष्क के पिछले खंडो में, जहाँ दृष्टि-केन्द्र है, उनका अंत होता है।

देखना

हमारी आँख से २० फुट या इससे अधिक दूरी पर की चीज़ें साफ-साफ दिखाई दे जाती है। इस दूरी के लिये ताल को घटना-बढ़ना नहीं पड़ता। परंतु नज़दीक की चीज़ो को देखने के लिये तालों के परवर्ती उपतारा-मंडल को सिकुड़ना पड़ता है।

कुछ लोगो की दृष्टि ऐसी होती है कि २० फुट से अधिक दूर की वस्तु वे नहीं देख सकते। कुछ लोग दूर की वस्तु देख सकते है, पर निकट की नहीं देख सकते। आँख का यह दोष चश्मे से दूर हो जाता है। यदि चश्मा तत्काल ही न लगाया जाय, तो रोग बढ़ जाता है।

आँखें तभी तक अच्छा देख सकती है, जब तक कि उनके सब अवयव और माध्यम स्वच्छ हों। कनीनिका, जलीय द्रव्य, ताल और ताल के पीछे रहनेवाले द्रव्यों में से कोई भी अस्वच्छ हो, तो देखने मे फर्क आ जायगा। इसलिये आँख-जैसी नायाब चीज को सावधानी से स्वच्छ रक्खो।

यदि आप विचार-पूर्वक किसी अंधे को देखें, तो आप अवश्य ही उस पर तरस खायँगे। यह सूरज, यह धूप, यह सुंदर जगत् सब कुछ उसके लिये एक घोर अंधकार मे डूबे हुए हैं। उसकी बराबर दुःखी जगत् मे कौन है? यदि आपको किसी ऐसे प्रदेश मे छोड दिया जाय, जहाँ सदैव ही अमावस की अँधियारी छा रही हो और कभी जीते-जी उसका प्रभात न हो, तो आप क्या सोचेंगे? और अपने दुर्भाग्य को क्या कहेंगे? फिर वे अंधे, जिन्हें अपनी जीविका भी उपार्जन करना पडता है, कैसे दुःख मे है!

नेत्रों की रक्षा

इसलिये बचपन मे ही नेत्रो की रक्षा करनी चाहिए। छोटे बालक के नेत्रो की यत्न-पूर्वक रक्षा करना उचित है। उत्पन्न होते ही बोरिक एसिड से उसकी आँख धोओ। जैसा कि हमने प्रसव के प्रकरण मे कहा है। जब बच्चा सोता हो, तो उसे मच्छरदानी से ढक दो, ताकि मक्खियाँ उसकी आँख पर न बैठने पावें और उसे रोगी न करने पावें। गर्मी की ऋतु मे जहाँ देखो, बच्चों की आँख आई दीखती हैं और वे उसी दशा मे गदगी आँखो मे भरे खेलते फिरा करते है। मक्खियाँ उन पर बैठकर गदगी को खाया करती हैं और कुछ टाँगो मे लगाकर अच्छे बच्चो की आँखों पर जा बैठती है, और उनकी आँखे भी दुखने लगती है। इस प्रकार एक बच्चे की दुखती हुई आँखो मे २० से १०० बच्चो की आँखें दुखने लगती है।

बच्चो के पढ़ने के स्थान पर प्रकाश काफी होना चाहिए, और उनके बैठने की कुर्सियाँ इतनी नीची हों कि उनके पैर धरती पर टिक जायँ, उनकी मेज़ें भी नीची होनी चाहिए। वे इस तरह रक्खी हों कि जब बच्चा उन पर पुस्तक रखकर पढे, तो वह नेत्रो से एक फुट की दूरी पर हो। पुस्तको के अक्षर भी बडे और साफ होने चाहिए। ख़सरा, माता, लाल ज्वर इनसे अच्छा होने पर बच्चे को कई सप्ताह तक न पढने देना चाहिए। इससे नेत्रो की हानि होने की संभावना है।

दुःख है कि नेत्रों की सफाई की ओर माताएँ कुछ भी ध्यान नही देती। बहुत-सी माताएँ सर्दी के दिनो में बच्चो का मुँह इसलिये नही धोतीं कि उन्हे सर्दी लग जायगी। बहुत-सी माताएँ नज़र से बचाने को बालक को स्वच्छ नही रखतीं।

जब नेत्रो में कुछ पड जाता है, तो बहुधा लोग उँगली या मैले वस्त्र से उसे पोछते है। इससे आँखो मे रोग फैलता है। क्योकि उँगली मे बहुधा अनेक जाति के रोगी जंतु लगे रहते है। फल यह होता है कि आँखो में रोग लग जाता है। प्रातःकाल आँखो मे बहुत-सा मवाद जम जाता है। इस कारण कदापि नेत्रो को मैले रूमाल या हाथो से न पोछो। यदि

आँख में मैल या धूल का कण गिर जाय, तो कुछ बूंद बोरिक एसिड के डालकर स्वच्छ कर लो, या स्वच्छ पानी से धो डालो।

तम्बाकू और शराब आँखों के लिये अत्यधिक हानि पहुँचाते हैं। प्राय तम्बाकू पीनेवाले की आँखें पीली और शराब पीनेवाले की लाल रहती है। इन्हें ठीक-ठीक दिखाई भी नहीं देता है।

नेत्रों की ज्योति कायम रखने के लिये नीचे-लिखे नियम काम में लो —

१—जहाँ काफी प्रकाश न हो, वहाँ पढ़ने को मत बैठो। बारीक काम भी न करो।

२—पढ़ते समय रोशनी पीठ पीछे रखो।

३—जब देर तक पढ़ो या ज्यादा गौर का काम करो, तो कुछ समय तक आँखों को बीच-बीच में बंद कर लो, या खिड़की और हरियाली की ओर कुछ समय देखते रहो।

४—धूल आदि पड़ने पर उन्हें मलो मत, बोरिक लोशन से या साफ जल से उन्हें धो दो।

५—तौलिया-साबुन चिलमची, मुँह पोंछने के कपड़े न दूसरों के स्वयं काम में लो, न किसी को दो। खासकर जिनकी आँखें आई हों, उनको।

६—धुएँ से बचो। यह आँख का प्रबल शत्रु है। घर में थोड़े ही खर्च से रसोई-घर में चिमनियाँ बन सकती हैं, जो घर को धुएँ से सुरक्षित रक्खेंगी।

७—यह सुर्मा बनाकर सदैव काम में लाते रहो। सुर्मा काला १ सेर, मूँगे की राख ५ तोले, समदर-फाग ५ तोले, छोटी इलायची के दाने १ तोला, कपूर २ तोले। पिपरमेंट खुश्क एक तोला नीम के पत्तों के रस में एक सप्ताह घोटो, सूखने पर पिपरमेंट और कपूर मिलाकर काम में लो।

कान

कान के चित्र को देखकर आप जानेंगे कि कान के तीन विभाग हैं—एक वह विभाग, जो बाहर दीखता है। दूसरा वह, जो बाहरी छेद है। वह केवल बीच के कान में जाने का मार्ग है। तीसरे वह, जो भीतरी कान में शब्द जाने का मार्ग है। मध्य कान में एक नली है, जिसका एक सिरा गले से लगा है। यदि यह नली बंद हो जाय, तो मनुष्य बहरा हो जाय। जब किसी को सर्दी होती है और नाक और गला कफ से भरा होता है, तो गला और यह नली जो कान और गले से लगी है, फूल जाती और बंद हो जाती है। यही बहरेपन का कारण है।

जब कान और गले के मध्य की नली बिगड़ जाती है, तो श्रवण के भीतरी भाग में भी बिगाड़ हो जाता है। जब मध्य-श्रवण में मवाद होता है, तब श्रवण-पीड़ा होने लगती है। जब वह बढ़ जाता है, तो कान की झिल्ली को दबाता और फिर छेद करके बाहर निकल आता है। इसका उपचार अन्यत्र वर्णित है।

कान की बनावट

कान की बनावट सीप के समान है। इसमें बहुत-से उभार और दबाव हैं। कान के

नीचे का नरम भाग जिसे लौ कहते हैं, तंतुओं और चर्बी से बना है, शेष भाग तरुणास्थियों से। इस बीच से जो गढा भीतर को जाता है, वह कोई एक इंच लंबी नली है, जो भीतर हड्डी की बनी है। पर भीतर तक नली चर्म से मढ़ी हुई है, और उसमें बहुत-सी छोटी-छोटी गाँठें हैं, इन्हीं में कान का मैल बनता है। यह नली टेढ़ी-मेढ़ी है, यदि कान की लौ को ऊपर और पीछे की ओर खींचकर देखो, तो लगभग भीतर तक सब कुछ देखा जा सकता है। जहाँ यह नली समाप्त होती है, वहाँ एक सफेद रंग का पर्दा लगा हुआ है। कान को सींक आदि से कुरेदने तथा कनपटी पर तमाचा आदि लगने से इस पर्दे के बहुधा फट जाने का अंदेशा रहता है। यह पर्दा तिरछा लगा हुआ है। इस पर्दे के पीछे मध्य कर्ण है। यह वास्तव में एक छोटी-सी कोठरी है, जो शंखास्थि के भीतर रहती है। इसकी चौड़ाई ⅙ इंच और लंबाई तथा ऊँचाई ⅓ इंच से जरा अधिक है। इसकी भीतरी दीवार में दो छेद हैं—एक अंडाकार, दूसरा गोल। यहीं पर वह छिद्र है, जहाँ से एक नली कंठ तक जाती है।

आप यदि नाक के छेदों और मुँह को बंद करके फिर श्वास बाहर निकालने की चेष्टा करें, तो आप देखेंगे कि कान में कुछ भर रहा है। यह वायु है, जो उसी नली द्वारा मध्य कर्ण में भर गई है। इसके बाद भीतरी कान का भाग है। इसकी बनावट बड़ी पेचीदा है। इसकी सभी कारीगरी हड्डी से की गई है। इसकी आकृति कोकला शंख के समान है। अनुमान है कि इसमें १० हज़ार के लगभग सेलें लगी हुई हैं। इस स्थान की तली में बहुत-से छेद होते हैं, उनमें सूक्ष्म नलियाँ अस्थि-फलक तक जाती हैं। यहाँ नाडी-गंड होते हैं, जो वास्तव में नाड़ी सेलों के सूक्ष्म समूह हैं। इन सेलों से दो-दो तार निकलते हैं। एक फलक के दोनों पत्रों के बीच होकर सुरंग की ओर जाता है, दूसरा फलक में स्तंभ की नली में पहुँचता है। ये तार केंद्रगामी और सांवेदनिक हैं। इनका अंत सुरंग के इस पारवाली सेलों के पास हो जाता है।

शब्द कैसे सुन पड़ता है?

आप किसी चीज पर आघात कीजिए, तो उसमें से एक ध्वनि निकलेगी। पर साथ ही उसमें एक कंपन उत्पन्न होगा। वह कंपन वायु-मंडल में भी एक कंप उत्पन्न करता है। इससे वायु में एक प्रकार की लहर उत्पन्न होती है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक ताल में ढेला फेंकने पर उसमें लहरें पैदा होती हैं।

शब्द की लहर वायव्य, द्रव और ठोस तीनों प्रकार के पदार्थों में होती है। शब्द की यह लहर तरल या ठोस पदार्थों में वायु की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से चलती है। यदि वायु का ताप १५० शतांश हो, तो शब्द एक सेकेंड में १,१२० फुट चलेगा। शब्द सर्द वायु की अपेक्षा गर्म वायु में अधिक शीघ्रता से चलता है। जल में वायु की अपेक्षा शब्द चौगुन वेग से चलता है। यदि उसका ताप ८० शतांश हो, तो उसकी चाल प्रति सेकेंड ४,७०८ फुट होगी। लकड़ी में उसकी चाल १० हजार से १५ हजार फ़ुट प्रति सेकेंड और काँच में १६ हजार और लोहे में २६ हज़ार फुट होगी।

शब्द की टक्कर से हमारे कान की वायु में लहरें उत्पन्न कीं। कान के पर्दे में उससे कंपन उत्पन्न हुआ। उससे मध्य कर्ण की तीनों हड्डियाँ हिलने लगीं। [illegible] भी रहता है। उसमें भी आन्दोलन होने लगा। उस तरल के हिलने से केशों पर एक विचित्र प्रभाव पड़ता है, जिसकी सूचना श्रावणी नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क के श्रवण-केन्द्र को हो जाती है। और शब्द का ज्ञान हमें हो जाता है।

ध्यान में रखने की बात यह है कि शब्द तभी सुनाई देगा, जब कि कंपन भीतरी कान तक पहुँचे। यदि बाह्य कर्ण और मध्य कर्ण खराब हो गए हैं, तो घड़ी को माथे पर या दाँतों में दबाकर कोकले तक उसका कंपन पहुँचाया जा सकता है। माथे या मुँह की हड्डियाँ ठोस होने के कारण शब्द को भीतर तक पहुँचावेंगी। पर यदि कोकला भी खराब हो जायगा, तो सुनाई कुछ न देगा।

कर्णांजलि में मैल इकट्ठा होने से या कर्ण-पट फूट जाने से, या मध्य कर्ण में पीप आदि भर जाने से या संधियाँ ढीली पड़ जाने से जो वृद्धावस्था में होता है, मनुष्य को ऊँचा सुनाई देने लगता है।

कान की रक्षा

इन वर्णनों से यह स्पष्ट होता है कि कान एक अति कोमल अंग है, और उसकी रक्षा के लिये निम्न-लिखित उपाय करने उचित हैं—

(१) कान का मैल अति कड़ुवा है, इससे कोई कीड़ा इसमें न जायगा। अकस्मात पड़ जाय, तो बात दूसरी है।

कान के मैल को खुर्चकर न निकालो। यदि वह कड़ा पड़ जाय, और सुनने में बाधा हो, तो खास उपचार करो।

(२) कान के बाल धूल से कान को सुरक्षित रखते हैं। इन्हें नाई से साफ न कराओ।

(३) यदि कान में कोई कीड़ा पड़ जाय, तो जरा-सा गर्म कड़ुवा तेल डालो। इससे वह या तो मर जायगा, या निकल आवेगा। तब गर्म पानी की पिचकारी दे दो।

(४) जोर से नाक न छिड़को। इससे नाक और गले के कीड़े कान और गले की नली के द्वारा कान में प्रवेश करेंगे, जिससे बहरापन हो जायगा।

(५) बच्चों के कान पर न मारो, न कान पकड़कर खींचो। इससे उनके बहरे होने का भय है।

नासिका और जिह्वा

नासिका के दो भाग हैं—एक वह जो बाहर से दिखाई देता है, दूसरा वह जो नथुनों से दिखाई देता है। नाक का अगला हिस्सा नरम है, दबाने से दब जाता है। ऊपर का भाग जो मस्तिष्क के निकट है, कड़ा होता है। यदि नथुनों में से देखा जाय, तो मध्य रेखा के इधर उधर एक-एक नली दिखाई देती है। यही नासा-गुहा है। इनके बीच में एक खड़ा पर्दा लगा रहता है, जो प्राय दाएँ-बाएँ झुका रहता है।

नाक का अगला छिद्र कुछ तिकोना है। उसमे बाल उगे रहते है, जो छलनी का काम देते हैं। श्वास के साथ जो वायु भीतर जाती है, वह धूल आदि साथ नहीं ले जा सकती। नाक की श्लैष्मिक कला मे रक्त अधिक रहता है। शुक्तिका और पर्दे के बीच मे जो अतर है, वह जुकाम होने पर, जब श्लैष्मिक कला फूल जाती है, आपस में मिल जाता है, तब नाक का स्वर बद हो जाता है। श्लैष्मिक कला मे अधिक रक्त रहने का कारण यह है कि जो वायु भीतर जाय, रक्त की गर्मी से गर्म होकर जाय। अधिक ठडी वायु फेफडो के लिये हानिकर है।

नासिका के दो बडे कार्य है। एक श्वास-मार्ग, दूसरा घ्राणेंद्रिय। जब हम साँस लेते है तब वायु नाक के छेदों से नाक में प्रवेश करती है। वह अध· और मध्य सुरंगो में होकर कठ-प्रदेश मे पहुँचती है, वहाँ से स्वर-यन्त्र से फुफ्फुस मे जाती है। प्रश्वास के समय अशुद्ध वायु इसी मार्ग से बाहर आती है। पर जब हम मुँह से श्वास लेते हैं, तब सीधी कंठ से मुँह की ओर और मुँह से कंठ को आती है।

श्वास नाक से ही लेना उचित है। इसका एक कारण तो यह है कि वही श्वास लेने का यत्र है। उसी में बालो की छलनी लगी है, जो गर्द, गुबार और कीटाणुओ को रोक रखती है। दूसरे नाक की मोटी रक्तमय कला वायु को गर्म करके फेफडो मे पहुँचाती है, अर्थात् वह वायु के ताप को शरीर के ताप के अनुकूल बना देती है। इसके सिवा नासिका की श्लैष्मिक कला में कुछ कीटाणु-नाशक शक्ति भी है।

मुँह से श्वास लेनेवालो को सर्दी, जुकाम, खाँसी तथा फेफडे के रोग बहुधा होने का भय रहता है।

घ्राणेंद्रिय

नाक की ऊर्ध्व शुक्ति का तथा श्लैष्मिक कला का काम गंध पहचानने का है। इन दोनो स्थानो की कला को घ्राण-प्रदेश कहते है। इसका क्षेत्र-फल १½ वर्ग इच है। इसका रंग पीला

है। गन्ध दो प्रकार की सेलें होती हैं। एक साधारण, दूसरी गन्धज। गन्ध का ज्ञान तभी हो सकता है, जब गन्धवान द्रव्यों के अनुप्राणाणुओं से स्पर्श करें। इससे घ्राण-सेलों पर प्रभाव पड़ता है, उसके बाद वह स्पर्शानुभव मस्तिष्क के घ्राण-केन्द्र को जाता है, तब हमें गन्ध का बोध होता है।

जिह्वा

जो कुछ भी हम खाते हैं, उसका स्वाद तो जीभ ही द्वारा मिलता है। उसके सिवा जीभ से ही द्वारा हम बोलते-चालते भी हैं। भोजन को भली भाँति चबाने और गोला करने में भी उससे हमें बड़ी सहायता मिलती है। जब कोई चीज दाँतों में अट जाती है, तब वही उसे छुड़ाती है।

जीभ का अगला भाग पतला और नोकीला होता है तथा जड़ मोटी और चौड़ी। उसका रंग गुलाबी होता है। यदि शरीर में रक्त की कमी हो, तो रंग फीका रहेगा। यदि अजीर्ण होगा, तो वह मैली रहेगी, तथा मुँह में दुर्गंध आवेगी।

जीभ मांस से बनी है। मांस पर मोटी श्लैष्मिक कला चढ़ी है। वह कई पेशियों द्वारा अधोहन्वस्थि शिष्य प्रवर्धन और कठास्थि से जुड़ी रहती है। वह जिस मांस से बनी है, वह संकोचशील है। इससे वह सिकुड़ तथा बड़ी-चौड़ी और पतली हो सकती है।

यदि आप जीभ को गौर से देखें, तो उस पर पतले-पतले दाने आपको देखने को मिलेंगे। ये दाने सौत्रिक तंतु, नाड़ी-सूत्र और रक्त-केशिकाओं के इकट्ठे होने से बने हैं। इन पर सेलों की कई तह हैं। जिह्वा की जड़ में ९-१० बड़े-बड़े दाने हैं, ये दो पंक्तियों में हैं, जो पीछे जाकर मिलकर एक बृहत् कोष बनाते हैं। प्रत्येक दाने के चारों ओर एक खाई होती है। इसकी दीवारों में दबे हुए छोटे-छोटे बहुत-से सेल-समूह होते हैं, ये ही स्वाद-कोष हैं। प्रत्येक अंकुर में कोई डेढ़ सौ स्वाद-कोष हैं। दूसरे प्रकार के दाने जीभ के किनारों और अग्र भाग पर रहते हैं, इनमें भी स्वाद-कोष होते हैं। जीभ के अग्र भाग, मूल तथा किनारों पर स्वाद पहचानने की शक्ति अधिक होती है, शेष में स्पर्श-ज्ञान अधिक होता है।

किसी वस्तु का स्वाद तभी पहचाना जा सकता है, जब वह घुली हुई दशा में हो। मुँह में से बहुत-सी लार निकलकर आपके मुँह की वस्तु को घोल देती है। जब उसके अणु रसज्ञ सेलों से टकराते हैं, तब उसकी सूचना नाड़ी तार द्वारा मस्तिष्क के स्वाद-केंद्र को पहुँचती है। जिह्वा के पिछले ⅓ भाग से ये तार जिह्वा कंठ नाड़ी द्वारा मस्तिष्क में पहुँचते हैं। अगले ⅔ भाग के तार रासनिक नाड़ी द्वारा मस्तिष्क को जाते हैं। दोनों नाड़ियों के तार स्वाद-केंद्र में पहुँचते हैं।

मीठा रस जीभ के अग्र भाग से, खट्टा किनारों से, चरपरा जिह्वा-मूल से अच्छी तरह जाना जाता है, शेष कुछ-कुछ प्रत्येक भाग से जाने जाते हैं।

दाँत और नाखून

दाँतों के संबंध में हमने बहुत-सी आवश्यक हिदायतें बच्चों के पालन के अध्याय में की हैं, कुछ सौन्दर्य के प्रकरण में भी हैं। यहाँ हम इतना और बताए देते हैं कि दूध के दाँतों की यदि ठीक-ठीक रक्षा न की गई, तो वे समय से पूर्व ही गिर जायँगे, और देर तक उनकी जगह खाली पड़ी रहेगी। इसका परिणाम यह होगा कि जो दाँत अब निकलेंगे, वे टेढ़े और कमजोर होंगे।

पक्के दाँत बत्तीस होते हैं। पीछे के चार बड़े दाँत सोलह-सत्रह वर्ष की अवस्था तक नहीं निकलते। और जीवनांत तक रहते हैं। नाक-कान की भाँति दाँत भी शरीर के मुख्य अवयव हैं।

दाँतों का काम भोजन को चबाना है, अर्थात् उनको सूक्ष्म कणों में पीसकर थूक में सान देना। इससे पाचन क्रिया में बड़ी भारी सहायता मिलती है। इसके सिवा दाँत बोल-चाल में भी भारी सहायता करते हैं। कभी-कभी बिना दाँतवालों का उच्चारण अत्यंत अस्पष्ट हो जाता है। तंदुरुस्ती के लिये दाँत परम आवश्यक वस्तु हैं, और दाँतों की दृढ़ता पर ही आयु की दृढ़ता निर्भर है।

दाँतों की बनावट

दाँत के तीन भाग होते हैं—१ दंत-शरीर, २ दंत-ग्रीवा, ३ दंत-मूल। सफेद और चमकदार जो मसूड़ों से बाहर निकला रहता है, दंत-शरीर है। इसके नीचे जो मसूड़ों में दबा है, वह दंत-ग्रीवा है और इसके नीचे का भाग दंत-मूल है। दंत-मूल जबड़े की हड्डी के भीतर उस गड्ढे में, जिसको दंत-उलूखल कहते हैं, रहता है। दंत प्रकार-भेद से भी कई प्रकार के हैं। जवान आदमी के कुल ३२ दाँत होते हैं। सामने के दो-दो दाँत जो कुतरने के काम आते हैं, छेदक कहाते हैं। इसकी अगल-बगल के दाँत भेदक और उनकी अगल-बगल के चर्वणक कहाते हैं। इनके पीछे डाढ़ें होती हैं। सबसे पीछे एक डाढ़ जो अकल डाढ़ कहाती है, निकलती है। यह युवावस्था में निकलती है। छेदक और भेदक दाँत में एक मूल होता है। अग्र चर्वणक दाँत में कभी-कभी दो मूल होते हैं। ऊपर के प्रत्येक पिछले चर्वणक में ३-३ मूल होते हैं। नीचे के पिछले चर्वणक में २-२ मूल होते हैं।

दाँत भीतर से खोखले होते हैं। ये कई रासायनिक चीजों से बने हैं। प्रत्येक दाँत की मूल में एक छेद होता है। इसी छेद में होकर रक्तवाहिनी या और नाड़ियाँ दंत में प्रवेश करती हैं। दाँतों को महज़ हड्डी समझकर खूब सख्त चीज उन पर न मली जाय, बल्कि साव-धानी से नरम चीज़ों से उन्हें स्वच्छ रक्खा जाय।

रोगी दाँत

जो लोग दाँतों को नित्य सावधानी से साफ़ नहीं करते, उन्हें उनका जमा-जमा मैल खुरच-कर देखना चाहिए कि वह कितना दुर्गंधित है और इतनी दुर्गंधि को [illegible] में रखना कितना घृणास्पद है। बहुधा दाँत सड जाते हैं, हिलने लगते हैं, फिर भी उन्हें नहीं निकाला जाता। एक-एक सडे दाँत में लाखों कीडे उत्पन्न होते और वे भोजन खाने के समय उसमें मिलकर पेट में चले जाते हैं। वहाँ से वे आमाशय और आँत में चले जाते हैं। और रस को, जो भोजन का बना है, खट्टा कर देते हैं। फलत अजीर्ण, संग्रहणी और मन्दाग्नि के रोग हो जाते हैं।

ये कीडे दाँत से गले की कोठियों में और नाक तथा कान एवं फेफडे तक पहुँच जाते हैं और इन अंगों में भी रोग उत्पन्न कर देते हैं।

जब किसी के दाँत रोगी हो जाते हैं, तब श्वास के साथ दाँत से विषैली वायु मिल जाती है। और यह विषैली वायु फेफडे में मिलकर न केवल उसमें रोग उत्पन्न करती है, परन्तु रक्त में प्रविष्ट होकर संपूर्ण शरीर के लिये हानिकर हो जाती है।

क्षय और संग्रहणी में चिकित्सक का मुख्य काम यह है कि रोगी के दाँतों को उत्तम दशा में रक्खे, और सावधानी से साफ़ करावे। सडे हुओं को निकाल दे। यदि यह नहीं किया जायगा, तो चाहे भी जैसा पुष्टिकर भोजन हो, रोगी को पुष्ट न कर सकेगा।

दाँत सडने का कारण

भोजन के जो कण चबाते समय रह जाते हैं, वे दाँतों में सडकर दाँतों को खराब कर देते हैं। जब एक दाँत सडने लगता है, तो उसके निकटवर्ती दाँत भी कुछ दिन में सडने लगते हैं। जैसे आम जब एक सडता है, तो वह औरों को भी सडाता है।

ये भोजन के कण दाँतों के बीच मसूडों या दाँतों की सतह के छेदों में अटक जाते हैं। और जैसे ही कीडे मसूडों के किनारों में उत्पन्न होने लगते हैं, मसूडे ढीले पडने लगते हैं। दाँतों की जडें खुलने लग जाती हैं। और कीडे इनमें अपना मार्ग बना लेते और बढने तथा पीव उत्पन्न करते हैं। यदि इस दशा में कोई ठंडी या गर्म चीज खाई जाय, तो दाँत दुखते हैं और अंत में धीरे धीरे हिलने लगते और निकम्मे हो जाते हैं।

पान खाने से भी दाँतों का सत्यानास हो जाता है। यह विषय हम पान के प्रकरण में विस्तार से कहेंगे।

दाँतों की रक्षा कैसे की जाय ?

१—जितनी वार कुछ खाओ-पियो, उतनी ही वार दाँतों को स्वच्छ करो।

२—प्रात काल और रात्रि को सोती वार ख़ास तौर पर मंजन, दाँतन और ब्रुश से जैसा सुभीता हो, अच्छी तरह शुद्ध करो।

३— यदि भोजन के कण दाँतों में अटक जायें, तो उन्हें अच्छे प्रकार निकाल दो। और यदि सुई इस्तेमाल करने की जरूरत हो, तो लकडी की चीरकर बना लो, धातु की न इस्तेमाल करो।

४—ब्रुश या दाँतन से ज़रा-सा ख़ून भी निकले, तो चिंता न करो। इसमे मसूढ़े मज़बूत होंगे। पर मसूढ़ो को अधिक अनाड़ीपन से मत रगड़ो।

५—प्रतिदिन प्रात काल ज़रा-सा नमक और कड़ुवा तेल उँगली मे दाँतो पर घिस लिया करो।

६—जब कोई दाँत खोखला होने लगे, तो उसे तत्काल निकलवा डालो, या उसे भरवा लो।

७—तालाब आदि का कच्चा पानी दाँत साफ़ करने के लिये उपयुक्त नहीं, इससे भिन्न-भिन्न रोगों के प्रभाव होने का भय है।

८—नीचे लिखा मंजन नित्य इस्तेमाल करने के लिये अति उत्तम है—

आँवाहल्दी, गुलाबी फिटकरी का फूला, बादाम के छिलके का कोयला, सेंधा नमक और सफ़ेद भुना हुआ ज़ीरा, इन्हे बारीक पीस-छानकर मंजन बनाया जा सकता है।

मूल भाग दो प्रवर्द्धन से दोनो शाखा और एक धमनी से वस्ति के साथ संयुक्त है। ऊपरवाले भाग को लिंग-मुंड तथा बीच के भाग को देह के नाम से पुकारा गया है।

जननेंद्रिय अनेक उत्थानशील ततुओं से बनी है। इन ततुओं के भीतर अनेक छोटी-छोटी नली होती हैं। चैतन्य होते ही इन सब रक्त-नलियों मे रक्त बडे वेग से दौड़ने लगता है। इसी से जननेंद्रिय उत्तेजित हो जाती है। मुड-भाग मे जो छिद्र है, इसमे मूत्राशय से आकर मूत्र-नली खत्म हो गई है। इसी बीच की नली के द्वारा यह दो भागों मे विभक्त हो जाता है। इन शिश्न की दंडिकाओं का लिंग-मुंड से कोई सरोकार नही है। वह एक पृथक् वस्तु है। वे लिंग-मुंड की जड मे समाप्त हो जाती है, और लिंग-मुंड उन पर टोपी की भॉति चढा हुआ है। मूत्र-दंडिका ही आगे आकर फूल जाती है और वही लिंग-मुंड कहाती है।

लिंग-मूल में जाकर ये तीनो दडिकाएँ अलग-अलग हो जाती है। इनके सिरे नोकीले होते है। यह नोकीला भाग अपनी ओर की नितबास्थि से जुडा रहता है। इनके पिछले भाग पर शिश्न-प्रहर्षिणी पेशी लगी रहती है। इसी का यह काम है कि जो रक्त धमनी द्वारा लिंग-दंडिका में पहुँच गया — वह वीर्य-क्षरण तक सिरा द्वारा लौट नही सकता, वही रुका रहता है।

मूत्र-दंडिका मध्य रेखा में ही रहती है। पर पीछे का भाग अधिक मोटा हो जाता है। इसी पर शिश्न-मूलिका पेशी लगी रहती है। यह पेशी आगे जाकर शिश्न-दडिकाओं के पार्श्वों और शिश्नावरण कला से भी लगी रहती है। इसी के संकोच से मूत्र-मार्ग मूत्र से सर्वथा भरा नहीं रहता। जब वीर्य-क्षरण होता है, तभी इस पेशी का सकोच होता है। यदि अंडकोष के पीछे शिश्न-मूल पर उँगली रक्खी जाय, तो इस पेशी का सकोच मालूम हो जाता है। इसी पेशी के सकोच से लिंग मे दृढता आती है।

इसकी बनावट

पुरुष-जननेंद्रिय सौत्रिक ततु और अनैच्छिक मास से बनाए हुए तीन बेलनाकार दडों से बनती है। इनमे दो दडे पास-पास और सामानांतर शिश्न के ऊपर के भाग में रहते हैं। तीसरा दंड जो भीतर से खोखला रहता है, इन दोनो दडों के बीच में रहता है। जो नली इस नीचेवाले दडे मे रहती है, वही मूत्र-मार्ग है।
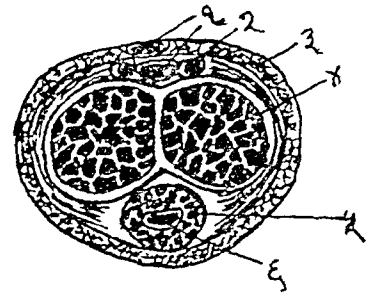
शिश्न की बनावट

१ शिरा, २ धमनी, ३ त्वचा, ४ शिश्न-दडिका, ५ स्पजिका, ६ मूत्र-मार्ग।

इन दंडिकाओं के बेलनाकार होने के कारण उनके बीच मे ऊपर और नीचे एक अंतर रहता है। ऊपर के अतर मे जननेंद्रिय की दो धमनियॉ एक शिरा और दो नाडियॉ रहती हैं। यदि लिंगेंद्रिय को दबाकर देखा जाय, तो धमनी की फडक यहॉ स्पष्ट मालूम देती है। नीचे का अतर गहरा होता है। यही मूत्र-दंडिका रहती है।

तीनों दडो की बनावट स्पञ्ज-जैसी है। ये सफेद और पीले रंग के सूक्ष्म तन्तुओं से बने हैं। इन्हीं तन्तुओं में कुछ अनैच्छिक मांस भी रहता है। इन दडों के भीतर छोटे-छोटे आशय या कोष हैं, जिनकी दीवारें सूक्ष्म तन्तुओं और मांस से बनी हैं। उत्तेजना के समय इन्हीं में रक्त भर जाता है। जिस प्रकार रबर की थैली पानी भर जाने पर सख्त हो जाती है, उसी प्रकार इन आशयों में रक्त भरने से शिश्न मोटा और दृढ़ हो जाता है। जब मैथुन-क्रिया समाप्त

शिश्न-दडिका की सूक्ष्म रचना सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा बढाई हुई
१ आशय, २ मास, ३ सौत्रिक तंतु।

हो जाती है, तब रक्त शिरा द्वारा लौट जाता है। और खाली रबर की थैली की भाँति शिश्न ढीला हो जाता है। यदि आप ताज़े वीर्य को एक कांच के गिलास में रख दें, तो उसकी दो तह आपको देखने को मिलेगी। ऊपर की तह पतली, अपारदर्शी, दही के तोड के समान द्रव की तथा नीचे की तह गाढे सफ़ेद रंग की। वीर्य मे जितने शुक्र-कीट थे, वे नीचे बैठ गए, ऊपर की तह में जल-लवण और टूटी-फूटी सेले रह गई हैं। ये शुक्र-कीट जल मे ज़िंदा नहीं रह सकते। अम्ल रस मे भी तत्काल मर जाते है। ये कीट १५-१६ वर्ष की आयु से बालक में बनना प्रारंभ होते है और २५ वर्ष की आयु मे ख़ूब पुष्ट हो जाते हैं।

अंडकोष

ये दो ग्रंथिमय यंत्र है। इन्ही से पुरुष का वीर्य बनता है। यह मुष्क-नामक दो चमडे की थैली मे रक्खे है। इनमें वस्ति से दो वीर्य-रज्जु आई है, उनसे अवलंबित है। साधारणत प्रत्येक अंड १½ इंच बडा होता है। इसका सम्मुख पश्चात् भाग १¼ इंच और अनुपस्थ अंश ३-४ मे १ इंच तक होता है। वज़न ३-४ से १ औंस तक। दोनो मे एक ज़रा बडा होता है।

मूत्राशय का पिछला भाग

१ मूत्र-प्रणाली ।

२ शुक्र-प्रणाली ।

३ मूत्राशय ।

४ शुक्राशय ।

५ अष्ठीला (प्रोटेस्ट) ।

इनकी त्वचा बहुत पतली होती है और उस पर सूक्ष्म बाल होते है, इसके नीचे चर्बी नही है । चर्बी के स्थान पर अनैच्छिक मास की एक तह होती है । इसी मांस के सकोच-प्रसार से थैली छोटी-बडी होती रहती है । अंड-कोप भीतर से एक पर्दे द्वारा दो भागों मे विभक्त रहता है, जिसका बाहरी चिह्न वह सेवनी है, जो अडकोप के बीच मे दिखाई देती है । यह सेवनी पीछे मल-द्वार तक और आगे मणि तक रहती है ।
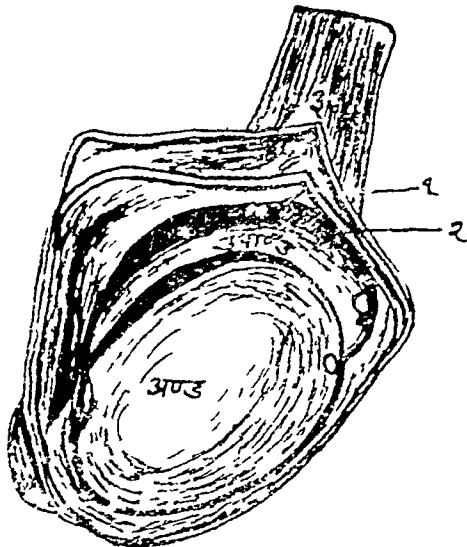
अंड में जो मुर्गी के अंडे के समान गोलियाँ

अंड तथा उपांड

१ अडकोप के भीतरी स्तर, २ अंडवेष्ट

३ अंड-रज्जु ।

है, प्रत्येक गोली के दो सिरे, दो किनारे और दो पार्श्व हैं। ये कुछ तिरछी पड़ी रहती हैं। ऊपर का सिरा कुछ आगे को और बाहर की ओर, और नीचे का पीछे को तथा भीतर की ओर होता है। इसके पीछे के किनारे से एक लंबा-पतला और चपटा पिंड लगा रहता है, इसे उपांड कहते हैं। अंड और उपांड एक झिल्ली द्वारा ढका रहता है। इस झिल्ली की दो तह होती हैं। इसके सामने का भाग चिकना रहता है, और कुछ गीला रहता है। इन्हीं दो तहों के बीच जल एकत्र होने से अंड [illegible] बढ़ता है, जिसे कहते हैं कि पानी उतर आता है।

शुक्र-ग्रंथि में लगभग ३०० छोटे-छोटे कोष होते हैं। इन कोषों में बाल-जैसी पतली नलियाँ रहती हैं। इन नलियों की संख्या ८००-९०० के लगभग है, जो सौत्रिक तन्तु द्वारा मिली रहती हैं। ये सब नलियाँ मुड़ी हुई रहती हैं। यदि सबको सीधा किया जाय, तो लगभग पौन मील लंबी हो सकती हैं। ग्रंथि के अगले भाग में आरंभ होकर नलियाँ पिछले किनारे की ओर जाती हैं। ज्यों-ज्यों वे पीछे की ओर जाती हैं, एक दूसरे से जुड़ती रहती हैं और आखिर ग्रंथि के पिछले भाग में एक जाल-सा बनता जाता है। इस जाल से कोई २०-२५ बड़ी-बड़ी नलियाँ आरंभ होती हैं, और ग्रंथि से बाहर निकलती हैं। ये बहुत मुड़ी होती हैं, इन्हीं से उपांड का शिरोभाग बनता है। उपांड के सिर पर इन नलियों से एक बड़ी नली बनती है, जिसको शुक्र-प्रनाली कहते हैं। यह बहुत मोड़ खाती हुई अंड के पिछले भाग तक पहुँची है। यदि इसे सीधा लंबा किया जाय, तो २० फुट के लगभग लंबी होती है। शुक्र-ग्रंथि की नलियों में ही शुक्र बनता है।
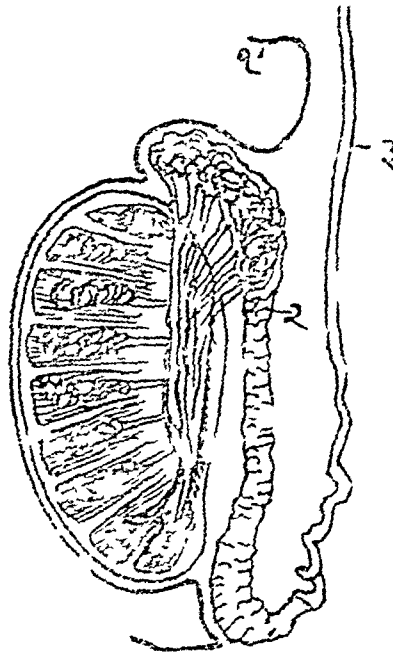
अंड और उपांड की रचना
१ अंड-वेष्ट २ उपांड
३ शुक्र-प्रनाली।

इसी शुक्र-प्रनाली, इसकी धमनी, अंड की धमनी तथा कई एक शिराओं की एक रस्सी के सहारे अंड लटका रहता है। शुक्र-प्रनाली, शिराएँ और लसीका-वाहिनियाँ अंड से आरंभ होकर उदर में चली जाती हैं। धमनियाँ और नाड़ियाँ उदर से अंड में आती हैं।

इस प्रनाली में जो वीर्य बनता है, वह शुक्र-कोष में एकत्रित होता है। ये दो थैलियाँ हैं, जो वस्ति-गह्वर में मूत्राशय के पिछले भाग में लगी रहती हैं। इनके पीछे मलाशय रहता है। शुक्र-कोष की लंबाई २-३ इंच होती तथा वह भिन्न-भिन्न पुरुषों में छोटा और बड़ा होता है। इसके अंत पार्श्व से शुक्र-प्रनाली लगी रहती है। जहाँ शुक्र-प्रनाली शुक्र-कोष से

जुडी है, वही से एक पतली नली का आरभ होता है, इसे शुक्र-स्रोत कहते हैं। यही शुक्र-स्रोत प्रोस्टेट ग्रंथि के भीतर घुसकर मूत्र-मार्ग खोलता है।
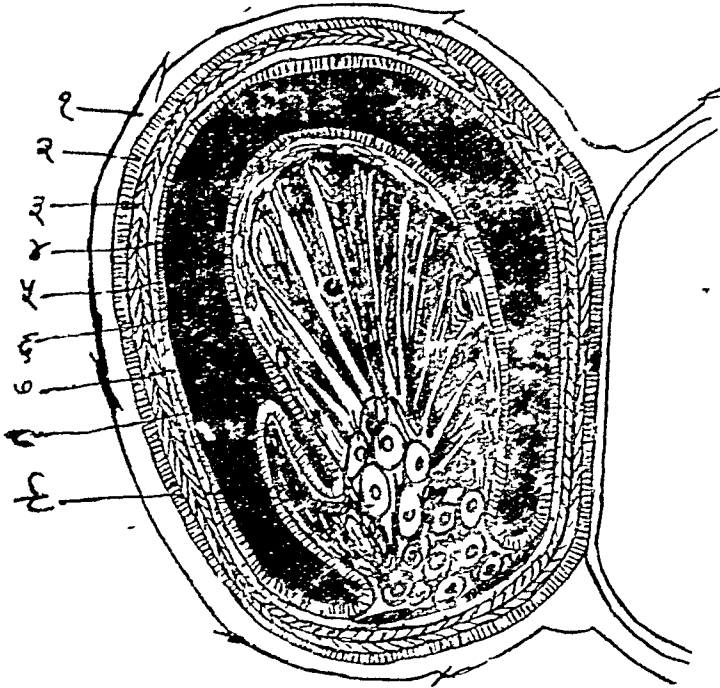
१ त्वचा।
२ अनैच्छिक मास।
३-४-५ उदर की मास-पेशियों के स्तर।
६ अड-वेष्ट का वाह्य स्तर।
७ अड-वेष्ट की भीतरी स्तर।
८ सौत्रिक ततुओं का स्तर।
९ उपाड।

अंडकोष-छेदित

वीर्य दूधिया रंग का गाढ़ा लसदार जरा क्षारीय प्रतिक्रियावाला और द्रव होता है। उसमे एक विशेष प्रकार की गंध आया करती है। कपडे पर उसका हलका पीले रग का धब्बा पडता है। सूखने पर वह सख्त हो जाता है। वीर्य का गुरुत्व जल से अधिक है। एक बार मैथुन मे आधा तोला से एक तोला तक वीर्य निकल जाता है। इसके १०० भागों मे ९० भाग जल, तीन भाग खटिक और स्फुट के योगिकों—के एक भाग सोडियम के क्षार और एक भाग अन्य लवणों का होता है। ५ भाग कई प्रकार के सेलों के होते है।

यदि ताजा वीर्य खुर्दबीन से देखा जाय, तो उसमे बडी तेजी से फिरते हुए असख्य कीटाणु दीख पडते है। यही शुक्र-कीट है। इनकी लबाई $\frac{१}{१०००}$ से $\frac{१}{५००}$ इच तक होती

शुक्र-कीट

है। उसका सिर मोटा तथा पूँछ पतली होती है। सिर की मोटाई एक इंच का १ हज़ारवाँ भाग होता है।

ये शुक्र-कीट शुक्र-तरल में तैरते दीखते हैं। निर्बल कीट धीरे-धीरे और शक्तिवान् खूब तेज़ी से। एक ही पुरुष के वीर्य में कभी ये कीट कम और कभी अधिक दीख पड़ते हैं। कई पुरुषों के वीर्य में ये कीट होते ही नहीं। वे पुरुष मैथुन कर सकते हैं, पर सन्तानोत्पादन नहीं कर सकते। एक बार मैथुन करने में जितना वीर्य निकलता है, उसमें २० करोड़ से अधिक ये जंतु होते देखे गए हैं।

शुक्र कीट परिवर्धित

जननेंद्रिय की रक्षा

जब लड़का १५-१६ साल की आयु का हो जाता है, तब उसके शरीर में परिवर्तन आरम्भ होता है। परंतु इस आयु में यद्यपि उसने युवावस्था प्रारंभ की है, परंतु अभी पुरुषत्व को प्राप्त करने के लिये और ८ वर्ष की कमी है। ठीक पुरुषत्व तो २४ वर्ष की आयु में ही उसे प्राप्त होता है और वह पिता बनने के पूर्ण योग्य होता है।

यौवन का आगम

जब लड़के यौवन में प्रवेश करते हैं, तब उनमें यह परिवर्तन होने लगता है कि बगल और पेड़ू पर बाल जमने लगते हैं, ध्वनि बदल जाती है। लिंगेंद्रिय बढ़ जाती है, अंडकोष में वीर्य उत्पन्न होने लगता है।

इस समय माता-पिता यदि लड़के की सावधानी से रक्षा न करें, तो उसका चरित्र भ्रष्ट हो जाना बहुत संभव है। १६ से २५ वर्ष तक लड़के को सदैव परिश्रम और काम में लगाए रक्खे, कुसंगति से उसे बचावे। ईश्वर-चिंतन और प्राणायाम का अभ्यास करावे, उत्तम पुस्तकें पढ़ने को दे, एकांत में न रहने दे, वृद्धों की संगति करावे।

स्वप्न-स्राव

तंदुरुस्त अविवाहित युवा पुरुष के शरीर से संचित वीर्य १०-१५ दिन के अंतर से रात्रि में सोने के समय निकल जाता है। कभी-कभी महीने में एक बार और कभी २-३ मास में एक बार भी ऐसा होता है। कभी कुछ स्वप्न भी दीखता है। यह स्वाभाविक घटना है, इससे चिंतित न होना चाहिए, न अख़बारी विज्ञापनों की दवा खानी चाहिए। अलबत्ता यदि यह घटना १० दिन से पूर्व हो और दूसरे दिन सिर-दर्द या थकावट प्रतीत हो, तो सुयोग्य वैद्य से सम्मति लेनी चाहिए।

संयम से रहना और ख़राब आदतों से बचना वीर्य-रक्षा करने का साधन है।
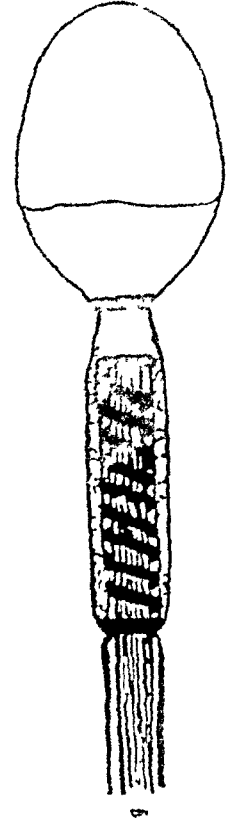
कुटेव

बच्चों को नंगा रखने, उनकी जननेन्द्रिय को साफ न करने आदि से बालक अपनी जननेन्द्रिय से खेलने लगता है या मसलने लगता है। पीठ पर लेने या गोद में लेने से भी उसमें रगड लगती है, इससे बालक बडा होने पर हस्त-क्रिया की कुटेव सीख जाता है। घर के नौकर और पाठशाला के बालक भी उसे यह कुकर्म सिखा देते हैं।

सावधानी से बच्चे की जननेन्द्रिय को साफ रक्खो। यदि उसमें मैल जम जायगा, तो वह अवश्य उसे मसलने या खुजाने लगेगा। यदि वह बारंबार खुजावे या मसले, तो उचित है कि उसका खतना करा दिया जाय।

कुटेव होने से बालक जितनी बार यह क्रिया करता है, उतनी बार अपने जीवन का अंश काटकर फेंकता है। कुटेव से एक बार में जितना वीर्य जाता है, उसका मूल्य ½ पाव रक्त जाने के बराबर है। यदि किसी में यह लत पड गई है, तो उससे उसे छुडाने का उपाय खतना करा देना है।

प्रकरण १२

स्त्री-जननेंद्रिय और उसकी रचना

स्त्री-जननेंद्रिय की विशेषता

आश्चर्य की बात तो यह है कि जननेंद्रिय की विचित्र क्रिया में पुरुष और स्त्री दोनो समान भाग से सहभागी होते है। पर मुख्य परिणाम स्त्री के ऊपर पड़ता है। स्त्री के ही उदर में रक्षित होकर बालक का जीवन प्रारंभ होता है। और स्त्री के ही शरीर में २८० दिन तक वह रहता भी है। फिर १½-२ वर्ष तक वह माता ही पर दूध पीकर निर्भर रहता है। दूध छुट जाने पर भी वह कई वर्ष तक माता की रक्षा में पोषित होता रहता है। इससे साफ़ जाहिर है कि इस दृष्टि से माता का महत्त्व पुरुष की अपेक्षा अधिक है।

परंतु हमें फिर खेद प्रकट करना पड़ता है कि घर के काम-काज, अविद्या, अज्ञान और अनेक प्रकार के प्रपंचो में रहकर स्त्रियों का शरीर और स्वास्थ्य सर्वथा नष्ट कर दिया जाता है। वे कदन्न खाती और अति गंदी रहती तथा अल्पकाल में ही वृद्धा हो जाती है।

स्त्री-जननेंद्रिय का आकार

स्त्री-जननेंद्रिय के अवयवों में दो मुख्य हैं। स्त्री-अंड-फल-कोष और दूसरा गर्भाशय। फल-कोष दो छोटी-छोटी गोलाकार वस्तुएँ है। वे उदर के निचले भाग में है। फल-कोष में छोटे-छोटे दाने उत्पन्न होते है, जो १ इंच में १२० समा जाते है।

फलवाहिनी नली ४-५ इंच लंबी होती है। और एक छोर पर गर्भाशय से जुड़ी रहती है। दूसरा इसका छोर फल-कोष तक गया है। इसी के द्वारा दाना फल-कोष से गर्भाशय में आता है। यह बात हम गर्भाधान-प्रकरण में विस्तार से बताएँगे।

स्त्री-जननेंद्रिय की बनावट

भग, भगांकुर, योनि, भगोष्ठ, जरायु, अंडाधार आदि सब मिलकर स्त्री-जननेंद्रिय कहाते है। यह अंत. और बाह्य दो विभागों में विभक्त है। इसमें भग, भगांकुर, बृहदोष्ठद्वय, क्षुद्रोष्ठद्वय, कामाद्रि, प्रसवद्वार, सतीच्छद, योनि आदि बाह्य जननेंद्रिय तथा अंडाधार, डिंबवाही नली (दोनो) और जरायु ये तीन अंतर्जननेंद्रिय कहाती है। दोनो स्तनों का इससे घनिष्ठ संबंध है।

कामाद्रि

भग के ऊपरी अंश को कहते है। युवावस्था में यहाँ लोम उत्पन्न हो जाते है।

योनि

यह एक नलाकार गह्वर है, जो जरायु से भग तक फैला है। इसका नीचे का अंश

संकीर्ण और ऊर्ध्व प्रसारित है । योनि के सामने मूत्राशय और प्रसव-द्वार, पीछे सरलांत्र और विटप, दोनो तरफ़ प्रशस्त दो बंधनी और ऊपर यह जरायु से संयुक्त है ।

बृहदोष्ठद्वय

दोनो बृहदोष्ठ योनि-मुख के दोनो तरफ स्थित हैं । इसका बहिर्देश त्वक् और अभ्यंतर भाग श्लैष्मिक झिल्ली से आवृत है । बचपन मे ये दोनो ओष्ठ भीतर से परस्पर मिले रहते हैं । पुरुष-संग से पृथक् हो जाते है ।

क्षुद्रोष्ठद्वय

बृहदोष्ठद्वय के भीतर दोनो क्षुद्रोष्ठ है । दोनो तरफ के क्षुद्रोष्ठ भगांकुर के पास आकर, दो विभाग मे विभक्त हो जाते हैं ।
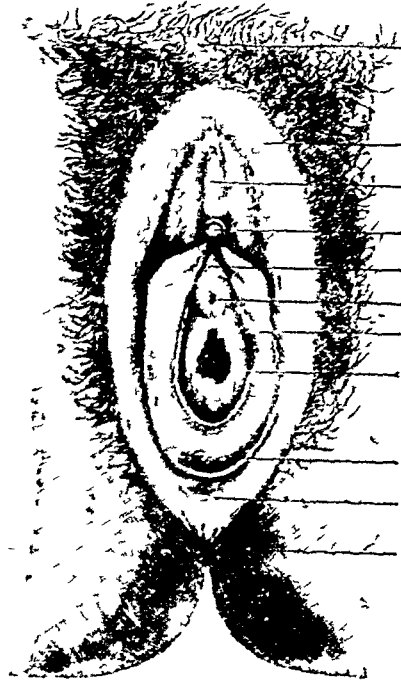
नारी-जननेंद्रिय

भगांकुर

ऊपर दोनो बृहदोष्ठ का जहाँ सम्मिलन हुआ है, उसके प्राय आध इंच नीचे भगांकुर है। यह लिंगेंद्रिय की भाँति उत्थानशील तंतुओ से बना है । तथा रति-काल मे उत्तेजित हो जाता है ।

सतीच्छद

प्रसव-द्वार के नीचे योनि-मुख है । शैशवावस्था मे वह एक पतली झिल्ली से आवृत रहता है । उसको सतीच्छद कहते हैं । पुरुष-संग से सतीच्छद फट जाता है । किसी-किसी का सतीच्छद इतना कड़ा होता है कि बिना काटे पुरुष-संग नहीं हो सकता ।

विटप

यह योनि-मुख के पीछे और मल-द्वार के सामने करीब १½ इंच लंबा है ।

जरायु (गर्भाशय)

यह ठीक बड़े अमरूद की भाँति है । सामने और पीछे का अंश थोड़ा चपटा तथा भीतर पोला है । इसी को गर्भाशय कहते है । पुरुष के शुक्र और स्त्री के अंड-संयोग से इसी यंत्र में गर्भ बनता है ।
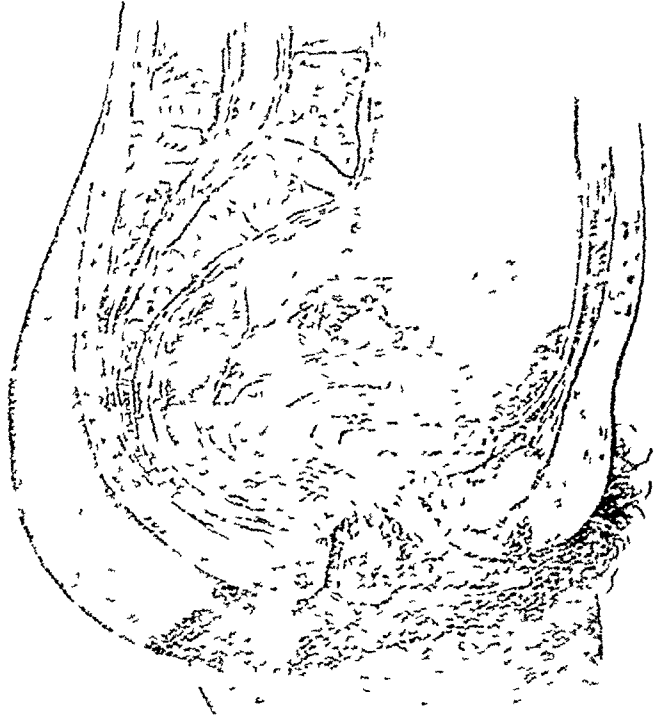
गर्भाशय—लंबाई के रुख कटा हुआ

स्तन

यद्यपि दोनो स्तनों का प्रत्यक्ष जननेंद्रिय से कुछ भी संबंध नही दीखता है, परंतु वास्तव मे स्तनों का जननेंद्रिय से गहरा संबंध है।

ये दो गिल्टियाँ छाती पर दोनो ओर होती है। मर्दों और छोटी लडकियो की ये गिल्टियाँ बहुत छोटी होती है। मर्दों की तो बडे होने पर वैसी ही रहती है, पर स्त्रियो की युवावस्था होने पर बढ जाती है। किन्हीं-किन्हीं स्त्रियों के स्तन बहुत ही बडे होते है। प्रत्येक स्तन में १५-२० पृथक्-पृथक् गिल्टियाँ होती है। ये छोटी गिल्टियाँ महीन थैलियो की बनी होती है, जिनसें यह तासीर है कि वे खून का दूध बना देती है। इन थैलियो से बारीक नलियाँ पेच और मुरेर खाकर एक दूसरे मे मिल जाती है। अंत मे सब की एक नली हो जाती है, जिनमे दूध भरा रहता है। यह हौज ऊपर बढ हो जाता है, ऊपर की घुंडी मे बहुत-से महीन छेद फव्वारे की भाँति के होते है, जिनमे दूध निकलता है। गर्भ के दिनो मे छातियाँ बढ जाती है। बाँझ स्त्रियो की छातियाँ नही बढ़ती। प्रसव के बाद वे शिथिल हो जाती है।

स्त्री-जननेंद्रिय की रक्षा

१० से १५ वर्ष की अवस्था मे स्त्रियों मे यौवन का उदय होता है, और १८ वर्ष की आयु में वे स्त्री होने अर्थात् बच्चा पैदा करने के योग्य हो जाती है।

प्रत्येक माता को उचित है कि वह कन्या को जननेंद्रिय के संबंध में आवश्यक बातें बता दे। बहुधा इस विषय में अज्ञान रहने से लड़कियाँ अनेक कुटेव कर बैठती हैं।

कन्या चाहे भी जितनी छोटी हो, उसके नाभि के नीचे के अंग अच्छी तरह धोकर स्वच्छ रखने चाहिए। नहीं तो उनमें मैल जम जायगा, और उनमें खाज उत्पन्न हो जायगी।

कन्याओं को नंगा फिरने देना नीच काम है, ऐसा कदापि न करना चाहिए। न लड़के-लड़की को एक पलँग पर सोने देना चाहिए। न उन्हें ऐसे वस्त्र पहनावे कि नाभि से नीचे के अंग दीख पड़ें।

कन्याओं को जब प्रथम बार मासिक धर्म हो, तो माता को बताना चाहिए कि इस समय सर्दी शीघ्र लग जाती है। और उसे अपने स्वास्थ्य की रक्षा के लिये क्या करना चाहिए।

यौवन के प्रारंभ में कन्या अधिक परिश्रम न करे और ९-१० बजे से अधिक न जागे।

अध्याय चौथा

गर्भाधान और प्रसव

प्रकरण १

गर्भाशय

गर्भाशय (Uterus) अर्थात् बच्चेदानी पेड़ू मे पेशाव की थैली के पीछे और आँतो के आगे होता है। इसका आकार तिकोना होता है। चौड़ा भाग ऊपर को और पतला भाग, जिसे बच्चेदानी की गर्दन कहते है, नीचे को होता है। बच्चेदानी की गर्दन के नीचे की नोक पर एक छेद होता है, जिसे बच्चेदानी का मुख कहते है। बच्चेदानी के भीतर का भाग इसी छेद द्वारा योनि से मिला है। ऊपर के भाग मे दाहने और बाएँ कोने मे एक-एक छेद है, जिसमे से एक नली बच्चेदानी से दोनो ओर ओवेरी (Ovary) तक गई है। इस नली को अँगरेजी मे फेलोपियन ट्यूब
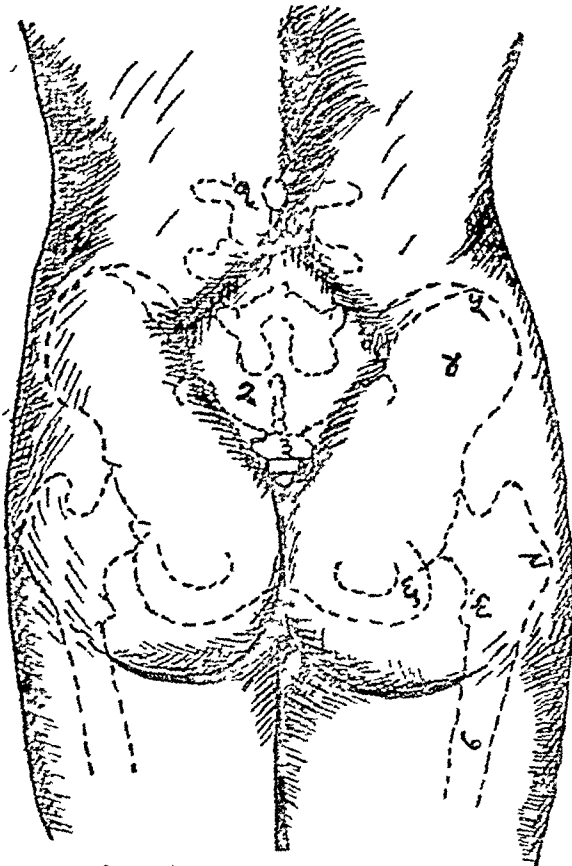
उदर मे गर्भाशय का स्थान और उसके विभाग

१ कटि-कशेरुका, २ त्रिकास्थि, ३ पुच्छास्थि, ४ अनामिकास्थि, ५ अनामिकास्थि का शिखर, ६ कुकुंदरास्थि की गाँठ, ७ ऊर्वस्थि, ८ ऊर्वस्थि का बड़ा उभार, ९ ऊर्वस्थि का छोटा उभार।
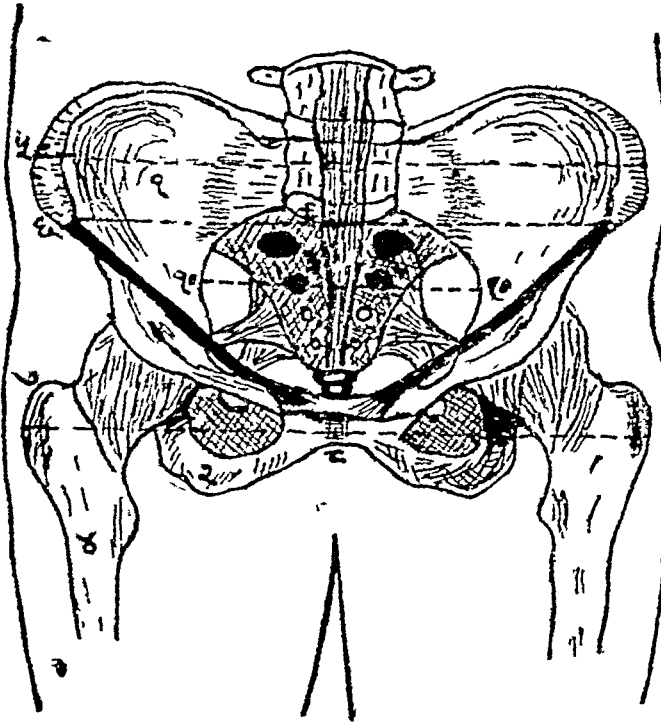
(Falopion Tube) कहते हैं। इसका आकर तुरही के समान होता है। इसका चौडा सिरा 'ओवेरी' से और तग बच्चेदानी से मिला होता है।

साधारण अवस्था मे बच्चेदानी प्राय तीन इच लबी, दो इच चौडी और एक इच मोटी होती है। और उसकी दीवारें प्राय. मिली हुई होती है, परतु गर्भावस्था मे ज्यो-ज्यो गर्भ बढता है, बच्चेदानी भी बढ़ती जाती है। यहाँ तक कि जब पूरे दिन हो जाते हैं, तो नाभि के ऊपर तक पेट को घेर लेती है।

गर्भाशय के स्थान का भीतरी विवरण

१ अनामिकास्थि, २ कुकुंदरास्थि की गॉठ, ३ त्रिकास्थि ४ उर्वस्थि, ५ शिखर व्यास, ६ मध्य व्यास, ७ उरु अर्वुद मध्यव्यास, ८ विटप सधि, ९ त्रिकास्थि अर्बुद, १० प्रवेश-द्वार का वाम-दक्षिण व्यास।
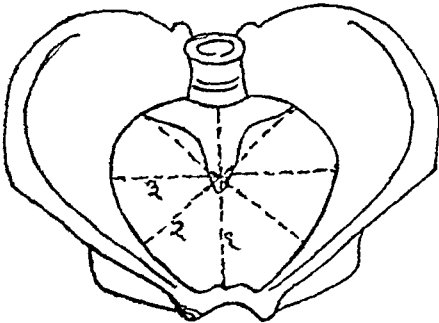
प्रवेश-द्वार का व्यास

१ अग्रपश्चिम व्यास, २ वाम-तिर्यक् व्यास, ३ वाम-दक्षिण व्यास।
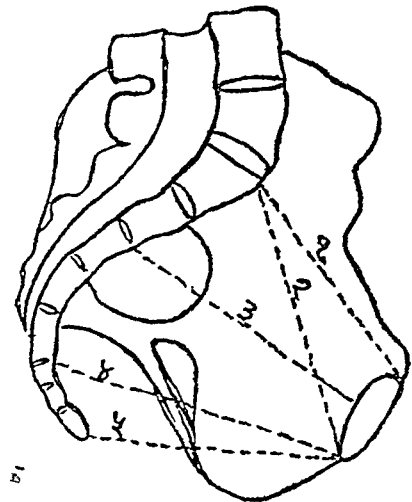
वस्ति-गुहा के भाग

१ प्रवेश-द्वार, २ कर्ण-संयुक्त व्यास, ३ अति विस्तृत भाग, ४ अति संकुचित भाग, ५ निर्गम-द्वार।

बच्चेदानी बंदों के द्वारा अपनी जगह पर ठहरी है। गर्भ के दिनों में ये बंद लंबे हो जाते हैं, और प्रसव हो चुकने पर बच्चेदानी के सिकुड़ जाने पर ये भी सिकुड़ जाते हैं। यदि ये बंद न सिकुड़ें, तो बच्चेदानी अपने स्थान से हट जाती है, या तिरछी हो जाती है, जिससे प्रसव के बाद में अनेक रोग होने की सम्भावना होती है। बच्चेदानी के दोनों ओर एक चौरस फैला हुआ बंद चमगादड़ के पर की भाँति होता है, इसे अँगरेजी में ब्राड लिगेमेंट (Broad ligament) अर्थात चौड़ा बंद कहते हैं। यह बच्चेदानी से लेकर पेड़ू के बगल तक होता है। इसकी दो तह होती हैं और दोनों तहों के बीच में बच्चेदानी के सिवा 'ओवरी' और 'फेलोपियन ट्यूब' भी आ जाते हैं।
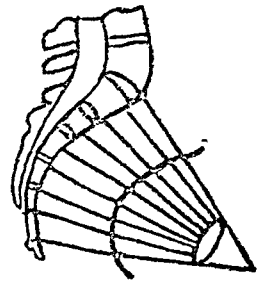
वस्ति-गुहा का अन्त

'ओवेरी' (Ovary) यह बादामी आकार की दो गिल्टियाँ बच्चेदानी के दोनों ओर होती हैं। इसमें बहुत-सी थैलियाँ रस से भरी हुई अंडे के समान होती हैं। इसी रस में स्त्री का रज होता है और यह इन्हीं 'फेलोपियन ट्यूब' के द्वारा बच्चेदानी में आता है।

साधारण दिनों में ये थैलियाँ बहुत छोटी होती हैं, परंतु मासिक धर्म के दिनों में इनके टूट जाने से रज उपर्युक्त ट्यूब के ज़रिए बच्चेदानी में आता है। और यदि गर्भ न ठहर जाय, तो मासिक स्राव के रूप में निकल जाता है। साधारण अवस्था में इन थैलियों के टूटने से जो घाव होता है, वह बहुत जल्द सूखकर सिर्फ़ एक चिह्न-मात्र रह जाता है, परंतु जब गर्भ रह जाता है, तब 'बच्चेदानी' और 'ओवेरी' में बहुत कुछ उलट-पुलट हो जाता है।
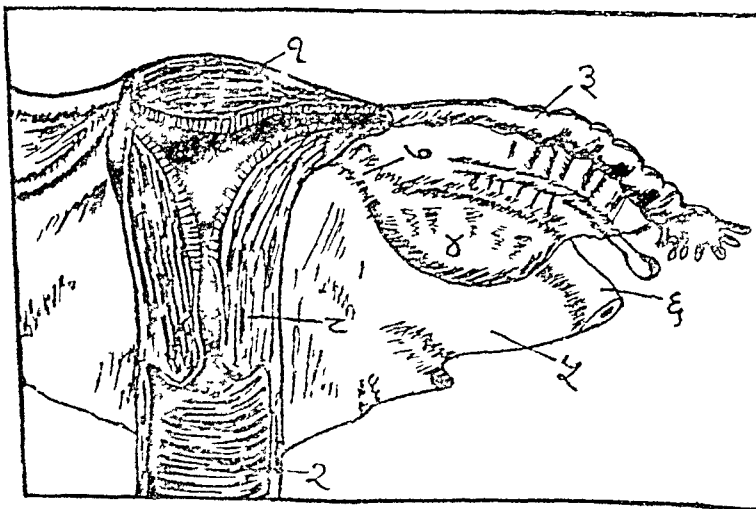
अंतरीय स्त्री-जननेंद्रिय

१ गर्भाशय-मुंड, २ योनि, ३ डिंब, ४ डिंबज, ५ विस्तृत स्नायु, ६ गोल स्नायु, ७ डिंबग्रंथि स्नायु, ८ गर्भाशय-ग्रीवा।

प्रकरण २

ऋतुकाल

१२ वर्ष की अवस्था से लेकर ५० वर्ष की अवस्था तक प्रतिमास स्त्रियों की योनि से लाल रंग का एक दुर्गंधित पानी निकला करता है। देश-काल और प्रकृति के भेद से आयु में कभी-कभी परिवर्तन हो जाया करता है। प्राय एक महीना वंद होने और दूसरे के जारी होने में २८ दिन लग जाते हैं। और ३ से ६ या ७ दिन तक स्राव जारी रहता है। मासिक धर्म प्रारंभ होने पर ही कन्याओं मे स्त्री-भाव आ जाता है।

मासिक धर्म प्रारंभ होने और समाप्त होने—दोनो ही काल स्त्रियों के लिये अति कठिन हैं। थोडी भी असावधानी से बहुत-से रोग लग जाते है। ठंडे देशों में ५-६ तोला रक्त और गर्म देशो में कुछ अधिक निकल जाता है। गर्भावस्था में यह रक्त वंद रहता है। 'ओवेरी' की थैलियों में जो लसदार पीले रंग का रस भरा रहता है वह बच्चेदानी मे आकर स्राव होता है उसी से गर्भस्थ शिशु पलता है।

प्रत्येक स्त्री ३६ वार ऋतुमती हो लेने के बाद वह गर्भाधान के योग्य होती है। इस समय से पूर्व गर्भाधान करने से संतान और स्त्री दोनो के ही स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। अनुमानत. १२-१३ वर्ष की अवस्था मे कन्याएँ प्रथम वार ऋतुमती होती हैं और १६ वर्ष की अवस्था उनके गर्भाधान के योग्य उपयुक्त है।

ऋतु-काल में सावधानी

प्रथम चार दिवस—जब तक रक्त-स्राव होता रहे—स्त्री को अति सावधानी से व्यतीत करने चाहिए। वह मन-वचन से ब्रह्मचारिणी रहे, चटाई पर सोवे, पति तक का मुख न देखे। हाथ में, पत्ते में या सकोरे में खाय। भोजन दूध, खीर आदि पुष्ट, सात्त्विक और सादा हो। दिन में सोना, अंजन, रोना, स्नान, तेल की मालिश, उबटन, नाख़ून काटना, दौड-धूप, हँसना, अधिक बोलना, तेज़ आवाज़ सुनना, धरती कुरेदना, हवाख़ोरी करना और परिश्रम को त्याग दे।

असावधानी के दोष

यदि मूर्खता या लापरवाही से ये दोष कर लिए गए, तो गर्भस्थ शिशु मे विकार होंगे। दिन में सोने से भावी संतान बहुत सोनेवाली, अंजन लगाने से अंधी, रोने से विकृत दृष्टिवाली, स्नान, उबटन से दु खशील, तैल-मालिश से कुष्ठी, नाख़ून काटने से कुनखी, दौडने से चंचल, अधिक बोलने से बकवादी, ऊँचा शब्द सुनने से बहरी, धरती कुरेदने से मूर्ख, हवाख़ोरी और परिश्रम से पागल तथा अधिक हँसने से काले दाँत, ओठ, तालु और जीभवाली उत्पन्न होगी।

ऋतुस्नाता

ऋतुमती स्त्री चौथे दिन स्नान कर सुंदर वस्त्र-आभरण धारण कर, सुगंध लगाकर, पुष्पों को धारण करके पति के दर्शन करे। वह जैसे पुरुष को देखेगी या ध्यान करेगी, वैसी ही सन्तान उसके होगी।

गर्भाधान

पुरुष को उचित है कि गर्भाधान के लिये एक मास पहले से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। जिस दिन गर्भाधान किया करना हो, घी, दूध, चावल, उड़द आदि भोजन करे। तैल मर्दन करावे। और पुत्र की कामना से जब परस्पर प्रीति-भाव हो, तब स्त्री से समागम करे।

स्नान के दिन से २। ४। ६। ८। १०। १२। १४। १६वीं रात्रियों में गमन करने से पुत्र और ३। ५। ७। ९। ११। १५वीं रात्रियों में पुत्री होगी। १३वें दिन समागम न करे।

जवान, बलवान्, नीरोग, पवित्र, शुद्ध वस्त्र धारण करनेवाला पुरुष, स्वाधीना, कामातुरा, प्रेम-युक्त और पुत्राभिलाषिणी स्त्री से रमण करे।

गर्भाधान का ठीक समय एक पहर रात्रि व्यतीत होने से एक पहर रात्रि शेष रहने पर्यंत तक है। जब वीर्य का गर्भाशय में प्रक्षेप का समय आवे, तब दोनों सीधा शरीर रक्खें। पुरुष अपने शरीर को शिथिल करे और स्त्री मूत्रेंद्रिय और योनि का सकोचन करे। इसके बाद स्त्री कुछ काल तक निश्चल पड़ी रहे। फिर दोनों स्त्री-पुरुष स्नान कर और केसर, कस्तूरी, जायफल, इलायची आदि डालकर पकाए दूध को ठंडा करके पीवें और अलग-अलग शयन करें।

प्रकरण २

गर्भ

स्त्रियो के जीवन में गर्भ-धारण एक वडी कोमल, प्रिय और आश्चर्यकारक घटना है। ईश्वर की इस रचना में पशु-पत्ती से लेकर वनस्पति तक गर्भ-धारण करते है। इसलिये गर्भ के विषय मे हम संक्षेप से लिखते हैं। गर्भ स्त्री-पुरुप के रज और वीर्य के मेल से ठहरता है। पुरुप का वीर्य अंडकोषो मे पैदा होता है और यहाँ से नलियों मे होकर जननेंद्रिय की राह वाहर आता
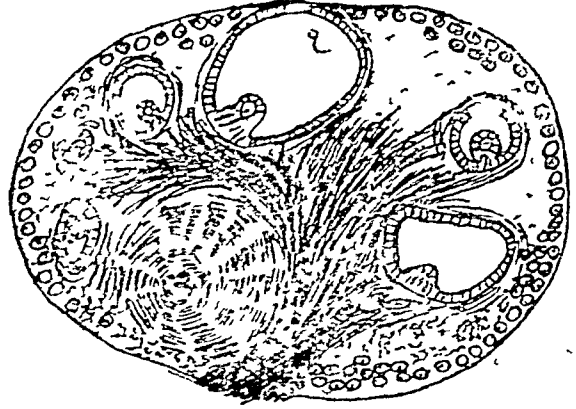
डिंब-कोष की रचना

१ डिंब-कोष या डिंबाशय, २ परिपक्व डिंबाशय

हैं। वीर्य मे अत्यत छोटे कीटाणु होते हैं। ये वीर्य मे उसी प्रकार तैरते रहते है, जिस प्रकार जल मे मछली। इनका सिर मोटा और वाकी आकार गावदुम होता है। इनकी लवाई प्राय $\frac{१}{८००}$ इंच से $\frac{१}{६००}$ तक होती है। जिस वीर्य मे ये कीटाणु नही होते, उसमे गर्भ नही रह सकता। वाहर निकलने के कुछ काल उपरात तक ये जीवित रहते हैं। ये सब बातें हम प्रथम ही वता चुके है। स्त्री-योनि मे यदि कोई प्रदर या सूजाक एव आतशक-संवधी दूपित माद्दा हो, तो उसके स्पर्श से ये मर जाते है। स्त्री के रज में भी गोल-गोल दाने होते है, जिनकी वीच की लवाई $\frac{१}{१२०}$ इंच है। ये डिंब-कोप कहाते हैं। इन्हीं तुच्छ दो वस्तुओ के मेल मे गर्भ रह जाता है। स्त्री-पुरुप के रज और वीर्य का मेल किस स्थान

वच्चेदानी की लुवावदार झिल्ली

पर होता है, इस विषय में विद्वानों का मतभेद है। कुछ लोगों का मत है कि यह मेल 'ओवरी' में या 'फ्लोपियन ट्यूब' में होता है और मिलने के प्राय: १२ दिन बाद वे बच्चेदानी में पहुँचते हैं। इसके बाद स्त्री के रज 'ओवम' (Ovem) में बहुत-सा घट-बढ़ होता है। स्त्री का रज 'ओवम' बच्चेदानी में पहुँचने के पहले बच्चेदानी की लुआबदार झिल्ली मोटी और लाल मखमल के समान हो जाती है। स्त्री का रज 'ओवम' (Ovem) इस झिल्ली में एक ओर चिपक जाता है। यह लुआबदार झिल्ली स्त्री के रज 'ओवम' को दोनो ओर ऊँची होकर घेर लेती है। ज्यों-ज्यों स्त्री का रज (Ovem)
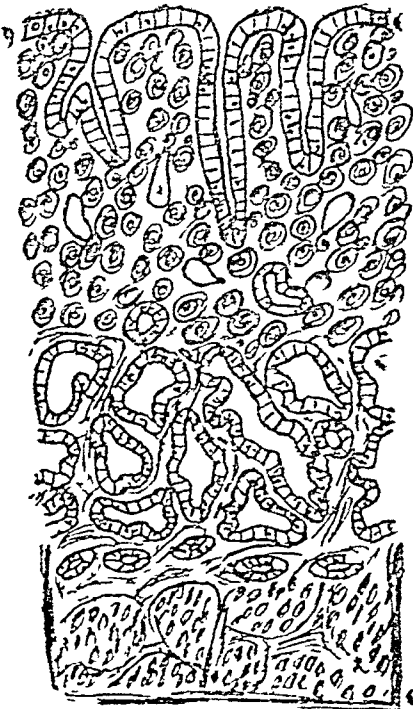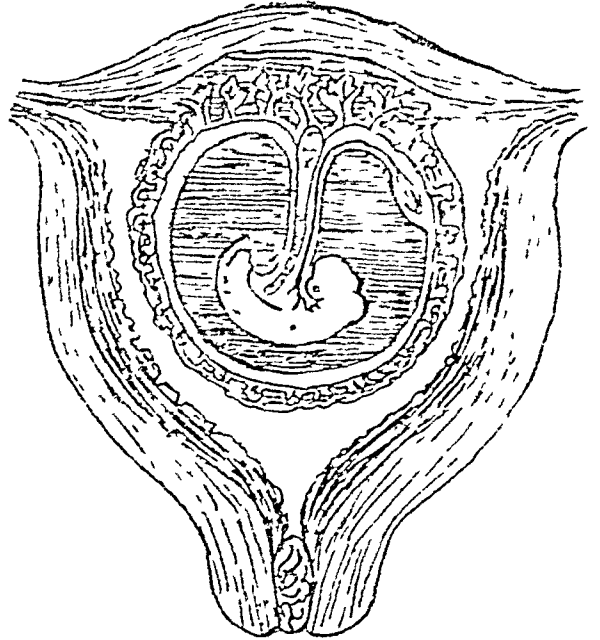
बच्चेदानी की झिल्ली गर्भ पर लिपटी है

इस झिल्ली की बनावट

बढ़ता जाता है, उसी प्रकार यह झिल्ली फैलती जाती है, और गर्भ रहने से तीन मास के उपरांत बच्चेदानी की भीतरी चौरसाई से मिल जाती है। गर्भ के पूरे दिनो में फिर यही झिल्ली बच्चेदानी की दीवार से अलग हो जाती है। यह झिल्ली थैली के समान होती है और इसके भीतर पानी के समान एक रस भरा रहता है, और इसमें बच्चा तैरता रहता है। बालक होने के समय यही थैली बच्चेदानी के बार-बार सिकुड़ने और दबाव पड़ने से फट जाती है, और पानी बाहर निकल पड़ता है। इस पानी से बच्चा और बच्चेदानी दोनो बाहर की चोट-चपेट से बचे रहते हैं। बालक होने के समय बच्चेदानी का मुँह इस थैली के ज़ोर से धीरे-धीरे फैल जाता है। गर्भवती का पेट इसी पानी के कारण फूला देख।

पड़ता है। जब पानी बहुत होता है, तो बहुत फूला जान पड़ता है, और बालक होने में कष्ट
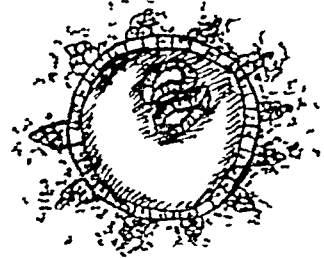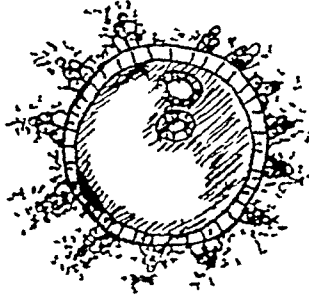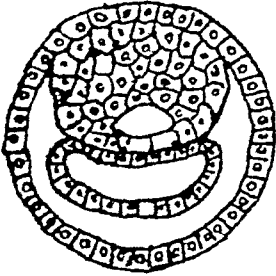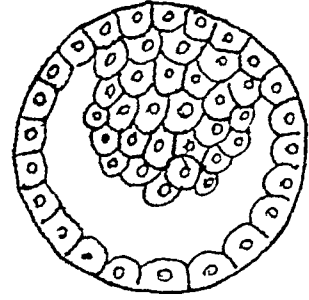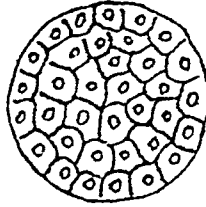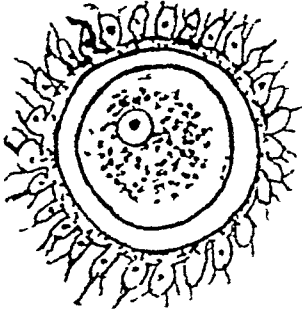
गर्भ की क्रमशः उत्पत्ति

होता है। बच्चेदानी की दीवार का वह हिस्सा, जिस पर ओवम (Ovem) चिपका रहता है, मोटा होकर उसमे नए ख़ून की रगें पैदा हो जाती हैं, और बच्चेदानी की रगें भी ढीली होकर यहाँ फैल जाती हैं। इसी को आँवल (Placenta-प्लासेंटा) कहते हैं। इसकी आकृति गोल होती है, और उसके बीचोबीच की लंबाई प्राय' ७ इंच और तोल मे १८ से २४ औंस तक होती है। इसमे ख़ून की रगें निकलकर बालक की नाभि में होती हुई देह मे घुस जाती हैं। इन्ही रगो का नाम नाल है, और यह बटी हुई रस्सी की सूरत में होती है। इसी मे इसे अँगरेज़ी में कार्ड (Coid) कहते हैं।

नाल में तीन रगें झिल्ली में लिपटी हुई होती हैं। दो रगों मे स्वच्छ रक्त बच्चे की देह मे मा के शरीर से जाता है और तीसरी से वापस आकर गंदा ख़ून माता के देह में मिल जाता है। इसकी लबाई प्राय. १८ इच होती है।
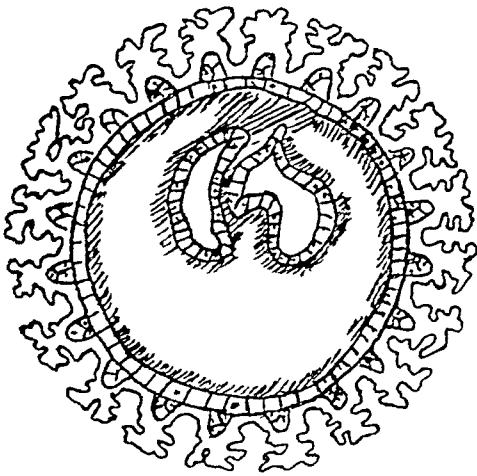
गर्भ की क्रमशः वृद्धि

यह आंवल बालक के शरीर में फेफड़े और पेट दोनों का काम देती है। मैला रक्त बच्चे के शरीर से नाल की रग से होकर आंवल में पहुंचता है। वहां माता का रक्त चलता-फिरता रहता है। स्वच्छ रक्त जिसमें प्राण-वायु (Oxygen) और पोषणवाला आहार होता है। जो रगों के द्वारा बालक के पेट में आता है।

साधारण अवस्था में बच्चेदानी ढाई इंच लंबी और तोल में एक आंस (२½ तोला) होती है। परन्तु जब गर्भ पूरे दिन का हो जाता है, तब १२ इंच
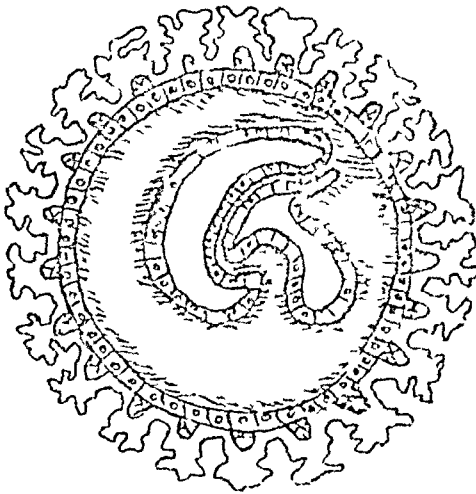
गर्भ की क्रमशः वृद्धि

लंबी और तोल में २४ औंस होती है। गर्भ-स्थिति होते ही बच्चेदानी बढ़ने लगती है। और बालक होने के समय तक बढ़ती ही रहती है। गर्भ के पहले तीन महीने बच्चेदानी पेड़ू में रहती है, हाथ के टटोलने से मालूम नहीं होती। गर्भ-स्थिर होने पर लंबाई से चौड़ाई अधिक बढ़ती है, इसलिये बच्चेदानी गोल हो जाती है।

गर्भ की क्रमशः वृद्धि

तीसरे महीने के अंत और चौथे के प्रारंभ में बच्चेदानी पेड़ू से ऊपर बढ़ती है और टटोलने से कड़ी गेंद के समान मालूम देती है। इसके बाद लंबाई बढ़नी शुरू होती है, और बच्चे का चलना-फिरना माता को पेट में मालूम होने लगता है।

चौथे महीने की समाप्ति पर पेड़ू की हड्डी के तीन अंगुल ऊपर तक पहुंचती है। पाँचवें महीने में पेड़ू और नाभि के बीच में बच्चेदानी के ऊपर का सिरा होता है और उस समय से
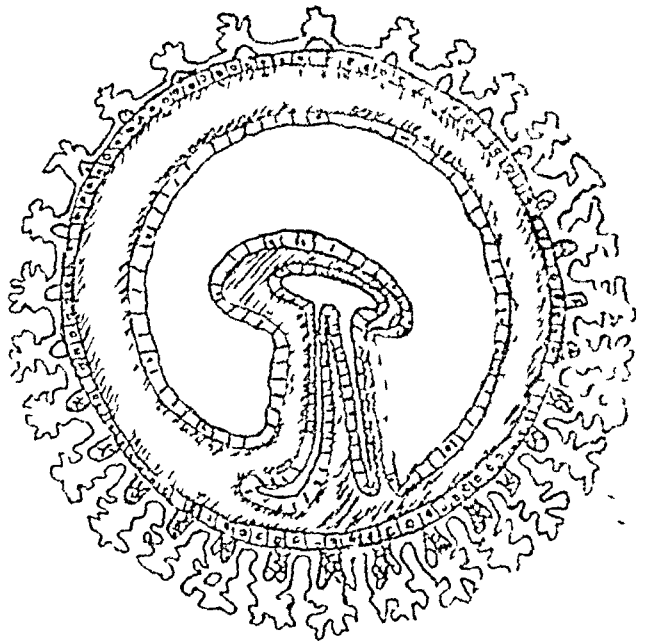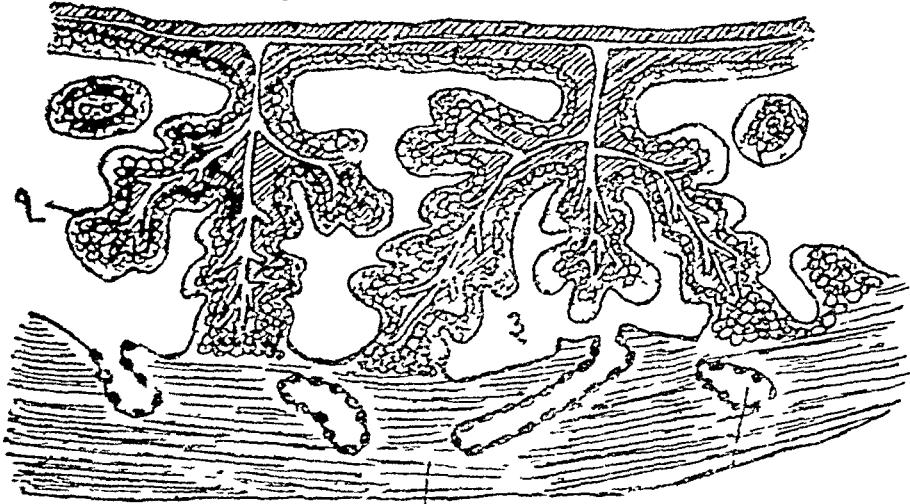
आँवल की वनावट

१ गर्भ-आवरण, २ गर्भ-कला, ३ आशय, ४ केशिकाएँ।

पेट फूला देख पडता है। छठे महीने वच्चेदानी की उचाई नाभि तक पहुँचती है। सातवें महीने मे नाभि से दो इंच ऊपर होती है, और नाभि का गढ़ा छिप जाता है। आठवें और नवे महीने मे वच्चेदानी वढ़कर पेट की गोलाई के ऊपर के कोने की नोकदार हड्डी के पास तक पहुँच जाती है।
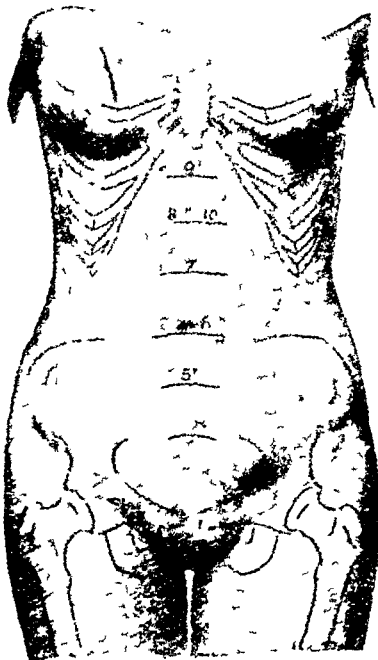
गर्भ की मासिक वृद्धि

जव प्रसव का समय निकट आता है, तव एक सप्ताह प्रथम ही गर्भाशय कुछ-कुछ पेड़ मे दव जाता है, जिससे स्त्री को शरीर हल्का प्रतीत होता है। जो एक-आध वार वच्चा जन चुकी होती है, उन्हे इससे पता लग जाता है कि वालक होने का समय निकट है। गर्भ के दिनों मे रक्त, हृदय, जिगर, गुर्दे आदि मे वहुत-से परिवर्तन होते रहते है।

चार महीने के अंत मे वालक पॉच इंच लवा होता है। छः महीने के अंत मे प्राय. १¾ सेर भारी

होता है। नौ मास के अंत में दो सेर से तीन सेर तक भारी होता है और प्रायः १८ इंच
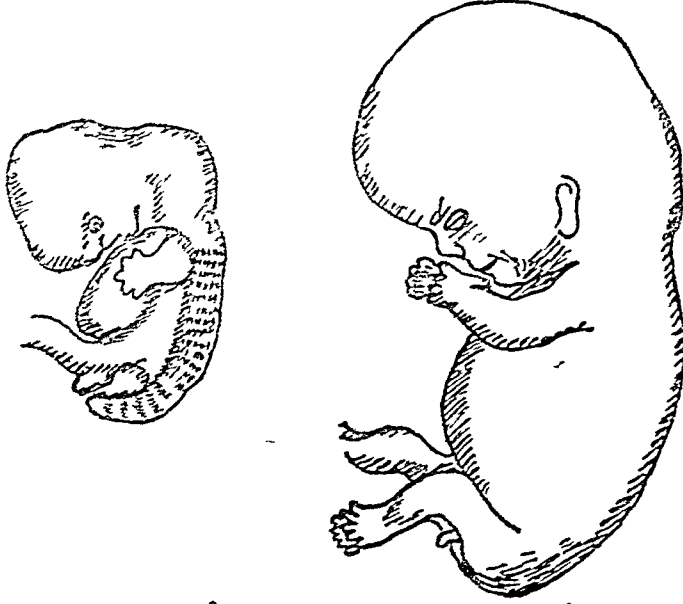
पाँच सप्ताह का गर्भ

आठ सप्ताह का गर्भ

लंबा होता है। नवें महीने के बाद २८० दिनों में बालक पूर्ण होता है। इस समय उसका वजन तीन से पाँच सेर तक रहता है, और प्राय. २० इंच लंबा होता है।

प्रकरण ४

गर्भ रहने के चिह्न

मासिक धर्म बंद होना

(१) यह गर्भ रहने का प्रधान चिह्न है, पर कभी-कभी किसी बीमारी के कारण भी बिना गर्भ मासिक बंद हो जाता है। इसलिये और लक्षणों पर भी विचार करना चाहिए।

(२) अपच, जी मचलाना, उलटी ये विकार प्रात काल बिस्तर से उठते ही होते है। प्राय सभी गर्भिणियों को दूसरे महीने से मचली होती है और चार महीने बाद स्वयं ही बंद हो जाती है, पर किन्हीं-किन्हीं को पूरे दिनों तक होती रहती है। यहाँ तक कि कोई भी खाद्य पदार्थ पेट मे नहीं ठहरता। वह बहुत दुबली हो जाती है, मिट्टी खाने की इच्छा होती है, मुँह मे लुआब आ जाता है। कभी कफ और कभी दस्तों की शिकायत रहती है।

(३) दूसरे या तीसरे महीनों मे स्तन बढ़ने लगते है, दबाने से दर्द करते है, उन पर नीली नसें चमकने लगती है, कभी-कभी सफेद धारियाँ चमकती है। स्तनो का अग्र भाग लाल हो जाता है और उन पर एक प्रकार का छिलका उतरता है। इसके चारो ओर स्याही का मडल बन जाता है। कभी-कभी इसके चारो ओर मैले धब्बे-से दीखते है। दबाने से प्रथम सफ़ेद-सा रस निकलता है। यह लक्षण प्रथम के गर्भ की अपेक्षा बाद के गर्भों में विशेष दीख पडता है।

(४) किसी-किसी गर्भवती के पेडू से नाभि तक एक भूरी या पीली रेखा देख पडती है।

(५) पेट बढ़ने लगता है, जिसका ज़िक्र हम पीछे कर चुके है।

(६) चौथे महीने मे बच्चा बच्चेदानी में डोलने लगता है। पहले कुछ हिलता-सा मालूम पडता है, पीछे धक्का या ठोकर-सी मालूम होती है। बच्चेदानी के दोनो ओर ठडा हाथ रखकर दबाने से यह हरकत मालूम हो जाती है।

गर्भाशय का सिकुडना

(७) गर्भ रहने पर बच्चेदानी हर १०-५ मिनट में सिकुडती और ढीली होती रहती है। यदि हाथ
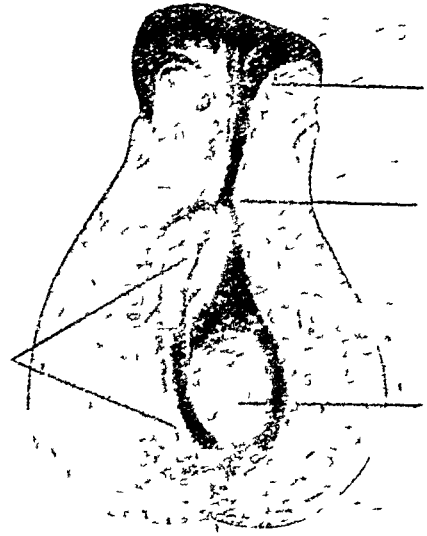
गर्भ का विकास

को ठंडे पानी से भिगोकर बच्चेदानी पर रक्खा जाय, तो यह हिलना-डोलना साफ़ जान पड़ता है।

बच्चे के दिल की धड़कन

(८) बच्चेदानी पर स्टेथस्कोप यन्त्र रखकर सुना जाय, तो उसकी धड़कन मालूम होती है। यह शब्द घड़ी की टिक-टिक जैसा सुन पड़ता है। पर चौथे और पाँचवें मास में सुन पड़ता है। यह एक मिनट में १२० से १४० वार तक होता है। माता के दिल की धड़कन को आप साफ पहचान सकते हैं, क्योंकि वह सिर्फ़ ७५ वार प्रति मिनट में होती है।

(९) आँवल और नाल में शब्द सुनाई पड़ता है, जो एक भिन्न प्रकार का होता है।

(१०) स्त्री का मूत्र किसी गहरे वर्तन में रख दो। इस वात का ख़याल रक्खो कि वायु और प्रकाश तो उस पर पड़े, पर धूल-गर्द न जाय। उसमें सात दिन के भीतर-भीतर एक वस्तु रुई के पतले फाहे के समान मूत्र के ऊपर पैदा हो जायगी। यह वस्तु इस प्रकार की होगी, जैसी कि जाड़े के दिनों में तरकारी के रसे के ऊपर घी की पतली तह जम जाती है। कुछ दिन बाद इसके कण वर्तन के नीचे जम जायँगे। यह वात मूत्र में गर्भ के दूसरे मास के वाद दीखती है और सात-आठ मास तक दीखती रहती है।

उदरस्थ गर्भ
चिह्नित स्थानों पर भिन्न-भिन्न स्थितियों का शब्द उदर के ऊपर सुना जा सकता है।

विशेष—बुद्धिमती स्त्रियाँ जिस दिन गर्भाधान हो, उसी दिन गर्भ रहने का ज्ञान प्राप्त कर लेती हैं। प्रात:काल शरीर थकावट से चूर-चूर हो जाय, जाँघें जकड़ जायँ, दर्द करें, प्यास ज़्यादा लगे, भूख न हो, गुप्तेंद्रिय में फड़कन हो और रज-वीर्य वाहर न निकलें, तो समझना चाहिए कि गर्भ रह गया।

गर्भ में पुत्र-पुत्री का निर्णय

(१) जिस गर्भिणी स्त्री के दाहने स्तन में प्रथम दूध दिखाई दे, और दाहनी आँख भारी मालूम पड़े, जो चलती वार प्रथम दाहना पैर आगे बढ़ावे और जिसकी दाहनी जाँघ भारी-सी मालूम पड़े, जो स्त्री चतुर्थ महीने में मिष्टान्न, अमरूद, नारियल आदि पुंलिंग फल-

श्रवण-परीक्षा

वृक्ष आदि स्वप्न में देखे, और उन्हीं के खाने की इच्छा करे, जिसकी मुख-कांति खिली हुई हो, उसके पुत्र पैदा होगा। इसके विपरीत कन्या।

(२) हम पीछे बता चुके हैं कि गर्भस्थ शिशु के हृदय की धड़कन स्टेथस्कोप लगाकर सुननी चाहिए। यह धड़कन यदि एक मिनट में १४४ दफ़ा हो, तो लड़की और १२४ दफ़ा हो, तो लड़का जानना। सावधानी से यह परीक्षा करने पर कभी भूल न होगी।

दौहृद-लक्षण

गर्भ के चौथे मास में गर्भस्थ शिशु का हृदय बन जाता है और इसलिये गर्भिणी की दौहृद संज्ञा हो जाती है। इस समय स्त्री जिस वस्तु की इच्छा करे, वह अवश्य उसे देनी चाहिए। उस वस्तु की प्राप्ति का बच्चे पर भारी प्रभाव पड़ता है। यदि उसकी इच्छा की वस्तु न मिले, तो संतान अंधी, लँगड़ी, लूली, ठूँठी, बौनी, मूर्ख आदि होगी।

उस समय यदि स्त्री राजा आदि बड़े बड़े व्यक्तियों को देखने की इच्छा करे, तो संतान महाभाग्यवान् हो। यदि वह सुंदर रेशमी वस्त्र और आभूषण चाहे, तो संतान शौकीन होगी। यदि तीर्थ-स्थान और साधु-संतों के दर्शन की इच्छा हो, तो संतान धर्मात्मा होगी। यदि उसकी इच्छा सर्प, सिंह आदि हिंसक जंतुओं को देखने की हो, तो संतान निर्दयी और हिंसक होगी। इसी प्रकार स्त्री के आहार-विहार पर विचारकर निर्णय करना चाहिए।

वर्ण और नेत्र

गर्भ की उत्पत्ति के समय तेजोधातु अधिकांश जलधातु से मिलने पर गर्भ का वर्ण गोरा और अधिकांश पार्थिव धातु मिलने से काला होता है। पृथ्वी और आकाश-तत्त्व मिलने से कृष्ण, श्याम वर्ण और अधिकांश जल आकाश-धातु मिलने से गौर श्याम होता है। तेज रक्त का आश्रय ले, तो संतान की आँखें लाल, पित्त का ले, तो पीली और कफ का ले, तो सफ़ेद, वायु का ले, तो विकृत (टेढ़ी) होती हैं।

गर्भ का रक्त-संचार

गर्भस्थ शिशु के शरीर का रक्त-संचार हमारे शरीर के रक्त-संचार से भिन्न प्रकार का है। गर्भस्थ शिशु के फेफड़े काम नहीं करते, और रक्त की शुद्धि कमल के द्वारा होती है।

नाल एक ओर गर्भस्थ शिशु की नाभि से लगा रहता है, दूसरी ओर कमल से। उसमें ३ रक्तवाहिनियाँ होती हैं। दो धमनी और एक शिरा। नाभि-धमनियों द्वारा अशुद्ध रक्त नाल में पहुँचता है तथा नाभि-धमनी द्वारा शुद्ध रक्त नाल से लौटकर शिशु के शरीर में पहुँचता है।

इनमें से एक शाखा वस्ति-गह्वरस्थ अंगों का पोषण करती है और दूसरी उसमें चली जाती है। छोटी-छोटी शाखाएँ यकृत में घुस जाती हैं। इस प्रकार कुछ शुद्ध रक्त यकृत में पहुँच जाता है, जो फिर अधोगा महाशिरा में पहुँचता है।
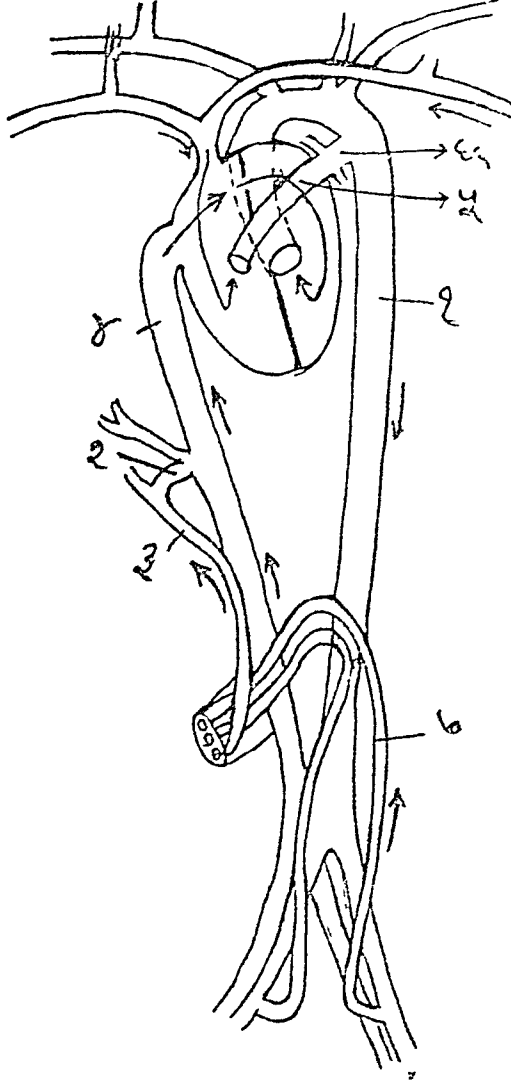
गर्भ का रक्त-संचार

१ महाधमनी, २ शिरा-संयोजक, ३ नाभि-शिरा, ४ ऊर्ध्वगामिनी शिरा ५ फुप्फुस-धमनी, ६ धमनी-संयोजक, ७ नाभि-धमनी।

प्रकरण ५

गर्भिणी के रोग और उसकी चिकित्सा

गर्भिणी स्त्री को ज्वर, सूजन, दस्त, उलटी, सिर घूमना, रक्त-स्राव, गर्भ-वेदना आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते है। उनका इलाज साधारण रीति से नहीं होना, इनमें गर्भ के बच्चे को अनेक प्रकार की विपद् की संभावना होती है। इसलिये उसकी खास चिकित्सा हम यहाँ लिखते हैं—

(१) ज्वर होने पर—मुलहठी, लाल चदन, खस, अनतमूल, पद्माख और तेजपात का काढ़ा शहद मिलाकर पीना।

(२) पतले दस्त आने पर—जामुन की छाल का काढा पीना।

(३) कब्ज़ी मे—दो तोले अरंडी का तेल दूध मे पीना।

(४) सूजन मे—थूहर के पत्ते के रस की मालिश करना।

(५) वमन में—गर्भावस्था मे वमन स्वाभाविक है। बडी इलायची का काढा पीने से वमन शात होती है।

(६) रक्त-स्राव—यदि प्रथम मास मे रक्त-स्राव हो, तो मुलहठी, सागवान के बीज और देवदारु इन्हें दूध मे औटाकर पीना।

(७) दूसरे मास में तिल, सतावर, मजीठ।

तीसरे मे—अनंतमूल।

चौथे में—अनंतमूल, सतावर, रास्ना।

पाँचवें में—बृहत् पंचमूल और बेलगिरी।

छठे मे—गोखरू, मुलहठी।

आठवें में—कैथ, बेल, कटेहली, ईख की जड।

नवें में—मुलहठी, अनंतमूल, क्षीरकाकोली, श्यामालता।

दसवें में—सोठ।

गर्भपात को रोकना

गेरू दो माशे और फिटकरी दो माशे पीसकर जब तक रक्त बंद न हो, प्रति तीन घटे मे दो। खाने को दूध-भात। रोगिणी निश्चेष्ट चित्त पलँग पर पडी रहे। पलँग का पॉयता ऊँचा रहे तथा पीठ के नीचे एक तकिया लगा दिया जाय।

प्रकरण ६

गर्भिणी के पालन-योग्य विशेष नियम

गर्भावस्था आजकल की सभ्यता में (?) देवियों के लिये एक अद्भुत कष्टकारक अवस्था हो गई है। वास्तव में यदि अप्राकृतिक रहन-सहन के ढंगों को छोड़ दिया जाय, तो गर्भावस्था में स्त्रियों को कोई कष्ट न हो, परंतु आजकल गर्भपात तो ऐसा रोग है कि १०० में से ६० स्त्रियों को होता है।

एक-दो दफ़ा गर्भपात होने से ही स्त्री बहुत कमज़ोर हो जाती है, बहुत-सी जापे के कष्टों से अपने नवजात बालकों को खो बैठती है। बाज ऊँचे घरानों में तो गर्भिणियों की इतनी हिफ़ाज़त की जाती है कि उनको हिलने-जुलने भी नहीं दिया जाता, और वे एक बीमार की भाँति बहुत ही हलके-हलके चलती-फिरती है, उसके विपरीत छोटे घरानों में गर्भिणी की साधारण देख-भाल भी नहीं होती। प्रथम तो इस विचार से कि उत्तम संतान हो, दूसरे असमय प्रसव या गर्भपात न हो, तीसरे इस विचार से कि कम-से-कम कष्ट से बालक पैदा हो। निम्न-लिखित नियम गर्भावस्था में अवश्य पालन करने चाहिए—

भोजन

प्राय इस विचार से कि गर्भावस्था में गर्भिणी को अधिक पुष्टिकारक भोजन की आवश्यकता होती है, गर्भिणी को भाँति-भाँति के भोजन खिलाए जाते हैं। घी व मसालों की बनी हुई पुष्टिकारक वस्तुएँ देर में पचती है और इस प्रकार लाभ की अपेक्षा हानि करती हैं। इसलिये शीघ्र पचनेवाले पुष्टिकारक पदार्थ खाने चाहिए। गेहूँ व जौ का दलिया, दूध, ताज़े पके हुए फल, सब्ज़ तरकारियाँ, जो अधिक भूनी न गई हों, गर्भिणी को अधिक देने चाहिए। गरम मसाले, मिर्चें, अधिक गरम गुड, तेल आदि के बने पदार्थ, देर में पचनेवाले अर्वी, भिंडी आदि के शाक न दें। भोजन एक समय में अधिक न करें। दो समय के बजाय चार समय थोड़ा-थोड़ा करें। गर्भावस्था में स्त्री की भिन्न-भिन्न चीज़ों के खाने की इच्छा होती है, इच्छा को रोकना ठीक नहीं। उचित रूप से इच्छानुसार सब पदार्थ खाने चाहिए, परंतु यदि कोई निकृष्ट हानिकारक पदार्थ खाने की इच्छा हो, तो उसको रोकना चाहिए। मांस, मदिरा, चाय, काफ़ी आदि इन दिनों में बिलकुल न लें।

वस्त्र

सबसे मुख्य बात वस्त्रों के संबंध में यह है कि धोती, पाजामा, लहँगा जो कुछ भी पहना जाय, वह कमर से कसकर कदापि न बाँधा जाय। गर्भ-काल में बच्चेदानी दो इंच

से १४ इंच तक वढ़ जाती है। ऐसी अवस्था मे कमर अथवा पेट पर पेटी, नाडा या धोती कसकर बाँधने से बच्चेदानी और फलत: बच्चे के वढ़ने मे रुकावट पैदा होती है, जिगर व तिल्ली की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती है, वदहज़मी हो जाती है, दिल धड़कने लगता है, ख़ून की कै, दस्त, कब्ज़, खाँसी आदि अनेक रोग केवल पेट (गर्भाशय) पर दवाव पडने से होते हैं।

छाती पर भी कसकर जाकट न पहननी चाहिए, क्योकि छातियाँ भी वढ़ती है। छातियो के ऊपर दवाव पडने में जहाँ अनेक उपर्युक्त रोग होने की आशंका है, वहाँ साथ ही दूध भी कमी तथा कष्ट से उतरता है। अत ढीला कुर्ता ही इन दिनों पहनना चाहिए।

जो स्त्रियाँ मोज़ें पहनती हो, वे कृपा कर मोजे के गेटिस वाँधना छोड दें। विलायती जूते पहननेवाली शौकीन स्त्रियाँ जूतों के तस्मे कसकर न वाँधें। इनके कसे जाने मे कुछ ऐसी रगें व नसें दवती है कि जिनका प्रभाव गर्भाशय पर पडता है।

साथ ही इस वात का भी ध्यान रखना चाहिए कि मौसम के अनुसार ऐसे कपडे पहने जायँ कि जिनसे पाँव तथा पेट को ठंड न लग जाय। ठंड लगने के यह अर्थ नहीं है कि हर वक्त जुराव ही पहने रहें। जिस अंग को जितना अधिक ढका जाता है, उतना ही अधिक वह कमजोर हो जाता है और जल्दी ठड पकडता है। अपनी-अपनी आदत के अनुसार इस वात का ध्यान रखना चाहिए। सदा से ठंड के लिये जितना वचाव करती आई हों, उतना ही करना चाहिए। यदि साधारण अवस्था में मोजे नहीं पहनती हों, तो गर्भावस्था में कदापि न पहनें, लेकिन सदा से यदि पहनती आई हो, तो इस समय छोडने का प्रयत्न न करें।

फीरोज़ी व नीले रंग के कपडे तथा ख़ुशवूदार रगों के सुहावने, चित्त प्रसन्न करनेवाले वस्त्र पहनना उत्तम है।

स्नान

स्नान द्वारा शरीर को साफ करना अत्यत आवश्यक है। जैसे पानी से साधारण अवस्था मे स्नान करती हों, वैसे ही इस अवस्था में भी करना चाहिए। वहुत गर्म अथवा वहुत ठडे पानी से अधिक न नहावें। तैरना या पानी मे कूदना, अधिक देर तक नहाना या पाँवों को अधिक देर तक भिगोने से प्राय गर्भपात हो जाता है। आराम से वैठकर स्नान कर लेना ही उत्तम है। दौड-भाग में नहीं करना चाहिए।

व्यायाम

उछलने-कूदने तथा दौडने-भागने, कील ठोकने, चारपाई या ट्रंक उठाने, पानी का घडा उठाने आदि वातो से मध्य श्रेणी की स्त्रियों को वचना चाहिए, लेकिन साधारण अवस्था में चूल्हे-चौके, चर्खे आदि का जो काम स्त्रियाँ करती हो, वह थोडा-वहुत अवश्य करते रहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि शरीर के पट्टे जितने मज़वूत व काम करने के अभ्यासी होंगे, उतना ही कम कष्ट प्रसव में होगा। वहुत-सी स्त्रियाँ प्रसव के दिन तक अपने घर का

काम-काज करती रहती है, उनको प्रसव में कम-से-कम कष्ट होता है। बात यह है कि कमर या शरीर के किसी भाग पर अचानक झटका लगने से गर्भपात होने की आशंका रहती है और झटका ज़रा झुकने या ऊँचा चढ़ने या पाँव इधर-उधर पड़ जाने, ट्रंक उठाने आदि से लग सकता है, परन्तु आहिस्ता-आहिस्ता भारी बोझ उठाने पर भी नहीं लगता। जिस काम का अभ्यास न हो, उसे गर्भावस्था में न करें।

गर्भिणी के लिये सबसे उत्तम व्यायाम खुली हवा में टहलना है, टहलना इतना ही चाहिए जिससे थकावट पैदा न हो। यदि साधारण अवस्था में न भी टहलती हो, तो भी गर्भावस्था में टहलना गर्भिणी तथा गर्भस्थ बालक दोनों के लिये अत्यंत लाभदायक है। ताँगा, इक्का, डोली, घोड़ा, साइकिल आदि पर न चढ़ना चाहिए तथा मोटर व गाड़ी में बैठकर हवाख़ोरी करने से भी कोई इतना लाभ नहीं है।

हलके-हलके शुद्ध वायु में टहलना अच्छा है। यदि बाहर न जा सकें, तो घर में खुली छत पर ही टहलें और घर का साधारण काम-काज करते रहना ही गर्भिणी का सर्वोत्कृष्ट व्यायाम है।

शुद्ध वायु तथा धूप

मामूली पौधे यदि उनको धूप तथा वायु न मिले, तो पीले पड़ जाते हैं, तो यह मनुष्य, जिसका वायु ही जीवन है और प्रकाश अथवा धूप ही जिसका मुख्य आधार है, इनके बिना कैसे पुष्ट हो सकता है?

इन्हीं दोनों चीज़ों की कमियों के कारण आज भारत के बच्चे पीले पड़े हैं, धूप और वायु पर परमात्मा ने कोई टैक्स नहीं लगाया। चांडाल की झोपड़ी और राजा की अटारी दोनों के लिये ये चीज़ें सामान्य रूप से सुलभ हैं। बड़े-बड़े नगरों के ऊँचे-ऊँचे महलों के नीचे की मंज़िलों में रहनेवालों को जाकर देखिए। ऊँचे मकानों के बीच ३ फीट चौड़ी गलियों को जाकर निहारिए, गंदी गलियों की बू, पाख़ानों की दुर्गंध, धुएँ से आच्छादित दीवारों की कलौंस की कालिमा ही धूप और हवा के बदले उन गलियों व मकानों के अभागे रहनेवालों को मिलती है। बड़े शहरों के ७० फ़ी सदी रहनेवाले इन्हीं काल-कोठरियों में रहते हैं। कभी बड़े शहरों में मज़दूरों के रहने की जगहों को जाकर देखिए, तो आप रो उठेंगे। इन गली और मकानों में कभी भूलकर भी धूप प्रवेश नहीं करती और वायु तो वहाँ पहुँचते-पहुँचते ही दुर्गंधित हो जाती है। इन्हीं मकानों में इस गुलाम देश के गुलाम बच्चे जन्म लेते हैं, इन्हीं सर्द जगहों में वह दिन-रात पलते हैं और इन्हीं स्थानों में यह अभागे बच्चे जितने जन्मते हैं, उनमें आधे साल-भर के अंदर ही मर जाते हैं।

उस पर एक और मज़ा है कि इन कैदख़ानों और मृत्यु-स्थानों के लिये हमारे भाई और बहनों को अपनी आय का सर्व-श्रेष्ठ भाग मालिक मकान को किराए के रूप में अर्पण करना पड़ता है। पैसे देकर लोग इन जेलख़ानों में बंद रहते हैं और वे इस घोर दुःख के सहने के इतने अभ्यासी हो गए हैं कि यह कष्ट उन्हें कुछ भी नहीं अखरता।

जिस प्रकार छोटे पौदों के लिये धूप तथा हवा आवश्यक है, इसी प्रकार आपके और आपके उस नन्हें लाल के लिये जिसका सुंदर मुख देखने को आप उत्सुक है, शुद्ध वायु तथा धूप अत्यत आवश्यक है। जहाँ तक हो सके, गर्भावस्था मे अपने मकान की खुली जगह में सोवें, खिडकियाँ खोल रक्खे, धूप का भी जाडो मे ज़रूर सेवन करें। मुँह ढककर न सोवें, हवा के ठीक सामने न सोवें, पर जिस कमरे में सोवे, उसमें हवा का पूरा प्रबंध होना चाहिए।

इधर शहरो में तो यह हालत है, उधर गाँवो मे दरिद्रता तो है ही, पर अज्ञान के कारण ग्रामवाले ऐसे मकान बनाते हैं कि जिनमे वायु का सचार पूरी तरह नही होता। दूसरे गोवर व कूडा इत्यादि घरों के पास डाल देते है, जिसकी बू घर में बसी रहती है।

सोना

गर्भावस्था मे यदि कुछ अधिक नींद आवे, तो बुरी नही है, परंतु बहुत अधिक सोना व ऊँघना ठीक नहीं है। इससे अधिक सुस्ती बढ़ती है। सोते समय पेट पर अधिक बोझ न पड़े, इस बात का ध्यान रहे। घुटनो को पेट की तरफ मोडकर सोना भी ठीक नही। रात को जागना, नाटक-तमाशे देखना, बडी सभाओ मे जाना, अधिक रोशनी देखना निषिद्ध है। यदि जल्दी नींद न आवे, तो गुनगुने पानी से तौलिया गीला कर हाथ, पाँव, मुँह को पोछ लेना चाहिए। परमात्मा का ध्यान कर आँख मीचने से शीघ्र नींद आ जावेगी। जल्दी सोने और उठने के नियम को न छोडना चाहिए।

मन की दशा

अपने तथा अपने बच्चे के उत्तम स्वास्थ्य के लिये यह आवश्यक है कि गर्भिणी सदा अपने चित्त को प्रसन्न, प्रफुल्लित और मस्तिष्क को चिंता-रहित रक्खे।

अधिक स्त्रियों को इस बात का डर रहता है कि अब की मेरा प्रसव बड़ा कष्टदायक होगा, वे प्रसव से बहुत डरती हैं। प्रसव प्राकृतिक नियम है। यहाँ वर्णित नियमो का पालन करने से इसमें कोई कष्ट नही होता। उस प्रसव के कष्ट की अपेक्षा गर्भिणी को उस बालक का ध्यान करके प्रसन्न रहना चाहिए, जिसको इस संसार मे अवतीर्ण करने के लिये भगवान् ने उसको साधन बनाया है। घर के लोगो का कर्तव्य है कि हर प्रकार के भय से गर्भिणी को दूर रक्खे। भयकर घटनाओं का वर्णन गर्भिणी के सामने न करें। केवल वही पत्र तथा पुस्तकें पढने को देनी चाहिए, जिनमे उत्तम शिक्षाएँ, मनोरजक कथाएँ तथा रोचक विषय ही हो। भयानक घटनाओ के वर्णन से पूर्ण पत्र व पुस्तकें न दें। महापुरुषो के जीवन तथा राम, कृष्ण, बुद्ध आदि की जन्म-कथाएँ अवश्य पढ़ें।

नसो पर कुछ अधिक बोझ पडने से गर्भिणी का स्वभाव कुछ चिडचिडा हो जाता है। घर के लोगों को इस मामले में उसकी रियायत करनी चाहिए। उस पर क्रोध न करें, उससे भी क्रोध न करने को कहें, परंतु प्रेम व शाति से। क्रोध करने से बालक दुबला-पतला हो

जाता है। मन की अवस्था का बालक पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। [illegible] कि आपका बालक तन्दुरुस्त, [illegible] हो, तो [illegible] अभ्यास करना चाहिए। [illegible] चाहिए।

गर्भावस्था में मैथुन

गर्भावस्था में मैथुन निम्न-लिखित हानि [illegible] करता है

१—[illegible] के उत्तेजित होने से [illegible] बार-बार होता है।

२—गर्भस्थ बालक पर बुरा प्रभाव पड़ता है। [illegible] सन्तान की इच्छा [illegible] है।

३—प्रायः श्वेत प्रदर हो जाता है।

४—बालक बढ़ नहीं पाता।

५—बेजा दबाव [illegible] प्रसव पहले ही हो जाता है।

६—जरायु तथा योनि के अनेक रोगों का खतरा रहता है। [illegible]

१—गर्भ स्थिर हो जाने के बाद सम्भोग बिल्कुल न करें।

२—यदि निश्चय न हो, तो कम-से-कम उन दिनों में [illegible] अवस्था में मासिक धर्म हो, तो कदापि न करें। उन [illegible] दिनों में [illegible] करने से ही गर्भपात होते हैं, श्वेतप्रदर तथा अन्य जरायु रोग हो जाते हैं, [illegible] दिन अत्यन्त जोखिम पूर्ण हैं।

३—गर्भपात के बाद कम-से-कम तीन मास तक सम्भोग कदापि न करें। इससे अनेक रोग हो जाते हैं।

४—एक दफा गर्भपात हो चुकने पर फिर गर्भ स्थिर हुआ हो, तो जिस महीने में गर्भपात हुआ था, यदि सम्भोग किया गया, तो उसी समय फिर गर्भपात अवश्य होगा। इसलिये खूब सावधान रहें। गर्भपात बुरा रोग है।

५—गर्भपात प्रायः तीसरे व पाँचवें मास के उन दिनों में होता है, जब साधारण अवस्था में मासिक धर्म होता है। यदि तीसरे-पाँचवें मास "पुरुष-संग" किया गया, तो गर्भपात की पूरी आशंका समझिए।

६—गर्भावस्था में अलग-अलग कमरों में या पृथक् पलँगों पर सोना चाहिए।

प्रकरण ७

गर्भ-काल

जितने दिन मे स्त्री रजस्वला होती है, उससे दसगुने समय तक उसको गर्भ धारण करना होता है, अर्थात् साधारणतया २८वें दिन स्त्री रजस्वला होती है और २८ × १० = २८० दिन तक वह गर्भ धारण किए रहती है, परंतु यह मालूम करना कठिन हो जाता है कि किस दिन गर्भ स्थिर हुआ। ऐसी अवस्था मे रजस्वला होने के बाद प्रथम पुरुष-सहवास के दिन से ही अनेक बार हिसाब लगाया जाने पर २७२ और २८६ के बीच के किसी-न-किसी दिन मे प्रसव हुआ सिद्ध हुआ है। अतः २८० दिन का गर्भ-काल मानना अनुचित न होगा। प्राय. यह भी देखा गया है कि स्त्री-पुरुष की जितनी आयु कम होती है, उतने ही कम दिनों में बच्चा हो जाता है और आयु बढ़ जाने पर गर्भ-काल भी बढ़ जाता है। आमतौर से ९ मास समाप्त होने पर १०वें मास बालक जन्म लेता है। गर्भ-स्थिति होने के साढे चार मास बाद जरायु कमर की हड्डियों से ऊँचा उठ जाता है, और बच्चे की गति-प्रगति गर्भिणी स्वयं अनुभव करने लगती है, अर्थात पेट मे बच्चा हिलने-डुलने लगता है। गर्भ-स्थिति का ठीक निश्चय न होने पर इस हिलने-डुलने के समय से भी हिसाब लगाया जा सकता है। यथा—

गर्भ-स्थिति	बालक का हलन	प्रसव
१ जनवरी	२० मई	८ ऑक्टोबर
१५ ,,	३ जून	२० ,,
३१ ,,	१९ ,,	७ नवंबर
१ फ़रवरी	२० ,,	८ ,,
१५ ,,	४ जुलाई	२२ ,,
२८ ,,	१७ ,,	५ दिसंबर
१ मार्च	१८ ,,	६ ,,
१५ ,,	१ अगस्त	२० ,,
३१ ,,	१७ ,,	५ जनवरी
१ एप्रिल	१८ ,,	६ ,,
१५ ,,	१ सितंबर	२० ,,
३० ,,	१६ ,,	५ फ़रवरी
१ मई	१७ ,,	६ ,,

१५ मई	१ ऑक्टोबर	६ फ़रवरी
३१ ,,	१७ ,,	७ मार्च
१ जून	१८ ,,	८ ,,
१५ ,,	१ नवंबर	२२ ,,
३० ,,	१६ ,,	६ एप्रिल
१ जुलाई	१७ ,,	७ ,,
१५ ,,	१ दिसंबर	२१ ,,
३१ ,,	१७ ,,	७ मई
१ अगस्त	१८ ,,	८ ,,
१५ ,,	१ जनवरी	२२ ,
३१ ,,	१७ ,,	७ जून
१ सितंबर	१८ ,,	८ ,,
१५ ,,	१ फ़रवरी	२२ ,,
३० ,,	१७ ,,	७ जुलाई
१ ऑक्टोबर	१८ ,,	८ ,,
१५ ,,	३ मार्च	२२ ,,
३१ ,,	१९ ,,	७ अगस्त
१ नवंबर	२० ,,	८ ,,
१५ ,,	३ एप्रिल	२२ ,,
३० ,,	१८ ,,	६ सितंबर
१ दिसंबर	१९ ,,	७ ,,
१५ ,,	३ मई	२० ,,
३१ ,,	१९ ,,	७ ऑक्टोबर

इस नक़्शे की सहायता से आप स्वयं शेष तारीख़ों का भी हिसाब लगा सकती हैं।

प्रसव

बालक का माता के (जरायु) से बाहर निकलकर आना प्रसव (Delivery) कहलाता है। जिस स्त्री को प्रसव हो, प्रसूता (ज़च्चा) कहलाती है। प्रसूता को प्रसव में थोड़ा-बहुत दर्द होता है। जो स्त्रियाँ हृष्ट-पुष्ट होती हैं, जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, चक्की पीसना, चरखा कातना, भोजन बनाना इत्यादि घर के प्राय सब काम अपने ही हाथ से करती हैं अथवा अन्य कोई शारीरिक व्यायाम करती रहती हैं। जिनकी कमर व पेड़ू की हड्डियाँ अच्छी बनी होती हैं और जहाँ जरायु का मुख रहता है, वहाँ की हड्डियाँ तंग न होकर चौड़ी होती हैं, जो शांत-स्वभाव, मेहनती होती हैं तथा ठीक उमर में जिनको प्रसव होता है, उनको प्रसव-

पूर्ण गर्भ

पीडा बहुत कम होती है। इसके विपरीत अमीर घरानो की आलसी व नाज़ुक स्त्रियाँ जो घर के काम-काज करने, चूल्हा-चक्की को हाथ लगाने में भी अपनी हतक समझती है, या जो तंग कपडे पहनती है, किसी प्रकार का शारीरिक व्यायाम नहीं करतीं, जो कम उमर मे अर्थात् १६ वर्ष से नीचे बच्चा जनती है या बहुत बडी उमर मे पहला बच्चा जनती है यथा २०-२२ वर्ष से ऊपर, जिनकी कमर की हड्डियों का घेरा तग होता है, आजकल की झूठी सभ्यता मे रहनेवाली स्त्रियाँ जो खाना-पहनना, रहन-सहन सभी में प्रकृति के विरुद्ध व्यवहार करती हैं, जो प्रसव से यों ही डरा करती है, जो चचल होती है, उनको यह पीडा अधिक होती है।

प्रसव की तैयारी

सूतिकागार—जिस कमरे अथवा कोठरी मे प्रसूता को रक्खा जाता है, वह 'सूतिकागार' कहलाता है। प्रसव की पीडा आरंभ होने से लेकर कम-से-कम १५ दिवस तक और संभव हो, तो ४० दिन तक प्रसूता को यहीं रहना होता है। सूतिकागार जिस कमरे को बनावें, उसमें निम्न-लिखित बातों का पूरा ध्यान रक्खें—

१—हवा के आने-जाने का अच्छा प्रबध होना चाहिए। जहाँ प्रसूता की चारपाई हो, उस जगह सीधी हवा नही आनी चाहिए, लेकिन कमरे मे हर समय ताजा हवा के आने और गदी हवा के निकास का पूरा प्रबंध होना चाहिए।

२—किसी प्रकार की दुर्गंध कमरे मे या उसके पास न हो। यदि पैदा हो जाय, तो तुरंत दूर कर दी जाय।

३—यदि जाड़े का मौसम हो, तो कमरे में इस प्रकार से आँच रक्खी जाय कि उसका धुआँ तो चिमनी द्वारा बाहर निकलता रहे और उसकी गर्मी से कमरे की वायु गर्म होती रहे। कोयलों के जलाने से जो गैस निकलती है, यदि वह कमरे के किवाड़ बंद करने पर अंदर ही रहेगी, तो बच्चे का दम घुट जायगा और माता को भी बेहोश कर देगी।

४—प्रकाश का भी समुचित प्रबंध रहे।

५—कमरे की छत जहाँ तक हो सके, ऊँची और कमरा कम-से-कम इतना बड़ा हो कि जिसमें ४-५ चारपाइयाँ बिछाकर भी चलने-फिरने की जगह रहे।

६—कमरे का ढाल अच्छा हो और मोरी अवश्य हो।

७—कमरे में न तो तुरत की की हुई सफ़ेदी हो, न काला धुआँ और जाला लगा हुआ हो। अच्छा हो, यदि ४-५ मास पूर्व ही सफ़ेदी करवा कर नीलथोथा डालकर हलका रंग करवा दिया गया हो तो अच्छा है।

८—सूतिकागार में एक ज़च्चा का पलँग और एक चारपाई। एक-दो कुर्सी तथा ज़च्चा के पीने का पानी व पहनने के कपड़ों के अतिरिक्त और कोई वस्तु काठ-कबाड़, असबाब आदि नहीं होना चाहिए। यदि हो सके, तो दीवारों पर राम-जन्म, कृष्ण-जन्म, बुद्ध-जन्म तथा महापुरुषों के चित्र अथवा जंगल, झरने, बागों आदि के सुंदर दृश्य लगा दें। उत्तम वाक्य भी लिखे हों, तो हानि नहीं। जानवरों की तस्वीरें या भयानक चित्र कोई न हों। चित्रों की संख्या भी कमरे के अनुसार अधिक न हो।

सूतिकागार में कौन-कौन रहे ?

चतुर दाई के अतिरिक्त एक चतुर, अनुभवी, प्रसन्न-मुख स्त्री सदा प्रसूता के पास रहे, तो अच्छा है। दो-चार बच्चों की मा हो, तो उत्तम है। यह स्त्री प्रसूता की माता या प्रसूता से अधिक प्रेम रखनेवाली निकट संबंधिनी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि अधिक प्रेम अधिक चिंता और आवश्यकता से अधिक घबराहट पैदा कर देता है। लेकिन बिल्कुल ही हृदय-शून्य, कठोर-हृदय स्त्री न होनी चाहिए। स्त्री को चाहिए कि प्रसूता को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करे, उसे अच्छी-अच्छी बातें सुनावे, उस पर नाराज़ न हो, उसके सामने भयानक घटनाओं का या किसी कष्टमय घातक प्रसव का वर्णन कदापि न करे। प्रसूता की माता का उस कमरे में तो नहीं, परंतु उस घर में रहना आवश्यक है। इससे प्रसूता को तसल्ली रहती है।

सूतिकागार के अंदर अन्य स्त्री-पुरुषों को नहीं जाना चाहिए। बाहर से ही बातचीत कर लेनी चाहिए। इधर हिंदुओं में जो छुआछूत का नियम इस संबंध में है, वह उचित सीमा में बिल्कुल ठीक है। सूतिकागार को रोज़ साफ़ कर देना चाहिए।

दाई कैसी हो ?

धात्री को अपनी विद्या में चतुर होने के अतिरिक्त हँसमुख, चतुर, मज़बूत और स्वच्छ होना आवश्यक है। दाई का लालची होना बुरा है। यदि कोई दाई ऐसी हो, तो प्रथम तो

उसे बुलाना ही नहीं चाहिए और यदि बुला ली गई हो, तो फिर उसकी मजदूरी देने में सकोच न करना चाहिए। दाई न तो बहुत बूढ़ी हो और न बिल्कुल छोटी उमर की हो। यदि विवाहिता और दो-तीन बच्चों की मा हो, तो अच्छा है। दाई को पहले से ठीक कर रखना चाहिए और समय से पहले ही बुला लेना चाहिए। नवाँ मास आरभ होने के बाद चौथे-पाँचवें दिन दाई को दिखा देना चाहिए। दाई को अपना काम शुरू करने के पूर्व कपडे बदल लेने चाहिए। उसे उचित है कि स्वच्छ कपडे पहन ले और हाथ-पाँव गरम जल से धो ले, बालों को ढककर बाँध ले।

प्रसव की पूर्व सूचना

प्रसव होने के कोई १५ दिन पूर्व ही प्रसव की सूचना मिल जाती है। जरायु जो बढ़ता-बढ़ता इन दिनों नाभि के ऊपर तक पहुँच जाता है, लगभग १५ दिन पूर्व कुछ नीचे को खिसक जाता है। और नाभि के थोडा नीचे तक भी पहुँच जाता है। कलेजे और छाती पर जो बोझ और दबाव-सा मालूम हुआ करता है, वह हलका पड जाता है। गर्भिणी खुलकर साँस लेने लगती है। पेट कुछ पटक जाता है और हर प्रकार गर्भिणी को आराम मालूम होता है। सुस्ती बिल्कुल नहीं रहती। यहाँ तक कि गर्भिणी का जी घर का काम-काज करने को चाहता है। परतु सावधान! इस समय मामूली से अधिक कोई काम न करना चाहिए।

दूसरे

स्त्री की भग कुछ भरी हुई-सी मालूम होने लगती है और कुछ श्लेष्म-सा निकलने लगता है, कभी श्वेतप्रदर-जैसा स्राव होने लगता है और कपडा लेने की आवश्यकता होती है, यह अच्छा चिह्न है। समझना चाहिए कि प्रसव में अधिक पीडा न होगी।

तीसरे

कुछ स्वभाव में परिवर्तन मालूम होता है। या तो तबियत में कुछ फिक्र अधिक मालूम होती है या कुछ सयम व सावधानी अधिक बढ जाती है।

इन उपर्युक्त लक्षणों से समझ लेना चाहिए कि अब प्रसव १०-१५ दिन में होनेवाला है और प्रसव की समस्त तैयारियाँ पूरी कर लेनी चाहिए।

प्रकरण ८

वस्तुएँ जो प्रसव के समय हाज़िर रखनी चाहिए—

(१) आध सेर स्वच्छ बढ़िया रुई और धुले हुए स्वच्छ वस्त्र के कई टुकडे, जो सफ़ेद हो। रक्त को पोछने-सुखाने और प्रसूता को शुद्ध करने के लिये तथा प्रसूति के नीचे बिछाने के लिये।

(२) ३-४ नरम तौलिए। (उपर्युक्त रुई, कपडे और तौलिए कारबोलिक लोशन मे भिगोकर सुखा लिए गए हो। एक हिस्सा कारबोलिक एसिड मे चालीस हिस्सा पानी मिलाने से कारबोलिक लोशन बन जाता है।)

(३) मोटे कपडे की १½ गज लबी और १४ इच चौडी दो-तीन पट्टियाँ जो प्रसव के बाद माता के पेट से लपेट दी जायँ। जिसकी चौडाई मे छातियो से नीचे पेडू तक और लंबाई मे दो फेरे कमर के गिर्द आ जायँ। जरूरत पडने पर पलँग की चादर लबाई मे दो पर्त करके काम मे लाई जा सकती है।

(४) महीन फलालेन की ५ इच चौडी और २ फिट लबी दो पट्टियाँ बच्चे के पेट से लपेटने के लिये।

(५) एक नरम फलालैन का टुकडा जिसमे बच्चा लपेट लिया जाय। (यह भी कारबोलिक लोशन मे भिगोकर सुखाया हुआ हो।)

(६) नाल काटने को एक तेज़ कैंची (कारबोलिक लोशन मे धुली हुई।)

(७) एक ब्रुश और कारबोलिक साबुन दाई के हाथ धोने के लिये।

(८) चार औंस लाइसोल दाई के हाथ धोने के लिये (एक सेर पानी मे एक चम्मच लाइसोल डालना।)

(९) दो औंस बोरिक एसिड का पाउडर, नाल काटकर बुरकी देने के लिये।

(१०) कुछ छोटे-छोटे कपड़े के टुकडे कारबोलिक लोशन मे उबले हुए। प्रत्येक टुकडा ३ इच लबा और इतना ही चौडा हो और उसके बीच में नाल का टुकडा सुगमता से घुस सकने योग्य छेद होना चाहिए।

(११) चार-छ औंस जल में घुले हुए बोरिक एसिड की एक बोतल। बच्चे की आँख और माता के स्तन आदि धोने के लिये।

(१२) आधे या एक औंस की आर्जिराल लोशन की बोतल जिसमें १०% आर्जिराल हो, बालक के नेत्रो को स्वच्छ करने के लिये।

(१३) कुछ औंस वेसलीन और मीठा तेल बच्चे के शरीर को स्वच्छ करने के लिये।

(१४) कुछ सेफ्टी पिन माता और बालक के पेट की पट्टी में काम आने के लिये।

(१५) कुछ स्वच्छ कपड़े बच्चे के पोतड़ों के लिये।

(१६) दो टुकड़े सुतली या टेप ६ या ८ इंच लम्बे। साधारण १०-१२ धागे बटकर यह बनाया जा सकता है।

(१७) एक उगालदान।

(१८) पलँग की ६ धुली हुई चादरें, कम्बल आदि।

(१९) शहद व गर्म पानी आवश्यकता के लिये।

(२०) थोड़ी-सी ब्राह्मी और एक सोने की शलाका बच्चे को चटाने के लिये।

यह तमाम सामग्री एक मेज या आलमारी में सुंदरता से सजाकर रखनी चाहिए। इनके सिवा थोड़ी उम्दा कस्तूरी, चन्द्रोदय और एमोनिया स्मैलिंग साल्ट भी रख लेना चाहिए। वस्त्र और सामग्री जो बच्चे और माता के लिये एकत्रित किए जायँ, उनके विषय में यह पूर्ण सावधानी रक्खी जाय कि वे धूल से सर्वथा सुरक्षित रहें, और अच्छी तरह स्वच्छ हों। प्राय बालक प्रसव के दो सप्ताह बाद ही मर जाते हैं और प्रसूति को भी भयानक रोग आ घेरते हैं। इसका मुख्य कारण प्रसव के समय की अस्वच्छता है।

बहुधा गन्दे चीथड़ों का उपयोग रक्त सोखने के लिये किया जाता है। यह बड़ी भयानक बात है।

साफ बर्तनों में कई बाल्टी पानी उबला और स्वच्छ वस्त्रों से ढका हुआ तैयार रहना चाहिए और चिलमची भी हर समय तैयार रहनी चाहिए।

प्रकरण ६

प्रसव

प्रसव के मुख्य लक्षण दो हैं—प्रथम योनि से रक्त-द्रव-स्राव, दूसरा प्रसव-वेदना। सच्ची वेदनाएँ ठहर-ठहरकर उठती हैं। प्रथम १५ से ३० मिनट के अन्तर से और फिर ज्यों-ज्यों प्रसव-काल निकट आता है, शीघ्र आने लगती हैं। प्रसव निकट है या नहीं, इसकी परीक्षा स्पर्शन द्वारा करनी चाहिए।

प्रथम स्पर्शन

चित्र-लिखित रीति से गर्भाशय के मुड पर छूकर देखो। यहाँ भ्रूण का चूतड रहता है। यह स्थान सिर की अपेक्षा कोमल प्रतीत होगा।

द्वितीय स्पर्शन

चित्र की रीति से भ्रूण के चूतड को माता की पीठ की ओर दबाओ।
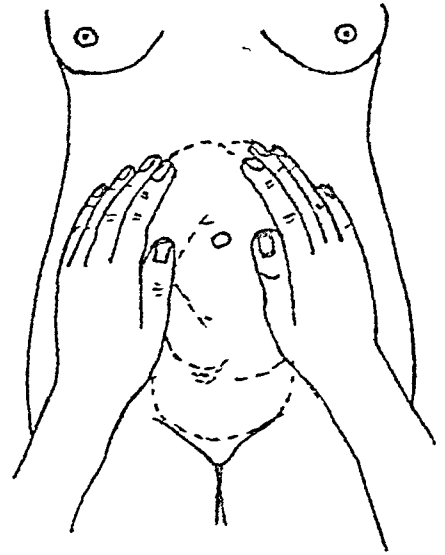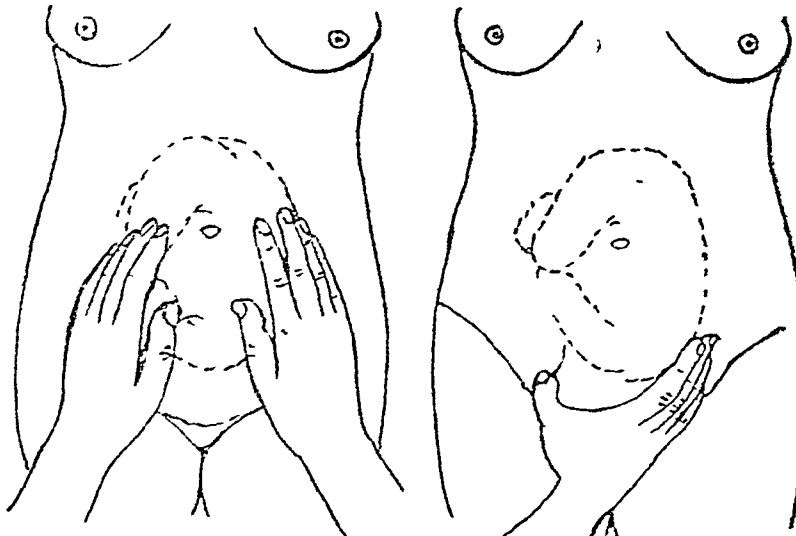
प्रथम स्पर्शन

तृतीय स्पर्शन

गर्भाशय के निचले भाग में अँगूठे और उँगलियो से भ्रूण का सिर पकडने की चेष्टा करो।

द्वितीय स्पर्शन

तृतीय स्पर्शन

चतुर्थ स्पर्शन

गर्भिणी के मुख की ओर पीठ करके दोनो हाथों को गर्भाशय के निचले भाग के पास रखकर वस्ति-गुहा की ओर ले जाने का यत्न करो।

प्रसूति-गृह में तमाशाई स्त्रियों की भीड नहीं रहनी चाहिए। एक दाई और दो और स्त्री उसकी सहायता के लिये काफी है।

स्त्री को गर्म जल से स्नान कराओ। पेडू और योनि को साबुन और गर्म पानी से अच्छी तरह धो दो। प्रसव-काल मे जल्दी-जल्दी मूत्र उतरता है। यदि ८ घटे से प्रसविणी को दस्त नहीं हुआ है, तो उसे एनीमा दे दो, ताकि कोठा साफ हो जाय।

चतुर्थ स्पर्शन

पहली पीडा मे प्रसविणी इच्छानुसार बैठ या लेट सकती है, परतु पीडा के अधिक बढ़ जाने पर पलँग पर टाँगे ऊपर करके लेट जाना चाहिए। इस समय उसका खडा रहना या बैठना हानिकारक है।

दाई को अपनी बाँह और हाथ को अच्छी तरह लाइसोल के पानी मे साफ कर लेना चाहिए। उसकी बाँहें कोहनी तक खुली रहनी चाहिए। उँगलियो के नाख़ून कटे होने चाहिए। और उनके भीतर का मैल साफ कर देना चाहिए। उसे स्वच्छ वस्त्र पहनना चाहिए।

जनने में सहायता के विचार से प्रसूति को कोई औषध न पिलाओ। अकारण इस काम के लिये औषध मत दो। उसके पेट को रस्सी या पलँग की चादर से न बाँधो। दाई को उसकी योनि मे उँगलियाँ भी न डालनी चाहिए। ऐसा करने से स्त्री को छूत का ज़हरीला असर हो जाने का भय है, जिससे प्रसूत का ज्वर आने लगेगा।

नाल का बाहर निकलना

जब पानी की थैली फूटती है, तब बालक का सिर योनि के मुँह से निकलता हुआ दिखाई देगा। यदि कुछ गड़बड़ नहीं है, तो बालक का मुँह नीचे माता की पीठ की ओर होगा और प्रथम बार खोपड़ी दीखेगी। यदि सिर जल्दी से निकलेगा, तो योनि बुरी तरह चिर जाने का भय है। इसलिये ज्यों ही सिर दीख पड़े, उस पर उँगलियाँ लगाओ, और प्रत्येक पीड़ा में मज़बूती से नीचे को दबाओ। इस प्रकार से बालक का सिर छाती की ओर झुकता है। इस कारण वह योनि के छेद द्वारा सुगमता से निकल आता है। इस प्रकार से सिर का निकलना कुछ मिनटों तक रुक जाता है। पीड़ा के उठने में जो समय का अंतर होता है, उसमें स्नायु स्वयं बढ़ते तथा सकुचित होते हैं। जब यह खुलना प्रारंभ होता है, तब सिर को बाहर निकालने देना आवश्यक है। इस विधि से अंग फटने का भय कम होगा।

II I

III IV

II I

III IV

शिरोदय के भिन्न-भिन्न रूप

सिर निकलने के पीछे थोड़ा ठहरकर शरीर बाहर आता है। ज्यों ही सिर निकले, उँगली बालक की गर्दन पर लगाकर देखो कि नाल तो गले में नहीं लिपटी है। यदि नाल लिपटी है, तो बच्चे को जल्द निकालो और यदि नाल गले में लिपटी नहीं है, तो एक स्वच्छ कपड़े

अथवा सोखनेवाली रुई में वालक के नेत्रों को स्वच्छ करो और पोछो। और उसका मुँह खोलकर मुँह को भी स्वच्छ करो।

जब वालक उत्पन्न हो गया, तब उसे फलालेन में लपेट दो। उसके मुँह को रक्त में लोट-पोट न होने दो। आर्जिगल लोशन की बूँद उसकी आँखों में डालो। यह न हो, तो वोरिक एसिड की बूँद नेत्र में डालो। जन्म के समय वालकों के नेत्रों को न धोने से ही हजारों वालक अंधे हो जाते हैं।

प्रसव के भिन्न-भिन्न रूप

वालक के प्रसव होने पर जब तक दाई बच्चे का प्रबंध करे, तब तक दाई की सहायक स्त्री को माता के पेट पर हाथ धरके गर्भाशय को थामे रहना चाहिए। पेट पर से टटोलने से गर्भाशय एक कडा ढेला-सा प्रतीत होता है, उसे धीरे से दवाना चाहिए। खबरदार रहो—एक क्षण-भर भी हाथ ढीला न रहने पावे, इसी प्रकार दवाने से गर्भाशय सिकुडेगा और रक्त बंद होगा।

ज्यों ही नाल में धडकन बंद हो जाय, तो उसे बाँधकर काट दो। जो सुतली या फीते इस काम के लिये तैयार कर रक्खे हैं, अब उन्हें काम में लो। सावधान होकर खूब कसकर १½ इंच छोडकर नाल पर धागा बाँध दो। यह धागा और कैंची फिर एक वार कारवोलिक

[illegible]

[illegible]

लोशन में उबाल लो। यदि इन चीज़ों में ज़रा भी दोष रह गया, तो बच्चे को भयानक रोग लग जाने का भय है।

नाल काटकर उस पर ज़रा-सा बोरिक एसिड बुरक दो। इसके बाद वह टुकड़ा कपड़े का रक्खो, जो छेद करके प्रथम ही रख छोड़ा है। उसके छेद से नाल को निकाल लो, फिर कपड़ा नाल पर लपेट दो, फिर एक पट्टी बालक के चारों ओर बाँध दो कि वह नियत स्थान पर रहे और उसे दाहनी करवट किसी नरम और सूखी जगह पर लिटा दो।

अब प्रसविनी की तरफ़ ध्यान दो। यदि उसका ठीक उपचार हो गया है, तो शीघ्र ही आँवल गिरेगी। बच्चा पैदा होने

बच्चेदानी को दबाना

देनी चाहिए और उसे पिन से अटका देना चाहिए। पट्टी खूब कस देनी चाहिए। इसके बाद कार-।बोलिक लोशन से ज़च्चा की जाँघ और आस-पास का स्थान अच्छी तरह धो देना चाहिए। बच्चेदानी मे भी ब्रूश दे देना चाहिए कि साफ़ हो जाय। नीचे से गीला कपड़ा निकाल ले, पर यथासंभव उसे हिलावे नहीं। तौलिए की एक गद्दी बनाकर योनि-मुख के ऊपर रख दो और इसे आगे-पीछे पिन के द्वारा लँगोट की भाँति पेट की पट्टी से अटका दो। इसके बाद कमरे से सब हट जायँ। माता को विश्राम करने दो। एक घंटे बाद देखो कि क्या बच्चेदानी सिकुड़ गई है? सिकुड़ी हुई बच्चेदानी कड़ी गेंद के समान मालूम होगी। उस समय नाड़ी देख लो, यदि वह १०० से अधिक मालूम हो, तो रक्त-स्राव का भय है। ऐसी दशा में इसके लिये सावधान रहो। और यदि नींद रात को न आवे।तथा गर्भाशय में दर्द हो, तो योग्य चिकित्सक से सलाह ले लो।
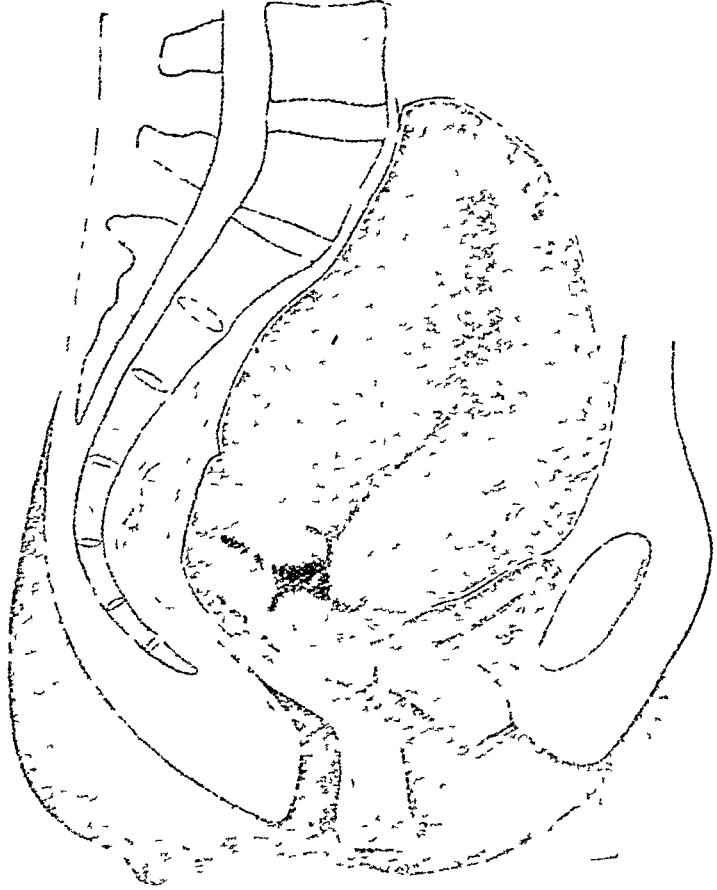
गर्भाशय का संकुचित होना

बच्चे को शहद-घृत और ब्राह्मी का रस एक-एक बूँद मिलाकर सोने की शलाका से चटा दो। इससे उसका स्वर शुद्ध और बुद्धि तीव्र हो जायगी।

प्रसव के ६-७ घंटे बाद प्रसूति को मूत्र होना चाहिए। यदि मूत्र न निकले, तो गर्म पानी में तौलिया भिगोकर और निचोड़कर पेड़ू और योनि पर रक्खा जाय। प्रसव के २४ घंटे के उपरांत तक यदि प्रसूति को दस्त न हो, तो उसे जुलाब की दवा दे दी जानी चाहिए।

प्रसूति को आहार

प्रसव होने के बाद प्रसूति को दूध, बालि, पान (घी-गुड़ का पेय) तथा अन्य सुपाच्य और

पौष्टिक आहार खा सकती है। फल और फलों का रस भी उसे दिया जा सकता है। हाँ, ठंडा पानी और ठंडा भोजन उसे न देना चाहिए। प्रसव के बाद एक मास तक वह सौभाग्य शुंठी का सेवन करे, यह सबसे उत्तम बात है। गुड़, सोंठ, मखाने, पंजीरी, घृत का हलुआ यह देना उत्तम है। ६ दिन बाद खीर, खिचड़ी, फुलका आदि साधारण भोजन दे सकते हैं। सौभाग्य शुंठी का नुसखा इस ग्रंथ में अन्यत्र दिया गया है।
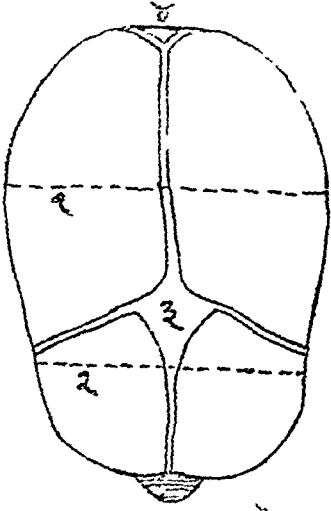
भ्रूण-कपाल

१ पार्श्विकास्थि मध्य व्यास।
२ शंखास्थि मध्य व्यास।
३ ब्रह्मरंध्र।
४ प्रजापतिरंध्र।
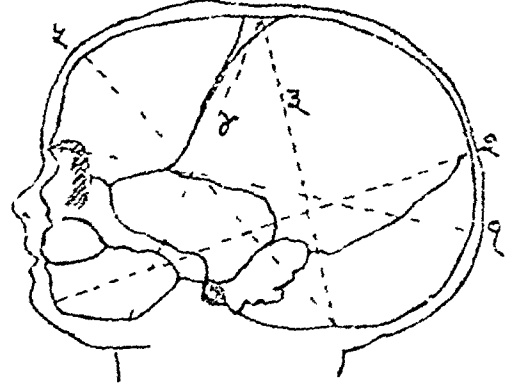
भ्रूण-कपाल का व्यास

१ नासा-मूल से कपालार्बुद तक ४ १/२ इंच।
२ ठोडी से प्रजापतिरंध्र तक ५ ३/८ इंच।
३, सिर का पिछला भाग ३ १/२ इंच।
४ सिर का अग्र भाग ४ ३/८ इंच।
५ ललाट से ग्रीवा के पिछले भाग तक ३ ३/४ इंच।

प्रकरण १०

प्रसव के बाद का स्राव

प्रसव के बाद १०-१५ दिन तक स्राव होता रहता है। यह स्राव पहले लाल फिर पीला पानी के समान दुर्गंधित रहता है। कभी-कभी यह एक मास तक जारी रहता है। पर इसके अधिक निकलने से दुर्बलता आती है और शीघ्र बंद होने से मद ज्वर, हडफूटन, पेडू में भारीपन, कमर में पीडा आदि लक्षण हो जाते है। इसके लिये 'दशमूल' का काढ़ा या उसका अर्क एक मास तक पिलाना अति उत्तम है।

प्रतिदिन कारबोलिक लोशन और परमेंग्नेट ऑफ् पोटाश के पानी से डूश लेना भी उत्तम है।

यदि बालक श्वास न ले, तो उसका उपाय

प्राकृतिक रीति से ज्यो ही बालक जन्म लेता है, त्यो ही रोने और साँस लेने लगता है। यदि बालक रोता नहीं और साँस लेना आरभ नही करता और चुपचाप पडा रहता है अथवा मध्यम व मद श्वास लेता है, तो उसे जल्दी-जल्दी साँस लिवाना आवश्यक है। जीवन लाने के उपाय करने चाहिए। उँगली मे एक पतला स्वच्छ कपडा लपेटकर पहले मुँह और गला स्वच्छ करो। उँगली और अँगूठे में एक पतला कपडा लपेटकर बच्चे की जीभ पकडो। एक मिनट मे १० बार के हिसाब से धीरे-धीरे उसकी जीभ पकडकर खींचो। इसी समय किसी दूसरे आदमी से कहकर उसके चूतड पर कपडे से धीरे-धीरे प्रहार कराओ अथवा एक कपडा पानी में गीला करके छाती पर थपथपाओ। इस प्रकार करने से वह श्वास लेने लगेगा। जब वह श्वास लेने लगे, तो एक कपडे के टुकडे मे, जो आँच पर गर्म कर लिया गया है, उसे लपेट दो।

यदि उपर्युक्त क्रियाएँ दो मिनट तक करने पर भी बालक श्वास न ले, तो ऊपरी श्वास-प्रश्वास की क्रिया धीरे-धीरे गति से करो, जो अन्यत्र लिखी है। एक बर्तन मे, जिसमें बालक का शरीर आ जाय, १०५ F डिग्री के गर्म पानी मे उसका कुछ अग डुबो दो। एकाएक निराश न हो, और आधा घंटा या अधिक समय तक ऊपरी श्वास-प्रश्वास की क्रिया करो।

प्रसव मे अधिक रक्त-स्राव का उपाय

प्रसव के समय मे रक्त-स्राव स्वाभाविक ही है। पर यदि यह रक्त-स्राव अधिक परिणाम में हो और स्त्री ठंडी और पीली पडने लगे तथा अचेत हो जाय, तो ये उपाय करे—

(१) उसके चूतडो के नीचे दो-तीन तकिए रख दो, ताकि वह ऊपर उठ जाय।

(२) गर्भाशय को पेट पर से ज़ोर से पकड़कर दबाओ, ताकि वह सिकुड़ जाय। जब तक रक्त-प्रवाह बंद न हो जाय, ज़ोर से पकड़े रहो।

(३) बर्फ के पानी में या ठंडे पानी में कपड़ा भिगोकर उसे पेट और योनि में रक्खो, और बारबार ठंडा पानी डालते रहो। ठंड से रक्त-नालियां सिकुड़ जायेंगी, और रक्त बंद होने में सहायता होगी।

(४) २-३ फुट की ऊँचाई से आमाशय पर ठंडा पानी डालो। बालक को तुरंत स्तनों से लगा दो। स्तन चूसने से गर्भाशय सिकुड़ता है।

इसके बाद २-२ दिन तक स्त्री को चुपचाप शांत होकर लेटा रहना चाहिए। बैठने या उठने न दो।

प्रसूति-ज्वर

प्रायः प्रसव के बाद ३-४ दिन तक स्त्रियों को ज्वर रहा करता है, पर यह साधारण बात है। परंतु जो ज्वर प्रसव के ३-४ दिन पीछे आता है, भयानक है। इसके साथ नाड़ी भी अत्यंत तेज चलती है। प्रथम ठंड लगती है। पेट के नीचे के भागों में प्रायः पीड़ा रहती है। सिर-दर्द करता है, रज-स्राव कम हो जाता है।

यह ज्वर वास्तव में अशुद्ध वस्तुओं, दाई के गंदे हाथों और गंदे वस्त्रों की छूत से होता है।

इसमें सर्व-प्रथम कोष्ठ शुद्ध करना आवश्यक है। अरंड तेल का प्रतिदिन जुलाब दो। प्रति चार घंटा बाद लाइसोल की पिचकारी दो। इतने पर भी यदि रोग न दबे, तो तत्काल योग्य चिकित्सक को दिखाओ।

प्रकरण ११

प्रसव-बाधा

अनेक कारणो से प्रसव में बाधाएँ पड़ती है, जिनमें से प्रधान-प्रधान हम यहाँ लिखेंगे—

१—गर्भाशय-दोष—गर्भाशय का मुख सख्त हो, उसमे कोई घाव हो, अथवा उसका मुख न खुले, तो बालक गर्भाशय मे ही अटक जाता है, इससे बालक और माता दोनो के प्राणो पर संकट आता है।

२—योनि-दोष—गर्भाशय मे कोई खराबी नहीं। बच्चा उसमे से निकल आया है। परंतु योनि किसी कारण से कडी है, उपदंश या और किसी भी विषाक्त घाव का उसमें असर है। या वह कुदरती तौर से इतनी कडी है कि नहीं फैलती, तो भी बालक नहीं निकल सकता।

३—पेशाब की थैली कडी हो गई हो या योनि के पिछले भाग में सूजन हो, तो भी प्रसव रुक जाता है।

४—पेशाब की थैली टेढ़ी और खराब होने तथा उसमे गाँठ या रसौली होने पर भी यह कठिनाई आती है।

५—कभी-कभी बच्चे के सिर मे पानी बढ़कर सिर इतना बडा हो जाता है कि उसका योनि-मार्ग से निकलना ही कठिन है।

उसके उपाय

यदि योनि और वस्ति में प्रथम ही विकार है, तो ऐसी स्त्रियो को गर्भ रहना उनके लिये अमंगल है—सावधान होकर प्रथम ही गर्भ गिरा देना चाहिए। शेष अवसरों पर एक उपचार काम में लाना चाहिए—८ तोले अरडी का तेल पाव-भर गर्म दूध मे मिलाकर प्रसविणी को पिला देना यदि इससे आधा घंटा में प्रसव न हो, तो फिर शस्त्र-क्रिया के लिये बिना विलंब होशियार डॉक्टर को बुलाना चाहिए।

मूढ गर्भ

मूढ गर्भ में प्राणों का संकट आ जाता है। गर्भिणी से मैथुन करने से, सवारी पर चढ़ने से, ठोकर लगने से, उल्टे-सीधे लेटने से, उपवास करने या दस्त-पेशाब रोकने से या गर्भपात की चेष्टा करने से यह भयानक परिस्थिति पैदा हो जाती है।

इस रोग में गर्भ आडा-तिरछा हो जाता है या मर जाता है। किसी गर्भ का मस्तिष्क योनि में अटक जाता है, किसी का पेट, किसी का शरीर तिरछा हो गया। किसी का एक हाथ योनि के बाहर निकला, शेष अटक रहा। कोई कमर के बल योनि-द्वार पर अटक जाता है।

किसी का सुख बाहर आकर अटक जाता है, शरीर भीतर रहता है। कोई-कोई हाथ-पैर ऊपर करके सिर के बल कील की भाँति योनि-द्वार में ठुक जाता है। किसी के हाथ-पाँव खुर के समान बाहर निकल आते हैं।

ऐसी अवस्था में स्त्रियाँ ठंडी, बेहोश, नीली पड़ जाती हैं, उनके बचने की आशा नहीं रहती।

मृढगर्भ के भिन्न-भिन्न रूप

पेट में मरे हुए बच्चे की पहचान

यदि बच्चा हिले-डुले नहीं, पीड़ा उठनी बंद हो जाय, स्त्री का शरीर हरा या नीला हो जाय, स्त्री की साँस में मुर्दे के समान गंध आवे, पेट पर सूजन चढ़ गई हो, तब समझना कि बच्चा पेट में मर चुका।
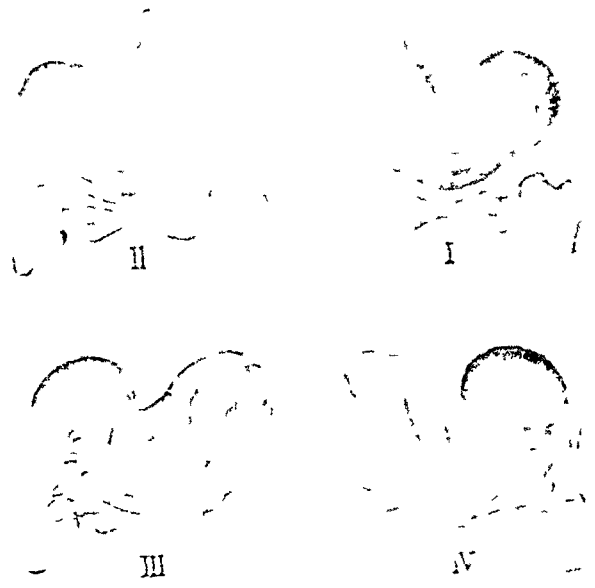
उसकी चिकित्सा

(१) साँप की काँचली को दो सकोरों में जलाकर राख कर लो और उसे शहद में मिलाकर आँख में आँज दो, इससे यदि बच्चा जिंदा होगा, तो बाहर आ जायगा।

(२) बिदाल के डोडे और इंद्रायन की जड़ दोनों को १-१ तोला पानी में पीसकर योनि-मार्ग में रख दे। जीता और मरा बच्चा बाहर आ गिरेगा।

यदि इन उपायों से काम न हो, तो अति चतुर डॉक्टर से चीर-फाड़ करावे, जिससे माता के प्राण बच सकें।

अद्भुत बातें जो कभी-कभी प्रसव में हो जाती हैं

(१) अनेक बच्चों का एक साथ होना। परीक्षा से जाना गया है कि प्रति ८७ बच्चों में एक प्रसव दो बच्चों का और प्रति ७,६७९ में एक प्रसव ३ बच्चों का होता है। ५ बच्चे तक एक गर्भ में होते सुने गए हैं, पर बहुत ही कम। जब दो बच्चे होते हैं, तब प्रायः एक लड़का और दूसरी लड़की होती है। दोनों लड़कियाँ बहुत कम होती हैं और लड़के उससे भी कम होते हैं।

ऐसे बच्चे प्रायः रोगी, अल्पायु और बेडौल होते हैं। दो बच्चों का गर्भ पहचाना जा सकता है। ऐसी गर्भिणी के पेट के बीच में गढ़ा होता है। दो हृदयों की धड़कनें सुनाई देती हैं। दूसरा बच्चा सरलता से हो जाता है। जब दोनों बच्चे पैदा हो जायँ, तभी नाल काटना चाहिए।

(२) बदसूरत बच्चा पैदा होना— कभी कोई अंग कम, कभी अधिक, जैसे ६ उँगली। कभी दिमाग़ ही नहीं होता या होंठ या तालू कटे होते हैं।

जोडिए बच्चे
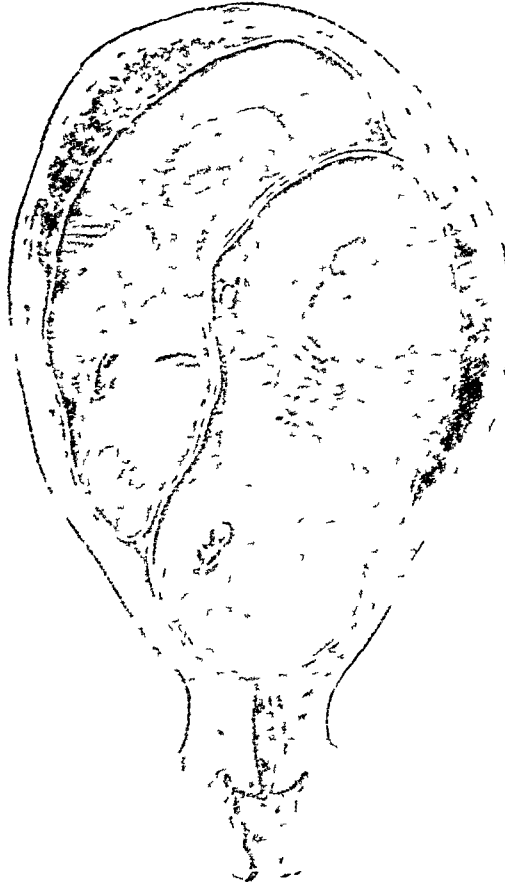
(३) जुडे बच्चे पैदा होना—इनके चार प्रकार है—

१ दो बच्चे छाती-पेट से जुड़े हुए।

२ दो बच्चे पीठ से जुडे हुए।

३ दो सिर और सब अंग एक।

४ एक सिर पर दो धड़।

ये बच्चे बहुत छोटे होते तथा कम जीते है।

प्रकरण १२

गर्भ न रहने के कारण

गर्भ न रहने के अनेक कारण हो सकते हैं—

१ स्त्री वन्ध्या हो या पुरुष नपुंसक हो।

२ जननेंद्रिय के रोग।

३ मासिक धर्म की विकृति।

४ अतिरिक्त विषयासक्ति।

वन्ध्या और नपुंसकपने का दोष दो प्रकार का होता है। एक [illegible] पुरुषों की जननेंद्रिय या तो होती ही नहीं और यदि होती भी है, तो [illegible]। [illegible] कोई चिकित्सा नहीं, परन्तु ये रोग श्रम, नशा, भय आदि कारणों तथा [illegible] कारणों से भी हो जाते हैं। यदि किसी उत्तम वैद्य से चिकित्सा कराई जाय, तो लाभ हो सकता है।

जननेंद्रिय के रोगों को खूब ध्यान से दूर करना चाहिए। और उनकी चिकित्सा [illegible] चाहिए। प्रदर, सूजाक, आतशक और योनि-रोग एवं प्रमेह ही [illegible]। उपर्युक्त रोग की चिकित्सा के बाद 'अशोकारिष्ट'-नामक औषधि जो [illegible] मिल सकती है, स्त्री-रोगों को तथा गर्भाशय शुद्धि के लिये तथा [illegible] पुरुषों के लिये [illegible] उत्तम वस्तु है।

मासिक धर्म की विकृति के लिये यह दवा अति उत्तम है—

गुलाब के फूल ४ माशा, अजवायन ४ माशा, दालचीनी ३ माशा, [illegible] २ माशा, गुड़ पुराना दो तोले। रजोदर्शन के प्रारंभ होते ही ४ छटांक पानी में पकाकर २ छटांक शेष रहने पर छानकर दोनों समय पीना तथा ऋतुकाल के नियमों का पालन करना चाहिए। मासिक धर्म में चाहे भी जैसी विकृति, जैसे दर्द, रक्त कम आना, काला, पीला, दुर्गंधित रक्त आना आदि-आदि दो-तीन मास तक ऋतुकाल में ३ दिन लेने से रुकावट दूर हो जायगा।

उलट कंबल नाम की एक वनस्पति भी मासिक धर्म के विकारों में अति उत्तम है, उसका लिक्विड एक्स्ट्रैक्ट बंगाल केमिकल वर्क्स ने बनाया है, जो सर्वत्र बिकता है। उसे भी सेवन किया जा सकता है।

गर्भ रहने के उपाय

यदि कोई खास शिकायत न हो, तो एक मास स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य से रहें। पुष्टिकर और हलका आहार करें।

ऋतुकाल मे उक्त काढ़ा मासिक शुद्धि का स्त्री पीवे। स्नान करके ७ दाने शिवलिंगी के बीज निगल जाय। दाँतों को न लगने दे। दूसरे दिन ९, तीसरे दिन ११, चौथे दिन १३, इसी प्रकार बाद में १-१ दाना बढ़ाकर निगल जाय। तथा रात्रि को १ माशा नागकेशर चूर्ण कर दूध के साथ फंकी ले ले। यह क्रिया ८ दिन करे। आशा है, अवश्य गर्भ रह जायगा। उसी मास में या २-३ मास के अंदर।

८ दिन बाद 'महाफलघृत' का सेवन करे। इसका नुसख़ा यह है— पीली गौ का ताज़ा घृत जिसके नीचे बछड़ा हो १ सेर। उसी गौ का दूध ४ सेर। त्रिफला, मुलहठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, वायविडंग, पीपल, नागरमोथा, इन्द्रायण की जड़, कायफल, वच, मेदा, महामेदा (ये न मिले, तो इनके बदले मुलहठी), असगंध, फ़लप्रियंगु (न मिलें तो मेंहदी के फूल), रास्ना, सफेद चदन, हींग, लालचंदन, जावित्री, वंशलोचन, कमलगट्टा, चमेली की कली, मिसरी, अजवाइन, दंती, ये ३० दवाइयाँ एक-एक तोला ले इन्हें कपड़छन चूर्ण कर लुगदी कर ले और घी-दूध तथा ४ सेर पानी मिलाकर मंदाग्नि से पचावे। जब घी रह जाय, छानकर रख ले। यही फलघृत है। १ से २ तोले तक दूध मे डालकर या मिश्री में मिलाकर खाना चाहिए।

यदि तीन मास बीतने पर भी गर्भ न रहे, तो ये गोली बनावे—

माजूफल ४ माशा, मूँगफली ४ माशा, बड़ी इलायची ४ माशा, लौंग ४ माशा, समुद्र-फल ४ माशा, जायफल ४ माशा, नागकेशर ४ माशा, शिवलिंगी के बीज ७ माशा, सबको कपड़छन कर फरास के पत्तों के रस मे एक-एक माशे की गोली बनावे और प्रातःकाल ताजे पानी से ऋतुस्नान के बाद २१ दिन खाय, अवश्य गर्भ रहेगा।

अध्याय पाँचवाँ

शिशु-पालन

प्रकरण १

वायु और प्रकाश

जहाँ तक बन सके, बच्चों को खुली हवा में रखना चाहिए। जब बच्चा घर में हो, चाहे वह सोता हो, चाहे वह खेलता हो, बराबर इस बात का ध्यान रक्खो कि बाहर की खुली और ठंडी हवा निरंतर कमरे में आती रहे। बच्चे को हवा के झोंकों से तो जरूर बचाने का ध्यान रखना चाहिए। परंतु हवा ठंडी है, इस बात का कुछ डर नहीं करना चाहिए। स्वच्छ, ताजी, ठंडी हवा शक्ति-वर्द्धक है, और बच्चों को सर्दी लगने से बचाती है। सर्दी, खाँसी, जुकाम, दमा आदि रोग उन्हीं बच्चों को होते हैं, जिन्हें स्वच्छ और ताज़ी हवा से बिल्कुल बचाया जाता है। कोयले आदि से गर्म किए हुए कमरे की हवा ज़हरीली और तंदुरुस्ती को हानिकर होती है, और बच्चों को सर्दी-जुकाम का शिकार बनाती है। क्योंकि ऐसी हवा में रहनेवाले बच्चे जब कभी बाहर खुली हवा में जाते हैं, ठंडी हवा उनकी हड्डियों में भयंकर प्रभाव उत्पन्न करती है।

स्वस्थ शिशु

इसलिये बच्चों को अच्छी तरह गर्म कपड़े पहनाकर बेखटके स्वच्छ और ठंडी वायु में खेलने और सोने दिया जाय। ऐसी आदत जिन बच्चों को पड़ जायगी, वे सर्दी खाने से सुरक्षित रहेंगे और उन्हें कभी खाँसी, दमका आदि रोग न होंगे।

सौर-गृह का प्रबंध

जन्म लेने पर कई अठवारे तक बच्चे प्रायः २० या २२ घंटे तक सोया करते हैं। इस सोने में लाभ ही है। यदि बालक कच्ची नींद में जगाया जायगा, तो वह सारे दिन रोवेगा।

जो अच्छी या बुरी आदत उसे माता उन दिनो मे डाल देगी, वही आगे चलकर पड जायगी। इसलिये बच्चे को प्रथम ही हिडोले मे या पालने मे डालकर सुलाना चाहिए। हिलाना उचित नही, क्योकि जब हिलाने की आदत पड जायगी, तो बच्चे को बिना हिलाए नींद न आएगी, और हिंडोला रुक जाने मे बच्चा जाग उठेगा। आँखो को तेज़ रोशनी से बचाए रखना चाहिए। बच्चे के घर मे दिया बहुत तेज़ न जलाना चाहिए। जो जले वह बच्चे के आँखो के सामने न रहे। सबसे उत्तम बात तो यह है कि बच्चे के घर में सरसो के तेल का दिया जलाया जाय।

देखा गया है, सौर-गृह मे बडी भारी गदगी रहती है। प्राय लोग सबसे बुरा कमरा इस काम के लिये चुनते है, जिसमे बच्चा और ज़च्चा दोनो को ही कष्ट होता है। प्राय बच्चे ख़ास इसी असावधानी के कारण मर जाते है।

सौर-गृह के लिये घर का सबसे उत्तम कमरा चुनना चाहिए। सौर-गृह इस प्रकार का होना चाहिए—

१—घर की धरती पक्की और ऊँची होनी चाहिए।

२—द्वार पूर्व या उत्तर को होना चाहिए।

३—वायु का द्वार बंद न हो, पर हवा तीक्ष्ण न आवे तथा बच्चे के शरीर पर सीधी न लगे।

४—कमरा कम-से-कम ५-६ गज लबा और ३-४ गज़ चौडा होना चाहिए।

५—उसमें एक पलँग, एक पालना, एक छोटी मेज़ इनके सिवा और कुछ न होना चाहिए।

जब सौर का समय बीत जाय, तो बच्चे को धीरे-धीरे बाहर लाना चाहिए। और ताज़ी हवा खिलाना चाहिए। उसे आरोग्य रखने के सबसे अच्छे उपाय ये है—

१—साफ ताजी हवा साँस लेने को चाहिए।

२—साफ हलके-सादे कपडे पहनने को मिलें।

३—साफ-सूखा और रोशन कमरा खेलने को मिले।

४—उचित समय पर नहाना, खाना और सोना हो।

५—खेलने के सामान और साथी अच्छे और उपयुक्त हो। ये पाँचो बातें बडी सरल है, परतु बच्चे का सारा भाग्य इसी पर निर्भर है।

बच्चे को कहाँ सुलाना चाहिए?

बच्चा बहुत शीघ्र हृष्ट-पुष्ट होगा, यदि उसे ख़ूब हवादार कमरे में रक्खा जाय।

सोने के कमरे मे एक साधारण खिडकी खुली रखना शुद्ध वायु के लिये काफी नही है। जरूरत इस बात की है कि कमरे मे ताजी और ठडी हवा का प्रवाह निरतर बाहर से बहता रहे। कमरे में हवादान भी होने निहायत ज़रूरी है।

जहाँ सोने के कमरे मे हवादान नही, वहाँ निरंतर खिडकी खुली रहनी चाहिए।

सबसे उत्तम तो बात यह है कि बच्चे को एक अलाहिदा कमरे में ही रक्खा जाय। अगर जगह की तंगी हो, तो इतना तो जरूर करना चाहिए कि बच्चा अलग माता-पिता से कुछ फासले पर पालने पर सुलाया जाय। बाहर की बैठक भी बच्चे के सोने के लिये ठीक की जा सकती है, पर हर हालत में यह बात परमावश्यक है कि जो भी स्थान इस काम को निश्चय किया जाय, पूर्णतया हवादार हो।

बच्चे को अपनी माता के साथ एक ही बिस्तर पर कदापि नहीं सोने देना चाहिए। उसके लिये एक अलाहिदा पालना ज़रूरी है। अगर यह पालना माता-पिता के ही सोने के कमरे में रक्खा जाय, तो उसे माता के पलँग के ठीक सामने काफी फासले से रक्खा जाय, जिससे पालने और पलँग के बीच स्वच्छ वायु का बाहर से सीधा प्रवाह आता-जाता हो, जिससे बच्चे को अपने माता-पिता के श्वास से निकली गंदी वायु में श्वास न लेना पड़े।

स्वच्छ वायु का प्रवाह

उपर्युक्त प्रकार से स्वच्छ वायु में बच्चे को रखने का प्रभाव उसके रंग, शरीर की बढ़ोतरी, पुष्टि, नैरोग्य और प्रसन्नता को देखने से प्रकट हो जाता है। ये परिणाम उस दशा में अधिक उत्तम दीख पड़ते हैं, यदि बच्चा नजदीक ही किसी अलग कमरे में नित्य सोता रहे। मैं समझता हूँ कि अपने प्यारे बच्चे को अपनी छाती से अलग रात-भर रखने में खासकर अलग कमरे में सुलाने को कोई माता राजी न होगी। परंतु यदि वे केवल एक महीने तक जी कड़ा करके बच्चों को इसी प्रकार सोने का प्रबंध करें, तो उसी महीने में बच्चे की उत्तम दशा देखकर वे कभी फिर अपनी पुरानी रीति को पसंद न करेंगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

ऐसे बच्चे जो स्वच्छ और ठंडी वायु के प्रवाहवाले कमरे में नित्य सोते और खेलते-कूदते हैं, वे खूब गहरी नींद में ६ से ८ घंटे तक सोते रहते हैं और बीच में जाग और रोकर माता को कभी कष्ट नहीं देते। अलबत्ता यह ज़रूरी है कि एक नरम, मोटा तौलिया या कपड़े का टुकड़ा उनके नीचे जरूर बिछा देना चाहिए और एकाध बार ध्यान से देख लेना चाहिए कि बच्चे ने रात को पेशाब तो नहीं कर दिया है। यदि कपड़ा भीग गया हो, तो उसे तत्काल बदलकर दूसरा कपड़ा लगा देना चाहिए। बच्चे को रात्रि के समय कदापि कुछ खाने को न दिया जाय।

बच्चे के लिये सर्वोत्तम स्थान

दर्वाज़े के दोनो बाजू के स्थान पालने के लिये सर्वोत्तम हैं। पालने के पास छोटा-सा पर्दा इसलिये ज़रूरी है कि हवा का झोंका बच्चे के शरीर को हानि न पहुँचावे। माता के पलँग के पास बच्चे का पालना रक्खा जाना अच्छा नहीं है। सबसे उत्तम स्थान खिड़की के पास है। उस स्थान पर यदि बच्चे का पालना रहेगा, तो खिड़की के द्वार से आनेवाली स्वच्छ वायु का बहुत-सा भाग द्वार के रास्ते बाहर निकल जायगा। अलबत्ता सर्दी के दिनों में बच्चे के लिये आड़दार स्थान उत्तम है। इस स्थान में सर्वथा स्वच्छ और ठंडी वायु बच्चे को मिल सकती है और पर्दे से बच्चे के शरीर का बचाव भी हो सकता है। अभिप्राय यह है कि माता और

बच्चा दोनो का स्थान आमने-सामने फासले पर होना ही चाहिए, यदि उन्हें पृथक्-पृथक् कमरे में सोने का सुभीता न हो।

बच्चे के लिये सबसे निकृष्ट स्थान

माता के साथ पलंग पर सोना बच्चे के लिये सबसे निकृष्ट स्थान है। उसमें नीचे लिखी हानि होती है—

१—नींद मे बच्चे का हाथ-पाँव माता की करवट के नीचे आ जाने से उसके कुचल जाने का भय है।

२—माता की साँस के साथ जो जहरीली हवा निकलती है, उसमें साँस लेने से बच्चे के कोमल फेफडो को अत्यंत भय है।

३—बच्चा अपनी ही साँस की गंदी हवा मे बार-बार साँस लेगा। क्योंकि जब उसके मुख और नाक के चारो ओर की हवा गर्म होगी, तब साँस की छोडी हुई जहरीली हवा का एक बादल-सा उसके चारो ओर बन जायगा और यदि ठंडी और ताज़ी हवा उसके मुख और नाक के चारो ओर होगी, तो साँस की छोडी हुई जहरीली हवा गर्म और हल्की होने के कारण एकदम ऊपर को उठ जायगी। क्योंकि ठंडी हवा उसे नीचे से ऊपर फेंक देगी।

४—माता की गंदी गर्म श्वास की हवा बच्चे के शरीर और चमडे को बिल्कुल कमज़ोर बना देती है। बच्चे का शरीर इतना नाज़ुक हो जाता है कि उसे चाहे जब सर्दी पकड जाने का ख़तरा लगा रहता है। ख़ासकर दिन में यदि ऐसा बालक ज़रा भी ठंडी हवा में छोड दिया जाय, तो उसे फौरन् सर्दी लग जायगी।

बच्चे की हवाखोरी

प्रातःकाल और सायंकाल बच्चे को नित्य खुली और धूल-रहित जगहो मे, पार्क या बगीचो में ले जाकर स्वच्छ वायु का सेवन कराना चाहिए।

इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि बच्चे को गोदी मे लेकर जाना बिल्कुल हानिकर है, उससे बच्चे को कुछ भी आराम नहीं मिलता। आजकल अँगरेज़ी और देशी अनेक प्रकार की गाडियाँ बच्चो के हवा खाने के काम की होती हैं, उन्ही को काम में लाना चाहिए।
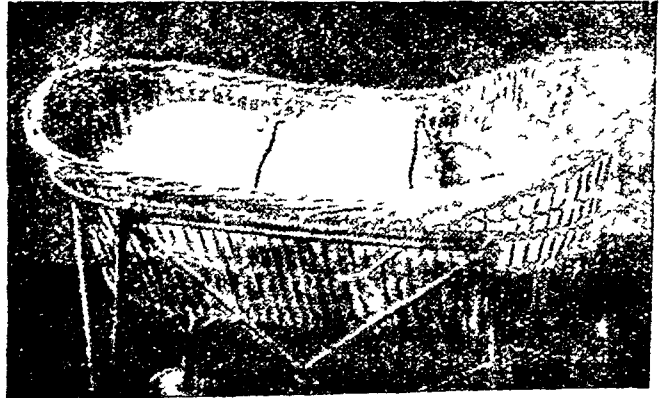
सबसे उत्तम गाड़ी

सबसे उत्तम गाडी वह है, जो बेत या बाँस की बुनी हुई

जालीदार हो और जिस पर ऊपर की छतरी झिनझिने कपड़े की हो, जिसकी जाली में सरलता से स्वच्छ वायु का प्रवाह बहता हो। इस गाड़ी में लेटा हुआ बच्चा अगर साँस लेगा, तो वह गंदी हवा ऊपर को उठ जायगी और स्वच्छ हवा बराबर श्वास के लिये मिलती रहेगी।

इस प्रकार की गाड़ियों में मच्छर, मक्खी, और धूप को बचाने के लिये कपड़ा मढ़ दिया जाता है। वह कुछ अच्छा नहीं अलबत्ता बारीक जाली मच्छर-मक्खी की रक्षा के वास्ते होनी जरूरी है, पर ऐसी नहीं कि जिसमें हवा के आने-जाने में बाधा पड़े। बढ़िया तनजेब
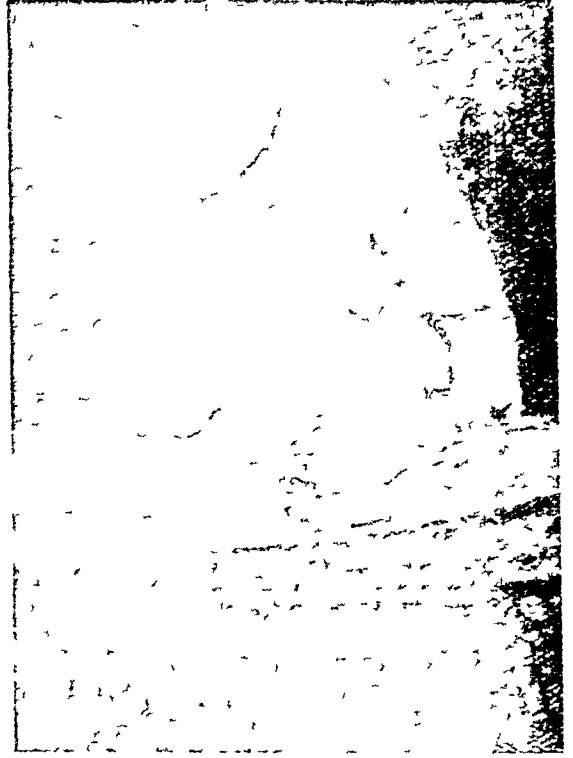
बच्चे को लिटाने की रीति

या मलमल से गाड़ी को मढ़ लेना बहुत उत्तम उपाय है। बच्चे को स्नान करने के १५-२० मिनट बाद शुद्ध वस्त्र पहनाकर हवाखोरी को ले जाना चाहिए। चाहे जैसी सर्दी हो, अगर बच्चे का शरीर अच्छी तरह गर्म वस्त्रों से ढका है, तो उसे बिल्कुल खुली हवा में फिराने में किसी बात का खटका नहीं है।

कुछ विलायती गाड़ियाँ केनविस या आइल क्लाथ की गाड़ियोंवाली चमड़े से मढी हुई होती हैं। वास्तव में ये बच्चे के लिये हानिकर हैं। खासकर गर्मी के दिनों में जब बच्चे के साँस की हवा ज़्यादा भारी हो जाती है, ऐसी गाड़ियाँ जिनमें चारों तरफ जाली न होने से स्वच्छ वायु का प्रवेश नहीं होता, उस ज़रा-सी हवा का एक बादल बच्चे के इर्द-गिर्द बना देती हैं और उसी में बच्चे को साँस लेना पड़ता है, परन्तु लेटे हुए बच्चे के मुख को कपड़े से ढक दिया जाय और हवागाड़ी गद्दीदार हो, जिसमें हवा आने-जाने की गुंजाइश न हो। बच्चे के श्वास की हवा नीचे की तरफ को जायगी, और उसके चारों तरफ ज़हरीला असर पैदा हो जायगा। क्योंकि वह हवा गाड़ी में इस तरह भर जायगी, जैसे टब में पानी भर जाता है और बच्चा उसी में डूबा रहेगा। अगर ऐसी गाड़ी में बच्चा एक कमरे में रात-भर सोने दिया जाय और बच्चा बार-बार उसी में साँस लेता रहे, तो यह और भी भयंकर है। चाहे सर्दी हो या

गर्मी, परंतु किसी भी दशा मे बच्चे के पालने या गाड़ी मे किसी तरह का ढकना, पर्दा या और कोई ऐसा रुकाव न होना चाहिए, जिससे बच्चे की साँस के लिये स्वच्छ वायु मिलने मे रुकावट हो या उसके आस-पास ज़हरीली हवा भर जाय। कभी-कभी धूप और चमक से बच्चे को बचाने के लिये दुशाला या कोई भारी चीज़ गाड़ी या पालने पर डाल दी जाती है। वास्तव में ऐसा करने से बच्चे के भाग्य पर मुहर लगा दी जाती है। चाहे जिस ऋतु मे बच्चे को इस तरह बिल्कुल ढॉक देना अक्षम्य है। श्वास की वायु सरलता से बेरोक बाहर निकल जाय, और ताजी हवा प्रतिक्षण बच्चे को मिलती रहे, इस बात की जरूरत है।

यह ख़याल बिल्कुल गलत है कि दिन के समय सोते वक्त बच्चो को तेज प्रकाश से कुछ छाया की जरूरत होती ही है, परंतु वास्तव में सिर्फ धूप से बचाना ही काफी है। फिर यदि यह देखा जाय कि धूप बहुत ही तेज है, तो गाड़ी को बराडे मे या दीवार की साया में अथवा किसी वृक्ष की छाया मे रख सकते है। आकाश की हलकी रोशनी बच्चे की दृष्टि को अपने तरफ आकर्षित करे, वह भी उसकी नींद को उचाट नहीं करेगी। रात्रि को यदि बच्चे को स्वच्छ वायु मिले, तो वह खूब गहरी नींद मे सोवेगा। माताएँ कह सकती है कि रोशनी से बच्चे की आँखें खराब हो जायँगी, पर इस बात पर विचार करना चाहिए कि जागने पर बच्चा कैसे आनद से प्रकाश को देखता है। बच्चो को अँधेरे कमरो और कोठरियो मे दिन-भर रखने से बेशक बच्चो की बढ़वार रुकने मे बड़ी सहायता मिलती है निस्सदेह बच्चे को अपने जन्म के प्रथम सप्ताह में प्रकाश से एक पर्दे के द्वारा बचाना चाहिए। परंतु एक सप्ताह बाद बच्चों को प्रकाश बहुत ही प्रिय मालूम देता है और अक्सर बच्चे प्रकाश के साथ खेला करते हैं।

बच्चे को कपड़े ढॉक रखने से उसके मुख और नाक के चारो ओर गर्म, ज़हरीली और गदी वायु का बादल छाया रहता है। यह प्राणघातक कार्य है। धूप से बचने के लिये सबसे उत्तम छाया वृक्ष की है। दूसरे दर्जे पर दीवार की छाया या बराडा है, पर बच्चे को गाड़ी पर ले जाया जाय, तब छाता इस्तेमाल कर सकते है। जिससे स्वच्छ वायु का आवागमन न रुके, छाते का, जो बच्चो के लिये छाया के तौर पर काम मे लाया जायगा, रग भीतर हरा और ऊपर सफेद रहना चाहिए। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि हवा गाड़ी को ही पालने की तौर पर प्रयोग करना नही चाहिए, क्योंकि उसमे बच्चे को हिलने-डोलने की गुजाइश बहुत कम होती है।

प्रकरण २

आहार और जल

माता का दूध

माता का दूध बच्चे के लिये अमृतबिंदु है। उसमें बच्चे की जीवन शक्ति है। माता का कर्तव्य है कि वह बच्चे के लिये नीरोग और निर्दोष दूध प्रदान करे। नीरोग दूध बच्चे के लिये सबसे उत्तम आहार है। माता के नीरोग दूध से बढ़कर मूल्यवान् आहार जगत में नहीं है। पर कभी-कभी माता की बदपरहेजी से बिगड़कर वही दूध विष के समान बन जाता है। माता को अपने प्यारे बच्चे पर दया करके अपना खान-पान नियमित और सावधानी से परहेज का बनाए रखना चाहिए।

जो दूध पतला हो, जिसमें नीली झलक हो, जो मीठा हो और जिसमें मलाई पड़ती हो, जो पानी में तत्काल घुल जाय, वह दूध निर्दोष है।

जो स्त्री का दूध पानी में न घुले, डूब जाय या तैरता रहे, खट्टा या कड़ुआ हो—रंग हरा, काला या पीला हो, जिसे रख देने पर मलाई-सी न पड़े, जिसमें चिउँटी डालने से तैरकर न निकले, मर जाय, ऐसा दूध दूषित होता है।

जिन माताओं की तंदुरुस्ती अच्छी होती है, हाजमा दुरुस्त होता है, दस्त जिन्हें साफ़ आता है, जो उत्तम, पुष्टिकारी, सात्विक भोजन ठीक समय और ठीक मात्रा में करती हैं, वे बच्चे के लिये अमृतमय दूध प्रदान कर सकती हैं।

दूषित दूध बच्चे को कदापि नहीं पिलाना चाहिए और उसकी यह चिकित्सा करनी चाहिए—

१—दशमूल का काढ़ा पिलाया जाय।

२—गिलोय, पटोल-पत्र, शतावर, नीम का पत्ता, लाल चंदन, अनंतमूल, चिरायता, प्रत्येक ६ माशा। १ पाव पानी में पकावे। १ छटाक रहे, तो छानकर पीवे, इससे सब प्रकार का दूषित दूध शुद्ध होगा। जिन स्त्रियों का दूध सूख जाता है, या कम उतरता है, उनको यह दवा देनी चाहिए—

१—जीरा सफ़ेद ६ माशा, मगज खीरा २० दाने, इलायची छोटी ३ माशा, मगज़ कद्दू २० दाने, बादाम ४ दाने।

गर्मी हो, तो पत्थर पर पीस और ठंडाई बनाकर पिलावे, सर्दी हो, तो पीसकर दूध के साथ फंकी दी जावे।

७—वच, मोथा, इन्द्रजौ, अतीस, देवदारु, सोंठ, शतावर, अनतमूल सबका काढ़ा बनाकर पिलावे।

खीर, मखाने, किशमिश, दाख, जीरा आदि पौष्टिक वस्तु खाने को दे।

यदि माता का दूध बहुत ही दूषित हो गया हो, तो उसका न पिलाना ही ठीक है। वैसी अवस्था मे या तो धाय लगाई जाय या गाय अथवा बकरी का दूध दिया जाय।

दूध पिलाने की विधि

गर्भिणी स्त्री को प्रसव के कुछ दिन प्रथम से ही अपने स्तनों को स्वच्छ रखने की तरफ ध्यान देना चाहिए। प्रतिदिन प्रात काल और सायंकाल थोडी देर अँगूठे और उँगली से धीरे-धीरे स्तन के अग्रभाग को मलना चाहिए, जिससे उस अंग को जब बच्चा चूसे, तो वह सहन हो सके। इस अग में उग्र स्पर्शेन्द्रिय होती है। यदि स्तनों की घुडियाँ चौडी या बैठी हुई है, तो बच्चे को उन्हें पकडने मे कष्ट होगा। ऐसी दशा में उन्हें उभारने के लिये होशियारी से नित्य पंप का इस्तेमाल करना चाहिए, जो कि बहुधा स्तनो में से दूध निकालने के काम में आता है। प्रतिदिन स्तनो को प्रात-सायं प्रथम गर्म पानी से और फिर ठडे पानी से धोना चाहिए और अच्छी तरह सुखा देना चाहिए। कभी-कभी पानी में ब्राडी मिलाकर या बोरिक लोशन से धोना भी लाभकारी होता है। परतु सबसे लाभदायक बात यही है कि उन्हें खूब स्वच्छ रक्खा जाय, और अच्छी तरह सुखा लिया जाय। साबुन का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। साथ ही उन्हें कसकर बाँधना भी उचित नही है।

बच्चे को दूध पिलाकर प्रति बार स्तनों को बडी सावधानी से गर्म पानी से धोकर साफ करना चाहिए, और वैसी ही सावधानी से उन्हें सुखा लेना चाहिए। ऐसा करने से किसी भी स्तन-रोग का भय न रह जायगा। अगर ज़रूरत हो, तो एक स्वच्छ रुई का फाया स्तनो पर इसलिये रख लिया जाया करे कि दूध रिसकर स्तन सदा गीले न रहें। परंतु इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि अँगी या चोली या कोई भी वस्त्र जो स्तनो पर रहे बिल्कुल गंदा गीला या मैला न हो।

जन्म के प्रथम सप्ताह मे बच्चे को हर बार दोनो स्तनो से दूध पिलाना चाहिए। प्रथम दिन एक स्तन को दो मिनिट तक, फिर तीन मिनिट तक। फिर इसी तरह बढ़ाते जाना चाहिए। कुछ माताएँ समझती है कि एक सप्ताह के बाद बच्चे को एक वक्त मे एक ही स्तन दूध पिलाना चाहिए। दूसरी बार दूसरे स्तन से। यह बात वही ठीक है, जहाँ एक ही स्तन से से बच्चा यथेष्ट दूध पी सकता हो, परंतु जहाँ ऐसा नहीं है, वहाँ बराबर दोनो स्तनो से ही दूध पिलाना चाहिए। प्रथम दाएँ स्तन का पीछे बाएँ का। इससे दूध भी खूब उतरता है। हरएक स्तन पर बच्चे को ८ से १० मिनिट तक पीने देना चाहिए।

प्रसव के १०-१२ घंटे बाद ही बच्चे के मुँह मे स्तन देना चाहिए, जिससे छाती में दूध उतरे। क्योंकि बहुधा देखा गया है कि यदि जल्दी ही बच्चे को स्तन नहीं दिया गया, तो दूध सूख गया है।

यदि स्तनों की घुंडी चपटी होने [illegible] समय दूध न निकले, तो एक [illegible] को [illegible] दबाना चाहिए, जिससे दूध [illegible] के मुँह में पहुँच [illegible] चाहिए।

शुरू के महीनों में प्रतिदिन तीन घंटे पर [illegible] पिलाना चाहिए। यदि दूध पिलाने के समय पर बच्चा सो गया हो, तो उसे [illegible] पिलाना चाहिए। तंदुरुस्त माता के स्तनों से बच्चे के [illegible] मिलता है, जो नौ मास तक के बच्चे के लिये [illegible] है।

यदि बच्चे को इस प्रकार स्वस्थ [illegible] मिले, तो [illegible] और वह जब सोकर उठेगा प्रसन्न होगा, [illegible] न रोवेगा। [illegible] होगी। निरंतर वज़न बढ़ेगा। [illegible] न हो, तो [illegible] चाहिए कि उसको दूध अशुद्ध मिल रहा है।

जन्म से दो दिन के भीतर यदि बच्चा [illegible] गुनगुना पानी दूध पीने पर दे देना ठीक होगा। परन्तु [illegible] चार घंटे [illegible] न दिया जाय।

दूध पिलाने का ढंग

माता सीधी पालथी मारकर बैठे, [illegible] स्तन को [illegible] बालक के मुँह में दे। पहले दाहना स्तन पिलावे, पीछे बायाँ। लेटकर कभी दूध न पिलावे। इससे बालक का कान बहने लगता है। बालक को गोद में लेकर और एक हाथ उसके मस्तक के नीचे लगाकर मस्तक को ऊँचा रक्खे, तब पिलावे। नींद में न पिलावे। यदि कोई ख़ास बाधा न हो, तो माता ही को बच्चे को दूध पिलाना चाहिए। बच्चे जिस माता का दूध नहीं पीते, उससे स्नेह भी नहीं करते। इसके सिवा बच्चे को दूध पिलाने से स्त्री नीरोग भी रहती है। ऐसी स्त्री को गर्भ-पात या गर्भस्राव कभी नहीं होता।

दूध पिलाने के लिये उठाने की रीति

नौ महीने तक बच्चे को माता दूध पिलावे। कहावत है—"नौ महीने धरे और नौ महीने भरे।" यदि माता में शक्ति हो, तो जब तक गर्भ न रहे,
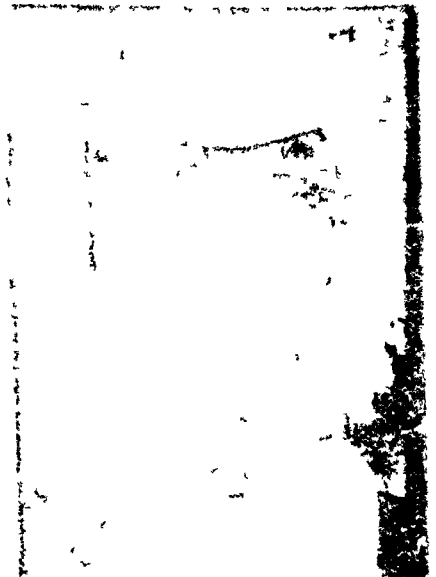
बच्चे को दूध पिलाए जाय। इससे अधिक पौष्टिक और गुणदायक वस्तु संसार में बच्चे के लिये और नहीं है। कहावत है—"देखें, तूने अपनी मा का कितना दूध पिया है?"

दूध पिलाकर बालक का मुँह धो डालना चाहिए, जिससे मक्खी आदि काट न खाय। नीचे-लिखे चिह्न जब माता के शरीर में दीखें, तभी दूध बंद कर देना चाहिए—

१—जब माता के स्तनों में दूध न रहे।

२—जब माता के कानों में सनसनाहट मालूम हो।

३—जब माता की आँखों में अँधेरा-सा जान पड़े।

४—आँखों में पीड़ा हो।

५—मस्तिष्क में धमक और चित्त व्याकुल हो।

६—मूर्च्छा और थकावट जान पड़े, शरीर काँपे, भूख न लगे, अजीर्ण हो, पेट में दर्द हो, ज्वर हो, पेट में सनसनाहट हो, ऐसा प्रतीत हो मानो पेट बैठा जाता है, चलते-फिरते देह में दर्द हो, मुँह पर पीलापन छा रहा हो, टखने सूज आए हों।

छः महीने तक बच्चे की गर्दन नहीं ठहरती, सो इसके पीछे हाथ लगाए रहना चाहिए। असावधानी करने से बालक मर जाता है। बालक को इन दिनों न सीधा बैठावे, न सीधा गोदी में ले। ऐसा करने से पीठ का कूबड़ निकल आता है। क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी बहुत ही नरम होती है।

दूध पिलाकर बालक को तुरंत ही न सोने दे। इससे भोजन हज़म नहीं होता और स्वप्न भी बुरे दीखते हैं।

बहुधा बालक दूध पीते-पीते स्तन में सिर मार देते हैं, जिससे नाड़ी का मुँह बंद होकर स्तन सूज जाता और बालक की माता को ज्वर आ जाता है। ऐसा होने पर यह उपाय करे कि रोटी बनाने के बाद गर्म तवा नीचे उतारकर रख दे और ताज़े पानी से स्तन धोना शुरू करे। इस तरह पानी टपक-टपककर नीचे तवे पर पड़ेगा और उसकी भाफ उठकर स्तन को लगेगी। इससे दो-तीन दिन में ज्वर उतर जायगा और सूजन भी कम हो जायगी। यदि सूजन अधिक हो, तो यह क्रिया करे—

पोस्त के डोडे एक तोला, मकोय सूखी एक छटाक एक सेर पानी में पकावे, जब आधा पानी रह जाय, उसे एक टूँटनीदार लोटे में मुँह बंद करके टूँटनी द्वारा भाफ लगावे, शीघ्र आराम होगा। इस ज्वर में कोई भय की बात नहीं है।

कई बार ऐसा हो जाता है कि लोहू रुक जाने से स्तन सूज जाता है। इससे स्त्री को बहुत कष्ट मिलता है। ऐसी दशा में यह लेप करना चाहिए—सिरस की छाल, मुलहठी, नगर, लाल चंदन, एलुवा, बालछड़, दारुहल्दी, कूठ, नेत्रबाला, सबका चूर्ण कर ज़रा-सा घी मिलाकर पानी से लेप करें। दूध पिलाती बार माता को इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

१—क्रोध से दूध न पिलावे। यदि ऐसा ही संयोग हो, तो थोड़ा-सा जल पी ले। जब क्रोध ठंडा हो जाय, तब पिलावे।

२—पसीना आ रहा हो या मल, मूत्र, वमन आदि का वेग हो, तो दूध न पिलावे।

माता का आहार

बच्चा पैदा होने के बाद थोड़े दिन तक माता को बहुत ही हलका भोजन देना—बहुत ही ज़रूरी है। हमारे देश में गुड़, मेवा, घी, हलुआ आदि वस्तुओं का खाद्य प्रसविणी को खूब ठूँस-ठूँसकर खिलाया जाता है, ऐसा करने से लोग समझते हैं कि उसे खूब शक्ति आवेगी और उसका दूध भी खूब उतरेगा। परंतु इससे कब्ज़ और अजीर्ण होकर प्राय स्वाभाविक दूध का प्रवाह भी कम हो जाता है।

शुरू में जब प्रसविणी बिस्तरे पर हो, तो एक दिन उसे सिर्फ़ दूध पर रक्खा जाय। तीसरे दिन मूँग की दाल और फुलका तथा कुछ फल दिए जा सकते हैं। प्यास लगने पर उसे यथेष्ट जल देना चाहिए। खाद्य पदार्थ सादा हो और उसमें सब्ज़ी का अंश अधिक हो, यह १५-२० दिन तक अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

साफ़ दस्त

इस बात का अच्छी तरह ध्यान रखना चाहिए कि जो माता बच्चे को दूध पिलाती हो, उसे ठीक नियमित समय में दस्त साफ़ आना चाहिए। प्रकृति का ठीक समय पर दस्त का तकाजा तंदुरुस्ती का बहुत बड़ा चिह्न है। यदि खाना, सोना, टहलना और सब काम व्यवस्था से यथानियम किए जाएँगे, तो ज़रूर ठीक समय पर दस्त की हाजत होगी।

उत्तम आहार

उत्तम और हलका तथा सादा भोजन करना चाहिए। जिन भोजनों का ज़िक्र ऊपर आया है, वे पदार्थ खाने को देने चाहिए। पका हुआ मेवा ख़ास तौर से गुणकारी है।

स्नान, व्यायाम और जल

प्रातःकाल उठकर ठंडे जल से स्नान करना चाहिए। फिर सूखे अँगौछे या तौलिए से फ़ौरन् शरीर को अच्छी तरह पोछकर झटपट सूखे स्वच्छ वस्त्र पहन लेना चाहिए। स्नान के बाद थोड़ा गर्म दूध पी लेना अच्छा है। बहुत सर्दी हो, तो गर्म जल से स्नान कर लिया जाय, परंतु ठंडे जल का स्नान शक्तिवर्धक है।

किसी कारण-वश यदि स्नान की सुविधा न हो, तो तौलिया भिगोकर तमाम शरीर को अँगोछकर नए वस्त्र पहन लेना चाहिए। किसी स्त्री को यदि ठंडे जल का स्नान अनुकूल न हो, तो उसे ऐसा करना चाहिए कि वह प्रथम गर्म पानी में खड़े होकर उसमें अँगौछा भिगो-भिगोकर शरीर को अँगोछ ले, नित्य धीरे-धीरे इस गर्म जल की गर्मी घटाते जाना चाहिए। इस तरह ठंडा जल सहन हो जायगा। स्नान के बाद कपड़े बदलकर ज़रा तेज़ चाल से

२०-२५ मिनट टहलना चाहिए, चाहे वर्षा हो या आँधी, पर यह टहलना कदापि नहीं रुकना चाहिए। यह माता के लिये सर्वोत्तम व्यायाम है।

ताजा, एक बार उबाला हुआ गाय का दूध माता की दूध-वृद्धि में बहुत सहायता देता है। परंतु इसकी भरमार ही न कर देनी चाहिए। अधिक दूध पीने से बहुधा ज़चाओं को अजीर्ण और कब्ज़ हो जाता है। सब्ज़ी और फलों का निरंतर सेवन ख़ास तौर पर इस अवसर पर अपना उत्तम प्रभाव दिखाता है। फलों में सेब, नारंगी, केला, लीची, ख़रबूज़ा, आड़ू, अनन्नास, नाशपाती, अंगूर और तरकारियों में घीया तोरई, टिंडा, पालक, आलू, कच्चा केला, भिंडी, परवल बहुत उत्तम हैं। दालों में मूँग, मसूर, मोठ और अरहर की दाल देनी चाहिए। इच्छा होने पर सेब, बिही और आमले का मुरब्बा, पेठे की मिठाई, नानख़ताइयाँ, बालूशाही, खुरमे लिए जा सकते हैं। घी ताजा और मामूली लिया जाय। मक्खन ताज़ा मिल सके, तो जरूर छटाक-भर तक दिया जा सकता है। हाज़मा ठीक होने पर रवे का हलुआ, जमाई हुई पंजीरी, खाँड मिश्री से पागे हुए मखाने, बबूल का गोंद, गोला आदि दिया जा सकता है।

बच्चे को दूध पिलानेवाली माता को ये पदार्थ ज्यादा खाने चाहिए। जल भी उसे ख़ूब पीना चाहिए। सोकर उठने पर एक गिलास तथा भोजन के कुछ देर बाद एक गिलास अवश्य लेना चाहिए। सोती बार गुनगुना जल लेना बहुत उत्तम है।

भोजन दिन में तीन बार लेना चाहिए। भोजन माता की रुचि के अनुकूल होना चाहिए।

यदि बच्चा पैदा होने के बाद दो दिन तक माता को दस्त न हो, तो उसे एनीमा देना चाहिए और यदि एनीमा देने से भी दस्त न हो, तो १॥ तोला अरंडी का तेल देना चाहिए।

माता को स्वच्छ वायु में रहना और आवश्यक हलका व्यायाम (हवाख़ोरी आदि) करना बहुत जरूरी है। वरना उसे ज़रूर कब्ज़ और बदहज़मी हो जायगी। जिस माता को कब्ज़ रहेगा, उसके बच्चे को भी अवश्य कब्ज़ियत रहेगी।

मृदु जुलाब

अगर उपर्युक्त आहार-विहार करने पर भी दस्त में कब्ज़ बना रहे, तो रोज़ रात को नीचे लिखा चूर्ण बनाकर गर्म पानी से फंकी लेनी चाहिए—सौंफ, सनाय, बड़ी हरड, सेंधानमक, चारों वस्तु बराबर मात्रा। ४ से ६ माशे।

कासकरा (Cascara) एक अँगरेज़ी दवा है, जो उत्कृष्ट मृदु जुलाब है। ख़ासकर दूधवाली माताओं को। उत्तम लिक्विड एक्सट्रैक्ट ऑफ् कासकरा की दस बूँद रात्रि को सोने के समय लेना चाहिए। ये काफी न हों, तो १५ से २० बूँद तक ले सकते हैं।

खास बातें

खुली खिड़की रखकर सोना चाहिए। द्वार भी यदि खुला रहे, तो हर्ज नहीं। प्रातःकाल स्वच्छ वायु में कुछ दूर अवश्य टहलना चाहिए। ये सब बातें माता की आदत में शरीक हो जानी चाहिए। माता का प्रसन्न और आनंदमय रहना बहुत बड़ी बात है।

दूध पीने का काल

यह बात बिलकुल ठीक-ठीक नही कही जा सकती कि कितने दिन तक माता को बच्चे का दूध पिलाने की जरूरत है। यदि कोई बाधा न हो, तो बच्चे को नौ महीने तक सिर्फ़ माता के दूध पर ही रखना चाहिए। इस बीच मे बच्चे को बराबर तौलते रहना चाहिए। यदि उसका वज़न बिलकुल ठीक-ठीक बढ रहा है, तो इसका मतलब यह है कि उसे और किसी खाद्य पदार्थ की सहायता की जरूरत नही है, और कुछ भी चीज खिलानी उसके लिये हानिकर हो सकती है।

बहुधा बच्चा जब माता के दूध ही पर रहता है, सुस्त और ढीला-सा रहता है। इसका कारण जरूरत से ज्यादा दूध पिलाना है। ऐसी दशा मे दूध पिलाने का समय और लबा कर देना चाहिए। यदि माता दो घटे मे दूध पिलाती हो, तो तीन घटे मे पिलावे। और बच्चे को पाव घटे तक स्तन पीने दे। इसके बाद भी बच्चा स्वय स्तन न छोड दे, तो माता को अपने हाथ से स्तन छुडा लेना चाहिए और जरूरत हो, तो चार घटे तक के समय का अतर दूध पिलाने के लिये रक्खा जा सकता है।

धाय

यदि किसी कारण-वश दूध पिलाने के लिये धाय की ज़रूरत हो, तो नीचे-लिखे प्रकार की धाय होनी चाहिए—

धाय ऐसी हो कि जितने दिन के बालक के लिये धाय चाहिए, उतने ही दिन का बालक उसकी गोद मे हो। दस-पॉच दिन की कमी की कोई बात नही, क्योंकि ऐसा न होने से उसका दूध बच्चे की प्रकृति के अनुकूल न होगा। धाय मे इतनी बाते होनी चाहिए —

१ युवती और सुदर हो, बहुत मोटी या कृश न हो।

२ उसकी सतान होकर मर न जाती हो।

३ उसे कोढ, खाज, दमा, क्षय आदि कोई रोग न हो।

४ गर्भवती तथा ऋतुमती न हो।

५ क्रोधी, झूठी, लबार, गदी और स्नेह-हीना न हो।

६ सुशीला, हँसमुख और सतोषी हो।

७ पहलौठी न हो। दूसरे-तीसरे की हो। स्तन ऊँचे, कठोर और लबे हो। यदि ऐसी धाय न मिले, तो उसे बाहरी दूध ही देना उत्तम है।

बाहरी दूध

इसमे सदेह नही कि माता के दूध के मुकाबिले की तो कोई चीज़ है ही नही, परंतु साधारणतया गाय का ताजा दूध कुछ पानी और चीनी मिलाकर यथासभव माता के दूध के समान ही बनाया जाकर बच्चे को दिया जा सकता है।

गाय का दूध बछडे के लिये तो बिल्कुल ठीक है, पर बच्चे के लिये वैसा नही है। बच्चे के

योग्य बनाने के लिये उसमें जल और चीनी मिलाने की ज़रूरत है। विलायती डब्बे के जो सूखे हुए दूध आते हैं, उनका भी प्रचार बहुत हो गया है। इनमें भी जल और चीनी मिलाने की ज़रूरत है। दूध में कितना जल आदि मिलाना चाहिए, इसके कुछ प्रयोग लिखे जाते हैं—

१—ताजा दूध	१॥ पाव
चूने का पानी (Lime water)	१ छ०
देशी खाँड	))॥ छ०
गर्म पानी	आध सेर

पहले दूध में पानी मिलाओ, फिर उसमें खाँड और चूने का पानी मिला दो और इसके बाद सबको एक जोश दो। एक उबाल आने पर जल्दी से ठंडा करो और बोतल में भरकर कसकर डाट लगा दो। दूध हमेशा पतले मुँह की ५-६ इंच ऊँची बोतल में रखना चाहिए—

२—ताजा दूध	आध सेर
चूने का पानी	१ छ०
देशी खाँड	२ चम्मच
गर्म करके ठंडा किया हुआ पानी	७ छ०

अगर दूध ताजा न हो, तो उसे १० मिनट तक उबालो, तब उसमें ठंडा उबाला हुआ पानी, चूने का पानी और चीनी मिला दो। बर्तन को अच्छी तरह ढककर आध घंटे तक ठंडे पानी में रख दो। फिर हवादार जगह में रख दो।

बाज़ार में विलायती दूध मिलता है, उसे Condensed milk कहते हैं। यह दूध जमा हुआ होता है और इसमें पोषण-तत्त्व बहुत अधिक होता है। यह दूध अगर बच्चे को दिया जाय, तो नीचे-लिखे प्रकार से दिया जाना चाहिए—

३—Sweetmeat condensed milk (Best brand of full Cream milk) २ चम्मच, जमा हुआ दूध ४ चम्मच

तेल एमलशन (आधा तेल, आधा पानी) २ चम्मच

गर्म पानी १॥ पाव।

शुरू में एक दिन में तेल एमलशन सिर्फ १ चम्मच ही देना चाहिए। अगर बच्चे को ठीक-ठीक हजम हो, तो धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। यह तेल ठीक बच्चे को दूध पिलाने के समय पर ही दूध में मिलाना चाहिए, सब चीज़ों के साथ न मिलाना चाहिए।

इस बात का ध्यान रखना ज़रूरी है कि यह दूध बच्चे को भर-पेट हरगिज न पिलाना चाहिए।

तेल एमलशन के बनाने का एक सर्वोत्तम नुसख़ा नीचे-लिखे प्रकार है—

शुद्ध अलसी का तेल	आध औंस

गोंद अकेशिया (Gum Acacia)	१ ड्राम
रोगन बादाम	आधा ड्राम
बाइजोइक एसिड (Bizoic Acid)	पाव ग्रेन
सैकरीन	पाव ग्रेन
पानी (डिस्टिल्ड)	आधा औंस

अलसी के तेल के स्थान पर जैतून का तेल या काडलिवर आइल भी दिया जा सकता है।

लाइम वाटर

चूने का पानी बनाने की विधि यह है कि आध सेर उबले हुए पानी में एक चम्मच पान में खाने का बढ़िया चूना घोल दो और बर्तन को ढक दो। १२ घंटे बाद जब पानी बिल्कुल निथर जाय, तो पानी को फेंक दो। नीचे के जमे हुए चूने में एक पाव पानी और मिला दो। ३ मिनट तक हिलाओ। और १२ घंटे तक रक्खा रहने दो। ऊपर का निथरा हुआ स्वच्छ जल ही लाइम वाटर है। इसे बोतल में भरकर कसकर डाट लगाकर रख देना चाहिए, और जरूरत के समय उसी में से काम में लाना चाहिए और फिर तत्काल डाट कस देना चाहिए। बोतल हवा में रक्खी रहे।

दूध को रखने की विधि

दूध को उबालकर उसे बहुत ही जल्दी और सावधानी से ठंडा करना चाहिए। यदि दूध को अपने आप ठंडा होने देने को पड़ा रहने दिया जायगा, तो उसमें अनेकों प्रकार के दूषित कीटाणु उत्पन्न हो जायँगे, खासकर गर्मी की ऋतु में, अगर दूध को ठंडा रखने की खासतौर से चेष्टा न की गई, तो वह बहुत शीघ्र खट्टा हो जायगा। यह दूध बच्चे के लिये विष के समान घातक है।

साधारणतया ६ घंटे से अधिक रक्खा हुआ दूध बच्चे को न देना चाहिए। वह दूषित हो जाता है।

दूध को ठंडा बनाए रखने की विधि

बोतल में दूध भरकर उसमें से डाट निकाल दो और ताज़ी हवा उसमें आने दो। परंतु धूल, मिट्टी उसमें न घुसे, इस बात का सावधानी से ख़याल रक्खो, और एक साफ छन्ने से उसे ढक दो, फिर उसे मामूली लकड़ी की आलमारी या चौकी वगैरा पर रख दो। हर हालत में स्थान हवादार जरूर हो। इस विधि से तेज-से-तेज गर्मी में दूध ठंडा बना रहेगा। बहुधा लोग बड़ी भारी गलती यह करते हैं कि दूध की बोतल लाकर मामूली पानी में रख देते हैं, जो प्राय दूध की अपेक्षा कुछ गर्म होता है। सर्दी के दिनों में तो इससे विशेष हानि नहीं होती, पर गर्मी के दिनों में दूध को बेशक बर्फ के पानी में रखकर ठंडा करना चाहिए।

बाहर देहातों में माताएँ दूध को पेड़ से बाँधकर लटका सकती हैं, जिससे वह ताज़ी हवा के झोंके से ठंडा बना रहेगा। दूध को देर तक अच्छा बनाए रखने का, ख़ासकर तेज़ गर्मी के

दिनों में यह भी एक तरीका है कि दूध को .खूब गर्म करके एकदम ठंडा कर लिया जाय और फिर खुली हुई हवा में रख दिया जाय।

दूसरी विधि बहुत तेज गर्मी में दूध को ठंडा बनाए रखने की यह है कि एक चौड़ी रकाबी के समान बर्तन में थोड़ा पानी भरके उसमें दूध का भरा बर्तन रख दें और ऊपर साफ मलमल का भीगा हुआ टुकड़ा ढक दें। यह कपड़ा इस ढंग से ढका जाय कि चारों तरफ वह रकाबी के पानी से तर रहे। यदि कपड़ा दोहराकर ढका जायगा, तो और भी अच्छा है। यह तश्तरी भी खुली जगह में रक्खी रहनी चाहिए। जहाँ धूल-मिट्टी, मक्खी-मच्छरों से भी बचाव हो सके।

बोतल से दूध पिलाने की रीति

साधारणतया ६॥ औंस दूध, ६॥ औंस उबला हुआ पानी, २ चाह के चम्चे चूने का पानी और १ औंस दूध की शक्कर या चीनी मिलाकर बच्चे के योग्य दूध हो जाता है।

ज्यों-ज्यों बालक बढ़ता जाय, दूध की मात्रा बढाई जा सकती है। जब वह ३ मास का हो जाय, तो उसे ३२ औंस दूध आवश्यक होगा। ऐसी अवस्था में ऊपर के प्रयोग को दूना मिला दो।

दूध के टीन के ऊपर खोलने से प्रथम उबलता पानी डालो। फिर उसमें एक छोटा-सा छेद करो। जितना दूध दरकार हो, उतना लेकर एक कटोरा उस छेद पर उलटा करके रख दो कि धूल से रक्षा रहे। जिस दूध में मीठा नहीं मिलाया गया, वह दिन-भर से अधिक नहीं रक्खा जा सकता। टीन का दूध सदा स्वच्छ, ठंडी और हवादार जगह में रखना चाहिए।

दूध पिलाने की बोतलों को सावधानी से स्वच्छ रखना चाहिए। दूध पिलाने से पूर्व प्रत्येक बार रबर की चूसनी को निकालो। और बोतल को भीतर बाहर अच्छी रीति से धोओ। ऐसा कि दूध का नाम-मात्र भी बोतल में न रहे। चूसनी को भी धोओ। फिर हलके स्वच्छ पतले कपड़े में लपेटो। और एक बर्तन में इतना पानी भरकर जितने में यह डूब जाय उबालो। यदि बोतल और चूसनी भीतर से गर्म पानी से अच्छी तरह धुली हो, तो एक दिन में एक बार उबालना ही काफी हो सकता है।

यदि बड़े बच्चे को चम्मच से दूध पिलाओ, तो चम्मच, कटोरा और दूध अत्यंत स्वच्छ रक्खो।

कितनी आयु के बच्चे को कितना दूध पिलाना चाहिए और कितनी बार पिलाना चाहिए, यह अगले पृष्ठ की सारिणी में देखिए—

बाहरी दूध पिलाने की सारिणी

बच्चे के वज़न का परिमाण		बच्चे की आयु	कितनी बार दूध पिलाना	एक बार मे कितना पिलाना	दिन रात मे कितनी	आहार का परिमाण		विश्राम के घंटे	दूध पिलाने के घंटे
						दूध	गर्म जल		
जन्म के समय बच्चे का वज़न प्राय ३½ सेर के लगभग होता है, और जन्म के बाद तीन दिन में १ पाव वज़न प्राय कम हो जाता है।	३॥ सेर	जन्म के तीसरे दिन	६	२॥ तो०	२ छ०	४ तो०	२॥ छ०	३	६,६,१२ प्रात· २,६,१० सायं
		,, चौथे ,,	६	२॥ तो०	४॥ छ०	१॥ छ०	२ छ०	३	
	३से १०छ	,, पाँचवे ,,	६	१ छ०	६ छ०	२॥ छ०	२॥ छ०	३	
		,, सातवे ,,	६	६। तो०	७॥ छ०	४ छ०	४ छ०	३	
	३॥। सेर	,, दशवे ,,	६	१॥ छ०	६ छ०	५॥ छ०	३॥ छ०	३	
		३रे सप्ताह का प्रा०	६	१ छ ३॥। तो०	१०॥ छ०	७ छ०	२॥ छ०	३	
	४से० ६छ०	४थे ,, ,,	६	२ छ०	१२ छ०	६ छ०	२ छ०	३	
		२रे मास का प्रा०	६	२छ० ६मा०	१२ छ०	१० छ०	२ छ०	३	
	५। सेर	,, ,, मध्यकाल	६	२छ० १तो०	१३ छ०	१३ छ०		३	
		३रे मास का प्रारभ	६	२छ० १।तो०	१३॥ छ०	१३॥ छ०		३	
	६०से १छ	,, ,, मध्यकाल	५	२छ० ४तो०	१४ छ०	१४ छ०		४	६,१० प्रात २,६,१० सायं
		४थे ,, प्रारभ	५	२॥ छ०	१५ छ०	१५ छ०		४	
	६से ११छ	५वें ,, ,,	५	३छ० १॥तो०	१ से०	१ सेर		४	
		६ठे ,, ,,	५	३॥ छ०	१से० १॥छ०	१से १॥छ		४	
	७॥ सेर	७वें ,, ,,	५	३ छ० ४तो०	१से० २॥छ०	१से २॥छ		४	
		८वाँ और ६वाँ मास	५	१ पाव	१। सेर	१। सेर		४	
	८ सेर								

४-४ घंटे बाद दूध पिलाना अधिकांश बच्चो को शुरू से ही उपयुक्त पडता है। परंतु कुछ को प्रारंभ के पाँच मास बाद तक ३-३ घंटे में भी दूध पिलाना पडता है। वास्तव मे बात यह है कि दूध की मात्रा और काल, बच्चे की पाचन-शक्ति, शरीर-स्थिति और आवश्यकता के ऊपर निर्भर हैं। ऊपर की सारिणी साधारणतया दी गई है।

१ से ५ मास तक के बच्चे को घंटों के हिसाब से दूध पिलाना

प्रात:काल	६ वजे	—दूध पिलाना	संध्या	६ वजे	स्नान और दूध पिलाना
,, ,,	७ ,,	—सोना	,,	७ ,,	—सोना
,, ,,	८ ,,		,,	८ ,,	
			,,	९ ,,	
,, ,,	९ ,,	स्नान और दूध पिलाना	रात्रि	१० ,,	—दूध पिलाना
,, ,,	१० ,,	—सोना	,,	११ ,,	—सोना
,, ,,	११ ,,		,,	१२ ,,	
दोपहर	१२ ,	—दूध पिलाना	,,	१ ,,	
,,	१ ,,	—सोना	,,	२ ,,	
,,	२ ,,		,,	३ ,,	
	३ ,,	—दूध पिलाना	,,	४ ,,	
दोपहर बाद			,,	५ ,,	
,,	४ ,,	—सोना	,,	६ ,,	
,,	५ ,,				

५ से ९ मास तक के बच्चे को

प्रात काल	६ ,,	दूध पिलाना	सध्या	६ वजे	—स्नान और दूध
,, ,,	७ ,,	—सोना, खेलना, स्नान	,,	७ ,,	—सोना
,, ,,	८ ,,		,,	८ ,,	
,, ,,	९ ,,		,,	९ ,,	
,, ,,	१० ,,	—दूध पिलाना	रात्रि	१०—	दूध पिलाना
दोपहर					
,,	११ ,,	—सोना और खेलना	,,	११ ,,	—सोना
,,	१२ ,,		,,	१२ ,,	
,,	१ ,,		,,	१ ,,	
	२ ,,	—दूध पिलाना	,,	२ ,,	
दोपहर बाद			,,	३ ,,	
,,	३ ,,	—सोना और खेलना	,,	४ ,,	
,,	४ ,,		,,	५ ,,	
,,	५ ,,				

बाहरी दूध का परिवर्तन

अगर बच्चा एक महीने का हो गया हो और हृष्ट-पुष्ट हो, तो उपर्युक्त प्रयोगो में से धीरे-धीरे गर्म जल कम करके दूध को बढ़ाते जाना चाहिए। १½ महीने की उम्र में बच्चे को खालिस गाय का दूध दिया जा सकता है। परन्तु इस बात का ध्यान ज़रूर रखना चाहिए कि एकाएक दूध की मात्रा में परिवर्तन न किया जाय। बच्चे की पाचन-शक्ति की तरफ भरपूर ध्यान देना चाहिए।

अजीर्ण

अगर बच्चे को हरे और लसदार दस्त आने लगें, तो समझिए अजीर्ण हुआ है। ऐसी दशा में दूध की मात्रा मे कमी करके गर्म पानी ज्यादा बढ़ा देना चाहिए। अगर एक-दो बार सिर्फ गर्म पानी ही दूध की जगह दिया जाय, तो उत्तम है। अगर दस्त थोड़े-थोड़े, बारंबार दर्द करके आते हैं, तो एक चम्मच कास्टर आइल दे देना चाहिए। और सिवा गर्म जल के कुछ न देना चाहिए। जब तबियत साफ हो जाय, तब तीन भाग गर्म जल में एक भाग दूध मिलाकर देना चाहिए।

अजीर्ण होने पर कच्चा दूध हरगिज नहीं काम मे लाना चाहिए।

प्रकरण ३

नौ महीने बाद का आहार

आश्वलायन गृह्यसूत्र में लिखा है—"षष्ठे मास्यन्नप्राशनम् १। घृतौदनं तेजस्काम २। दधिमधुघृतामिश्रितमन्नं प्राशयेत्।"

अर्थात् छठे महीने बच्चे को अन्न दे। भात में घी मिलाकर देने से तेज बढ़ता है। दही, शहद, घृत मिलाकर अन्न चटावे।

परंतु सबसे उत्तम बात यही है कि बच्चे को नौ मास तक सिर्फ़ दूध पर ही रक्खा जाय। और नौ महीने बाद उसे अन्न दिया जाय। उपर्युक्त अन्न और दूध बच्चे के लिये सबसे उत्तम आहार हैं। प्रतिमास भात आदि खाद्यों की संख्या बढ़ाई जा सकती है। दो वर्ष से ऊपर के बच्चे को तीन सेर तक दूध दिया जा सकता है, परंतु उत्तम बात यह है कि उसे इतने अधिक दूध पर ही न रहने दिया जाय, किंतु उसे रोटी, दाल, भात, फल (सेव आदि) इनका अभ्यास कराया जाय, जिससे जबड़े और मुख को कसरत करने का अभ्यास हो और वे मज़बूत हों।

यह उचित है कि २४ घंटे के लिये बच्चे के लिये दूध उबालकर अलग रख लिया जाय, परंतु भात और दलिया एक बार का पकाया हुआ दो बार से अधिक न दिया जाय। गर्म-गर्म भात में ही थोड़ी मात्रा में घी मिला लिया जाना अच्छा है। दलिए के स्थान पर खिचड़ी भी दी जा सकती है, जिसमें दो भाग चावल और एक भाग मूँग की दाल हो, जो अच्छी तरह गल गई हो। इन पदार्थों को चम्मच से थोड़ा-थोड़ा चबाकर खाने का अभ्यास कराना चाहिए। बच्चे की मांस-पेशियाँ, दाँत, जबड़े और मसूड़ों को अच्छी तरह परिश्रम करना पड़े, इस बात की बराबर चेष्टा करते रहना चाहिए। कभी-कभी उसे बिस्कुट चूसने को देना चाहिए। देखा गया है, धीरे-धीरे दूध और नरम भोजन देने की अपेक्षा कठोर भोजन देने का बच्चों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। नौ मास के बाद बच्चे में कठोर आहार निगलने की शक्ति भी हो जाती है।

११वें और १२वें मास में बच्चे को भोजन करना सिखाना शुरू कर देना चाहिए। बहुधा १० महीने बाद ही माताएँ बच्चों को बहुत ऊल-जलूल आहार खिलाने लगती हैं। ख़ासकर मिठाइयों की भरमार कर देती हैं, जिसका बच्चे पर सदैव बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसा न करके बच्चे को बिल्कुल नियमित रीति से, नियमित समय पर, नियमित आहार देना चाहिए।

वर्ष की समाप्ति पर बच्चे को दूध और रोटी दी जा सकती है। यदि उसे ज़्यादा देर तक दूध या पतली चीज़ ही दी जायेगी, तो उसके दाँत [illegible] हो जायँगे। शरीर की प्रारंभिक दशा में शरीर की बनावट जिस तरह सुधरती है, उस तरह [illegible] के बाद में नहीं सुधरती।

फलों का रस

सब प्रकार के फलों को यों ही बच्चे के हाथ में दे देने की अपेक्षा फलों का रस यदि बच्चों को दिया जाय, तो वह अत्यंत गुणकारी है। तीन या चार मास के बच्चों को सब प्रकार के फलों का रस दिया जा सकता है, संतरे का रस सर्वोत्तम है। [illegible], अंगूर, अनार और सेब के रस भी दिए जा सकते हैं। बेदाग फल को लेकर अच्छी तरह उसका छिलका निकालकर और काटकर उसे निचोड़कर रस निकालना चाहिए। बच्चे को पिलाने के समय ही ताज़ा-ताज़ा रस निकालना चाहिए। होशियारी से उसे साफ़ मलमल में छानना चाहिए, जिससे उसमें ज़रा भी काट-कबाड़ न रह जाय। बच्चे के आहार का जो समय है, उस समय के बीच के समय में फलों का रस देना सबसे अच्छा है। ज्यों ही बच्चा सोकर उठे, उस रस में कुनकुना पानी मिलाकर पिलाओ। पानी उबालकर ठंडा किया हुआ हो। यदि रस बहुत ही खट्टा हो, जैसे कि नीबू का रस, तो उसमें थोड़ी चीनी मिलाई जा सकती है। शुरू में २० बूँद रस देना चाहिए और फिर उसकी शक्ति के अनुसार ३ या ४ चम्मच तक बढ़ा देना चाहिए।

दूसरे वर्ष का आहार

दूसरे वर्ष में बच्चों के दाँत और मुख को स्वच्छ रखने की तरफ़ पूरा ध्यान देना चाहिए। देखा गया है कि बच्चों के दूध के दाँतों से प्रायः काम ही नहीं लिया जाता। माता-पिता बहुत दिन तक बच्चे को सिर्फ़ नरम भोजन देते रहते हैं, जिनके लिये दाँतों की बिल्कुल ज़रूरत ही नहीं पड़ती। बहुत-से बच्चे दूध, खिचड़ी, भात या मिठाइयों पर देर तक निर्भर रहते हैं. इससे उनके दाँतों की जड़ निहायत नाज़ुक और कमज़ोर रह जाती है, और उनमें वह स्वाभाविक शक्ति नहीं आती, जिसके लिये ईश्वर ने उनकी रचना की है।

दूसरे वर्ष में बच्चे की तंदुरुस्ती ख़ास तौर से उसके दाँतों की परिस्थिति पर निर्भर है। यह सबसे बड़ा महत्त्व-पूर्ण विषय है, क्योंकि भविष्य की बच्चे की पाचन-शक्ति इसी पर निर्भर है। और पाचन-शक्ति पर ही शरीर की वृद्धि, शक्ति और वज़न बढ़ना निर्भर है। प्रथम वर्ष की समाप्ति पर ही बच्चे को ऐसा खाद्य देना चाहिए कि उसे चबाने और मुँह चलाने का अच्छा अभ्यास हो जाय। बच्चे की स्वाभाविक वृद्धि के लिये ये बातें अत्यंत साधारण, किंतु महत्त्व-पूर्ण हैं। जबड़े में रक्त का संचालन, जिसके ऊपर बच्चे के चेहरे का सौंदर्य और सुर्ख़ी निर्भर है, सिर्फ़ इसी बात पर निर्भर है कि उसके मुख को भोजन के समय ख़ूब चलने का अवसर दिया जाय। एक विद्वान् का कथन है कि "दो वर्ष बच्चे की रक्षा कर लो, शेष की रक्षा वे दो वर्ष कर लेंगे।"

खूब चबाने से जब जबड़े और चेहरे में रक्त का भरपूर दौरा होगा, उससे नाक-गाल और कंठ पर खास तौर से अच्छा असर पड़ेगा। इससे कफ, खाँसी, सर्दी, ज़ुकाम आदि का बच्चों पर बहुत कम असर होगा।

बच्चे बहुत सख़्त चीज को बेशक चबा नहीं सकते, परंतु उनका खाना अगर ऐसा न हुआ, जिससे कि उनके मुख, दाँत और जबड़े को भरपूर कसरत न करनी पड़े, तो निस्सदेह उनके दाँत तिरछे, टेढ़े और निकम्मे हो जावेंगे। हीरे की तरह चमकते हुए दाँत सुंदरता के अप्रतिम चिह्न हैं। जो माताएँ बच्चे को देर तक पतले और नरम खाने देती रहेंगी, वे निस्सदेह बच्चे के दाँतों के सौंदर्य को नष्ट करेंगी।

दूसरे वर्ष के ख़तरे

दूसरे वर्ष में बच्चों की अधिकतर मृत्यु हुआ करती है, जिसका प्रधान कारण बेतरतीब और अयोग्य आहार देना है। निस्सदेह दूसरे वर्ष में बच्चे के आहार की तरफ से असावधानी उनके लिये प्राणघातक है। माताओं में एक भयकर भूल यह देखी गई है कि वे प्रथम वर्ष में बच्चे के खाने-पीने की ऐसी डाटकर खबर लेती हैं कि बारंबार नाक तक डाटकर दूध पिलाती हैं और यदि दूध बाहर का हुआ, तो उसमें जल, चूने का पानी और शकर की कोई खास अदाज न रखकर, न समय का विचार करके पिलाती ही जाती हैं। परंतु ज्यों ही दूसरा वर्ष लगता है, वे उसकी तरफ से ऐसी बेसुध हो जाती हैं कि एकाध टुकड़ा रोटी का उसके हाथ में देकर मनमाना काम करने लगती हैं। बच्चा मिठाई, रोटी, दाल, दलिया जो हाथ में आता है, सटर-पटर समय-कुसमय खाता है। छोटे बच्चे अपने साथ उसे मज़े में खिलाते हैं। पिता और वृद्धगण स्नेह के मारे उसे भोजन के समय थाली पर बैठा लेते हैं। फिर माता की बारी आती है। ये सब लोग खूब ही ठूस-ठूसकर उसके पेट में बोझा उतारते रहते हैं। परिणाम बहुत बुरा होता है। हरे-पीले दस्त, अजीर्ण, पेट बढ़ना, खाँसी, ज़ुकाम, लार टपकना, उल्टी, अपच, सूकिया, टसका, न्युमोनिया इनमें से जिसकी चपेट चलती है, वही धर दबाता है। प्रत्येक परिवारवाले को ध्यान रखना चाहिए कि अधिकांश बच्चे दूसरे ही वर्ष में मरते हैं। इसलिये उचित है कि दूसरे वर्ष में प्रथम वर्ष से भी अधिक उसके खाने का समय, खाद्य पदार्थ और पाचन-शक्ति तथा सफाई की ठीक-ठीक सम्हाल करें।

बच्चे के भीतरी अंग इतने ज़ोरदार नहीं होते कि वे आसानी से बड़े आदमियों के खाने-योग्य खुराक को हजम कर सकें। खासकर मिठाई का तो उनके शरीर पर बहुत ही ज़हरीला असर होता है। जापान में दो वर्ष तक के बच्चों को प्राय: माताएँ दूध पिलाया करती हैं।

डेढ़ वर्ष समाप्त होने पर प्रत्येक ४ घंटे के अंतर से ५ बार बच्चे को आहार देना चाहिए, परंतु यदि उसकी पाचन-शक्ति पर जरा भी ज़ोर पड़े, तो चार बार ही खिलाना चाहिए। इस अवस्था में बोतल से दूध पिलाना बंद कर देना चाहिए और चम्मच से पिलाना चाहिए। फिर शीघ्र ही प्याले से पीने का अभ्यास कराना चाहिए। यदि १५ महीने से प्रथम ही बोतल

से दूध पिलाना न बंद किया जायगा, तो पीछे बच्चे से उसका छुड़ाना बहुत कठिन हो जायगा।

१८ मास बाद सिर्फ ४ वार आहार देना काफी है। कोई-कोई बच्चे सिर्फ तीन बार ही खाकर प्रसन्न रहते हैं। परंतु दो वर्ष के बाद ही तीन बार भोजन देना ठीक है।

दूसरे वर्ष की गर्मी की ऋतु खास तौर से बच्चे के लिये खतरनाक है। अगर बच्चा स्वच्छ न रक्खा जायगा और उसका आहार और हाजमा नियमित न रक्खा जायगा, तो बच्चा जरूर ही रोगी होगा। हज़ारो, लाखों बच्चे इसी समय ऐसी असावधानियों से ही मर जाते हैं।

१ वर्ष से १५ मास की आयु तक भोजन-विधि

पहला भोजन प्रातःकाल ६ और ७ बजे के बीच मे होना चाहिए। यदि बच्चे को विलायती दूध देना है, तब ऐसा करना चाहिए कि एक पाव तैयार किया हुआ दूध (जिसका जिक्र पीछे आ चुका है), उसके बराबर ताज़ा गाय का दूध मिलाकर १५ मिनट तक उबाल लो, फिर जल्दी से ठंडा कर लो। यह दूध २४ घंटे को काफी है। और यदि ताज़ा गाय का दूध है, तो आध सेर दूध उबालकर ठंडा कर लेना चाहिए। शाम को ६ बजे (चौथी बार) नया दूध एक पाव उबालकर काम में लाना चाहिए। इस आहार के समय एक छटाक के अनुमान ताज़ा भात दिया जा सकता है। गेहूँ का दलिया भी यदि पच सके, तो देना उत्तम है। परंतु बच्चे को यदि पतले दस्त आते हों, तो उसे भात ही देना मुनासिब है।

दूसरा भोजन १० और ११ के बीच में। रोटी का मोटा टुकडा—चूसने और चबाने को। तैयार दूध ३ छटाक, दलिया या भात एक छटाक।

तीसरा भोजन १½ बजे से २½ बजे तक। चावल का भात एक से दो छटाक तक, रोटी का एक टुकडा (चुपडा हुआ) तैयार दूध दो या तीन छटाक। थोडा-सा पका हुआ सेव टुकड़े करके, अगर ज़रूरत हो, तो ज़रा-सी चीनी लगाकर देना चाहिए।

चौथा भोजन ५ से ६ तक, और पाँचवाँ भोजन ९ से १० तक दूसरे भोजन के समान।

दूसरे भोजन के १ घंटे प्रथम २-३ चम्मच संतरे का रस बच्चे को ज़रूर देना चाहिए। यह पाचन-शक्ति आदि पेट की हालत को बहुत मुफ़ीद है।

भोजन के समय के बीच मे बच्चों को यदि प्यास लगे, तो उन्हे स्वच्छ उबाला हुआ पानी दिया जा सकता है। इसको छोडकर बीच मे बच्चे को न तो कुछ खाने को देना चाहिए और न पीने को।

१५ से १८ मास की आयु तक की भोजन-विधि

पीछे भोजन का जो क्रम है, वही इन दिनो मे रह सकता है। सिर्फ सूखी चीज़े—जैसे, रोटी, या पूरी का टुकडा बढ़ाया जा सकता है। दूसरे भोजन में दो या तीन चम्मच सूजी दूध में पकी

हुई दे सकते हैं। तीसरे भोजन में खूब पतली खिचडी दी जा सकती है। और कभी-कभी उबला हुआ आलू दिया जा सकता है। थोडा सेब भी दो-एक बार देना चाहिए। धीरे-धीरे बच्चे को पके सेब का शौक बढ़ाना चाहिए।

१८ मास के बाद

१८ मास के बाद सिर्फ चार बार भोजन देना काफ़ी है। इस बीच में भरपूर ताकीद ठीक समय पर ही भोजन करने की होनी चाहिए। भोजन को समय-कुसमय देना बच्चों की पाचन-शक्ति का जिस तरह नाश करता है, उसी तरह और कोई ख़राबी नुकसान नहीं करती।

सयाने बच्चों का आहार

सयाने बच्चों का आहार सादा और नियमित होना चाहिए। नियत समय के बीच में उन्हें कुछ न देना चाहिए। दो वर्ष के बाद बच्चे को यदि तीन बार खाना दिया जाय, तो उसके लिये काफी है। ज्यादा नरम और गरिष्ठ भोजन नहीं देना चाहिए। दाल, भात, दलिया, रोटी, पूरी, परावठा, ये चीज़ें देनी चाहिए। दूध की मात्रा परिमित रहनी ठीक है। पका हुआ सेब अवश्य देना उचित है। यदि उसे सावधानी से ठीक तौर पर भोजन करने की शिक्षा दी जाय, तो वह दो साल के बाद स्वयं भोजन करने लगेगा। कुछ डॉक्टरों का ख़याल है कि पके हुए और उबाले हुए फलों को भी बच्चों को अवश्य देना चाहिए। मेवाजात बहुत भारी होती है और उनसे बहुधा बच्चों को गिरानी हो जाया करती है। परंतु यदि बच्चे को उन्हें ठीक तौर पर चबाकर निगलने की शिक्षा दी जाय, तो यह उनके जबडों और दाँतों के लिये अत्युत्तम कसरत है। बच्चों के भोजन में पेय पदार्थ और मीठी चीज़ें यथा-सभव कम होनी चाहिए। यदि बच्चे को नियमित समय के बीच में कुछ न दिया जायगा, तो दावे से कहा जा सकता है कि उसे अजीर्ण की कोई शिकायत ही न होगी। भोजन के पीछे पेय पदार्थ दूध आदि दिए जा सकते हैं। ताज़े पके हुए फल भी भोजन के समय ख़ूब दिए जा सकते हैं।

मिठाइयाँ और फल

बच्चों को मिठाइयाँ खिलाना मेरे विचार में एक पाप है। मिठाइयों का परिणाम बच्चों की पाचन-शक्ति पर इतना बुरा पडता है कि इनके लिये इससे ज्यादा कडा शब्द मुझे नहीं मिलता। बहुतेरी बच्चे की माताएँ सोचती हैं कि दूसरे वर्ष में बच्चे को मिठाइयाँ कुछ हानि नहीं पहुँचातीं, यदि अल्प मात्रा में दी जायँ। यह बात यदि मान भी ली जाय कि थोडी-सी मिठाई बच्चा किसी तरह बिना तकलीफ़ हज़म कर लेगा, परंतु एक बडी भारी बुराई यह पैदा हो जाती है कि जब बच्चे को मिठाई खाने की चाट लग जाती है, तब उसे अपनी स्वाभाविक और ताज़ी ख़ुराक नहीं भाती। ऐसे बच्चे फिर मिठाई के लिये रोते और ज़िद करते हैं, लाचार बेअंदाज़ मिठाइयाँ उन्हें देनी ही पडती हैं और इस प्रकार बच्चों की मृत्यु को निमंत्रण दिया जाता है। इसलिये बच्चे की जान की ख़ैर मनाने के लिये उत्तम यही है कि

निशानों के [illegible] दूर रखना था। [illegible]

[illegible] बच्चा १४-१८ [illegible] को [illegible] [illegible] कभी-कभी [illegible] कोई उपाय नहीं। [illegible] में दूर कर लेने दिया जाय।

[illegible] खाने को [illegible] बच्चे को [illegible] करेगा। [illegible] परिश्रम करना पड़ेगा। फिर भी [illegible] आयु के बीच में [illegible] है।

दाँतों को साफ रखने की सदा हिदायत रखनी चाहिए। [illegible] आदि वस्तु बच्चों को नहीं देनी चाहिए। [illegible] चाहिए। चाय, काफी, सोडा, बर्फ, [illegible] नहीं देने चाहिए।

बच्चों का वजन

बच्चे को शुरू में कुछ महीना तक हर हफ्ते वज़न करते रहना चाहिए। और उसके बाद प्रतिमास वज़न कराते रहना चाहिए, जिससे यह मालूम होता रहे कि बच्चा बढ़ रहा है या कमजोर हो रहा है। पहले दस्त आना या इसी प्रकार की साधारण शिकायतों का बच्चे के वज़न की बढ़ोतरी पर खास प्रभाव पड़ता है, इसलिए यदि बच्चे के वज़न को ठीक तौर पर ध्यान में रक्खा जायगा, तो इन रोगों से बच्चों की रक्षा हो सकेगी।

जन्म के बाद शुरू के कुछ दिनों में बच्चा पाव-भर से कम वज़न में घटता है। इसके बाद एक या दो सप्ताह तक वज़न की वृद्धि अनिश्चित रहती है, उसके बाद वृद्धि उसकी आहार-विधि पर निर्भर रहती है।

मा का दूध पीनेवाले बच्चे का वजन समय पर कम-ज्यादा होता रहता है। कभी-कभी एक सप्ताह तक कम ही होता रहता है। इसका कारण, कभी-कभी साधारण पाचन-शक्ति की गड़बड़ी भी होती है। इस अवसर का खास तौर पर ख़याल रखना चाहिए।

प्रतिसप्ताह कुछ-न-कुछ वज़न बढ़ना एक बड़ी भारी बात है। परंतु कुछ कमी कभी हो

भी जाय, तो चिंता नहीं। खासकर दाँत निकलने के समय में जब कि बच्चे की आयु १० मास की हो। बच्चे यदि खूब खेलने का अवसर पाते हैं, तो उनका वज़न अवश्य ही बढ़ता है।

माताओं को बच्चों के अधिकाधिक वजनी होने से ही प्रसन्न नहीं होना चाहिए। न उन्हें बारंबार बिना कारण तोलते ही रहना चाहिए। तोलने का वहम अच्छा नहीं होता, बच्चों को पोंगादास बनाना कोई महत्त्व-पूर्ण बात नहीं है, उनकी वृद्धि सिर्फ़ नियमित रीति से ही होनी उचित है, जिसका तारतम्य हड्डी और मांस-पेशियों की वृद्धि पर निर्भर हो।

बच्चे को तोलने की रीति

चौथे मास के दूसरे हफ़्ते से बच्चे का २ छ० से ४ छ० तक वजन हर हफ़्ते बढ़ता है। ४ से ६ मास तक २ पाव प्रतिमास के हिसाब से बढ़ता है। और ६ से १२ महीने तक आध सेर वज़न बढ़ता है। ६ मास के बच्चे का वजन जन्म के वज़न से दुगना होना चाहिए और एक वर्ष के बच्चे का वज़न १० सेर के लगभग होना चाहिए। यह साधारण अनुमान है। बच्चे को नंगा करके तोलना चाहिए। और यदि वह मा का दूध पीता है, तो एक बार दूध पिलाने से प्रथम फिर तत्काल बाद में उसे तोलना चाहिए। और जो फ़र्क़ वज़न में मालूम हो, उसे ध्यान में रखना चाहिए। इससे हफ़्ते की समाप्ति पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सप्ताह-भर में कितना दूध माता की छाती से ख़र्च किया गया। यदि दिन-भर के दूध का अनुमान लगाना हो, तो प्रतिबार दूध पिलाती बार तोलना चाहिए। प्रति सप्ताह यदि माता एक दिन इस बात की जाँच कर लिया करे कि दिन-भर में कितना दूध पिलाया गया, तो उससे उसे बहुत कुछ सहायता बच्चे की तंदुरुस्ती को समझने में मिलेगी। बच्चे के वज़न करने का मुख्य अभिप्राय यही है कि यह मालूम हो जाय कि उसे ठीक-ठीक ख़ुराक मिल रही है या नहीं। और यदि वज़न और मात्रा से तंदुरुस्ती ठीक है, तब बेशक बच्चा ठीक-ठीक अपना आहार ले रहा है। परंतु यदि अजीर्ण है और बच्चा बेचैन है नींद में चौंक उठता है या ठीक परिमाण में उसका वज़न नहीं बढ़ता है, तो उसके लिये सबसे पहला काम यही है कि दूध पिलाने के पीछे और पहले उसका वज़न कर लिया जाय और इस नियम को परम आवश्यक समझा जाय।

कभी ऐसा होता है कि जितना दूध पिया जाता है, वह बहुत ही शीघ्र शरीर में रम जाता है। बहुधा देखा गया है कि बच्चे ने २½, २⅓ छटाक दूध एक बार में पिया है, परंतु १५ मिनट के बाद ही जब उसको तोला गया, तो सिर्फ़ आधी छटाक ही वज़न बढ़ा।

दस्त

बच्चे को प्रातःकाल अधिक-से-अधिक १० बजे तक जरूर दस्त हो जाना चाहिए। यदि १० बजे तक दस्त न हो, तो उसका फौरन् ही बंदोबस्त करने में ज़रा भी सुस्ती नहीं करनी चाहिए।

जन्म के बाद कुछ दिन तक बच्चे को रोज दो या तीन दस्त नित्य होते रहते हैं। एक साल बाद प्रतिदिन एक दस्त होता है। बहुत-से बच्चे दो बार दस्त जाते हैं और कुछ दो से ज्यादा। बात यह है कि दस्त की गिनती पर ही ध्यान देना जरूरी नहीं है। दस्त के रूप-रंग को देखकर इस बाबत कुछ निश्चय करना चाहिए।

सबसे ज़रूरी बात तो यह है कि दस्त आने का समय नियमित हो। ठीक समय पर बच्चे को दस्त के लिये जरूर बैठाओ। प्रातःकाल उठने के समय और तीसरे पहर ३-४ बजे का समय इसके लिये उपयुक्त है। यदि ठीक अभ्यास कराया जाय, तो दो मास के बच्चे को ठीक समय पर दस्त जाने की आदत अवश्य पड़ जायगी। बच्चे को प्रथम माता के घुटनों पर बैठाने का अभ्यास कराना चाहिए।

यदि ठीक समय पर बच्चे को दस्त न आवे, तो बच्चे को जन्मघुट्टी में मिलाकर पाँच से दस बूँद तक कास्टर आइल देना चाहिए। अथवा पिचकारी से, जो ख़ासतौर पर बच्चों ही के लिये बनाई हुई मिलती है, दस्त कराना चाहिए। एनीमा में २½ तोले से ज्यादा पानी नहीं लेना चाहिए। पानी गुनगुना हो और उसमें बहुत जरा-सा खाने का नमक डाल लेना चाहिए। साधारण काँच की पिचकारी द्वारा भी यह पानी बच्चे की गुदा में पहुँचाया जा सकता है। साबुन कभी न मिलाना चाहिए, इससे बच्चे के पेट में दर्द होने लगेगा। माता का दूध पीनेवाले बच्चे को यदि कब्ज़ है, तो माता को कब्ज़ जरूर होगा, इसलिये माता को कब्ज़ दूर करने की दवा जरूर लेना चाहिए।

प्रकरण ४

वस्त्र

दस-बारह आना गज़ की सस्ती फलालैन बच्चों के लिये सबसे उत्तम है। बढ़िया फलालैन की अपेक्षा यह विशेष उपयोगी है। इसमें जरूरी गर्मी भी बच्चे को मिल जाती है, और शरीर की वायु से रक्षा भी होती है। साथ ही सूती कपड़े की तरह वह पसीने से गीली भी नहीं होती। पसीने से गीला कपड़ा पहनाना निस्सदेह बच्चे के लिये बहुत हानिकर है।

चमड़ी के ऊपर कुछ महीन, नरम और ज़रा छीदा बुना हुआ रेशम या ऊन का कपड़ा चाहिए। बहुत-से बच्चे कड़े और खरखरे वस्त्र के अपने शरीर में चुभने से बहुत ही बेचैन रहते हैं। घटिया फ़लालैन बच्चों की नरम चमड़ी पर बहुत ही सुखकर प्रतीत होती है। इसकी बुनावट छीदी होने के कारण ताज़ी हवा बाहर-भीतर आती रहती है और यह खिच भी सकती है तथा हलकी भी बहुत होती है।

इसके बाद पतला और झिनझिना तथा नरम रेशम या ऊन का वस्त्र ठीक हो सकता है। सख़्त और भारी वस्त्रों के पहनने से बच्चे खुजली और बेचैनी से बहुत घबरा जाते हैं।

यदि रेशम का ही वस्त्र पहनाना हो, तो वह ऐसा होना चाहिए, जिसमें आधा सूत हो। जो गर्म, नरम, कोमल और खिचनेवाला हो, मज़बूत भी हो।

फलालैन में एक बड़ा भारी दोष यह है कि वह आग बड़ी जल्दी पकड़ता है, और कपड़ा में आग लग जाने से बहुत-से बच्चे मर जाते हैं, इसलिये चमड़ी से लगे हुए कपड़े सूत और रेशम या फलालैन के हो, और उनके ऊपर सूती मोटा कपड़ा पहनाया जाय, तो उत्तम है।
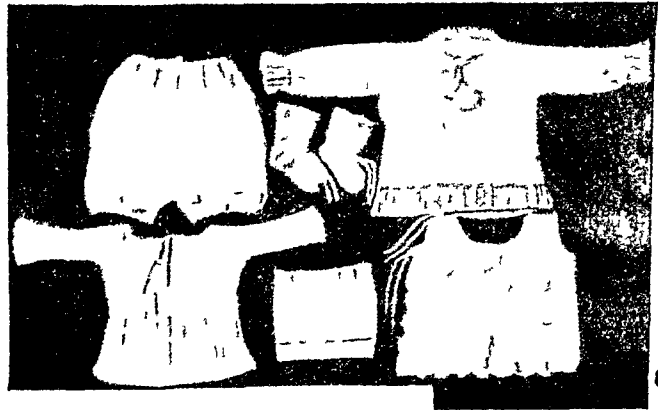
बच्चों के वस्त्र

कपड़े सब ढीले हो, पर इतने ढीले नहीं कि बच्चा हाथ-पैर उलझाकर गिर पड़े।

छाती किसी भी दशा मे कसी न रहनी चाहिए। छोटे होते ही कपडों को वदल देना चाहिए। वस्त्र इस ढग से पहनाए जायँ कि चाहे जब उनमें भीतर हाथ डाल दिया जाय।

मै यह अनुभव से कह सकता हूँ कि यथासभव बच्चो को नंगा रखना उनकी बढवार के लिये सर्वोत्तम है। किसानों के छोटे-छोटे बच्चे अक्सर नगी हालत में ज़मीन पर पडे लोटा करते है। वे बहुत शीघ्र हृष्ट-पुष्ट और चलने के योग्य हो जाते हैं। प्राकृतिक उत्ताप और वायु से उनके शरीर का सीधा संपर्क होकर बच्चे की हड्डियाँ और नसें बहुत दृढ़ हो जाती है। बच्चे को गोदी मे लिए रहना उसे लुंजा बनाना है।
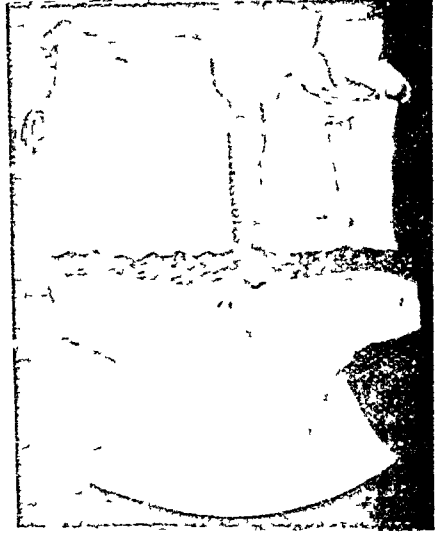
बच्चो के वस्त्र

पोतडे

जन्म से दो-तीन मास तक बच्चे पडे पडे ही दस्त जाते है। पुराने धोती के टुकडो को इस अवसर पर काम मे लाया जा सकता है, परतु ये टुकडे निरंतर धोकर सुखाए जाने चाहिए। मल-मूत्र से भरे हुए वस्त्रों की तह बदलकर पडे रहने देना बुरा है। ऊनी कपडो को सोडे से कभी न धोना चाहिए। सोडे से धोने से वे कडे हो जाते है। १०-१५ दिन बाद नए पोतडे बदल देने चाहिए।

मोजे और जूते

अगर ज्यादा सर्दी न हो, तो यही मुनासिब है कि बच्चे के पैर, टॉग और घुटने बिल्कुल उघड़े रहे, जिससे उसकी चमडी को सहन-शक्ति का अभ्यास हो जाय। पर यदि सर्दी का समय हो और बच्चे पैदल चलने के योग्य हों, तो उन्हें गर्म मोजे और जूते पहनाने चाहिए। सोने के समय मोजे ज़रूर निकाल देने चाहिए। जूतों की चोंच पतली न हो, उनके आगे के हिस्से की बनावट बिल्कुल पैर की बनावट के अनुसार ही हो। अँगरेज़ी बूट जिनकी नोक पतली होती हैं, उनके पहनने से बच्चो के पजे दबकर पैर भद्दे हो जाते है। इसलिये जूते यदि अँग-रेजी ही पहनाने है, तो ऐसे पहनाने चाहिए, जिनकी नोक की बनावट बिल्कुल पैर की बनावट के समान हो। जूते और मोज़े गीले होते ही फौरन् बदल देने चाहिए।

एक विद्वान् डॉक्टर का कथन है कि बच्चो की तदुरुस्ती पैरो को अच्छी दशा में रखने पर बहुत कुछ निर्भर है। नगे पैर बच्चो को घास पर दौड-धूप करना बहुत ही अच्छा है। परंतु बच्चो को यदि पैदल चलने में तकलीफ हो, तो उन्हें पैदल न चलाया जाय। बच्चो को दूध पिलाकर या भोजन कराकर फौरन् ही दौड-धूप मे न लगाया जाय, इससे उनके पेट में दर्द पैदा हो जायगा।

प्रकरण ५

बच्चों की पालन-विधि

जब तक बच्चे की नाल (टूँडी) का ज़ख़्म अच्छा न हो जाय, तब तक बच्चे को रोज़ स्नान न कराना चाहिए। प्रथम बार जरा-सा मीठा तेल चुपड़कर गीले तौलिए से नरमी से बदन साफ कर देना ही अच्छा है। जब तक नाल का ज़ख़्म न अच्छा हो, तब तक नीचे लिखा उपचार करना चाहिए—

बहुत बारीक मैदा	१½ छटाक
बोरिक एसिड	१½ ,,
जिंक ऑक्साइड	१½ ,,

तीनों को मिला लेना चाहिए। साफ नई रुई के चार इंच चौड़े फाहे बनाकर रख लो। प्रथम बाँध से ऊपर नाल को गर्म पानी से धीरे-धीरे धोना चाहिए। फिर इन फाहों से उसे अच्छी तरह सुखाकर उपर्युक्त बुरकी बुरक दें। फिर एक फाहे के बीच में छेद करके उस पर रख देना चाहिए। ज़ख़्म पर नीचे तक दवा अच्छी तरह बुरक दी जाय और फिर ऊपर एक पट्टी सफ़ाई से लपेट दी जाय। उपर्युक्त दवा यदि एक-दो चम्मच ज्यादा भी डाल दी जायगी, तो भी उसे साफ़ करने में ज़रा भी तकलीफ नहीं होगी। गर्म पानी से उसे दूसरे दिन फिर साफ़ कर देना चाहिए और उसी तरह पट्टी बाँध देनी चाहिए। खुरंड बँधने तक यह क्रिया रोज़ाना जारी रहनी चाहिए।

बहुधा बच्चों का टूँड पक जाता है और वे बहुत कष्ट पाते हैं। कई बच्चे मर जाते हैं, इसलिये इस काम में असावधानी नहीं करनी चाहिए।

तेल की मालिश

सतमासे या अठमासे बच्चों अथवा कमज़ोर बच्चों को तेल मालिश करना बहुत ही गुण-प्रद है। तेल मालिश करने के बाद जब तक शक्ति और शरीर की पुष्टि ठीक-ठीक न हो जाय, बच्चे को पानी से न नहलाया जाय। तेल मालिश करने से शरीर की गर्मी सुरक्षित रहती है और इसी गर्मी की कमी हो जाने से अनेक बच्चे अत्यंत प्रारंभिक जीवन में मर जाते हैं।

अमेरिका के कुछ विद्वान् डॉक्टरों की तो यह राय है कि बच्चे को जन्म के बाद प्रथम सप्ताह में सिर्फ़ तेल ही की मालिश की जाय और साफ, नरम वस्त्र से शरीर सुखा दिया जाय, परंतु बच्चा यदि नीरोग हो, तो उसे गर्म जल से स्नान कराना अवश्य चाहिए। गर्म पानी के स्नान से रक्त की गति ठीक होती है और बच्चा प्रसन्न और प्रफुल्ल होता है।

परतु जो बच्चे ठंडे रहते हैं यानी जिनकी साधारण शरीर की गर्मी कम है अथवा कमज़ोर है, उन्हें उत्तेजन के स्थान पर स्नान से और भी दब जाने का भय रहता है। जब तक रक्त के अंदर नार्मल गर्मी न उत्पन्न हो जाय, तब तक जल के स्नान के स्थान पर तेल ही की मालिश उत्तम है, और इसके बाद भी जब कभी ऐसे बच्चों को स्नान कराया जाय, गर्म पानी से कराया जाय या स्पञ्ज किया जाय। और उससे प्रथम गर्म तेल से शरीर पर मालिश बराबर की जाय और यह क्रिया लगातार रोज़ कई सप्ताह तक करनी चाहिए।

साधारण स्नान

यदि सर्दी के दिन हों, तो स्नान के लिये बच्चे के कपड़े उतारते समय इस बात की सावधानी रखनी अत्यंत आवश्यक है कि स्नान से प्रथम, पीछे या नहाते वार ही उसके शरीर की गर्मी को कोई हानि न पहुँचे। कपडे उतारो, नहलाओ और झटपट वस्त्र पहना दो। अकारण चमडी पर हवा मत लगने दो। स्नान का पानी गर्म और ठंडा मिला हुआ हो। बंद कमरे में स्नान कराया जाय। बच्चे के स्वच्छ वस्त्र और सूखा अँगौछा तैयार रहें। नहलाते समय बच्चे की आँख, कान, नाक, होंठ, रग आदि को अच्छी तरह खासतौर से साफ करना और सुखाना चाहिए। परतु बच्चे के मुँह को व्यर्थ रगडकर बच्चे को रुलाना अच्छा नहीं है।

बच्चे को स्पंज करने की रीति

स्नान के पीछे बच्चे को यों ही न छोड दे, किंतु दो गर्म तौलियों या अँगौछों मे उसे लेकर धीरे-धीरे रगडकर शरीर पोछना चाहिए।

प्रथम ६ मास के बच्चे को ९८ से १०० तक के गर्म पानी मे स्नान कराना चाहिए, सिर्फ गर्म पानी से बच्चे का शरीर सर्वथा साफ हो सकता है। सप्ताह में २-३ वार साबुन काम में लाया जा सकता है, पर साबुन नरम और उत्तम होना चाहिए। अगर बच्चा कमज़ोर और पीला हो, होंठ उसके नीले दीखते हों, तो उसे टब मे बैठाकर नरम कपडे से रगडकर नहलाना चाहिए।

ठंडा स्नान

जब देखो कि बच्चा खूब मज़बूत हृष्ट-पुष्ट है, और खूब खेलता-कूदता है, तब ठंडे पानी मे उसे स्नान कराया जा सकता है। अधिकतर बच्चे दो वर्ष की अवस्था मे और कुछ इससे भी प्रथम ठंडे जल के स्नान के योग्य हो जाते हैं। यह स्नान प्रतिदिन प्रातःकाल कराना चाहिए।

गर्म पानी के बाद एक-दम ही ठंडे पानी का स्नान न शुरू कर देना चाहिए। धीरे-धीरे पानी की गर्मी कम करनी चाहिए। १०-१२ दिन में बिल्कुल ठंडे पानी से नहला देना चाहिए। यह परिवर्तन चैत-बैशाख के महीने में करना चाहिए और इस अवसर पर बच्चे को अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश करानी चाहिए। बर्तन मे गर्म पानी भरकर उसमें बच्चे को खड़ा किया जाय और तब ठंडे पानी से शरीर को धोया जाय। बर्तन का पानी ठंडा होते ही बच्चे को निकाल लिया जाय।

बच्चे का मुख साफ करना

बच्चे के स्नान की तैयारी

बच्चे को सोकर जागने पर यदि वह तत्काल ही दस्त न जाय, तो फ़ौरन् स्नान

कर देना चाहिए। कुछ ही सेकंड में जल-क्रिया समाप्त करके रगड़कर शरीर सुखाना चाहिए। शरीर पोंछने का अँगोछा बिल्कुल गर्म रखना चाहिए। फिर फौरन् वस्त्र पहनाकर उँगली पकड़कर टहलावें, या दौड़ने-खेलने की आज्ञा दें। पर यह काम स्वच्छ वायु में होना चाहिए। और १५-२० मिनट से अधिक देर तक नहीं होना चाहिए। बच्चा जिसमें खुश रहे, ऐसा खेल उसे बताना चाहिए।

बच्चे का स्नान

ठंडे पानी से स्नान और उसके बाद वास्तविक कसरत और खेल बच्चे को स्वास्थ्य प्रदान करने में सबसे उत्तम साधन है। यह सिर्फ बच्चों के लिये ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक के लिये जन्म-भर को उत्तम है।

प्रकरण ६

खेल-कूद

बच्चों के लिये खेल-कूद निहायत आवश्यक वस्तु है। वह शरीर रूपी मशीन के लिये तेल देने के समान है। स्वच्छंद वायु और सूर्य के प्रकाश में निरंकुश खेलना, उछलना, किलकारी भरना, दौड़ना, गिरना, शरीर के भीतरी यंत्रों में जैसे स्नायु-केंद्र, दिल, फेफड़े, पाचन-शक्ति और दूसरे अवयवों के लिये अनुपम पुष्टिदाता है। चमड़ी को निरंतर कुछ करते रहना निहायत ज़रूरी है।

बच्चे अपनी छोटी आयु से ही कसरत करना शुरू कर देते है। जो स्तन चूसने, रोने, लात मारने, हाथ हिलाने इत्यादि के रूप मे होती हैं। इसके बाद उठने-गिरने के रूप में, फिर बच्चों को दिन में दो बार १५-२० मिनट तक स्वतंत्रता से अपने अवयवों को अवश्य हरकत देनी चाहिए। गर्मी के दिनो में यदि पर्दे के द्वारा लूओं का बचाव किया जाय, तो खुले बराडे या दालान मे बिछौने या कंबल पर उसे खेलने देने मे कुछ हर्ज नही है अथवा लूओं से बचाव के लिये उसके शरीर पर मोटा वस्त्र ज़रूर होना चाहिए। यहाँ उसे कम-से-कम १५-२० मिनट के लिये लात चलाने और मस्त रहने को स्वतंत्र छोड देना चाहिए। दुर्बल बच्चे उन दिनो को छोडकर जब गर्मी अत्यंत तेज़ हो, अधिक वस्त्रों की ज़रूरत महसूस करते हैं। फिर भी ज़रा-सी असावधानी से सर्दी होने का उन्हे भय बना ही रहता है। खूब तंदुरुस्त बच्चे १०-१५ मिनट तक बिना थके हुए खूब लातें फेंका करते है। सर्दी के दिनो मे यदि ये बच्चे स्वच्छंद वायु मे खेलते रहे, तो उन्हे ज़रा भी सर्दी आदि का भय नही रहता। हाँ, इतना ज़रूर है कि उन्हें अच्छी तरह गर्म वस्त्र पहना दिया जाय और दर्वाज़ो पर ठंडी हवा के तेज़ झोंके रोकने के लिये पर्दे लगा दिए जायँ। ज्यो-ज्यो बच्चे बडे होते जाते है, वे खेल-कूद के अधिक अभ्यासी होते जाते है। वे प्रथम बैठने की चेष्टा करते है, फिर घुटनो के बल खिसकने की और तब उठकर खडे होने और चलने की। हर हालत मे बच्चे को गीला या पानी मे भीगा हुआ नहीं रहने देना चाहिए। भीगे हुए कपडो को पहने हुए फिरते रहना बच्चो के लिये अत्यत हानिकर है। बरसात के दिनो मे घास पर बच्चो को नहीं ले जाना चाहिए। घर में ही रखना उचित है। खेलने के समय बच्चो के नीचे दरी, पाल या जाजम बिछा देना उचित है, जिससे वे मैले न हो, और उन्हें गंदे रहने का अभ्यास न हो जाय।

गर्माई

यह बात ध्यान मे सदा रखनी चाहिए कि बच्चों की नाज़ुक चमडी बडे आदमियो की

तरह तोशक पर इस तरह जमा देनी चाहिए, जिसमे सिकुड न जाय। पायताने की तरफ़ चादर अच्छी तरह मोडकर पिन से जमा दी जाय। अब बच्चे को उस पर सुला दो, और यदि ऋतु बिल्कुल ठंडी न हो, तो खटोली बगडे मे डाल दो। वह अत्यंत आराम और सुख से सोवेगा। ऊपर अधिक वस्त्र मत उढाओ। ऊपर अत्यत भारी वस्त्रो का उढाना साधारण भूल है, सर्वत्र ऐसा देखा जाता है। इससे बच्चों की निद्रा बार-बार भंग होती है। उन्हें साँस लेने तथा करवटें लेने मे कष्ट होता है। ख़ासकर कमजोर बच्चों को।

अगर बिछौना काफी गर्म है, तो बच्चो को बाहरी ठडी हवा से कुछ भी नुकसान पहुँचने का जरा भी भय नहीं है। उससे तो उसको ख़ूब अच्छी नींद आवेगी और ख़ूब भूख लगेगी। उसकी वृद्धि होगी, मास और रक्त बढेगा। गालो पर गुलाबी रगत चढेगी। बिल्कुल हवा बद गर्म कमरे मे बच्चे को सुलाने से वह रोगी, कमजोर, पीला और चिडचिडा तथा रोनेवाला हो जायगा।

सिर के टोप

भारी ऊन के टोपे और रुईदार टोपे अत्यत गर्म होते है और वे बच्चो के लिये सबसे बुरे है। इससे सिर पर पसीना आता रहता है और बच्चो के सिर मे सर्दी पैठ जाती है। भरपूर सर्दी मे बच्चा यदि खुले सिर रहे, तो कोई हानि नहीं। यदि उसका शरीर अच्छी तरह गर्म वस्त्रो से ढका हुआ हो। पर यदि टोपा उढ़ाना हो, तो वह हलका, ठडा और गर्म हो। ठड की अपेक्षा सिर और आँखो को धूप की चमक और तेज गर्मी से बचाना अधिक आवश्यक है।

नीद और विश्रांति

बच्चे को निर्विघ्न नीद चाहिए। नवजात शिशु १०-१५ घटे प्रतिदिन सोता है। ६ महीने का होकर १५-१६ घटे। अगर उसे नीद नहीं आती है, तो वह निस्सदेह स्वस्थ नहीं है। बहुत करके उसे अजीर्ण होगा। जो बिना नियम या अत्यधिक दूध पिलाने से बहुधा उत्पन्न हो जाता है। अथवा बच्चा भूखा होना चाहिए। नहीं तो उसे सर्दी लगती है या वह भीग गया है या ऊपर के ओढने के कपडो के बोझ से दबा जा रहा है या कमरे मे स्वच्छ वायु नहीं है, अथवा बच्चा प्यासा है या उसको कहीं पर खाज चल रही है। इन तमाम कारणों मे से उसकी नीद उचट जाने का कोई एक कारण अवश्य है। उसे खोज करके दूर करना चाहिए।

बच्चो को नियमित रीति से उचित समय तक सुलाए रखना बिल्कुल जरूरी है।

जब तक बच्चा पाँच और छ साल का न हो जाय, उसे प्रात काल में सोने देना और विश्राम करने देना अति आवश्यक है, ख़ासकर गर्मी की ऋतु मे, जब बच्चे प्राय प्रात काल जग जाते हैं। इस समय विश्राम या नीद लेने का विचित्र प्रभाव पडता है और बच्चा फिर दिन-भर नहीं रोता।

प्रकरण ७

फुटकर बातें

बच्चों के लिये सुनहरी नियम—

१—बच्चों को सदा माता या धाय का दूध पिलाना चाहिए। यदि यह सम्भव न हो, तो ह्व्ये का दूध (Humaisec milk) देना चाहिए, परंतु एकदम अधिक मात्रा में नहीं, धीरे-धीरे। इसकी विधि इसी अध्याय के दूसरे प्रकरण मे देखना चाहिए।

२—नियमित रीति से दूध पिलाओ। समय-कुसमय नही। रात्रि को दूध मत पिलाओ। दूध पिलाने का समय हो गया हो और बच्चा सो रहा हो, तो बेशक जगाकर पिला दो। नियमित समय के बीच मे कुछ भी खाने को मत दो। यदि प्यास हो, तो जल दे सकते हो।

३—यदि बच्चे को ऊपरी दूध पर ही रक्खा जाता हो, तो बोतल मे लंबी नली मत लगाओ, सिर्फ़ रबर का मामूली टूँटना लगाओ। बोतल और टूँटना दोनो अच्छी तरह साफ रखने चाहिए। दूध को बोतल मे डालने के समय उसे हिलाओ मत। पिलाते समय बोतल को हाथ से पकडे रहो।

४—जहाँ तक सम्भव हो, बच्चे को कोई दवा मत दो, सिर्फ़ चिकित्सक की सम्मति से उसका पालन करो।

५—तरह-तरह के बने हुए विलायती खाद्य मत खिलाओ। ख़ासकर नौ मास की आयु मे प्रथम तो किसी हालत में मत दो।

६—जो स्त्रियाँ अपने आपको 'तजुर्बेकार' इसलिये कहें कि उन्होने बहुत-से बच्चे पैदा किए और धरती में गाडे है, उनकी हिदायतों पर ध्यान मत दो।

७—बच्चे को दिन-भर पालने में ही एक जगह पडा मत रहने दो। बल्कि दिन-भर मे दो-चार बार उसे उठाओ, जरा खिलाओ, और इधर-उधर घुमाओ।

८—बच्चा जब तक ख़ूब स्वतन्त्रता मे हाथ-पैर नही फेंक लेगा, पुष्ट न होगा और इसी तरह उसका स्वाभाविक रोना भी फेफडो के लिये एक उत्तम कसरत है।

९—कपडे उसके हल्के, स्वच्छ, गर्म और ऐसी बनावट के हो, जो बच्चे के हाथ-पैर हिलाने-फेंकने और खेलने मे बाधक न हों। न इतने चुस्त कि छाती की बढ़वार मारी जाय, और न इतने ढीले कि हाथ-पैर उलझ जायँ।

१०—बच्चे को ख़ूब प्रकाश और साफ हवा में रात-दिन रहने दो। सोती बार उसके मुख को मत ढाँपो। बारीक मलमल भी मुख पर मत डालो।

११—बच्चे को हवा के ठंडे झोकों से बचाओ। शरीर को अच्छी तरह वस्त्र से ढाँपने पर फिर उसे हवा से कोई भय नहीं रहता।

१२—प्रारंभ के छ महीनों तक प्रतिदिन गुनगुने पानी से स्नान कराना चाहिए। सदा स्नान के बाद झटपट सूखे वस्त्र पहना देने चाहिए। चमडी को अच्छी तरह सूखे वस्त्र से सुखा लेना चाहिए। जब बच्चा कुछ खिसकने लगे, तब ठडे पानी से स्नान कराना प्रारंभ कर देना चाहिए।

१३—सबसे अधिक इस बात का ध्यान रखना ज़रूरी है कि बच्चे को दस्त और पेशाब स्वच्छ और निर्दोष आवे। बच्चे को नियमित रीति से प्रतिदिन हवाख़ोरी को ले जाना चाहिए।

१४—बच्चे स्वभाव से ही निद्रालु होते है।

१५—नियमित भोजन और शरीर को गर्म रखना तथा भरपूर नींद लेने देना बच्चे के जीवन और स्वास्थ्य के लिये बडी बातें है।

१६—अनियमित भोजन और शरीर का गीला रहना तथा चमडी का ठडा रहना जीवन के लिये अत्यंत हानिकर है।

बच्चों का शक्ति-विकास

प्रथम सप्ताह—बच्चे को बहुत कम प्रकाश दिखाओ। पैदा हुए बच्चों की आँखें अत्यत कमजोर होती हैं, और वह प्रकाश को बिल्कुल पसंद नहीं करता। वह सिर्फ अँधेरे और छाया में ही आँखें खोल सकता है। प्रथम मास में दृष्टि स्थिर नहीं होती। दोनो आँखे ठीक-ठीक कार्य नहीं करतीं। पाचन-शक्ति पर भी ध्यान रखना उचित है। किसी भी मतलब के लिये चिकित्सक की राय लो।

प्रथम मास के अंत और दूसरे के प्रारंभ मे—बच्चा अपने आहार का स्वाद और गंध जान जाता है। उसे यदि नित्य दिए जानेवाले दूध से ज़रा भी भिन्न दिया जाय, तो वह फ़ौरन् उससे अनिच्छा प्रकट करता है। इस समय बच्चा सामने अपनी छोटी-सी दृष्टि से छोटे जगत् को देखता है। आँखों को भरपूर खोलता है और इधर-उधर घुमाता है और स्तनो को अच्छी तरह दबाकर चूसता है।

इसी काल में वह अन्य बातो पर भी ध्यान देता है और कुछ कम या अधिक मुस्किराता भी है। स्पर्श और सुखोष्णता को प्रिय समझता है। धूप, चिराग, उजाला, मनुष्यों और पशुओं से प्रसन्न होता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्दो को ध्यान से सुनता है। घडी की टिक-टिक, कुत्ते का भूँकना, गायन के स्वर इत्यादि पर ध्यान देता है।

छठा और सातवाँ सप्ताह—जो कुछ सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास या किसी वस्तु का चुभना वह अनुभव करता है, उसे चेष्टाओं द्वारा प्रकट करता है। वास्तविक कारणों से मुस्कुराता है। और हाथ-पैर फेंकता है। प्रसन्नता से हाथ की मुट्ठी चूसता और कुछ बोलता भी है।

आठवाँ सप्ताह—अपनी आँखों से कुछ देखकर या देखने के इरादे से सिर या शरीर को इधर-उधर कर सकता है। चेहरों पर ध्यान देता है। अपनी माता को पहचानता है।

चौथा महीना—माता-पिता और परिजनों से अधिकाधिक परिचित हो जाता है, परंतु अनजान आदमी से अत्यंत भय खाता है। इस समय वह लज्जाशील भी होता है।

पाँचवाँ महीना—जोर से रोता और हँसता है। पहली बार जब बच्चा जोर से हँसता है, तब उसकी हँसी हजारों टुकड़ों में टूट जाती है।

छठा महीना—जन्म से दूना वजन हो जाता है।

पाँच से सात मास तक—झुनझुने और खिलौनों को हाथ में पकड़कर उनसे खेलता है। चिल्लाना, शोर करना और इधर-से-उधर चीजों को फेंकना पसंद करता है। बारंबार इस प्रकार की हरकतें करता है। प्रत्येक वस्तु मुँह तक ले जाता है। अपने घुटनों पर खिसकता है। वह स्वयं अपने आपको एक खिलौना बना लेता है। उसे इस बात की कुछ भी धारणा नहीं होती कि वह अपने पैरों खड़ा हो सकता है या नहीं। वह अपने घुटनों के बल खूब इधर-उधर घिसकना चाहता है। ६ मास का बच्चा स्वयं घूमने लगता है। दर्द और सुख को ठीक-ठीक अनुभव करता है।

आठ से नौ मास तक—स्वयं अपने आधार पर बैठ सकता है।

नौ से दस मास तक—अपने शरीर के बोझ को पैरों पर उठाना चाहता है।

ग्यारहवाँ मास—किसी सहारे से उठ सकता है।

बारहवाँ मास—जन्म से तिगुना वज़न होता है। ६ दाँत आगे के निकल आते हैं। एकाध सादा शब्द बोल सकता है।

बारहवें से पंद्रहवे मास तक—अकेला चलता है। इस समय बच्चा अपने अत्यंत निकट किसी सहायक को नहीं पसंद करता। वह स्वतंत्र घूमने और खेलने में मस्त रहता है वह अपने खेल-कूद को बेरोक-टोक पसंद करता है। बाग-बगीचों और मैदान में वह तरह-तरह की कूद-फाँद करता है। वह बड़ी तेज़ी से अपनी शक्ति को बढ़ाता है।

अठारहवाँ मास—हल्की दौड़-धूप के खेल खेलता है।

१८ से २४वे मास तक—रंगों को पसंद करता है। खासकर लाल और हरा रंग वह अधिक पसंद करता है।

अठारह से चौबीस मास तक—छोटे-छोटे वाक्य बनाकर बोल सकता है और उसके आगे के १६ दाँत निकल आते हैं।

ऊपर के क्रम से यदि बच्चों की शक्ति का विकास हो, तो माता-पिता को समझना चाहिए कि बच्चा खूब तंदुरुस्त है और स्वाभाविक रीति से बढ़ रहा है। यदि ऐसा न हो, तो चिकित्सक को दिखाना चाहिए।

प्रकरण ८

नियमित आदतों का अभ्यास

बच्चों के लिये ठीक समय पर, नियमित रीति से खाने, सोने, खेलने और दस्त जाने की आदत होना निहायत जरूरी है। जिन बच्चों को ठीक समय पर खाने, सोने और दस्त जाने का अभ्यास नहीं कराया गया है, वे सदा रोगी रहते हैं और माताओं को उनसे बड़ी असुविधा रहती है। जहाँ बच्चों की आदतें सयमित रखने का अभ्यास नहीं कराया जाता, वह घर बड़ा गंदा और अस्त-व्यस्त रहता है।

प्राय स्त्रियों की आदत होती है कि ज्यों ही बच्चा जरा रोया, झट उसके मुँह में स्तन दे दिया, चाहे वह अजीर्ण के कारण पेट में दर्द होने से ही रोता हो। यह भी देखा जाता है कि बच्चों को दिन-भर ठूँस-ठूँसकर खिलाया जाता है। खासकर घर की बड़ी-बूढ़ियों को यह आदत होती है कि वे कुछ मिठाई या और कुछ सटर-पटर बच्चों को निरतर खिलाती रहती हैं। वे नहीं खाना चाहते, तो भी उन्हें डरा धमकाकर, फुसलाकर, खाने के लिये लाचार किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चों की प्राय पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है। बच्चों के पीले रंग, दुबले हाथ-पैर, कचरा-सा बढ़ा हुआ पेट, रोनी सूरत जो घर-घर में देखने को मिलती है, उसका कारण यह मूर्खता का लाड-प्यार है।

बैठक में, रसोई में, बिछौने पर, यहाँ तक कि पाखाना फिरते हुए भी बच्चे कुछ-न-कुछ हाथ में लिए खाया करते हैं, और माताएँ देखा करती हैं। वे इसी बात को गनीमत समझती हैं कि वह रो-पीटकर उन्हें तग नहीं करता। मजे में टुकड़ा पपोलने में लगा हुआ है। परंतु ऐसे बच्चे गंदे, रोगी, जिद्दी और बेतमीज हो जाते हैं और जन्म-भर वैसे ही रहते हैं। फिर उनकी आदतें कभी नहीं सुधरतीं।

प्राय ऐसे बच्चे खाते-खाते रसोई में या बिस्तरे पर पाखाना फिर देते हैं या उलटी कर देते हैं। परंतु मूर्खा माताएँ फिर उसे उसी तरह खिलाती रहती हैं। एक बार रेल में हमने एक ऐसा दृश्य देखा कि जिसके वर्णन से हम माताओं की मूर्खता का बहुत कुछ अनुमान लगा सकते हैं। एक धनी, उच्च श्रेणी की मारवाड़ी माता अपने ८-१० मास के बच्चे के साथ यात्रा कर रही थी। बच्चे को मृगी के ढंग में दौरे हो रहे थे। थोड़ी-थोड़ी देर में उसकी आँखें पथरा जाती थीं, शरीर अकड़ जाता था और वह बेहोश हो जाता था, माता रो रही थी साथवाले भी देवी-देवताओं से मानता मान रहे थे। पर ज्यों ही बच्चे को जरा होश आता था, माता फ़ौरन् ही पूरी का टुकड़ा मुँह में ठूँस देती थी, इससे बच्चे को भयंकर कष्ट होता था, पर हमारे बार-बार

कहने पर भी वह मानती न थी। उसका कहना था कि बच्चे ने कई दिन से कुछ नही खाया न खाने से कैसे जिएगा !

जो बच्चे सोने और खेलने का नियमित अभ्यास नही रखते, वे सदा माता को दुख देते है। वे दिन-भर वक्त-बे-वक्त सोते है और रात को रोते, और जागकर माता को कष्ट देते है। ऐसे बच्चे प्राय चिडचिडे हो जाया करते है।

यह बात पीछे कही जा चुकी है कि बच्चो को सदैव नियमित समय पर, खूब पाबंदी के साथ आहार दिया जाना चाहिए और नियमित समय से पूर्व उन्हे कुछ भी न देना चाहिए। इस बात पर बारबार ध्यान करना और बहुमूल्य उपदेश समझकर उसका पालन करना चाहिए।

ठीक समय पर बच्चे का सुख की नींद सोना, उसकी तदुरुस्ती का सबसे उत्तम प्रमाण है। यदि यह देखा जाय कि बच्चे की नींद मे गडबड है, तो यह समझना चाहिए कि बच्चा सुखी नहीं है, उसे कुछ-न-कुछ तकलीफ जरूर है। पर जिन बच्चो के सोने का कोई नियत समय ही नहीं है, उनकी तंदुरुस्ती या गडबडी का कुछ पता लगना बहुत मुश्किल है।

सबसे अच्छी बात तो यह है कि बच्चा प्रात काल उठते ही दस्त जाय। पर यदि यह सभव न हो, तो इस बात का कडा नियम बना लेना चाहिए कि १० बजे तक उसे अवश्य ही दस्त हो जाय।

अगर बच्चे को दस्त का कब्ज हो जाय, तो इस बात की सबसे प्रथम ध्यान-पूर्वक जॉच करो कि बच्चा रोगी है या आरोग्य। बहुधा माताओ की यह शिकायत रहती है कि उनके बालको को दस्त जाने का कोई नियमित समय नहीं है। यह जान लेना चाहिए कि बालक आदत के जीव है, जैसी आदत उन्हें डाल दी जायगी, वैसी ही उन्हें जन्म-भर रहेगी। ठीक समय पर दस्त जाने की आदत अनिवार्य होनी चाहिए। यदि किसी बालक को कब्ज रहता है, तो जब तक वह दूर न हो जाय, बराबर उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। यह शिकायत पुरानी होने पर कठिनाई से दूर होती है, इसलिये उचित है कि प्रारभ ही से दूर कर देना चाहिए।

जिन बालको को दस्त साफ नही आते है, उन्हे हमेशा बदहज़मी की शिकायत बनी रहती है। इस कब्ज़ का एक बडा भारी कारण यह है कि बहुत-सी माताओ के दूध मे चिकनाई का भाग अधिक होता है और जीवन के प्रथम ३-४ सप्ताह तक बच्चा उसे अच्छी तरह हज़म नही कर सकता। इसी तरह बाहरी दूध पर जो बालक रक्खे जाते है, उन्हें भी थोडा-बहुत कब्ज़ तो अवश्य रहता है।

कायम कब्ज

जो कब्ज़ बच्चो को बराबर हमेशा बना रहे, वह अधिक चिंतनीय है और उस पर अधिक ध्यान देना चाहिए। हर हालत मे दिन-भर मे एक दस्त आना तो चाहिए ही। जो बच्चे साफ हवादार कमरे मे नहीं सोते और खेल पाते, जो गदी और तग अँधेरी कोठरियों मे रक्खे जाते है, वे बहुधा कब्ज़ के शिकार होते है।

यह बात निश्चय जान लेनी चाहिए कि प्रत्येक बच्चे के लिये खुली वायु, धूप और खेल-कूद का पूरा-पूरा अवसर अवश्य चाहिए। शरीर को हरकत देने का अभाव आँतो पर बहुत पड़ता है। बालकों के क़ब्ज़ दूर करने का एक उपाय यहाँ लिखा जाता है। दाहनी तरफ़ की छाती पर पसलियों के ऊपर हाथ फेरो, फिर नाभि तक ले जाओ। फिर दूसरी तरफ की छाती पर, इसी तरह करके नाभि तक हाथ लाओ। हाथ गर्म करके धीरे-धीरे फेरना चाहिए। और ज़रा-सा मीठा तेल गर्म करके हाथ से चुपड़ लेना चाहिए। यह क्रिया ठीक उसी समय करनी चाहिए, जब बालकों का दस्त जाने का समय हो। पाँच मिनट तक यह क्रिया करनी चाहिए।

गाय का दूध जिसमें पानी मिला होता है, उसमे घी कम और मलाई कुछ ज्यादा होती है। यह दूध बहुधा बालकों को क़ब्ज़ कर देता है। अधिक घीवाले दूध का भी यही परिणाम होता है। ज्यादा औटाने से भी दूध गाढ़ा हो जाता है। इसलिये ज़्यादा नहीं औटाना चाहिए। बदहज़मी प्राय: डब्बे का दूध पीने से होती है। पहले बदहज़मी, फिर कब्ज़ और बाद में अतिसार।

अगर क़ब्ज़ की हद दर्जे तक की शिकायत हो, तो डब्बे के दूध में चूने के पानी के स्थान में 'साल्ट' का पानी मिलाना चाहिए। साल्ट बाज़ार में पंसारी के यहाँ मिल जाता है। इसे गर्म पानी में घोलकर निथार लेने से साल्ट का पानी बन जाता है। इस तरह दूध में प्रतिदिन एक तोला चूने का पानी और साल्ट का पानी मिलाकर दिया जायगा, तो बहुत लाभ होगा। परंतु बिना चिकित्सक की राय लिए एक सप्ताह से ज़्यादा दिन तक इसे जारी नही रखना चाहिए।

स्मरण रहे कि सब प्रकार की जुलाब की दवाइयाँ हानिकारक होती हैं। क़ायम कब्ज़ एक वाहियात रोग है, उसका सावधानी से इलाज करना चाहिए।

पिचकारी

अगर बालक को क़ब्ज़ मे बहुत तकलीफ़ हो, तो उसे एनीमा (पिचकारी) देना चाहिए। पिचकारी में छोटा चम्मच खाने का पिसा हुआ नमक और एक पाव गर्म पानी होना काफ़ी है।

साबुन और पानी का मामूली एनीमा बालकों को नहीं देना चाहिए। यह बहुत हानिकारक है।

बच्चों को पिचकारी देने की विधि यह है कि पीढे या कुर्सी पर बैठकर बच्चे को घुटनों पर चित लिटाओ। बाएँ हाथ से उसके दोनो पैर ऊपर को उठाकर दाहने हाथ मे नरमी से एनीमा दो। पानी आसानी से पेट में चला जाय, इसका ध्यान रक्खो।

प्रकरण ६

साधारण भूल

निस्सन्देह यह सत्य बात है कि छोटे बच्चों के जीवन और मृत्यु का दारमदार उनकी सम्हाल पर निर्भर है। जो लोग धीरे-धीरे बच्चों के माता-पिता बनते हैं, वे तो बहुत कुछ अनुभवी बन जाते हैं। पर बच्चे अधिकांश में मूर्ख नौकर और धायों की असावधानी, दाइयों के लाड़-प्यार और थोथे रिवाजों के शिकार बनकर जान खोते हैं।

सैकड़ों बच्चे इसी तरह मार डाले जाते हैं। हजारों इन मूर्खता-पूर्ण परिपाटियों के कारण जन्म-भर रोगी और दुर्बल रहते हैं। और लाखों जन्म से ही कमज़ोर और रोगी पैदा होते हैं।

पहली भूल

यह समझना कि गर्भिणी को कुदरती तौर से आराम करना, सुस्त पड़े रहना और क़रीब-क़रीब कुछ काम न करना चाहिए।

यह वास्तव में कुछ बात ही नहीं। गर्भिणी को खूब खुश, तंदुरुस्त और चुस्त रहना चाहिए। खूब घूमना चाहिए। सदैव प्रकाश और स्वच्छ वायु में रहना चाहिए। और इस मामले में उसे अपने या पेट के बच्चे के लिये कुछ भी भय न करना चाहिए। यह स्मरण रखना चाहिए कि जब तक स्त्री खूब परिश्रम न करे, और शरीर को अच्छी तरह फुर्तीला न बनाए रक्खे—वह न तो अपना ही स्वास्थ्य कायम रख सकती है और न सही-सलामत प्रसव कर सकती है।

किसी किसान की स्त्री को देखो कि वह कैसी आसानी से तंदुरुस्त बालक उत्पन्न कर लेती है।

दूसरी भूल

यह समझना कि गर्भिणी को दो प्राणियों के लिये खाना चाहिए।

यह बात जानना चाहिए कि बालक का पूरा वजन—माता के पेट में—१½ सेर के लगभग है। उसके लिये माता को कितना भोजन अधिक करना चाहिए? इसलिये गर्भिणी का मुख्य कार्य स्वच्छ वायु-सेवन, नियमित भोजन और ठीक समय पर शौच-क्रिया करना है। ठूँस-ठूँसकर खाना रोगों की जड़ है।

तीसरी भूल

किसी भी प्रकार का नशा या किसी उत्तेजक वस्तु का सेवन करना--यह शरीर के रक्त में ज़हरीला प्रभाव उत्पन्न करता है।

चौथी भूल

यह कि दूध पिलानेवाली को खूब गरिष्ठ भोजन कराना चाहिए, यह बडी भूल है। बहुत-सी माताएँ ठूँस-ठूँसकर चराई जाती हैं। इससे उल्टा दूध का प्रवाह कम होता है। प्राय ऐसी स्त्रियों को बदहज़मी हो जाती है और इससे उनका दूध ख़राब हो जाता है। दिन में सिर्फ़ तीन बार भोजन करना काफी है।

भोजन में चावल, दाल, दलिया, खीर, रोटी, दूध, खिचडी आदि सुपाच्य पदार्थ होने चाहिए।

पाँचवी भूल

यह कि प्रसव के बाद तीन दिन तक बालक को स्तन न दिया जाय। यह ग़लत विचार ही माता की स्वाभाविक दूध-प्रवाह की शक्ति को कम कर देता है और बालको को प्राय बाहरी दूध पीना पडता है। बालक के चूसने से ही दूध का प्रवाह जारी होता है। इसलिये प्रसव के बाद प्रथम दिन ही प्रवाह जारी होता है। इसलिये प्रसव के बाद प्रथम दिन ही प्रवाह को उत्तेजन न दिया गया, तो रक्त-प्रवाह धीमा पड जायगा। बहुधा पीडा के भय से स्तन देने मे माताएँ जी चुराती है, परंतु इस साधारण पीडा से बचकर अन्य कई हानियाँ उठानी पडती है।

छठी भूल

यह कि बालक जनते ही यदि स्तन से दूध नहीं आता, तो बच्चे को कुछ आहार मिलना ही चाहिए। यदि बालक को केवल पानी ही एकाध बार दिया जाय, तो हर्ज नहीं। पर आहार तो देना ही नहीं चाहिए। अगर वह स्तन से कुछ न चूस सके, तो हर्ज नहीं।

सातवी भूल

यह समझना कि दूध यदि प्रसव के ३-४ दिन में ही न उतरा, तो फिर उतरेगा ही नहीं।

यह समझना बिल्कुल ग़लत है। दिन में ३-४ बार बालक को स्तन देना एक सप्ताह तक जारी रहने पर दूध का ठीक प्रवाह होता है। इस समय स्तनो को गर्म पानी के तरडे आदि देकर उत्तेजित करना चाहिए। माता को अपने या बालक की तरफ से हर तरह निश्चिंत रहना चाहिए। यह विश्वास रखना चाहिए कि कुदरत बराबर अपना काम कर रही है। माता की चिंता से प्राय: दूध का प्रवाह सूख जाता है।

आठवी भूल

यह समझना कि खालिस गाय का दूध या दूध मे शकर मिलाकर या पानी या बार्ली वाटर मिलाकर देने से वह ठीक माता के दूध के समान ही प्रभाव करेगा, भूल की बात है। अयोग्य दूध मे भी बालक मोटा-ताजा और वजनी हो सकता है, परंतु माता को समझना चाहिए कि यदि उसे बिल्कुल नियमित रीति से पालन किया जाय, तो उसकी तिगुनी वृद्धि हो सकती है। बालक के लिये यदि बाहर के दूध की ही व्यवस्था करनी है, तो यथासंभव

धाय का ही प्रबंध करना चाहिए, क्योंकि मनुष्य के दूध के अंश में जो स्वाभाविक प्रतिभा, विकास और पुष्टि का उत्कृष्ट अंश है, वह पशु के दूध मे नहीं। विलायती पेटेंट खाद्य, जमे हुए दूध आदि भी बालक के लिये अस्वाभाविक है।

नवी भूल

यह कि बालक यदि सो रहा हो और दूध पिलाने का समय आ गया हो, तो उसे जगाना नहीं चाहिए। यह विचारना बड़ी भारी ग़लती है। बालक को दूध पिलाने और आहार देने का जो समय-विभाग हो, उसका यथावत् पालन कड़ाई मे करना चाहिए। इसी तरह सोना, खेलना, दस्त जाना आदि भी नियमित रूप से होना चाहिए, जिससे बालक को दिन और रात के अपने नियमित जीवन का अभ्यास हो जाय।

दसवी भूल

बालक के रोते ही उसके मुँह में स्तन दे देना या कुछ खाने की वस्तु दे देना। इससे अधिक बालक की पाचन-शक्ति को बिगाड़नेवाली कोई बात हो ही नहीं सकती। बहुधा बालक अजीर्ण और बदहज़मी अथवा पेट के दर्द से रोया करते हैं। उनके मुख में भी स्तन ठूँस दिया जाता है। ऐसे बालकों का मुख और गुदा निरंतर चलती रहती है।

ग्यारहवी भूल

यह समझना कि बच्चों को कुछ गरिष्ठ भोजन भी खाना चाहिए, दूध से क्या होगा। यह विचार हानिकारक है, ख़ासकर जन्म के बाद प्रथम ९ महीनों में। इन दिनो में तो सिर्फ़ दूध ही देना मुनासिब है।

बारहवी भूल

यह समझना कि बच्चे के दूसरे वर्ष में फिर उसकी ज़्यादा ख़बरगीरी की ज़रूरत नहीं है, भयंकर भूल है। दूसरे साल में तो ख़ासतौर पर बच्चे को नियमित रीति से आहार-विहार देना चाहिए।

तेरहवी भूल

यह कि भोजन के नियमित समय से प्रथम उसे एकाध टुकड़ा रोटी या मिठाई दे देने में कुछ हर्ज नहीं। यह आदत वास्तव में अत्यंत ख़तरनाक है। आहार के द्रव्यों को हज़म होने के लिये एक नियमित समय चाहिए। उसके बीच मे ही कुछ और खाना देना बड़ा ही वाहियात काम है।

चौदहवीं भूल

यह समझना कि रात की ठंडी हवा बच्चे के लिये हानिकारक है।

यह जानना चाहिए कि बच्चों को स्वस्थ और मज़बूत बनाने में ठंडी हवा जैसी उपयोगी है, वैसी कोई वस्तु नहीं है। अगर बच्चे के अंग बिल्कुल ठीक-ठीक ढके हुए हैं, तो ठंडी हवा से उन्हें कोई ख़तरा नहीं है।

पंद्रहवी भूल

यह कि बच्चों को सदा गर्म जगह में रखना चाहिए। सिवा उस समय के जब कि स्नान के लिये बच्चे के कपड़े उतार लिए गए हो, दूसरे समय में उन्हें गर्म जगह में रखना आवश्यक नहीं।

सोलहवी भूल

यह कि बच्चे को रोने देना बहुत हानिकर है। यह विचार पैदा होते ही माताएँ बच्चे को रोने से रोकने के लिये अनुचित रीति से चेष्टाएँ किया करती है। खाने को दे देती है और अपने पास सुला लेती हैं। ऐसा न होना चाहिए।

सत्रहवी भूल

अगर बच्चे को ऊपरी दूध और माता का दूध भी दिया जाय, तो रात्रि को माता का दूध ही पिलाना चाहिए। यह निकम्मा विचार है। रात्रि को तो बच्चे को दूध पिलाना ही न चाहिए। दूध पिलाने के पीछे और पहले भी बच्चे को वज़न करने से इस बात का पता लग जायगा कि बच्चे ने कितना दूध पिया है। रात्रि-भर का ८ घंटे का विश्राम बच्चे को भूखा नहीं रक्खेगा। अलबत्ता स्तन के स्नायु-मंडल को विश्रांति अवश्य मिलेगी।

प्रकरण १०

बुरी आदतें

अच्छी या बुरी जैसी आदतें बच्चों को पड़ जाती हैं, उनका आगे जाकर बदलना बहुत मुश्किल है। इसलिये प्रत्येक माता को सावधानी से इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों में किसी भी प्रकार की कोई बुरी आदतें न पड़ें। जन्म से ही बच्चे का जीवन उन्नत और उत्तम हो, यह उसके भविष्य के लिये बहुत ही बहुमूल्य बात है। नियमित आहार, उत्तम स्वास्थ्य, उत्तम पाचन-शक्ति, उत्तम शरीर-संगठन, भविष्य-निर्माण की नींव हैं। नीचे-लिखी आदतों को बच्चे में कभी न पड़ने देना चाहिए—

उँगलियों और कपड़े तथा खिलौनों आदि को मुँह मे डालकर चूसना

प्राय: बच्चों की ऐसी आदत होती है कि जो कुछ उनके हाथ मे आ जाय, उसी को मुँह में रख लेते है। इससे हाजमे पर और मुख के अवयवों पर बहुत नुकसान पहुँचता है। कपड़ो में प्रायः मैले और जहरीले परमाणु रहते हैं, इसी प्रकार खिलौनों में ज़हरीले रंग होते हैं। अतएव बच्चों की यह आदत कदापि नहीं पड़ने दी जानी चाहिए।

दाँत से नाख़ून काटना या मिट्टी खाना

दोनो आदतें भयंकर है। नाख़ून तो एक जहरीली वस्तु है, परंतु मिट्टी मे भी प्राय रोग-जंतु मिले रहते है। फिर मिट्टी वैसे भी कुछ खाने की वस्तु नहीं है। मिट्टी खानेवाले बालक बहुधा मर जाते है, या असाध्य पेट के रोग और पाण्डुरोग या जहरबाद की बीमारी उन्हें हो जाती है।

बिस्तर मे दस्त-पेशाब न करना

बहुत छोटी अवस्था से ही बच्चे को यह आदत डाली जा सकती है कि वह दस्त-पेशाब की हाजत होने पर संकेत कर दे। बिछौना न गीला करे।

यह बात कुछ तो माता की सावधानी पर निर्भर है, और कुछ बच्चे के स्वास्थ्य और स्नायु-शक्ति पर। मध्यम स्वास्थ्यवाले बच्चे को यदि वह दूसरे वर्ष में भी बिछौने में पेशाब करता रहे, उसका ध्यान करना उचित है। परंतु यदि तीसरे वर्ष मे भी उसकी आदत न छूटे, तो किसी डॉक्टर, वैद्य से अवश्य सलाह लेनी चाहिए। निस्संदेह दुर्बल बच्चों की ही यह आदत होती है। ऐसे बच्चो को शाम को चार बजे बाद कोई तरल पदार्थ खाने को नहीं देना चाहिए, ठोस और रोटी के समान गिज़ा देनी चाहिए तथा प्रातःकाल दूध और पानी की लस्सी देना चाहिए। ऐसा करने से यह आदत छूट जायगी।

मूत्रेंद्रिय को मसलना

बहुत-से बच्चे प्राय. हाथ से मूत्रेंद्रिय मसलते रहते हैं । या बिस्तर पर लेटकर बिछौने से रगड़ते हैं । अथवा किसी अन्य वस्तु द्वारा रगड़ते हैं । यह अत्यंत हानिकारक आदत है । बच्चे से तत्काल छुड़ानी चाहिए । और यदि उसके ऐसा करने के कोई कारण उपस्थित हों—जैसा इंद्रिय में मैल जमना, खाज चलना आदि, उन्हें तत्काल दूर कर देना चाहिए ।

झूले में हिलाना या गोद में लेना

माताएँ प्राय बच्चों को झूले में डालकर हिलाया करती हैं या गोद में रखती हैं । इससे बच्चे से चुपचाप बिछौने पर नहीं सोया जाता । झूला हिलना बंद होते ही वह रोने लगता है । गोद में लेने से बच्चे की बढ़वार रुक जाती है ।

अफीम देकर सुलाना

यह बड़ी भयंकर आदत है । बहुत-से बच्चे इससे ऐसे सोते हैं कि फिर नहीं उठते । इसके सिवा वे सदा के लिये सुस्त और आलसी हो जाते हैं ।

हकलाकर बोलना

हकलाकर बोलना वास्तव में बीमारी नहीं, आदत है । बहुत बच्चे सिर्फ लाड में आकर हकलाकर बोलना शुरू करते हैं, और फिर वही उनकी आदत पड़ जाती है ।

हठ करना

बेसमझ माताओं के बच्चे हठी और चिड़चिड़े हो जाते हैं । इससे उनका मस्तिष्क कम-ज़ोर हो जाता है । बुद्धिमती माताएँ बच्चों को रोने का अवकाश नहीं देती ।

प्रकरण ११

बच्चों का रोना

पहले रोने का कारण मालूम करो। बाद मे नर्मी, बुद्धिमानी और दृढ़ता का व्यवहार करो। रोने को बच्चे को कुछ आराम पहुँचाकर मत रोको। न केवल खाने को ही देकर रोना बंद करो।

बच्चों के रोने की खास-खास अवस्थाएँ

(१) विशेष—दुख-रहित हिचक-हिचककर रोना। यह रोना फेफड़ों को लाभदायक है।

(२) शरीर के कष्ट के कारण रोना। विशेष दुख से रोकर शरीर और मन को कष्ट पहुँचाना।

(३) केवल ध्यान आकर्षित करने के लिये बिना किसी कारण के रोना। (ऐसा रोना बुरा बच्चा ही रोता है।)

दुख-रहित हिचक-हिचककर रोना

पैदा होते ही रोना फेफड़ों को मज़बूत करने के लिये बहुत ही ज़रूरी है। कुछ-कुछ होश सँभाल लेने पर रोना और भी लाभदायक है। क्योंकि रोने का मुख्य कारण नसों और पुट्ठों को दृढ़ बना देता है। रोने से बच्चे का कंठ-द्वार खुलता है—उसकी बाँह और गर्दन मज़बूत होती है।

रोना नियमबद्ध है या नहीं ?

रोना स्वाभाविक है, पर बच्चे को बहुत अधिक और बेजा तौर पर नहीं रोने देना चाहिए। प्रो० हाल्ट का कथन है कि रोना ज़ोर से और दृढ़ता से होना चाहिए, पर बहुत देर तक नहीं। नहीं तो बच्चा कमज़ोर होता जायगा। बच्चे की माता को आवाज़ पहचान लेनी चाहिए। ज़ोर का रोना भूख और गर्मी को बताता है। थोड़ी-थोड़ी देर में रोना या एकदम ही रो पड़ना किसी दर्द को बताता है। लंबी साँस में रोना लगातार पीड़ा को बताता है। तेज़ी से और हृदय-विदारक ढंग से रोना दिमाग़ी बीमारी को बताता है। उदासी से रोना भूख को बताता है।

भूख या प्यास का रोना

यह साधारणतया चिड़चिड़ापन लिए होता है। कभी-कभी बच्चा ज़ोर से भी चिल्ला पड़ता है। ऐसी अवस्था मे बच्चा अँगूठा चूसा करता है। यदि बच्चे को कुछ पिला या खिला दिया जाता है, तो वह शांत हो जाता है। पर बच्चे को बे वक़्त न खिलाना चाहिए।

समय का ठीक नियम रखना आवश्यक है। यदि बच्चा फिर भी रोवे, खाने के समय से पहले ही रोना शुरू कर दे, तो समझ लो कि उस खाना पहले कम खिलाया था, या ज्यादा। ठीक-ठीक नहीं पचा है। ज्यादा खाने की पहचान यह है कि वह धीमा-धीमा चिल्लाता है।

बेचैनी से रोना

अत्यंत गर्मी हो या अत्यंत सर्दी हो या बच्चा गीले कपड़े में पड़ा हो या कठोर ज़मीन हो या भारी कपड़े पहन रहा हो या एक स्थान पर बहुत देर तक लेट रहा हो, इन अवस्थाओं में बच्चा बेचैन होकर रोता है। पिछली अवस्था में करवट बदलवा देने से बच्चा शांत हो जाता है। बच्चों को सोते-सोते कभी-कभी मच्छर या डाँस काटकर व्यर्थ कष्ट देते हैं। इससे उन्हें बचाना चाहिए।

थकान या कमजोरी से रोना

थका हुआ और निद्रालु बच्चा बार-बार चिल्लाता है, रोता है, मचलता है, पर ज़रा थप-थपा देने से आराम में आकर वह सो जाता है। बहुत थका हुआ बच्चा जरा ज़ोर से चिल्लाता है। पर कमज़ोर बच्चा धीरे-धीरे तकलीफ़ से चिल्लाता है। बच्चे को थकान के कारण कभी-कभी बहुत पीड़ा होती है, तब उसे चिल्लाना पड़ता है। चिल्लाते-चिल्लाते वह सिसकियाँ लेने लगता है और अंत में बिल्कुल चुप हो जाता है। बच्चे की यह अवस्था बड़ी ही हानिकारक है।

घोर पीड़ा का रोना

चमड़ी पर कुछ आघात हो जाने पर अर्थात् कोई सुई या काँटा चुभ जाय, या गरम-गरम किसी चीज़ से जल जाय, तो इसका रोना तेज, हृदय-विदारक और कराहने के सहित होता है। परंतु जो बच्चा कमजोर होता है, उसे यह कष्ट कुछ कम मालूम पड़ता है।

पेट का दर्द

यह साधारण तकलीफ़ है। बच्चा इसमें बहुत अधिक नहीं चिल्लाता। ऐसी अवस्था में बच्चा हाथ की मुट्ठी बाँधकर अँगूठा बीच में करके मुँह में चूसा करता है।

कान की पीड़ा

शरीर की असावधानता से यह रोग होता है। इसी पीड़ा से बच्चा कभी-कभी मर भी जाता है। इस रोग में बच्चा सिर को बार-बार इधर-उधर गद्दे में, तकिए में, माँ की गोदी में दे दे मारता है। बार-बार कान खींचता है। बार-बार हाथ कान से लगाता है। उचित तो यही है कि तुरंत डॉक्टर को बुला लिया जाय। कान की पीड़ा में बुख़ार ज़रूर आता है और यह बुख़ार १०४ या १०५ डिग्री तक हो जाता है। स्मरण रहे जब हालत बहुत ही भयंकर हो जाती है, तो न बुखार रहता है, न वह कान-दर्द ही।

विशेष चेतावनी

कान की पीड़ा का ही ध्यान रखने से लाखों बच्चे बच सकते हैं। एक घंटे की सुस्ती भी

बच्चे को नष्ट कर डालती है। बहुत-से लोग कान में पिचकारी लगा देते हैं। यह और भी भयंकर है। जब तक इस काम में आप अच्छी तरह दक्ष न हों, तब तक इसे न करें।

आँख का दर्द, सिर-दर्द इत्यादि—इस रोग में देर न करके तुरंत डॉक्टर को बुला भेजो। पलक का सूज जाना मृत्यु-सूचक है।

मुँह और दाढ़ का दर्द—बच्चा बार-बार उँगलियाँ चबावे, रोवे, चिल्लावे, तो समझ लो, दाँत निकल रहे हैं। इनका साधारण उपचार करें।

जोड़ों या हड्डियों का दर्द—जरा भी दर्द हो, तो तुरंत डॉक्टर को बुला भेजो।

फुटकर गुप्त रोग—पेशाब लाल-लाल आता हो, जाँघों की चमड़ी पुरानी होकर चिपक गई हो, पेशाब होने में जलन होती हो, ऐसी अवस्था में तुरंत इलाज कराओ। बच्चा इस रोग में बार-बार पानी पीता है।

बीमारी के कारण—प्रत्येक बच्चा रोता है। पर रोने से यह मत समझ लो कि बच्चे को कोई बीमारी ही है। झूठ-मूठ भी बच्चा रोया करता है। हाँ, इसका निर्णय ठीक-ठीक कर लेना चाहिए।

मैला-कुचैला रहने से रोना—जिस बच्चे को नियम से पाला जाता है और ठीक समय पर सारी क्रियाएँ की जाती हैं, वह बच्चा शांत-स्वभाव, हँसमुख और सुखी बनेगा। बच्चा जरा-से इशारे में ही सुधर भी जाता और बिगड़ भी जाता है।

नीचे-लिखी बातें ध्यान में रखनी चाहिए—बच्चा लेट रहा हो और मा उठकर चल दे, तो बच्चा रोता है। जब तक उसकी इच्छा पूरी न हो जायगी, तब तक वह रोता ही जायगा। मा के वापस लौट आने पर वह चुप हो जाता है। बस यही भेद बच्चे को बिगाड़ देता है। बच्चे को ऐसा करने का कभी मौका ही न देना चाहिए।

बहुत ही प्यार करनेवाले मा बाप यह समझते हैं कि बच्चा अभी कुछ भी नहीं समझता, पर नहीं, बच्चा सब कुछ समझता है। उसको तभी से आज्ञा माननेवाला बनावे—तभी से अच्छे-अच्छे गुण भी सिखावे।

रात्रि में बच्चा रोवे तो क्या करना चाहिए? जाकर देखो कि उसका बिछौना गीला तो नहीं है। हाथ-पैर अधिक ठंडे और गरम तो नहीं हैं। एक ही करवट सो रहा हो, तो दूसरी करवट से सुला दो। तब भी चुप न हो, तो समझ लो कि यों ही रोता है। तब उसे रोने देना चाहिए। यदि रोज नियम से उसी समय रोवे, तो कारण ढूँढ़ निकालना चाहिए। प्राय जो बच्चे रात्रि में खाकर सोते हैं, वे ही रोया करते हैं। वे पूरी स्वच्छ हवा नहीं ले पाते उनकी अच्छी तरह पाचन-क्रिया भी नहीं हो पाती—यही उनके रोने के कारण हैं। कभी-कभी बच्चा अचानक आवाज़ सुनकर भी चौंक उठता है। यदि अनेक उपाय करके भी चुप न हो, तो समझ लो बच्चा बीमार है। किसी चिकित्सक को ज़रूर दिखाना चाहिए।

प्रकरण १२

मुंह और दाँत

बच्चे के मुंह और दाँत यदि अच्छी तरह साफ न किए जायँ, तो अनेक भयंकर रोग बच्चों को लग जाते हैं। हमें इन बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे का मुख, जबड़ा और दाँत बहुत ही सुंदर और साफ रहने चाहिए। प्रायः दूध पिलाते समय हम ऐसा करते हैं कि बच्चे के मुंह में जोरा-जोरी स्तन ठूंस देते हैं और वह गले से उतार लेता है, पर यह ठीक नहीं। धीरे-धीरे दूध बच्चा अपने आप पी लें, यही सबसे उत्तम रीति है, और वही दूध गुण-कारी भी होता है।

रोग कहाँ-कहाँ जड़ पकड़ते हैं?

नाक और गला रोग के विशेष स्थान होते हैं। जबड़ा, दाँत और गले में तनिक भी मैल जमा कि कोई-न-कोई रोग उत्पन्न हो जाता है। जरा ठंड लग जाय, गले में खट्टापन-सा मालूम पड़े, दाँत निकलना कम हो जाये, ठीक-ठीक पाचन-क्रिया न हो—दस्त पतला आने लगे और इन सब बातों को लापरवाही से छोड़कर विशेष ध्यान न दिया जाय, तो ये साधारण विकार क्षय इत्यादि भयंकर रोगों को लाकर ही छोड़ते हैं।

हमारा यह भ्रम होता है कि आजकल के हमारे बच्चे जन्म से ही दाँत, मुँह, जबड़ा इत्यादि के रोगों को लिए हुए पैदा होते हैं। यह सच है कि माता-पिता का प्रभाव बच्चे पर गर्भ से ही पड़ने लगता है। इसीलिये यदि माता-पिता के दाँत, जबड़े, कंठ इत्यादि दूषित हैं, तो बच्चे के भी वैसे ही होने लगते हैं। पर यह कोई विशेष कठिनाई नहीं है। बच्चे के ये दोष मिटाए जा सकते हैं। उनके दाँत और कंठ स्वच्छ किए जा सकते हैं।

नाक को बंद करके मुंह से कभी साँस नहीं लेना चाहिए। योरप के एक प्रसिद्ध डॉक्टर ने इसका प्रयोग जानवरों पर करके देखा। वे जानवर एक महीने से अधिक नहीं जी सके। कुत्ता तो बेशक कुछ अधिक जीवित रहा, पर वह भी बुरी तरह व्याकुल रहा था। दूसरे डॉक्टर वेलेस ने अपने ऊपर प्रयोग करके देखा है। अनेक बंद कोठरियों में भी साँस लेकर देखा है। अंत में वह इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि मुख के द्वारा साँस लेना और निकालना भयंकर है।

मुलायम भोजन

मुँह से साँस लेने का मूल-कारण अनुचित भोजन ही है। बच्चों को दूध में रोटी भिगोकर या हलुआ बनाकर खिला देना—उनकी पाचन-शक्ति को नष्ट कर देना है, फिर

धीरे-धीरे उनके पेट में मल रुकने लगता है। और उनके मुख, नाक और कंठ में अग्नि-सी जलती है। ऐसा होने से उनकी शक्ति क्षीण होने लगती है। मुलायम भोजन करने से जीभ भी पूरी तरह नहीं बढ़ती, वह छोटी ही रह जाती है। इससे उनका जबड़ा भी छोटा रह जाता है, और दाँत भी छोटे रह जाते हैं। बस इसी प्रकार श्वास नलिका और आहार-नलिका ही रह जाती है और बच्चे रोगी बन जाते हैं। यह बात साधारण नहीं है, किन्तु हमें कई पीढ़ियों तक दुःख पहुँचाती है। हमें इसकी सावधानी अवश्य रखनी चाहिए।

कुत्तों को यदि निरंतर दूध, दूध-रोटी, डबल रोटी इत्यादि मुलायम भोजन ही दिया जाय तो उनका जबड़ा बिगड़ जाता है। उनके दाँत टूट पड़ते या गल-सड़ जाते हैं। जिस आदमी की पाचन-शक्ति ठीक है, उसके दाँत परस्पर मिले हुए रहते हैं। और जिसकी पाचन-शक्ति ठीक नहीं है, उसके दाँत अलग-अलग होते हैं। यह एक साधारण-सी पहचान है।

प्रत्येक माता को यह भली प्रकार जानना चाहिए कि शरीर का कोई भी भाग व्यर्थ नहीं है। प्रत्येक भाग अपना-अपना काम करता है। कुछ बच्चे कड़ी चीज़ नहीं खाते हैं और माता भी यह समझती है कि कहीं बच्चे का दाँत न टूट जाय, पर यह केवल भ्रम है। हाँ, अधिक कठोर चीज़ न दे, पर अत्यंत मुलायम भी न दे, बच्चे के दाँत खूब दृढ़ हों, ऐसी कुटकने की चीज़ें तो देनी चाहिए।

बच्चों के मुख पर प्रायः हम गुलूबंद लपेट दिया करते हैं। यह बात बहुत ही हानिकारक है। बच्चे के मुँह की नसें और हड्डियाँ, पूरी तरह से नहीं फैलने पातीं, भिची हुई और कम-ज़ोर रह जाती हैं। उनका जबड़ा पूरा दृढ़ नहीं होता। गलफड़ों पर इसका पूरा-पूरा असर पड़ता है, और वे बड़े हो ही नहीं पाते। बच्चे का गोल सुंदर मुख लंबा और कम चौड़ा बन जाता है। इसलिये बच्चों के मुँह पर गुलूबंद या और कोई कपड़ा नहीं लपेटना चाहिए। कभी-कभी ऐसा होता है कि बच्चा ज़मीन पर लोट जाता है और गुलूबंद में धूल भर जाती है। वह धूल साँस या मुख द्वारा पेट में पहुँचती है। छोटे-से बच्चे के लिये यह एक भयंकर बात है, बल्कि मुख से साँस लेने की आदत भी इसी से पड़ जाती है और बच्चा अंत में कष्ट भोगकर मर जाता है। देखिए, कितनी ज़रा-सी असावधानी बच्चे को ले बैठती है !!!

माता को चाहिए कि बच्चे को एक ऐसी कड़ी चीज़ दे, जिसे वह रात-दिन चिचोड़ा करे, पर वह टूटे और गले नहीं। यह न सोचे कि बच्चे के दाँत टूट जायँगे, पर ऐसा करने से दाँतों को काफ़ी व्यायाम करना पड़ता है, और वह दृढ़ बन जाते हैं। बिना रंग की हुई लकड़ी की कोई वस्तु ठीक है। ऐसे बच्चे देखे गए हैं, जो दो-दो, ढाई-ढाई साल के ही थे, पर उनका मुख लंबा हो चला था। उनके दाँत अभी से ख़राब हो चले थे। खोजने पर यह परिणाम निकाला कि इनके छुटपन से ही मुँह पर गुलूबंद बाँध दिया जाता था। इसी से मुख की हड्डियाँ खिंचकर छोटी रह गईं और मुँह लंबा-लंबा बन गया।

६ वर्ष के स्वस्थ बच्चे की ऊँचाई ४ फिट और वज़न लगभग २५ सेर का होना चाहिए,

और ६ वर्ष के उम्र बच्चे का, जो ख़ूब खिलाया-पिलाया गया है—वज़न ११ सेर और ऊँचाई तीन फ़िट ६ इंच होनी चाहिए।

कभी-कभी ऐसा होता है कि बच्चे का पेट अथवा और कोई अंग बुरी तरह फूलने लगता है। होंठ पीले-पीले हो जाते हैं, मुँह पिचक जाता है और बाँहें सूखने लगती हैं। ऐसा क्यों होता है? इसका कारण यही है कि बच्चा पड़ा-पड़ा ही भोजन पा लेता है। न भले प्रकार मुँह चलाता है, न दाँत ही। वह मुलायम खाना खाता है। बच्चे को धूप या ताज़ी हवा, मामूली कसरत, खेल या आराम, सोना और भोजन बराबर ठीक-ठीक नियम-पूर्वक मिलता है, तो बच्चा स्वस्थ रहता है।

अब हम कुछ बातें ऐसी बताते हैं, जिससे बच्चे की दाँतों की कुल ख़राबियाँ मुँह से साँस लेना इत्यादि-इत्यादि बातें दूर हो सकती हैं और बच्चा हृष्ट-पुष्ट हो सकता है—

(१) ठूँस-ठूँसकर पेट भरकर बच्चे को कभी न खिलाओ। थोड़ा भूखा रहने दो। इससे मुँह, जबड़ा, नाक और अन्य पास के भाग स्वतंत्र रहते और दृढ़ बन जाते हैं।

(२) सिर से लेकर ठोढ़ी तक कभी रूमाल या गुलूबंद न बाँधो।

(३) बच्चे को २० मिनट से ज़्यादा देर तक कभी न खिलाओ-पिलाओ। ऐसा भी भोजन कभी न दो, जिसे बच्चा खाते-खाते थक जाय।

(४) मुलायम खाना—जैसे दूध-रोटी (कुछ देर तक भीगी हुई), डबल रोटी-दूध या हलुआ अधिक खाने को न दें।

(५) प्रथम वर्ष तक बच्चे को माता का ही दूध देना चाहिए। यदि मा न हो, तो किसी और स्त्री को ढूँढ़ लेना चाहिए।

(६) बच्चे को समय पर खाने और समय पर सोने देना चाहिए। वस्त्र बहुत कसे हुए न होने चाहिए।

स्वच्छ हवा और स्वच्छ पानी देना चाहिए। स्नान बहुत ही शीघ्र करा डालना चाहिए। अधिक देर तक स्नान कराते रहना भी हानिकारक है। समय के अनुकूल थोड़ी-थोड़ी गरमाई बच्चे को देना चाहिए। बच्चे की आदतों को कभी न बिगाड़े। प्रथम दिन से ही यह ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों के आचरण शुद्ध हों, उनकी आदत शील-युक्त बने और वह व्यर्थ न रोवे। परंतु बहुत ज़रूरी ध्यान में रखने योग्य जो बात है, वह यही है कि बच्चे के सिर और ठोढ़ी तक कभी भूलकर भी गुलूबंद या और कोई कपड़ा न बाँधे। यही बच्चों के सब रोगों की जड़ है।

दाँत कब और कहाँ निकलने शुरू होते हैं?

दूध के दाँत सातवें और बारहवें महीने के बीच में सामने ही निकलने शुरू होते हैं। और दो या ढाई वर्ष की अवस्था में २० दाँत निकल आते हैं। ६ वर्ष के लगभग दूध के दाँतों के पीछे असली दाँत निकलते हैं। १२वें वर्ष के लगभग ४ और असली दाँत निकलते

है। १८ और १९ वर्ष के बाद "अक्ल डाढ़" निकलती है। और इस प्रकार ३२ दाँत पूरे होकर जबड़ा भर जाता है।

बच्चे के दाँत साफ करना ज़रूरी बात है। कब साफ करे? यह प्रश्न ज़रा विचारणीय है। डाक्टरों का मत है कि जब एक दाँत निकल आए, तभी से उसे ब्रुश से साफ़ किया जाय। पर हमारी राय से २ वर्ष की आयु से दाँत ब्रुश से साफ करने चाहिए। क्योंकि इस अवस्था में दाँत जरा दृढ़ हो चुकते हैं और कच्चे टूटने का डर नहीं रहता।
(बच्चों के दाँत साफ करने का एक विशेष ब्रुश मिलता है। इसका नाम Tom Thumbs है।)

ब्रुश के साथ थोड़ा-सा खाने का सोडा लगाकर तब दाँतों से रगड़ना चाहिए—इससे दाँत दृढ़ और स्वच्छ बनते हैं। फिर रेशमी कपड़े से दाँत रगड़ डालने चाहिए। पर यह काम बड़ी ही सावधानी और फोके हाथ से करना चाहिए, ताकि दाँत टूट न जावें।

काम कर चुकने पर ब्रुश को पानी से धोकर खूँटी पर लटका देना चाहिए, ताकि वह सूख जाय।

जब बच्चा १८ महीने का हो जाय, तब उसे दूध के सिवा और चीज़ भी खिलानी चाहिए। पर उत्तम तो यही है कि २½ या तीन वर्ष की अवस्था ही से दूसरी चीजें खाने को दें, क्योंकि बच्चा भोजन को भले प्रकार चबा सकता है।

बच्चे का प्रथम वर्ष बहुत उपयोगी होता है। इसी वर्ष में बच्चे का मस्तिष्क बहुत बढ़ जाता है। जितना मस्तिष्क २९ साल में बढ़ता है, इतना ही प्रथम वर्ष में बढ़ जाता है। माता को यह अवसर न खोना चाहिए। यदि माता अच्छी-अच्छी बातें प्रथम वर्ष में बच्चे को सिखा देती है, तो वह आगे के झंझटों से बच जाती है। सरल स्वभाव और सभ्यता—बच्चे को आदर्श पुरुष बना देते हैं।

प्रकरण १३

हरे-पीले दस्त और दूध डालना

बच्चों को हरे-पीले दस्त होना या दूध उलट देना हमारे घरों में इतनी आम बीमारी हो गई है कि उसे कोई बीमारी ही नहीं गिनता। परंतु बच्चों की फ़ीसदी ८० मृत्यु इसी दोष के कारण होती है। परंतु जिन बच्चों के संरक्षक हवा, जल, आहार, वस्त्र, स्नान, गर्मी, सफ़ाई और प्रबंध को ठीक-ठीक रखते हैं, उनके बच्चे कभी इस रोग में नहीं फँसते।

माताओं को प्राय बच्चों को खूब ठूँस-ठूँसकर खिलाने और निरंतर खिलाते रहने का अभ्यास है। ज़रा-ज़रा-सी देर में बच्चों के मुँह में स्तन देना माताओं का प्राय: स्वभाव हो गया है। स्तन या बोतल अलग करते ही यदि बच्चा उलटी कर दे, तो समझ लेना चाहिए कि उसे बहुत ज़्यादा खिला दिया गया है। अगर यह जानना असंभव हो कि बच्चे को ठीक-ठीक जितना दूध पिलाना चाहिए उतना उसने पी लिया या नहीं, तो यही ठीक है कि उसे पिलाने से पहले और पीछे तोल लिया जाय।

यदि बच्चे को हरे-पीले दुर्गंधित और लसदार दस्त आवें, तो इसका सबसे उत्तम उपाय यह है कि उसे ६ माशे एरंड का तेल पिला दिया जाय, जिससे तमाम आँव निकल जाय। अथवा पिचकारी द्वारा गर्म पानी गुदा में चढ़ा दिया जाय।

बाहरी दूध पिलाने से बच्चों को प्राय दस्तों की शिकायत हो ही जाती है। ऐसे बच्चों को दूध पिलाने से कुछ मिनट प्रथम यदि एक-एक चम्मच गर्म पानी दे दिया जाय तो बहुत अच्छा है, विशेष कर गर्मी की ऋतु में डब्बे का दूध बेपरवाही से देने से बच्चों को दस्त लग जाते हैं, परंतु हमारी सम्मति तो यह है कि हर हालत में चिकित्सक को ले जाकर बच्चा दिखा दिया जाय। यदि बोतल से दूध पिलाया जाता है, तो ये भूलें हो जाती हैं—

१—बोतल की रबर-नली ठीक-ठीक साफ़ नहीं होती।

२—डब्बे का दूध यथासंभव ठंडी जगह में रखना चाहिए। इसका ख़याल नहीं किया जाता। यदि वह गर्म जगह में रक्खा जाता है, तो मिनटों ही में उसमें लाखों कीड़े पैदा हो जाते हैं।

३—हरे रंग का दस्त आना भयंकर है। उस समय यदि उसकी ठीक सम्हाल कर ली जायगी, तो ठीक है। उस समय उसे सर्वथा चिकित्सक की सम्मति पर रखना चाहिए।

कभी-कभी हरा दस्त आने का मतलब यह है कि आँतों के भीतर कोई ख़राबी हो गई है। ऐसी दशा में थोड़ा-सा गर्म पानी पिला देना बहुत अच्छा असर दिखाता है। दस्त में आँव मालूम हो, तो एरंड का तेल दिया जा सकता है, परंतु बार-बार नहीं।

बहुधा सर्दी से भी बच्चे को दस्त लग जाते हैं, इसलिये बच्चे को सर्दी से बचाना बहुत ही आवश्यक है।

नीचे दो प्रयोग लिखे जाते हैं, जो बच्चों के हरे-पीले दस्त और उलटी को फ़ायदे-मन्द हैं—

१—छुहारे की गुठली निकाल उसमें अफ़ीम भर फिर उसे पुत्र आटे की बाटी में रखकर भूभल में डाल दो। बाटी पकने पर उसमें से छुहारा निकाल लो। उसे खरल करके ज्वार के बराबर गोली बना लो। एक से दो गोली तक माता के दूध में देने से सब प्रकार के दस्तों को फ़ायदा होगा।

२—सोंठ, हरड़ बड़ी, काला नमक थोड़ा-थोड़ा पत्थर पर घिसकर बच्चों को पिलाने से उलटी और दस्त दोनों बंद होते हैं।

प्रकरण १४

सरलता से दूध छुड़ाना

६ महीने की आयु में बच्चे का दूध छुड़ाने का यत्न करना चाहिए। दूध छोड़ने का ठीक समय तो ९वें महीने में है। पर जब छठे महीने में इसका यत्न करेंगे, तो ९वें महीने के अंत तक इस काम में सफल हो पावेंगे। बच्चे की पाचन-शक्ति ठीक रखने के लिये उसका दूध छुड़ाना आवश्यक है।

६ महीने तक बच्चा दूध के अलावा और किसी चीज़ को समझता ही नहीं है। इस समय के बाद से उसे दूसरी चीज़ें खिलानी चाहिए। ९ महीने तक फिर दूध सरलता से छूट जायगा।

यदि बच्चा रोगी हो या ऋतु बहुत गरम हो, तो ऐसा परिवर्तन धीरे-धीरे करना चाहिए। सबसे पहले बच्चे को चम्मच द्वारा पानी पिलाना चाहिए, इस अभ्यास के पड़ जाने पर और चीज़ भी बच्चा इसी प्रकार खाने लगेगा। जब बच्चा चम्मच द्वारा पीना सीख जाय, तो फिर बच्चों की तुतई काम में लानी चाहिए। वह उसमें से अपने आप उँडेलकर पीने लगेगा।

कभी-कभी बच्चा अपने अँगूठे को मुँह में डालकर चूसा करता है। माताओं को चाहिए कि ज्यों ही बच्चा ऐसा करे, त्यों ही उसे रोक दें। नहीं तो बच्चे की गंदी आदत पड़ जाती और वह गंदा रहने लगता है।

बच्चे को मा का दूध छुड़ाकर गाय का दूध पिलाना चाहिए। इस दूध में और माता के दूध में थोड़ा ही अंतर होता है, इसलिये ऐसा करना चाहिये कि दो चम्मच गाय का दूध और एक चम्मच गरम पानी मिलाकर दिया जाय। माता के दूध को एकदम नहीं छुड़ाना चाहिए। मान लो, यदि बच्चा दिन में ५ बार मा का दूध पीता है, तो उसे चार बार मा का और एक बार गाय का दूध दो। इस प्रकार रोज़ एक मात्रा मा के दूध की घटाते और गाय के दूध की बढ़ाते जाओ। इस प्रकार करते-करते बच्चा २½ छटाक तक ऊपरी दूध पीने लगता है। पर इतना ध्यान रक्खो कि दूध ठीक समय पर दिया जाय। ऊपरी दूध पिलाते समय मा का दूध इन-इन समयों में देना चाहिए—

प्रात	सायं
६ बजे	६ बजे
१० बजे	१० बजे

बीच के समय में जैसे १२ या ४ बजे ऊपरी दूध देना शुरू करना चाहिए।

बच्चे का एक दाँत जब अच्छी तरह निकल आवे, तो अन्न की ज़रा-सी कुछ चीज़ देनी चाहिए। पर इतना ध्यान रखना चाहिए कि इस समय में स्वादिष्ट वस्तु कुछ भी न दी जाय, नहीं तो बच्चा चटोरा बन जाता है। जब वह बाहरी दूध अच्छी तरह पीने लगे, तो उसमें बूरा

मिला देना चाहिए। तीन चम्मच दूध में चौथाई चम्मच चूरा मिलाना चाहिए। फिर धीरे-धीरे इसी में मलाई भी मिलाकर देनी चाहिए। जब यह सब पचने लगे, तो दूध में पिलाते समय ताज़ा मक्खन थोडी-थोडी मात्रा में मिला देना चाहिए।

बच्चे को स्नान कराने के समय संतरे का रस गरम पानी में मिलाकर देना चाहिए। ७ महीने की उम्र में बच्चा बाहरी दूध बहुत कम मात्रा में पीना शुरु करता है। इसलिये बच्चे से जल्दी नहीं करनी चाहिए।

याद रक्खो, दूध केवल भोजन-मात्र है। इसे भूख में ही देना चाहिए, प्यास में नहीं।

एक बात ध्यान में रखने की और है कि इन दिनों में बच्चे को दूध-रोटी, कढी, चावल या और कोई मुलायम चीज़ नहीं देनी चाहिए। क्योंकि ये चीज़ें वह पचा नहीं सकता। दो वर्ष की उम्र के बाद बच्चा इन चीज़ों को हज़म कर सकता है।

सख्त चीज़ बच्चे के लिये अच्छी होती है। ऐसी चीज को वह चाबता है। अधिक देर चबाने के कारण मुँह से लार निकल-निकलकर उसमें मिलती रहती है। जितनी अधिक लार मिलेगी, उतना पाचक वह भोजन बनेगा। इसलिये वह खाना जल्दी हजम होकर शरीर में खून बनता है। दूसरी बात इससे यह होती है कि बच्चे को खाने की आदत पड जाती है। इसके अलावा यह भी बात है कि जबडा ठीक-ठीक बढता रहता है। दाँत मजबूत बनते जाते है, और गला भी साफ़ रहता है।

१०वें महीने में बिलकुल दूध छुडाने का यत्न करना चाहिए। प्रात काल ६ बजे का दूध देना बंद कर दो और उसकी जगह संतरे का रस पानी में मिलाकर और थोडा-सा मीठा डाल कर दो। फिर ८ बजे माता का दूध पिलाओ। दोपहर को बाहरी दूध, मलाई और मक्खन समेत देना चाहिए। इसी प्रकार करते चले जाने से १० महीने बाद माता का दूध बिलकुल छुट जायगा। और बच्चा २ छटाक तक ऊपरी मीठा दूध पीने लगेगा।

एक वर्ष की उम्र के बाद आप देखेंगे कि आपका बच्चा किस प्रकार कमल के फूल-जैसा खिल गया है। साथ-ही-साथ उसकी माता को भी दूध पिलाने की चिंता मिट गई है।

इस उम्र के बाद बच्चे को भोजन ३½ या ४ घंटे के बाद देना चाहिए। इससे पाचन-शक्ति ठीक बनी रहेगी और बच्चे का खाना बिगडेगा भी नहीं।

बच्चे को तीन अभिप्राय से खाना दिया जाता है। (१) बढना, (२) शक्ति और (३) गर्मी। गर्मी तो अधिक भोजन से ही आती है। यह बात स्वाभाविक है कि गर्मी के दिनों में बच्चे को कम खाना दिया जाय। बच्चा जब बडा हो जाय, खेलने-कूदने लगे, तो वह अपने आप ही भोजन माँगेगा। कोई-कोई बच्चे ऐसे होते हैं, जो खूब खाते है, पर उनका वजन एक ही रहता है। न घटता है, न बढता है। पर इसे कोई रोग न समझ लेना चाहिए। बात ऐसी होती है कि बच्चा जब खेल-कूद सीखताहै, तो पहली शक्ति ख़र्च करके नई शक्ति लेता है और यह हिसाब कई दिन तक चलता रहता है। जब बच्चे की शक्ति अधिक बढ़ने लगती है, तो उसका वज़न भी बढता है।

प्रकरण १५

निष्क्रमण दंतोद्भव

आश्वलायन गृह्य सूत्र में लिखा है—"चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्य मुदीक्षयति तच्चक्षुरिति।" पारस्कर गृह्य सूत्र में भी ऐसा ही वर्णन है—"जननाद्यस्तृतीयो ज्योत्स्नस्तस्य तृतीयायाम्।" इत्यादि। निष्क्रमण-संस्कार का अभिप्राय समीर-सेवन से है।

यह दाँत बालक को बड़ा ही कष्ट देते हैं। अंत में दाँतो से जितना सुख मिलता है, आरंभ में उतना ही कष्ट हो लेता है। दाँतों से मानो बच्चे का पुनर्जन्म हो लेता है।

यदि दाँतों में अधिक पीड़ा हो, तो उनमें बारीक पिसा सेंधा नमक धीरे-धीरे रगड़ना चाहिए। यदि इससे लाभ न दीखे, तो मसूड़े तुरंत चतुर डॉक्टर से चिरवा देना चाहिए। अथवा कोई हल्का विरेचन दे। इन दिनों में बालक को खीझने-झुँझलाने न दे। इसी से बालक की इच्छा के विरुद्ध कोई बात न करे। बालक के मन के तनिक भी विरुद्ध बात होने से बालक बहुत मचलता है, और फिर उसे सदा के लिये मचलने की बान पड़ जाती है।

इन दिनों ज्वर-लार-खाँसी, दस्त आदि को अफ़ीम आदि देकर कभी न रोके। इससे बड़ी हानि होती है। इन दिनों में बच्चे को हरे-पीले और फटे दस्त होने लगते हैं। ऐसी अवस्था में पथ्य आदि बदल देना चाहिये। असल निर्दोष मल की परीक्षा यह है कि वह हल्दी या पकी नारंगी के रंग-जैसा और चावल के गाढ़े-माँड जैसा जमा होना है।

मसूड़े लाल हो रहे हों, प्यास भी हो, तो एक टुकड़ा मुलहठी छीलकर और भिगोकर उसके हाथ में दे देनी चाहिए। वह उसको चबावेगा और चूसेगा। इससे बहुत लाभ होगा।

एक बिलस्त ताँबे का तार और इतना ही जस्त का तार लेकर दोनो को परस्पर रस्सी की तरह बल दे लो और मोड़कर गूँज (छल्ला) जैसा बनाकर बढ़िया काली मख़मल में मढ़कर तावीज़ बना गले में डाल दो, तो इससे बिजली का प्रभाव उत्पन्न होगा, और दाँत बिना तकलीफ जल्दी निकलेंगे।

दाँत निकल आने पर सूखी वस्तु (जैसे रोटी) अधिक देवे, जिससे उसे चबाना अधिक पड़े। खूब चबाकर खाने से अन्न जल्दी पचता है, और पेट को मिहनत नहीं पड़ती। अन्न का पचना मुँह में ही शुरू हो जाता है। थूक से मिलकर उसकी सूरत बदल जाती है। जो कहीं अन्न खूब न चबाया गया हो, तो पेट बेचारे को, जो बहुत ही कोमल है, दाँत का काम करना पड़ता है। दाँतों का काम आँतो से कभी नहीं लेना चाहिए, नहीं तो न दाँत रहेंगे न आँत।

जो भोजन पचता है, वही शरीर के काम आता है। जितना अन्न नहीं पचता, उतना ज़हर का काम करता है। इसमें पचने का ख़याल रक्खे और भूख से ज़्यादा न खिलावे।

मीठा, चिकना-चुपड़ा या मसालेदार खाना स्वाद के लालच से सभी अधिक खा जाते हैं। बच्चों को इस अवगुण से शुरू से ही बचाना और सादा खाना खिलाना चाहिए। कभी ठंढ लगने और न खेलने से कुपच हो जाता है, इसको सोचकर उसका प्रबन्ध करे।

जब बालक बैठने लगे, तो उसे धीरे-धीरे खड़ा होना सिखावे। किसी गाड़ी आदि के सहारे यह काम किया जाय पर माता को दूर नहीं जाना चाहिए। नहीं तो गिरकर बच्चा चोट खाएगा। उसको स्वेच्छा-पूर्वक खेलने-कूदने और किलोल करने दे, पर गिर पड़ने की सावधानी रक्खे। इच्छा-पूर्वक किलोल करने से बालक बहुत बढ़ते और मगन रहते हैं।

सबसे बड़ी बात यह है कि बच्चे को दस्त सदा साफ़ आता रहे। सारे रोगों की जड़ पेट का ही विकार है। जन्म से तीन वर्ष की अवस्था तक बच्चे को सप्ताह में दो बार जन्म घुट्टी देना चाहिए, उसका नुसख़ा यह है—

(१) सौंफ़, हरड़ दोनों, सोंठ, सनाय, अमलतास, अजवायन, अजमोद, इन्द्रजौ, नौसादर, सुहागा, पाँचों नोन प्रत्येक दो दो रत्ती, खाँड ६ माशे २५ तोला पानी में पकावे और चतुर्थांश रहे तो छानकर पिलावे।

(२) पोदीना, सौंफ, मरोड़फली, अमलतास, पित्तपापड़ा, जीरा सफेद, सनाय, पाँचों नोन चार-चार रत्ती। सोंठ, मिश्री, पलासपापड़ा, नरकचूर, सोहागा दो रत्ती, उन्नाव एक दाना, पूर्ववत पिलावे।

(३) सौंफ, एलुवा, पलासपापड़ा, मरोड़फली, काली मिरच, बड़ी हरड़, छोटी हरड़, गोखरू, वच, सोए के बीज, इन सबको चार-चार रत्ती लेकर औटावे और पूर्ववत् पिलावे। इन तीनों नुसखों में से किसी एक को पिलाना चाहिये।

घुट्टियों में मुगलानी सबसे उत्तम होती है। उसका नुसख़ा यह है—

सौंफ, बनफ़शा, मुनक्का, मुलहठी, अमलतास, तुरञ्जबीन एक-एक माशा, बूरा ४ तोले, पानी में डालकर औटा ले और छान ले फिर बालक को पिला दे। पर जाड़े में इसमें अजवायन और गर्मी में गुलकंद और डाल दे। यह घुटी बच्चों को बहुत ही गुणकारी है। पाचन का एक और नुसख़ा लिखते हैं। एक गाँठ सोंठ, जरा-से पानी में घिसो, उसी पर एक हरड़ थोड़ी-सी घिसो (ये दोनों २ रत्ती से अधिक न हों), उसमें जरा-सा काला नमक घिसकर गुनगुना बच्चे को पिलाओ, अजीर्ण दूर होगा।

अब बच्चों को पुष्ट करने की बाबत एकाध नुसख़ा लिखते हैं। जब तक बालक दूध पीता रहे, उस समय तक इस घी को चटाती रहे—

सफ़ेद सरसों, वच, दुद्धी, चिरचिटा (ओंगा), शतावर, सालपर्णी, ब्राह्मी, पीपल, हल्दी, कूठ, सेंधा नमक, सब एक-एक तोला लेकर चटनी-जैसी पानी में पीस लो। पीछे ढाई पाव घृत

लेकर यह लुगदी डाल और ३ सेर पानी मिला आग पर पका लो, जब पानी जल जाय, घी छानकर शीशी में रक्खो। मिश्री मिलाकर १ माशा दिन में तीन बार चटाओ।

जो बालक दूध के साथ अन्न भी खाता हो, उसके लिये यह बनावे—

मुलहठी, वच, पीपल, चीता, त्रिफला, इनका घृत पूर्वविधि से पका कर दे।

इनके सिवा नीचे के नुस्खों को चटाने से भी बालक पुष्ट, मोटा और बुद्धिमान् बनता है।

१—सोने का वर्क एक, कूट १ रत्ती, शहद २ रत्ती, घी १ रत्ती, वच १ रत्ती।

२—सोने का वर्क आधा, गिलोय १ रत्ती, शंखपुष्पी १ रत्ती, शहद २ रत्ती, घी १ रत्ती।

कुमारकल्याण घृत और अष्टमंगल घृत भी बल-पुष्टिकारक और श्रेष्ठ, अग्नि-वर्धक हैं। दंत-रोग, पेट के कीटों की बीमारी और समस्त बाल-रोगों को नाश करते हैं। जिनका प्रयोग यह है— कुमार कल्याण घृत १ सेर भटकटैया (बड़ी कटेहली) को ८ सेर पानी में काढ़ा करे, जब १ सेर पानी रहे, तो छानकर रक्खे, उसमें १ सेर गौ का दूध और १ पाव गौ का घृत मिलावे। धीमी-धीमी आग से पकावे, जब घृत रह जाय, तो छानकर दूध या मिश्री मिलाकर ६ माशा मात्रा से बच्चे को खिलावे।

अष्टमंगल घृत

दूध, वच, ब्राह्मी, सफेद सरसों, शालपर्णी, सेंधा नमक, पीपल छोटी, सबको बराबर लेकर पानी में लुगदी करे और चौगुने घृत में डालकर तथा घृत से चौगुना जल मिलाकर पूर्ववत् पकावे। इससे बच्चे की वाणी मीठी, सरस और तेज़ हो जाती है। तथा स्मृति, बुद्धि, तीक्ष्ण हो जाती है।

प्रकरण १८

बच्चों के रोग

ऊपर हमने इतनी बातें बताई है, इनको माताएँ ध्यान-पूर्वक काम में लावें, तो हम दृढता-पूर्वक कहते है कि उन्हें हमारे इस अध्याय को पढने की नौबत ही नही आवेगी। उनके बच्चे बीमार ही नहीं होगे। क्योंकि बीमारी विकार है। और विकार अवश्यभावी नहीं होता तथा स्थूलतः हम समय-कुसमय के लिये बाल-चिकित्सा की भी बातें लिखे देते हैं।

बच्चे की चिकित्सा बड़ी कठिन है। बडे आदमी तो अपने सुख-दुख की बात कह भी देते है, जिससे बहुत कुछ उनके रोग का प्रतिकार हो सकता है, किंतु बच्चे न बोल सकते हैं, न समझ सकते हैं। मूर्खा माताएँ बच्चे के रोने को भूख का कारण समझती है। चाहे वह अजीर्ण के शूल से ही बिलबिला रहा हो, तब भी उसको चुप करने को दूध ही पिलाने लगती है। वह दूध उसे विष होकर लगता है, देश मे लाखों अभागे बच्चे इसी विष रूपी दूध को पीकर प्राण खो देते है। उन्हें जान लेना चाहिए कि भोजन युक्ति से ही उपकारी होता है। चरक मे लिखा है—

अन्न प्राणिना प्राण तदयुक्त हिनस्त्यसून् ;
विष प्राणहर तच्च युक्तियुक्त रसायनम्।

यद्यपि अन्न प्राणियों का प्राण है, उसके बिना किसी का जीवन कठिन है। किंतु बिना नियम सेवन करने से वही मार डालता है। संसार में जितने प्राणी रोगी होते है, उनमें अधिकांश इसी से होते है। और विष तुरंत प्राणो को नाश कर देता है, किंतु वही युक्ति से सेवन किया हुआ बुढापे और मृत्यु को दूर कर देता है। सो उचित तो यह है कि बच्चे क्या बूढे सबको भोजन के नियमों पर ध्यान देना चाहिए। नहीं देने पर हानि होती है।

बच्चों के रोग जानने का उपाय

बालक रोता हो और उसके मुख मे झाग आवे, तो समझ लेना चाहिए कि उसके कपडों में कोई जूँ है जो बच्चे को काटती है। उसको ढूँढकर निकाल देना चाहिए। बालक तत्काल चुप हो जायगा।

यदि बालक बार-बार अपने पैरो को पेट की ओर समेटे, और पेट को दबाने या छूने न दे, बराबर रोता ही रहे, तो जानना चाहिए कि पेट में दर्द है। इसकी चिकित्सा इस प्रकार करनी चाहिए—(१) आग पर हाथ को गरम कर-करके बालक के पेट को सेंके, पर इस बात का ध्यान रक्खे कि बच्चे की खालजल न जाय। (२) रोगन गुल को गरम करके पेट पर मल

दे। (३) नमक को खूब बारीक पीसकर और गरम करके पेट पर मल दे। (४) इलायची के दो बीज, सौंफ़ के दो दाने मा के दूध मे पीसकर पिला दे।

बालक सोकर उठे और जीभ निकाले, इधर-उधर सिर हिलावे, तो जानना चाहिए कि बालक भूखा है, उसे तुरत दूध पिलाना चाहिए।

एक करवट देर तक सोने से, कोई वस्तु चुभने से या चींटी अथवा मच्छर के काटने से भी बालक रोता है, सो इस बात को भी प्रथम अच्छी तरह देख लेना चाहिए।

जो बालक बराबर ऐं-ऐं किए चला जावे, चुप न हो, रोवे, तो समझना चाहिए कि कहीं दर्द है, या कोई दुख है। दर्द कहाँ है, यह इस तरह पहचाने कि जहाँ दर्द होता है, उसी अग को बालक बार-बार छूता है। और दूसरे के छूने पर रोता है।

जब बालक के सिर में दर्द होता है, तो वह अपनी आँखें मूँद लेता है।

गुदा में दर्द होता है, तो बालक को प्यास अधिक लगती और मूर्च्छा होती है। कोष्ठ में दर्द होता है तो पेट अफर जाता है, साँस अधिक चलती है।

मल में दुर्गंध बढ जावे और उसका रंग बदल जावे, तो समझना चाहिए कि उसके पेट में कोई रोग है। यह रोग कब्ज़ का हो सकता है। इसका उपाय यह है कि रेवन चीनी का छिलका कूटकर ७ रत्ती प्रमाण माता के दूध में या जल में देना चाहिए, इससे उसका रंग भी बदल जावेगा और रोग भी जाता रहेगा।

दस्त का रंग सफ़ेद हो, तो यह चिकित्सा करे—छोटी इलायची, पोदीना, पीपल, काली मिरच, काला नमक सब वस्तु बराबर ले कूट-छान लेना चाहिए। प्रतिदिन दोनो समय तीन-चार रत्ती देना चाहिए।

यदि बालक को साधारण से अधिक दस्त बारंबार और ज़रा-ज़रा-सा आवे, खुलकर न आवे, तो गरम जल में थोडा एरंडी का तैल मिलाकर पिला देना चाहिए।

यदि उसमे पेचिश की शिकायत मालूम हो, तो सौंफ़ पानी में पीस छानकर थोडा गरम पिला देना चाहिए।

जब बालक के पेट में कीड़े पड जाते है, तो वह बारबार मूत्रेंद्रिय को हाथ लगाता है और मलता है, सोती बार गुदा और नाक को खुजाता है, दाँत किसकिसाता है। ऐसी अवस्था में प्रथम एरंड-तैल गरम पानी में पिलावे। यदि आराम न हो, तो यह क्वाथ दे—

मोथा, सुहाकानी, त्रिफला, देवदारु, और सैजन के बीज काढा करके उसमें पीपल का चूर्ण और वायविडंग का चूर्ण एक-एक रत्ती मिलाकर पिलावे। ये सब औषध १-१ माशे तथा पानी सबसे अठगुना लेना चाहिए।

जब बालक रात को सोकर उठे और मूत्र करे, तो उसके मूत्र का रंग देखना चाहिए, यदि सफ़ेद हो और जम जाय, तो अजीर्ण समझना। लाल देखो, तो ज्वर समझना चाहिए। ऐसी दशा में ८ माशे पानी में एक रत्ती कलमी शोरा पीसकर पिला देना चाहिए। या सौंफ़ का

अर्क एक तोला, सुनी फिटकरी एक रत्ती, सतगिलोय एक रत्ती मिलाकर पिलावे। गोखुरू के काढ़े में आधा रत्ती शिलाजीत दे।

टूँड़ी का पक जाना

१—नाल खींचने से पक गई हो, तो मरहम कपड़े पर लगावे। उसकी विधि यह है—

(क) मोम एक तोला, अलसी का तेल २½ तोला, जंगार एक माशा, पीसकर मिला दे और आग पर हल कर ले।

(ख) कपड़े को सरसों के तेल या गोले के तेल में भिगोकर लगा दे।

(ग) जो सूजन हो, तो यह काम करे—पीली मिट्टी का एक ढेला लेकर आग में लाल करे, फिर उस पर दूध डालकर टूँड़ी को बफारा दे। नाल पक जाने के लिये प्रसव के प्रकरण में जो प्रयोग लिखे हैं, वे भी काम में लाए जा सकते हैं।

खाल लग जाना

२—बालक की खाल, काँख, कोहनी, घोटू, रान या जाँघ में मैं चिपकी रहती है। यहाँ मैल जम जाने से गल जाती है, इसलिये उचित है कि कड़ुवा तेल नित्य लगा दिया करे।

दूध डालना

३—(क) थोड़ा पान खाने का चूना जरा-से पानी में घोलकर रख दे, जब वह नीचे बैठ जाय और पानी निथर आवे, तो उस पानी को दिन में कई बार पिलावे।

(ख) सेंधा नोन, आम की गुठली, धान की खील बारीक पीसकर शहद में चटावे।

दूध न पीना

४—पहले इसका कारण निश्चय कर ले। मंदाग्नि, अरुचि या दर्द के कारण भी बच्चा दूध नहीं पीता। उसी के अनुसार चिकित्सा करे।

हँसली जाना

५—यह हँसली एक हड्डी है, जो हँसली की भाँति दोनो कंधों से लगी हुई होती है, और गर्दन के आगे को होती है। बच्चे की गर्दन में हाथ न लगाने से या झटका लग जाने से यह उतर जाती है। इसी के बोझ (Ballence) को सम करने के लिये बच्चों को चाँदी की एक हँसली पहनी जाती है, जो बीच में मोटी तथा किनारों पर पतली होती है।

(क) किसी चतुर दाई से सुतवा दे।

(ख) गुंजा की माला पहनावे।

काग गिर जाना

६—यह गर्मी से होता है, बालक दूध पीना छोड़ देता है या पीकर तुरंत डाल देता है, रोता बहुत है, पर रोया नहीं जाता।

(क) चूल्हे की राख और काली मिरच पीसकर उँगली पर लगाकर उँगली से केवल तुराई से ऊपर को उठा दे।

(ख) गर्म वस्तु खाने को न दे। न उसकी दूध पिलानेवाली को खाने को दे। मुलतानी मिट्टी को सिरके में पीसकर तालुए पर लगा दे या माजूफल को पीसकर उँगली से लगाकर काग को उठा दे।

आँख दुखना

७—पहले-पहले तीन दिन तक कुछ उपाय न करे, नहीं तो उसका वेग भीतर ही रुककर कष्ट देगा।

(१) छोटे बच्चे की आँख दुखे, तो सरसों का तेल कान में डाल दे और तालुए पर भी मल दे।

(२) ५ रत्ती फिटकरी बारीक पीस १ तोला गुलाब-जल में घोल दे, उसकी दिन-भर में कई बूँद टपकावे।

(३) घीगुवार का गूदा, हल्दी, रसौत सब मिलाकर पैर के तलुओं में बाँध दे।

(४) अमचूर को लोहे पर घिसकर आँख के चारों ओर लेप कर दे।

(५) रसौत, फिटकरी बराबर और आधा भाग अफीम लेकर पानी में पीस गुनगुनी कर आँखों के ऊपर-नीचे पलकों पर लेप कर दे, पर आँख के भीतर न जाने दे।

खाँसी

८—यह बहुत ही बुरा रोग है, यह कई प्रकार से होता है।

धाँस—जो कभी-कभी सूखी, पर ज़ोर से उठे, उसका उपाय यह है—

(१) पौकरमूल, अतीस, पीपल, काकड़ासींगी सब बराबर सबको पीसकर शहद में चटावे।

(२) वंशलोचन पीस शहद में चटावे।

तर खाँसी

जिसमें कफ निकलता है और छाती या कौड़ी में दर्द होता है, उसका उपाय यह है—

(१) आक की मुँह बंद बौंडी गिनकर उतनी ही काली मिरच ले, पाँचो नमक दोनो के बराबर डाल एक कुल्हिया में रखकर कपरौटीकर आग में फूँक ले, इस राख को खाँसीवाले बालक को थोड़ी-थोड़ी चटावे।

(२) अनार की छाल, अजवायन, काली मिरच, प्रत्येक ३ मासा पान ८ अदद, पीसकर गोली बनाओ। खाँसी पर रामबाण है।

काली या कूकर खाँसी

यह बड़ा कष्ट देती है। बालक खाँसते-खाँसते वमन कर देता है। दूसरे बच्चे की छूत से भी हो जाती है। उपाय यह है—

(१) गोल मिरच का चूर्ण १ तो०, पीपल का चूर्ण ६ मा०, अनारदाने का चूर्ण ८ तो०, पुराना गुड़ १६ तो० और जवाखार १ तो० सब एकत्र कर मसलकर एकत्र कर सेवन करे। इससे अति दुस्साध्य कास जिसमें पीब और रुधिर भी आता हो, आराम हो जाता है।

सब खाँसी पर एक और उत्तम प्रयोग है—

लौंग १ छ०, बहेड़ा १ छ०, मिरच स्याह १ छ०, कत्था सबके बराबर घोटकर कीकर की छाल के काढे से चना-जैसी गोली बनाना। मुँह में डाले रखने से सब खाँसी पर गुण करती है।

धुएँ के कारण जो खाँस हो गई हो, तो तालु सुरसुराने से आराम होगा।

गले में गरद-गुबार चले जाने से जो खाँसी हो, तो छाती पर तिल का तेल मलने से या गला सहलाने से आराम होगा।

खुश्की से गले में फाँसे पड़ गई हों, तो बिहीदाने के लुआब में मिश्री मिलाकर पिलावे या शर्वते-शहतूत चटावे।

खाँसी, ज्वर और अतिसार साथ-साथ हों, तो यह उपाय करे—

काकड़ासींगी, पीपल, अतीस, मोथा पीसकर चटावे।

केवल खाँसी और ज्वर हो, तो सुहागा अधभुना सम भाग, काली मिर्च पीसकर घीगुवार के रस में चने बराबर गोली बनावे।

(२) बादाम की मींगी पानी में घिसकर पिलावे।

पेट चलना

यदि दाँतों के कारण हो, तो कुछ उपाय न करे। नहीं तो यह दवा दे—

(१) बेलगिरी, कत्था, धाय के फूल, बड़ी पीपल, लोध इनको पीसकर शहद में चटावे।

(२) सोंठ, अतीस, नागरमोथा, नेत्रबाला, इन्द्रजौ इनका काढा पिलावे।

यदि अतिसार के साथ ज्वर भी हो, तो नागरमोथा, अतीस, काकड़ासींगी, पीपल इनका चूर्ण शहद में चटावे। इसके साथ यदि प्यास भी हो, तो मोथा, सोंठ, अतीस, इन्द्रजौ, खस, इनका काढा दे।

आँव—(१)बायविडंग, अजमोद, पीपल महीन पीसकर ठंडे पानी से दे।

(२) सोंठ, अतीस, भुनी हींग, मोथा, कुड़े की छाल, चीता इनका चूर्ण गरम पानी के साथ दे।

रक्तातीसार—अर्थात् जब दस्त के साथ रक्त भी आवे, तो यह उपाय करे—(१)पाषाण-भेद, सोंठ पानी में घिसकर पिलावे।

(२) सफेद जीरा, कुड़े की छाल जल में पीसकर मिश्री मिलाकर दे।

(३) मोचरस, मजीठ, धाय के फूल, कमल के फूल इनको पीसकर साँठी चावलों के माँड में दे।

(४) आधी भुनी आधी कच्ची सौंफ में खाँड मिलाकर फंकी दे।

(५) सोंठ, अदरक या बेलगिरी का मुरब्बा खिलावे। अंत में आराम न हो, तो यह काढ़ा दे—

(६) कुडे की छाल, अतीस, वेलगिरि, नेत्रवाला, मोथा प्रत्येक ३-३ माशा काढ़ा करके पीवे।

अफरा हो तो (१) सेंधा नमक, सोंठ, इलायची बडी, भुनी हींग और भाँग महीन पीस-कर गरम पानी के संग पिलावे।

(२) हींग को भूनकर और पानी में पीसकर टूँडी के चारो ओर लेप कर दे।

कान बहना

(१) बालक की मा के दूध की धार उसके कान मे डाले।

(२) लोध पठानी बारीक पीसकर कान में डाल दे।

(३) मोटे सीप या कौडी की राख करके कान में डाल दे।

(४) सुदर्शन के पत्ते का रस गुनगुना करके कान में डाल दे।

(५) लौंग १ तोला, केशर ३ माशा, तेल चमेली १ छ०, आग पर चढावे, जब धुआँ उठने लगे, उतारकर शीशी में धरे। कान के सब रोग इससे दूर हो जाते हैं।

फुटकर रोग

गला आ जाना—शहतूत का शर्बत चटा दे, यह जितनी देर चटाया जायगा, उतना ही लाभ करेगा, पर थोडा-थोडा चटाया जावे।

कोहे आ जाना उसको कहते है, जिससे आँख की बाहरी कोर लाल पड जाती और दोनो आँखो की संधि कट जाती है। पीडा होवे, खुजली चले, घाव बढता ही जावे। इसका उपाय यह है कि (१) कपडे की पोटली-सी बनाकर हाथ पर रगडे अथवा मुँह की फूँक से गरम करके आँखों के उस भाग को सेंक दे।

(२) काजल में सफेदा रगड़कर और उँगलियों में भरकर दिए की लौ पर उँगलियों को तनिक सेंके और गर्म-गर्म ही आँखों मे आँज दे। ऐसा दो-तीन बार करने से आराम हो जायगा।

रोहे आ जाना—रोहे आ जाने से यदि आँखें बहुत सूज गई हो और तकलीफ हो, तो चाकसू (यह बीज पसारियो के यहाँ मिलते है) लेकर उबाल ले, उनके छिलके छील डाले, भीतर की मींगी निकालकर उसे पानी में घिसकर दो-तीन बार आँज दे। इससे फुसियाँ फूटकर लोहू निकल आवेगा, और आराम होगा।

तालुवा पक जाना या बैठ जाना—मुलतानी मिट्टी कई बार घिसकर दिन में कई बार तालुओ पर रक्खे।

अलाई या मरोरी—यह छोटी-छोटी लाल फुंसियाँ वर्षा-ऋतु मे हो जाती हैं। उपाय यह है कि मुलतानी मिट्टी घिसकर लगावे।

डुकाम—इस रोग में बच्चा पल-पल मे पानी माँगता है। उपाय यह है—

(१) छुहारे की गुठली घिसकर पिलावे या चने की दाल पानी में पीसकर खिलावे।
(२) जहरमोहरा खताई को पानी मे पीसकर पिला दे।

ज्वर

इस रोग मे किसी वैद्य की ही सम्मति लेना चाहिए। साधारण चिकित्सा यह है—

(१) कोष्ठ-बद्ध हो तो एरंड के तेल मे दस्त करावे। या काला दाना १ माशा, सोंठ ३ रत्ती का चूर्ण कर दोनो को गर्म पानी से फंकी करा दे। जब तक ज्वर रहे, दवा नही देना चाहिए, ज्वर हल्का होने पर दवा देना चाहिए।

(२) करज की मींगी १ तोला, काली मिरच ३ माशे पीसकर तुलसी के पत्ते के रस मे घोटकर उर्द बराबर गोली बनावे। सब प्रकार के ज्वर पर जादू का काम करती है—किसी विकार का डर नहीं।

(३) नीम की हरी-हरी सींक लेकर छिलका छील दे। २५ सींक और ७ काली मिरच डालकर पानी मे पीस ले। तीन दिन दोनो समय पीने से ज्वर अवश्य जाता रहता है, यह मात्रा बडे पुरुष की है, बच्चे को बुद्धि के अनुसार बहुत कम कर दे।

मुँह आना—(१) शीतलचीनी १ तोला, शोरा २ माशा पीसकर मुँह मे बुरकी देकर नीचे मुख करे और पानी टपकावे।

(२) शीतलचीनी, पपरिया कत्था पीसकर शहद में चटावे।

(३) केले की ओस चटावे।

(४) सफ़ेद छाले हो और मुँह लाल हो गया हो, तो पहले घुट्टी दें। फिर वशलोचन, पपरिया कत्था, छोटी इलायची के बीज बुरक दे।

(५) शहद मे भुना सुहागा पीसकर बुरक दे।

अध्याय छठा

स्नान-पद्धति

प्रकरण १

स्नान का स्वास्थ्य पर प्रभाव

स्नान के लाभो पर विचार करने से पहले यह बात समझ लेनी बहुत ज़रूरी है कि स्नान का सबसे ज्यादा प्रभाव चमडी पर और चमडी से सबध रखनेवाले पट्ठो पर ही पडता है। चमडी के विषय मे हम मोटी २ बाते पीछे बता चुके हैं, यहाँ कुछ ख़ास बातें और लिखते हैं।

अगर अँगूठे की खाल को ख़ुर्दबीन से देखा जाय, तो लकीरें ऐसी उभरी मालूम होगी, जैसी कि हल मे जुते हुए खेत की होती है। ध्यान मे देखने से यह भी मालूम होगा कि उसकी ऊँची सतह पर कही-कही गड्ढे है, इन्हीं को रोम-कूप कहते है। ये छेद ही पसीने की नालियो के मुँह हैं, और इन्हीं के जरिए से पसीना रिसता रहता है। ये रोम-कूप बिलकुल बारीक होते है। हम बता चुके है कि ऐसा अनुमान किया गया है कि एक वर्ग-इच मे लगभग २८०० रोम-कूप है। सारे शरीर में ये छेद लगभग २। करोड है।। ऊँची सतह छोटी-छोटी पहाडियों की तरह दीख पडती हैं। इन्हीं में स्पर्शेद्रिय है, इनकी गिनती भी रोम-कूपो के समान ही समझनी चाहिए। इनके भीतर या तो ख़ून की नालियो की पोटलियाँ या रगों के सिरे होते है। ये सिरे ३ प्रकार के है, जिन्हें सरलता से पहचाना जा सकता है। शरीर की बिल्कुल भीतरी तह से उपर्युक्त रोम-छिद्र और ये स्पर्श-शक्ति के केंद्र सबधित हैं।

ऊपर की खाल के नीचे की खाल में पसीने की नालियाँ होती है। इनकी शकल बिल्कुल महीन नालियो के गुच्छो के समान हैं, जिनका एक सिरा खाल में से होता हुआ रोम-कूपो तक आता हैं। ये नालियाँ यदि खोली जायँ, तो लगभग ३-४ इच होगी। तमाम शरीर की नालियो को यदि एक लाइन मे रक्खा जाय, तो उनकी लंबाई २८ मील होगी। यह ऊपर की तह में से चक्कर देती हुई भीतर की रतूबत को आसानी से बाहर ले आती हैं। चक्करदार होने से रतूबत भीतर नही लौट सकती। हरएक पसीने की नाली के समूह के ऊपर ख़ून की नसें होती हैं और उनके चारो तरफ पट्ठो की एक तह होती है, जो सिकुडने पर इन पर दबाव डालती हैं। इससे पसीने की नालियो का मवाद—मसाने की तरफ बाहर निकाल देती है।

बालो की जड भी पसीने की नालियों के गुच्छो की तरह अंदरूनी तह में है। यह थाने के समान होते है, जिनकी तह मे यह बाल उगते है। इनकी जडो के साथ-साथ नालियाँ होती हैं और यही नालियाँ स्वाभाविक रीति से हमारे बालो की चिकनाहट को ग्रहण करती है। ये नालियाँ अंगूर के गुच्छो के मानिंद होती है। बालो की जडो मे भी कुछ छोटे-छोटे पट्ठे होते है, जिनके सिकुडने मे बाल खडे हो जाते है। खाल के किसी-किसी हिस्सो मे ऐसी नालियों के समूह होते है, जो कि खास किस्म की दुर्गंध निकालते हैं। ये बगल और उँगलियो के बीच मे बहुत होते हैं। खाल और उसके ठीक नीचे ऐसी नालियाँ होती है, जिनका काम जिस्म के रग-पुट्ठो में से मल निकालने का है। ये नालियाँ सब उसी नालियो के समूह की तरफ़ जाती है, जो कि जबडे और गर्दन के निकट दीख पडते है, ये ही शरीर के तमाम अग मे फैले होते है। खाल के किसी-किसी भाग के विशेष अवयव होते है। इनमे रग देनेवाला एक पदार्थ होता है।

मतलब यह कि चमडी जो कि प्रकट मे सफाचट झिल्ली दीखती है, वास्तव मे एक बडा पेचीला और पूर्णांग अवयव है। जिसमें बहुत-सी ख़ून की नालियाँ और रगें, जिनके साथ पसीने के रोम-कूपो के छोर और स्पर्शेंद्रिय के छोर आदि लगे हुए है।

चमडो के लाभ

१—नीचे की नर्म चमडी की रक्षा करना।

२—शरीर की गर्मी को ठीक रखना।

३—स्वाभाविक गर्मी को अकस्मात् नष्ट हो जाने से बचाना।

४—पसीने को भाफ बनाकर बाहर फेकना, जिससे शरीर बेहद गर्म न हो जाय।

५—शरीर मे विजातीय और दूपित पदार्थों को निकालना।

हम बता चुके है, कि जो पसीना निकलकर चमडी पर आ जाता है, और उसके साथ बहुत-से गदे, विषैले पदार्थ भी आ जाते है, उन्हें हम स्नान करके दूर कर सकते है। पसीना सदा एक-सा नहीं आता। कभी तो बिलकुल नहीं आता और कभी-कभी इतना आता है कि शरीर तर हो जाता है। इसमे सदेह नहीं कि स्वास्थ्य-रक्षा के लिये पसीना निकलना आवश्यक है। और यह हर कोई जानता है कि पसीना रोकने से भयकर रोग पैदा हो जाते हैं।

छोटे-छोटे जानवरो पर अनुभव करके देखा गया है कि अगर चमडे को बिलकुल साफ करके ऐसा रोगन मल दिया जाय कि पसीने के रोम-कूप् बद हो जायँ, तो वे शीघ्र मर जाते है। पसीने के निकलने को शरीर के द्वारा साँस लेना भी कहा जाता है। उन दूपित पदार्थों को शरीर मे रोकने से मृत्यु आती है, जिन्हें रक्त से इस प्रकार निकाल देने का प्रबध प्रकृति ने किया है। इन हालतो मे मालूम हुआ है, कि मृत्यु सर्दी ही लगने से होती है। और यह भी अनुभव किया गया है कि इन जानवरो को किसी ऊन मे लपेटकर रक्खो, तो वे देर तक जिंदा रह सकते है। कभी-कभी चमडी अकस्मात् जलने या चर्म-रोग से ख़राब हो जाती है।

ऐसे मौके पर देखा गया है कि चाहे अंग बहुत गहरा न जला हो, परंतु यदि चमडी ऊपर से ज्यादा जल गई है, तो वह अवश्य प्राण-नाशक है।

खून की नालियाँ

भिन्न-भिन्न रूप और आकृति की होती हैं। शरीर का लाल या पीला होना इन्हीं नालियों पर निर्भर है। लज्जा के कारण चेहरा लाल हो जाता है, यह सब जानते हैं। इसका मतलब यह है कि तबियत के जोश से न केवल पसीना ही अधिक होता है, किंतु चमडी और इन रक्त की नालियो पर भी उसका प्रभाव पडता है। चमडी और इन नसों का संबंध कभी नहीं भूलना चाहिए। ज्वरों में ख़ासकर चेचक-ज्वर में चमडी की ओर से ख़ून की नालियाँ बडी हो जाती हैं। राई लेप करने से या चाबुक मारने से भी बडी हो जाती हैं, भय के कारण या देर तक ठंडा रहने से ये सिकुड जाती हैं। रगें ही सिर्फ खाल पर प्रभाव नहीं डालती हैं, बल्कि खाल भी इन पर बडा असर डालती है, चमडी की स्पर्शेंद्रिय पर गौर करने से यह बात समझ में आवेगी, पैरो में यदि गुदगुदी की जाय, तो टाँगें ज़ोर से हिलती हैं। इसी तरह बगल या पसलियो के पास गुदगुदी की जाय, तो बडी जोर से हँसी निकल पडती है। इसका मतलब यह है कि गुदगुदी से उन रगो पर प्रभाव होता है, जो सीधी मस्तिष्क के ज्ञान-तंतुओं से टकराकर पठ्ठो की तरफ दौडती हैं, इसी से टाँग का हिलना और हँसी उत्पन्न होती है।

यदि शरीर को एका-एक ठडे पानी में डाल दें, तो इसका नतीजा यह होगा कि शरीर मे कँपकँपी छुट जायगी या दाँत कटकटाने लगेंगे। और यदि ठडा पानी माथे या छाती पर डाला जाय, तब गहरी साँस आने लगती है या दम घुटता-सा मालूम होता है।

रगो और चमडी का परस्पर संबंध इससे बहुत कुछ समझ मे आ जायगा। यह प्रभाव न केवल सर्दी से ही होता है, परंतु कभी-कभी चिंता, भय, क्रोध आदि मे भी ऐसा ही होता है। इन सबका मतलब यह है कि चमडी आदमी के शरीर की रक्षा करने, मवाद निकालने और रगो के अवयव होने का काम करती है।

चमडी में यह बहुत बड़ी विशेषता है कि इसमें सुखाने की बहुत बडी शक्ति है। सुखाने का मतलब है—बाहरी वस्तुओ को जज़्ब करके शरीर के भीतर पहुँचाना।

यह मालूम नहीं हुआ है कि खाल यदि कहीं से फट जाय, तो यह शक्ति और भी बढ़ जाती है या नहीं। पारे का मरहम या बेलाडोना यदि ज़रा भी मला जाय, तो शरीर मे घुस जाता है। पीछे कहा गया है कि पसीने की नालियाँ चक्कर खाती हुई खाल मे से गुजरती है, उनके मुँह ऊपर खाल मे खुले हुए हैं, यही कारण है कि जो चीज़ चमडी पर मालिश की जाती है, एकदम सोख्ता हो जाती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि कर्बनद्विओषित और ओषजन गैस खाल में से शरीर मे घुसते हैं, पर यह निश्चय नहीं कि पानी भी घुसता है या नहीं। इसका तजुर्बा इस तरह किया

गया है कि बदन को पहले बडी देर तक पानी मे रख कर तोला गया मगर वज़न नही बढा। मल्लाह लोग जो जहाज़ से समुद्र मे गिर पडते है अपने बदन या कपडे पानी में भिगोकर प्यास कम कर लेते हैं, परंतु इसका दूसरा कारण रखती है, कि खाल मे बुखारात नही बनते क्योकि खाल ठडी रहती है।

उचित यही मालूम होता है कि हम अभी यही समझें कि शरीर में पानी या तो घुसता ही नही और घुसता भी है तो इतना कम कि जिसका कुछ विचार ही नही किया जा सका। समुद्र का पानी यदि शरीर मे घुस जाता तो समुद्र-स्नान बेशक हानि कर वस्तु होती।

स्नान से शरीर की उष्णता ठीक होती है, इसके ज़रिए हम अपने शरीर को चाहे जितनी उष्णता अधिक दे सकते है। गर्म और ठडे पानी से नहाने के लाभों को बताने के प्रथम यह आवश्यक है कि शरीर की स्वाभाविक गर्मी और वास्तविकता मालूम करे। शरीर की स्वाभाविक गर्मी यदि थर्मामेटर मे देखी जाय तो ९८-९९ फारन हीट है। और यह गर्मी हर हालत में रहनी जरूरी है। सर्द जगह मे शरीर इस गर्मी को ठीक-ठीक कायम रख सकता है। गर्म देशो में कुछ कम गर्मी रहती है। यह सब से गभीर बात है कि शरीर मे गर्मी सर्दी को ठीक रखने की ताकत स्वभाविक है। शरीर मे भोजन के पकने से उसी तरह गर्मी उत्पन्न होती है। जैसे कि कोयले जलने से गर्मी पैदा होती है। यह गर्मी भोजन की मात्रा, व्यायाम, और शक्ति पर निर्भर है। रक्त सबसे ज्यादा चुस्त चीज़ है इसके कारण तमाम शरीर मे एक-सी हरारत बनी रहती है। रक्त की गर्मी शरीर के अवयवों मे, हृदय मे, मस्तिष्क मे उत्तम असर रखती है, कभी-कभी शरीर की गर्मी बेहद कम या ज्यादा हो जाती है। जिसका कारण ठीक-ठीक मालूम नहीं होता। शरीर की गर्मी जिस पर कि जीवन निर्भर है, यदि ७६ फारनहीट हो जाय या १०९ फा०ही० हो जाय तो तत्काल मृत्यु हो जाती है।

ठंडे पानी से नहाने का फौरन् असर यह होता है कि शरीर बहुत ठडा हो जाता है। इसी के साथ चमडी पीली पड जाती है, अर्थात रक्त उलट कर चक्कर खाता है। पर थोडी सी देर में ख़ून लौटता है और फेफडों से ज्यादा कर्बन निकलता है। इस से स्वास और नब्ज की गति तेज़ हो जाती है। और ठड के प्रभाव अनुभव करने की अचानक शक्ति उत्पन्न हो जाती है। साथ ही एक हलकी सी उत्तेजना मस्तिष्क में उत्पन्न होती है। स्नान को कुछ देर तक जारी रक्खा जाय, तो स्वास और नब्ज़ दोनो धीमे-धीमे चलने लगते है। पर ज्यो ही स्नान बद किया गया, चमडी के नीचे की रगें फैलने लगती है। ख़ून मे गर्मी और तबियत में आराम मालूम होने लगता है। यह उल्टा असर उस समय शीघ्र दीख पडता है, जब कि स्नान बहुत थोडी देर किया गया हो। स्नान जितना शीघ्र होगा, उतनी ही रक्त की गर्मी की कमी कम होगी। गर्म पानी के साथ नहाने का यह असर है कि वह शरीर की त्वचा और रक्त की गर्मी तथा नब्ज और साँस की गति को बढाता है। इससे फेफडो से कर्बन-द्विओपित ज्यादा निकलता है। चमडी की ख़ूनवाली नसें फैल जाती है। त्वचा पानी की

गर्मी के कारण नाश हो जाती है। सम्पूर्ण गर्म पानी का स्नान ठंडे पानी की अपेक्षा देर तक रहना चाहिए, परन्तु यदि पानी बहुत गर्म है और स्नान देर तक चलता रहेगा, तो कमजोरी होने का भय है। गर्म पानी से नहाने के बाद खाल ज्यादा नाजुक और सर्दी-गर्मी को पकड़नेवाली हो जाती है। और रगें भी फौरन् सर्दी को पकड़ लेती हैं। इस हालत में भीतर खून में एक भयंकर जमाव उत्पन्न होता है। पर यदि चमड़ी सुरक्षित रक्खी जाय और रोगी को कमरे में रक्खा जाय या बिस्तरे पर लिटा दिया जाय, तो बहुत ज्यादा पसीना आएगा। ठंडे स्नान से जोड़ कठोर हो जाते हैं। परंतु गर्म स्नान से कड़े और थके हुए जोड़ नरम हो जाते हैं। तमाम दिन कड़ी मेहनत के बाद यदि गर्म स्नान किया जाय, तो बहुत गुणकारी प्रमाणित होगा।

प्रकरण २

स्नान के प्रकार

साधारण स्नान

गुनगुने पानी के स्नान की तापोष्मा ८५ से ९२ तक होती है। गर्म जल के स्नान की ९२ से ९८ तक और तेज़ गर्म जल के स्नान की ९८ से ११२ तक होती है। ठंडे जल के स्नान की ६० से ७५ तक और बहुत ही शीतल जल के स्नान की ६० से नीचे ही रहती है।

स्नान के लिये साधारणतया ठंडा या गर्म जल काम मे लाया जाता है। प्राय. गर्मी मे ठंडा और सर्दी में गर्म। रोगी या नाज़ुक-मिज़ाज लोग प्राय सदैव गर्म पानी मे स्नान करते है। परंतु गाँवों और छोटे कस्बों के रहनेवाले, क्या सर्दी क्या गर्मी, हमेशा ताज़े पानी से कुएँ पर स्नान करते है। कुएँ पर या नदी अथवा तालाब के किनारे स्नान करना हिंदू लोग एक अतिशय आवश्यक दैनिक कार्य मानते है।

नवीन वैज्ञानिकों ने जल की उत्तेजना-शक्ति बढाने के अनेको उपाय सोचे है। इन उपायो को दृष्टि में रखकर स्नान करने से स्नान के गुणों का ठीक-ठीक प्रभाव शरीर पर पडता है। विद्वानों की राय में वह स्नान अत्युत्तम है, जिसमे शरीर पानी में डूबा रहे और शरीर पर पानी तैरता रहे। जहाँ नदी-तालाब नही है, वहाँ इस पद्धति के अनुसार स्नान की इच्छावाले टब में पानी भरकर और उसमें बैठकर स्नान कर सकते है। टब में बैठकर स्नान करने की रीति बडी तेज़ी से देश में प्रचलित हो रही है।

तैरने का स्नान

इसका बिल्कुल विपरीत प्रकार दूसरा यह है कि पानी पर स्नान करनेवाला ख़ूब तैरता रहे। इस प्रकार के नदी या तालाबों मे तैरने के स्नानो में स्नान के तो गुण है ही, साथ ही अत्यत उत्कृष्ट प्रकार के व्यायाम के भी गुण शरीर पर होते है। इसके सिवा और एक गंभीर उत्तम परिणाम शरीर पर होता है, वह यह है कि शरीर की सतह पर पानी की लहरो की निरंतर थपकियाँ पडने से शरीर की गर्मी व्यवस्थित होती है, और चमडी को बहुत ही उत्ते-जन मिलता है।

तैरकर स्नान करना स्नान का सर्वोत्तम प्रकार है। हाथ-पैरो की इससे अच्छी कसरत और हो ही नही सकती। तैरना उच्च कोटि का व्यायाम है। क्योंकि इसमे भुजाएँ लगातार टाँगो के साथ काम करती रहती है और छाती की नसो और फेफडो पर भरपूर जोर पडता है। गहरा श्वास आता है। किसी भी अच्छे तैराक को आप देखिए, उसकी छाती को आप ख़ूब चौडी पावेगे।

फव्वारे और नल का स्नान

कुछ लोग सिर पर पानी की मोटी धार ऊपर से डालना पसंद करते है। पर अनुभव से देखा गया है कि वह कुछ लाभदायक नही है। देर तक यदि ऐसा किया जाय, तो इससे बेहोशी हो जाती और दिमाग सुन्न हो जाता है। यह रीति बहुधा पागलो के मिज़ाज को ठीक करने के काम में लाई जाती है। अलबत्ता आपका कोई नौकर चोरी करे या धोखा दे, तो आप उसके सिर पर नल की मोटी धार गिराइएगा। आप देखेगे कि यह उसका कैसा बढिया इलाज है, और वह शीघ्र ही घबराकर अपना अपराध कबूल कर लेगा। मार-पीट या धमकी देने की अपेक्षा यह ढग खास तौर से निर्दोष और आरामदायक है।

बहुधा बालो के शौकीन देर तक सिर पर ठडे पानी की धारा डालते रहते हैं, और देर तक सिर को मलते रहते हैं। ऐसे लोगों को तत्काल ही इसका फल मिलता जाता है, और सर्दी-जुकाम मे जकड जाते हैं। कुछ लोग फव्वारे के स्नान के शौकीन होते हैं। नल की मोटी धारा को एक जालीदार चीज़ मे डालते हैं, जिससे एक धारा की हज़ार धाराएँ बन जाती है। तंदुरुस्त व्यक्ति के लिये यह स्नान उत्तम है, पर यदि कोई कमज़ोर आदमी हो, तो उसे होशियारी से यह स्नान करना चाहिए।

सुई-स्नान

स्नान का एक और नया ढग है। इसे अँगरेज़ी मे 'सुई-स्नान' (Needle Bath) कहते है। स्नान करनेवाला एक गोल लंबी खोखली नली में, जिसमें चारो ओर बारीक-बारीक छेद होते हैं, खडा कर दिया जाता है। उन छेदो से पानी की अनेक धाराएँ एक साथ शरीर मे तेजी से लगती है। ये पानी की पतली, सीधी और नुकीली धाराएँ शरीर में काँटे की तरह चुभती हैं। इस स्नान से शरीर में बहुत फुर्ती और बल आता है।

वर्षा-स्नान

वर्षा-स्नान मे बहुत ही अधिक ऊँचाई से शरीर पर पानी की बूँदे पडती है। इसमें स्नान करना साधारण बात है।

आर्द्रपट-स्नान

भीगे हुए कपडे से शरीर को लपेट रखना भी स्नान का एक प्रकार है। अर्थात् पानी की तरी शरीर को पहुँचाने का जो काम स्नान करता है, वही इससे होता है। परंतु वास्तव में इस पद्धति मे शक्ति और फुर्ती देने की शक्ति बहुत ही कम है। इससे मात्र शरीर को फुर्ती ही पहुँच सकती है। कपडे को चाहे गर्म पानी से भिगोकर लपेटो, चाहे ठडे से, दोनो मे कुछ ज्यादा फर्क नहीं पडता। क्योंकि शरीर की गर्मी और कपडे की गर्मी बहुत शीघ्र एक-सी हो जाती है। यदि कपडा गर्म पानी से तर है, तो शीघ्र ही उसका पानी भाफ बनकर उड जाता है। अगर किसी आदमी को बहुत ही ठडक की ज़रूरत है, तो उसे इस पद्धति को इस प्रकार से काम मे लाना चाहिए कि रोगी को बिल्कुल नगा कर देना चाहिए। और

एक खाट पर, जिस पर एक कबल और एक चादर बिछी हो, लिटा देना चाहिए। कबल और चादर के बीच मे एक मोमजामे का टुकडा बिछा देना चाहिए, जिससे कबल खराब न हो। चादर पानी मे तर हो। ऊपर भी भीगी चादर उढा देनी चाहिए। यदि रोगी को बहुत ही ठडक दरकार हो, तो ऊपर की चादर इस ढग से उढानी चाहिए कि हवा सीधी उसके शरीर को लगे। और यदि चमडी को कुछ गर्मी या उत्तेजना पहुँचानी हो, तो एक-दो कबल उस पर डाल देने चाहिए।

वाष्प-स्नान

भाफ का स्नान एक खास स्नान है। इसके गुण भी असाधारण है। शरीर को गर्म रखने, रक्त के ठीक-ठीक सचालित होने और अनेक स्नायु-रोगो के लिये भाफ का स्नान उत्कृष्ट स्नान है। सर्वत्र जगत में स्वाभाविक वाष्प स्नान भी देखे जाते है। अगर रोगी बैठ सकने की शक्ति रखता है, तो भाफ का स्नान अत्यत सरल है। स्नान करनेवाले के सिर और छाती को भाफ से बचाया भी जा सकता है, अगर चिकित्सक की राय हो। अगर रोगी बैठ नही सकता, तो चारपाई पर भी यह स्नान हो सकता है। छोटी बुनी खाट पर बिना कुछ बिछाए नगा करके रोगी को लिटा दो, और चोडे मुँह के दो बर्तनो में पानी गर्म करके, जब वह खौलने लगे, चारपाई के नीचे रख दो। बर्तनो का मुँह थाल से ढक दो। रोगी के ऊपर २—३ कबल इस तरह उढा दो कि धरती तक लटकते रहे, जिससे हवा बद हो जाय। यह क्रिया बद कमरे मे ही करनी चाहिए। जितनी भाफ की जरूरत हो या रोगी सहन कर सके, उतनी भाफ देने के लिये अदाज से थालो को सरकाना चाहिए।

भाफ का स्नान अत्यत गर्म है। इसका उत्ताप १२०F से १५०F तक होता है। इस प्रकार जब वाष्प-स्नान से शरीर अत्यत गर्म हो जाता है, तब शरीर की स्वाभाविक शीत ग्रहण करने की शक्ति रुक जाती है। और इस प्रकार जब शरीर १०४ डिग्री तक उत्तप्त हो जाता है, तब उत्ताप की इस वृद्धि के कारण चमडी पर रक्तवाहिनी और स्वेद-वाहिनी नालियों द्वारा एक विशेष प्रभाव पडता है। भाफ का स्नान बहुत ही सरल और बेहतर स्नान है। आवश्यकता पडने पर एक ही अग-प्रत्यग को, जैसे हाथ, पैर, गर्दन और छाती को, बडी आसानी से भाफ लगाई जा सकती है। रूस मे भाफ के स्नान का एक यह तरीका है कि प्रथम तेज, गर्म भाफ का स्नान कराते है, फिर उसके बाद तत्काल ही ठडे जल की धारा छोडते है।

वायु का स्नान

यह वह स्नान है, जिसमे हम सदैव नहाते रहते है। उस समय को छोडकर जब कि हम पानी मे बैठे या खडे हों, हर समय हम वायु के समुद्र मे डूबे रहते है। ठडी हवा में खुले शरीर फिरना अत्यंत गुणकारी है। आपने अनेक महात्मा और साधुओ को नगे शरीर सर्दी के दिनो मे फिरते देखा होगा, उनके शरीर भी अत्यंत पुष्ट, शीशे के माफिक चमकदार

दीख पड़ते हैं। वैज्ञानिक रीति से यह बात प्रमाणित हो गई है कि ठंडी खुली हवा में देर तक नंगा रहने से चमड़ी बहुत साफ़ और पुष्ट होती है।

टरकिश स्नान

जब बादशाही ठाट का दौरदौरा था, तब यह स्नान-पद्धति भारत में प्रचलित हुई, और अब भी भारत के पुराने शाही शहरों में देखी जाती है। दिल्ली में शाही ज़माने के कई ऐसे स्नान-घर हैं, जो ३०-३५ हज़ार रु० से कम लागत के नहीं हैं। यहाँ स्नान बिलकुल उसी पद्धति से होते हैं। दिल्ली के टरकिश स्नान-घरों में आप यदि स्नान करना चाहें, तो आपको एक बार स्नान करने के लिये ७) या ११) रुपया देना पड़ेगा। ये स्नान करानेवाले, जो वंश-परंपरा से सिर्फ़ स्नान कराने का ही काम करते आए हैं, इस कार्य में अत्यंत प्रवीण हैं और अद्भुत सफ़ाई दिखाते हैं।

आप जब स्नान की इच्छा प्रकट करेंगे, तो आपको एक सुरक्षित स्थान में ले जाया जायगा। वहाँ आपकी जूती, कपड़े उतार लिए जायँगे। और एक लँगोटी या अँगौछा आपकी कमर में बाँध दिया जायगा। फिर आप एक कमरे में पहुँचाए जायँगे, जहाँ हवा नहीं पहुँचेगी। चारों तरफ़ से घिरा रहेगा। कमरा पुराने ढंग का संगमरमर का बना होगा। वहाँ की एकांतता, शीतलता और शांति चित्त को शांत कर देगी। इस कमरे में संगमरमर का एक छोटा-सा हौज़ स्वच्छ जल से भरा हुआ है, जिसमें दूसरी जगह से फव्वारा छूटकर गिर रहा है। इस फव्वारे की धाराएँ बहुत बारीक होंगी। अगर कोई इस हौज़ में घुसकर स्नान करे, तो उसे वही मज़ा आएगा, जैसा किसी उत्तम नदी में बैठकर बरसात की नन्हीं-नन्हीं फुआरों के स्नान में आता है। इस कमरे के चारों तरफ़ कई कमरे हैं, जिनमें वस्त्र बदलने आदि का बंदोबस्त है।

इसके आगे एक गोल कमरा आता है, जिसकी छत गुम्मजदार है। उसका फ़र्श सफ़ेद संगमरमर का है, और दीवारों पर टाइल लगी है। इस कमरे में छत की तरफ़ काँच की झिलमिली लगी है, जिससे कमरे में ख़ूब रोशनी है। इस कमरे में ख़ूब भाफ भरी है, जो खोखली दीवारों में से होकर गर्म पानी करने से आ रही है। इस कमरे का ताप-क्रम १२०° से १५० F तक होता है। आप यहाँ नंगे आकर ज़रा बैठिए, या कोई पुस्तक पढ़िए, या कमरे को ही बैठे-बैठे देखकर आनंद मनाइए। थोड़ी देर में ख़ूब पसीना आवेगा। जब तक पसीना न आवे, आपको यहीं बैठे रहना पड़ेगा। अगर पसीना खुलकर न आवे या धीरे-धीरे आवे, तो एक घूँट ठंडा पानी पीने से पसीना ख़ूब आएगा। पसीना यदि धीरे-धीरे आया, तो कमरे की गर्मी में कुछ बेचैनी मालूम होगी, चमड़ी जलने लगेगी, दिल की धड़कन बढ़ जायगी, सिर में दर्द होने लगेगा, पानी के एक घूँट से यह असर होता है कि सारे शरीर में तरी हो जाती है, और पसीना ठीक-ठीक आने लगता है।

जब इस कमरे की गर्मी आपको सहन हो जायगी, तब आप वैसे ही एक दूसरे कमरे में

पहुँचाए जायँगे, परन्तु यह कमरा उससे कुछ ज्यादा गर्म होगा। इसके बाद एक तीसरे कमरे में आप ले जाए जायँगे जो उससे भी अधिक गर्म होगा। इस कमरे का ताप-क्रम १५०° से २१० F तक होता है। इस कमरे में मोटे चमड़े का स्लीपर पैर में पहनना पड़ेगा, वरना पैर गर्म पत्थर की तेज़ी से जलने लगेंगे। यहाँ थोड़ी ही देर रहने से पसीना शरीर से बहने लगेगा। जब खूब पसीना बहने लगेगा, तब आप फिर उसी बीचवाले गुम्मजदार कमरे में आवेंगे, और आपको नंगा होकर फ़र्श पर लेट जाना पड़ेगा। एक आदमी आकर आपको खूब मूँदेगा और गर्म पानी आपकी एड़ी से शुरू करके गर्दन तक उलीचा जायगा। फिर चित लिटाकर उसी प्रकार आप पर पानी डाला जायगा। पीछे साबुन और गर्म पानी से खूब मल-मलकर आपके शरीर को साफ़ किया जायगा। इसके बाद घोड़े के बालों के दस्ताने से आपकी चमड़ी को रगड़-रगड़कर धोया जायगा।

इसके बाद और एक दूसरा आदमी आएगा। दोनों आमने-सामने लँगोट कसकर खड़े होंगे। एक आपकी दाहनी टाँग उठाएगा, दूसरा बाईं बाँह। फिर वे एक अजब तेज़ी से फटपट सारे शरीर की नस-नस को तोड़-मरोड़ करना और फटाफट करना शुरू करेंगे। लगभग ३० मिनट यह मलाई-दलाई होगी। हल्का तेल का हाथ कभी-कभी चुपड़ा जायगा। शरीर की नस-नस खुल जायगी।

अंत में इस क्रिया को ठंडे पानी द्वारा खत्म किया जायगा। या तो ठंडे पानी का फ़व्वारा आप पर छोड़ दिया जायगा या आपको उस ठंडे पानी के हौज़ में ग़ोता दिया जायगा। इसके बाद शरीर सूखे वस्त्र से पोंछकर, सूखे कपड़े पहनाकर, आध घंटा विश्राम करने का अवकाश मिलेगा। इस बीच में आप एकाध प्याला काफ़ी या चाय अथवा एकाध सिगरेट पी सकते या अख़बार पढ़ सकते हैं।

नीरोग शरीर में यह स्नान साल में ३-४ बार से ज़्यादा नहीं करना चाहिए। यह एक असाधारण स्नान है, इससे शरीर की नस-नस पर असर होता है। यदि स्नान के पीछे सिर-दर्द होने लगे या कुछ कमज़ोरी और सुस्ती आने लगे अथवा भूख लग आवे, तो समझिए कि स्नान खूब तेज़ हुआ है और उसका प्रभाव शरीर के भीतरी अंगों पर खूब गहरा हुआ है। इस प्रकार के स्नानों में सबसे कड़ा स्नान वह है, जिसमें सबसे ज्यादा गर्म कमरे में खूब देर तक ठहरा जाय और अंत में ठंडे फ़व्वारे में अच्छी तरह बैठा जाय। उससे उतरकर वह स्नान है कि बीच के कमरे में जिसकी गर्मी १५० F के क़रीब होती है, पसीना लेकर पीछे ठंडे हौज़ में गोता लगाया जाय। जो लोग पहले-ही-पहल यह स्नान करें, वे इसी बीच के दर्जेवाले स्नान को करें।

क्षार-स्नान

पाश्चात्य सभ्यता ने स्नान का एक और प्रकार निकाला है। यह स्नान उस पानी में होता है, जिसमें या तो कुछ खनिज पदार्थ क्षार आदि कुदरती मिले होते हैं या मिला दिए जा

है। यह बात जान लेना चाहिए कि साधारण कुएँ आदि का पानी बिल्कुल निर्मल नहीं होता। इन सबमें सिर्फ़ बरसात का पानी सबसे निर्मल है। पर फिर भी उसमें कुछ-न-कुछ क्षार मिले ही होते है। चश्मे और नदी के पानी में ये पदार्थ बहुतायत से मिले-घुले रहते है। सबसे ज्यादा क्षार-युक्त जल समुद्र का होता है। समुद्र-जल की परीक्षा इस प्रकार हो सकती है कि समुद्र-जल का गुरुत्व (Specific gravity) १,०२७ है, उसमें ३½ या ४ प्रति सैकड़ा क्षार घुला हुआ होता है। काला सागर और बाल्टिक समुद्र में कुछ कम और रूम के समुद्र (Mediterrancea) में कुछ ज्यादा है। इँगलिश कैनाल के जल की एक बार वैज्ञानिक जाँच की गई थी, जिसका नतीजा यह निकला था—

पानी	९६३ ८
नमक	२८ ०
क्लोराइड आफ़ पोटास	० ८
क्लोराइड ऑफ़् मेग्नेसियम	४ ०
सल्फ़ेट ऑफ़् मेग्नेसियम	२ ०
सल्फ़ेट ऑफ़्लाइम	१ ४
	———
	१,००० ०
ब्रोमाइड ऑफ़् मेग्नेसिया, कारबोनेट ऑफ़् लाइम, आइडिनस, यमोनिया, ओक्साइड ऑफ़् आइरन	साधारण

समुद्र-स्नान एक प्रसिद्ध स्वाभाविक स्नान है, और निस्संदेह नदी या चश्मे के स्नान की बनिस्बत बहुत अच्छा है। समुद्र के पानी में एक यह खासियत है कि वह चश्मे या नदी के पानी से कम ठंडा होता है। उसमें सबसे अधिक सुबीते है, और वह खूब खुली हवा में किया जा सकता है। समुद्र-स्नान के विषय में वायु की स्वच्छता विशेष महत्त्व-पूर्ण बात है। समुद्र-स्नान के समय समुद्र-जल का जो अंश मुख में जाता है, उससे बहुत लाभ होता है। पानी की हरकत और लहरों की टक्करें चमड़ी पर बहुत अच्छा असर पैदा करती है। खासकर पानी का खार अच्छा असर करता है। नदी-स्नान की अपेक्षा समुद्र-स्नान से स्नायविक उत्तेजना तत्काल बढ़ती है। साथ ही समुद्र-स्नान से कभी ज़ुकाम नहीं होता। समुद्र के सिवा और भी कई स्थानों पर नमकीन पानी की झीलें हैं, जैसे साम्हर आदि। इन सब स्थानों का जल स्वास्थ्यप्रद और बलदायक है। योरप और खासकर जर्मनी में समुद्र-स्नान का अत्यंत आदर है।

सोतों का स्नान

कहीं-कहीं कुदरती सोते धरती से निकलते हैं। इनमें अनेकों प्रकार के क्षार पदार्थ मिले रहते हैं। इनमें स्नान करना अत्यधिक लाभदायक है।

इनमें से कुछ सोते गर्म पानी के होते हैं, जिनमें स्नान करना अत्यत स्वास्थ्यप्रद होता है। कुछ का जल तो अत्यत गर्म और मीठा होता है। पर इन चश्मों के जिन जलों में कार्बोनेट ऑफ सोडा मिला रहता है, उनका पानी स्नान की अपेक्षा पीने में अधिक गुणकारी होता है। 'कास्टिक' क्षार, जो इन जलों में बहुतायत से होता है, चमड़ी को नर्म करता और रोम-कूपों को विशुद्ध करता है। जिन सोतों के पानी में दस्त साफ-लाने की तीक्ष्ण शक्तिवाले क्षार (जैसे Epsom Salt or Lallber's Salt) मिले रहते हैं, उनकी बहुत कदर होती है। चमड़ी पर इन क्षारों का बहुत उत्तम प्रभाव पड़ता है। परतु जिन जलों में लोहे का मिलाप होता है, वे स्नान के योग्य नहीं होते, उनमें स्नान करने से कुछ भी लाभ नहीं होता।

आप यदि एक चश्मे का मामूली पानी एक काँच के गिलास में भरें, तो आप देखेंगे, उसमें छोटे-छोटे बुद्बुदे उठकर गिलास के किनारों पर इकट्ठे हो गए हैं। ये बुद्बुदे गैसों से उत्पन्न होते हैं, जो कि पानी में कुदरती मिले होते हैं, और जिनके कारण चश्मों का पानी अत्यत स्वास्थ्यप्रद और चमड़ी तथा रोम-कूपों पर उत्तम प्रभाव डालनेवाला हो जाता है।

इन बुद्बुदों का प्रभाव समझना सहज-सी बात है। इनसे जल में एक प्रभाव उत्पन्न हो जाता है, जो चमड़ी पर छूते ही गुदगुदी के तौर पर मालूम होता है। ये गैसें सिर्फ़ ठंडे पानी में ही होती हैं। पानी गर्म करने से उनमें से निकल जाती हैं, परंतु गुनगुना करने में कोई हानि नहीं होती। ९० F से ९४ F तक गर्म पानी में गैस रह जाती है।

वैज्ञानिक स्नान

शौकीन लोग जो बिल्कुल वैज्ञानिक स्नान करना पसद करें, ऐसा कर सकते हैं कि एक बर्तन में गोल नली तोड़-मरोड़कर लगाकर उसे ठडे जल से भर दें, और गर्म पानी जो उन नलियों में होकर आवेगा, स्नान के योग्य सुहाता गर्म होगा। यह रीति गलत है कि नहाने के लिये पहले पानी को ख़ूब तेज गर्म किया जाय और पीछे धीरे-धीरे ठडा होने को रक्खा जाय। इस पानी में ज़रा भी गैस नहीं रहती। गैस-स्नान का लाभ भी ऐसे जल के स्नान में नहीं मिल सकता। गैस-युक्त जल यदि तालाब या टंकियों में देर तक रक्खे रहने दिए जायँ, तो उनमें से गैस बिल्कुल उड़ जायगी। यह बात बिल्कुल गलत है कि 'नत्रजन' गैस या कर्बन-ओषित गैस जो पानी में मिली होती है, चमड़ी में जज्ब हो जाती है। इन गैसों से मिले हुए जलों में स्नान करने से सिर्फ़ चमड़ी को लाभ और रोम-कूपों की शुद्धि होती है। यदि (कर्बन-ओषित) गैस को बहुत दबाव से चमड़ी में जज्ब ही कर दिया जाय, तो उसका असर ज़हरीला पैदा होगा। ऐसे जलों के स्नान में सिर को बचाए रखने की साव-

धानी रहनी चाहिए। यदि ऐसे जलों की धारा या फव्वारे सिर पर छोड़े जायँ और गहरे-गहरे साँस, जो कि ऐसे अवसर पर चलने लगते है, आने लगें, तो निस्संदेह भय की बात है।

अन्य स्नान

किन्हीं-किन्हीं जलाशयो मे ऐसी दुर्गंध आया करती है, जैसी कि सड़े हुए अडो मे। इन जलों मे गंधक मिला रहता है। ये जल पीने में बहुत ही पाचक होते है पर स्वाद मे खारे। इनमे स्नान करने से चर्म-रोग आराम होते है, और वर्ण निखरता है। गधक के सिवा इन जलो में चूना, चाक आदि और भी कई प्रकार के क्षार मिले रहते है। बहुधा ये चश्मे गर्म होते है। ऐसे जल मे स्नान करने के बाद चमडी कुछ रूखी और खुश्क हो जाती है।

जर्मनी मे कीचड के स्नानो का एक रिवाज है। वह इस तरह होता है कि किसी चश्मे की कीचड को पानी मे घोल लेते है। यहाँ तक कि पानी गाढा कढी के समान हो जाय। कीचड के साथ औषधि के तौर पर और बहुत-सी चीजें भी पानी में बहुधा घोल दी जाती हैं, जिनमें कुछ वनस्पति और कुछ जंतुओ से निकाली हुई होती है। एक वस्तु जो चिउँटियो से बनाई जाती है, जिसे Formic Acid कहते है, और जो कपूर की तरह उडनेवाली होती है, अधिकतर इस्तेमाल की जाती है। यह अत्यत उत्तेजक और जोश दिलानेवाली वस्तु है। कहा जाता है, चमडी पर इस स्नान का बहुत ही जबरदस्त प्रभाव पडता है।

सनोवर-स्नान (Pine Baths) भी जर्मनी मे बहुत प्रचलित है। ये वृक्ष वहाँ बहुतायत से होते हैं. और उनके सुगधित भागो का अर्क तैयार किया जाता है, जो भिन्न-भिन्न मात्राओ में स्नान के काम आता है। इसका बाहर के देशो मे व्यापार भी ख़ूब होता है। इसकी सुगंध मनमोहक होती है और इसका गोद चमडी पर उत्तम प्रभाव डालता है।

योरप में ख़ून, दूध, छाछ और तरह-तरह के मास के अर्क द्रव पदार्थ इस विश्वास पर स्नान के काम मे लाए जाते है कि नहानेवाले की इनसे कुछ शक्ति जरूर बढती है। योरप के किन्हीं-किन्हीं उत्तरीय देशो मे, जहाँ अभी तक जगली लोग रहते है, किसी कमज़ोर रोगी को ताज़े मरे हुए पशु की खाल में बद कर देते है। उनका विश्वास है कि ताजे मारे हुए जानवर की जीवनी शक्ति थोडी-बहुत रोगी को जरूर मिलती है।

योरप मे कीचड-स्नान के लिये नील नदी के किनारे की कीचड बहुत पसद की जाती है। कहीं-कही समुद्र की कीचड भी पसद की जाती है।

अमेरिका के लोगो मे रेत-स्नान की परिपाटी है। पुराने रोगियो को यह स्नान कराया जाता है। रोगी रेत में गाड दिया जाता है, और सूर्य की पूरी-पूरी किरणे उस पर डाली जाती है। गर्मी और रेत के दबाव से बेहद पसीना निकल जाता है।

गोबर या लीद का शरीर पर उबटन करना भी एक प्रकार से गोबर-स्नान कहा जा सकता है। इससे लाभ भी होता है।

रोग दूर करने के लिये कुछ खास-खास स्नान योरप के डॉक्टर लोग काम मे लाते है, वे इस प्रकार है —

दर्द दूर करने के स्नान

१— गर्म-पानी २० सेर, गेहूँ की भूसी २½ सेर, आलू का सूखा आटा आध सेर, अलसी का आटा आध सेर।

२—पानी गर्म २० सेर। कार्बोनेट आफ़ सोडा या पोटाश ६ औंस।

३— २० सेर गर्म पानी मे Muriatic या Nitric ऐसिड या Nitro Muriatic (दोनो का मिश्रण) तेजाब मिलाते है।

४—Iodine या Bromine भी स्नान के पानी मे मिलाए जा सकते है।

अमेरिका मे एक बिजली का स्नान बड़ी तेज़ी से प्रचलित हो रहा है। वह इस प्रकार होता है : एक मामूली स्नान के टब को ऐसे तख्ते पर रक्खा जाता है, जिस पर बिजली का असर नहीं हो सकता। इसके बाद बर्तन को पानी से भर देते है। उसमे थोड़ा नमक या सिरका डाल देते है, जिससे उसमें बिजली को ग्रहण करने की शक्ति बढ़ जाती है। फिर एक बिजली की बैटरी टब के पास ही रख दी जाती है, जिसके दोनो सिरो पर ३-४ गज़ की लंबाई का तार लगा दिया जाता है और एक लंबा लकड़ी का डंडा टब पर रख दिया जाता है, जो ठीक किनारो के सहारे रक्खा रहता है। इसके बीच में चमकदार तार लपेट दिया जाता है, जो बैटरी [Positive] के सिरे पर छुआ रहता है। इसे फलालेन से ढक देते और चारो तरफ स्पंज फेर देते है। अब रोगी को टब मे बैठाया जाता है। वह उस डंडे को बीच मे से पकड़ लेता है। यह पहले ही पानी मे भिगो लिया जाता है। अब 'निगेटिव' का सिरा टब में डाल दिया जाता है। ज्यो ही ऐसा होता है, स्नान करनेवाले को बिजली का करंट मालूम होने लगता है। बिजली बैटरी के पॉजिटिव सिरे से चलती है और डंडे तक रोगी के बाजुओ के नीचे शरीर के नीचे होती हुई गुज़र जाती है। फिर उसके शरीर मे गुज़रती हुई पात्र के बर्तन मे आ जाती है और चलती हुई निगेटिव के सिरे तक भी पहुँच जाती है। इस स्नान के विषय मे कहा जाता है कि इससे धातु शरीर मे रम जाता है और पारा या शीशा यदि किसी ने खा पा लिया हो और फूट निकला हो, तो शरीर से निकल जाता है।

प्रकरण ७

स्नान के विषय में कुछ जानने योग्य बातें

स्नानों के संबंध मे थोडी-सी जानने योग्य बातें यहाँ लिखकर इस विषय को समाप्त करते हैं —

१—प्रत्येक प्रकार का स्नान शरीर की भीतरी कार्य-शैली को बढाता है।

२—इससे दिल की चाल ठीक होती है।

३—इससे साँस और नाडी की गति ठीक होती है।

४—गर्म जल का स्नान पसीने की गति को ठीक करता है।

पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि स्नान से जीवन-शक्ति कुछ कम होती है, और इसी-लिये बहुत थकावट होने के बाद स्नान नहीं करना चाहिए, और न स्नान करके थकावट लाने-वाली कसरते करना चाहिए।

स्नान के बाद भोजन और भोजन के बाद स्नान तत्काल न करना चाहिए। क्योंकि स्नान से सदैव रक्त की गति को उत्तेजन मिलता है। इसलिये यह बहुत जरूरी है कि स्नान उस समय किया जाय, जब कि धडकनेवाले अवयवो पर भार न हो। या तत्काल ही भार न पड जाय, जिससे रक्त इकट्ठा होकर दूषित हो जाय।

हिपोक्रेटस, जो पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र के पिता है, और जिनका जन्म मसीह से ४०० वर्ष प्रथम हुआ था, कह गए हैं कि स्नान करनेवाला पूर्ण विश्राम ले। जरा भी हाथ-पैर न हिलावे, बल्कि दूसरो को ही पानी डालना और मलना चाहिए। कई तरह का गर्म-सर्द पानी उसके पास बहुत-सा तैयार रहना चाहिए, जो एकदम उस पर डालना शुरू कर देना चाहिए। स्पज काम मे लाना चाहिए। प्रथम शरीर पर खूब तेल मलना चाहिए, जब तक कि वह सूख न जाय। स्नान से प्रथम या बाद तत्काल शराब कदापि नहीं पीनी चाहिए।

ठीक-ठीक वायु का आवागमन स्नान-घर मे होना आवश्यक है। क्योंकि स्नान करने से श्वास जल्दी-जल्दी चलता है, और उसके लिये ताज़ा वायु बहुत जरूरी है। प्राय घरों में देखा जाता है कि पीने का पानी भी स्नान-घरो मे रक्खा जाता है। यह बात बुरी है, यद्यपि स्नान-घर मे हवा की जरूरत है, पर स्नान करती बार गीले शरीर पर ठंडी हवा कदापि न पडनी चाहिए। हवा सदा ऊँचे हवादानो या छेदो द्वारा स्नान-घर मे पहुँचाई जाय। स्नान करके खुरदरे कपडे से शरीर को अच्छी तरह पोछकर सूखे, ढीले वस्त्र पहनकर थोडी देर तक बिल्कुल आराम करना चाहिए।

रगड-रगडकर शरीर मलना स्नान करने के समय की अच्छी कसरत है। इससे शरीर का मैल, पसीना छुट जाता है, और नस-नस में शक्ति का संचार होता है, परंतु कमज़ोर रोगी के साथ ज्यादा रगड-पट्टी करनी अच्छी नहीं।

प्राचीन काल में लोग स्नान के समय तेल मलते थे, अब साबुन का प्रयोग करते है। कोई भी साबुन लगाया जाय, पर वह घटिया न हो। गरम पानी से स्नान के बाद यह ज़रूरी है कि नहानेवाला खासकर रोगी, एकाध घंटे को बिस्तर पर लेट जाय। स्नान के पीछे प्यास लगने पर ठंडा पानी पीना चाहिए।

स्नान करने के स्थान

बडे बडे शहरों मे कई प्रकार के स्नानागार होते है। हम्माम मुसलमानी काल मे बहुत प्रसिद्ध था। परंतु भारत-निवासी, जो रोज के नहानेवाले है, इन हम्मामों मे रुपए कहाँ खर्च कर सकते है। रोग हो जाने की अवस्था मे इन हम्मामों मे चिकित्सक की सम्मति के अनुसार नहाना लाभदायक हो सकता है। इस प्रकरण में हम सर्व साधारण के नहाने के लिये बने हुए स्थानों का ज़िक्र करेंगे।

भारत मे कुएँ और नदियों पर नहाने का ही अधिक रिवाज है। कुओं पर खुली हवा में ताज़ा जल से नहाना कितना सुखदायक है, यह बताने की आवश्यकता नहीं, परंतु आम तौर से कुओं पर नहाए हुए पानी के निकास का अच्छा प्रबंध नहीं होता। चारों तरफ कीचड हो जाती है या एक जगह गढे में पानी भर जाता है। इस पानी मे हज़ारों मच्छर और कीडे उत्पन्न हो जाते है, जो पानी को सडाते है। कुएँ के पास बदबू आने लगती है, और वहाँ नहाने से लाभ की अपेक्षा हानि ही होती है। इससे बचने के निम्न-लिखित उपाय किए जा सकते हैं—

(१) कुएँ के चारो ओर पक्की नाली बनाकर एक कच्ची नाली निकाल देनी चाहिए, जिससे पानी किसी बाग या खेत मे या बडी नाली मे जा गिरे।

(२) गाँवों के कच्चे कुओं मे इस किस्म की होशियारी की बहुत जरूरत है।

(३) किसी कुएँ के पास जानवरों के पीने के लिये या पानी इकट्ठा होने के लिये हौज हो, तो उसका पानी रोज़ सुबह-शाम निकालकर ताज़ा पानी से धो डालें।

(४) कुएँ के चबूतरे पर पाखाने के हाथ धोना या नहाना नहीं चाहिए। अलग एक चबूतरा बना हो, उस पर नहावे और वहाँ से भी पानी के निकालने का उत्तम प्रबंध करे।

बहुत-से कुओं का पानी कई रोगों तथा खुजली इत्यादि के लिये लाभदायक होता है। निस्संदेह पानी मे ये गुण होते है, और ऐसे रोगियों को ऐसे कुओं पर नहाने के लिये पृथक् प्रबंध होना चाहिए। सबके साथ नहाने मे खुजली-जैसी छूत की बीमारी एक दूसरे को लग जाने की संभावना रहती है।

दूसरी जगह जहाँ सर्व साधारण नहाया करते है, वे नदियों के घाट है। हमे शोक से लिखना पडता है कि इस संबंध में हम बहुत गंदे है। हमारे घाट बडे गंदे होते है। इसमे कोई

संदेह नहीं कि नदियों व नहरों का पानी बहता हुआ होता है. परंतु बहुत-सी जगह तो हमारे नहाने के स्थान वहीं होते हैं, जहाँ शहर के गंदे नाले गिरते है। घाटों को साफ़ रखना हमारा काम है। हमारी म्यूनिसिपैलिटियों व डिस्ट्रिक्ट बोर्डों का काम है कि ऐसे सार्वजनिक घाट निर्माण करें, जहाँ किसी प्रकार की गंदगी न हो। नदियों के किनारे लोग बेधड़क पाखाना फिरते हैं, जिससे वहाँ बहुत बदबू पैदा होती है।

पाखाना फिरने के लिये या तो दूर जाना चाहिए या पब्लिक टट्टियों का इंतिज़ाम होना चाहिए। नहाने के घाट मुर्दा-घाटों के पास नहीं होना चाहिए। बनारस आदि शहरों में मुर्दे को जलाकर कच्चा ही जल में छोड़ देते हैं, यह जल दाग़ का रिवाज बहुत बुरा है। इससे पानी बहुत गंदा होता है। ऐसी जगह स्नान के घाट तो हर्गिज न होने चाहिए। बहुत-से शहरों में बच्चों की लाशों को न जलाते न गाड़ते हैं। पानी में पत्थर बाँधकर छोड़ देते हैं। इन सब सड़ाँद उत्पन्न करनेवाली बातों का म्युनिसिपैलिटियों को पूरा प्रबंध करना चाहिए।

नहाने के घाटों की इस बाहरी सफ़ाई के प्रबंध के अतिरिक्त घाटों की बनावट व जल के संबंध में भी कुछ बातें ध्यान देने योग्य हैं। बहते हुए पानी में स्त्री-पुरुष बहने के डर से अच्छी तरह नहीं नहा पाते। वे केवल किनारे पर खड़े-खड़े ही दो-एक डुबकी मारकर निकल आते हैं। स्त्री और बच्चे तो अच्छी तरह नहा ही नहीं सकते। हरद्वार में हर की पैड़ी पर जो ब्रह्मकुंड बना है, वैसा तथा बच्चों के लिये उससे भी कम गहरा कुंड हरएक घाट के आगे होना चाहिए। जब तक अच्छी तरह दिल खोलकर नहीं नहाया जायगा, तब तक नहाने से क्या लाभ होगा।

जल के संबंध में हरद्वार व उससे ऊपर तथा पहाड़ी नदियों व नदी के उन भागों को छोड़कर जो नदी के स्रोत से निकट है, शेष जगह का जल बड़ा गंदा होता है। गर्मी और बरसात में मैदानों में नदियों का जल इतना गंदा होता है कि छूने को भी जी नहीं चाहता। फिर लोग तो उसे पीते और उसमें नहाते हैं। इसका प्रबंध म्युनिसिपैलिटियों को ऐसा करना चाहिए कि घाटों में जो जल आवे वह छन्नों में छनकर आवे। यह काम मुश्किल नहीं है। अन्य देशों में ऐसा प्रबंध है, और लाखों नर-नारियों की तंदुरुस्ती के लिये यह प्रबंध यहाँ भी अवश्य होना चाहिए।

नदी व कुओं के अतिरिक्त अब बंबई, कलकत्ते आदि नगरों में समुद्र में स्नान करने का भी रिवाज हो गया है। समुद्री हवा बहुत शुद्ध और साफ़ होती है। उसमें न तो शहरों की गंदी हवा का अंश होता है, न मनुष्यों की साँस होती है। निस्संदेह समुद्र-स्नान खूब लाभ-दायक है। परंतु तभी, जब कि उपर्युक्त सफ़ाई का पूरा ध्यान रक्खा जाय।

प्रकरण ४

स्नान के उपयोग

स्नान किन-किन रोगों में इलाज के तौर पर उपयोगी है। यहाँ इस बात का विचार नहीं किया जायगा। यहाँ सिर्फ स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से स्नान के लाभ बताए जायँगे। स्नान के लिये यह कहा गया है कि वह प्रत्येक रोग को दूर करने की शक्ति रखता है। जर्मनी के डॉक्टर लुईकोने ने तो स्नान के अनेक प्रकार निर्माण करके स्नान-चिकित्सा का आविष्कार किया है। और उनकी यह चिकित्सा-पद्धति बड़े जोरों पर सारे संसार में फैल रही है और पसंद की जाती है। परंतु वास्तव में यदि देखा जाय, तो यह अत्युक्ति है।

परंतु स्नान का सबसे स्पष्ट उपयोग चमड़ी को साफ करना है। जिसके लाभ असंख्य हैं। चमड़ी साफ है। इसका अभिप्राय यह है कि उसकी सतह और रोम-कूप दोनों शुद्ध हैं।

बहुधा लोग स्नान को एक आवश्यक कृत्य समझते हैं। झटपट दो लोटे पानी डाल लेना या एकाध गोता लगा लेना उनके लिये स्नान करना है। परंतु सच पूछा जाय, तो उन्हें स्नान का कुछ भी लाभ नहीं होता। इसके सिवा अमीर आदमी, जो नौकरों की सहायता से खूब बढ़िया साबुन मल-मलकर नहाते हैं, स्नान के लाभ से वंचित ही रहते हैं। कारण, ऐसे स्नानों में रोम-कूप शुद्ध नहीं होते। जब तक कि पूरा-पूरा पसीना न निकले, चमड़ी साफ रह ही नहीं सकती। उनकी अपेक्षा तो वे अधिक शुद्ध हैं, जो खूब मेहनत करते हैं और जिनका खूब पसीना निकलता है। स्नान के पूरे लाभों को प्राप्त करने के लिये पसीना निकलना बहुत ही जरूरी है, और यदि यह काम साधारण तौर से नहीं होता, तो आवश्यक है कि बनावटी उपायों से पसीना निकाला जाय। हर हालत में चमड़ी की जिल्द और रोम-कूप शुद्ध रखना ही स्नान का सबसे बड़ा उपयोग है। रोम-कूप और चमड़ी को स्वच्छ करने का सबसे उत्तम उपाय यह है कि गर्म पानी से हवाबंद स्थान में नहाया जाय और खूब अच्छी तरह साबुन लगाया जाय और उसके बाद खूब रगड़कर मोटे अँगौछे से शरीर को मला जाय। समुद्र या नदी में खूब तैरना सबसे उत्तम स्नान है। और स्नान के सर्वोत्तम गुणों की प्राप्ति इस स्नान से होती है।

तंग और बंद जगह में परिश्रम करके या कसरत करके पसीना निकालना अनुचित है। तैरने का अभ्यास दिन में सिर्फ एक बार करना चाहिए और वह भी भोजन से प्रथम। स्नान का साधारण समय ५ मिनट है, इससे ज्यादा देर तक पानी में भीगना अनुचित है। परंतु तैरने का अभ्यास होने पर देर तक तैरा जा सकता है। प्रातःकाल ठंडे जल से स्नान करना अत्यंत लाभदायक है। इसका सबसे बड़ा गुण रक्त को उत्तेजन देना है। रक्त की गति को

ठीक करने और स्वास्थ्य को सुधारने मे अपूर्व है। परंतु एक बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। पिछले अध्यायो में बताया गया है कि ठडे पानी के स्नान करने से खून का उलटाव होता है। क्षण-भर को चमडी पीली पडकर फिर लाल हो जाती है। यदि इस उलटाव में अतर आवे, थकान या कमजोरी मालूम पडे, तो ठडे के स्थान मे गुनगुने पानी से स्नान करना चाहिए। इसके सिवा गठिया और वात रोग के रोगी तथा श्वास के रोगियो को भी ठडे जल मे स्नान करना उचित नही। बच्चो को रोज स्नान कराना उन्हें स्वस्थ रखना है। जो बच्चे रोज़ नहलाए जाते हैं, वे सदा हृष्ट-पुष्ट रहते हैं।

कुछ ज्वरो मे ठंडे पानी से स्नान कराना अत्यत उपयोगी साबित हुआ है। खा़सकर उन ज्वरो में जो आनन-फानन ऊँचे पहुँच जाते हैं, और जिनमें १०५ से भी ऊँची गर्मी हो जाती है। पर यह अत्यत सावधानी से कराना चाहिए। वरना इसका परिणाम उलटा होता है। ६० F और ६५ F के बीच की गर्मी का जल टब मे भरकर उसमे रोगी को बैठाना चाहिए। २० मिनट से ज्यादा नहीं बैठाना चाहिए। जब ६० F हो जाय, तो रोगी को निकाल ले। सूखे वस्त्रो से पोछकर गर्म बिस्तर पर सुला दे। हिस्टीरिया, उन्माद के रोग मे तथा स्नायु की सब प्रकार की दुर्बलताओं मे ठडे जल का स्नान अत्यंत लाभकारी हो सकता है।

सर्वांगस्नान के सिवा एकाग स्नान भी उपयोगी होता है। जैसे चोट या मोच पर ठडे पानी की पट्टी या धार का उपयोग अत्यत लाभकारी है।

रोगियो के लिये ख़ासकर रोग-नाशक शक्ति की हैसियत से ठंडे की अपेक्षा गर्म पानी का स्नान अधिक उपयोगी होता है। जोडों मे जमे हुए माद्दे को तहलील करके रक्त की गति को संचारित कर देता है। गठिया के लिये कुछ चिकित्सक ख़ास तरह के गर्म स्नानो को पसद करते है। गुर्दे की बीमारी में गरम पानी के भरे टब में रोगी को बैठाने से बढकर कोई उत्तम उपाय ही नहीं है।

सर्दी-जुकाम के लिये टर्किश-स्नान अत्यत लाभकारी है। रोग के प्रारभ मे ही एक स्नान करना चाहिए। जब सिर में भारीपन हो और गर्दी मालूम पडे, तब समझिए कि रोग का आक्रमण होगा। नाक और आँखो से पानी जारी होने के प्रथम ही बाथ ले लेने से रोग हट जायगा। चर्म-रोग में गरम पानी का स्नान एक-मात्र स्नान है। खाज, दाद, शीत, पित्त, तर-खुजली, सबके लिये गर्म पानी का स्नान बहुत ही लाभकारी है। साथ ही कोई कीटाणु-नाशक साबुन और मोटा अँगौछा ज़रूर काम मे लाना चाहिए।

सादा स्नान चमडी पर एकाएक कोई विशेष प्रभाव नहीं डालता, परंतु विशिष्ट स्नानो की बात अलग है। ख़ासकर वाष्प और गीले वस्त्र के स्नान विशेष सावधानी से किए जाने योग्य है।

प्रकरण ५

जल-चिकित्सा

प्राणी-मात्र को होनेवाले भयङ्कर रोगो को नष्ट करने के लिये जो अद्भुत ओपधियाँ प्रकृति ने अपने भंडार से संचित की हैं, उनमे जल मुख्य है। जल प्राणियो के लिये प्राण-स्वरूप है। अन्न के विना बहुत दिन तक प्राणी जीवित रह सकता है, परतु जल के विना थोडे ही समय मे प्राण का नाश हो जाता है। क्योकि तृष्णा से मोह उत्पन्न होता है, और मोह मे प्राण का नाश होता है। इसलिये जीवन-रक्षण के लिये किसी भी अवस्था मे जल का त्याग नही किया जा सकता।

मात्र जीवन रक्षण के लिये ही जल उपयोगी है, यही बात नहीं है। परंतु व्याधि और चिकित्साओं के लिये भी वैसा ही उपयोगी है। जिस प्रकार बहुत-सी ओपधिओ को खिलाकर अथवा बाहर लगाकर रोगो को नष्ट किया जाता है, उसी प्रकार ओपधियो के सिवा सिर्फ जल से ही अनेक रोग दूर किए जा सकते है। यह बात गप्प ही नहीं है। परतु प्राचीन काल से इस देश मे यह रीति है, और वैद्यक-शास्त्रो मे विस्तृत रीति से इसका उल्लेख भी है। परंतु अश्रद्धा का कारण यह है कि आजकाल हमें पश्चिमीय सभ्यता का रग चढा हुआ है। इसीलिये अपनी जाति, रीति-रिवाजो पर से विश्वास उठ गया है। और अपने शास्त्रो की बताई हुई बातो के मानने में हम आनाकानी करते है। परतु जिस प्रकार पश्चिमीय विद्वान् अपने शास्त्रो में बताई हुई बातो मे अनुभव प्राप्त करके लोगो में प्रकट करते है, उसी प्रकार हमे भी अपनी नवीन खोजो को लोगो पर उत्साह-पूर्वक प्रकट करना चाहिए। इस प्रकार ही जल द्वारा रोगो को दूर करने की विद्या, जो इस देश में टूटी-फूटी दशा मे चलती आई थी, पाश्चात्य विद्वानो के हाथ लगी, और विशेप अनुभव मे आई। जल उपचार मे उपयोगी हो सकता है। इस बात की जाँच पश्चिम देशो मे पहलेपहल सीपीसिया के वींसेंट प्रीजनीट्ज-नामक एक पुरुप ने की थी। परंतु इसके बाद बहुत-से सुधार होने पर रोगो को जल से ही आराम करने की पद्धति चली। इस पद्धति के अनुसार उपचार करने के दो मुख्य विभाग हैं। बहुत-से उपचारक अनेक रोगो को दमन करने के लिये केवल शुद्ध जल का ही उपयोग करते है। और कितने ही शुद्ध प्राकृतिक ढग के झरने या कुंडो का, जिनमे रसायनिक क्षार-मिश्रित जल होता है। जो केवल शुद्ध जल का ही उपयोग करते है। वे अपनी पद्धति को (Water Cure) कहते है। और जो दोनो प्रकार के जलो का उपयोग करते है, वे अपनी पद्धति को (Hydropathy) कहते हैं। इन दोनो पद्धतियो को हम अपनी भापा मे जल-चिकित्सा कह सकते है।

यह जल-चिकित्सा-शास्त्र इतना वडा है कि सपूर्ण वर्णन करे, तो एक वडा ग्रथ वन जायगा। इस समय केवल कुछ अत्यत उपयोगी उपचार ही वर्णन करेंगे।

आठ कटोरी पानी का प्रयोग

वर्तमान काल के पश्चिमीय विद्वानो ने रसायन-शास्त्र से यह सिद्ध किया है कि प्राणी-मात्र का जीवन कोई दूसरी वस्तु नही है, केवल भूतो का रासायनिक परिणाम है। यह रासायनिक उलट-पलट तभी हो सकती है, जब कि शरीर में निश्चित परिमाण मे गर्मी हो। शरीर मे स्थित प्राकृतिक गर्मी यदि कम हो जाय, तो शरीर मे कोई रोग उत्पन्न हो जाता है। और यदि सारी गर्मी जाती रहे, तो मृत्यु होती है। इसलिये जीवन रखने के लिये शरीर मे गर्मी फैले, ऐसे पदार्थों को समय-समय पर प्रयोग में लाना चाहिए। ऐसे पदार्थों मे, जो वहुत है, जल ही सवसे उत्तम है, क्योंकि वह सव प्रकार से हानि-रहित है। इतना ही नहीं, वल्कि जितने परिमाण में गर्मी देने की आवश्यकता हो, उतने ही परिमाण में उसे कम या ज्यादा गर्म कर सकते है। दूसरे, जल जिस प्रकार शरीर में आवश्यकतानुसार परिमाण मे गर्मी को पैदा करता है, उसी प्रकार उसे ठंडा करके प्रयोग मे लेने मे वढी हुई गर्मी को शात करता है।

शरीर में गर्मी की न्यूनता और अधिकता घटी या वढी हुई हो, उसे समान रूप मे लाने के लिये जल के उपयोग को पश्चिमीय विद्वान् अच्छी तरह मानते है। और इसकी उन्होने शोध भी की है। जल के उपयोग करने का वहुत ही सादा और एक उत्कृष्ट प्रयोग, जो आठ कटोरी जल का प्रयोग के नाम से हमारे देश के वहुत-से भागो में प्रसिद्ध है।

अत्यंत भयंकर रोग में पडे हुए रोगी को तेज ज्वर होता हो, वायु वहुत ही वढ गई हो, चैतन्यता न रही हो, और भी असाध्य लक्षण दीखने लगें और जहाँ कस्तूरी, स्पिरिट, एमोनिया, एरोमैटिक, हेमगर्भ, हिरण्यगर्भ, मल्लसिंदूर और चंद्रोदय की मात्राएँ काम न करती हो, वहाँ पर यह आठ कटोरी जल काम करता है। जो रोग के लक्षण अत्यत भयकर हो अर्थात् शरीर अत्यंत ठडा पड गया हो, वेहोशी अधिक वढ गई हो, हैजे की तरह दस्त-उल्टी अधिक आती हो, और कदाचित् इन आठ कटोरी जल के प्रयोग से सफलता प्राप्त न हो, तो ६४ कटोरी जल का प्रयोग करने से तो रोगी अवश्य होश मे आ जाता है।

आठ कटोरी जल वनाने की विधि इस प्रकार है—एक मिट्टी के वर्तन में आठ कटोरी जल भरो, फिर उसमें सोंठ, मिरच, पीपल छोटी, तज, लौंग और वायविडग ये प्रत्येक १½ माशे तथा तुलसी और वेल इन दोनो के पत्ते दो-दो तोला साफ करके डालो। फिर उस वर्तन को आँच पर रख दो। जव एक कटोरी पानी जलते-जलते वच रहे, उसे उतारकर छान लो, और रोगी को पिला दो। इस प्रकार दिन मे तीन वार वनाकर पिलाना चाहिए। इससे जहरी-से-जहरी मलेरिया का ज्वर तुरंत उतर जाता है। दूसरे और उपद्रव भी शात हो जाते है। जो ज्वर का वेग वहुत अधिक हो और आठ कटोरी जल की विधि से शात न पडे, तो १६ कटोरी या ३२ कटोरी अथवा ६४ कटोरी जल का प्रयोग करे। उपर्युक्त विधि के अनुसार एक वर्तन में १६,

३२ या ६४ कटोरी जल भरकर उसी क्रम से औषध डालकर पकावे, जब एक कटोरी जल बाकी रह जावे उतार ले, और छानकर पिला दे। इसी का नाम १६-३२ और ६४ कटोरी का प्रयोग है। जितनी अधिक कटोरी जल रक्खा जायगा, उतना ही अधिक गुणकारी जल बनेगा। इसीलिये ६४ कटोरी जल दिया जाता है। इससे अत्यंत असाध्य अवस्था में पहुँचे हुए रोगी के शरीर में भी ऐसी विचित्र शक्ति पैदा हो जाती है कि मुमूर्षु रोगी भी एक बार उत्तर दे ही देगा।

साधारण दृष्टि से देखने से तो यह प्रयोग मामूली-सा ही दीखता है, परंतु अनेक बार अनुभव में लेने से इसका फल इतना लाभकारी दीखता है कि जहाँ बढ़िया-से-बढ़िया मात्राएँ काम नहीं करतीं, वहाँ यह अपना कार्य अवश्य करता है। छाती में या गले में चाहे जितना कफ जमा हुआ हो, उसे तो तत्काल ही निकाल डालता है। इस बात की साक्षी राजनिघंटु और निघंटुभूषण में है—

> क्वथ्यमानन्तु यत्तोयं निष्फेनं निर्मलीकृतम्, भवत्यर्द्धावशिष्टं तु तदुष्णोदकमुच्यते।
> उष्णोदकं सदापथ्यं कासज्वरविबन्धनुत्, कफवातामदोषघ्नं दीपनं वस्तिशोधनम्।
> तत्पादहीनं वातघ्नमर्द्धहीनं तु पित्तजित्; कफघ्नं पादशेषं तु पानीयं लघुदीपनम्।

ध्यान रहे कि चूल्हे पर चढ़े हुए जल को आँच लगते-लगते उसमें झाग न आवे, बिल्कुल स्वच्छ बिना झाग के पके। जब आधा रह जाय, तो वह गर्म जल उत्तम कहलाता है। यह उष्ण जल हमेशा रोगी को माफिक आता है। खाँसी, ज्वर, दस्त का रुक जाना, कफ, वायु और आमादि दोषों को नष्ट करनेवाला, अग्नि को दीपन करनेवाला तथा वस्ति को शुद्ध करनेवाला है। जो जल उबालने में तीन भाग रह जाय और एक भाग जल जाय, वह जल रोगी को देने से वायु का नाश करता है। आधा शेष रहा हुआ जल पित्त को नाश करता है, और तीन भाग जलकर एक भाग रहा हुआ जल कफ को नाश करता है। वह पचने में हल्का है और अग्नि को दीपन करनेवाला है।

यदि बहुत-से दोष इकट्ठा हो, गए हों, तो अष्टांश रहा हुआ जल पीवे। आजकल के शोधक बतलाते हैं कि भोजन से आधा घंटा पहले यदि यह जल पी लिया जाय, तो भूख खूब लगती है। इसी प्रकार रात को सोती बार यह जल पीने से और प्रातःकाल सवेरे उठकर उतना ही जल फिर पीने से दस्त खूब खुलासा होता है।

ऊषा-जलपान-विधि

शरीर में पैदा हुए रोगों को शीघ्र नष्ट करने के लिये जिस प्रकार गर्म जल का उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार घटे-बढ़े हुए दोषों को समान करके प्रकृति को स्वस्थ बनाने के लिये ठंडा जल भी प्रयोग में लाया जाता है। इस जल के पीने का समय और विधि निघंटुकार बताते हैं कि—

"प्रातःकाल सूर्योदय के पहले, मूत्र त्यागन के प्रथम, शय्या पर ही बैठकर जो मनुष्य रात्रि

को ताँबे के पात्र में भरकर रक्खा हुआ जल पीवे, उस मनुष्य के बढ़े हुए वात, पित्त और कफ शांत होते है, और बहुत शक्ति उत्पन्न होती है।"

पीने के जल का कितना परिमाण होना चाहिए, इस विषय में निघंटुरत्नाकर बतलाता है—

सवितुरुदयकाले प्रसृतीः सलिलस्य पिबेदष्टौ।

अर्थात् सूर्योदय के समय आठ अंजली (६४ तोला) जल पीना चाहिए।

जल के केवल पीने के उपयोग से ही रोग दूर होते हैं, ऐसा नहीं है, परंतु अलग-अलग स्थिति में ठंडा या गर्म जल अलग-अलग रीति से स्नान करने से अथवा अलग रीति से सेवन करने से भी विचित्र लाभ होता मालूम पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है, और इसीलिये कैसा और कितने परिमाण में ठंडा अथवा गर्म जल उपयोग करने से बिलकुल अनुकूल पड़ेगा, इसका विवरण नीचे लिखते है—

स्नान-प्रयोगों के मुख्य दो भाग हैं—एक जिसमें सारा शरीर डूबा रहे, उसे '*General Baths*' या 'सर्वांग-स्नान' कहते है और खास किसी अंग पर असर पड़े, तो उसे एकांगी-स्नान के नाम से पुकारते हैं।

निद्राप्रद स्नान

जो अच्छी तरह नींद न आती हो, तो सोने के समय से कुछ पहले दोनो पैरो को कुछ गर्म जल में डुबोकर सिर पर ठंडे जल की धार डालनी चाहिए। इससे सिर का रक्त पैरो की तरफ़ उतर जायगा और थोड़ी ही देर में अच्छी नींद आ जायगी।

शांतिदायक स्नान

रोगी को आराम-कुर्सी पर बिठालकर उसके सिर पर ऊँचे से चलनी के द्वारा कुछ गुनगुने जल की फुआरें डालनी चाहिए। इससे उसका सिर बहुत ही शांत होकर आनंदित हो जायगा। जिन्हें मस्तिष्क से अधिक काम करना पड़ता हो, उनके लिये यह प्रयोग बहुत उत्तम है। ज्यों-ज्यों अभ्यास बढ़ता जायगा, उसी प्रकार ठंडे पानी का अभ्यास होता जायगा। सिर पर ठंडा पानी डालने से पहले तो चमड़ी ठंडी हो जाती है, पर थोड़ी ही देर में काफ़ी गर्मी आ जाती है, और अधिक पानी डालने से अधिक शांति मिलती है। दृष्टि तेज़ होती है और बालो की जड़ें मज़बूत होती है। जब इस जल का प्रयोग करना हो, तो हवा से बचाव का प्रबंध अच्छी तरह कर लेना चाहिए।

शक्ति-वर्धक स्नान

स्नान कराने का मुख्य कारण सिर्फ चमड़ी को बाहर की स्वच्छता ही करने का नहीं है, परंतु चमड़ी के छिद्रों को स्वच्छ और चपल बनाना है, जिससे अंदर के अवयव अपना काम जल्दी-जल्दी कर सकें। बहुत लोग गर्म जल से, बहुत-से कुछ गुनगुने जल से और बहुत-से ठंडे जल से स्नान करते हैं। इन सबमें ठंडा जल सबसे अधिक शक्ति-वर्धक और लाभकारी है। क्योंकि ठंडे जल से स्नान करने से रक्त चमड़ी की ओर आ जाता है, जिससे

शरीर को अच्छा लगता है। परंतु यह बलवान् मनुष्यों को ही माफ़िक होता है। जिनके शरीर में रक्त का दौरा बहुत धीमा होता है, उन्हें एकदम माफिक नहीं आता है। जो मनुष्य कमज़ोर हों, उन्हें चाहिए कि पहले गुनगुने जल से स्नान करना आरंभ करें। फिर धीरे-धीरे जल को ठंडा करते जाना चाहिए। ठंडे जल से स्नान करने से शरीर में तुरत आनंद, उत्साह और फुर्ती मालूम होने लगती है। यदि यह बात ठंडे जल के स्नान में न मालूम दे, तो अपनी प्रकृति के अनुसार जल को गुनगुना कर लेना चाहिए।

ठंडे जल से लाभ प्राप्त करना हो, तो प्रथम थोड़ा व्यायाम करके तब स्नान करना चाहिए। उसमें शरीर को स्वच्छ करने के लिये खुरदरे तौलिए से पोंछना चाहिए। पहले तौलिए को ठंडे पानी में भिगोकर फिर शरीर को ख़ूब रगड़कर पोंछना चाहिए। इससे चमड़ी बहुत साफ हो जाती है। सर्दी भी लगती होगी, तो गर्मी बढ़ जायगी। ठंडे जल से स्नान करती बार इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गर्म जल से स्नान करने में जितना समय लगाया जाय, उतना ठंडे जल में नहीं लगाना चाहिए। ठंडे जल का स्नान ५-७ मिनट में ही समाप्त कर देना चाहिए।

ठंडे जल से स्नान करने में यद्यपि बहुत गुण हैं, तो भी यदि ठंड लगने लगे, तो उसमें ठंडे जल से स्नान नहीं करना चाहिए।

इसके सिवा भिन्न-भिन्न रोगों को शांत करने के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के जलों से स्नान किया जाता है, वह इस प्रकार है—

शीतल जल-प्रयोग

भाँग या मदिरा-जैसे मादक पदार्थों का नशा उतारने में यह स्नान किया जाता है। एक बड़े टब में पानी भरकर उसमें रोगी को बैठाने से पदार्थ का जहरीला असर दिमाग में से निकलकर शांत हो जाता है। कोई भी नीरोगी मनुष्य सवेरे उठकर जब शरीर गर्म हो, या व्यायाम करके इस स्नान को करे, तो शरीर में बहुत फुर्ती और शक्ति पैदा होती है। जो दुर्बल हो या जिन्हें माफिक न आता हो, उन्हें यह अभ्यास एकदम नहीं करना चाहिए।

उष्ण-जल-स्नान-प्रयोग

यह स्नान करते समय रोगी का सिर बचाकर पानी में बैठाना चाहिए। सिर पर ठंडे पानी में भीगा तौलिया रख देना चाहिए। पाँच और दस मिनट के बीच में ही रोगी को पानी में से निकाल लेना चाहिए और बाहर निकालकर तुरत कंबल उढ़ा देना चाहिए। यदि आवश्यकता हो, तो सोने देना भी ठीक है।

इस प्रयोग से ज्ञान-तंतु शांत होते हैं। रक्ताशय की गति नियमित होती है। पसीना आता है और रक्त की चाल ठीक-ठीक होने लगती है। पेट के किसी अवयव या मस्तक की तरफ अधिक परिमाण में जाता हुआ रक्त रुकता है।

प्रस्वेद-स्नान

इस स्नान में रोगी को सिर्फ़ एक लँगोटी पहनाकर कुर्सी पर बिठला दो और चारों तरफ से कंबल ढक दो, जिसमें गर्दन बाहर निकली रहे। हवा के झोंके बिलकुल न आवें। बाहर का दूसरा आदमी न आवे। यह सब करने पर रोगी के सिर पर भीगा रूमाल रक्खो, और कुर्सी के नीचे ८-१० सेर गर्म जल एक चौड़े मुँह के बर्तन में भरकर रक्खो। उसके बाद एक गर्म की हुई ईंट उस पानी में धीरे से डाल देनी चाहिए, जिसमें उसकी छींटें रोगी पर न पड़ें। ईंट डालते ही तुरत चारों ओर से कंबल ढक देना चाहिए और अच्छी तरह भाप लगानी चाहिए, जिससे ख़ूब पसीना निकले। इस समय यदि रोगी को अधिक पसीना लेना हो, तो थोड़ा ठंडा जल पिला दो। इस प्रकार १०-१५ मिनट तक भपारा देना चाहिए। शुरू में जितनी गर्मी लगे उतना अच्छा है, परंतु अधिक गर्मी लगे, तो कंबल को जरा ऊँचा कर दो। इससे गर्म भाप निकलकर ठंडी हवा अंदर घुस जायगी और गर्मी शांत हो जायगी। यह प्रयोग कर चुकने पर रोगी को कुछ गुनगुने पानी में बिठाल देना चाहिए।

सर्दी में ठंड लगी हो, थकान चढ़ी हो, शरीर में दर्द होता हो, जलोदर हो, तो इनमें यह प्रयोग बहुत हितकर है।

उष्ण-वायु-स्नान

यह प्रयोग भी वाष्प-स्नान-जैसा ही है। परंतु इसमें भेद इतना है कि भाप के बदले हवा काम में ली जाती है। हवा गर्म करने के लिये कुर्सी के नीचे पानी के बदले जलता दिया रक्खा जाता है। गैस का चूल्हा धीमा करके या स्प्रिट लैंप भी रख सकते हैं। रोगी को वाष्प-स्नान की तरह बिठाला जाता है और सिर पर भीगा कपड़ा रक्खा जाता है। यह प्रयोग करती बार कभी-कभी रोगी के पैर गर्म पानी में रक्खे जाते हैं। इस प्रयोग में पसीना ख़ूब आता है। जिनके शरीर में चरबी अधिक होती है, उन्हें यह प्रयोग इतना अनुकूल पड़ता है कि तीसरे ही दिन शरीर में से चरबी घट जाती है। इसके अतिरिक्त संधि, श्वास, खाँसी आदि रोगों में यह प्रयोग लाभकारी है।

दूसरी विधि

एक बरामदे में, जिसमें बैठने के लिये पत्थर की बैठक बनी हो या पक्का फ़र्श हो, रोगी को एक लँगोट पहनाकर बिठा दो। फिर एक पत्थर जो लाल गर्म करके रक्खा हो, जो फूटे नहीं, उसे लाकर बरामदे के बीच में रखकर उसके ऊपर पानी डालना शुरू करो या ऐसा प्रबंध कर दो कि थोड़ा-थोड़ा पानी उसके ऊपर स्वयं टपकता रहे। इससे पत्थर में से यथेष्ट भाप निकलती रहेगी, और उससे रोगी को भाप का लाभ होगा। उससे सर्दी लगने से पैदा हुए रोग श्वास-खाँसी आदि भी दूर हो जाते हैं।

जलार्द्रपट स्नान

यह स्नान कई प्रकार से किया जाता है, पीछे भी वर्णन कर आए हैं।

तेज़ गर्म जल में ऊन या बनात का मोटा कपड़ा भिगोकर निचोड़ लो। जब उसमें से भाप निकले, तब उसे रोगी के सिर पर फेरो और सूखे कपड़े से गीलापन दूर करो। फिर एक गर्म कपड़ा शरीर पर लपेटकर एक-दो घंटा सोने दो। इस समय रोगी को हवा से बचाना चाहिए। ज्वर हो जाने पर अधिक दिन होने पर भी न छूटे, तब यह प्रयोग किया जाता है। त्रिदोष-जैसे रोगों पर और फफड़ों के वरम में भी हितकर है। यह प्रयोग करती बार जब गर्म कपड़ा लपेटा जावे, तब उसके हाथ बाहर निकाल लेने चाहिए। पर ऊपर से दूसरा कपड़ा ओढ़ने पर सिर के सिवा सारा शरीर ढक देना चाहिए।

जिस प्रकार गर्म कपड़े का उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार सन के कपड़े को ठंडे पानी में भिगाकर खूब निचोड़ लो, फिर उसे एक रज़ाई पर या मोटे कंबल पर बिछाकर रोगी को उस पर सुला दो। उसके बाद हाथ बाहर निकालकर उस कपड़े को अच्छी तरह अगल-बग़ल में दाब दो। फिर उसके ऊपर एक रज़ाई या कंबल डाल दो, जिससे उसे पसीना आने लगेगा। आधे घंटे बाद सब कपड़े हटा दो। यह प्रयोग करते समय दिमाग़ में खून का ज़ोर न हो जाय, इसके लिये सिर पर ठंडे पानी से भीगा कपड़ा रख देना चाहिए। यदि रोगी को इतना तेज़ ज्वर हो गया हो कि शरीर गर्मी से झुलसा जाता हो और कुछ भी कपड़े न सुहाते हों, तो ऐसी दशा में यह प्रयोग बहुत ही लाभदायक है।

ज्वर-जैसे सार्वदेहिक रोग में जिस प्रकार सारे शरीर पर भीगा कपड़ा लपेटा जाता है, उसी प्रकार शरीर के ख़ास अंग के रोग में भी यह प्रयोग किया जाता है। ख़ास अंग की चिकित्सा के लिये भीगे कपड़े को दो-तीन तह बनाकर रक्खो। उसके ऊपर तेल में भिगोया हुआ रेशमी कपड़ा इस प्रकार से रक्खा जावे कि वायु बाहर भीतर न आ-जा सके। यह प्रयोग बहुधा रात्रि में ही होता है, क्योंकि उस समय शरीर के अवयव शांत रहते हैं। इस प्रकार बाँधी हुई पट्टी रात-भर बँधी रहने पर सबेरे खोल देनी चाहिए। कोई-कोई रेशमी कपड़े के ऊपर फलालैन या ऊनी कपड़ा रख देते हैं।

यदि पेट पर यह पट्टी बाँधकर रात्रि को रोगी को सुला दिया जाय, तो उससे टाइफाइड का ज्वर शांत हो जाता है। बद्धकोष्ठ के रोगी के लिये यह प्रयोग करने से दस्त खुलकर होता है, धातुस्राव के रोगियों को स्वप्नावस्था में निकलती धातु रुकती है। गर्भाशय और अंडकोष के रोगियों को भी यह बहुत लाभकारी है।

गले में चारों ओर पट्टी बाँधने से वहाँ की सूजन पटक जाती है। छाती पर बाँधने से फेफड़ों का वरम कम हो जाता है। और किसी भी प्रकार का घाव, गर्मी की सूजन, कमर का दर्द, जोड़ों का वरम, लकवा आदि रोग तो दूसरे उपचारों की अपेक्षा जल्दी अच्छे हो जाते हैं।

कितने ही रोगों की शांति के लिये शीतल जल की आवश्यकता पड़ती है। उसके बदले में बरफ का उपयोग करना उत्तम है। रोगी के किसी भी अंग से रक्तस्राव हो रहा हो, तो उसके बंद करने के लिये तो यह बहुत ही उत्तम उपाय है। मुख, गला, नाक, योनि या गुदा आदि स्थानों से रक्त निकलता हो, तो रबर की एक थैली में बरफ भरकर ऊपर रख देने से तुरंत

रक्त बंद हो जायगा। यदि फेफड़ों में से इतनी अधिक मात्रा में रक्त निकलता हो कि ख़ून की उल्टी होने लगे, तो छाती पर बरफ रखना चाहिए और बरफ के टुकड़े उसके मुँह में रखने चाहिए। बरफ के अंदर जाते ही रक्त आना बंद हो जायगा। क्योंकि रक्तवाहिनी नाड़ियों में जो छिद्र हो जाता है, वह बरफ की ठंड से संकुचित हो जाता है।

गर्भाशय से यदि अधिक रक्त बहता हो, तो उस रक्त को बंद करने के लिये गर्भाशय का मुँह संकुचित हो जाय, ऐसा उपाय करना चाहिए। यह बहुत ही गंभीर बात है। इस काम के लिये रोगी को जितना बन सके, उतना बरफ खिलाओ और यदि आवश्यकता समझी जाय, तो योनि और गुदा के अंदर भी रखना चाहिए।

पेट पर पैदा हुए ज़ख़्म, जो कुष्ठ से हो गए हों और उसी से उल्टी होती हो, तो उसे बंद करने के लिये एक रबर की थैली में बरफ रखकर पेट पर रख दो, अवश्य लाभ होगा।

मस्तिष्क में अथवा मस्तिष्क के अंदर की पतली झिल्ली में उत्पन्न हुए छिद्र और सूजन को नष्ट करने अथवा सिर में ज्वर की रुकी हुई गरमी से मस्तिष्क की क्षीणता को दूर करने में रबर की थैली (Ice Bag) बहुत ही शांतिकारक है। जिन्हें गर्मी अधिक लगती है और उससे गले में कंठमाला आदि बहुत-से विकार हो जाते हैं, तो भी इनको लाभ पहुँचाने में बरफ बहुत ही उत्तम वस्तु है। अंडकोष की उतरी हुई आँतें बरफ से ऊपर चढ़ जाती है। साथ ही अंडकोष की सूजन भी इससे मिट जाती है।

बरफ में इतने गुण हैं। परन्तु दुर्बल, वृद्ध, शक्तिहीन, बेहोश और मंदी हुई नाड़ीवाले को नहीं देनी चाहिए। क्योंकि ऐसे कमज़ोर रोगी को बरफ देने से उसकी ठंड से उसके शरीर में शीत हो जाता है, जिससे उसके रक्त की गति बंद हो जाती है और फिर मृत्यु हो जाती है।

कटि-स्नान

सारे शरीर के सिवा पेट और कमर के भागों को ही भले प्रकार धोना कटि-स्नान कहलाता है। इस स्नान के लिये एक बर्तन में या टब में शीतल, गर्म या गुनगुना जल भरकर रोगी को बैठावे। कमर तक पानी आ जाना चाहिए। फिर पेड़, कमर अथवा जननेंद्रिय के दोनों ओर के भाग धीरे-धीरे नरम कपड़े से मसलने चाहिए। कमर में दर्द हो, मूत्राशय, मलाशय या गुह्यावयवों में कोई रोग हो, तो यह प्रयोग बहुत ही उपयोगी होता है। पथरी के रोग में भी तकलीफ़ कम हो जाती है और थोड़ी पथरी तो इससे नष्ट भी हो जाती है। पेशाब बंद हो गया हो, तो ज़रा गुनगुने जल में १० मिनट तक बैठने से पेशाब खुल जाता है।

पाद-स्नान

कटि-स्नान की तरह पाद-स्नान भी किया जाता है। इसके लिये एक तसले की आवश्यकता होती है। इस बर्तन में हलका या तेज गर्म जल भरकर रक्खें। उसमें रोगी के पैरों को डबोवे। इस समय रोगी के शरीर पर गर्म कपड़ा लपेटे रखना चाहिए। यदि सिर गर्म हो, तो उस पर कपड़ा भिगोकर रख लेना चाहिए। कभी-कभी इस जल में एकाध मुट्ठी राई का चूर्ण

भी मिला देते हैं, जिससे पैरों की त्वचा जल्दी ही सुर्ख हो जाती है और रक्त पैरों की तरफ खिंचने लगता है। इस प्रयोग से रोगी को साधारण शांति से पसीना आ जाता है। यदि अधिक पसीना लाना हो, तो थोड़ा ठंडा पानी पीने देना चाहिए। इस प्रयोग के अभ्यास से सर्दी के मौसम से उत्पन्न हुए शिरोरोग, ज्वर और पैरों की सूजन आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

औषधि-मिश्रित स्नान

भिन्न-भिन्न रोगों की शांति के लिये कभी-कभी सुहाते जल के टब में औषधियाँ जल में मिलाकर स्नान कराते हैं। यह प्रयोग इतना बड़ा है कि विस्तारपूर्वक इस जगह वर्णन करने के लिये यहाँ स्थान नहीं है, तो भी कुछ प्रयोग नीचे लिखे जाते हैं--

(१) दस सेर जल में चार सेर गेहूँ की भूसी डालकर आध घंटा तक पकाओ। यदि आवश्यकता पड़े, तो पानी मिला लो। उससे स्नान करने से चमड़ी की खुजली और जलन शांत होती है, खुरड-मैल भी सब छूट जाते हैं।

(२) दस सेर जल में २० ग्रेन (२० रत्ती) सल्फेट ऑफ़ पोटाश डालकर स्नान करने से चमड़ी के रोग और संधियों के दर्द नष्ट होते हैं।

औषधि वाष्प-स्नान

नीम और गोमा के पत्ते पानी में डालकर खूब उबालो। फिर रोगी को कुर्सी या खाट पर बिठालकर उस बर्तन को नीचे बर्तन से ढककर रख दो। चार चारों ओर से कपड़ा ढक दो, धीरे-धीरे बर्तन का मुँह खोलकर मंदी-मंदी भाप देते रहो, इससे ज्वर और सिर का दर्द भी शांत हो जाता है। गोमा, नीम के पत्ते और बकरी की मींगनी, इन सबको पानी में खूब उबालकर ऊपर लिखी रीति से भपारा देने से तीव्र ज्वर भी शांत हो जाता है। सन्निपात में भी यह बहुत लाभकारी है।

जल का औषधोपचार केवल पीने और स्नान करने के ही काम आता है। इतना ही नहीं है वस्ति, पिचकारी आदि दूसरे विविध प्रयोगों में भी आता है। बद्धकोष्ठ का कष्ट दूर करने के लिये एनीमा या डूश या वस्ति यंत्र द्वारा अँतड़ियों में पानी भरना यह बात इन्टरनल बाथ के नाम से मशहूर है। पाव-डेढ़ पाव पानी में एक चम्मच नमक डालकर गुदा में पिचकारी देने से पेट में पड़े हुए कीड़े तुरंत निकल आते हैं, यह बात भी किसी से छिपी नहीं है।

अध्याय सातवाँ

भोजन

प्रकरण १

भोजन का वैज्ञानिक विश्लेषण

भोजन किसे कहते हैं

शरीर जिन चीज़ों से बना है और जिनसे उसका पोषण होता है, वे चीज़ें, जिन चीज़ों को खाकर शरीर में पहुँचाई जाती हैं, वे सब भोजन कहाती हैं।

भोजन से लाभ

भोजन से मुख्य लाभ यह है कि उससे शरीर की बढ़ोतरी होती है। काम करने से शरीर थकता है और मांस की बोटियाँ और स्नायु (नसें) घिसती हैं और टूटती हैं, यदि शरीर को उन पदार्थों की जगह, जिनका कि काम-धंधा करने से क्षय होता है, दूसरे पदार्थ न मिलें, तो शरीर क्षय होने लगे। भोजन उन ख़र्च हुए पदार्थों की जगह नए पदार्थों को देता है। इस तरह भोजन से यह कमी पूरी होती रहती है।

उत्तम भोजन

१—उत्तम भोजन वह है जो जल, वायु और मनुष्य के स्वभाव तथा प्रकृति के अनुकूल हो। इसके सिवा भोजन की चीज़ों का चुनाव करती बार इन ५ बातों का भी ख़याल रखना आवश्यक है— १ खानेवाले की आयु, २ ऋतु, ३ मनुष्य के शरीर का भार, ४ शारीरिक और मानसिक परिश्रम, ५ स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य। बच्चों, जवानों और बूढ़ों की पाचन-शक्ति, रुचि तथा परिस्थिति एक-सी नहीं होती, अतएव उनके लिये एक-सा भोजन ठीक नहीं। अवस्था के अनुसार उसमें परिवर्तन होना चाहिए। सब ऋतुओं में भी एक-सा भोजन नहीं खाया जाता है, गर्मी में ठंडी चीज़ें, सर्दी में गर्म चीज़ें, बर्सात में तर गर्म वस्तु खानी उचित है। इसी प्रकार दुबले और मोटे तथा ख़ूब मोटे मनुष्य का भी भोजन भिन्न-भिन्न प्रकार का होना उचित है। दुबले मनुष्य को पुष्टिकर और ख़ूब मोटे को जरा रूक्ष, जिससे वह बिल्कुल ही अजगर न हो जाय। शारीरिक और मानसिक परिश्रम करनेवालों के भोजन भी अलग-अलग होते हैं। क्योंकि भोजन में कुछ ऐसी वस्तु होती है, जो मस्तिष्क की शक्ति को बढ़ाती हैं और

कुछ वस्तु शरीर के मांस की वृद्धि करता है। इसी प्रकार तंदुरुस्त और रोगी के भोजन में भी बहुत अंतर होना चाहिए।

२—भोजन ऐसा होना चाहिए कि वह अच्छी तरह से पच सके। जहाँ तक हो, वह तादाद में कम हो। भोजन की सबसे बड़ी तारीफ यह है कि वह मिक़दार में कम, पचने में हलका और शरीर की पुष्टि करनेवाला हो। भुने हुए अन्न जो ज़रा भी पुष्टिकर नहीं होते, कभी भोजन की दृष्टि से खाने उचित नहीं हैं। ख़ासकर दुबले-पतले लोगों को, जिन्हें पुष्टिकारी वस्तुओं की सख़्त ज़रूरत होती है। ऐसी वस्तुओं में ताज़ा मक्खन और मलाई बेमिसाल चीज़ें हैं।

३—भोजन के पदार्थों में वैज्ञानिक दृष्टि से वे सब मूल अवयव होने चाहिए, जो शरीर में पाए जाते हैं। क्योंकि भोजन का कार्य यही है कि शरीर के जिन-जिन तत्त्वों का काम-काज से नाश हो, वह उनकी कमी को पूरी करे। इसलिये यदि भोजन के पदार्थों में वे सब तत्त्व होंगे, तो शरीर को अवश्य पोषण मिलेगा, और वह सदा ताज़ा और पुष्ट रहेगा।

शरीर के मूल अवयव

१—पोषक द्रव्य २—चर्बी ३—शर्करा (मिठास) ४—नमक ५—जल। ये पाँच शरीर के मूल अवयव हैं।

पोषक द्रव्य

इसे अँगरेज़ी में 'प्रोटीन' के नाम से पुकारते हैं। यह द्रव्य नत्रजनीय मिश्रण है। वैज्ञानिक रीति से इसका विश्लेषण करने से इसमें इतनी चीज़ें पाई जाती हैं—१०० भागों में कार्बन ५४, ओषजन २२, नत्रजन १६, उद्जन ७, गंधक १ भाग। इन सबके मिश्रण को पोषक द्रव्य कहते हैं।

यह पोषक तत्त्व शरीर में, बेचर्बी के मुलायम मांस और पतली कुरकुरी हड्डी में मिला होता है। गेहूँ में यह तत्त्व बहुत होता है, वही गेहूँ का सबसे अधिक बलवान् भाग है। यह चीज़ पानी में घुल जाती है। इसलिये जो गेहूँ पानी में धोए जाते हैं, वे शक्तिहीन हो जाते हैं।

मनुष्य के शरीर में १८ फ़ीसदी पोषक तत्त्व का भाग होता है। इसमें यदि कमी हुई, तो वह दुर्बल और कमज़ोर हो जाता है। इस तत्त्व के बिना हड्डी बन नहीं सकती। इसी से शरीर के रेशे और नसें बनती हैं। इसके बिना शरीर ही नहीं बन सकता। यह प्राण वायु के द्वारा जलता है, इसके जलने ही से शरीर में काम करने की फुर्ती और हौसले उत्पन्न होते हैं। इसका काम इंजन के ईंधन का काम समझना चाहिए। कुछ की चर्बी बन जाती है और शरीर में जमा रहती है। परंतु ये सब उसके साधारण कार्य हैं। उसका ख़ास काम नस, पुट्ठे और रेशे बनाने का है।

ये तत्त्व कई प्रकार के होते हैं। कुछ तो जल में घुल जानेवाले हैं, कुछ नहीं। शरीर

के इन पोषक तत्वों में सदैव रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं। पोषक तत्त्व और ओषजन के संयोग से ओषजनीकरण क्रिया होती रहती है, जिससे इस तत्त्व से यूरिक एसिड, एमोनिया और जल इत्यादि पदार्थ नए बन जाते हैं। जिससे गर्मी पैदा होकर शक्ति भी उत्पन्न हो जाती है।

तन्दुरुस्त आदमी के पेशाब में यह तत्त्व नहीं पाया जाता। पर किसी को गुर्दों की बीमारी हो, या मुआक हो चुका हो, अथवा दिल की कोई बीमारी हो, तो मूत्र में यह तत्त्व आने लगता है। उसे मामूली तौर से कोई देख नहीं सकता, क्योंकि वह बिलकुल मूत्र में घुला रहता है।

चर्बी

मक्खन, तेल, बिनौले का घी, मेवा, अखरोट और ज्वार में चर्बी ज्यादा पाई जाती है। मनुष्य और पशुओं के शरीर में चर्बी मांस के नीचे थक्का या छोटे-छोटे ढेर के रूप में रहती है। और छोटी-छोटी गाँठों के रूप में भिन्न-भिन्न रेशों के बीच में फैली रहती है। शरीर में चर्बी की मात्रा भोजन, शारीरिक कसरत और अवस्था पर निर्भर है।

यदि भोजन पेट में उस जरूरत से अधिक पहुँचे, जितनी कि शरीर को खास उस समय है, तो अधिक भोजन शरीर में जमा हो जाता है। और आगे के वास्ते काम आता है।

भोजन का पोषक तत्त्व और भोजन की चर्बी शरीर के पोषक तत्त्व और शरीर की चर्बी हो जाती है। इसके सिवा भोजन में जो शकर और निशास्ता होता है, वह चर्बी बनकर शरीर में जमा रहता है। और जब कभी भोजन की कमी होती है, तब यह पूँजी जलकर काम आती है।

मनुष्य के शरीर के भार में १८ फीसदी चर्बी होती है। जिन लोगों को अच्छा या ज़रूरत से ज्यादा खाना मिलता है और कसरत या मिहनत कम करनी पड़ती है, वे लोग मोटे हो जाते हैं। उसकी वजह यह है कि बढ़ती का भोजन चर्बी बनकर जमा होता जाता है।

यह चर्बी तीन चीजों से बनती है। कर्बन उदजन वा ओषजन। चर्बी जलाने से जल जाती है। यानी वह एक दहनशील पदार्थ है। जल से हल्की होने के कारण उस पर तैरती है। शीत के प्रभाव से जम जाती है और गर्मी में पिघल जाती है।

जब चर्बी का 'ओषजनीकरण' होता है, तब कर्बन द्विओषित गैस और जल उत्पन्न होते हैं, और साथ-साथ उष्णता के रूप में शक्ति भी निकलती है। १ माशा चर्बी के पूर्ण ओषजनीकरण (जलने) से इतनी गर्मी उत्पन्न हो जाती है कि उस पर ८ सेर जल यदि गर्म करने रखा जाय, तो जल १ दर्जा शतांश गर्म हो जायगा। अर्थात् यदि जल का ताप २० हो, तो २१ हो जायगा।

शकरा

निशास्ता शकर, फल, पौदे और तरकारी तथा अन्नों में भी होता है। मनुष्य के शरीर

में इसका भाग १ फीसदी है। यह वस्तु प्रत्येक में होती है। और भोजन का एक उपयोगी अंग है। यह जलकर मनुष्य में काम करने की शक्ति उत्पन्न करता है। और बड़े आराम से हजम हो जाता है। इनमें भी शरीर में चर्बी बनती है।

लवण

इसमें शरीर को कुछ भी शक्ति नहीं मिलती। फिर भी यह शरीर के लिये आवश्यक वस्तु है। यह शरीर में ५ या ६ फीसदी है। यह ज्यादातर हड्डी और दाँतो में पाया जाता है। कुछ रोगों में भी। जब शरीर जला दिया जाता है, तब केवल यही पदार्थ राख की सूरत में रह जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से इसकी कई जातियाँ हैं—जैसे सोडियम, पोटेशियम, मग्नेशियम, खटिक इत्यादि।

जल

शरीर में ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ जल न हो। शरीर के भार में १०० में प्राय ६५ हिस्से पानी है। बिना पानी के कोई मास-तंतु नहीं बन सकता। इसलिये हमारे भोजन में भी पानी अधिक रहता है। किंतु चूँकि पानी शरीर में जलता नहीं है, इसलिये शक्ति उत्पन्न नहीं करता। अधिक पानी शरीर में रहने से भारीपन और सुस्ती उत्पन्न करता है।

जल उदजन और ओषजन का संयोजित है। उदजन के दो परमाणु और ओषजन के एक परमाणु के रासायनिक संयोग से जल का एक अणु बनता है। शरीर में पोषक तत्त्वों, चर्बी और शर्करा के ओषजनीकरण से जल उत्पन्न हुआ करता है। रक्त और लिम्फ का अधिक भाग जल ही होता है।

तंदुरुस्त शरीर के मूल अवयवों का परिमाण

तंदुरुस्त शरीर में १०० भाग में ५७ भाग जल और अन्य पदार्थ है। यदि एक तंदुरुस्त आदमी के शरीर का वजन १॥ मन हो, तो उसके शरीर में इस हिसाब से मूल अवयव होंगे—

१—जल	४२॥ सेर	[लगभग]
२—चर्बी	११॥ सेर	,, ,,
३—पोषक तत्त्व	११॥। सेर	,, ,,
४—शर्करा	।=) छ०	,, ,,
५—क्षार	३।=) छ०	,, ,,
	कुल ६० सेर	,, ,,

भोजन करने का अभिप्राय यही है कि शरीर के उक्त मूल अवयव जो कि भोजन के द्रव्यों में भी होते हैं, भोजन करने से शरीर में पहुँचकर खर्च हुए द्रव्यों को भरपूर करें। एक मध्यम स्वास्थ्यवाले पुरुष के लिये जिसका वज़न १॥ मन हो, एक समय में इतना आहार काफी होगा, जिसमें निम्न-लिखित परिमाण में उपर्युक्त तत्त्व हो।

पोषक तत्त्व—७ तोला

चिकनाई—७ तोला

शकर—२० तोला

लवण, जल जितनी जरूरत हो।

मांस पोषक तत्त्व से ही बनता है। शरीर मे मांस का वज़न आधे से कुछ कम है, इसलिये जानना चाहिए कि भोजन में पोषक तत्त्व की कितनी ज़रूरत है। दिमागी मेहनत करनेवालो को पोषक तत्त्व अधिकवाले पदार्थ ही ज्यादा खाने चाहिए।

चर्बी और शर्करा ख़ास तौर से शरीर में शक्ति उत्पन्न करती है। इसलिये चिकनाई और शकर शरीर से परिश्रम करनेवाले लोगो को ज्यादा खानी चाहिए। ख़ासकर सर्दी के दिनो में। शायद सब लोग यह बात नहीं जानते कि शरीर में जाकर चिकनाई और चीनी एक ही काम अर्थात् गर्मी पैदा करके शक्ति बढाने का काम करती है—अगर कोई गरीब आदमी घी न खा सके, तो वह गुड खाकर उतनी ही ताकत शरीर मे पैदा कर सकता है, जितनी घी से पैदा होती, सिर्फ़ इतनी बात है कि घी-तेल देर मे हजम होते है और गुड चीनी आदि जल्दी।

२० २५ वर्ष की उम्र तक प्रत्येक स्त्री-पुरुष को ऐसे पदार्थ ज्यादा खाने चाहिए, जिनमे पोषक तत्त्व अधिक हो। क्योंकि २०-२५ वर्ष तक शरीर की वृद्धि होती है। और शरीर की वृद्धि के लिये पोषक तत्त्व बडा उपकारी हैं। भरपूर जवान स्त्री-पुरुष के १ वक्त के भोजन मे ४ तोले के लगभग पोषक तत्त्व अवश्य होना चाहिए।

निस्सदेह चिकनाई और मिठाई पोषक कार्य नहीं कर सकतीं। जो लोग मिठाइयो को पुष्टिकर समझकर बच्चों को बचपन में उन्हें खिलाते है, उन बच्चों के शरीर दुबले, मास पिचपिचा, चेहरा फीका रहता है। इसी प्रकार बेअंदाज़ चिकनाई खानेवाले स्त्री-पुरुष भी निकम्मे रह जाते है। उनकी रस, रक्त आदि कोई धातु पुष्ट नहीं होती। मारवाडी समाज मे घी खाने का रिवाज ज्यादा है, फल-स्वरूप आप इन परिवारों मे ढीलापन और भद्दापन देखेंगे। प्राय· स्त्री-पुरुषों मे बीज ग्रहण और बीज-वपन शक्ति कम होती है।

जल और नमक शरीर के प्रत्येक अंग मे पाए जाते है, बिना नमक के हड्डी बनती नही। परतु इन दोनो चीज़ों से शक्ति ज़रा भी नही आती। पर इनसे स्वास्थ्य ठीक रहता है। प्राय कहावत है कि बिना नमक खाए शरीर में ज़हर हो जाता है। पर ये सब झूठी बातें है।

प्रकरण २

दूध

दूध मनुष्य का सर्वमान्य आहार है। जन्मते ही बच्चा दूध पीता है और वह उसका प्रकृत आहार है। हमारी खुली सम्मति है कि चाहे भी जो रोग शरीर में प्रारंभ हो, मनुष्य को चाहिए सब खान-पान बंद करके केवल दुग्धपान करने लगे, तो निस्संदेह बिना ही औषध सेवन किए उसके सब रोग दूर हो जायँगे।

एक समय था कि साधारण गृहस्थों के पास हज़ारों की संख्या में गाएँ रहती थीं। आज जब कि एक गाय का मूल्य १००) है और उसकी चराई का खर्चा ।) रोज, यह बात समझ में नहीं आ सकती कि कभी प्रत्येक घरों में हज़ार-हजार गाएँ पलती रही हों। पर एक ज़माना ऐसा भारत में अवश्य था। ईसा से ८०० वर्ष पूर्व कात्यायन के काल में गौ १० पैसे को और बछड़ा ४ पैसे को मिलता था। बैल की कीमत ६ पैसा थी। भैंस ८ पैसे में आती थी, और दूध एक पैसे का एक मन आता था। इसके २०० वर्ष बाद अर्थात् मसीह से ३०० वर्ष प्रथम जब भारत पर प्रतापी सम्राट् चंद्रगुप्त राज्य करते थे, तब घी एक पैसे का दो सेर और दूध २५ सेर था। ईसवी सन् के शुरू में ४८ पैसे की गाय और ६६ पैसे का बैल मिलता था। ५वीं शताब्दि में विक्रमादित्य के राज्य में गौ ८० पैसे में मिलती थी और बैल ५१२ पैसे में। अलाउद्दीन के ज़माने में घी का भाव दिल्ली में ७४ पैसे मन था और अकबर के जमाने में १६५ आने मन।

उन दिनों नगर बहुत कम थे, खेती भी कम होती थी, नगर-बस्तियों के बाहर घने वन होते थे, और उनमें गाएँ स्वच्छंद चरा करती और अमृत-वर्षा करती थीं। दूध बेचने को सद्गृहस्थ पाप समझते थे। जैसे आज कोई पानी का मूल्य नहीं लेता, उसी तरह उस काल में दूध-घी का कोई मूल्य न था। खरीदार भी कोई न था। किसी को घी-दूध की कमी न थी। उन दिनों दीर्घायु, नीरोगी काया और दुर्धर्ष बल शरीर में रहता था। आज वे दिन नहीं रहे। आज हमारे दुधमुँहे बच्चों को भी एक बूँद दूध मिलना दुर्लभ हो रहा है। आस्ट्रेलिया की आबादी ४० लाख है और गाएँ १२ करोड़! पर इस समय ३२ करोड़ नर-नारियों से भरे हुए भारत में सिर्फ़ ४ करोड़ दूध देनेवाली गाय-भैंसें हैं, जो साल में ६ मास ही दूध देती हैं। इनकी भी हम ठीक-ठीक रक्षा नहीं कर सकते। हमारी गाएँ जैसी दुबली, रोगी और निकम्मी होती हैं, वैसी पृथ्वी पर कहीं नहीं होतीं। हम उन्हें निकम्मा, गंदा पानी पिलाते हैं—गंदी जगह में रखते हैं। उम्दा खुराक नहीं दे सकते। अकाल पड़ने पर ७५ फीसदी गाएँ मर जाती हैं। ऐसे हम गौरक्षक हैं!

कुछ दिन पूर्व काबुल के एक पदाधिकारी ने कलकत्ते में कहा था कि काबुल में रुपए का ४ सेर घी वा ३० सेर गेहूँ और ४० सेर दुंबे का मांस मिलता है। हाय! मुसलमानों के मुल्क में ४ सेर घी और हमारे भारत में १॥ सेर से भी कम!! अमेरिका, योरप और आस्ट्रेलिया में रुपए का १२ से १६ सेर तक दूध मिलता है। पर हमें अब रुपए में ३-४ सेर भी नहीं मिलता! यदि यही दशा रही, तो अंत में ऐसा होगा कि शायद धनवान रुपए चबाकर जी जायँ, मगर गरीब बेचारे निश्चय भूखे मर जायँगे।

अमेरिका के एक विद्वान् का कथन है कि दूध देनेवाली गाय अन्य पशुओं की अपेक्षा कम खाती है। साथ ही मनुष्यों के लिये उनकी अपेक्षा अधिक पोषक सामग्री देती है, इसके सिवा जहाँ गाय का दूध आवश्यकतानुसार सर्वोत्तम भोजन का काम देता है, वहाँ उसका घी औषध की रीति पर सर्वथा लाभप्रद है।

हमारे पूर्वजों को गाय का यह महत्त्व-पूर्ण अनुभव था। वे जानते थे कि मनुष्य के महत्त्व-पूर्ण पोषण के लिये उसका होना कितना आवश्यक है। इसी विचार से उन्होंने उसे 'माता' कहकर पुकारा और हर तरह उसकी पूजा की। अब भी गायों के लिये ये भाव हिंदुओं के हैं, पर वे केवल मन के मन में हैं।

भारत में प्रतिवर्ष ४० लाख गाय-बैलों की हत्या होती है, जिनमें केवल दो लाख भारतीय मुसलमानों के काम आते हैं, शेष ३८ लाख की खपत देश के बाहर होती है। इस समय संसार-भर में गोमांस का सबसे बड़ा बाज़ार भारत है! इस भयंकर गोनाश से न केवल दूध-घी की कमी रहती है, किंतु अन्न की उपज भी कम हो रही है। ज्यों-ज्यों ज़मीन का रकबा बढ़ता है, उपज की औसत कम होती है। कारण, मुल्क में मजबूत गाय-बैलों की कमी है। भारत की खेती में गाय-बैलों का मुख्य स्थान है, पर उनकी संख्या अब अरबों से घटकर कुछ करोड़ ही रह गई है। फिर भी कमी हो रही है।

बंबई सरकार की रिपोर्टों से पता चला है कि दूध के पशुओं की बराबर कमी हो रही है। गत ४ वर्षों में ४ लाख दूध के पशु कम हो गए हैं। इसका मुख्य कारण ऊपर बताया गया है कि हम गोपालन नहीं करते। दूसरा कारण सरकारी कसाई-घर है, जहाँ से प्रतिवर्ष लाखों मन मांस सुखाकर विलायत को रवाना किया जाता है।

पता चला है कि अकेले बादरा के कसाईख़ाने में गत ४ वर्षों में १॥ लाख से अधिक गाएँ और २१ हजार के लगभग भैंसें काट डाली गई हैं। इनके सिवा १० हजार के अनुमान बिना ब्याही गाएँ और जवान बछड़े तथा ९८ लाख के लगभग बैल काट डाले गए हैं। यह एक सरकारी कसाई-घर का हिसाब है। ऐसे-ऐसे कितने ही कसाई-घर हैं। प्रतिवर्ष भारत से १६ करोड़ रुपए का तो चमड़ा ही बाहर भेजा जाता है।

यह बड़ी लज्जा की बात है कि सरकार चमड़े के व्यापार और सूखे मांस के व्यापार के लिये जितनी सरगर्मी दिखाती है, उतनी दूध के पशुओं की नस्ल सुधारने में नहीं दिखाती।

विदेश के मुल्कों में जहाँ गाय पवित्र प्राणी नहीं माना जाता, वहाँ गायों की नस्ल उन्नत की जा रही है।

भारत में ८० हजार गोरे सिपाही हैं, जिनका भोजन गोमांस है। प्रत्येक पुरुष १॥ सेर मांस भी प्रतिदिन खाय तो रोजाना ६४६ मन और साल-भर में ३ लाख ४५ हज़ार २६० मन हुआ। इतना कितनी गायों की हत्या से मिलेगा? फिर ७ करोड़ मुसलमान भी हैं, जो ज़िद या गरीबी के कारण महँगा बकरी का मांस न खाकर सस्ता गाय का मांस खाते हैं।

दर्जन-भर के लगभग सरकारी कसाई-घरों के अलावा देश में ३॥ लाख के अनुमान कसाई हैं। यह जानकर रोमांच होता है कि आज ऋषियों की पवित्र भूमि पर २० करोड़ (?) मांसाहारी मनुष्य रहते हैं। इनमें से ७ करोड़ मुसलमान और १० लाख अँगरेज़ निकाल दिए जायँ, तो भी ८॥ करोड़ हिंदू मांसाहारी लोग बच रहते हैं, जिन्होंने बकरी के मांस को इतना महँगा कर दिया है कि गरीब मुसलमान लाचार गाय का गोश्त खाते हैं।

इसके सिवा गत १० वर्ष में ३२ लाख जीते पशु काटे जाने के लिये जहाजों में भरकर पानी के रास्ते से और १६ लाख से ऊपर खुश्की के रास्ते से ईरान, तिब्बत आदि को मांस के लिये भेजे गए हैं।

क्या दयालु हिंदुओं के लिये यह विचार और चिंता का विषय नहीं है। पुराने ज़माने के लोगों की गुज़र बिना दूध के नहीं होती थी। क्या हमें वह दूध अब कड़ुवा लगता है, या कि गले में अटकता है कि हम गाय पालने की रुचि नहीं रखते? हम कुत्ते बड़े शौक से पालते हैं, और मोटर के लिये २००) मासिक ख़र्च करते हैं। परंतु गाय पालने में हमें क्या है? हाय हम कैसे पतित हिंदू हैं!

अपने पालतू कुत्ते से मुँह चाटने में आपको खूब मजा आता होगा। परंतु यह तो कहिए, कभी आपने गाय भी पाली है? घी-दूध के आप दुश्मन तो न होंगे, यह तो बँधी हुई बात है। पर घी की जगह आप खाते होंगे चर्बी और मंडी-कुप्पी तेल की घपलेबाज़ी, फिर दूध की क्या कहें, गुनगुना सफ़ेद पानी पीकर आप भी गुनगुने हो जाते होंगे? पर गाल तो पिचके ही रहे। चेहरा भी फीका, और बच्चों की तो क्या कहें। रोगी और मंदमंद, यह क्यों? यह यों कि आपको गायों के पालने का शौक नहीं। कुत्ते, तोता, मैना और न-जाने आप क्या-क्या पालेंगे, पर गाय पालने में कुट्टी-सानी, धार, गोबर, सौ झंझटें निकालेंगे। आपकी श्रीमतीजी ठहरीं जरा फ़ैशनेबुल, दूध बिलोने की ताकत उनके भुजदंडों में कहाँ, फिर आप ही कहिए, आप नीरोग, स्वस्थ और सुखी कैसे हों? आप के बाल-बच्चे ही किस तरह मोटे-ताजे रहें?

घृणित चर्बी का घी और गंदे रोग के कीटाणुओं से भरा हुआ दूध पीना मंजूर, पर दस मिनट गौ-सेवा करके अमृत के समान घी-दूध बच्चों को पिलाना मंजूर नहीं। आजकल दूध के लिये स्थान-स्थान पर डेरियाँ खोली गई हैं, और वे स्वच्छ दूध सर्व साधारण को देती हैं। बंबई-प्रांत में चार डेरियाँ हैं। इनके द्वारा वर्ष में ४५,०००) रु० का दूध बेचा गया, जिसमें

सब खर्च काटकर ३,०००) का लाभ हुआ। बंगाल मे ऐसी ६४ संस्थाएँ है। ये सब कलकत्ते के कॉ-आपरेटिव मिल्क-यूनियन से मिली है। इस यूनियन ने १ वर्ष मे ५,४७,६८८) का दूध बेचा है। यह यूनियन सन् १६१० में स्थापित हुआ था। आरभ मे इसे ५,३१५) का घाटा हुआ। पर १६२४-२५ मे २०,१४६) रु० का लाभ हुआ।

कुछ दिनो पूर्व कलकत्ता-निवासियो का ध्यान सस्ते और स्वच्छ दूध की तरफ आकर्षित हुआ था। इधर जब कि यह ज्ञात हुआ कि दूध के अभाव से प्रतिवर्ष ६०० बालको की मृत्यु हो जाती है, तब यह प्रश्न और भी महत्त्व-पूर्ण हो गया। इस समय कलकत्ते मे ३,००० मन दूध की खपत का अनुमान लगाया गया है। ८०० मन दूध सियालदा-स्टेशन से होकर, ५० मन हबड़ा से होकर बाहर से आता है, शेष प्राय २,००० मन दूध कलकत्ते और आस-पास के स्थानों से प्राप्त हो जाता है। यहाँ की मनुष्य-संख्या १०,७७,२६४ है, जिनके हेतु ३,००० मन दूध पर्याप्त नहीं है, और औसत लगाने से १०७ छटाक प्रति व्यक्ति के भाग आता है। कलकत्ते के भीतर जितना दूध खपता है, उसका ठेका ग्वालो ने ले लिया है, जो इस कार्य मे बडी ही निष्ठुरता का व्यवहार करते है। ये ग्वाले मनुष्य के जीवन का तनिक भी विचार नही करते।

दूध लाते समय उसकी स्वच्छता के बारे में वे कुछ भी चेष्टा नही करते। दूध को अपने समीप रखकर वे तबाकू पिया करते और छीकते हैं। उन लोगो ने इस कार-बार पर अपना प्रभुत्व जमा लिया है, इनके द्वारा न्याय की आशा दुराशा-मात्र है। दूध के अभाव से बछडो के मरने के पश्चात् ये लोग "फूका द्वारा" दूध चूसते है। और बाद को उन गायों को कसाइयो के हाथ अर्पण कर देते है, इस भाँति माताओं के तुल्य ये गाएँ इस राक्षसी कुप्रथा के कारण हत्यारो के हाथो मारी जाती है। इस प्रश्न को सुलझाने के लिये प्राचीन कलकत्ता-कारपोरेशन ने बडी शक्ति और धन का उपयोग किया था, किंतु कुछ फल नहीं प्राप्त हुआ। मि० मास्टन इसके सुधार के निमित्त नियुक्त हुए थे, और इस सबध मे उनकी राय माँगी गई थी, उन्होने कहा था कि कारपोरेशन को इस संबंध मे ५० लाख रुपए व्यय करने की आवश्यकता है। परंतु उनकी बातें कार्य-रूप मे परिणत न हो सकी।

इसके बाद स्वर्गीय देशबधु सी० आर० दास के समय मे इस सबध मे कुछ प्रयत्न किया गया, और १६१६ मे मिल्क-यूनियन की स्थापना हुई। इसका कार्य अब कारपोरेशन की सहायता से सुचारु रूप से हो रहा है, और अब मिल्क-यूनियन इस बात का प्रबंध कर रही है कि कलकत्ते में किस प्रकार अधिक और आरोग्य-वर्धक दूध का प्रबध हो सकता है।

मध्य-प्रात मे अमरावती की डायरी घाटे पर चलती थी, पर नागपुर के पास ही तेलगी खैर की सस्था ने एक वर्ष मे १६,४२५) का दूध बेचा और ७,१२८) का फायदा प्राप्त किया। हम कह सकते है कि यदि गाँव के चौपाए पालनेवाले अपना सगठन कर ले और एक सामूहिक शक्ति से काम करके लोगो को शुद्ध और सस्ता दूध दे, तो इन्हे अवश्य लाभ हो, और जनता को सुख भी मिले।

अमेरिका में हर साल सबसे अधिक स्वस्थ और सबसे अधिक दूध देनेवाली गाय के मालिक को इनाम दिया जाता है। हरएक प्रांत में नुमायशें होती हैं और अच्छी गायों को अच्छे इनाम दिए जाते हैं।

गौ को माता माननेवाले भारत देश की तरह वहाँ दुबली-पतली गौ नज़र नहीं आती। इस वर्ष जो गौ प्रथम आई थी, वह इतना दूध देती थी कि यदि एक बालक को वह पिलाया जाय, तो उसका एक दिन का दूध बालक के लिये ३६५ दिन तक काफी होगा। गाय बहुत सुंदर और हृष्ट-पुष्ट थी। जब उस गाय को इनाम मिला, तो न्यूयार्क के रईसों ने उस गाय की दावत की। एक सार्वजनिक बाग में शहर के मुख्य-मुख्य रईस तथा अधिकारीगण बुलाए गए, मेज-कुर्सियाँ सजाई गईं, और नाना प्रकार के भोजन परोसे गए। ठीक समय पर सुंदर रेशमी झूल ओढ़े हुए गौ लाई गई, उसके आते ही सब उपस्थित सज्जन सादर खड़े हो गए, और गो माता का अभिवादन किया।

फिर प्रधान महोदय ने कहा—"महोदय! आज मुझे बड़ा हर्ष होता है, जब मैं यहाँ इसलिये खड़ा होता हूँ कि हमारे देश की परम सुंदर और स्वस्थ तथा सबसे अधिक दूध देनेवाली गौ का स्वागत करूँ। मैं आशा करता हूँ कि आप मेरे साथ इस कामना और हार्दिक प्रार्थना में सम्मिलित होंगे कि हमारी आज की मेहमान श्रीमती गौदेवी की हम अभ्यर्थना करें। अब मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि हमारी सम्मिलित मेहमान की स्वास्थ्य-कामना के चिह्न-स्वरूप आज इस दावत में आप एक-एक प्याला शराब नहीं! हमारी आदरणीया मेहमान गौ का ही दूध पीजिए।"

गो-पूजक भारतवासी देखें कि दूसरे देशवाले किस प्रकार गो-पूजा करते हैं। कब वह दिन आवेगा, जब भारत में भी इसी प्रकार गौ माता की सच्ची पूजा भारतवासी करेंगे।

इस प्रकरण में हम गाएँ, कैसे पाली जायँ, इसके हर पहलू पर विचार करेंगे। हम यह आशा करते हैं कि इससे वे लोग जो अपने दूध पीने के लिये गाय को पालना चाहें, तथा वे लोग जो दूध का व्यापार करना तथा डेरी खोलना चाहें, सबको बहुत कुछ सहायता मिलेगी। गाय पालने से इतने लाभ हैं—

१—उत्तम दूध-घी—प्राचीन काल से हमारे देश में गौ को माता के समान पवित्र और हितकारी माना गया है। ऐसा कोई घर न था, जहाँ गौ न हो। पर खेद है, आज गो-पालन के नामों से लोग बिलकुल वंचित हो गए हैं। ऐसा समय आ गया है कि एक तो यों ही सब लोगों को दूध नहीं मिलता, जिन्हें मिलता भी है, वे जेब की गाय रखते हैं—और बाजार से सड़े-सड़े अशुद्ध, निकृष्ट और नाम-मात्र का दूध पीने में शान समझते हैं।

परंतु यदि कोई सज्जन अपने स्वास्थ्य और धर्म की ओर से इतना उपेक्षा-भाव रखते हैं कि बाजार का गंदा दूध, चर्बी मिला घृत और कीड़ों पड़ा दही खाने को तैयार हैं, तो उन्हें भी कम-से-कम अपने परिवार के स्वास्थ्य पर दया करके गौ पालने के लाभों पर ध्यान देना चाहिए।

दूध वेचनेवाले हलवाई, ग्वाले, घोसी परले दर्जे के गदे और वेईमान होते है। वे दूध में झूठा, अशुद्ध और मैला पानी मिलाते है। बहुत-से चाक मिट्टी, सिंघाड़े का आटा या शकरकंद घोल देते हैं, बहुधा मक्खन निकाला दूध मिला देते है। और मक्खी, मच्छर, कूड़ा-करकट दूध में पडने की तो उन्हे परवाह ही नहीं होती—वे अपने पैसो से मतलब रखते है, अनेकों भयंकर और छूत के रोगी पशुओं के दूध को भी, जो कि विष के समान है, वेचने मे ये लोग नही हिचकिचाते। कुछ लोग भैंस के दूध मे पानी मिलाकर उसे गाय का वता देते है और कोई बकरी के दूध मे भैंस का मिलाकर बढिया गाय का दूध बनाते है।

यह अनाप-शनाप मिलावटी दूध स्वास्थ्य के लिये महा हानिकर है। घर मे गौ पालने ही से स्वच्छ और उत्तम दूध मिल सकता है।

२—सस्तापन—गाय पालने का दूसरा लाभ सस्तापन है। गाय के खाने-पीने का खर्च, यदि होशियारी से गायो की सम्हाल की जाय, तो उसके दूध के दाम से पौना बैठता है। आजकल यों तो सभी जगह चारा महँगा हो गया है, पर किसी-किसी बडे शहर में बहुत ही महँगा मिलता हैं, पर वहाँ उतना ही महँगा दूध भी मिलता है, औसत बराबर ही हो जाती है।

इससे यह समझ लेना चाहिए कि थोडा दूध देनेवाली गौ की अपेक्षा अधिक दूध देनेवाली गौ का पालन हमेशा लाभकारी है। एक अच्छी और बडी गौ दिन-भर में दस-बारह सेर दूध मजे मे दे देती है। घर ख़र्च से जो दूध बचे, वह बेचा जा सकता है, नही तो उससे घी निकाला जा सकता है। ऐसी दशा में गो-पालन का ख़र्च उसके घी-दूध की आमदनी की अपेक्षा पौने से हरगिज़ अधिक नहीं हो सकता। घी-दूध सदा विक जानेवाली वस्तु हैं, इससे किसी तरह नुकसान की संभावना नहीं रहती।

३—बछडा—दूध-घी के सिवा गो-पालन से बछडे का लाभ और है। यदि बछडा अच्छी नसल का हो और ८-९ महीने का हो गया हो, तो १५-२० रुपए मे मज़े से विक जाता है।

४—फुटकर—गोबर भी बेचा जा सकता है, जिसके उपले पाथकर ईंधन की तरह काम में ला सकते है, और जो खेत के लिये उत्कृष्ट खाद है, तिस पर भी मरने पर चाम, सींग, हाड ये सब उपयोगी और दाम की वस्तु है। इसीलिये पूर्वजो ने गौ को धन के नाम से पुकारा है।

अलबत्ता धनी और कामचोर आलसी लोगों को गो-पालन में लाभ नहीं रह सकता। कारण, वे लोग गौ की निगरानी नौकरों की दया पर छोड देते है, जिससे उसका ख़र्च इतना बढ जाता है कि उनका पालना जी का जंजाल हो जाता है, क्योंकि ऐसी दशा मे पाजी नौकर गहरा हाथ मारते है।

दूध के संबंध की खास बाते

१—दूध मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ आहार है। २—वह अत्यन्त रोगोत्पादक कीटाणुओं द्वारा या उसमें मिलाए जानेवाले पानी आदि के दूषित होने से शीघ्र बिगडकर रोगोत्पादक हो जाता है। ३—वह बच्चो के लिये सर्वांग-पूर्ण आहार है। ४—वह अनेक कारणों से शीघ्र

बिगड जाता है। ५—दूसरे खाद्यों की अपेक्षा वह शीघ्र खराब हो जाता है। ६—शहरों में बाज़ार का दूध शुद्ध और नीरोग मिलना प्राय असंभव है। बाजार का अच्छे-से-अच्छा दूध आरोग्यता का नाश करनेवाला है।

दूध बच्चे के लिये अत्यत आवश्यक खाद्य है, इसलिये शुद्ध दूध की प्राप्ति के लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिए।

शुद्ध दूध किसे कहते हैं

दूध की शुद्धता ४ बातो पर निर्भर है। १—दूध खालिस हो, उसमे पानी आदि मिला न हो। २—जिस जानवर से दूध काढा गया हो, वह नीरोग हो। ३—दूध मे गंदगी, कूडा-करकट और धूल न हो। ४—उसमे कोई रोग-जंतु न हो।

दूध अशुद्ध होने के कारण

(क)—धार काढने के समयः—

१—गाय या भैंस रोगी हों। २—धार काढने से प्रथम गाय-भैंस के बच्चे जो थन पीते है वे रोगी हो। ३—जानवरों के पेट और थन ठीक-ठीक न धोए गए हों। ४—धार काढने-वाले के हाथ धुले न हो। ५—धार काढनेवाले के वस्त्र मैले हो। ६—धार काढ़नेवाले की गंदी आदतें हो—जैसे नाक सिनककर हाथ से पोंछना, थूकना, खाँसना, छींकना आदि। ७—धार काढनेवाले को कोई (क्षय आदि) छूत का रोग हो। ८—पशु के बँधने का स्थान गंदा, दुर्गंधित, सील-भरा और दूषित हो। ९—धार काढ़ने का बर्तन गंदा हो। १०—दूषित दूध में पानी मिलाया गया हो या थन उससे धोए गए हों जिसमें हैजा या मोतीझरे आदि के रोग-जंतु हो।

(ख)—दूध को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने के समय—

१—दूध को उघारकर ले जाने से मार्ग की धूल, मिट्टी, गंदगी, मक्खी आदि का गिर जाना। २—दूध पर ढकने का गंदा कपडा या घास-फूस जो बहुधा गंदी जगहो मे से ले लिए जाते है। ३—एक स्थान से दूसरे स्थान को रेल मे जाते हुए दूध का बर्तन लापरवाही से स्टेशन पर पडा रहने देना और उसमे मक्खी, मच्छर, धूल का पडना। ४—रेल के गंदे डब्बे और दूध ले जाने की गंदी रीति। ५—मार्ग मे गंदे पानी का मिला देना। ६—दूध की दूकान की गंदगी। ७—दूध बेचती बार बारबार दूध में हाथ डालना। ८—दूध को कंधे या सिर पर रखकर घूमनेवाले की गंदी आदतें।

(ग)—दूध पीनेवालो के द्वाराः—

१—गंदे नौकरो की लापरवाही और सुस्ती से। २—दूध गर्म करने और रखने का पात्र ठीक-ठीक साफ़ न होने से। ३—घर की मक्खियो के बेरोक-टोक दूध पर बैठने से।

दूध के द्वारा उत्पन्न होनेवाले रोग

दूध यदि शुद्ध न होगा, तो उससे इन रोगो के उत्पन्न होने का भय है—हैज़ा, विषम-

ज्वर, मोतीझरा, माल्टा फ़ीवर (यह बकरी के दूध से होता है), संग्रहणी, अतिसार, अजीर्ण, क्षय रोग इत्यादि उत्पन्न हो जाते हैं ।

इसलिये प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि वह दूध ख़रीदने के समय यथासंभव उपर्युक्त सूचनाओं पर ध्यान रखकर विशुद्ध दूध ख़रीदे, और उसे घर में आते ही तत्काल उबाले, और शीघ्रता से ठंडा करके काम में लावे । दूध को उबालने से उसके बहुत-से रोग-परमाणु नष्ट हो जाते हैं । दूध के संबंध में स्वच्छ रखना और उबालना दो ही बातें मुख्य हैं ।

दूध का वैज्ञानिक विश्लेषण

नीचे लिखी सारिणी से इस बात का पता लग सकता है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के दूध में कितने मूल अवयव होते हैं—

प्राणी	प्रोटीन	वसा	शर्करा	लवण	जल
स्त्री	१ ३	३ ५	६ ४०	०.२०	८८ ८९
गाय	३ ५	४ ०	३ ५	० ७५	८७ २५
घोड़ी	२ ०	१ २०	५ ६५	० ३६	९० ७९
गधी	२ २५	१ ६५	६ ००	० ५०	८९ १०
बकरी	४ ३	४ ७८	४ ४६	० ७५	८५ ७१
भैंस	६ ११	७ ४५	४ १७	० ८७	८१ ४०

गाय का ताजा दूध बिलकुल स्वच्छ और मीठा होता है, और वह सब श्रेणी के मनुष्यों के लिये आवश्यक आहार है । सो केवल इसीलिये नहीं कि इसे बच्चे तक बड़ी आसानी से हज़म कर सकते हैं, और वह स्वभाव से ही सुपथ्य है, किंतु ख़ासकर इसलिये भी, कि उसमें आहार के उपयोगी अनेक तत्त्व भी हैं, परंतु बड़े ही खेद का विषय है कि ऐसा अमृत पदार्थ सिर्फ़ कुछ साधारण असावधानियों के कारण विष के रूप में हमें मिलता है । दूध को दुहने, बाजार में बेचने और काम में लाने के तरीक़े मारे भारतवर्ष में इतने गंदे और घृणित हैं कि बाज़ार का अच्छे-से-अच्छा दूध पीने की मैं किसी को सम्मति नहीं दे सकता । बंबई की म्युनिसिपैलिटी ने एक बार बाज़ार से १५०० दूकानों से दूध मँगाकर जाँच की, तो सौ में नब्बे नमूनों में धूल, मिट्टी, मैल और मरे, सड़े, गले मक्खी मच्छरों के अंग तथा ⅕ भाग पानी प्रत्येक नमूने में मिला पाया गया । जनता का और सरकार का भी यह परम कर्तव्य है कि बाज़ार में विशुद्ध दूध के मिलने के सुबीते पर विचार करें ।

स्त्री और पशुओं के दूध का अंतर

१—स्त्री के दूध की अपेक्षा गाय के दूध में तिगुना पोषक तत्त्व है। २—चिकनाई क़रीब-क़रीब बराबर है। ३—स्त्री के दूध मे शर्करा का भाग गाय से अधिक है। ४—गाय का दूध स्त्री के दूध की अपेक्षा जल्दी खट्टा हो जायगा, क्योकि उसमे लवण का अंश अधिक है। ५—भैंस के दूध से स्त्री और गाय के दूध की अपेक्षा दुगनी के लगभग चिकनाई होती है। ६—बकरी का दूध लगभग गाय के दूध के समान ही होता है, पर उसमें गाय के दूध से कही अधिक चिकनाई होती है।

जिन पशुओं को मुँह, खुर और छाती की बीमारियाँ होती है, उनका दूध दूषित हो जाता है। घाववाले पशु का दूध भी पीना उचित नहीं। ऐसे दूध के पीने से सख़्त ज्वर (मियादी बुख़ार), मदाग्नि, गुल्म, शूल, क्षय और दाहरोग हो जाने का भय है।

अन्य बाते

जिस दूध से मक्खन निकाल लिया जाता है, उसमें पोषक तत्त्व और शर्करा बदस्तूर रहती है। सिर्फ़ चिकनाई का भाग हाथ से मक्खन निकलने पर सौ मे एक भाग और मशीन से निकलने पर उससे चौथाई रह जाता है।

जमाया हुआ विलायती दूध (Condensed Milk) तृतीयाश गाढ़ा होता है और इसमें प्राय गन्ने की शकर मिली होती है।

दूध को जलाकर यदि उसकी राख का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय, तो इतने प्रकार के क्षार पाए जायँगे—

केल्शियम फास्फ़ेट—२३	८७%
,, सल्फ़ेट—२ २५	,,
,, कार्बोनेट—२ २५	,,
,, सिलीकेट—१ २७	,,
पोटेशियम कार्बोनेट—२३ ४७	,,
,, क्लोराइड—१२ ०५	,,
,, सल्फेट—८ ३३	,,
मग्नेशियम कार्बोनेट—३ ७७	,,
सोडियम क्लोराइड—२१ ७७	,,
एलब्यूमन—० ३७	,,
	१०० ००

मलाई

मलाई के वैज्ञानिक विश्लेषण करने मे उसमें नीचे लिखे तत्त्व पाए गए है।

पोषक तत्त्व २ ५

चिकनाई	१८.५
शर्करा	४.५
नमक	०.५
पानी	७५.०

जितने प्रकार की चिकनी चीज़ें हैं, उनमें मलाई सबसे अधिक जल्दी हजम होनेवाली है। यह काडलीवर आइल से कहीं अत्यंत ऊँचे दरजे की पुष्टिकर और ग्राह्य है। मलाई का चिकनाई का भाग वही है, जो मक्खन में है, परंतु मक्खन की बनिस्बत मलाई बहुत महँगी पड़ती है।

अच्छे दूध में सेर पीछे एक पाव खोवा, ३ छटाक मलाई, १½ पाव रबड़ी और एक छटाक घी बैठता है।

मलाई जमाने की विधि यह है कि दूध को खूब औटाओ, और चौड़े मुँह के बर्तनों में एकांत स्थान में ठंडा होने को रख दो। मिट्टी के कूँडे मलाई जमाने के लिये अच्छे होते हैं। अथवा सोलह-सत्रह इंच लंबे और ७-८ इंच चौड़े तथा १½ इंच गहरे ताँबे के पात्र तश्तरी के आकार के—जिन पर अच्छी तरह कलई की गई हो, मलाई जमाने में अच्छे रहते हैं। दूध डालने से प्रथम उन्हें अच्छी तरह रगड़कर धो लेना चाहिए। किसी तरह की चिकनाई और खट्टी गंध उनमें न रह जाय। फिर थोड़ा धूप में सुखाकर उनमें दूध भर देना चाहिए। ये पात्र दूध से पौने भर देना चाहिए, और दूध को सन्नाटे के कमरे में रख देना चाहिए, जो बंद और ठंडा हो, जहाँ कोई न आवे-जावे। आने-जाने से वहाँ की हवा में विघ्न पड़ेगा, और मलाई ठीक न जमेगी। गर्मी में रात को किवाड़ खोल देने चाहिए। जब तक मलाई न जम ले, बर्तन कदापि न हिलने पावे। बर्तनों के नीचे रेत बिछा देना बहुत अच्छा होता है। बदली के दिनों में मलाई अच्छी नहीं जमती। पाले का दिन बहुत ही बुरा है। जमाने के लिये उजला साफ़ धूप का दिन ठीक है।

मलाई उसी दूध में पड़ सकती है, जिसे रक्खे हुए १२ घंटे से अधिक न हुए हों। पर गर्मी और बरसात में दूध जल्दी खट्टा हो जाता है। इसलिये दूध को ताज़ा-ताज़ा उबालकर मलाई बना लेनी चाहिए। कच्चे दूध की अपेक्षा औटे हुए दूध में मलाई अच्छी पड़ती है। मलाई और मक्खन के लिये दूध को पीने के दूध की अपेक्षा अधिक उबालो। परंतु याद रहे कि उबाला हुआ दूध खट्टा जल्दी हो जाता है। चाँदी के प्याले, गिलास और चम्मच से भी दूध खट्टा हो जाता है। लोहे से दूध का गुण तो नहीं कम होता, पर मलाई का रंग कुछ मैला अवश्य हो जाता है। पीतल के बर्तन में दूध रहने से पितला जाता है। नए मिट्टी के बर्तन में दूध सोंधा हो जाता है, और मलाई-मक्खन भी खूब निकलता है। फूल, जस्त और कलई के बर्तन भी अच्छे हैं। काठ के पात्र भी बुरे नहीं हैं। मलाई अत्यंत मैथुन-शक्ति बढ़ानेवाली है।

मक्खन

मक्खन गर्म दूध का अच्छा, गाढ़ा, चिकना और अधिक स्वादिष्ट होता है। पर गर्मी में कच्चे ही दूध का निकालना चाहिए।

यदि तमाम दूध से ही मक्खन निकालना है, तो उसे रात-दिन रक्खा रहने दो, हिलाओ-डुलाओ नहीं, तो उस पर मोटी मलाई की तह जम जायगी, और मक्खन अधिक और जल्दी निकलेगा। पर वह दूध इतना खट्टा हो जाता है कि पीने के काम का नहीं रहता। यदि दूध भी काम में लाना है, तो रात-भर ही रखकर मक्खन निकाल लेना चाहिए। इसमें मक्खन कुछ कम निकलेगा। रई और उसके इस्तेमाल को सब जानते हैं, उससे पाव घंटे में मक्खन निकल आता है। मशीन से कुछ जल्दी निकलता है। मलाई से यदि मक्खन निकालना हो, तो तमाम मलाई को बर्तन में डाल दो और ठंडे पानी के ज़रा छींटे दो, और दूध की अपेक्षा ज़रा जोर से हाथ मारो। ज्यों-ज्यों मक्खन आने लगे, हाथ कुछ धीमा करते जाओ। ख़याल रखना चाहिए कि रई गर्म न होने पावे, वरना मक्खन तै जायगा, तो कठिनाई पड़ेगी।

ज्यों ही हाथ भारी होने लगे, रई को ख़ूब धीमी कर दो, और देखो कि मक्खन के दाने तैरने लगे हैं। फिर बहुत ही आहिस्ता-आहिस्ता रई मारो, जब तक कि मक्खन का लोंदा न बन जाय।

स्मरण रहे, जब तक तमाम मक्खन का लोंदा न बन जाय, मक्खन बाहर नहीं निकालना चाहिए। ऐसा करने से बहुत कम मक्खन बाहर निकलेगा। जब सब मक्खन निकल आवे, तो उसका एक लोंदा बनाकर एक घड़े में ठंडा पानी भरकर उसमें डाल दो, कुएँ और तालाब का पानी कुछ गर्म होता है। जरा-सा नमक मिलाकर रखने से मक्खन कई दिन तक खट्टा नहीं होता। जल अलबत्ता दोनो समय बदलना चाहिए।

मक्खन को कभी हाथ से नहीं छूना चाहिए, न गर्म स्थान में रखना चाहिए, उठाने-धरने का काम लकड़ी या बाँस की खपची के चीमटे से करना चाहिए। मक्खन निकालने का काम सदा बहुत सवेरे उठकर करना चाहिए।

गर्मी में यदि मक्खन पिघल जाय और आसानी से न निकले, तो उसमें थोड़ी-थोड़ी बर्फ के टुकड़े डाल देने से और हंडी को ठंडे पानी में रखने से मक्खन निकल आता है।

मक्खन के गुण

१—ताजा मक्खन ठंडा, वीर्यवर्धक, तेजोवर्धक, कांतिकारक, कुछ काबिज, शक्तिदाता, रुचिकारी, स्वादु, नेत्रों को हितकारी, बवासीर, क्षय, रक्त-विकार, लकवा, थकान और श्वास में गुणकारी है।

२—बासी मक्खन भारी और कफ पैदा करनेवाला हो जाता है। वह चर्बी भी पैदा करता है।

मक्खन रोगों पर

१—क्षय मे शक्ति लाने के लिये मक्खन १ तोला, मिश्री १ तोला, शहद छः माशा और वर्क-सोना १ नग मिलाकर सुबह-सुबह चाटे। २—आँखें जलती हो, तो मक्खन मले। ३—हाथ-पैरों में जलन हो, तो मक्खन-मिश्री खावे। ४—बोदरी माता मे—बच्चों के शरीर मे गर्मी भिदी हो, तो छः माशा मक्खन-मिश्री और जरा-सा पिसा जीरा मिलाकर खाय। ५—भिलावा आदि आँख में गिर पड़े, तो मक्खन मले। मक्खन-तिल खावे।

घृत

हर अठवारे पर सब मक्खन या लौनी को इकट्ठाकर घृत बना लेना चाहिए। प्राय रविवार के दिन देहात में घृत बनाते और सोमवार को बाजार में बेचने आते हैं। सोमवार को सब बाजारों मे प्राय ताजा घृत मिल जाता है।

घृत बनाना—एक साफ़ कड़ाई या कलईदार डेगची मे सब मक्खन भरकर मंदी-मंदी कोयलों की आँच पर रक्खो और धीरे-धीरे तपने दो।

पहले कुछ मैली आवेगी, फिर कुछ गाढ़ी होगी, पीछे अंदर कुछ सफेद-सफ़ेद धुँधला-सा दिखाई देगा, थोड़ी देर बाद साफ घी पतला ऊपर आवेगा और छाछ मैली सब पेंदी में जम जावेगी। इसके पीछे बबूले उठेंगे, और घृत सनसनायगा। अब घृत तैयार है, उसे नीचे उतारकर ठंडा होने दो, हिलाओ मत, वरना पेंदे की तलछट ऊपर आ जायगी, तब साफ बर्तन में छानकर चिकनी हाँडी, चौड़े मुँह की बोतल या टीन के कनस्तर मे भर दो। ज्यादा तपाने से घी का सोंधापन नष्ट हो जाता है। कम तपाने से वह खट्टा रह जाता और शीघ्र सड़ जाता है, पर ठीक उत्तम घृत बर्षो नहीं बिगड़ता।

बाजारू घृत—प्राय ख़राब, सड़ा, गदा और मिलावटी होता है, किसी मे जानवरों की चर्बी मिली होती है, किसी मे मिट्टी का साफ किया हुआ तेल। इन वाहियात घृतो के खाने से धर्म तो नष्ट होता है ही, स्वास्थ्य भी नष्ट होता है। ये घृत अरुचि, दाह, दस्त, हैज़ा और तरह-तरह के रोग पैदा कर देते है। इसलिये उत्तम, गौ का देखा-भाला स्वच्छ घृत लेना, वरना रूखी रोटी खाना।

सुधारना—घी सड़ा हुआ या दुर्गंधित हो, तो ऐसा करो कि उसे डेगची या कड़ाई में डालो और ज़रा गर्म करो, जब ढीला हो जाय, तो उसमें एक गिलास कच्चा दूध, एक चम्मच नमक, थोड़ी लौंग और नीबू की पत्तियाँ डाल दो। अच्छी तरह औटाकर उतार लो। यह घृत ताज़े के समान सुगंधित, स्वच्छ और साफ़ हो जायगा।

गुण

गाय का घी—ठंडा, देर में पचनेवाला, मीठा, अग्नि को बढ़ानेवाला, रसायन, रुचि-कर, नेत्रों को हितकारी, शरीर की कांति को बढ़ानेवाला, सुंदरता, तेज और बुद्धि को बढ़ाने-वाला, वीर्यवर्द्धक, स्वर को सुधारनेवाला, हृदय को हितकारी और क्षय मे बलकारक है।

ताज़ा घी—भोजन में स्वाद और रुचि को बढ़ानेवाला, नेत्रों को हितकारी, तृप्तिकारक और वीर्य को बढ़ानेवाला है।

पुराना घृत—तेज, दस्तावर, खट्टा, हल्का, कड़ुवा, उल्टी लानेवाला, ज़ख्म को भरनेवाला, योनिरोग, गुल्मरोग, शोथ, मृगी, मूर्च्छा, श्वास, खाँसी, ववासीर, पीनस, कोढ़, उन्माद और रोगोत्पादक कीटाणुओं को नाश करनेवाला है। दस वर्ष तक का घृत पुराना कहाता है। १०० वर्ष तक का कौंभ और आगे का महाघृत।

यह पुराणघृत मृगी और पागलपन में जादू की तरह गुणकारी है। सन्निपात में, वायु भड़कने पर भी इसका चमत्कार देखने को मिलता है। बहुत ही मूल्यवान् और दुर्लभ वस्तु है। यह खाया नहीं जाता। पिचकारी लगाने, सूँघने या मालिश करने के काम आता है।

शतधौत घृत—सौ बार धोया घृत खाने में विष है, पर लगाने में अमृत है। दाद, फोड़ा-फुंसी में लगाया जाता है।

रोगो पर

१—आधाशीशी पर ताज़ा घृत प्रात-सायं दोनो समय नाक से हुलास की तरह सूँघो। सात दिन में आराम होगा। २—नकसीर में उपर्युक्त नस्य लाभ करेगा। ३—सिर-दर्द यदि गर्मी का हो, तो ठंडा, वादी का हो, तो गर्म घृत मालिश करो। ४—हाथ-पैर की भड़कन पर सौ बार का धोया घृत मलो। ५—धतूरा या रसकपूर के विष चढ़ने पर बहुत-सा घृत पिलाओ। ६—शराब का नशा चढ़ गया हो, तो दो तोले घृत में दो तोला चीनी मिलाकर देना चाहिए। ७—अचानक गर्भिणी स्त्री के रक्त जारी हो जाय, तो गौ का सौ बार धोया घृत शरीर पर मले। ८—बच्चो की छाती पर कफ जम गया हो, तो छाती पर गो-घृत इस तरह मालिश करो कि वह सोख जाय। ९—रक्त-विकार में कभी-कभी ऐसा होता है कि शरीर में गर्मी भिद जाने पर रक्त बिगड़कर शरीर पर लाल-लाल चित्ते पड़ जाते है, फिर वे काले होकर फोड़े उठ आते हैं। वही गाँठ होकर फूटकर बड़ा कष्ट देते हैं। तब ऐसा करे कि सौ बार का धोया घृत १ छ०, फिटकरी की खील का चूर्ण २ तोला, पीस और खरल करके मिट्टी के बर्तन में रख दे, इसे दिन में दो बार नित्य जहाँ चट्टे पड़ गए हों, मलकर मालिश करे। थोड़े दिनो में ठीक हो जायगा। १०—दाह में सौ बार का धोया घृत मले। ११—हिचकी पर घी गरमकर पिलावे। १२—बिवाई पर घी में सीप की भस्म खरलकर भर दे, अवश्य आराम होगा।

दही

दही बड़ा उपयोगी और स्वादिष्ट पदार्थ है। इसके मीठे और नमकीन बड़े ही सुंदर व्यंजन बनते है, जो अपने स्वाद में किसी की सानी नहीं रखते। किसी-किसी नगर का दही प्रसिद्ध है। यू० पी० में दही अच्छा होता है।

दही जमाने की विधि यह है कि दूध को एक या दो उबाल देकर औटाओ। पीछे

कूँडों में भरकर ज़रा ठंडा करो। गर्मी मे जरा ज्यादा ठंडा होना चाहिए। इसके बाद ज़रा-सा खट्टा दही या मट्ठा उसमे डाल दो, और उलट-पुलटकर गडमड कर दो। ४ या ५ घटे मे दही जम जाता है। चक्का दही की यह तारीफ है कि जो कूँडा उलट दें, तो एक डला-सा गिर जाय—पानी न बहे।

पानी के दही को कपड़े मे बाँधकर निचोडते है—यह बहुत सोधा हो जाता है।

गुण

दही स्वादु, बलकारक, रुचि बढानेवाला, दीपन, ग्राही और सग्रहणी मे हितकारी है। मीठा दही गाढ़ा, वीर्यवर्द्धक, भारी और ठडा है। फीका दही मूत्र लानेवाला, दाहकारक और भारी है। खट्टा दही रक्त बिगाडनेवाला, पाचक और अग्निदीपक है। बहुत खट्टा पाचक और जलन करनेवाला है। चीनी मिला दही पित्त, दाह, प्यास को शात करता और तृप्ति करता है। गुड मिला दही धातुवर्द्धक, भारी और वातनाशक है।

दही का तोर—दस्तावर, गर्म, बवासीर, कब्ज और शूल तथा दमा को नाश करता है।

दही की मलाई—दस्तावर, भारी, वीर्यवर्द्धक और अग्नि मंद करनेवाली है।

रायता—दही में नमक, मिर्च, ज़ीरा, पोदीना आदि मसाला और कद्दू, गाजर, बथुआ आदि डालकर जो रायता बनाते हैं, वह पाचक, रुचिकारक और हृदय को हितकारी है।

रसाला—दही मीठा १ सेर, १ पाव बताशा डालकर मथ लो, पीछे १ पाव कच्चा दूध मिलाओ, थोडी इलायची बडी और मिश्री डालो, बर्फ़ मे ठडा करके ज्येष्ठ-बैशाख की दुपहरी मे पिओ। थके-माँदे मेहमान को दो। तारीफ व्यर्थ है, गुण देख लेना।

वैज्ञानिक दृष्टि से दही आयु को बढानेवाला सिद्ध हुआ है। भारत मे तो चिर काल से दही खाया जाता है, और इसकी प्रशंसा मे बड़े-बडे लेख लिखे गए है।

दही भोजन के अंत में कदापि न खाना चाहिए।

दही का रोगों पर उपयोग

१—अजीर्ण पर गौ का दही या मट्ठा बराबर पानी मिलाकर पीवे। इससे भारी-से-भारी असाध्य रोगी का भी प्राण बच सकता है। २—काँच का चूर्ण खाने पर पेट-भर दही पिलावे। ३—प्यास-रोग पर पुरानी ईंट साफ धोकर आग मे लाल करके दही मे बुझावे, वही दही थोडा-थोडा पिलावे। ४—दूसरा नुसखा—मीठा दही १२८ भाग, चीनी ६४ भाग, घी ५ भाग, शहद ३ भाग, मिरच काली पिसी २ भाग, सोंठ का चूर्ण २ भाग, इलायची दाने का चूर्ण २ भाग, सब मिलाकर मिट्टी के कोरे बर्तन में रखना, और प्यासवाले को थोडा-थोडा देना।

आधाशीशी पर—जो सूरज के साथ घटता-बढ़ता है—सूर्योदय से प्रथम तीन दिन तक दही-भात भोजन कराना चाहिए।

छाछ

दही को बिलोकर मक्खन निकाल लेने के पीछे जो पतला पदार्थ बच रहता है, उसे छाछ कहते हैं। यह बहुत ही स्वादिष्ट, मनभावन और अच्छी चीज़ है।

गाँव के लोग इसके कई तरह के खाद्य बनाते हैं, जो बहुत प्रसिद्ध हैं। कढ़ी और सिख-रन भी स्वादिष्ट बनती है।

गुण

गाय का मट्ठा अग्निदीपक, बवासीर को जड़ से नाश करनेवाला, हलका, हृदय को प्रिय, पेशाब साफ लानेवाला और दस्त को बन्द करनेवाला होता है।

कमलबाय, प्रमेह, मुटापा बढ़ जाना, संग्रहणी, जुकाम, चिनग, अतिसार, भगंदर, जलोदर, वायगोला, कृमि, शूल आदि रोगों में बड़ा हितकारी है।

मीठी छाछ कफकारक और वात-पित्त-नाशक है।

खट्टा मट्ठा रक्तपित्त और कृमि करनेवाला है। इसमें सेंधा नमक डालकर पीने से वात शमन होता है।

निषिद्ध—घाववाले को दुबले आदमी को, मूर्च्छा-रोगी को और भ्रम जानेवाले को मट्ठा नहीं देना चाहिए।

छाछ का रोगों पर उपयोग

१—शरीर में जलन हो, तो मट्ठे में कपड़ा भिगोकर रोगी को उढ़ा दे। २—अतिसार और बवासीर में नित्य मट्ठा पीना चाहिए। इससे नाड़ियों का रक्त शुद्ध होता है, और रस-बल-पुष्टि और शरीर की कांति उत्तम होती है। हर्ष प्राप्त होता है, और वायु के विकार नष्ट होते हैं। ३—कफ में अजवायन और काला नमक डालकर मट्ठा पीना लाभदायक है। ४—बवासीर पर चीता की जड़ की छाल पीसकर मिट्टी के वर्तन में भीतर लेपकर देना और धूप में सुखाकर दही जमाना और उसे रोगी को पिलाना। ५—संग्रहणी में गाय के मट्ठे में १ तोला काली मूसली पीसकर डाल देना, और खाने को मट्ठा-भात देना। ६—मूँगफली अधिक खाने से कुछ बिगाड़ हो, तो मट्ठा पीना चाहिए। ७—बवासीर पर अपाग—बवासीर के मस्से खूब फूल गए हों, या रक्त की धारा बंद न होती हो, मस्सों में भयंकर जलन, चमक और तकलीफ़ हो, रोगी को अत्यंत कष्ट हो, तो यह उपाय करना चाहिए कि एक ईंट आग में खूब लाल कर लेनी चाहिए और २। २॥ सेर ताजा गाय की छाछ में ६ माशा अफ़ीम घोलकर ईंट पर जल्दी से छिड़कना चाहिए और झटपट ईंट को साफ कपड़े में लपेटकर रोगी को चित लिटाकर गुदा के पास रख देना चाहिए, जिससे मस्सों पर सुहाता-सुहाता सेक लगे। यह सेक रोगी को अत्यंत आराम पहुँचाता है।

प्रकरण ३

अन्नवर्ग

नीचे लिखी सारिणी से भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्नों के मूल अवयव का पता लगेगा—

नाम पदार्थ	जल	प्रोटीन	स्नेह	कर्बोज (श्वेतसार)	खार
चावल बासमती	१२ ५८	६ ७३	१ ८८	७२ ७०	८२
चावल पालिश किए हुए	१२ ५२	७ ५२	८४	७४ ६६	६४
पटना चावल	६ ८०	७ २२	०६	६१ ८१	६०
देशी चावल	११ ०५	६ ६२	५०	८१ ०७	१ ०४
बरमा चावल	११ १३	६ ६५	६६	७७ २५	१ ३४
गेहूँ	१० ८३	११ ४७	२ ०८	७० १६	२ ४५
जौ	१२ ३	८ ६२	१ ६०	७६ १०	२ ३
मक्का	११ ५०	६ ५२	४ ४४	६८ ६	३ ७५
बाजरा	११ १२	८ ७२	४ ७६	७३ ४०	६ ५
जुआर		७ ६७	२ ७७	६७ २६	
गेहूँ का आटा (छना हुआ)		१० ७	१ १	७५ ४	० ५
मैदा		७ ६	१·४	७६ ४	० ५
चोकर	१२ ५	१६ ४	३ ५	४३ ६	६ ०
(दाल)					
मूँग		२३ ६२	२ ६६	५३ ४५	
मसूर		२५ ४७	३ ००	५५ ०३	
चना		१६ ६१	४ ३४	५८ ५२	
मटर		२२ ०१	१ ६६	५३ ६७	
अरहर		२१ ७०	२ ५०	५४ ०६	
उडद		२२ ३३	१ ६५	५५ ७२	

चावल

चावल भारतवर्ष के लोगों का सर्वप्रधान भोजन है। पंजाब को छोड़कर और कोई

भारत का भाग ऐसा नहीं, जहाँ चावल न खाया जाता हो। बंगाल, बिहार, आसाम और उत्तर-भारत के समस्त पहाड़ी देशों में, जैसे नेपाल, [illegible] देशों में चावल का मुख्य भाग है। यह कहा जा सकता है कि मनुष्य-जाति का [illegible] भाग चावल-भोजी है।

चावल की जातियाँ सौ से भी ऊपर पहुँचती हैं। गेहूँ से तुलना करके देखो, इसमें पोषक तत्त्व और स्नेह-भाग बहुत कम है। परन्तु इसमें [illegible] और कर्बोज (श्वेतसार) बहुत अधिक है। इसमें [illegible] का भाग अधिक होने से अत्यंत सरलता और शीघ्रता से पच जाता है। यदि अकेला खाया जाय, तो चावल में कर्बोज [illegible] और नत्रजन [illegible] है। पकाने पर नष्ट नहीं हो जाता है, परन्तु पोषक तत्त्व का कुछ भाग नष्ट हो जाता है। यह अनुकूल और स्वाभाविक खाद्य है। खासकर रोगियों के लिये अत्यंत उपयोगी पथ्य है, अर्थात् सरलता से हज़म होता है। प्राय नए चावल पसंद नहीं किए जाते। पुराने चावल अधिक पसंद किए जाते हैं, क्योंकि वही शीघ्र पचते हैं। संयुक्त प्रांत के सर्वोत्तम चावल नैपाल की पहाड़ी की तराई में होते हैं, और देहरादून और टनकपुर मंडी से बाज़ार में आते हैं। हंसराज और बासमती चावल बहुत अच्छा माना जाता है।

गेहूँ

जिन प्रांतों में चावल का प्रचार नहीं, वहाँ गेहूँ का आटा ही सबसे अधिक मुख्य है। तालिका से पाठक समझ सकेंगे कि बिना छने गेहूँ के आटे में छने हुए आटे और मैदा की अपेक्षा पोषक तत्त्व अधिक है। गेहूँ के छिलके में पोषक तत्त्व और लवण दोनों बड़े परिमाण में होते हैं। जो लोग बहुत बारीक छलनी में आटा छानकर खाते हैं या मैदा को बहुत पुष्टि-कर गिज़ा समझते हैं, वे कितनी भूल करते हैं, यह पाठक स्वयं समझ सकेंगे। एक बात और ध्यान में रखने योग्य है कि अन्नवर्ग में कर्बोज (श्वेतसार) निशास्ता की शक्ल में पाया जाता है।

जौ

जौ की रोटियाँ भी कई प्रांतों में खाई जाती हैं। जयपुर-इलाके में बड़े-बड़े अमीर-परिवार भी जौ खाते हैं। परंतु इसकी रोटियाँ आसानी से नहीं बनतीं, क्योंकि इसमें लोच बहुत कम होता है। परंतु जौ रोगियों के लिये ख़ासकर भीतरी बीमारियों और भीतरी अवयवों के सूजन में बहुत उपयोगी है।

अन्य धान्य

बाजरा, ज्वार, मक्का और जौ-चने का मिला आटा प्राय गरीबों का खाना है। मारवाड़ में ज्वार, बाजरा बहुत खाया जाता है। यू० पी० के पूर्वी ज़िलों में मक्का गरीबों का प्रधान भोजन है। बाजरा गर्म और दस्तावर है। सर्दी के दिनों में यू० पी० में बाजरे की रोटी और खिचड़ी बहुतायत से खाई जाती है। बाजरा और ज्वार जब अमीर लोग खाते हैं, तो घी का उपयोग ज़्यादा करते हैं।

दाल

दाल में अत्यंत पोषक तत्त्व होता है। रोटी खानेवाले और चावल खानेवाले भी दाल का समान उपयोग करते है। इस तरह आटा या चावल दोनो मे से जिसमें पोषक तत्त्व कम होता है, उसकी पूर्ति दाल के पोषक तत्त्व से ही होती है। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि जब तक दाल अच्छी तरह न पक जायगी, वह हज़म न होगी। इसलिये दाल को अच्छी तरह उबाल लेना बहुत ही आवश्यक है। दाल को इतना पकाना चाहिए कि उसका दाना बिल्कुल पानी मे घुल जाय। बंगाल और पंजाब में उड़द और दक्षिण मे अरहर की दाल बहुतायत से इस्तेमाल की जाती है। मूँग की दाल रोगियो के लिये बहुत उपयुक्त है। मसूर की दाल मे भी पोषक तत्त्व बहुत है। गर्म जल-वायुवाले प्रांतो में उड़द की दाल बहुत उपयुक्त पडती है।

अन्न

गेहूँ—मीठा, ठंडा, भारी, कफकर्ता, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, चिकना, टूटे स्थान को जोडनेवाला, सुंदरता उत्पन्न करनेवाला, आवाज़ को सुधारनेवाला और ज़ख़्म की बीमारियो मे गुणकारी है।

काठा गेहूँ—जो मारवाड में होता है—उसकी थूली—दलिया बनती है, विशेष पुष्टिकारक, शीघ्र पाचक और मैथुन-शक्ति को बढानेवाला है।

मधूली गेहूँ—मथुरा, आगरा, दिल्ली में होता है, कुछ छोटा होता है। वह ठंडा, चिकना, हल्का, पुष्टिकारक और पथ्य है।

मुंडा गेहूँ—जिसकी बाल पर शूक नहीं होते—इसी के समान गुणकारक होता है।

जौ—कषैले, मधुर, ठंडे, रूखे, मल को उखाडनेवाले, बुद्धिवर्द्धक और पाचक होते है। पेशाब के रोगों में, चमड़े के रोगो मे, ज़ुकाम और कंठ के रोगो में हित करता है।

ज्वार—सफ़ेद ज्वार मीठी, बलकारी, बवासीरनाशक, बायगोला और ज़ख़्म के रोगो में अच्छी है।

मकई—ख़ुश्क, ठंडी और दुर्जर है।

बाजरा—गर्म, दस्तावर, कफनाशक और बलवर्द्धक है।

काँगनी—पीली अच्छी होती है, टूटे स्थान को जोडती है।

चना—ठंडे, रूखे, कब्ज़ करके पेट को फुलानेवाले और ज्वरनाशक है। तेल में भूनने पर गुणकारी हो जाते हैं। गीले करके भूनने पर बलकारी और रोचक हो जाते है, सूखे भुनकर अत्यंत रूक्ष हो जाते हैं। उबाले हुए पित्त और कफ को नष्ट करते हैं। भीगे हुए कोमल, रुचिकारी, वीर्यशोधक और ठंडे रहते हैं। चने की दाल पित्त और कफ को उत्पन्न करती हैं।

पकान्न

भात—तृप्तिकारी, हलका और रोचक है।

दाल—चाहे जिसकी हो, भाड मे भूनकर पकाई जाय तो हल्की हो जाती है।

खिचड़ी—वीर्यवर्द्धक, शक्ति और बल [illegible]। [illegible] रोग न [illegible] चाहिए।

ताहरी—घी में चावल दाल या दही भूनकर जो [illegible] बनती है, [illegible] कहलाती है। यह तृप्तिकारक और कामोत्तेजक है।

खीर—दूध में पकनेवाली, शक्ति और बल [illegible] है।

सेमई—धातुओं को पुष्ट करनेवाली, शक्ति और [illegible] को [illegible] है। [illegible] बहुत नहीं खाए। गुड़ की [illegible] पचती है।

पूरी—वीर्य की शक्ति को बढ़ानेवाली और [illegible] शक्ति देती है।

हलुआ—अनेक प्रकार का बनता है। सब प्रकार [illegible], [illegible] को न खाना चाहिए।

रोटी—बलकारी और धातुओं को बढ़ानेवाली होती है।

बाटी—वीर्यवर्द्धक, [illegible], पराक्रम उत्पन्न करनेवाली है। शारीरिक परिश्रम करनेवाले को खानी चाहिए।

मटर—मधुर, स्वादु, रुक्ष और ठंडा है।

उड़द—भारी, चिकने, बलकारक, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, मल, मूत्र और स्तन के दूध को निकालनेवाले हैं। बवासीर, गठिया, लकवा और श्वास में फायदा करते हैं।

रमास--(चौले) भारी स्वादु, दस्तावर, रूखे, दूध पैदा करनेवाले हैं।

मूँग—रुक्ष, हल्की, ठंडी, नेत्रों को हितकारी और ज्वर को तोड़नेवाली है। हरी मूँग अच्छी होती है।

मोठ—बादी, काबिज़, मंदाग्निकर्ता, पेट के कीड़ों को नाश करनेवाली और ज्वरनाशक है।

मसूर—काबिज, ठंडी, हल्की, रुक्ष और कफ-पित्त को नाश करनेवाली है।

अरहर—रूक्ष, मधुर, शीतल, वर्णकारक और खून को ठीक करनेवाली है।

तिल—बालों के लिये हितकारी, चमड़ी को साफ करनेवाले, दूध पैदा करनेवाले, पेशाब रोकनेवाले और बुद्धि-वर्द्धक है। काले तिल उत्तम होते हैं।

कचौरी—नेत्रों को हितकारी और खून को बढ़ानेवाली है।

उड़द के बड़े—तेल में बनते हैं। वीर्यवर्द्धक और लकवे के रोग में विशेष गुण करते हैं।

दही बड़े—रुचिकर्ता, बलकर्ता और विबन्धनाशक होते हैं।

काँजी बड़े—ठंडे, दाह, शूल, अजीर्ण सबको नाश करते हैं। नेत्रों के रोगी को न खाने चाहिए।

मूँग की पकौड़ी—हल्की और शीतल है।

कढ़ी—पाचक, दीपन, रुचिवर्द्धक, कफ और बादी के विबन्ध को नाश करनेवाली है, कुछ-कुछ पित्त को बढ़ाती है।

मठरी—भारी, किंतु वीर्य-वर्द्धक है।

गूँझा—उपर्युक्त गुण-युक्त किंतु हीन।

फेनी—हल्की और पुष्टिकर हैं।

सेव—दुर्जर होते हैं।

बूँदी के लड्डू—बलकर्ता, काबिज़ और ज्वर में हितकारी हैं।

जलेबी—पुष्टि, कांति, बल, धातु आदि को बढ़ानेवाली, अत्यंत स्त्री-प्रसंग से निर्बल पुरुष को तत्काल फायदा करनेवाली।

शर्बत—सब प्रकार के प्राय: ठंडे, दस्तावर, मूर्च्छा, वमन, पित्त और दाहनाशक होते हैं।

पना—जो खटाई का बनता है, तत्काल इंद्रियों को तृप्त करे, रुचिकारक और बलकर्ता है।

सत्तू—भूख, प्यास, श्रंड-वृद्धि, बहुमूत्र और नेत्ररोग को नष्ट करनेवाले और तृप्तिकारक हैं। पर पीने लायक़ करके पिए।

चबेना—सब रूक्ष, शीघ्र पचनेवाले और बलकर्ता होते हैं।

मिठाइयाँ पचने में भारी होती हैं, और वे रोगी तथा कमज़ोर को न खानी चाहिए। सूजी का हलुआ, मूँग की चक्की और नानखताई तथा पेठे की मिठाई बीमार को कभी-कभी दी जा सकती है। बहुमूत्र, मंदाग्नि, संग्रहणी और जिगर के रोगी के लिये मिठाई खाना अच्छा नहीं है। बंगाली मिठाई के रसगुल्ले और खोपरे के संदेश जल्दी हज़म हो जाते हैं।

दाल की बनाई हुई चीज़ें, पापड़, मुँगौड़ी, दाल-मोठ आदि रोगियों को दी जा सकती है।

प्रकरण ४

शाक, फल और मेवे

नीचे लिखी सारिणी से भिन्न-भिन्न शाक, फल और मेवों के मूल अवयव का पता लगेगा—

शाक	पोषक तत्व	चिकनाई	श्वेतसार	खनिज पदार्थ	जल
करमकल्ला	१·८	०·४	५·८	१·३	८९·६
गोभी का फूल	२·२	०·४	४·७	०·८	९०·७
खीरा	०·८	०·२	३·०	०·४	९५·९
टमाटर	१·२	०·२	५·०	०·७	९१·९
आलू	२·०	०·२	२०·९	१·०	७६·८०
शलजम	१·२	०·२	८·२	१·०	८९·४
गाजर	०·५	०·५	१०·१	०·९	८६·५
मटर (हरे)	४·४	०·५	६०·१	०·९	७८·१
प्याज़	१·४	०·३	१०·१	०·६	८७·६
मूली	१·३	०·७	१४·५	१·०	८२·५
केला	१·३	०·६	२२·०	०·८	७५·३
बैंगन	०·८९	०·९४	३·४८	०·२६	९३·९८
भिंडी	१·९६	१·१	५·७२	०·८	९०·४
काशीफल	०·९०	१·०	३·९६	०·७	९०·४०
फल—					
सेब	०·४	०·५	१२·५	१·४	८२·५
नासपाती	४·४	०·६	११·५	१·४	८२·९
आड़ू	०·५	०·२	५·८	१·३	८८·२
बेर	१·०	१·०	१४·२	१·५	७८·४
रसभरी	१·०		५·०	२·२	८४·१
शहतूत	०·३		११·४	२·४	८४·४
अंगूर	१·०	१·०	१५·५	१·०	७९·०
खरबूज़ा (गूदा)	०·७	०·३	७·६	०·२	८९·८
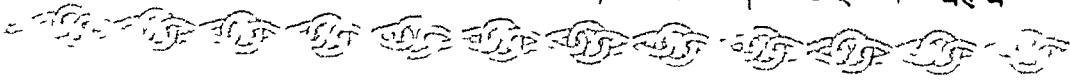
तरबूज़ (गूदा)	०·३	०·१	६·५	०·२	९२·९
नारंगी	०·९	०·६	८·७	१·५	८६·७
नीबू	१·०	०·९	८·३	०·५	८९·३
अनन्नास	०·४	०·२	९·७	०·३	८९·३
अनार	१·५	१·९	१६·८	०·६	७६·८
अंजीर (ताज़े)	१·५		१८·८	०·६	७९·१
मुनक्का	१·२	३·२	६०·०	२·२	२७·९
किशमिश	२·५	४·७	७४·०		१४·०
मेवा—					
अखरोट	१५·५	६२·६	७·४	१·०	४·६
बादाम	२४·०	५४·०	१०·०	३·२	६·०
पिस्ता	२१·७	५१·०	१४·०	३·३	७·४
नारियल (हरा)	५·०	३५·९	८·४		४६·६
गोला (सूखा)	६·०	५७·४	३१·८		३·५
मूँगफली	३१	५६		४·०	१२·

प्राय सभी शाकों में थोडा बहुत काष्ठौज होता है। इसलिये शाक को पकाकर खाना ही उत्तम है। बथुआ, मेथी, सोया इत्यादि हरे शाकों में कई प्रकार के उडनेवाले तैल होते हैं। इसी कारण इन शाकों में अधिक गंध होती है। यद्यपि शाकों में पौष्टिक पदार्थ बहुत कम होते हैं, तथापि शाक भोजन में अवश्य ही होने चाहिए। क्योंकि इनमें कई प्रकार के लवण होते हैं, जो तंदुरुस्ती के लिये बहुत ही ज़रूरी हैं। सोया, कुल्फा, पालक, तोरई, परवल और घीया कद्दू रोगी के लिये पथ्य हैं।

गाजर का हलुआ अत्यंत स्वादिष्ठ और पुष्टिकर होता है। मूली चाहे कच्ची हो, या पकाई हुई बवासीर के लिये बहुत ही मुफ़ीद है। इसी प्रकार जमीकंद भी बवासीर के लिये नायाब है। प्याज़ अत्यंत कामोत्तेजक और पाचक है, तथा हैज़े की अनमोल दवा है। क्षय के रोग में लहसन बहुत फ़ायदेमंद है। खाने और लगाने दोनो रीति से काम में लाया जा सकता है। ख़ासकर अस्थिक्षय और हड्डी के क्षय मे इसका इस्तेमाल करना चाहिए। गठिया-वात और लकवे की बीमारी में भी लहसन बहुत गुणकारी है।

जब किसी कमज़ोर रोगी को दूध या और कोई भारी ख़ुराक देना उचित न हो, तब शाकों का पतला झोल बनाकर देना बहुत गुणकारी होता है। इस काम के लिये तोरई, मूली, आलू, लौकी और शलजम सबसे उत्तम हैं।

मीठे फलों में कर्बोज अधिकतर शर्करा के रूप मे पाया जाता है। सब फलों में २ से

५० कार्बोज होता है। आधी छटाक नीबू के रस में २॥ माशे साइट्रिक एसिड होता है। खट्टे फलों में किसी-न-किसी प्रकार के एसिड होते हैं। आम में गैलिक एसिड, साइट्रिक एसिड, टारटिक एसिड और मलिक एसिड पाए जाते हैं।

मेवों में, सूखे फलों में, गोले में, कार्बोज-कर्बोज की गणना में शामिल हैं। शेष चीज़ों में ३%कार्बोज होता है।

सेव—पथरी, मसाने के रोग और हृदय की बीमारी में बहुत ही फायदेमद है। इनमें फास्फरस का भाग अधिक होता है, इसलिये यह शक्ति-वर्द्धक भी है।

अजीर और अगर बड़े अच्छे मुलैयन हैं। जिन्हें पुरानी, दस्त की कब्ज़ की शिकायत हो, उन्हें निरंतर यह फल खाने का अभ्यास रखना चाहिए। शिकायत ज़रूर मिट जायगी। मुनक्का खासतौर पर मुलैयन है।

अंगूर, संतरे और अनार कड़ुई दवा पीने से मुँह का ज़ायक़ा बिगड़ जाने पर उसे सुधारने के लिये बहुत बढ़िया चीज़ है।

अनार का रस बदहज़मी और पतले दस्तों के लिये नायाब चीज़ है। परंतु खाँसी और सर्दी-जुकाम में हानिकर है। नीबू गठिया और लिवर की बीमारी में उत्कृष्ट है। मलेरिया बुख़ार में बहुत लाभकारी है। मुँह का ज़ायका सुधारने में भी बहुत उत्तम है।

पके आम—दस्तावर और शक्ति-वर्द्धक है। आम का पना—नमक, ज़ीरा और काली मिर्च मिलाकर पीने से आधासीसी में बहुत फायदा होता है।

पक्का बेल का फल—संग्रहणी और पेचिश को फायदा करता है।

गोला—बहुमूत्र रोग में खास गिज़ा के तौर पर खाना चाहिए। अम्लपित्त के लिये भी बहुत गुणकारी है।

साबूदाना—में ८६ ७% कर्बोज (श्वेतसार के रूप में) होता है। पोषक तत्त्व नाम-मात्र होता है, शेष भाग जल रहता है।

आरारूट—में ८२.५%कर्बोज (श्वेतसार के रूप में) होता है। शेष भाग जल रहता है। पोषक तत्त्व और लवण बहुत कम होते हैं।

मसाले—हल्दी, काली और लाल मिर्च, धनिया, ज़ीरा इत्यादि, इनमें किसी-न-किसी प्रकार के उड़नेवाले तेल रहते हैं। इसी कारण इनमें विशेष प्रकार की गंध आया करती है। तेलों के अतिरिक्त इनमें विशेष प्रकार के अवयव भी होते हैं, जिनके कारण ये चीज़ें अपना गुण और स्वाद रखती हैं। राई में ०%·५ से २% तक उड़नेवाला तेल होता है। और १५% से २५ % तक मामूली तेल। नत्रजनीय पदार्थ २५% से ४५ % तक, कार्बोज २% से ५·६ तक, खनिज द्रव्य ४ %से ६ % तक और श्वेतसार बहुत कम होते हैं।

अदरक—में १·५ से ३% तक उड़नशील तेल, ३% मामूली तेल और श्वेतसार होते हैं।

लौंग—में १० % उड़नशील तेल होता है।

शाकों के गुण

बथुआ—बथुआ दो प्रकार का होता है। दोनो प्रकार का बथुआ मधुर, पाक में चरपरा, अग्नि को तेज़ करनेवाला, पाचक, रुचिकारक, हलका और दस्तावर है। तिल्ली, रक्त-पित्त, बवासीर, पेट के कीड़े, इनको नष्ट करता है। नेत्ररोग में फायदेमद है। कफ की बीमारी-वालों को सदा खाना चाहिए। लाल बथुआ इससे भी उत्तम होता है।

पोई—ठढा, चिकना, कफकारक, वात तथा पित्त को नष्ट करनेवाला, स्वर को बिगाड़ने-वाला, लसदार, आलस्य और नींद लानेवाला, शीतल और रुचि बढ़ानेवाला, वीर्य-वर्द्धक तथा पथ्य है। लाल पोई, छोटी पोई, वन पोई और मूल पोई के गुण भी इसके समान हैं।

चौलाई—हल्की, शीतल, रूखी, मल-मूत्र को लानेवाली, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक, विषनाशक और ख़ून की ख़राबी में फ़ायदेमद है। बवासीर को लाभ पहुँचाती है।

पालक—पालक वातकारक, ठडी, कफकारक, दस्तावर, भारी, मद, श्वास, पित्त, ख़ून की उल्टी इन्हें दूर करती है। ज्वर में पथ्य है।

ल्हेसुआ—अग्नि को बढ़ानेवाला, कुछ कसैला, हल्का, मलरोधक और रुचि-कारक है।

नारी का शाक—दस्तावर, रुचिकारी, वातकारक, कफनाशक, सूजन को दूर करनेवाला, बलदायक, ठंडा और रक्तपित्तनाशक है।

कुल्फा—रूखा, भारी, वात-कफनाशक, खारी, अग्निप्रदीपक और खट्टा है। बवासीर, मंदाग्नि तथा जहर को नाश करता है। बड़ा कुल्फ़ा दस्तावर, गर्म, सूजन और आँखो की बीमारी मे बहुत फ़ायदेमंद है। हकलाना, ज़ख्म, वायगोला, श्वास और खाँसी तथा प्रमेह को बहुत फ़ायदा पहुंचाता है।

सोया—गर्म, मधुर, गुल्मनाशक, शूलनिवारक, वातनाशक, दीपन, पथ्य और रुचिकारी है।

मेथी का शाक—कड़ुआ, वातनाशक, रुचिकारक, अग्नि बढ़ानेवाला और कुछ गर्म है।

चने का शाक—रुचिकारक, देर में हज़्म होनेवाला, कफकारक, वातकारक, खट्टा, दाँतों की सूजन को बहुत मुफीद है।

सरसों का शाक—चरपरा, मूत्र और मल को निकालनेवाला, भारी, पाक में खट्टा, जलन पैदा करनेवाला, गर्म, रूखा और तेज़ है।

केले के फूल का शाक—मधुर, कसैला, भारी, ठडा, वातपित्त और क्षय को दूर करने-वाला है।

सेमल के फूल क शाक—घृत और सेंधा नमक डालकर बनाया गया—भयकर प्रदर को फ़ायदा करता है।

पेठे का शाक (सफेद)—पुष्टिकारक, वीर्य-वर्द्धक और भारी है। पित्त, रक्तविकार, वायु को नष्ट करता है। कच्चा पेठा पित्तनाशक और ठंडा है। अधपका कफकारक, पूरा पका हुआ खारी, अग्निदीपक, कुछ ठंडा, पेशाब लाकर मसाने को साफ करनेवाला तथा मृगी और पागलपन को दूर करनेवाला है। सुजाक, पेशाब की बीमारियां, पथरी, प्यास इनको फायदेमंद है। थकावट को दूर करनेवाला, अरुचि को हरनेवाला तथा दिल को ताक़त देनेवाला है।

काशीफल—भारी, पित्त पैदा करनेवाला, अग्नि मंद करनेवाला, मीठा तथा वायु को पैदा करनेवाला है।

घीया कद्दू—हृदय को हितकारी, पित्तनाशक, कफनाशक, भारी, वीर्य-वर्द्धक और रुचिकारी है।

करेला—दस्तावर, हल्का और कड़ुवा है। ज्वर, कफ, खून-खराबी, पाण्डुरोग और प्रमेह तथा कीटों को नष्ट करता है। पित्त को उत्पन्न करता है।

चचेंडा—तपेदिक के रोगी को अत्यंत फायदेमंद है।

घीया तोरई—चिकनी है, रक्तपित्त तथा वायु को नष्ट करती है। घाव को भरनेवाली है। ज्वर से पथ्य है।

तोरई—ठंडी, मधुर, कफकारक, वातकारक, पित्तनाशक और अग्निप्रदीपक है। श्वास, खाँसी, ज्वर और पेट के कीड़ों को नष्ट करती है। सब शाकों में श्रेष्ठ है।

परवल—कड़ुवा, गर्म, कुछ दस्तावर, पित्त, कफ, खाज, कोढ़, रक्त-विकार, ज्वर और दाह के लिये अति उत्तम है। आँखों की बीमारियों में ख़ास फ़ायदेमंद है। पेट के कीड़ों को मारता है, त्रिदोषनाशक है। यह शाक पुराने ज्वर पर ख़ास पथ्य है।

सेम—वादी, रुचिकारक, कसैली, मुख और कंठ को शुद्ध करनेवाली, अग्निप्रदीपक, और कफनाशक है।

सैंजने की फली—स्वादिष्ट, कसैली, कफ पित्त को दूर करनेवाली, शूल, कोढ़, क्षय, श्वास, गुल्म को हरनेवाली तथा अग्नि को अत्यंत दीपन करनेवाली है।

भिंडी—रुचिकारक, भारी, वादी, वीर्यवर्द्धक कफ और बलवर्द्धक है। खाँसी, मंदाग्नि और पीनसरोग में नुकसान देती है।

बैंगन—तेज़, गर्म, अग्निप्रदीपक, ज्वर और कफ को नाश करनेवाला है। छोटा बैंगन हल्का और कफ-पित्त-नाशक है। बड़ा बैंगन पित्त उत्पन्न करता है। बैंगन का भुरता कुछ पित्तकारक, हल्का और अग्नि को दीपन करनेवाला है। तेल में पकाया बैंगन पुष्टिकर है। सफ़ेद बैंगन बवासीर के लिये ख़ास तौर पर मुफ़ीद है। लंबा बैंगन गुणों में अच्छा होता है।

ग्वार की फली—रूखी, वादी, भारी, दस्तावर और अग्निप्रदीपक है।

टिंडे टेंडस—दस्तावर, बहुत ठंडे, वातकारक, रूखे, मूत्र-वर्द्धक, पथरीरोग को नाश करनेवाले है।

जमीकंद—हाज़मे को बढ़ानेवाला, रूखा, कसैला, खुजली करनेवाला, चरपरा और हल्का है। बवासीर के लिये खास तौर पर फायदेमंद है। तिल्ली और गोले की बीमारी में भी फ़ायदा करता है। दाद, खून-खराबी, कोढ़ इनमें मुफीद है।

रतालू—ठंढा, थकान को मिटानेवाला, पित्तनाशक, बल-वीर्य-वर्द्धक, पुष्टिकारक और भारी है। सुज़ाकवाले को फायदा करेगा।

अरबी (घुइयाँ)—कब्ज़ करनेवाली, चिकनी, भारी, बल और कफ उत्पन्न करनेवाली है। तेल में पकाने से रुचिकारी हो जाती है।

मूली—छोटी मूली चरपरी, गरम, रुचिकारक, हल्की, पाचक त्रिदोषनाशक, स्वर को उत्तम करनेवाली, ज्वर, श्वास, नाक के रोग, कंठ के रोग, नेत्रों के रोग इनको नाश करती है। बड़ी मूली रूखी, गर्म भारी और त्रिदोष को उत्पन्न करती है। सूखी मूली खास तौर से सूजन को फायदेमंद है। मूली की फली (सींगरी) कफ-वात-नाशक है। कच्ची मूली मूत्र-दोष, बवासीर, गुल्म, क्षय, श्वास, खाँसी नाभिशूल, अफारा, जुकाम (पुराना) और ज़ख्म इनको फ़ायदा करती है। पुरानी मूली गर्म है। शोष, दाह, पित्त, खून-खराबी पैदा करती है। भोजन से प्रथम खाई हुई मूली पित्त को कुपित कर दाह उत्पन्न करती है। भोजन के बाद खाई हुई बल बढ़ाती है, पचन करती है।

गाजर—हल्की, कुछ काबिज, उत्तेजक, बवासीर, रक्त-पित्त, संग्रहणी इनका नाश करती है। पेट के कीड़े मारती है।

आलू—भारी, विष्टंभी, मलकारक, मूत्रकारक, बलवीर्य और अग्निवर्द्धक है।

फलों के गुण

आम—आम की कच्ची कैरियाँ कसैली, खट्टी, रुचिकारक वात तथा पित्त करनेवाली हैं। बड़ा कच्चा आम जिसमें जाली पड़ गई हो खट्टा, रूखा और त्रिदोष तथा रक्त-विकार को करने-वाला है। डाल का पका आम मधुर, स्निग्ध, पुष्टिकारक, रुचिकारक, वायुनाशक, हृदय को हितकारी, भारी, मलरोधक, प्रमेहनाशक, शीतल, वर्ण को उज्ज्वल करनेवाला तथा ज़ख्म, कफ और खून की बीमारियों को दूर करनेवाला है। पाल का आम कुछ गर्म है। चूस-कर खाया हुआ आम हलका, वीर्य-वर्द्धक, रुचि-वर्द्धक, शीतल और वातपित्तनाशक तथा दस्तावर है। चाकू से काटकर खाया हुआ आम पचने में भारी, धातु और बल को बढ़ाने-वाला तथा वातनाशक है। आम का रस बलदायक, भारी, वातनाशक, दस्तावर, हृदय को अप्रिय और कफ-वर्द्धक परंतु अत्यंत पुष्टिकारक है। दूध के साथ खाया हुआ आम वातपित्त-नाशक, रुचिकारी, पुष्टिकर, बल-वीर्य-वर्द्धक, भारी और मधुर है। आम का रस शहद के साथ मिलाकर पिया जाय, तो तपेदिक़ को मुफीद है। ज्यादा आम खाने से मंदाग्नि, विषमज्वर, रक्तविकार, कब्ज़ और नेत्ररोग उत्पन्न हो जाते हैं। खट्टे आम हानि करते हैं। ज़्यादा आम खाने से नुक़सान हो, तो सोंठ की फकी दूध के साथ ले।

कटहल—पका कटहल ठंडा, स्निग्ध, पित्तनाशक, वातनाशक, तृप्तिदायक, पुष्टिकारक, मास को बढ़ानेवाला, अत्यंत कफकारक, बलदायक, वीर्य-वर्द्धक, ज़ख्म और फोडे को फायदा करनेवाला है। कटहल का कच्चा फल कब्ज़ करनेवाला, वायु को उत्पन्न करनेवाला, कसैला, भारी, दाहकारक और कफ तथा चर्बी बढ़ानेवाला है।

केला—केला मीठा, शीतल, कब्ज़ करनेवाला, दाह, जख्म और क्षय को नष्ट करता है। पका केला शीतल, वीर्य-वर्द्धक, पुष्टिकर, मास-वर्द्धक, क्षुधा, तृषा, नेत्ररोग तथा प्रमेह को नष्ट करता है। छोटे केले पचने में हल्के होते है। कच्ची केले की फली काविज़, ठंडी, कसैली, पचने में भारी और वायु तथा कफ पैदा करनेवाली है।

विजौरा (पक्का)—देह को सुंदर करनेवाला, हृदय को हितकारी, बलकारक और पुष्टि-कर है। शूल, अजीर्ण, अफारा, श्वास, खाँसी, मदाग्नि, सूजन खाँसी और अरुचि को नष्ट करता है। विजौरे की केसर बुद्धि-वर्द्धक, हल्की, काविज, रुचिकारक, शराब की बीमारियाँ, पागलपन, खुश्की और उल्टी को रोकती है। विजौरे के बीज गर्भदायक, भारी, गर्म, दीपन और बल-वर्द्धक है। वर्षा-ऋतु मे सेंधे नमक के साथ, शरद् में मिश्री के साथ, हेमत में नमक, हीग, अदरख और मिर्च के साथ, शिशिर और वसंत में सरसों के तेल के साथ तथा ग्रीष्म मे गुड के साथ सेवन करे।

नारंगी—अग्नि-वर्द्धक, रुचि-वर्द्धक, हृदय को हितकारी, रुचिकारी, थकान और शूल को नाश करनेवाली है। खट्टी नारगी बहुत गर्म, दुर्जर और दस्तावर है।

कचरिया—कच्ची कचरी अग्नि-वर्द्धक, पक्की गर्म और पित्तकारक, सूखी रूक्ष, कफनाशक, वातनाशक, अरुचिकारक, जड़तानाशक, रेचन और दीपन है। सेंध-कचरी ज़ुकाम को फ़ायदा करती है।

तरबूज—काविज़, ठंडा, भारी और दृष्टि का नाश करनेवाला है। प्यास, दाह, थकान को दूर करता और वीर्य तथा पुष्टि देता है।

ख़रबूज़ा—मूत्र लानेवाला, बलदायक, दस्तावर, चिकना, ठडा, वीर्य-वर्द्धक है। खट्टा ख़रबूज़ा पेशाब में जलन पैदा कर देता है।

खीरा—रुचिकारक, मधुर, शीतल, भारी, मूत्रल तथा पित्त और श्रम को दूर करनेवाला है।

कैथ—कच्चा कैथ काविज़, कसैला, हल्का और लेखन है। पक्का कैथ भारी, प्यास, हिचकी तथा वात-पित्त को नष्ट करता है।

बेर—पका हुआ बडा मीठा बेर ठंडा, दस्तावर, भारी, वीर्य-वर्द्धक, और पुष्टिकारक है। पित्त, दाह, रुधिर-विकार, क्षय तथा प्यास को नष्ट करता है। पका हुआ छोटा बेर और दूसरे कच्चे बेर पित्त-वर्द्धक और कफ-वर्द्धक है।

खजूर—दाहनाशक, रक्त-पित्तनाशक, शीतल, श्वास, कफ, श्रमनाशक, पुष्टिदाता, मंदाग्निकारक और बल-वीर्य-वर्द्धक है।

पिंड खजूर—भ्रांति, दाह मूर्च्छा और रक्त-विकार के लिये बहुत उत्तम है।

जामुन—भारी, क़ाबिज़, कसैली, स्वादिष्ट, शीतल, मंदाग्नि करनेवाली, रूखी और बादी है।

सेब—वातनाशक, पित्तनाशक, पुष्टिकारक, भारी, शीतल, हृदय को प्रिय, मसाने और गुर्दों को साफ़ करनेवाला तथा वीर्य-वर्द्धक है।

नासपाती—धातु-वर्द्धक, मीठी, भारी, रुचिकारी और त्रिदोषनाशक है।

चकोतरा—स्वादिष्ट, रुचिकारक, रक्त-पित्त, क्षय श्वास, हिचकी और भ्रम को नाश करता है।

नीबू—पथ्य, पाचक, रोचक, अग्नि-वर्द्धक, वर्ण को सुंदर करनेवाला, तृप्तिकारी और पित्त का नाश करनेवाला है। काग़ज़ी नीबू हल्का होता है।

मीठा नीबू—भारी, वात-पित्त, सर्प-विष, मूर्च्छा, दाह, वमन, शोष, प्यास इनको नष्ट करनेवाला है।

अंगूर—दस्तावर, ठंडा, नेत्रों को हितकारी, पौष्टिक, शरीर को बनानेवाला, ख़ून पैदा करनेवाला, स्वर को उत्तम करनेवाला, कोठे में कुछ वायु पैदा करता है। प्यास, ज्वर, श्वास, कमलबाय, मूत्रकृच्छ्र, मोह, दाह, तथा मदात्यय-रोग को नष्ट करता है।

मुनक्का—स्निग्ध, वीर्य-वर्द्धक, ठंडा, दस्तावर, बल-वीर्य-वर्द्धक तथा क्षतक्षीण वात और रक्त-पित्त का नाश करनेवाले हैं। हृदय को हितकारी है। वायु को अनुलोमन करते हैं।

किशमिश—वीर्य-वर्द्धक, रुचिप्रद, खट्टी, श्वास, ज्वर, दाह, घाव, स्वर-भेद, इनको दूर करती है।

कमरख—तीक्ष्ण, गर्म, पचने में चरपरी, खट्टी और पित्तकारी है।

शरीफ़ा—तृप्तिजनक, शीतल, हृदय को हितकारी, बल और मांस को बढ़ानेवाला तथा दाहनाशक है।

अनन्नास—कच्चा अनन्नास रुचिकारक, हृदय को हितकारी, भारी और कफ-पित्तकारक है। पका पित्तकारक तथा रक्त-विकार को दूर करता है।

अंजीर—बहुत ठंडे, तत्काल रक्तपित्तनाशक, पित्त और सिर की बीमारियों में पथ्य है। कोढ़ में मुफ़ीद है।

गोला-नारियल—नारियल भारी, चिकना, ठंडा, वीर्य-वर्द्धक, मसाने को साफ़ करनेवाला, बलकारक, पुष्टिकारक, कफकारक और क़ाबिज़ है। कच्चा नारियल पित्त की बीमारियाँ, रक्त-विकार, प्यास, उल्टी, दाह आदि को फ़ायदा करता है। सूखा नारियल, दुर्जर, दाहकारक, मल को रोकनेवाला तथा बल-वीर्य तथा रुचि को उत्पन्न करनेवाला है। कच्चे गोले का पानी शीतल, हृदय को हितकारी, अग्नि दीप्त करनेवाला, मसाने को साफ़ करनेवाला, वीर्य-वर्द्धक और प्यास को शांत करनेवाला है।

अनार—मीठा अनार त्रिदोषघ्न, तृप्तिदायक, वीर्य-वर्द्धक, हलका, कसैले रसवाला, ग्राही, स्निग्ध, बुद्धिदायक तथा बलदायक है। दाह, ज्वर, हृदय-रोग, कंठ-रोग तथा मुख की दुर्गंध को नष्ट करता है। खट्टा मीठा अनार अग्नि को बढ़ानेवाला, रुचिकारी, कुछ पित्तकारक और हल्का है। केवल खट्टा अनार पित्त को उत्पन्न करनेवाला तथा वात-कफ को नष्ट करता है।

अमरूद—कसैला, अत्यंत ठंडा, भारी, कफकारी, वायु-वर्द्धक, पागलपन नष्ट करनेवाला, वीर्य-वर्द्धक और त्रिदोषनाशक है।

आलूबुखारा—काबिज़, हृदय को हितकारी, ठंडा, भारी, मेदा को स्वच्छ करनेवाला, प्रमेह, गुल्म, बवासीर और वात-रक्त को नाश करनेवाला है।

बिजारा—बिजारा नीबू खट्टा, गर्म, रक्त-शोधक, तेज, हलका, प्रिय, अग्निप्रदीपक, रुचिकारक और स्वादिष्ट है। जीभ और हृदय को शुद्ध करता है। पित्त, वात, कफ और खून के विकारों को उत्पन्न करता है।

मेवा

बादाम—दस्तावर, गर्म, भारी, कफकर्ता, वीर्य-वर्द्धक, पौष्टिक और मस्तिष्क को बढ़ानेवाला है। बादाम का तेल गर्म, दस्तावर, वाजीकरण, मस्तक-रोगनाशक, हलका और दादनाशक है। मालिश करने से सौंदर्य और लावण्य उत्पन्न करता है।

अखरोट—वीर्य-वर्द्धक, गर्म, बल-वर्द्धक और मांस-वर्द्धक है।

मूँगफली—बादी, काबिज और गर्म है।

पिस्ता—भारी, वीर्य-वर्द्धक, गर्म, धातु-वर्द्धक, दस्तावर तथा रक्तशोधक है।

काजू—गर्म और धातु-वर्द्धक है। गुल्म, वात, कफ, उदर-रोग, ज्वर, कृमि, घाव, कोढ़ और बवासीर में मुफीद है।

छुहारे—गर्म, काबिज़ और अत्यंत पुष्टिकर होते हैं।

चिलगोजे—गर्म और अत्यंत काम-शक्ति-वर्द्धक हैं।

मखाने—पुष्टिकारी और शीतल हैं।

खिरनी—ठंडी, अम्लपाकी, मलरोधक, वीर्य-वर्द्धक, मांस-वर्द्धक, त्रिदोष, मद मूर्च्छा, दाह और रक्त-पित्त को दूर करनेवाली है।

फालसा—काबिज़, ठंडा, हृदय को प्रिय, पित्त, दाह और रक्त-विकार, ज्वर, क्षय तथा वायु को नष्ट करता है।

शहतूत—भारी, स्वादिष्ट, शीतल, वात-पित्तनाशक है।

कच्चा शहतूत—खट्टा, भारी, दस्तावर, गर्म और रक्त-पित्त को करनेवाला है।

प्रकरण ४

भोजन पकाने के लाभ

१—पकाने से भोजन स्वादिष्ठ हो जाता है तथा अच्छी तरह चबाया और पचाया जा सकता है।

२—उबालने से रोगोत्पादक कीटाणु मर जाते है। भारत मे बहुत जगह सखरे और निखरे भोजन का भेद-भाव माना जाता है। सखरे भोजन (जो घृत में पकाया होता है) को लोग चौके के बाहर चाहे जब बासी-तिबासी भी खा सकते हैं, किंतु निखरे या कच्ची रसोई (दाल, रोटी, चावल आदि) को चौके के बाहर नहीं खाते। वस्त्र उतारकर, सिर्फ धोती पहनकर जो रेशम की हो अथवा कहीं से सिली न हो, कुशासन या काठ के पट्टे पर बैठकर खा सकते है, चौका गोबर से लिपा होना चाहिए। इस प्रथा में कुछ वैज्ञानिक सिद्धात है।

जितने ज़हरीले जानवर हैं, घृत, तैल या चिकनाई उनके लिये विप के समान हैं। मक्खी घी सूँघते ही मर जाती है और साँप घी से बहुत घबराता है। प्लेग के कीटाणु भी घृत से नष्ट होते है। अन्न आदि खाद्य द्रव्यों में अनेक कीटाणु रहते हैं। अन्न को घृत, तैल आदि मे पकाने से वे नष्ट हो जाते हैं। पानी ७१% डिग्री की गर्मी मे उबल जाता है। ऐसे बहुत कीटाणु हैं, जो उतनी गर्मी में भी जीवित रहते है। किंतु तैल १२०% और घृत १७०% में उबलता है, और ऐसा कोई कीटाणु नहीं, जो इतनी गर्मी में जीवित रह सके। इसलिये घृत या तैल मे पकाए अन्न पकवान कहाते है, उन पर रोगोत्पादक कीटाणुओं का प्रभाव नहीं होता। अतएव वे शीघ्र नहीं सडते, और चाहे जहाँ खाए जा सकते है। किंतु रोटी, दाल आदि केवल पानी मे पकती है। इसीलिये दाल को उतारते ही बघार देने का नियम है या परसती बार गर्म-गर्म घी डाल देने का दस्तूर है। रोटी को चूल्हे से निकालते ही तुरंत दोनो तरफ चुपड दिया जाता है, ताकि कीटाणुओं से उसकी रक्षा हो सके। गोबर भी कीटाणु-नाशक है। काष्ठ-पट्टिका पर कीटाणु नहीं जमते। रेशमी वस्त्र पर भी नहीं जमते, और सूती धोती भी, जो कहीं से सिली न हो, ठीक है, क्योंकि सीवन पर ही ये जंतु अपना घर बना लेते है।

३—अन्न के दानो में एक सार पदार्थ होता है, जिस पर कुछ कठोरता होती है। पकाने से वे फट जाते हैं और रस बाहर आ जाता है। पाचक रस उससे मिल जाता है, जिससे ख़ूब पचन होता है।

दूध को बहुत देर तक नहीं पकाना चाहिए। सिर्फ एक उबाल आने पर ठंडा करके थोडा गर्म-गर्म पी जाना चाहिए। जिस दूध मे मलाई जम जाय, वह पीने के काम का नहीं रहता।

वह भारी, कफकारक और आलस्य लानेवाला बन जाता है। क्योंकि सार पदार्थ मलाई में आ जाते हैं। दूध को खुले वर्तन में उबाले। लोहे या कलई के बर्तन में उबाले।

कच्चा दूध औटे दूध से जल्दी हज़म होता है, पर वह धारोष्ण होना चाहिए, अर्थात् शुद्धता-पूर्वक तुरंत दुहा और तुरत पी लिया जाय, तब तो ठीक है, नहीं तो दूध बहुत ही शीघ्र बिगड़जानेवाला और रोगोत्पादक कीटाणुओं को अपने अंदर खींचनेवाला पदार्थ है।

भारत में पुरानी चाल है कि स्त्रियाँ दूध पीकर बच्चे को बाहर नहीं जाने देती। बहुत जिद पर जाने देती है, तो जरा-सी राख चटा देती हैं। दूध को भी यदि किसी दूसरी जगह भेजती है, तो एक कोयला उसमें डाल देती हैं। बात यह है कि कोयले और राख में कार्बन गैस होती है, जो कीटाणुओं को नष्ट करने में बड़ी शक्ति रखती है। नहीं मालूम यह साइंस हमारी अपढ़ स्त्रियों को कब से मालूम है।

भोजन की विधि

१—यथासंभव भोजन अपनी माता या स्त्री के हाथ का खाना चाहिए, यह भोजन अमृत-तुल्य है। यदि नौकर के हाथ का खाने की आवश्यकता हो, तो नौकर को सूखी तनख्वाह पर न रक्खें, वरन् वह भी उसी रसोई में भोजन करे। वरना वह भोजन अंग में न लगेगा।

२—भोजन साफ़ जगह में, साफ वर्तनों में, साफ कपड़े पहनकर बनाया जाय। मैले कपड़े, मैले हाथ, धूल, मिट्टी, गंदा पानी इत्यादि रसोई में न फटकने पावे।

३—शाक, दही, रायता आदि अलग-अलग चम्मच द्वारा परोसना चाहिए। अलग-अलग कटोरियों या पत्तों के दोनों या मिट्टी के प्यालों में।

४—भोजन बासी कदापि न करे। सुबह का रक्खा शाम को भी न करे। अधिक-से-अधिक दो-तीन घंटे का रक्खा भोजन खा ले। किंतु वह ढककर ठंडी जगह में रक्खा जाना चाहिए, ताकि मक्खी, मच्छर, धूल, कीड़े-मकोड़े, चींटी उस तक न पहुँचे। शाक को गर्म पानी में रख दे, ताकि गर्म रहे।

५—भोजन ऐसा हो, जिससे पाँचो इंद्रियाँ प्रसन्न हो, तो परमानंद का सुख भोजन में मिलता है। नाक सुगंध से, नेत्र सुंदर रंग से, कान पात्रों की झनकार से, स्पर्श छूने से और जिह्वा स्वाद से लोट-पोट हो जाय, ऐसा भोजन होना चाहिए।

६—भोजन करते समय किसी प्रकार का रंज-फिक्र न करे, इससे अजीर्ण और संग्रहणी रोग होता है। भोजन करने के स्थान पर धुआँ, कूड़ा-कर्कट या कोई घृणित मैली वस्तु न हो।

७—एक बार पकाकर दुबारा गर्म करके दाल, शाक, रोटी, पूरी, दूध न खाय।

८—शाली चावलों में लाल चावल अच्छे होते हैं। साठी चावलों में बारीक उत्तम होता है। बालवाले धान्यों में गेहूँ और जौ। फलीवालों में मूँग, मसूर, अरहर। रसों में मीठा। नमकों में सेंधा। फलों में आँवले, अनार, अंगूर, छुहारे, फ़ालसे, खिरनी और बिजौरा। पत्तों के शाक में बथुआ, पोई, मेथी। फल के शाकों में परवल। कंद-शाकों में ज़मीकंद। दूध

मे गाय का। जलो में वर्षा का। घृत मे गौ का। तेलो मे तिल का और ईख के पदार्थों में मिश्री उत्तम है।

९—फलियों में उडद, नमकों में खारी, फलो मे कटहल, सागों मे सरसो, दूध मे भेड का, तेलों में कुसुम का और मिठाई में राब मनुष्य के लिये अहितकारी है।

१०—दूध और सत्तू मिलाकर न खाय। गर्म चीजो के साथ दही न खाय। गर्म चीज़ या वर्षा के जल के साथ शहद न खाय। खिचडी के साथ खीर न खाय। छाछ, दही और बेल-फल के साथ केला न खाय। काँसे के वर्तन में दस दिन धरा हुआ घी न खाय। उडद की दाल और दही न खाय। रात को और भोजन के अंत मे दही न खाय।

११—भोजन में पहले मीठे पदार्थ खाय, फिर नमकीन, फिर खट्टे, इसके पीछे कसैले और कड़ुए। यदि गर्म चीजें अधिक खाई हों, तो पीछे एक पाव दूध पीवे। मिठाई ज़्यादा खाई हो, तो छाछ पीवे।

१२—ज्यादा मीठा खाने से ज्वर, श्वास, कंठमाला, खाँसी, मंदाग्नि, प्रमेह-रोग हो जाते हैं। चर्बी बढ जाती है। पेट मे कीडे पड जाते हैं। कफ बढ़ जाता है। अधिक नमक खाने से आँखें दुखने लगती हैं। रक्त-पित्त हो जाता है। पित्त निकल आता है। ज़ख्म हो जाते है। बाल उड़ जाते या सफ़ेद हो जाते हैं। कोढ़ और विसर्प-रोग तथा दाह-रोग पैदा होते है। अधिक खटाई खाने से भ्रम, प्यास, दाह, रतौंधी, ज्वर, खुजली, पीलिया, विसर्प, सूजन, विस्फोट और कुष्ट-रोग होता है।

अधिक चरपरा खाने से मूर्च्छा, दाह, गल-कुष्ट और मुख-शोष होता है। कांति नष्ट होती है। बल कम करता है। अधिक कसैला खाने से अफरा, दिल मे दर्द आदि रोग उत्पन्न होते हैं। अधिक कड़ुवा रस सिर-दर्द, गर्दन का जकडाव, थकान, पीडा, कंप, मूर्च्छा और प्यास उत्पन्न करता है। बल और वीर्य को भी गिराता है।

किस ऋतु में कैसा भोजन करना चाहिए ?

वर्षा-ऋतु का भोजन—यह ऋतु शीतल, किंतु दाहकर्ता और मंदाग्नि को करनेवाली है। वादी को बढाती है। इस ऋतु में मीठे, खट्टे और नमकीन पदार्थों को खूब खाना चाहिए। इस ऋतु में शरीर गीले रहते हैं, उसके लिये कटु, तिक्त और कसैले पदार्थ भी सेवन करें। गेहूँ, चावल, उडद, मूँग, मोठ ये अन्न खाय। शाकों में करेला, तोरई, कद्दू, आलू, नीबू, अदरक आदि। फलो में अंगूर, अनार, नासपाती। घृत, दूध, मीठा भी यथेष्ट खाय, किंतु इस ऋतु में यदि कोई रोग फैल रहा हो, तो हरी शाक-भाजी कतई छोड देना चाहिए।

शरद्-ऋतु का भोजन—दूध, मिश्री, खाँड, ईख, नमकीन, गेहूँ, जौ, मूँग, साठी चावल, नदी का जल, कपूर इत्यादि खाय। दही, खटाई, कड़ुए, गर्म, तेज़ पदार्थ न खाय।

हेमंत-ऋतु का भोजन—प्रातःकाल नाश्ता करे। बादाम का गर्म हलुआ, जलेबी, दूध या

अन्य कोई पाक। खटाई, मिठाई, नमकीन, गेहूँ, ईख, चावल, उड़द, मैदा, ज्वार, बाजरा, तिल, कस्तूरी, केशर, इनका सेवन करे। उड़द और ज्वार को बराबर मिलाकर और उसका आटा बनाकर नमक, मिर्च, मसाला, हींग डालकर गर्म-गर्म रोटी या पूरी बनाकर खाय। तेल का पकवान, पकौड़ी, पुए खाय। बाजरे की खिचड़ी खाय। घी खूब खाय। गुड़ खाय।

शिशिर-ऋतु का भोजन—हेमंत के समान ही होना चाहिए। मेवा खूब खानी चाहिए।

वसंत-ऋतु का भोजन—गेहूँ, चावल, मूँग, जौ, साठी चावल, चना-चबेना खाय। मिठाई, दही, चिकने पदार्थ और देर में पचनेवाली चीजें, पिट्ठी की बनी वस्तु न खाय।

ग्रीष्म-ऋतु का भोजन—सिखरन, भात, दही, खाँड, सत्तू, दूध, ठंडा पानी, शर्बत यह खाय। चरपरे, खट्टे, खारी पदार्थ न खाय।

इसके अनुकूल भोजन करने से मनुष्य कभी किसी ऋतु में रोगी न होगा।

पढ़ने-लिखनेवालों को दूध, दही, मलाई, घृत आदि अधिक खाना चाहिए।

शारीरिक परिश्रम करनेवालों को चावल, शकर आदि ज्यादा खाना चाहिए। एक तोला घी खाने से जितनी शक्ति मिलती है, उतनी शक्ति आधी छटाक शकर खाने से मिल जाती है। हर हालत में चिकनाई से जो शक्ति शरीर को मिलती है, उससे दुगनी शक्ति शकर से प्राप्त हो जाती है, किंतु आमाशय पर दुगना बोझ अधिक पड़ेगा। दिमागी काम करनेवालों को यथासंभव अधिक भारी वस्तु खाकर पेट भारी नहीं कर लेना चाहिए। सूक्ष्म, हलकी और पुष्टिकारी ग़िज़ा खानी चाहिए।

शीत-ऋतु में दिमागी काम करनेवालों को मेवाओं में बादाम, पिस्ता, अखरोट, किशमिश, खुमानी, अंजीर और चिलगोज़े तथा घी और मेवे से बनी चीजें यथेष्ट खानी चाहिए।

शारीरिक परिश्रमवालों को खोपरा, अखरोट, मूँगफली, काजू तथा तिल का तेल, और गुड़ खाना चाहिए।

कारीगरों और दूकानदारों को भी उपयुक्त ग़िज़ा तथा साथ ही बाजरे की खिचड़ी खूब घी डालकर खाना चाहिए।

जांगल प्रदेश—जैसे राजपूताना आदि में घी, दूध, दही, गेहूँ, जौ, ज्वार, मकई, शाक, दाल खूब खाना अच्छा है।

अनूप प्रदेश—जैसे बंगाल, बंबई आदि में, उड़द के सिवा सब दाल, गेहूँ और दूध, फल-सेवन करना उचित है।

कुँवारे और ब्रह्मचारी एवं विद्यार्थियों को २४ घंटे में केवल दो बार भोजन तथा सायं-प्रातः १॥ पाव दूध पीना चाहिए। दही का इस्तेमाल कम और छाछ का ज्यादा करना चाहिए। यथासंभव रात्रि को भोजन न करना चाहिए और अनेक प्रकार के मसाले, अचार आदि न खाने चाहिए।

अध्याय आठवाँ

फलाहार और फलों की रोगनाशक शक्ति

प्रकरण १

फलों का महत्त्व

जीवन के साथ फलों का कैसा गहरा संबंध है, इस बात का विचारना चाहिए। सृष्टि के आदि काल में, जब इस भड़कीली सभ्यता का विकास नहीं हुआ था और प्रशांत-स्वभाव मुनि लोग केवल फलाहार करके ही अपने स्वाभाविक जीवन को व्यतीत करते थे, जीवन कैसे स्वस्थ, आनंदमय और सरल थे। मस्तक कैसे मेधावी थे। जगत् के ज्ञान के आदि देवता वेद, गूढ़ दर्शन-शास्त्र और गंभीर उपनिषद् उन फलाहारी तपस्वियों के स्वच्छ मस्तक की उपज थे। रोग, शोक, अल्पायु, दौर्बल्य, चिंता, क्रोध, भय, तमोगुण का चिह्न भी गया। मनोरम तपोवनों में ऋषिगण ऊषा की मोहक लाली में कुशासन पर बैठे, सूर्य पर दृष्टि दिए, पवित्र सोमगान करते, फलाहार खाते और अनंत भविष्य के मानव-पुत्रों के लिये गूढ़ अध्यात्म की रत्न-राशि संचय करते थे। कैसे पुण्यमय वे दिन थे। उनकी स्मृति भी कैसी पुण्य प्रतीत होती है। ज्यों-ज्यों सभ्यता का उदय होता गया, मनुष्य के खान-पान, रहन-सहन में चटक-मटक और बनावट आ गई। मनुष्य इंद्रियों के भोगों में फँसकर अनेक प्रकार से विषय-लोलुप हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि रोग, शोक, अल्पायु और वेदना मनुष्य की तकदीर में लिखी गई।

छोटे-छोटे पक्षियों को देखो, कितने फुर्तीले और चैतन्य रहते हैं। कच्चे ज्वार, बाजरे और चने के दाने को बड़ी सरलता से खा और पचा जाते हैं। घोड़े, गधे, खच्चर और दूसरे परिश्रमी जानवरों को देखो, उनके शरीर कैसे बलिष्ठ और नीरोग हैं, और संसार के सुख में जितना भोग मनुष्य उन्हें भोगने की स्वतंत्रता देता है, उसी में वे कितना आनंद प्राप्त करते हैं। बच्चों के पैदा होने में स्त्रियों को कितना कष्ट होता है। और उनमें कितनी मर जाती या जन्म-भर के लिये अपाहिज हो जाती हैं। इस दुःखमय अवस्था का जब पशु-पक्षियों की प्रसव-वेदना की सरलता से मुकाबला किया जाता है, तब मनुष्यों के भाग्य पर अफसोस होता है।

खुराक को सड़ाकर, सुखाकर या पकाकर खाना वास्तव में एक राक्षसी पद्धति है। यह जीवन के लिये घातक और आत्मा के लिये भी विष है। प्राचीन ऋषिगण यह बात जानते थे और अब पश्चिम के वैज्ञानिक पंडितों ने इसे जाना है। आज दिन योरप और अमेरिका में

लाखों मनुष्य सादे जीवन पर चल रहे हैं, और फलाहार पर दिन व्यतीत कर रहे हैं। और इसके परिणाम से वे बहुत संतुष्ट हैं।

जब तक जीवन है और फल है, तब तक आशा है। नवीन विज्ञान के जाननेवाले सैकड़ों विद्वानों का यह मत है। फलाहार मनुष्य का स्वाभाविक भोजन है, केवल यही बात नहीं, वरन् फलों में अनेक रोगों को नाश करने के भी उत्कृष्ट गुण मौजूद हैं। बहुत लोग जानते हैं कि अंगूर में अजीर्ण को दूर करने की बड़ी भारी शक्ति है, इसी तरह गठिया और जिगर की बीमारी के लिये नीबू या संतरा एक ज़बर्दस्त प्रभाव रखता है। परंतु इनके इन गुणों से, सर्व-साधारण की बात तो अलग है, डॉक्टर, वैद्य भी लाभ नहीं उठाते। फलों के विषय में हमारी इतनी ज़ोर की सिफ़ारिश सुनकर यह नहीं विचारना चाहिए कि एकाएक अपने अभ्यस्त भोजन छोड़कर फलाहार शुरू कर दें। रोगियों को भी फलों की इतनी अधिकता नहीं करनी चाहिए कि उनकी प्रकृति में एकाएक परिवर्तन हो जाय। जिन लोगों ने अंगूर पर रहकर अपनी पाचन-शक्ति को ठीक किया है, उन्होंने दिन-भर में आध सेर अंगूर से शुरू करके ३-४ सेर तक अंगूर खाए हैं। शुरू में ये लोग अपना नित्य का भोजन भी करते गए। ज्यों-ज्यों अंगूरों की मात्रा बढ़ी, त्यों-त्यों आहार कम कर दिया गया, और अंत में सिर्फ़ अंगूरों पर ही कई सप्ताह व्यतीत किए। जो लोग अधिक भोजन करने से अजीर्ण-रोगी होते हैं या पुरानी कफ़ की शिकायत रहने से जो सदा रोगी और निस्तेज बने रहते हैं, उनके लिये अंगूर की यह चिकित्सा बहुत ही चमत्कारी प्रतीत हुई है। फ़्रांस के दक्षिण प्रांतों में अंगूर बहुत उत्पन्न होते हैं और फसल में दो आने सेर तक मिलते हैं। वहाँ पर कुछ क्षय के रोगियों को सिर्फ़ अंगूर पर रक्खा गया, थोड़े ही दिनों में रोगी बिलकुल हृष्ट-पुष्ट और मोटे-ताज़े हो गए। ऐसे रोगियों को एक या दो वर्ष तक सिर्फ़ अंगूरों पर ही रक्खा गया।

लंदन के एक प्रख्यात डॉक्टर, जो गठियावात के विशेषज्ञ हैं, अपने रोगियों को संतरे, नीबू, रसभरी, अंगूर, सेब, नासपाती वग़ैरा ख़ूब खाने को देते थे। इसी प्रकार फ़्रांस के एक बड़े डॉक्टर का कथन है कि फलों में पोटास का क्षार इतनी अधिक मात्रा में मिलता है कि मैं कह सकता हूँ कि रक्त को शुद्ध करने और गठियावात तथा दूसरी वात-व्याधियों में फलों की बराबरी करनेवाली कोई औषधि ही नहीं।

योरप के एक डॉक्टर चमड़ी के रोगियों को, प्रात:-दोपहर को और सायंकाल को, ख़ूब फल खाने की सम्मति देते थे। ताज़ा नीबू की सिकंजबीन ही वह बहुत बताया करते थे। उनका दावा था कि कोई कारण नहीं कि इसके सेवन से अतिसार दूर न हो। उनका यह भी कथन था कि सिर-दर्द, कब्ज़ और दूसरे वे रोग, जो पेट और जिगर की ख़राबी से होते हैं, झूठे, नक़ली, फ़्रूटसाल्ट और अँगरेज़ी दवाइयों से हरगिज़ दूर नहीं हो सकते।

नमक और खटाई जो फलों में क़ुदरती रीति से पाई जाती है, उस खटाई और क्षार से

बिल्कुल भिन्न है, जो अँगरेजी ढंग से दवाई की तरह बनाए जाते हैं। ये नकली चीज़ें उनका मुकाबला नहीं कर सकतीं। वैज्ञानिक किसी फल का सत्त्व बना सकता है, पर सच्चा फल नहीं बना सकता, पर जो विश्वास फलों पर है, जो सर्वत्र सुलभ हैं, वह इन झूठी दवाइयों पर नहीं हो सकता। फल ईश्वर-प्रदत्त भोजन है जो उसने परम कृपा कर हमको दिया है, चूँकि शरीर भी उसी का बनाया है, इसलिये शरीर के पोषण के लिये फल में जो तत्त्व है, वे मनुष्य के बनाए नकली भोजनों में नहीं हो सकते। फलाहार एक ऐसी शक्तिशाली वस्तु है, जो मनुष्य के शरीर और मस्तक को मनुष्य के ही योग्य बनाती है। प्राकृतिक जीवन के तत्त्व को समझनेवाले मनुष्यों को, जो पशुओं से भिन्न अपने जीवन को विचारशील और मेधावी बनाना चाहते हैं, पशुओं की तरह मांसाहार या अप्राकृतिक पदार्थ खाकर अपने मनुष्यत्व को कदापि नहीं खोना चाहिए।

फल और दाँत

शायद सब लोग यह नहीं जानते कि आजकल फीसदी ९० मनुष्यों के दाँत में एक ऐसा रोग बना रहता है, जिसका इलाज ही कठिन है। इस रोग के कीड़े भीतर-ही-भीतर दाँत की जड़ में घर कर बैठते और पीब बनाते रहते हैं। यह पीब निरंतर पेट में जाता रहता और भयंकर रोगों को उत्पन्न करता है। लोगों के दाँतों से जो ख़ून आता है, उसे तो वे पहचान लेते हैं, परंतु इस रोग के मवाद को बेख़बर खाते रहते हैं। ऐसे लोगों को मंदाग्नि, संग्रहणी, क्षय और अन्य कई जाति के रोग हो जाते हैं। मेरे पास संग्रहणी का आज तक ऐसा एक भी रोगी नहीं आया, जिसके दाँत में उक्त रोग न हो।

फलों के विषय में लोगों का विश्वास है कि उसकी खटाई से दाँत ख़राब हो जाते हैं, पर यह बड़ी भारी भूल है। फलों का भोजन छूट जाने से और उसके स्थान पर तरह-तरह का चटपटा, मसालेदार, गर्मागर्म खाना और अनेकों प्रकार के मांस खाने से यह रोग बहुत फैल गया है। बहुत कम लोगों के दाँत सुंदर और नीरोग दीखेंगे। हीरे की तरह चमकते हुए दाँत जीवन की ज्योति हैं। मैले दाँत अल्पायु के चिह्न हैं। फलों की खटाई कीटाणुनाशक और जीभ तथा दाँतों के मैल को दूर करनेवाली है। मुख और दाँतों को शुद्ध करनेवाली वस्तु फलों को छोड़कर दूसरी नहीं है। यदि एक अच्छे सेब को दाँत से काटकर खाया जाय और ख़ूब चूसा जाय, तो दाँत अत्यंत उज्ज्वल हो जायँगे।

फलाहार

फलों के शौक़ीन लोग जो फलों को निरंतर खाते हैं, उन्हें भोजन के तौर पर नहीं खाते। फल सिर्फ़ शौक़ से मिठाई की तरह उनके पेट में पहुँचते हैं। परंतु जगत् के जितने प्रकार के भोज्य पदार्थ हैं, उन सबमें फल ही सर्वांग-पूर्ण आहार है। प्रत्येक फल जो अपनी स्वाभाविक दशा में बिना तकल्लुफ़ किए खाया जायगा, उसमें शरीर के पोषण-योग्य तमाम तत्त्व उपस्थित होंगे। जैसा कि कहा गया है, प्राय सभी मनुष्य फलों को शौक़ की तरह खाते

हैं, इसलिये अमीर लोगों के फल खाने के चोचले देखने ही योग्य होते हैं। दिल्ली के छैल बेरों को बड़ी होशियारी से छीलकर उन्हें तराशकर रूमाल पर चुनेंगे, तब कहीं बड़ी नज़ाकत से खायँगे। काशी में एक सज्जन के यहाँ आम खाने मैं आए। दोपहर को आम छील-काटकर एक चाँदी के थाल में सजाए गए। ऊपर से बर्फ़ में दबा दिए गए। रात को वे चम्मच और छुरी की सहायता से खाए गए। इसी प्रकार नारंगी-सतरों को छीलकर नमक मिलाकर खाते हैं। दिल्ली में आम, केला, आड़ू, नासपाती, अमरूद की चाट बनाते हैं। उन्हें छील-काटकर नमक, मिर्च, मसाला, खटाई आदि डाली जाती है। हज़ारों आदमी इसी तरह फलों को हलाल करके बेचने का धंधा करते हैं। इन पद्धतियों से खाने से एक तो फल बहुत ही कम खाए जाते हैं, दूसरे उनसे वे लाभ नहीं होते, जो स्वाभाविक रीति से खाने से होने चाहिए। प्रत्येक मनुष्य के ऊपर-नीचे के अगले आठ दाँत प्राय जन्म से मरण तक निकम्मे रहते हैं। इनसे कोई चीज काटी ही नहीं जाती। यही दाँत रोगाक्रांत होते हैं। यदि फलों को सादी रीति से दाँत से काटकर खाया जाय, तो निस्संदेह बहुत लाभ हो। जो फल ठीक-ठीक पक गया हो, वह मनुष्य के खाने के लिये सर्वांग-पूर्ण वस्तु है। मनुष्य सिर्फ़ नाम-मात्र को कुछ दूसरा आहार करता रहे, तो वह केवल फलों पर ही बहुत दिन तक रह सकता है, और इससे वह निरंतर नीरोग रहेगा। जो लोग फलाहार पर ही निर्वाह करने के इच्छुक हैं, उन्हें एक अमेरिकन विद्वान् की राय पर ध्यान देना चाहिए। वे लिखते हैं—

"प्रत्येक पुरुष को ६ से ८ छटाक तक खुराक, जिसमें पानी न मिला हो, एक दिन के लिये काफी है। इस हिसाब से आध पाव सूखी मेवा और तीन छटाक सूखे फल काफी हैं। इनके साथ ही एक सेर या डेढ़ सेर ताजे मौसमी फल दिन-भर के लिये बिल्कुल काफ़ी हो सकते हैं। यह खुराक पूरे तंदुरुस्त आदमी के योग्य है। गर्मी की ऋतु में ताज़े फल कुछ ज़्यादा बढ़ाए जा सकते हैं, और सूखे फल और मेवा कम की जा सकती है।"

फलों के संबंध में आपत्ति

कुछ लोगों को फलों के संबंध में यह आपत्ति है कि फल अधिक मात्रा में खाए तो जा सकते हैं, और स्नायु-रोगियों तथा चर्म-रोगियों के लिये हितकारी भी हो सकते हैं। निस्संदेह फलों का अधिक व्यवहार शरीर-वृद्धि और चर्म-दोष नष्ट करने की शक्ति रखता है। परंतु रोग के परमाणुओं को शरीर से बाहर फेंकने की उतनी शक्ति फलों में नहीं हो सकती, जितनी कि किसी औषध में होनी चाहिए। वे प्रकृति को उतनी तेज़ी से सहायता भी नहीं दे सकते। उदाहरण के लिये चाय को लीजिए। इससे तत्काल स्नायु में उत्तेजना होती है। फलाहार से स्नायु-मंडल विशेष आढ्य हो सकता है।

वास्तव में देखा जाय, तो यह कुछ बुरी बात नहीं है। हमारी पुरानी खुराक का यह प्रभाव है कि शरीर में अनेकों गंदगी और ज़हर इकट्ठे होते रहते हैं। परंतु फलाहार से ये

वस्तुएँ शरीर मे बलात् बाहर निकल जाती है। चाय एक धीमा विष है। इसी तरह काफ़ी को भी समझना चाहिए।

फलों को सदा भोजन के प्रारंभ मे खाना चाहिए। भोजन के पदार्थों मे यदि पकाए और बिना पकाए हुए दोनो प्रकार के पदार्थ हों, तो बिना पकाई वस्तुएँ प्रथम खा लेनी चाहिए। यदि भोजनके साथ मिष्टान्न भी हो, तो मिष्टान्न को प्रथम खाना चाहिए। परंतु जिनकी पाचन-शक्ति ख़राब हो, उन्हें फलो को भोजन के साथ न खाकर फलो को अकेला ही खाना चाहिए। वे चाहें, तो फल खाने के कुछ देर बाद थोडा हलका आहार कर सकते है। ऐसे मनुष्य घी या मक्खनके स्थान पर नारियल का घी भोजन मे इस्तेमाल करें, तो यह और भी अच्छा है।

फलाहार-चिकित्सा

इँगलैंड के एक प्रसिद्ध डॉक्टर ने कैंसर (नासूर) के रोग में फलाहार को लामिसाल पाया। उस डॉक्टर की यह भी राय है कि ऐसे रोगी को उत्तम तो यह है कि पानी बिल्कुल ही न पिलाया जाय, और सिर्फ़ ताजे फलो ही पर उसे रक्खा जाय। परंतु यदि बिना जल के काम न चले, तो भभके से अर्क़ की तरह खींचा हुआ या पकाया हुआ पानी पीने को देना चाहिए।

वास्तव में मनुष्य पीनेवाला जतु नहीं है। मैंने पचासो सग्रहणी के रोगियों को ७-७ मास तक बिना एक बूँद जल दिए, सिर्फ़ दूध और फलों पर रक्खा है, और इसमें कभी कोई कठिनाई नहीं हुई। मनुष्य को प्यास सिर्फ़ अप्राकृतिक और मसालेदार ख़ुराक खाने से लगती है, पीछे उसे पीने की आदत पड जाती है। मै निश्चय-पूर्वक कह सकता हूँ कि कोई भी मनुष्य यदि नमक और दूसरे पके हुए पदार्थ खाना छोडकर सिर्फ़ फलो पर ही रहे, तो उसे पानी पीने की कदापि ज़रूरत ही नहीं रहेगी।

सादा जीवन

सादे जीवन की तरफ़ अब पढे-लिखे लोगो का ध्यान आकर्षित हुआ है। परंतु यह सादगी भी अधिकाश में एक नज़ाकत-सी बन रही है। अँगरेज़ी पद्धति मे जो लोग सादगी और स्वाभाविक जीवन में प्रवेश करते है, वे और भी झझट में फँसते हैं। साधारण रोग होने पर यदि किसी 'नेचर्स पैथ' (Naturs path) से आप सलाह ले, तो वह आपको अनेक प्रकार की कसरतें, जिनके सामान काफी कीमती हैं, बतावेगा या अनेक तरह के स्नान बतावेगा, जिनके लिये आपको टब आदि ख़रीदने पडेगे। फिर भी इस झझट से शीघ्र ही आपका जी ऊब जायगा। इससे हज़ार दर्जे सरल बात तो यह है कि किसी वैद्य, डॉक्टर के पास जाकर एक शीशी दवा ले आवे और पी ले। मेरा अभिप्राय यह कदापि नहीं कि स्नान आदि के ये ढग हानिकर है, और रोगी को उधर न जाकर दवा ही पीनी चाहिए। मेरा तो सिर्फ़ एक ही कहना है कि यदि रोगी को धीरज हो, और विश्वास हो, आत्म-सयम हो, तो वह फला-

हार-चिकित्सा पर विश्वास करे। चाहे भी जितना पुराना रोग हो, अकेले फलाहार से ही उसका रोग नष्ट हो जायगा।

फल और उपवास

उपवास के द्वारा चिकित्सा करने की परिपाटी भारत में बहुत पुरानी है, परंतु अमेरिका में इसका दिन-दिन ज़ोर बढ़ता जा रहा है। योरप के होटल-भोजी जनुओं के लिये यह एक नए फ़ैशन की चिकित्सा है। निस्संदेह थोड़े समय तक आमाशय को बिल्कुल खाली रखना महत्त्व-पूर्ण है। हमारे देश में एकादशी, अष्टमी, अमावस और अनेकों अवसरों पर स्त्रियाँ उपवास किया करती हैं, और उन पर उनकी भारी श्रद्धा है। मुझे इसका राजपूताने में एक ख़ास अनुभव यह हुआ कि वहाँ हिंदू-घरानों की वैश्य-स्त्रियाँ अधिकांश में मोटी, भद्दी, कुरूप, रोगिणी और बाँझ पाई गईं, परंतु जैन लोगों की स्त्रियाँ सुरूप, सुंदर, सुपुत्रा और नीरोग देखी गईं। बहुत दिन के विचार करने पर मुझे इसका रहस्य मालूम हुआ, और यह था उनके उपवास की अधिकता। जैन-स्त्रियों में उपवास का प्रचार बहुत है। स्त्रियों का शरीर स्वभाव से ही कुछ ऐसा है कि वह विजातीय द्रव्यों को अधिक ग्रहण करता है, इसलिये उपवास का उन पर सर्वदा उत्तम प्रभाव पड़ता है।

उपवास से सर्व साधारण लोगों का वज़न कुछ अवश्य घट जाता है, परंतु जिन्हें उपवास का अभ्यास हो जाता है, उनका वज़न शीघ्र ही बढ़कर बराबर हो जाता है। यद्यपि यह सत्य है कि मर्यादा के भीतर उपवास करने से बहुत ही लाभ होता है, परतु मैं तो सबसे उत्कृष्ट और बेहतर काम यही समझता हूँ कि फलों पर ही निर्भर रहा जाय।

आगतुक रोग

आगतुक रोग जैसे ज्वर, सूजन वग़ैरह में सबसे सादा और सबसे शीघ्र आरोग्यप्रद उपाय यह है कि हवादार कमरे में पलँग पर पूर्ण विश्राम करना, और ताज़े पके हुए फलों को खाना। ख़ासकर अगूर। प्यास लगने पर पकाया हुआ पानी या नीबू की सिकंजबीन।

फल खाने की आदत से चर्बी का बढ़ना कम होता है, और अम्ल पित्त-रोग सुगमता से मिट जाता है। अगूर, अनार आदि का रस ज्वर में बड़ा उपकारी है। कभी-कभी शरीर में विष जम जाता है, उसे निकालने को शरीर कभी बहुत यत्न करता है, तब भी निकाल नहीं सकता। फलों के रस में यह अद्भुत शक्ति है कि वह उसे मूत्र या मल-द्वार से निकाल फेंकता है। मूत्राशय-संबंधी कितने ही रोगों में भी फलों का रस ऐसा ही उत्तम गुण देता है। टाइफ़ाइड ज्वर में उस रोग के जंतु आहार-नलिका में होकर रुधिर और उसके परमाणुओं पर आक्रमण करते और शरीर को कड़े विष से भर देते हैं। उन जंतुओं की गति को निर्बल करके उन्हें मार डालने का काम फलों के रस से होता है। जिनको अंतरे से सिर-दर्द का दौरा रहता हो, उन्हें दर्द होने के दो-तीन दिन पहले से ही फल खाने की आदत रखनी चाहिए, तो बहुत अच्छा लाभ होगा। जीभ पर मैल जमने से कई रोग हो

जाते हैं, परंतु फल खाने से वह मैल कम हो जाता है, और अंत मे जीभ साफ रखने के लिये फलों का आहार बहुत ही उपयोगी है। क्योकि वह रोगोत्पादक जतुओ का नाश कर देता है। शरीर की बनावट को दृढ करने के लिये फल खाना परमोपयोगी है। फल खाने की आदत रखनेवाले बालक शरीर से दृढ होते हैं, और उनके शरीर के रेशे मेद की मोटी तह से इस तरह ढक जाते है कि वे जाडे के मौसम की तेज ठडक को भी सहन कर सकते है।

फल मनुष्य की सब आवश्यकताओ को पूरा करनेवाले हैं, वे अधिक मूल्यवाली मिश्रित ख़ुराक से कम पुष्टिदाता अथवा कम सहाय होनेवाले नहीं, वरन् उससे अधिक शक्तिदाता और अधिक सहारा देनेवाले हैं। इतना होने पर भी वे अधिक सुगमता से पचते है, और सब प्रकार की हानियो से दूर हैं। इतना ही नहीं, किंतु बनावटी आहार से पेट मे जो ख़राबियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, फल उनको दूर कर देता है। क्योंकि यह कब्जियत को मिटानेवाला है, इसके सिवा फल रुधिर में एक प्रकार का चार मिला देता है, जिससे पेशाब खुलकर आता है। पकाने से भोजन में से बहुत-से चार घुल जाते या नष्ट हो जाते है, फल उन्हें पूरा कर देते हैं। इसलिये फलों को खुराक का काम देनेवाले गिनने के सिवा दवा का काम देनेवाला भी गिनना चाहिए। इसी कारण से पकाई हुई ख़ुराक खाने की आदत रखनेवाले लोगो को ताज़े और सूखे फल भी खाने चाहिए।

कुदरती रीति से पके हुए फल बहुत-से अच्छे-अच्छे गुणो से भरपूर होते हैं। अपने बालक को स्तनपान कराने के लिये पूरा-पूरा और गुणवाला दूध न रखनेवाली माता जो फल खाने की आदत डाले, तो वह अपने बालक को सदा के नियम से एक बार अधिक दूध पिला सकने योग्य हो सकती है और उसका दूध सब दोषो से रहित होगा। रोग के समय में भी पक्का खाना छोडकर फल खाने से बहुत लाभ होता है।

सूखे फल भी ताजे फलों के समान ही गुणकारी होते हैं, क्योकि उनका सारा सत्व उन्हीं के भीतर रहता है, उन्हें खाने से प्रथम कुछ देर पानी में भिगो रखना चाहिए, जिससे फूल जायँ, और नरम हो जायँ, किंतु उबाले नहीं।

फल खाने से भूख मिटने के साथ ही प्यास भी मिटती हैं। यह बात पकाई हुई ख़ुराक में नही है। उसमें प्यास के लिये जुदा पानी पीना पडता है। यद्यपि उसमे पानी मिला हुआ रहता है, किन्तु उससे पानी का काम नहीं निकलता, उसमे पानी की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। किंतु फलो के अंदर जो पानी रहता है, उसमे स्वाभाविकता रहती है। इसके सिवा फलो मे एक प्रकार की स्फूर्ति भी प्राप्त होती रहती है, जिससे उन्हें तंबाकू या चाय आदि उत्तेजक वस्तु खाने की आवश्यकता नहीं रहती। छोटे बच्चे अधिक परिश्रम करनेवाले और अधिक उत्साहवाले देखे जाते हैं, क्योंकि वे हमारी अपेक्षा फलो को अधिक पसंद करते है। मुहल्ले मे किसी भी फल बेचनेवाले की आवाज़ सुनकर दौडते है। मा-बापो को बच्चो की इस आदत को उत्तेजन देना और मिष्टान्नो को कम करने की आदत डालनी

चाहिए। ऐसा करने से बच्चे बहुत-से रोगों से बचे रहेंगे, और तन्दुरुस्त तथा मज़बूत बन जायँगे। इतना ही नहीं, वरन् ऐसा करने से वे नम्र स्वभाववाले और प्रीति-पात्र बनेंगे, और दुर्व्यसनों एवं दुर्गुणों से मुक्त रहेंगे। स्त्रियों की दशा गर्भावस्था में बहुत नाज़ुक हो जाती है, उस समय उनके लिये फल ही योग्य ख़ुराक है। इससे उनका और गर्भस्थित बालक का शरीर ठीक रहता है। प्रसव आराम से हो जाता है।

जो लोग फलों को केवल शौक समझकर खाते हैं, वे भूल पर हैं। वास्तव में फल ऐसी आवश्यक ख़ुराक है कि वह शरीर में किसी हानिकारक वस्तु को नहीं ले जाती। पकाई हुई चीज़ें खाने से उड़कर लगनेवाले रोगों के कीटाणुओं से बचाव नहीं हो सकता, परन्तु फल के आहार से उसके बचाव की पूरी संभावना होती है, क्योंकि उनको पोषण करनेवाला जो विषैला पदार्थ शरीर में रहता है, वह निर्वीर्य हो जाता है।

बहुत प्राचीन काल में ऋषि-मुनि लोग अपने-अपने आश्रम में रहकर केवल कंद, मूल, फल खाकर निर्वाह करते और सैकड़ों वर्ष की नीरोग आयु भोगते थे। हमें भी ईश्वर ऐसी सुबुद्धि दे कि हम तरह-तरह के अप्राकृतिक भोजन छोड़कर उसी सात्त्विक भोजन पर निर्भर करें।

प्रकरण २

सेव

सेव, बिही, नासपाती, तीनो की एक जाति है। इसके वृक्ष काश्मीर और काबुल में बहुत होते हैं। नासपाती हिंदोस्तान में भी बहुत होती है। इनके वृक्ष अमरूद के वृक्ष के बराबर होते हैं। पत्ते भी अमरूद के बराबर चौड़े होते हैं। काश्मीर का सेव मीठा और काबुल का खट्टा होता है। काश्मीर में एक और नासपाती होती है, जिसे नाक कहते हैं, यह बहुत ही मीठी होती है। बिही का मुरब्बा बहुत ही ताकतवर होता है और दस्तो की बीमारी में काम आता है।

विशेष

आधुनिक विज्ञान के द्वारा जितनी शक्ति-वर्द्धक दवाइयाँ बनी हैं, उन सबमें 'फॉस्फरस' की प्रधानता है। स्नायु और मस्तक की सबसे बड़ी ख़ुराक फ़ॉसफ़रस है। बड़े-बड़े डॉक्टर लोग फ़ॉसफरस के गुणों पर इतने मुग्ध हैं कि उन्हें इसके मुक़ाबले की कोई वस्तु ही जगत् में नहीं मिली है। परंतु जो दवाइयाँ फ़ॉसफरस के सपर्क से बनाई गई है, प्राय वे सब बहुत हीक़ीमती होती है। नसो की कमज़ोरी और दिमागी ख़राबी के रोग इतने अधिक बढ गए हैं कि सौ मनुष्यो में से शायद ही कोई एक यह कह सकता होगा कि मुझे न नसों की कमज़ोरी की शिकायत है और न दिमागी कमजोरी की। इस प्रकार के रोगी अधिकाश धनी पुरुष होते हैं, और वे अधे होकर इन रोगो की औषधि में रुपए फूंकते हैं। परतु फल-स्वरूप अपने स्वास्थ्य को अंत में नष्ट करते हैं। अगर उन्हें यह मालूम हो जाय कि अकेले सेव खाने से तुम्हें वह चमत्कारिक शक्ति नसो और मस्तिष्क में मिलेगी, जो हजारो रुपयो की शक्तिवर्द्धक दवा खाने पर भी मिलनी दुर्लभ है, तो अवश्य उनके आनद और आश्चर्य का पारावार न रहेगा।

जगत में जितने फल पाए जाते हैं, उन सबमें सेव ही एक ऐसा फल है, जिसमें अत्य-धिक मात्रा में 'फॉस्फ़रस तत्त्व होता है। इसलिये सेव नसों और दिमाग की एक बहु-मूल्य ख़ुराक है। जिन लोगो को किसी तरह की दिमाग़ी ख़राबी हो, जैसे स्मरण-शक्ति की कमी, सिर-दर्द, चिडचिड़ापन, बेहोशी, सनक, उन्माद आदि या इसी तरह किसी भी प्रकार की नसों की कमज़ोरी हो, तो उन्हें भोजन से प्रथम हर बार दो उम्दा सेव खाने चाहिए। यदि उन्हें चाय या काफी पीने का अभ्यास हो, तो यह ज़रूर उन्हें छोड़ देना चाहिए, और उनके स्थान पर नीबू की सिकंजबीन या सेव की चाय बनाकर पीना चाहिए।

पथरी के रोगियो के लिये सेव एक अद्भुत शक्तिवान् औषध है। पथरी के जिन रोगियो

को डॉक्टर ने आपरेशन की सलाह दी थी, उन्हें हमने एक सप्ताह तक सिर्फ़ दो-तीन सेब खिलाकर आराम कर दिया है। ऐसे रोगी को दिन में ४-५ सेब खाने देना चाहिए और बहुत ही हल्की खुराक खाने को देनी चाहिए। इस ख़ुराक में भी अधिकांश शाक और फलों का ही होना चाहिए।

जिगर की ख़राबी कैसा भयंकर रोग है, इसे भुक्त-भोगी ही जान सकते हैं। नित्य सैकड़ों रोगी जिगर की ख़राबी से मरते हैं। फ़ीसदी ८० मनुष्यों का जिगर ख़राब होता है, ख़ासकर स्त्रियाँ इस रोग में ज्यादा गिरफ्तार हैं। जिगर की ख़राबी से चेहरा फीका, पीला और निस्तेज हो जाता तथा मंद ज्वर होने लगता है, जो शीघ्र ही भयानक असाध्य रोग के स्वरूप में बदल जाता है। सेब जिगर की ख़राबी में अमृत के समान है। जिगर के रोगी को या तो सेब की चाय पिलानी चाहिए अथवा दो सेब भोजन से कुछ प्रथम हर बार खिलाने चाहिए।

पाठकों को सुनकर आश्चर्य होगा कि सेब गठिया के रोगियों के लिये भी महौषध है। गठिया के रोग में मालिक एसिड (Malic acid) एक प्रकार का चाक के समान पदार्थ जोड़ों में जम जाता है, उसे घुलाकर साफ़ करने में सेब अपनी जोड़ की दूसरी वस्तु नहीं रखता।

उम्दा पका हुआ सेब बिना छीले और बगैर चीनी या नमक की सहायता के यदि खाया जाय, तो आमाशय पर उसका अत्यंत लाभदायक प्रभाव पड़ता है।

किसी की आँखें कमज़ोर हों, और उनमें से पानी आता हो (यह रोग अगर १०-२० वर्ष का भी पुराना हो), तो वे कृपा कर एक सेब को कुचलकर उसकी पुलटिस आँखों पर बाँधकर देखें कि उन्हें आश्चर्यकारक लाभ होता है या नहीं।

अगर किसी के हलक में ज़ख़्म हो गए हों और वे किसी तरह आराम न होते हों, कोई वस्तु निगलना भी कठिन हो, तो वे इतना कष्ट करें कि एक उम्दा डाल का पका हुआ सेब लेकर उसका रस निकालें और एक चाँदी के चम्मच से धीरे-धीरे उसे मुख में डालें। मुख में डालने पर जितनी देर संभव हो, उसे हलक में रक्खें, निगलें नहीं और फिर देखें कि यह असाध्य रोग छू-मंतर हो गया!

भोजन के साथ नित्य ताज़ा मक्खन और सेब खाने का नियम कीजिएगा। थोड़े दिनों में आप देखेंगे, आपका चेहरा सुर्ख़ हो गया है, नेत्रों में तेज, मस्तिष्क में अथक परिश्रम की शक्ति और नसों में लोहापन आ गया है। दस्त और पेशाब बिलकुल साफ़ हैं, आप यदि दुबले-पतले, पीले, निरुत्साही और सदा के पुरतैनी रोगी हैं, तो आप सब हकीम, डॉक्टरों का पिंड छोड़कर सेब के मधुर स्वाद में मन लगाइएगा।

ज्वर के रोगी के लिये सेब की चाय या सेब का रस अव्वल नंबर का पेय पदार्थ है। जो ज्वर की गर्मी, बेचैनी, प्यास, जलन, थकान सबको तत्काल मिटाता है।

भोजन के प्रथम एक सेब खाने का प्रत्येक छोटे बड़े को अभ्यास करना चाहिए।

सेब की चाय

एक-दो उम्दा सेब लो। उन्हें धो लो, मगर छीलो मत। जल्दी में पतले-पतले टुकड़े कर लो, उसमें एक नीबू को ३-४ टुकड़े करके डाल दो, इन्हें आध सेर उबलते पानी में डाल १० मिनिट रख दो, ठंडा होने पर छानो, थोड़ी चीनी मिलाकर पिओ।

अंगूर

अंगूर में ज़बर्दस्त एक चमत्कारी गुण है। वह यह कि यदि शरीर बर्बाद हो रहा हो, धातु क्षीण हो गई हो या रस न बनता हो, तो वह उस कमी को आनन-फ़ानन में पूरी करता है। दुबले-पतले, बदहज़मी के रोगी ज्यों ही अंगूर खाने लगें, तो जादू के समान शक्ति की धारा शरीर में दीखने लगेगी। नाक तक ठूँसकर खूब तर माल, पूरी, कचौरी, मिठाई आदि खाइए और ऊपर से भर-पेट ताज़े पके हुए अंगूर खाइए, देखिए सब स्वाहा हो जाता है कि नहीं, और शरीर में तत्काल ही अद्भुत फ़ुर्ती और शक्ति दीख पड़ती है या नहीं। ज्वर के रोगी को या क्षय के ऐसे रोगी को, जो दिन-पर-दिन सूखता ही जाता हो आप अंगूर का रस साफ़ कपड़े में निचोड़कर पिलाइए। जो बच्चे जन्म से ही कमज़ोर और दुबले-पतले हैं, उन्हें भी यह रस नियम से देना शुरू कीजिए, फिर इसका अद्भुत प्रभाव दो-चार दिन में ही आप देख लेंगे। अंगूर खाती बार इस बात का ख़याल रखिए कि अंगूर को खूब चबाइए—रस और गूदा निगल जाइए, पर छिलका और बीज थूक दीजिए। जिनकी छातियाँ कमज़ोर हैं, जो क्षय या श्वास के रोगी हैं या जिनकी दिल की धड़कन तेज़ हो जाती है, उन्हें मीठे अंगूर खाने चाहिए, और जिन्हें जिगर (लीवर) की बीमारियाँ हों या गठियावाई हो अथवा अजीर्ण रोग हो, उन्हें कुछ खट्टे अंगूर खाने चाहिए।

कुछ चिकित्सक शायद गठिया के रोगी को अंगूर देना नापसंद करें, परंतु मैं अनुभव के बल पर कह सकता हूँ कि नियमित रीति से यदि रोगी अंगूर सेवन करे और अधिकांश साग सब्ज़ी ही पर निर्भर रहे, तो उसे अवश्य लाभ होगा। मेरे सामने ऐसे अनेकों उदाहरण आए हैं। चेचक के भयानक-से-भयानक रोगियों को आराम करने के लिये गर्म पानी से धोए हुए अंगूर बहुत ही लाभकारी प्रमाणित हुए हैं।

मलेरिया के रोगी के लिये अंगूर एक अपूर्व वस्तु है, वे उससे बहुत लाभ उठा सकते हैं। अंगूर को चूना घुले हुए पानी में तीन घंटे तक डूबा पड़ा रहने देना चाहिए, फिर उसका रस निकालकर रोगी को देना चाहिए। अगर रोगी के दाँत मज़बूत हों, तो चूने के पानी में भीगे हुए अंगूर वह यों भी खा सकता है, पर छिलका और बीज ज़रूर थूक देना चाहिए।

अंगूरों के अभाव में किशमिश की चाय ली जा सकती है, यह शरीर को अत्यंत आराम देनेवाली और पुष्टिकर है, ख़ासकर थकावट के लिये तो अपूर्व है। इसमें पोषण तत्त्व तो दूध के बराबर ही होता है, परंतु दूध की अपेक्षा हज़म जल्दी होती है, इसलिये दूध पीने से

जिनके पेट में वायु भर जाती हो नके लिये यह अत्यंत लाभकारी है, जिनको पेट में वायु घुसने और गैस पैदा होने की पु नी शिकायत हो, जो जन्म-भर कब्ज़ से तंग आ गए हों, वे यदि कृपा कर कुछ दिन तक पीने के लिये किशमिश की चाय पीवें और सिर्फ़ उम्दा पके केले खायँ, तो निस्संदेह उन्हें नवीन जीवन प्राप्त होगा।

किशमिश की चाय की विधि

एक पाव-भर उम्दा ताज़ा किशमिश ले, और साफ करके गुनगुने पानी में शीघ्रता से धो लो। फिर एक बर्तन में २½ सेर पानी आग पर चढ़ाओ, जब खौलने लगे, उसमें किशमिशों को कुचलकर डाल दो। और जब दो पाव पानी शेष बच रहे, तब साफ़ कपड़े में छान लो, जिससे रस सब निकल जाय और छिलके, बीज आदि रह जायँ। यदि रुचि के विपरीत न हो, तो ज़रा-सा ताज़ा नीबू भी निचोड़ सकते हो।

केला

केला सब तरह की सूजन में हितकारी है। इसीलिये मोतीझरे का ज्वर और छिन्न अंत्रोदर-रोग में कुछ काल तक सेवन करने से बड़ा लाभ पहुँचता है। यह न केवल अँतड़ियों की सूजन को मिटाता है, किंतु इसमें ९५ फ़ीसदी पौष्टिक पदार्थ होने के कारण सूजे हुए स्थान को छेदन के लिये काफ़ी फ़ुजला नहीं पैदा करता, किंतु केले को सावधानी से खाना चाहिए। केला न तो कच्चा हो और न सड़ा-गला हो। खूब पका हो, पर कहीं दाग न हो। गूदे के चारों ओर लंबे-लंबे रेशे होते हैं, वे एक-एक करके बीनकर निकाल देने चाहिए तथा मथ-कर मलाई-जैसा बना लेना चाहिए। रोग अधिक बढ़ने पर यथेष्ट दिया जा सकता है। यदि रोगी से न लिया जाय, तो नीबू का रस भी मिला सकते हैं। पका केला न मिले, तो उसे सेक लेना चाहिए। पर वह पके की बराबरी न कर सकेगा। केले को छिलके समेत सेकना चाहिए। बीस या तीस मिनट तक सेकना काफ़ी होगा।

विलायत की एक प्रख्यात स्त्री डॉक्टर लिखती हैं कि एक रात को मैं एक शूल की रोगिणी लड़की के लिये जल्दी से बुलाई गई। मैंने कुछ तेज़ बारली का पानी, कुछ केले एनीमा साथ लिए। लड़की पलँग पर उल्टी पड़ी थी। वह चिल्ला रही थी और उसका कंठ रुक रहा था। सबसे प्रथम मैंने गर्म पानी का एनीमा दिया, एक पाइंट गर्म पानी चढ़ाया गया। जब वह पानी बाहर आ गया, फिर दुबारा सादा गर्म पानी चढ़ाया गया। यह अँत-ड़ियों को अच्छी तरह धोने के इरादे से किया गया। तब बारली का पानी गर्म किया गया। केलों को मथकर ख़ूब मलाई के समान बनाया गया, और उस बारली के पानी में मिला दिया। इस प्रकार एक पौष्टिक और शांतिप्रद द्रव तैयार किया गया। यह पानी धीरे से अँत-ड़ियों में पहुँचा दिया गया, और जहाँ तक बन सका, पानी पेट में रुका रखने की चेष्टा की गई। आश्चर्य-जनक परिणाम हुआ। दर्द मिट गया, और रोगी को शीघ्र ही आराम हो गया।

श्वेतप्रदर-रोग में केले का बड़ा गुण है। रोज़ दो केले खाने से प्रदर-रोग में लाभ होता है।

मिश्री, गाय का घृत, केला ये तीनों वस्तु पाव-भर लेकर मथ ले। इनमें दारचीनी १॥ तोला, लोध १ तोला, धाय के फूल, बड़ी इलायची प्रत्येक ६ माशे, सोंठ ८ माशे, माजूफल ३ माशे बारीक पीसकर मिलावें। २ तोला सुबह-शाम खाने से रक्त और श्वेत दोनो प्रकार के प्रदर में आश्चर्य गुण करता है।

केले में लोहा होता है, इसलिये पांडु-रोग में वह बहुत लाभकारी होता है। ताज़ा नारंगी के रस के साथ खाने में इसमें बड़ा मज़ा आता है। चोट या रगड़ लगने से केले के छिलके को बाँध देने से सूजन नहीं बढ़ती।

खोपरा नारियल

अँतड़ियों के कीड़ों का बहुत उत्तम इलाज है। खोपरे को पीसकर चम्मच-भर सुबह-सुबह लेना चाहिए, जब तक आराम न हो। खोपरा हरा ही लाभदायक है, सूखा नहीं।

मसाने की दुर्बलता और जलन में खोपरे का पानी बड़ा गुण करता है। मूत्रकृच्छ्र और सुज़ाक की पुरानी अवस्था में खोपरा खाना और उसका पानी पीना आश्चर्य गुण दिखाता है। खोपरा परम पौष्टिक है, इसका पाक बनाकर खाने से २० प्रकार का प्रमेह आराम होता है। वीर्य बढ़ता है। मैथुन-शक्ति बढ़ती है।

पाक की विधि—एक सेर खोपरे को कद्दूकस में कस लो या रेती से रेत लो। ८ सेर गाय का दूध लो और उसमें कसे हुए खोपरे को डालकर मावा पका लो। जब मावा तैयार हो जाय, तब २॥ पाव ताज़ा घृत डालकर मंद-मंद आग से भूनो। सवा पाव बादाम की मींग धो-छील और पिट्ठी पीसकर उसी में डाल दो। भुनने पर एक ओर रख लो। ढाई सेर बूरा की चाशनी करो, तीन तार की। चाशनी में एक तोला उत्तम केसर दूध में पीसकर डाल दो। जब चाशनी आ जाय, तब उक्त मावा डालकर थाल में बर्फ़ी जमा दो। थोड़ा पिस्ता बुरक दो। यह यथाशक्ति खाओ। स्वाद और गुण में अपनी जोड़ नहीं रखती।

नीबू

गठिया, संधिवात, आमवात और मलेरिया में नीबू बहुत गुणकारी है। यकृत और ज्वर में बेहद फ़ायदा करता है। जिगर की गड़बड़ में सिर में चक्कर आवें और आँखों में चका-चौंध-सी लगे, तो थोड़े-से गर्म पानी में एक नीबू निचोड़कर पीने से तुरत लाभ होता है। आमवात के रोगियों को सुबह-शाम एक नीबू का रस चूसना चाहिए। मलेरिया में एक नीबू को सवा सेर पानी में पकाओ। जब तीन पाव पानी रहे, तो प्रातःकाल पी जाओ। मासार्बुद से जीभ में ज़ख्म उत्पन्न हो, तो नीबू से आराम हो जाता है। कंठरोहिणी में धीरे-धीरे नीबू का रस चूसना चाहिए। इसके रस के कुल्ले करने से गले की जलन भी दूर हो जाती है। जिन स्त्रियों को बच्चा जनने में कष्ट हुआ करता है, वे यदि चार मास से लेकर प्रसव-काल

तक एक नीबू का शर्बत बनाकर रोज पिएँगी, तो उनका प्रसूत इस कदर बेतकलीफ़ होगा, मानो कुछ हुआ ही न था।

जिगर की सब तरह की ख़राबियों के लिये नीबू अमृत के समान उपयोगी है। दाल, शाक में और शिकंजबीन बनाकर भी नीबू लिया जा सकता है।

संतरा-नारंगी

संतरे और नारंगी में नीबू के ही कुछ हलके गुण हैं। परंतु यह अधिक स्वादिष्ट, पाचक और रुचि उत्पादक है। नीबू की अपेक्षा इसका असर खून पर विशेष पड़ता है। इन्फ्लुएन्ज़ा की बीमारी में संतरा रामबाण औषध है। इन्फ्लुएन्ज़ा के दिनों में खूब संतरे खाने से शरीर पर इन्फ्लुएन्ज़ा का हमला नहीं होता। यदि इन्फ्लुएन्जा हो ही जाय, तो उसे आराम करने को सबसे अच्छा उपाय यही है कि तीन-चार दिन तक सिर्फ संतरे ही खाए जायँ। साथ ही पकाया हुआ शुद्ध जल पिया जाय।

छोटी नारंगी का छिलका मलेरिया के ज्वर की उत्तम दवा है। शक्तिवर्द्धक भी है। उसके कड़वेपन में किनाइन के गुण हैं। नीबू की ही तरह इन छिलकों को भी एक पाव पानी में उबालकर चौथाई रहने पर गर्म-गर्म पी जाना चाहिए।

तपेदिक और छाती की बीमारियों में संतरे अत्यंत लाभदायक प्रमाणित हुए हैं। हृदय और छाती की सब प्रकार की दुर्बलता में खूब संतरे खाना चाहिए। श्वास की बीमारी और पेट की गड़बड़ी में भी संतरे बेरोक-टोक प्रत्येक भोजन के साथ खाने चाहिए। जिन्हें मंदाग्नि की शिकायत हो, भूख ठीक न लगती हो, उन्हें प्रातःकाल निहार मुँह एक-दो मीठे संतरे खाने चाहिए। संतरे हिस्टीरिया के रोगी को भी जादू का प्रभाव दिखलाते हैं। जिन दिनों उम्दा संतरा न मिले, उन दिनों के लिये संतरे को छीलकर और सुखाकर चूर्ण करके रख लेना चाहिए। यह चूर्ण चाहे जब गर्म पानी में मिलाकर पिया जा सकता है, और एक वर्ष तक ख़राब भी नहीं होता है। आयुर्वेद में नारंगी को भूख लगानेवाली, वातनाशक और रुचिकारक लिखा है। खट्टी नारंगी गर्म और दस्तावर है।

झरबेर

पके बेर फ़ायदेमंद हैं। कच्चे से हैज़ा हो जाता है। सूखे बेर उद्दंडता और बदमाशी का बड़ा अच्छा इलाज है। इसका प्रभाव स्नायु-मंडल पर पड़ता है, जहाँ से बुरे विचारों की तरंगें उठा करती हैं, कोई बच्चा बदमाश, नटखट या कुत्सित आचरणवाला हो, तो उसे सूखे बेरों का यूष पिलाना चाहिए। अद्भुत गुण करेगा।

बेर के यूष की विधि—जो कि तुंद मिज़ाजवालों को मुफ़ीद है, और चिड़चिड़ेपन का उत्तम इलाज है। डेढ़ पाव सूखे बेरों में एक सेर ठंडा पानी डालकर मिट्टी की हाँडी में रात-भर रक्खा रहने दो, सबेरे उबालकर, छानकर एक नीबू निचोड़कर पी जाओ।

बड़ा बेर

इसका रस जाड़े में ज़ुकाम और खाँसी को फ़ायदा करता है।

रस निकालने की विधि—किसी बड़े इमामदस्ते से इसे कुचलकर धीरे-धीरे घंटे-भर तक गर्म करो, और कपड़े में डालकर रस निचोड़ लो। इस तरह उसे फिर दूसरे बर्तन में डालकर एक सेर रस में आध पाव खाँड डालकर घोल दो। उसे एक साफ़ बोतल में भरकर उस बोतल को गर्म पानी के बर्तन में रक्खो, और पानी को पाव घंटे उबालो। बोतल पूरी भर देनी चाहिए। पीछे उसे निकालकर काक बंदकर चपड़ी लगा दो, यह रस पसीना लाता है, इसलिये ज़ुकाम में नायाब है। सोते वक्त गर्म पानी के साथ दो चम्मच ले सकते हैं। ज्वर में भी गुणकारी है।

बवासीर पर बेर के पत्तों की पुल्टिस—अद्भुत है। इसके पत्तों को उबालकर मुलायम कर लो। पानी में नहीं, भाफ़ से उबालो। एक चौड़े मुँह के बर्तन में पानी भरो, उस पर चलन ढाँपकर पत्ते रख दो, ऊपर से थाली से ढाँप दो। जब गर्म हो जाय, तब अलसी या ज़ैतूनी का तेल चुपड़कर मस्सों पर बाँध दो, घंटे-भर तक बँधा रहने दो। ठंडा होने पर खोल दो।

प्याज़

प्याज़ का रस पसीना लानेवाला है। प्याज़ खाने का बड़ा भारी रिवाज है, प्रायः सब देशों में प्याज़ खाया जाता है। प्याज़ का रस कब्ज़ और खाँसी को लाभ करता है। नींद लाता है। वात-व्याधि और पेट के विकारों में हितकारी है। शहद की मक्खी और भिड़ के काटने पर फ़ायदा करता है।

स्नायु-मंडल के उद्वेग को यह तुरंत शांत करता और रंग को खोलता है। पर प्याज़ ज़्यादा नहीं खाना चाहिए। प्याज़ हर किसी को नहीं भिल सकता, पकाए हुए प्याज़ की अपेक्षा कच्चा प्याज़ विशेष गुण करता है।

कच्चे प्याज़ को पैरों की बिवाइयों पर रगड़ने से बड़ा लाभ होता है। अगर बिवाइयाँ बहुत फट गई हों, तो प्याज़ काटकर बाँध देना चाहिए। भुने प्याज़ के बीच का गूदा यदि कान पर बाँध दिया जाय, तो कान का दर्द आराम हो जाता है।

कच्चा प्याज़ बहुत कीटाणुनाशक है, इसलिये उसको रोगी के कमरे में रखने से लाभ होता है। रोगी के कमरे में रक्खे प्याज़ को जला या गाड़ देना चाहिए। प्याज़ के उत्तेजक होने के कारण इसे हम लोग नहीं खाते। यह तामसी गुणवाला है।

प्याज़ का रस थोड़ी-थोड़ी देर में देने से हैज़े में बड़ा फ़ायदा होता है। हैज़े के दिनों में प्याज़ खाना अच्छा है। पेट के कीड़े भी इसके रस से मर जाते हैं।

प्याज़ के रस की विधि—एक प्याज़ के टुकड़े करो, बर्तन में रखकर ऊपर थोड़ी चीनी बुर्काओ। फिर ढककर बारह घंटा पड़ा रहने दो। सबका रस हो जायगा। एक-एक चम्मच लेना चाहिए। ज़्यादा मत लेना। ज़्यादा लेने से सिर-दर्द और उल्टी होने लगती है।

प्याज़ की पुल्टिस—एक या दो प्याज़ मलमल के कपड़े में रखकर कुचलने से बड़ी अच्छी पुल्टिस बन जाती है। छाती के दर्द में रामबाण है, पर तीसरे-चौथे घंटे में बदल डालनी चाहिए। पैरों में पुल्टिस बाँधने से खाँसी को आराम होता है।

लहसुन

लहसुन में प्याज़ के ही सब गुण हैं, पर ज़रा तेज़ है। लहसुन खासकर वायु के रोगों में गठिया और श्वासवात में बड़ा उपकार करता है। पानी लगने की बीमारी में उपयोगी है।

अनन्नास

अनन्नास का रस कंठरोहिणी के लिये बहुत गुणकारी है, बल्कि दवा है। रोगी को रस निगलवाना चाहिए। पर यह कार्य घोरतर कठिन है। यह इतना तेज़ है कि रोगी निगल ही नहीं सकता। इसे काटकर और खरल में कुचलकर रस निकालो। रोगी को गर्म पानी से कुल्ला कराओ, और चाँदी के चम्मच से मुँह में डाल दो। यदि इस बार रोगी कुछ भी न निगल सके, तो वह रस मुँह और गले को धोने का ही काम देगा। यह अंदर की झिल्ली को गला देगा। इसके बाद सावधानी से चम्मच से उसे खुरच डालना चाहिए। इसका पिलाना और झिल्ली का खुरचना रोगी सह सके, उतना करना चाहिए। थोड़ी देर पीछे रस फिर पिलाना चाहिए, उसे रोगी निगल सकेगा। किंतु खुरचने का काम धीरे-धीरे होशियारी से जारी रहे, तो बच्चे भी इस तकलीफ़ को सह लेते हैं। चम्मच चाँदी का ही लेना चाहिए और उसे बार-बार गर्म पानी में डुबोकर साफ़ कर लेना चाहिए। यह एक विचित्र बात है कि ६–६ मास के बच्चे दूध के बदले इसके रस को मज़े में पी लेते हैं, किंतु इस रोग का रोगी नहीं पी सकता। यह चमड़े को गलाकर निकालने में बड़ा अक्सीर है। इसके टुकड़े करके दो दिन तक शहद में रक्खो और थोड़ा-थोड़ा खाया करो, तो वर्षों की पुरानी आँतों की गड़बड़ी ठीक हो जाती है। मांसाहारियों को इसका एक टुकड़ा अवश्य खाना चाहिए। शाकाहारियों को भोजन से पहले खाना चाहिए। गले की जलन को मुफ़ीद है। १ अनन्नास में आध सेर के क़रीब रस निकलता है।

खजूर

पौष्टिक तथा जल्दी हज़म होनेवाला है। इसीलिये क्षय के रोगियों को दिया जा सकता है। प्यास को मारता है, तृप्ति करता है। पाव-भर खजूर और आध सेर दूध उनके लिये मुफ़ीद है, जिन्हें बैठे-बैठे काम करना पड़ता है।

यह अतिसार और संग्रहणी-रोग में मीठा खाने की तबियत होने पर खाया जा सकता है। बहुमूत्र या मधुमेह रोग में जब कि सब तरह की मिठाइयाँ हानिकर होती हैं, इसका शर्बत पानी या दूध में मिलाकर पिया जा सकता है।

शर्बत बनाने की विधि

पाँच सेर खजूरों को पंद्रह सेर पानी में उबालो। पहले धोकर साफ़ कर लो और चीरकर

गुठली निकाल लो। आधा पानी जल जाय, तब उतारकर ठंडा कर लो, और छान लो। वह पानी फिर मंदी-मंदी आँच से पकाओ, यहाँ तक कि चासनी आ जाय, यही शर्बत है। यह शर्बत बच्चों को भी गुणकारी है। ख़ासकर पेट चलने और सूखा की बीमारी में।

अंजीर

अंजीर ताज़ा ताकतवर है। सूखे अंजीर के खाने की तरकीब यह है कि झटपट गर्म पानी से धो डालो, और बीस मिनट तक भाफ़ दो।

अंजीर पेट-भर खाने से कोढ में बहुत फायदा होता है—ख़ासकर सफ़ेद कोढ मे। यह फल दस्त को नरम करके लाता है, इसलिये जिन्हें दस्त की कब्ज़ियत ज़्यादा रहती हो, उन्हें अंजीर खाना चाहिए। ख़ून-फसाद की बीमारी में भी अजीर फ़ायदा करता है।

प्रदर का अनोखा नुसखा

नागकेसर ५ तो०, राल २॥ तो०, अनार की कली २ तो०, कुडे की छाल २॥ तो०, कबावचीनी २ तो०, आँवला सूखा २ तो०, हरड बडी २॥ तो०।

कपडछन चूर्ण करके ताज़े अंजीर के रस मे सात बार भिगोकर छाया मे सुखावे। गीले अंजीर न मिलें, तो १० तोला सूखे अंजीरो को कुचलकर उनमे आध सेर पानी डालकर उबाल ले, और उनसे भावना दे। इसके बाद इसी तरह काले मुनक्का के काढ़े की ७ भावना दे। जब रस सूख जाय, तब उसमें १४ तोला मिश्री, २ तोला वंशलोचन, ६ माशा कपूर मिलाकर शीशी में रख ले। यह चूर्ण प्रतिदिन सायं-प्रात ६ माशा फंकी लेने से सब प्रकार के प्रदर मे तत्काल फायदा करता है।

गोभी

सब तरह की गोभी में गधक का भाग ख़ूब होता है। इसलिये यह पाचक और रक्त-शोधक है। दूधवाली माताओ को खानी चाहिए। इसे पानी में न उबालना चाहिए। भाफ़ मे पकाना चाहिए। यदि पानी से पकाई जाय, तो पानी ही देना चाहिए। पानी मे उबाली हुई गरिष्ठ हो जाती है, पेट में वायु पैदा करती है। कुष्ठ, खुजली और चर्म-रोगो में मुफ़ीद है।

आलू

वात-व्याधि, गठिया और आमवात मे लाभकारी है। आलुओं को भाफ में उबालना चाहिए। उबलते हुए छिलका न टूटे, इसका ख़याल रखना चाहिए। पीछे छीलकर ख़ूब घी मे तल लेने चाहिए। छीलने में सावधानी रखने की जरूरत है, क्योंकि आलू का सबसे अधिक पौष्टिक अंग ठीक छिलके के पीछे ही रहता और छीलती बार प्राय नष्ट हो जाता है।

आलुओ को कच्चा पीसकर जले पर लगाने से बहुत लाभ होता है। आध सेर आलुओ को चार चार टुकडे करो, उन्हें सवा सेर पानी में उबालो। २॥ पाव पानी रख लो, इस पानी से सूजे हुए हिस्से को धोओ। सूजन में बडा लाभ होगा।

सेम, मटर, मसूर

ये तीनों चीज़ें स्वच्छ या मेह के पानी में पकानी चाहिए। नींबू का रस डालकर पीने से और भी पाचक बन जाती हैं। मसूर बहुत जल्द हज़म होती है, यह दाल हफ्ते में दो दफ़ा ज़रूर खानी चाहिए, इसमें लोहा और फास्फरस बहुत होता है।

गाजर

लोग कहते हैं कि जल्दी हज़म नहीं होती। पर पथरी को बहुत मुफ़ीद है। ठंडी और दिल को ताक़त देती है। इसका शर्बत संधिवात, खाँसी, कुकर गर्मी आदि में फ़ायदेमंद है।

शलजम

पुरानी खाँसी में इसका रस शहद में मिलाकर दिया जाता है। वात-व्याधि में गुणकारी है।

टिमाटर

रोगी को पथ्य है। शरीर के रोम-रंध्रों को खोलनेवाला है। जिगर की बीमारी में बहुत उपयोगी है। इसकी पुलटिस फोड़े को जल्दी पकाती है, पर जल्दी-जल्दी और गर्म-गर्म लगानी चाहिए।

अध्याय नवाँ

विष भोजन

प्रकरण १

मदिरा

पाश्चात्य सभ्यता ने संसार को जो सबसे भयानक वस्तु दी है, वह मदिरा है। यह शरीर और आत्मा दोनो ही के लिये समान रीति से घातक है। गत महायुद्ध में १ करोड प्राण-युद्ध के द्वारा, १॥ करोड महामारी के द्वारा और २ करोड मदिरा के द्वारा नष्ट हुए।

भारत में ज्यों-ज्यों पाश्चात्य सभ्यता बढी है, मदिरा का प्रचार व्यापक होता गया है। अमीर और गरीब सभी इसके चंगुल में फँसे हैं। पश्चिम में मद्य के विरोध में भारी आंदोलन प्रारंभ हो गया है। अमेरिका में जहाँ ३६ हज़ार वर्ग मील ज़मीन है, और १० करोड से अधिक मनुष्य रहते है, सर्वत्र शराब की बिक्री बंद कर दी गई है। अन्य योरपीय राष्ट्र भी समस्त संसार से इसको नष्ट कर देने का उद्योग कर रहे है। इँगलैंड के प्रख्यात महामंत्री मि० ग्लेडस्टन ने एक बार कहा था—"मनुष्य-जाति पर असयम द्वारा जितनी विपत्तियाँ पडी है, उतनी बडी-से-बडी तीन ऐतिहासिक विपत्तियाँ, अर्थात् युद्ध, महामारी और अकाल द्वारा भी नहीं पडीं।"

क्रिटनवेन क्राफ्ट ने मदिरा का वर्णन इस प्रकार किया है—

"मै आग हूँ, मैं भस्म करती हूँ और नाश करती हूँ। मै रोग हूँ और असाध्य हूँ। मैं चिता हूँ, राजाओं की चमकीली पोशाक, प्रतिष्ठित पुरुषों के भारी-भारी वेश, सजीली रानियों के रेशमी वस्त्र, मेरी अमिट भूख मिटाया करते है। मेरा नशा भयंकर ऊँचाई पर भी पहुँच जाता है, और तब मैं थोडी देर के लिये सुलगती हूँ। मेरी ज्वाला अचानक धधक उठती और सर्वस्व को भस्म करना शुरू कर देती है। यहाँ तक कि कुछ भी नहीं बचता। मैं अग्नि का समुद्र हूँ, कोई जिह्वा मुझसे प्यास नहीं बुझा सकती। मैं वह अग्नि हूँ जो कभी जल से शात नहीं होती।"

यह मदिरा का सच्चा वर्णन है। यह मदिरा अस्वाभाविक रीति से सडाकर बनाई जाती है। गेहूँ, मक्का, ज्वार, चावल और महुआ, अगूर और खजूर के रस से इसे बनाते है। इसमें सुरा-सार का प्राधान्य रहता है। १०० औंस मद्य में ५ से ७० औंस तक सुरा-सार रहता है।

यह सुरा-सार भयानक विष है। यदि सुरा-सार थोडा भी एक मनुष्य को दिया जाय, तो वह उसे मारने को काफ़ी है। यदि जल में $\frac{1}{100}$ सुरा-सार मिलाकर उसमें मछली को डाल दिया जाय, तो वह मर जायगी। यदि अंडे की सफ़ेदी सुरा-सार में डालो, तो वह तुरंत सिमट जायगी, तथा कडी हो जायगी। फिर आमाशय, गुर्दे, कलेजा और स्नायु पर उसका क्या प्रभाव पडेगा ? यह बात हमे स्वय ही सोच लेना चाहिए।

मदिरा भोजन नही है

भोजन उसे कहते है, जो शरीर मे किसी प्रकार की हानि पहुँचाए विना गर्मी, उत्तेजना और वृद्धि में सहायक हो। परतु मदिरा आमाशय में पहुँचकर न पचती है न परिवर्तित होती है। पर रक्त मे मादक रूप से प्रवेश करती है। यह शरीर के जिस किसी भाग में प्रवेश करती है, उसे सिकोड देती है। शरीर को वल भी नही देती। इसीलिये जब पहलेपहल मदिरा पी जाती है, तो आमाशय उसे बाहर फेंक देता है, उलटी हो जाती है। यदि आमाशय तदुरुस्त है, तो वह किसी भी खाद्य पदार्थ को वापस नही फेंक सकता। भोजन जहाँ शरीर को वढ़ाता है, मदिरा द्वारा वह घटता है। जो वालकपन से मदिरा पीते है, उनके शरीर पूर्ण रीति पर नहीं वढते। मदिरा रक्त के लाल कणों को निस्तेज करती और सफ़ेद कणो को नष्ट करती है।

मदिरा स्नायुओ को भी वल नहीं देती। पहलवान लोग मदिरा से बचे रहते हैं। डॉक्टरों का यह कथन है कि मदिरा से स्नायु दुर्बल हो जाते है। परतु चूँकि मदिरा पीने मे मस्तक शून्य हो जाता है, लोग समझते है कि बल बढ़ता है।

मदिरा का मस्तक पर प्रभाव

मस्तिष्क एक ऐसा केंद्र है, जहाँ हृदय, फेफडे, स्नायु, ज्ञान-तंतु और रीढ की सचालन-शक्ति स्थिर है। इसलिये जिस व्यक्ति का मस्तिष्क ठीक क्रिया मे नही रहता, उसे हम पागल कहते हैं। ईश्वर ने मस्तिष्क को शरीर में सबसे उच्च स्थान इसीलिये दिया है, क्योंकि वह ज्ञान-केंद्र और इस समस्त शरीर का पथ-प्रदर्शक है। यदि हम इसे दूपित कर लें, तो यह भारी पाप होगा। मदिरा कठ से उतरते ही ज्ञान-तंतुओं द्वारा मस्तिष्क पर प्रभाव करती है। १० मिनट वाद ही वह उनमे हलचल उत्पन्न कर देती है, मस्तिष्क में विचारो का ताँता लग जाता और पीनेवाला व्यक्ति अपने को बहुत ही व्यस्त समझता है। धीरे-धीरे मदिरा की गैस मस्तिष्क के स्नायु-मडल मे विपैला प्रभाव उत्पन्न कर देती और वह व्यक्ति संज्ञा-हीन होने लगता है। पहले वह विचारता है, और फिर बोलता है, उसके इन शब्दों मे वहक, अज्ञान और अविवेक स्पष्ट दीख पडता है। मदिरा पीने से पहले वह जितना ज्ञानवान् था, वैसा अव नही दीख पडता। मदिरा-पान के वाद हठात् उसके आचरण और प्रकृति बदलने लगती है। प्रथम गुनगुनाकर और फिर अपने अविवेक-पूर्ण विचारो को चिल्ला-चिल्ला-कर वकता है। इसमे भी अधिक भयानक वात जो इस अवस्था में देखी जाती है, वह यह

है कि जब नशे का भरपूर वेग होता है, तब वह दुराचार-संबंधी बातों और कुचेष्टाओं पर उतर पड़ता है। कभी किसी शराबी व्यक्ति को सदाचारी भावनाओं से ओत-प्रोत नहीं पाया गया। यह इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि मदिरा मस्तिष्क को दूषित कर देती है। खूब उत्तेजित हो चुकने पर वह मस्तिष्क में गर्मी, हृदय में व्याकुलता और शरीर में भारीपन अनुभव करता और अवसन्न दशा में ग्रस्त होने लगता है। उसी अवस्था में वह जहाँ-का-तहाँ बेहोश पड़ जाता है। उसका मस्तिष्क क्रिया-रहित और ज्ञान-तंतु दूषित हो जाते हैं।

कुछ वैज्ञानिक विद्वानों ने स्वय अपने ऊपर मदिरा का प्रयोग किया और परीक्षा की है। और वे इस परिणाम पर पहुँचे है कि प्रत्येक अवस्था में मदिरा मस्तिष्क के लिये घातक विष और विवेक को नष्ट करनेवाली है। उन्होंने गणित के एक विद्यार्थी को ८ दिन तक मदिरा पिलाई। ८ दिन बाद उसकी मानसिक शक्ति ६ प्रतिशत घट गई थी। रेखागणित के जिस सिद्धांत को वह पहले ५ मिनट में हल कर लेता था, उसे ८ दिन बाद उसने ३ ३८ मिनट में हल किया।

इसके सिवा अदालती सूचनाओं के आधार पर हम यह जान सकते हैं कि लड़ाई, दंगा, खून, व्यभिचार और फौजदारी के मामले ६५ फीसदी शराब के दुष्परिणाम-स्वरूप होते हैं। मदिरा पीनेवालों के बच्चे बहुधा मृगी और उन्माद के रोगी होते हैं।

मदिरा और जीवन

"मेरे अज्ञानी सुंदर युवको! मुझे तुम पर दया आती है। अब से दस वर्ष पहले मैं एक सुविख्यात फ़िल्म कपनी का प्रधान अभिनेता था। मेरे जोड़ का सुदर और हृष्ट-पुष्ट, मस्ताना युवक उस कंपनी को आज तक नसीब नही हुआ। नोटों के बंडल प्रतिमास मेरी जेब में आते थे। घूमने के लिये Ralls Rayas कार थी। मित्रों और परिजनों में मैं बहुत ही सम्मान और आदर से देखा जाता था। गुलाब के पुष्प के समान सुंदर मेरी स्त्री थी। हस के समान कोमल और गोरे-गोरे मेरे बच्चे थे। मेरे विचार प्रातःकाल की उषा के समान उज्ज्वल और ऊँचे थे। मैंने इस समस्त सम्मान, प्रतिष्ठा, प्रेम, सुख और सौदर्य पर वज्राघात कर दिया। वे अब नष्ट हो गए है। आज मैं स्त्री-हीन, पुत्र-हीन, मान-हीन एक अपाहिज, रोगी, भिखारी हूँ, और अपनी गैरत को भस्म करके मैं अपने भाग्य-हीन हाथ फैलाकर आपसे एक टुकड़ा माँग रहा हूँ। यह सब इसी मदिरा का फल है, जिसे तुम इस युवती के संग गटागट कंठ से नीचे उतार रहे हो।"

होटल के विलास-गृह मे चार युवको को बैठे मदिरा-पान करते हुए देखकर एक वृद्ध और कुरूप भिक्षुक ने उपर्युक्त बातें कही थीं, जो निस्संदेह भुला देने योग्य नहीं।

शराब फेफड़ों को छेद डालती है, उन्हें गला डालती है, सड़ा देती है, कफ को बढ़ाती और शक्ति का नाश करती है। तभी तो शराबी व्यक्ति ४० वर्ष की अवस्था में ही वृद्ध और निस्तेज हो जाते हैं। अमेरिका की बीमा-कंपनियाँ अपनी पॉलिसी के लिये

प्रसिद्ध है। वे अपने ग्राहक को किसी प्रकार भी अपने जाल से नहीं निकलने देती, यदि तनिक भी हेतु उसकी सुरक्षा का मिल जाय। परंतु यह आश्चर्य की बात है कि वे अब धनी, शराबी व्यक्तियों का बीमा उतना लाभप्रद नहीं समझतीं, जितना वे शराब न पीनेवाले ग़रीबों का। उन कंपनियों का कहना है कि शराबी प्रायः रोगी और अल्प आयु में ही मर जानेवाला होता है। यह तो उनकी रिपोर्ट से पता चलता है कि शराबी तीन मरे, तो शराब न पीनेवाले दो ही मरे।

मदिरा और रोग

कुछ दिन पूर्व डॉक्टर लोग मदिरा को शक्ति-वर्द्धक और पौष्टिक समझते थे। पर अब ज्ञात हो गया है कि मदिरा पाचन-शक्ति को नष्ट करनेवाली, सनक और दीवानापन लानेवाली, कलेजा, फेफड़ा, गुर्दा, आमाशय और रक्त-स्नायुओं को भीतर-ही-भीतर घुलानेवाली, अस्वाभाविक रीति से रोग-जंतुओं को शरीर में पहुँचानेवाली है, जिससे शरीर-अवयव और ज्ञान-तंतु बिगड़ जाते हैं। निमोनिया, तपेदिक, श्वास, अम्लपित्त, संग्रहणी, शोथ आदि सांघातिक रोग उत्पन्न होने लगते और यह रोग फिर पुश्तैनी हो जाते हैं।

मदिरा और गृह-सौख्य

गृहस्थ-सुख की नाशक, प्रेम और दया की पवित्र मूर्ति, सौंदर्य की पुतली, सुकुमार स्त्रियों पर भीषण चोट और अत्याचार करानेवाली, फूल-से हल्के, निर्दोष बच्चों को पटक-पटककर प्राण निकलवा देनेवाली, धन-दौलत, मान-प्रतिष्ठा और संयम को नष्ट करनेवाली, विधवाओं, अनाथों और क़र्ज़दारों की संख्या बढ़ानेवाली, पैशाचिक प्रवृत्ति उत्पन्न करनेवाली, दर-दर भीख मँगवानेवाली, सड़क की धूल खिलानेवाली, कुत्तों का मूत पिलानेवाली और मनुष्यत्व खो देनेवाली यह मदिरा है, जिसका भयंकर परिणाम सर्व-विदित है।

मदिरा का ख़ास प्रभाव

मदिरा संभोग-शक्ति को असाधारण रीति से प्रबल कर देती है। संयम की शक्ति मद्यप में नहीं रहती। इसके साथ ही वह जनन-शक्ति को कम कर देती है। इसका फल यह होता है कि बॉंझ और नपुंसकता के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, और मनुष्य शीघ्र ही निर्वीर्य और वृद्ध हो जाता है, और अल्पकाल ही में उसकी समस्त इंद्रियाँ नष्ट हो जाती हैं। इसके सिवा मदिरा का ख़ास प्रभाव यह भी होता है—

१—इच्छा-शक्ति प्रभाव-हीन हो जाती है। २—वाणी काबू से बाहर हो जाती है। ३—४० फ़ीसदी मद्यप आत्मघात करते हैं। ४—विवेक और ज्ञान नहीं रहता। ५—काम करने की शक्ति कम हो जाती है। ६—यदि मद्यप को क्षय-रोग हो, तो आरोग्य होना संभव नहीं। ७—मधुमेह, गठिया और फेफड़ों में सूजन हो जाती है। ८—जीवन कम हो जाता है।

मदिरा पर नर-रत्नों की सम्मतियाँ

"इस महायुद्ध में तुम्हें अपने आरोग्य ज्ञान-तंतुओं की सबसे अधिक आवश्यकता

पड़ेगी। ज्ञान-तंतुओं की शक्ति ही विजय का फ़ैसला करेगी। इसलिये मदिरा का व्यवहार कम-से-कम करना।"

"जर्मन-सम्राट् कैसर"

"शराबी और शराब बेचनेवाले जब इच्छानुसार व्यवहार करते हैं, तब समाज और राजनीति दोनों ही के संगठन को नष्ट करते हैं।"

"राष्ट्रपति रूज़वेल्ट, अमेरिका"

"शराब जर्मनी के पनडुब्बों से अधिक हमारी हानि कर रही है।"

"लायड जार्ज"

"संयमी सेना ही विजय प्राप्त कर सकती है। सैनिको, तुम शत्रु की अपेक्षा मदिरा से डरो।"

"नेपोलियन बोनापार्ट"

"मदिरा फ़्रांस की सब सेनाओं से भयानक है।"

"काउंट-मोल्ट के, जर्मनी"

"जिनके अधिकार में बिजली और भाफ़ की मशीनें रहें, उन्हें मदिरा के चंगुल में ज़रा-सा भी फँसने का मौक़ा देना अति भयानक है।"

"मि० डेनियल्स, अमेरिका के जंगी जहाज़ों के मंत्री"

"मदिरा शरीर की बची हुई शक्तियों को भी उत्तेजित करके काम में लगा देती है। फिर उसके ख़र्च हो जाने पर शरीर काम के लायक़ नहीं रहता।"

"सर फ्रेडरिक ट्रीव्स वार्ट, सम्राट् जार्ज के गृह-चिकित्सक"

मद्य और खाद्य

मदिरा में केवल उष्णता के सिवा भोजन का कोई अंश नहीं है, इससे खाद्य पदार्थों से उसकी उष्णता की ही जाँच हो सकती है। देखिए—

खाद्य उष्णता की माप कैलोरी से (Colorie)।

आटा	१७०५	सेवईं	११२०
जई का दलिया	२४४०	मक्की के टुकड़े	८४२.५
साबूदाना	२१००	सेब	७३३
शर्करा	२४४०	सोडा-बिस्कुट	६५०
सेम का बीज	२६६६	ह्विस्की	१६१४
रोटी	२४३०	काकटेइल	१२६.५
सूखा मटर	२०१५	बीयर	१३८
चावल	१७२०	बराण्डी	११६
आलू	१५००	वाइन	६३
किशमिश	१३३७		

शैंपेन	२१७	मक्खन	६८०
स्किम मिल्क	६६०	पनीर	६०५
लैंब चॅप	४४०	दूध	६२०
मूँगफली	१४५०	मलाई	५६५

किस मद्य में कितना मादक द्रव्य होता है—

मद्य	अलकोहॉल फ़ी सैकड़ा	मद्य	अलकोहॉल फ़ी सैकड़ा
बीयर	५ सैकड़ा	बरमथ	१५ सैकड़ा
एल	७ ,,	क्यूड़ीम्यूथी	३२ ,,
पार्लर	७ ,,	काक्टेल्स	३५ ,,
हार्ड सैड	६ ,,	बिटर्स	४६ ,,
कूट वाईन	८ ,,	कीमनल	४२ ,,
कैरेट	८ ,,	रम	४५ ,,
मस्केरल	८ ,,	बरांडी	५० ,,
शैंपेन	१० ,,	जिन	५० ,,
सैनटर्न	१२ ,,	ह्विस्की	५० ,,
शेरी	१४ ,,	वोडाका	५० ,,
पोर्ट	१४ ,,	एब्सिथ	६० ,,

मदिरा का औषध की रीति पर उपयोग

योरप के अस्पतालों में अब से २५ वर्ष तक मदिरा का औषध की भाँति बहुतायत से उपयोग होता था। चीर-फाड़ के बाद बहुत-से अस्पतालों में बरांडी हृदय को उत्तेजना देने के लिये काम में लाई जाती थी, पर अब योरप के विद्वानों ने इसका उपयोग बंद कर दिया है।

आस्ट्रेलिया के एक अस्पताल में एक वर्ष में एक हजार पौंड से अधिक मूल्य की मदिरा रोगियों पर खर्च की गई थी। यह सन् १८९१ की बात है, उसी अस्पताल में सन् १९१४ में चार पौंड की मदिरा खर्च की गई।

डॉ० हार्वीवेली, जो अमेरिका के प्रतिष्ठित चिकित्सक हैं और औषध-अन्वेषण करनेवाली सभा के सभापति हैं, कहते हैं—"औषध तत्त्वसार के पारंगत हैं, जिन्होंने मदिरा के प्रभाव का अन्वेषण किया है, एकमत से सहमत हैं कि मदिरा पौष्टिक पदार्थ नहीं है। यह एक निरा विषैला पदार्थ है, इसलिये ह्विस्की और बरांडी दोनों ही औषधि की श्रेणी में से अलग कर दी गई हैं।"

कलकत्ते के सर लियोनर्ड राजर्स कहते हैं कि "बंगाल के जिगर के फोड़े के ७० फ़ीसदी रोगियों का कारण शराब का पीना ही है। स्त्रियों में यह रोग बहुत कम पाया जाता है, क्योंकि वे शराब नहीं पीतीं। मुसलमानों में भी यह रोग कम है, क्योंकि बंगाल में हिंदू ही ज़्यादा शराब पीते हैं।"

कुछ दिन पूर्व ग्रेट ब्रिटेन और भारत के डॉक्टरों ने मिलकर एक विज्ञप्ति निकाली थी, जिसका अभिप्राय यह था—

१—यह वैज्ञानिक रीति से निश्चय हो गया है कि मदिरा, कोकीन, अफ़ीम और अन्य नशीली चीज़ें विष हैं। २—भारत-जैसे गर्म देश में इनका थोड़ा भी व्यवहार स्थायी रूप से हानिकर है। ३—बहुत दशाओं में मद्य संतान के लिये हानिकर है। ४—प्लेग, मलेरिया और क्षय को रोकने में मद्य बेकार चीज़ है। ५—यही बात अन्य नशे की चीज़ों के संबंध में भी कही जा सकती है।

भारत और मदिरा

डेली एक्सप्रेस द्वारा सलाह ली जाने पर लार्ड लेवर ह्यूम ने एक बार यह वक्तव्य प्रकट किया था कि ग्रेट ब्रिटेन में ४० करोड़ रुपए मूल्य की मदिरा प्रतिवर्ष ख़र्च हो जाती है।

भारतवर्ष में सरकार की निगरानी में जो देशी शराब की भट्टियाँ हैं, उनमें एक वर्ष में क़रीब ५० लाख गैलन बीयर और क़रीब एक करोड़ गैलन मामूली शराब तैयार होती रही हैं। विलायती शराब भारत में सन् १९१२ से १७ तक क़रीब ७ करोड़ रु० की विलायत से मँगाई गई थी।

सिर्फ़ युक्त-प्रांत की शराब की खपत का एक विवरण एक बार प्रांतीय कौंसिल में बाबू मोहनलाल सक्सेना के प्रश्न के उत्तर में तत्कालीन उद्योग और कृषि-विभाग के मिनिस्टर नवाब छतारी ने दिया था।

वह इस प्रकार था—

सन् १९२०-२१—में	११, ३८०३०	गैलन	देशी शराब
,, १९२१-२२—,,	५, ७६, ८८८	,,	,,
,, १९२२-२३—,,	४, ७३, ०७७	,,	,,
,, १९२३-२४—,,	४, ३०, १०४	,,	,,
,, १९२४-२५—,,	४, ८०, ५०५	,,	,,
इस प्रकार कुल पाँच वर्षों में	३०, १८, ६०४	,,	,,

(अभी साल ख़तम नहीं हुआ था)

विलायती शराब से एक बड़ी आमदनी सरकार को है। इसी आमदनी के लालच से सरकार सदैव ही शराबख़ोरी से प्रजा की बर्बादी को देखा-अनदेखा करती रही है। भारत-सरकार का यह काम वास्तव में निंदनीय है।

हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सभी की धर्म-पुस्तकों में शराब की निंदा लिखी है, जिस प्रकार शराबी मनुष्य हिंदू-धर्म में द्विज नहीं कहा सकता, उसी प्रकार शराबी मुसलमान शरअ की रू से मुसलमान नहीं कहा सकता।

अब से हज़ार वर्ष प्रथम नवीं शताब्दी में अरब का प्रख्यात सौदागर सुलेमान जब भारत में आया, तो उसने देखा कि भारत में कहीं भी शराब की दूकान नहीं है। उसने यह बात बड़े आश्चर्य से अपने यात्रा-विवरण में लिखी है।

मुग़ल-सम्राट् औरंगज़ेब के समय में प्रसिद्ध फ़ासीसी डॉक्टर बर्नियर ने, जो औरंगज़ेब के दरबार में बहुत दिन रहा था, साफ़ लिखा है कि दिल्ली में शराब की एक भी दूकान नहीं थी।

बादशाह जहाँगीर स्वयं शराबी था। वह सदा योरप से बढ़िया शराब मँगाकर पीता था। पर उसने भी सदा शराब के विरुद्ध घोषणाएँ प्रकटित की थीं। पहला योरपियन यात्री वास्कोडिगामा जब भारतीय तट पर जहाज़ से उतरा, तब उसने भी भारत को शराब से रहित पाया। कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र के पढ़ने से पता लगता है कि प्रजा को चंद्रगुप्त सम्राट् के समय में अनेक कर देने पड़ते थे, परंतु शराब के कर या महकमे का वहाँ भी ज़िक्र नहीं था।

हर सूरत में किसी भी भारत के स्वतंत्र या उच्छृंखल राजा के मन में शराब की दूकान खोलकर अपने ख़ज़ाने को भरने की सूझ नहीं हुई थी। इस अनोखी विचार-सृष्टि का श्रेय केवल अँगरेज़ सरकार को ही है, जो बिना संकोच यह कहती है कि उसकी बढ़ी आमदनी के ख़याल ही से उसकी बिक्री कम नहीं की जायगी।

अब से सौ-सवा सौ वर्ष पहले जब सरकार को पता लगा कि ताड़ी का व्यवहार नीच जातियों में ज़्यादा बढ़ रहा है, तब उसने ताड़ी के प्रत्येक पेड़ पर टैक्स लगा दिया, धीरे-धीरे इस आमदनी पर उसका जी ललचाया। उसने ही ज़िले में आबकारियाँ खोलीं, और उनकी मालिक बन बैठी। बिशप जान हर्स्ट ने इस विषय पर लिखा है—"सरकार आबकारियों की पूँजीपति बनी। उसने शराबख़ाने बनवाए। शराब बनाने के लिये आवश्यक बर्तनों की व्यवस्था की। ख़ास शराब के लिये ही पुलिस तैनात की। शराब का काम देशी ठेकेदारों को दिया गया।"

पर इतना करने पर भी सरकार को संतोष न हुआ। वह इस धंधे से जितना रुपया चाहती थी, उतना न कमा सकी। इसी समय मि० मी० टी० बकलैंड ने अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखाया। उन्होंने सरकारी आबकारियाँ बंद कर दीं। अब तक उस दूकान की मालिक सरकार थी, अब शराब बनाने-बेचने का काम ठेके पर नीलाम किया जाने लगा। ज़िला-मजिस्ट्रेट उस अधिकार का नीलाम करने लगे। सबसे अधिक रुपया देनेवाले को इच्छानुसार शराब बनाने और बेचने का अधिकार मिलने लगा।

अब सरकार को कुछ संतोष हुआ। क्योंकि सरकारी ख़ज़ाने में धुआँधार रुपया आने

लगा था। यह व्यवस्था सन् १८७८ में की गई। १८७३ और १८७४ में आबकारी-विभाग की सालाना आमदनी करीब साढ़े तीन करोड़ रुपया थी। सन् १८७८-७६ में, एक ही वर्ष में, करीब ४ करोड़ हो गई। १८८७ में वह आमदनी ६ करोड़ ३६ लाख ६ हजार हो गई!

किंतु प्रजा पर उसका क्या असर पड़ा? आबकारियों की संख्या में भयंकर वृद्धि हुई। उनमें अपरिमित शराब तैयार होने लगी। मुंगेर के जिले में पुरानी व्यवस्था के अनुसार रोज ५०० गैलन शराब बनती थी। अब १५०० गैलन नित्य बनने लगी। १) में १ बोतल मिलती थी, जब वह बहुत सस्ती हो गई। अब चार प्रकार की मद्य, चार प्रकार की कीमत पर बिकने लगी। सबसे सस्ती =) में और सबसे महँगी १) में। यह मद्य बहुत तेज तथा गंदी थी।

इस गंदी, सस्ती और तेज़ शराब ने भारत की क्या दशा की है, उसका वर्णन हृदय को हिला देनेवाला है। जो हिंदू-जाति अत्यंत प्राचीन काल से अपने संयम के लिये प्रसिद्ध थी, वह शराबियों की जाति बन गई है। ब्राह्मण से लेकर भंगी तक और बड़े ओहदेदारों से लेकर कुली तक सभी शराबी बन गए हैं।

स्वर्गीय केशवचंद्रसेन ने एक बार कहा था कि दस शिक्षित बंगालियों में नौ छिपकर शराब पीते हैं। बिना शराब का प्याला ढाले मित्रों की सोसायटी में मजा नहीं आता। मुसलमानों की श्रद्धा कुरान से उठ गई है। अब उच्च श्रेणी के मुसलमानों में बिना शराब के कोई दावत पूरी ही नहीं होती।

जब बड़ो-बड़ों का यह हाल है, तो छोटे-छोटे श्रमजीवियों का कहना ही क्या है? बाजारों और सड़कों के किनारे खोले गए शराबखानों में आज असंख्य अभागों की भीड़ नज़र आती है। इनके बच्चे भूखे मरते हैं, स्त्रियों के पास लज्जा-निवारण को चिथड़ा नहीं है। किंतु ये अभागे अपने दिन-भर की कमाई की शराब पीकर पशु बनकर घर में आते और रात-भर पड़े रहते हैं। पहले यह लोग अपनी आमदनी बचाकर पीते हैं, पर दिन-पर-दिन मात्रा बढ़ती और फिर सब आमदनी स्वाहा होती है। मतवाले होकर स्त्री-बच्चों को पीटना, फूहड़ गाली बकना या किसी गंदी जगह में पड़ा रहना, यही इनका जीवन हो जाता है। शीघ्र ही वह किसी काम के भी नहीं रहते। मजूरी भी नहीं कर सकते। घर के जेवर, बर्तनों पर हाथ साफ होता है। पीछे बाहर चोरी करते हैं। जेल जाते हैं। अनाथ स्त्री-बच्चे भीख माँगकर, व्यभिचार करके, मजूरी करके, पापी पेट को पालते हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ विष खाकर मरती हैं।

सरकारी अदालतों की भी आय इस शराब से बेतरह बढ़ गई है। जुआ, चोरी, व्यभिचार, हत्या आदि विषय शराब के अवश्यंभावी परिणाम हैं। जज, पुलिस और वकील सबको रोज़ी देकर शराबी या तो फाँसी की टिकटी पर प्राण त्यागता है या जेल में मिट्टी काटता है।

मध्यम श्रेणी के लोग प्रथम दवा की तरह एकाध बार शराब पीते हैं, पीछे छिपकर उसका

मज़ा लेते हैं। धीरे-धीरे वे अपनी औलादों के पवित्र होठों पर भी उसका आचमन करा देते हैं। क्या इस बात पर विचार किया जा सकता है कि इसका भविष्य संतति पर क्या असर पड़ता है? जिन्हें साफ़ा अन्न और वस्त्र भी नहीं मिलते, वे भी बराबर शराब पीते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनके शरीर भयंकर रूप में जर्जरित हो जाते हैं। खाँसी, दमा, क्षय, उन्माद ये भयंकर रोग जो बड़ी तेज़ी से बढ़ रहे हैं, निस्सन्देह शराब-खोरी के भयंकर परिणाम हैं।

इस प्रकार इस शराब ने भारतीय समाज को धर्म-भ्रष्ट, गरीब, अशांत और अस्वस्थ कर दिया है। फिर भी दिन-पर-दिन शराब पीने के साधन सुगम होते जा रहे हैं।

प्रजा को अच्छी तरह हलाल करके, उसकी जातीयता, धर्म और पवित्रता का नाश करके, उसके सीधे सरल गृह-जीवन में आग लगाकर केवल रुपयों के ढेर के लालच में सरकार बराबर शराब को उत्तेजन दे रही है।!!

सन् १८८८ में, हाउस ऑफ़ कामन्स में, भारत में, शराब के प्रचार के विषय में बहस हुई थी। अँगरेज़ वक्ताओं ने भारत-सरकार की शराब-प्रचार-नीति के पक्ष में बोलकर वाक्चातुर्य दिखाया था। परंतु मिस्टर केनी ने भारतवासियों का पक्ष लेते हुए सरकारी नीति का तीव्र विरोध किया, और उन्होंने शराब-प्रचार के संबंध में हिंदोस्तान की सरकार की कुटिल और दूषित नीति को प्रमाण द्वारा सिद्ध करते हुए कहा था—"यदि सरकार अपनी आय को प्रति दसवें वर्ष दुगुनी करने की वर्तमान नीति को कायम रक्खेगी, तो हिंदोस्तान ३० वर्ष में पृथ्वी-तल पर एक पक्का शराबी और पतित देश हो जायगा।"

क्या ये शब्द हमें भयभीत दृष्टि से देखने योग्य नहीं हैं?

सन् १८७४ में इस पाप-कर्म से सरकार को २ करोड़ ७४ लाख की आमदनी थी। १९०८ में वह ९ करोड़ साढ़े अट्ठावन लाख हो गई। ३३ वर्ष में ५५ गुनी!

अमेरिका ने शराब को त्याग दिया है, और योरप में इसके त्यागने का घोर आंदोलन हो रहा है। वहाँ के वैज्ञानिकों और डॉक्टरों ने आंदोलन मचा रक्खा है कि यह शराब उनके देश और राष्ट्र को, उनके समाज को सत्यानास कर रहा है। विद्वान् लोग सर्वसाधारण को चिता रहे हैं कि मद्य-पान से बल घटता है, पुरुषार्थ कम होता है, शरीर में रोग प्रवेश करते हैं, और आयु कम हो जाती है। शराब का काम मांस को गला डालना है। इससे दिमाग़ खराब होता और बुद्धि मलिन हो जाती है।

नेशन पत्र लिखता है

"शराब से मस्तिष्क के रोग अपच-रोग और फेफड़े के रोग अवश्य उत्पन्न होते हैं। जिनके शरीर में जितना कम या ज्यादा बल होता है, उतने ही जल्द या देर में ये रोग घुस सकते हैं। पर शराब पेट में गई और उसने शरीर, मस्तक, पाचन-शक्ति और फेफड़ों पर अपना कम, ज्यादा, या पूरा असर डाला।

शराबियों में फ़ी सैकड़ा २७१ मस्तक के रोग से, २३ ३ अपच-रोग से और २६६६ फेफड़े के रोग से मरते हैं।

मैं ख़ुद चिकित्सक हूँ, और मुझे ऐसे-ऐसे करुण दृश्य इस शराब के प्रताप से देखने को मिले हैं, जिनका वर्णन नहीं हो सकता।

एक अभागे राजा की दुरवस्था मैं जन्म-भर न भूलूँगा। उसकी अवस्था कठिनता से २६ वर्ष की होगी। अत्यंत सुंदर पुरुष था। पर मैंने देखा, उसका सारा शरीर पीला हल्दी के समान हो गया था। नेत्र भी वैसे ही पीले थे, जिगर और गुर्दे सूजकर फूल गए थे। एक-एक बूँद पेशाब कष्ट से उतरता था, और सूखकर हड्डी का ढाँचा रह गया था। दस्त दो-चार दिन तक न उतरता था। यह सब शराब की कारीगरी थी। फेफड़ा गलकर सड़ गया था। अब भी शराब न छूटती थी। पाँच-पाँच मिनट में उसकी ज़बान ऐंठती थी, और वह सिवा शराब के कुछ पीता न था। वह बचने को आतुर था, पर मेरी मुलाक़ात के तीन दिन बाद ही वह उसी जवानी में मर गया !!!

और एक प्रख्यात करोड़पति ओसवाल युवक की बात याद है, जो २३ वर्ष की उम्र में अपनी १८ वर्ष की सगर्भा स्त्री और लाखों की संपदा को छोड़कर मरा। उसका शरीर काला, रूखा और अत्यंत घृणित हो गया था। मुख से साफ़ शब्द नहीं निकलता था, गद्गद वाणी से हकलाकर बोलता और उसका प्रतिक्षण प्रत्येक अंग काँपता था।

कहाँ तक गिनाया जाय। ये शराब के दुष्परिणाम प्रकट हैं। भारत के पागलख़ानों में ६० फ़ीसदी पागल मादक द्रव्य सेवन करनेवाले हैं।

प्रकरण २

तंबाकू

अब तंबाकू के विषय में भी सुनिए। इसे लोग न तो नशा समझते हैं, न भयंकर विष। यह नित्य इस्तेमाल की एक निर्दोष वस्तु समझी जाती है।

इसका प्रचार भारत में अकबर के राज्यकाल में हुआ था। इसे खेत में बोया जाता है। इसके पत्ते चौड़े-चौड़े होते हैं। यह एक प्रकार का विष है। कोई भी पशु इसके पौधे को नहीं चरता। पर आश्चर्य की बात है कि मनुष्य जो जीव-श्रेष्ठ है, इसे अनेक रूप से उपयोग में लाता है। स्वास्थ्य के हेतु से इसे व्यवहार में लाना उचित है, यह भी सत्य नहीं है। क्योंकि जो इसे सेवन नहीं करते, वे इन लोगों से और भी अच्छे हैं। फिर भी हम देख रहे हैं कि तंबाकू का व्यवहार इतनी प्रचंडता से बढ़ा है कि अन्य सारी मादक वस्तुओं की बिक्री इससे बहुत ही पीछे है। गत योरपीय महायुद्ध पर हिसाब लगाया गया था कि संसार-भर में तंबाकू की खेती की कीमत ६२,४०,००,००० रुपए थी।

तंबाकू विष है

निकोटीन एक तीव्र विष है। इसकी एक बूँद खरगोश के मुँह में डालो, तो वह तुरत मर जायगा। कुत्ते की जीभ पर दो बूँद डालो, तो वह भी मर जायगा। वैज्ञानिक अनुसंधान से यह सिद्ध हुआ है कि ऐसा निकोटीन तंबाकू में २% होता है। प्रथम बार जब तंबाकू सेवन किया जाता है, तो जी मचलाता, उल्टी हो जाती है। इसे तीन प्रकार से व्यवहार में लाते हैं—

(१) चिलम या सिगरेट द्वारा धूम्र-पान करके।

(२) नस्य या सुँघनी बनाकर सूँघने से।

(३) पान में रखकर सुरती के रूप में या चूने के साथ मलकर खाकर।

परंतु इन तीनों प्रकारों में प्रकृति असंतुष्ट होती है। पीने से धुआँ बाहर निकालना पड़ता है। सूँघने से छींकना पड़ता है। खाने से थूकना पड़ता है।

तात्पर्य यह है कि अन्य खाद्य सामग्रियों की तरह शरीर-प्रकृति इसे संपूर्ण रूप से ग्रहण नहीं करती। ग्रहण न करने के कारण हैं। इसमें निकोटीन के अलावा भी अन्य विषैले तत्त्व हैं। जैसे कोलिडीन, प्रुसिकएसिड, कार्बन मोनऑक्साइड, फरफुरल और एक्रोलीन। कोलिडीन जहरीला क्षार है, जिससे स्नायु दुर्बल हो जाते और चक्कर आने लगते हैं। प्रुसिकएसिड ज्ञान-तंतुओं को मलीन कर देता है। सिर में भारीपन रहता और मन

मे अरुचि पैदा करता है। कार्बन मोनक्साइड दम घोटकर मार डालनेवाली विषैली गैस है। इसका असर यह होता है कि साँस जल्दी-जल्दी चलने लगती है, हृदय की गति तेज़ हो जाती है, रोमाच और ऐंठन होती है। आँखो की पुतलियाँ फैल जाती है, और ठडा पसीना, ठडा बदन, बेहोशी और पक्षाघात उत्पन्न करता है। फरफुरल मस्तिष्क के ज्ञान-तंतुओ को ढीला कर देनेवाला विष है, जिससे बाद में आचार और शुद्ध विचार नष्ट हो जाते हैं। एक्रोलीन एक गैस है, जो मन मे चिडचिडाहट पैदा कर देती है।

किसी प्रकार भी तबाकू सेवन किया जाय, वह दोष-युक्त है। जो उसका धुआँ पीते है, यद्यपि वह कुछ पेट में नही पहुँचता, तब भी सूक्ष्म नलियाँ और ज्ञान-तंतु उसके प्रभाव से धीरे-धीरे भर जाते हैं, और उनकी क्रिया बद हो जाती है। आमाशय की महास्रोत-नली में रुकावट हो जाती है, इससे पाचन-क्रिया कम पड जाती है। हुक्के की नेच में, चिलम में एक अति दुर्गंधित कीट जम जाता है। यह कीट और कुछ नहीं, उसी धुएँ का सचित रूप है।

तंबाकू पीनेवाले बहुधा कहा करते हैं कि इसके सेवन से तबियत प्रसन्न रहती है, सुस्ती दूर हो जाती है, थकान नही रहती, भूख बढ़ती है। लेकिन ये सब बाते भ्रात और कल्पित हैं। तंबाकू सेवन का सबसे पहला असर मस्तिष्क को शून्य कर देना है। थकित व्यक्ति जब अपने को तंबाकू पीने से कुछ शून्य आनददायी अवस्था मे पाता है, तो उसे भला लगता है।

भूख लगना भी भ्रम है। जैसे दस्त साफ न होने पर पेट मे एक प्रकार की अग्नि-सी प्रतीत होती और उसके चेतन होने पर भूख का भास होने लगता है, उसी प्रकार तबाकू का धुआँ पेट में पहुँचने से होता है। ख़ून का दौरा तो निर्बल हो ही जाता है, नसें और आँतें भी सकुचित हो जाती है। इस धुएँ के पहुँचने से उन्हें थोडे मे ही गर्मी प्रतीत होती है। बस इसी को वे भूख लगना समझ बैठते हैं, फिर तो अपच और कब्ज़ की शिकायतें पुरानी पड जाती हैं। शुद्ध रक्त नहीं बनता। कुल शरीर पीला, दुर्गंधित और दुबला पड जाता है। जीभ, होठ और गले में बहुधा नासूर हो जाता है। हृदय-रोग हो जाता और वह भला-चंगा मनुष्य मरीज बन जाता है। इससे भी अधिक बुरी बात यह है कि उसे झूठा, गंदा, दुराचारी, आलसी और भद्दी शक्ल का बन जाना पडता है।

विषैला प्रभाव

अब प्रश्न यह है कि इन छ विषो के रहते तबाकू पीनेवाले दीर्घ काल तक जीते किस तरह रहते हैं? उन्हें तो तत्काल मर जाना चाहिए। यदि विष की सपूर्ण मात्रा शरीर में पहुँच जाय, तब तो ऐसा होना अनिवार्य है। पर ४% ही विष रुधिर मे प्रवेश कर पाता है। शेष वापस निकल जाता है। परतु यह ४% भी एक साथ ही प्रवेश नहीं करता। धीरे-धीरे करता है। थोडा-थोडा करके पहुँचने से शरीर को उसके सहन का अभ्यास हो जाता और वह उसे सात्म्यकर है। इसलिये वर्षों में वह विष अपनी मात्रा पूरी कर पाता और तब

अनेक रोगों को उत्पन्न करके मनुष्य के प्राण समाप्त करता है। हम कह सकते हैं कि ५० वर्ष जीनेवाला व्यक्ति ३५ वर्ष ही जिएगा। शेष १५ वर्ष इस तवाकू की भेंट होंगे।

भारत में तंबाकू का ५० लाख मन सालाना ख़र्च है। भारतवासी सालाना २ अरब (?) रुपए की तंबाकू पी जाते हैं। फ़ीसदी ७०-८० आदमी तवाकू पीते हैं। अरबों रुपए की पूँजी से अनगिनत कारखाने सिगरेटों के चल रहे हैं, जिनके मालिक उनका प्रचार बढ़ाने के लिये हज़ारों उपाय करते और ट्रैक्ट बाँटते हैं। बाइस्कोप के तमाशे दिखाते हैं। लाटरी डालते हैं। कविताएँ बनाते हैं। सुंदर स्त्रियों के चित्र सिगरेटों की पेटियों में रखते हैं। इस प्रकार से उनके प्रचार को अधिकाधिक बढ़ाने के लिये विज्ञापनों में पैसे को पानी की भाँति बहाते हैं। और रँगीली, भड़कीली भाँति-भाँति के कागज़ों और डिबियों में लपेटे हुए सिगरेटों को प्रचुर परिमाण में प्रतिदिन तैयार करते हैं। सुगंधित तेज़ाब, स्प्रिट आदि चीज़ें मिलाकर उन्हें ऐसा बनाने का प्रयत्न करते हैं कि लोगों पर अधिकाधिक उसका असर हो, और वे बहुत शीघ्र तंबाकू के गुलाम बन जायँ।

बंबई, बंगाल, मद्रास और बर्मा में इसकी खेती दिन-पर-दिन बढ़ रही है। दस लाख एकड़ ज़मीन पर यह ज़हर बोया जाता और ३६ लाख रु० से अधिक मूल्य का विलायत से आता है। बर्मा और मद्रास में सिगरेट के बड़े-बड़े कारख़ाने हैं। बंबई में पत्तों की बीड़ियों का रिवाज बहुत ज़्यादा है। राजपूताने में देसी और काबुली दो प्रकार की तवाकू होती है। उसमें गुड़ मिलाकर भाँति-भाँति के हुक्के, नरेली और चिलमों में लोग पीते हैं। कलकत्ता, बनारस, लखनऊ, दिल्ली आदि शहरों में सुगंधित वस्तु मिलाकर सुरती, मुश्की आदि नामों से इसकी गोलियाँ बनाते और सोने के वर्क चढ़ाकर बेचते हैं। यहाँ जो तवाकू पैदा होती है, उसके सिवा बाहर से भी आती है, जिनमें ८० लाख से अधिक के सिगरेट सिर्फ़ अमेरिका और मिश्र से प्रतिवर्ष आते हैं। और क़रीब एक करोड़ की तवाकू यहाँ से बाहर जाती है। क्या इस बात पर हमें विचार नहीं करना चाहिए कि ३२ करोड़ मनुष्य दो अरब रुपए की तवाकू प्रतिवर्ष फूँक डालते हैं। हिसाब से यह ख़र्च फ़ी आदमी ६) साल या ॥) महीना पड़ता है। अब यदि फ़ी आदमी एक मास में एक पेटी दियासलाई भी ख़र्च करे, तो ३½ अरब पेटियाँ होती हैं, जिनका मूल्य एक पैसा पेटी के हिसाब से लगाया जाय, तो ३½ अरब पैसे अर्थात् करीब ५½ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष होते हैं।

बहुत आदमी प्रतिदिन सौ सौ बीड़ियाँ और ३०-४० चिलम तक पी जाते हैं। अब फ़ी आदमी २५ बीड़ियाँ प्रतिदिन के हिसाब से गिनें और दो पैसा उनका मूल्य समझें, तो प्रति-वर्ष ११।) रुपए होते हैं। यदि वह आदमी ४० वर्ष तक बीड़ियाँ पीता रहे, तो ४५०) की बीड़ियाँ और ५०) की दियासलाई इस प्रकार कुल ५००) एक आदमी का ख़र्च होता है। इस पर सूद-दर-सूद लगाइए और सोचिए कि यदि कुल भारत में १० करोड़ मनुष्य भी तवाकू पीते हों, तो ५० अरब रुपए तंबाकू की भेंट जाता है!!

भारत में १० लाख बीघे धरती में तंबाकू बोई जाती है। इतनी जमीन में यदि अन्न बोया जाय और दो बार बुआई करने से उसमें से प्रति बीघा २० मन अन्न भी हो, तो २० करोड़ मन अन्न उत्पन्न हो सकता है। प्रतिदिन एक सेर के हिसाब से एक-एक मनुष्य को ६ मन अन्न एक वर्ष को काफ़ी हो सकता है। इस तरह २२ लाख से अधिक मनुष्यों का पेट भर सकता है। एक विद्वान् ने तो हिसाब लगाकर बताया है कि तंबाकू की भूमि में यदि अन्न बोया जाय, तो उससे ९ करोड़ २० लाख मनुष्यों का एक वर्ष तक पोषण हो सकता है।

तंबाकू के विषय में विद्वानों की राय

"दारू और भाँग की तरह तंबाकू भी खराब है। जो शराब को खराब मानता है, वह सिगरेट, तंबाकू कैसे पी सकता है। तंबाकू पीनेवाले इतने ज्ञान-शून्य हो जाते हैं कि वे बिना आज्ञा के दूसरों के घरों में तंबाकू पीते ज़रा भी नहीं शर्माते।'

महात्मा गांधी

"चुरुट, तंबाकू पीने से बुद्धि नष्ट होकर मनुष्य की अधर्म में प्रवृत्ति हो जाती है। यह एक ऐसा नशा है, जो कई अंशों में शराब से भी बुरा है।'

ऋषि टाल्सटाय

"तंबाकू पीने से हाज़मा सुधरता है, यह विचार बिल्कुल गलत है। ऐसे हज़ारों रोगी वैद्यों के पास आते हैं, जिनकी पाचन-क्रिया तंबाकू के व्यसन से बिगड़ गई है।"

डॉ० मसी

"तंबाकू, शराब, चाय आदि नशीली और ज़हरीली चीज़ों में शरीर को पोषण करने-वाला गुण ज़रा भी नहीं है। कमज़ोरी और अकाल-मृत्यु के सिवा और कोई नतीजा इससे नहीं होता।"

डॉ० टी० एल्० निकोलस

"तंबाकू से शरीर के भीतरी भाग बिगड़कर सूज जाते हैं। वह भयंकर विष है। इसमें ज़रा भी संदेह नहीं।"

डॉ० अलसाट

"जिस पुरुष को ५० वर्ष तक जीना हो, वह तंबाकू पीने के कारण २०-३० वर्ष में ही मर जायगा। वह आरोग्यता का विकट शत्रु है। हम अपने प्रेमियों से अनुरोध करते हैं कि वे अपनी तंदुरुस्ती और वीर्य की रक्षा चाहते हैं, तो इस 'जंगलीपन की निशानी' को सर्वथा त्याग दें।"

स्वामी सत्यदेव

प्रकरण ७

अफ़ीम और गाँजा

सिर्फ युक्त-प्रान्त में ५ वर्ष की अफीम की खपत का व्यौरा इस प्रकार है—

सन् १९२०-२१ में ९८४ मन २४ सेर ८ छटाक
,, १९२१-२२ ,, ८६१ ,, २४ ,, ८ ,,
,, १९२२-२३ ,, ७३९ ,, ३८ ,,
,, १९२३-२४ ,, ६०२ ,, २ ,,
,, १९२४-२५ ,, ५८० ,, १९ ,,

पाँच वर्षों में ३८४९ मन २८ ,, (अभी साल ख़तम नहीं हुआ था)

गाँजे का हिसाब इस प्रकार था—

सन् १९२०-२१ में ५५७ मन २० सेर
,, १९२१-२२ ,, ४०८ ,, २० ,,
,, १९२२-२३ ,, ३०६ ,, ७ ,,
,, १९२३-२४ ,, १९९ ,, ३ ,,
,, १९२४-२५ ,, २० ,, २ ,,

कुल पाँच वर्षों में १४८२ मन ७ ,, (अभी साल ख़तम नहीं हुआ था)

अब चरस का हिसाब नीचे दिया जाता है—

सन् १९२०-२१ में ६५२३ मन २४ सेर
,, १९२१-२२ ,, ४७१९ ,, ३१ ,,
,, १९२२-२३ ,, ४२१३ ,, २२ ,,
,, १९२३-२४ ,, ३९३८ ,, १४ ,,
,, १९२४-२५ ,, ३५५७ ,, २९ ,,

पूरे पाँच वर्ष का जोड़—२२९५३—०—मन

इस प्रकार उन दिनों सिर्फ़ संयुक्त-प्रांत में ५ वर्ष में लगभग ३० लाख गैलन शराब, ४ हज़ार मन अफीम, क़रीब १५ सौ मन गाँजा और २३ हजार मन चरस ख़र्च हुआ था। उन पाँच वर्षों में शराब को छोड़कर सिर्फ़ संयुक्त-प्रांत (?) ने ३० हज़ार मन विष भोजन कर लिया था। यह विष भोजन कैसा रोमांचकारी है, इस पर प्रत्येक बुद्धिमान् को विचार करना चाहिए। असहयोग आंदोलन में इस विष भोजन के विरुद्ध आंदोलन किया गया।

पूर्वीय सभी देशों में अफ़ीम का बड़ा ही प्रचार है। हिंदोस्तान में बूढ़े लोग जरा करारे बने रहने के लिये और जवान इम्साक और मजा लूटने के लिये अफ़ीम खाते हैं, तथा बच्चों को सुलाने के लिये दी जाती है। राजपूताने में व्याह-शादी और दावतों में ख़ातिरदारी की जगह अफ़ीम घोलकर पिलाई जाती है। चीन में खाद्य पदार्थों की तरह इसका सेवन होता है। किसी समय काठियावाड़ में इतनी अफ़ीम खाई जाती थी कि खानेवालों की विष्ठा से पशुओं की रक्षा करने को जंगल में आदमी नियत किए जाते थे। भारत में आजकल दूध की कमी होने से अफ़ीम ही लोगों को खा रही है।

२०-२५ वर्ष प्रथम हेग में एक कान्फ्रेंस हुई थी, जिसमें निश्चय हुआ था कि जो राष्ट्र इस कन्वोकेशन के समझौते से सहमत हों, वे बनाई हुई अफ़ीम की आमदरफ्त को बिलकुल रोक दें। भारत-सरकार के भी इस पर दस्तख़त थे। कन्वोकेशन के विधान पत्र में एक यह भी बात थी कि जिन देशों में अफ़ीम पैदा होती है, वे इसकी उपज को इतना कम कर दें कि राष्ट्र-सब को उससे संतोष हो, और जो तंबाकू की तरह अफ़ीम पीते हैं, वे १५ वर्षों में उसका पीना बिलकुल बंद कर दें। परंतु इस पर कुछ भी अमल नहीं हुआ। कुछ दिन पूर्व जेनोआ में एक और कान्फ्रेंस हुई थी। उसमें संसार-भर से मादक द्रव्यों को उठा देने पर विचार किया गया था। यह प्रस्ताव अमेरिका ने उठाया था। परंतु ब्रिटिश-प्रतिनिधि ने इसका विरोध किया। इसका कारण यह था कि भारत-सरकार को इस विष भोजन से बड़ी आमदनी है। भारत-सरकार के अर्थ-सदस्य सर बेलिसब्लैकेट के दिए हुए अंकों से पता लगता है कि अकेली अफ़ीम से ही सरकार को सन् २१ से २५ तक कोई ४½ वर्षों में ६ करोड़ ९ लाख रुपए की आमदनी हुई थी।

अफ़ीम का शरीर पर मुख्य प्रभाव यह पड़ता है कि वह कुछ समय के लिये दर्द को रोक देती है। पर दर्द के कारण उससे दूर नहीं होते। यह केवल मस्तिष्क को मंद करके ज्ञानतंतुओं को मूर्च्छित कर देती है। मस्तिष्क पर उसका प्रभाव ही नहीं पड़ता। जब मस्तिष्क चेतना-हीन हो जाता है, तब श्रवण-शक्ति, स्वादेंद्रिय और दृष्टि पर भी उसका हीन प्रभाव पड़ता है। पीनक उसी अवस्था का नाम है, जब मस्तिष्क और ज्ञान-तंतुओं का संबंध भिन्न-भिन्न हो जाता है। अफ़ीम से शरीर पर ये प्रभाव पड़ते हैं—

१—क़ब्ज हो जाता है। २—पाचन-शक्ति ख़राब हो जाती है। ३—श्वास का रोग हो जाता है। ४—बुद्धि मंद हो जाती है। ५—स्वाभाविक प्रेम की शक्ति नष्ट हो जाती है। ६—मनुष्य स्वार्थी और चिड़चिड़ा हो जाता है। बहुत लोगों का ख़याल है कि बुढ़ापे में अफ़ीम खाने से दुर्बलता दूर होती है, यह बड़ा भद्दा और ग़लत विचार है। चीन सारे संसार से अधिक अफ़ीम खाता था और अफ़ीम से चीन की सरकार को १० करोड़ रु० वार्षिक आय थी, जिसकी परवा न कर उसने अफ़ीम के व्यवहार को बंद कर दिया।

प्रकरण ४

अन्य द्रव्य

भाँग, चरस, गाँजा

ये चीज़ें पंजाब, संयुक्त-प्रदेश, पूर्वीय बंगाल, बिहार और कलकत्ते में बहुत काम में लाई जाती हैं। मध्य प्रांत में चरस बहुत काम में लाई जाती है, और पूर्वी बंगाल के कुछ ज़िलों में मल्लाह लोग गाँजा बड़े चाव से पीते हैं। बंगाल के राजशाही ज़िले में दश वर्गमील ज़मीन में गाँजा पैदा होता है। सरकार और जगह गाँजा पैदा नहीं करने देती। भंग पीना निर्दोष समझा जाता है, और बड़े-बड़े विद्वान्, पंडित, उच्च कुल के ब्राह्मण बड़े चाव से भंग पिया करते हैं, उसी प्रकार साधु महात्मा बेग्रदाज़ सुल्फ़ा-गाँजा फूँक डालते हैं। इन नशों के सेवन करने-वाले पुरुषों में पशु-वृत्ति का उदय हो जाता और मनुष्य लकड़ी की तरह सूख जाता है। राजपूताने में अब भी अफ़ीम की बड़ी भारी पैदावार होती है और वहाँ यह मुद्दतों से काम में लाई जाती है। इन चीज़ों के परिणाम में मनुष्य सिड़ी हो जाता है। बहुत मनुष्य इसके सेवन से पागल हो गए हैं।

कोकीन

यह भी पश्चिमी सभ्यता का प्रसाद भारत को मिला है। यह चीज़ दक्षिणी अमेरिका के पीरू-प्रदेश में 'कोका' के पेड़ से निकलती है। भयानक प्रभाव लाने में कोकीन सब नशों से बढ़कर है। इसका प्रभाव आनंद-युक्त सुस्ती का भाव है। पर अंत में मस्तिष्क, शरीर और आत्मा के तेज का इससे नाश हो जाता है। इसका चिकित्सा में पिचकारीद्वारा प्रयोग होता है, पर भारत में इसे पान में रखकर खाते हैं। पहलेपहल सन् १९०४ में इसका प्रचार हुआ था। इसी अल्पकाल में यह इतनी फैली कि सरकार को इस पर बहुत कुछ बंधन लगाने पड़े। फिर भी लाखों रुपए की कोकीन गुप्त रीति से बराबर बिक रही है।

कोकीन के नशे में क्षण-भर एक आनंद का अनुभव होता है, पर जब नशा उतर जाता है, तब उसे मालूम होता है कि वह घोर नरक में गिर गया। उसे भय, भ्रम, भूल, उनिद्र, मंदाग्नि, शूल आदि रोग लग जाते हैं। उसकी आयु नष्ट हो जाती है।

पान

भारतवर्ष में पान खाने का बहुत रिवाज है। स्त्रियाँ और कन्याएँ तक इसे आनंद से खाया करती हैं।

पान में 'पीपरिन'-नामक एक विष होता है और सुपारी में 'अरकेडाइन' और 'आरको-

नीन' विष होता है। पान का चूना मुँह और पेट की पतली झिल्ली में घुस जाता है। यदि चूना तनिक भी अधिक हुआ, तो मुँह कट जाता है। कत्था संकोचक पदार्थ है, यह मुँह, पेट और आँतों को सुखा डालता है। इन सब कारणों से पान खानेवाले के मुख और जिह्वा पर जो स्वाद ग्रहण करनेवाले दाने हैं, वे सूख जाते हैं, और उससे पाचन-शक्ति निर्बल पड़ जाती है।

बहुत लोग इसके साथ तंबाकू, कोकीन और तेज मसाले डालकर खाते हैं, जो भिन्न-भिन्न रीति से नुकसान करते हैं।

चाय

सन् १६६४ ई० में ईस्ट इंडिया कंपनी ने लगभग एक सेर चाय इँगलैंड के तत्कालीन बादशाह चार्ल्स को भेंट की थी, जो उनकी रानी केथेरायन को बहुत पसंद आई। और दो ही वर्षों में इँगलैंड में उसका बड़ा प्रचार हो गया। अब तो चाय योरपीय सभ्यता का एक आवश्यक अंग हो गई है।

चीन चाय की जन्म-भूमि है। भारत में आसाम और नीलगिरी की चाय प्रसिद्ध है। कुछ वर्षों से लंका में भी खूब चाय होने लगी है। चाय में इतने विष हैं—

थीन	२	प्रतिशत
टैनिन	१९	,,
वोलेटाइल तेल	४	,,

थीन (Theine) एक तीव्र क्षार है। ज्ञान-तंतुओं के संगठन पर इसका बहुत ही विषैला और उत्तेजक प्रभाव पड़ता है। चाय पीने से जो एक हल्का आनंद प्रतीत होता है, वह इसी क्षार का प्रभाव है।

टैनिन एक तीव्र कब्ज करनेवाला पदार्थ है। यह पाचन-शक्ति को बिलकुल नष्ट कर देता है। तेल (Volatile oil) वह है, जिसकी सुगंध आती है। इसमें नींद को नष्ट कर देने की शक्ति है। विलायत के एक अखबार का मत है कि "चाय उत्तेजना लाती और कुछ नशा भी पैदा करती है। प्रथम प्रभाव आनंददायक होता है। पेट की नसें उत्तेजित हो जाती हैं। प्रथम मस्तिष्क उत्तेजित होता है, फिर हृदय की गति को उत्तेजना मिलती है। इससे थोड़ी देर को संपूर्ण शरीर फुर्तीला बन जाता है। पर उसका प्रभाव दूर होते ही कमजोरी और सुस्ती आ घेरती है।'

ज्ञान-तंतुओं पर चाय का प्रभाव अधिक उत्तेजना-मूलक पड़ता है। प्रथम यह बेचैनी, निद्रा-नाश और घबराहट पैदा करती है, और अंत में स्नायु-संबंधी कंपन, मस्तिष्क की गड़-बड़ी, हृदय की धड़कन पैदा करती है।

महात्मा गांधी का कहना है—"यह पदार्थ राष्ट्र को डुबाने के लिये काफी उद्योग कर रहा है। इसने हज़ारों स्त्री-पुरुषों की क्षुधा उड़ा दी है। यह गरीबों का फालतू खर्च है।"

डॉ० जान हार्वे का कहना है—"इसका ज्ञान-तंतुओं पर बुरा प्रभाव पडता है, कुछ दिन के बाद जाग जागने की इच्छा, घबराहट, उत्तेजना और स्नायुओं की कमज़ोरी उत्पन्न करती है। जब चाय का खूब सेवन किया जाता है, तो उसके नशीले प्रभाव की अपेक्षा टेनिक एसिड के कारण पेट की गडबडी बहुत होती है। बादी, पेट फूलना, पेट-दर्द, कब्ज़, हृदय की गति का अनियमित रूप से चलना और नींद न आना, यह चाय के मुख्य लक्षण हैं।

चाय के व्यापारियों ने चाय के प्रचार के लिये बडी-बडी चेष्टाएँ की है। और उन्होंने लाखों पैकेट चाय के मुफ्त बाँटे है, जिससे गरीबों को भी चाय पीने का चस्का लग गया है। चाय के झूठे फायदे के वाक्य स्टेशनों, दीवारों और दूकानों पर लिखकर लगा दिए जाते हैं, जिससे भोले-भाले मनुष्य चाय-भक्त बन गए है।

कहवा-कोको

कहवे मे चाय के समान टेनिन और उडनेवाले (Valatiledit) तेल तो होते ही है, उसमें कॉफीन (coffein)-नामक एक और भी विष होता है, जो ७५ % होता है। यह एक कडुवा जहर है। जो हृदय की गति को सुस्त कर देता है। तेल कहवे मे चाय से तिगुना होता है। इसका प्रभाव हृदय की धडकन और दिमागी शक्ति पर बहुत अधिक पडता है।

कोको मे थीन के समान एक क्षार 'थियोब्रोमाइन'-नामक होता है। वह भी उसी प्रकार हानिकर है।

कचालू, चटनी, अचार और गर्म मसाले

इन चीजों का रिवाज़ देश-भर मे है। बहुत लोगों को बिना इन चीज़ों के भोजन ही नहीं भाता। पर सच पूछा जाय, तो भोजन मे इन वस्तुओं का संयुक्त करना विष मिलाने के समान है। ऐसे मसालेदार भोजन और अचार नित्य खाने से अवश्य ही पाचन शक्ति नष्ट हो जाती है, और कई रोग शरीर में उठ खडे होते है।

इन चीज़ों का सबसे बुरा प्रभाव तो शरीर पर यह पडता है कि मिजाज बहुत जल्द तेज हो जाता है। ये शरीर मे उत्तेजना लाती है, पर शीघ्र ही उसे सुस्त कर देते है। इसके सिवा ये चीजे पेट की झिल्ली को बहुत हानि पहुँचाती है।

जिस शहर, कस्बे, नगर मे आप जाइए, बेशुमार खोंचेवाले अपने गदे सामान-तेल, मिर्च, खटाई-लिए बैठे रहते और खासकर बच्चे इन चीजों को बडे चाव से खाते हैं, जिससे न केवल उनका स्वास्थ्य ही खराब हो, प्रत्युत उनकी आदत भी बिगड जाती और फिर उन्हें घर का सीधा-सादा भोजन नहीं भाता।

यह तो मानी हुई बात है कि इन चीजों से किसी भी प्रकार की शरीर की उन्नति नहीं होती। फिर क्या कारण है कि मनुष्य मूर्खता से इन चीजों मे स्वास्थ्य और धन नष्ट करता है।

हमारा प्रत्येक व्यक्ति से यह अनुरोध है कि वह सादा भोजन करे, और स्वाभाविक जीवन अपना ध्येय बनावे। इस प्रकरण में और भी कुछ बातें है, वे ये है—

१—दूध में अधिक चीनी न मिलाई जाय। इससे कलेजे के कार्य में गड़बड़ी होती है। २—मिठाइयाँ बहुत कम खाई जायँ, और वे भी अधिक ताज़ी हों। ३—रसदार पदार्थ कम खाए जायँ। सदा ऐसे भोजन करने चाहिए, जो चबाकर खाए जायँ। ४—बहुत गर्म और बहुत ठंडे पदार्थ न खाए जायँ। ५—तले हुए और भुने हुए पदार्थ को बहुत कम खाया जाय।

विज्ञापनबाज़ और पेटेंट दवाइयाँ

आजकल देश के लिये सबसे भारी ख़तरनाक चीज़ विज्ञापनों द्वारा बिकनेवाली दवाइयाँ और पेटेंट दवाइयाँ हैं। विज्ञापन की अधिकांश दवाइयाँ नामर्दी, स्त्री-रोग और शक्ति-वर्द्धक हुआ करती हैं। और युवकों को इनकी बहुत ही आवश्यकता होती है, यह बात हम अनुभव से कह सकते हैं। इन विज्ञापनों की भाषा उत्तेजक, गंदी और मोहक होती है। मूल्य सस्ते होते हैं, और बड़े-बड़े आश्वासन होते हैं, इन सब कारणों से लोग उनके जाल में फँस जाते हैं।

इस प्रकार की औषधियों के विज्ञापन का एक सबसे अधिक भयंकर परिणाम तो यह होता है कि लंपट लोगों को यह भरोसा मिल जाता है कि चाहे जब पैसा फेंककर फिर साँड बनकर गुलछर्रे उड़ावेंगे। इस ख़याल ने लोगों को पतन के मार्ग पर ढकेलने में बहुत ही मदद दी है। हिक्मतदार ठग अपने उल्लुओं को ख़ूब समझाते हैं। और वे ख़ूब चटकीले नोटिस दे-देकर अपने हलुए-माँडे का मतलब बना रहे हैं। बड़े-बड़े स्टेशनों, तार के खंभों, दीवारों, लालटेन के स्तंभों पर जहाँ देखो, ये रंग-बिरंगे नोटिस चिपके आपको मिलेंगे। अख़बारों के विज्ञापनों के कालम-के-कालम देख जाइए, एक ही ढंग की स्याही पुती मिलेगी। एक-से-एक बढ़िया, एक-से-एक मज़ेदार, जिसे पढ़ते ही रूह फड़क उठे, जी तलमला जाय और पैसा सब से जेब से निकल पड़े। ये ख़ुदाई के ठेकेदार ऐसे दूध-धोए सच्चे शालग्राम होते हैं कि जिसका इनसे काम पड़ता है, वह कृतकृत्य हो जाता है। इनमें कोई तो ढाई रुपए में ४० गोली भेजकर मुर्दे को ४० दिन में साँड बनाने का दावा करता है, तो कोई २१ दिन में पानी के समान पतले धातु को दही का चक्का बना देता है। कोई अपनी गोली के ज़रिए मनुष्यों को सैकड़ों स्त्रियों का मान-भंजन करने योग्य बनाता है। कोई मंत्र, तावीज़ के सहारे दुनिया-भर की स्त्रियों को वश में करने का उपाय बताता है। ये निर्लज्ज, पाखंडी और लुच्चे ठग कहीं-कहीं तो बहुत ही ऊँची दूकान लिए बैठे हैं। किसी को कोई योगी महात्मा जड़ी बता गया है, किसी को बाप-दादे से सिद्ध-योग मिला है, किसी को स्वप्न में देवता ने बताई, और किसी के २५ वर्ष के घोर परिश्रम और लाखों के ख़र्चे से वह औषध हाथ लगी है। इनमें कोई धर्मधुरी केवल डाक-महसूल (?) के ॥=) पैसे लेकर मुफ़्त दवा भेजने का पुण्य लूटते हैं, तो कोई उस आमदनी को केवल धर्मादे (?) लगाते हैं। ये रोज़गार को धर्मार्थ चलानेवाले और बाल-बच्चों को (शायद) भूसा खिलाकर पालनेवाले सत्यवक्ता कहीं-कहीं

तो इन अभागों की बदौलत मालामाल हो गए है। कदाचित् इसका यह कारण हो कि धर्म की जड़ हरी होती है।

पेटेंट दवाइयों से बहुधा दूषित द्रव्यों—जैसे अफ़ीम, कोकीन, मद्य आदि—का संसर्ग रहता है।

अमेरिका के प्रसिद्ध सर्जन डॉ० ओलीवरवेनडेल होलास का कहना है—"यदि ये सब दवाइयाँ समुद्र मे फेंक दी जायँ, तो इससे मनुष्य-जाति का उतना ही फायदा हो सकता है, जितना कि मछलियों का नुकसान।"

बच्चों के लिये बहुत-सी पेटेंट दवाइयाँ बाजार में बिकती हैं, जिनसे बच्चों को लाभ के स्थान पर हानि ही होती है। क्योंकि इनमे शायद ही कोई ऐसी दवा होगी, जिसमें अफ़ीम या शराब न हो।

सिर-दर्द की टिकियाँ जो अधिकतर काम मे लाई जाती है, प्राय. उनमें काफीन और 'फेनेस्टीन' होता है, यदि उनकी अधिक मात्रा भूल से ले ली जाय, तो बहुधा मृत्यु हो जाती है।

स्मरण रहे कि सिर-दर्द कोई रोग नहीं, प्रत्युत किसी रोग के आने की सूचना-मात्र है। इसलिये इन वाहियात पेटेंट दवाइयो से बचकर उस रोग को दूर करने की चिंता करना चाहिए।

मांसाहार

१—मनुष्य मांस को कच्चा और बिना मसाले के खाना पसंद नहीं करता, इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति को यह स्वीकार नहीं कि मनुष्य मांसाहारी बने।

२—मांसाहारी जंतु जब किसी प्राणी को मारता है, तो स्वभाव से ही वह उस खून को देखकर उत्तेजित होता और आनंद प्राप्त करता है। परंतु मांसाहारी मनुष्य जीव को मारकर उतना आनंद और उत्तेजना नहीं प्राप्त करता।

३—मांसाहारी जंतुओं की तरह न तो मनुष्य के पंजे और नख हैं, न दाँत और आँत है। कुत्ता हड्डियाँ पचा सकता है, पर मनुष्य नहीं। उसके और कुत्ते के मेदे में अंतर है। मनुष्य की अँतड़ियाँ इतनी लंबी हैं, जितनी किसी मांसाहारी जंतु की हो ही नहीं सकती।

४—एक दलील दी जा सकती है कि ठंडे देशों मे शरीर मे गर्मी बनाए रखने के लिये चर्बी खाने की ज़रूरत है, और यह सिर्फ़ मांस मे ही होती है। परंतु वनस्पति-शास्त्र के विद्वानों का मत है कि गूदेदार फलों मे भी चर्बी के समान ही गर्मी पैदा करने की शक्ति है। ग्रीनलैंड में बादाम, सेब और शाक-भाजी नहीं होते, इसलिये वहाँ के निवासी शीत का सामना करने के लिये जानवरों की चर्बी पर होते निर्वाह करते हैं। इसीलिये वहाँ के निवासी कुरूप और बेडौल होते है।

५—फ़िलिप-नामक एक मनुष्य बड़ा मांस-भक्षक था। एक दिन वह कसाई के घर मे मुर्ग़ी का ताजा मांस लेने गया। वहाँ मुर्गी के मरने के समय की तड़फड़ाहट, चिल्लाहट और अंतिम यंत्रणा का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसी क्षण से उसने मांस खाना छोड़ दिया।

६—कुछ दिन पहले तक लोगों की यह राय थी कि कुश्ती लड़ने या कसरत करनेवालों को मांसाहार करना नितांत आवश्यक है, इसीलिये योरप, अमेरिका और पश्चिमी देशों के पहलवान अधपके मांस और अन्य उत्तेजक पदार्थों के बड़े प्रेमी होते थे। पर अब यह ख़याल दूर हो रहा है, और शाकाहार पर लोग विश्वास कर रहे हैं। २५ और २६ मील की दौड़ में, ड्रेसडन की ७००० मीटर की दौड़ में, लैंड्स एंड से जान-ओग्रोट्स तक पैदल चलने में, साइकिल पर लगातार २४ घंटे चढ़कर ४०२ मील की यात्रा में, टेनिस की बाज़ी में दस बार, कुश्ती में दस बार, भारी चीज़ उठाने में, तैरने में, पहाड़ पर चढ़ने में जिन्होंने विजय प्राप्त की, वे सब निरामिषभोजी थे।

७—मांसाहारी क्रोधी, क्रूर, निर्दयी, आलसी और निद्रालु होते हैं। उनमें सहन-शक्ति का अभाव होता है।

८—गेहूँ, उड़द, बाजरा, मटर, घी, दही, दूध, आम, गन्ना, मेवा, बादाम, पिस्ता, गेहूँ, चना, दूध और घी से बनी वस्तु, मांस की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट, पुष्टिकर और अग्नि-वर्द्धक होती हैं।

तुर्की सिपाही मांस बहुत कम खाते हैं, इसलिये वे तमाम योरप में बली, योद्धा समझे जाते हैं। लाल समुद्र तथा स्वेज़-नहर के किनारेवाले भी मांस नहीं छूते, वे सब बड़े परिश्रमी और बली होते हैं। इँगलैंडवालों से स्कॉटलैंडवाले अधिक बली और पुष्ट होते हैं, वे लोग विशेषतः शाक-पात और वनस्पति ही खाते हैं। काबुल के पठान मांस की अपेक्षा मेवों को अधिक खाते हैं, इसी से वे इतने बली होते हैं।

९—मांसाहारी जंतु क्रोधी और भयानक तो होते हैं, पर बलवान नहीं। शेर जब घास चरनेवाले अरने भैंसे से मुक़ाबला करता है, तब उसकी दुर्दशा ही होती है। जितना बोझा एक बैल या घोड़ा खींच लेता है, उतना १० शेर नहीं खींच सकते। मथुरा के चौबों के बल का मुक़ाबला कोई मांसाहारी नहीं कर सकता। प्रसिद्ध राममूर्ति ने योरप के पहलवानों को चावल-दाल के बल पर विजय किया।

१०—स्वर्गीय दादा भाई नौरोज़ी से उनकी ८६वीं वर्षगाँठ के दिन एक समाचार-पत्र के संवाददाता ने उनसे उनकी आरोग्यता के विषय में पूछा, तो उन्होंने कहा कि मैं न मांस खाता हूँ, न शराब पीता हूँ, न मसाले खाता हूँ, मैं सदा शुद्ध वायु सेवन करता हूँ।

११—डॉक्टरों ने खोज करके बताया है कि निमोनिया (Pleuro Pnemonia) रिंडरपेस्ट (Rendarpest) शीतला (Measles) एक प्रकार का ज़हरी फोड़ा (Aethrax) कंठमाला (Scrofula) क्षय और अदीठ (Carbuncle) व पक्षाघात इत्यादि भयंकर और प्राणनाशक रोग प्राय गाय, बकरी और जल-जंतुओं के मांस खाने से होते हैं। सुअर के मांस में एक छोटा-सा कीड़ा होता है, जिसे कद्दू दाना कहते हैं, इसके पेट में जाने से अनेक रोग पैदा हो जाते हैं। बकरी के मांस में एक कीड़ा होता है, जिसे

ट्रिक्नास्पिक्टस (Trechnaspectus) कहते है, और उससे एक भयंकर रोग (Trechnoses) हो जाता है। पठनी नाम की मछली खाने से कुष्ट-रोग होता है।

१२—अमेरिका के डॉक्टर जान हार्न का मत है कि मास बहुत देर में पचता है। इसके पचने के समय कलेजे की धड़कन २०० के लगभग बढ़ जाती है। इससे मांसाहारियों को बहुधा हृद्रोग हो जाता है। आमाशय को भी पाचन रस (Gastic Juice) ज्यादा उत्पन्न करना पड़ता है, जिससे मेदा भी कमजोर हो जाता है।

१३—इंडियन मेडिकल जरनल अपनी १५ जून सन् १६१२ की संख्या मे लिखता है कि 'मास-भक्षकों' के मूत्र मे तिगुनी 'यूरिक एसिड' अधिक बढ़ जाती है। इसी तरह यूरिया भी दुगुनी आने लगती है (ये दोनो जहर है)। उनके गुर्दों को अधिक कार्य करना पड़ता है। इसके परिणाम-स्वरूप गठिया, वात-रोग, अस्थि-रोग और जलोदर के असख्य रोगी होते हैं।

१४ – सन् १८७६ की पार्लियामेंट मे इंगलैंड के कैदियों के भोजन के प्रबंध में एक रिपोर्ट पेश हुई थी, जिसमें लिखा गया था कि एक पेंस (आना) के मटर मे जितना पोषक तत्त्व है, उतना ६ पैंस के मास मे है। किफ़ायत की दृष्टि से मासाहार का खर्चा नौगुना ज्यादा है।

१५—वैज्ञानिकों ने विश्लेषण द्वारा मास और वनस्पति के पोषण तत्त्वो का विवेचन इस भाँति किया है। वह इस प्रकार हैं—

	जल	पोषक तत्त्व	चिकनाई	ठोस चीज़	अग्नि-वर्द्धक	मेदा
गो-मास	७४ ६	१६ ४	२ ६	२४ ४	८	
सुअर का मास	७२ ६	१६ ६	६ २	२७ ४	६	
मुर्गी का मास	७७ ८	२२ ७	४ १	२६ २	१ २	
मटर	१४ ८	२३ ७	१ ६	७ ५		४६ ३
गेहूँ आदि	१२ ४	२४ ८	१ ७	३ ६	५६ ८	

उपर्युक्त विवरण लंदन के प्रसिद्ध विश्लेषक डॉ० हालवर्टन M. P F R S प्रोफेसर फिजियालोजी का है।

१६—डॉक्टर अलक्ज़ेंडर मार्सडम (M D F R C. S—Chairman of the Cancer Hospital London) लिखते हैं—इंगलैंड मे कैंसर के रोगी दिन-दिन बढ़ते जाते है। अर्थात् एक वर्ष मे ३०,००० मनुष्य इस रोग मे (इंगलैंड मे) मरते है।

मांसाहार जितनी तेज़ी से बढ़ रहा है, उससे इस बात का भय है कि भविष्य की संतानों में से ७॥ करोड़ लोग इस रोग के शिकार होंगे।

१७—अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान प्रो० चिटंडेन Ph. D D SC. L L D ने एक परीक्षण किया था। उन्होंने ६ मस्तिष्क से कार्य करनेवाले लिए, जिनमें प्रोफेसर और डॉक्टर लोग थे तथा २० शारीरिक कार्य करनेवाले लिए, जो फौज में से लिए गए थे और ८ युनिवर्सिटी से पहलवान लिए गए। हरएक को वही चीज़ खाने को दी गई, जो प्रयोक्ता ने ठीक समझी। जाँच बिल्कुल वैज्ञानिक ढंग से की गई थी।

यह प्रयोग ऑक्टोबर, १९०३ से प्रारंभ हुआ और जून, १९०४ तक होता रहा। इनमें उन्हें थोड़ा प्राण-पोषक तत्व दिया जाता था, जिससे केवल उनमें उनकी आरोग्यता और शक्ति बनी रह सके। इस प्रयोग के पूर्व चिकित्सकों का मत था कि प्रत्येक मनुष्य के लिये सिर्फ़ १२० ग्राम (७ छटांक) प्राण-पोषक तत्त्व (प्रोटीड) की आवश्यकता है। जो लोग यह चिल्लाया करते हैं कि मनुष्य के लिये केवल प्राण-पोषक तत्त्व (Proteid) की ही आवश्यकता है, वह जितना ज़्यादा मिले, उतना ही अच्छा है, वे लोग भूलते हैं। प्रो० चिटंडेन ने यह सिद्ध कर दिया कि २० सिपाहियों के लिये ४० ग्राम काफ़ी था, और ८ पहलवानों के लिये ५५ ग्राम बहुत होता था। उसने स्वयं ३६ ग्राम अपने लिये प्रयोग किया, फिर भी उसकी आरोग्यता और शक्ति की वृद्धि होती गई। प्रयोग में जो सिपाही लिए गए थे, उनकी ख़ुराक पहले ७५ औंस (क़रीब २। सेर) थी, जिसमें उन्हें २२ औंस (११ छटांक) कसाई के यहाँ का मांस मिलता था। प्रयोग में इनका मांस बिल्कुल बंद करके इनकी ख़ुराक सिर्फ़ ५१ औंस (१॥ सेर के लगभग) कर दी गई। ६ मास वे उस ख़ुराक पर रहे। यद्यपि वे लोग पहले भी आरोग्य थे, तथापि नौ मास तक बिना मांस का भोजन किए वे बहुत ज़्यादा ताकतवर तथा अच्छी अवस्था में पाए गए।

इस प्रयोग में Dynamometer से पता लगा कि उनकी शक्ति पहले से ड्योढ़ी हो गई थी, और उन्हें कार्य में विशेष सुगमता और उत्साह रहता था। इस प्रयोग के पीछे कहे जाने पर भी उन्होंने मांस कभी नहीं खाया।

१८—परम कारुणिक डॉ० मिचलेट साहब ने अपनी एक भोजन-संबंधी पुस्तक में लिखा है "जीवन-मृत्यु और नित्य की हत्याएँ जो केवल क्षणिक जीभ के स्वाद के लिये हम नित्य करते हैं, तथा अन्य तामसिक और कठोर समस्याएँ हमारे सम्मुख उपस्थित हैं। हाय! यह कैसी हृदय-विदारक और उलटी चाल है। क्या हमें किसी ऐसे लोक की आशा करनी चाहिए, जहाँ पर ये क्षुद्र और भयंकर अत्याचार न हों।"

१९—जिन देशों में मांस ज़्यादा खाया जाता है, उन देशों में रोग ज़्यादा होते हैं, और डॉक्टरों की ज़्यादा ज़रूरत पड़ती है।

मांसभक्षण की दृष्टि से डॉक्टरों की संख्या

देश	एक वर्ष में एक आदमी पर मांस का ख़र्च	१,०००,००० मनुष्यों में डॉक्टरों की संख्या
जर्मनी	६४ औंस	३५५
फ्रांस	७७ ,,	३८०
इँगलैंड और वेल्स	११८ ,,	५७८
आस्ट्रेलिया	२७६ ,,	७८०

२०—जन्तु-शास्त्रियों ने भक्ष्य के विचार से सृष्टि के समस्त प्राणी चार विभागों में विभक्त किए हैं—

१—मांसाहारी जैसे सिंह, चीते, भेड़िए आदि। २—फलाहारी—गोरिल्ला, बंदर, चिंपैंज़ी आदि। ३—घासख़ोर—गाय, बैल, घोड़ा इत्यादि। ४—सर्व-भक्षक—सुअर आदि।

इसी के अनुसार इन प्राणियों के दाँत, नख और भीतरी अवयव भी भिन्न-भिन्न प्रकार के बनाए हैं। इनमें दाँत मुख्य हैं, इसलिये हम दाँतों ही से अपनी जाँच प्रारंभ करते हैं।

(क) मांसाहारी जंतुओं के चार शूल दाँत (Canine teeth), जिनसे शिकारी जानवर अपने शिकार को पकड़ते हैं, अधिक तीक्ष्ण, लंबे और मुड़े हुए होते हैं। (ख) फलाहारी प्राणियों के मुँह में ३२ दाँत होते हैं, जिनमें आठ राजदंत, ४ शूलदंत, ८ चौभर तथा १२ डाढ़ होते हैं। (ग) घासख़ोर के दो भेद होते हैं—अधोदंत और उभयतो दंत। गाय, बैल अधोदंत और घोड़े आदि उभयतो दंत कहलाते हैं। इनके ६ डाढ़ें और ८ या १६ (यदि ऊपर भी हों) राजदंत या काटने के दाँत होते हैं।

यदि मनुष्य के दाँतों की बनावट पर विचार किया जाय, तो वे इन तीनों में से किसी से भी नहीं मिलते। वे फलाहारियों से मिलते हैं।

१—अब जबड़े की बात पर विचार कीजिए। मांसाहारियों के जबड़े की गति कैंची की तरह इकतरफ़ा होती है। घासख़ोरों के जबड़े की गति तीन तरफ़ को होती है। ऊपर, नीचे, आगे-पीछे और इधर-उधर। मनुष्य के जबड़े की गति भी कैंची की तरह नहीं, बल्कि तीन तरफ़ा होती है। २—अब उनके हाथ-पैरों को लीजिए, तो इनमें तीन श्रेणियाँ होती हैं। खुर, पंजे और हाथ। खुरवाले जितने प्राणी हैं, वे या तो घासख़ोर या सर्व-भक्षक होते हैं, और पंजेवाले विशेषतः मांस-भक्षक। परंतु हाथवाले सब फलाहारी। ३—अब भोजन की नली (Elementary Card) की लंबाई पर विचार कीजिए। मांस-भक्षक पशुओं की नली की लंबाई शरीर से तीनगुनी होती है, घासख़ोरों की भोजन की नली उनके शरीर से तीसगुनी,

सर्व-भक्षको की नली दसगुनी और फल-भक्षकों की १२गुनी होती है। मनुष्य की नली ठीक १२ गुनी है, अत वह भी फलाहारी है। ४—फलाहारी जतुओ का कोलन (बडी अँतडियो का एक भाग) खुरखुरा होता है, परतु मासाहारियों का चिकना। मनुष्य का खुरखुरा होता है। ५—मास-भक्षक, घास-भक्षक और सर्व-भक्षको के स्तन प्राय पेट पर होते हैं, परतु मनुष्य आदि फल-भक्षको के छाती पर। ६—मास-भक्षको मे स्वेदोत्पादक ग्रंथियो का अभाव है, परतु उच्च जाति के बंदर और मनुष्यो में ये पाई जाती हैं। ७—घास-खोरो के पेट मे ४ भाग होते है। पाचन-क्रिया धीरे-धीरे होती है, और भोजन अँतडियों मे बहुत देर तक रहता है। मास-भक्षकों के पेट की बनावट सादी है। उसमें तीक्ष्ण रस (Gestie Juise) अधिक उत्पन्न होता है, जो वास्तव में मास-जैसे खाद्य को पचाने मे उपकारी है। ८—मास-भक्षक जीभ से पानी पीते है, घूँट-घूँट नही पी सकते।

मीठा और मांस

इँगलैड से प्रकाशित एक मासिक पत्र में वहाँ के प्रसिद्ध डॉक्टर जे०, एफ़्० क्लार्क महाशय ने गन्ने के संबंध में कुछ महत्त्व-पूर्ण परीक्षणो और अनुसंधानो के बाद अपनी राय कायम की है। उनकी राय है कि रोगी अवस्था में मास के पथ्य के स्थान पर गन्ने का सेवन अत्यधिक उपयोगी है। इस अनुसंधान मे उन्होने भारतीयो की प्राचीन गन्ने की गवेषणा की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। उनके कथन का साराश इस प्रकार है—

"सन् १९२४ में हिमालय की सर्वोच्च चोटी गौरीशंकर (माउट एवरेस्ट) पर जो अँगरेजो का डेपुटेशन गया था, उसके साथ मेजर हिंगस्टन डॉक्टर की हैसियत से गए थे। उन्होने लदन में रॉयल जॉगराफिकल सोसाइटी के सामने व्याख्यान देते हुए दो बातों पर विशेष प्रकाश डाला। आपका कथन था कि ज्यों-ज्यो हम लोग ऊपर चढते गए, त्यो-त्यों स्वाभाविकतया कई व्यक्तियो ने मास खाने से कतई इनकार कर दिया, और सबमें मीठा खाने की प्रबल इच्छा जाग्रत हो गई। उन प्रभावो की बात छोडकर जो हलकी हवा फेफडों पर डालती है, डॉक्टर साहब की धारणा से हम अपने रोगियों के सबध में कई ज़रूरी नतीजो पर पहुँच सकते हैं।

"यह बात अब प्रकट हो गई कि (Beef tea) गो-मास की चाय और शोरबे की गर्मागर्म प्याली को पीकर रोग-शय्या पर पडे-पडे ही इतने मनुष्य मरे हैं, जितने कि सिकदर और नेपोलियन-जैसे प्रबल विजेताओ के युद्ध-स्थलो में भी नहीं मरे होगे।

इस प्रकार मास त्यागने की प्रेरणा करते हुए डॉक्टर क्लार्क पश्चिमी लोगो से इन यात्रियों और पूर्वी लोगो का उदाहरण पेश करके मास छोडकर वनस्पति का अधिक प्रयोग करने का अनुरोध करते है। उनका कथन है कि खासकर डॉक्टरो को तो अवश्य उचित है कि वे रोगियो को मांस तथा मास से बने दूसरे पदार्थों के इस्तेमाल से सर्वथा रोकें। आगे चलकर आप कहते हैं कि गन्ने की खाँड (चुकदर की नहीं) पूर्वी देशो में हर प्रकार की

थकावट की बड़ी उत्तम दवा समझी जाती है। हरएक मजदूर अपनी थकावट दूर करने को थोड़ा-बहुत गन्ना ज़रूर चूसता है। बड़ी-बड़ी तोपें खींचनेवाले हाथियों की सबसे बड़ी खुराक गन्ना ही है। हरएक घुड़सवार लंबी मंजिल के बाद अपने घोड़े को गन्ने का गुड़ खिलाता तथा पेशावर से कन्याकुमारी तक हरएक बूढ़ा, बच्चा, स्त्री खालिस खाँड खाकर गुज़र करते हैं।

इस प्रकार भारत के लोगों में खाँड का प्रचार शक्ति बढ़ाने के लिये अधिकांश देखा जाता है। गन्ना बोने का, गन्ना चूसने तथा रस पीने का रिवाज शहरों और गाँवों में अधिकांश देखने में आता है। पुरानी परिपाटी यह थी कि उत्सव आदि में गुड़ ही बाँटा जाता था।"

डॉक्टर क्लार्क इस प्रकार भारतवर्ष तथा पूर्वी देशों में गन्ना और गन्ने की खाँड के प्रचार की प्रशंसा करते हुए अँगरेजों को धिक्कारते हैं कि वे अमृतमय वस्तु को सड़ाकर और घृणित शराब बनाकर पीते हैं। अब इसके गुण तो लोप और दोष उत्पन्न होते जाते हैं।

डॉक्टर क्लार्क अपने तथा डॉक्टर गौलस्टन के परीक्षणों के आधार पर लिखते हैं कि वास्तव में गन्ने की खाँड का दिल और पट्ठों पर उत्तम प्रभाव पड़ता है। आप डॉक्टरों के उस कथन का प्रबल खंडन करते हैं कि गन्ना अथवा उसकी खाँड से बदहज़मी या पेट में वायु उत्पन्न होती है। सन् १८७० में जो फ्रांसीसी सिपाही सिर्फ़ चाकलेट खाकर सोडान के मैदान में बड़ी बहादुरी से लड़े थे, उनके तजुर्बे से लाभ उठाकर सन् १४ के महायुद्ध में जर्मन-सिपाहियों को निश्चित रूप से गन्ने की खाँड (चुक़ंदर की नहीं) दी जाती थी।

अंत में आप लिखते हैं—"गन्ने की खाँड एक ऐसी कीमती दवा होती है कि न केवल थकावट दूर करने तथा बदन में फुर्ती पैदा करने का ही काम करती है, वरन् दिल पर ऐसा अच्छा असर डालती है कि दिल के रोगी की चिकित्सा करनेवाला इसके बिना कुछ कर ही नहीं सकता।"

डॉ० क्लार्क की सम्मति देखकर चित्त में क्लेश होता है, जब हम देखते हैं कि गन्ने की खेती दिन-प्रति-दिन कम हो रही है। प्रतिवर्ष ६०-७० करोड़ रुपए की विदेशी चुकंदर की चीनी भारतवर्ष में आती है। साधारण हलवाई की दूकान से लेकर बड़े मंदिर के श्री-ठाकुरजी के भोग तक के लिये यही अयोग्य चुक़ंदर की चीनी देख पड़ती है।

पशुओं पर दया

मूक और असहाय जीव-जंतुओं पर निर्दय होना मनुष्य के लिये सर्वाधिक कलंक की बात है। ज्यों-ज्यों सभ्यता का विस्तार होता जाता है, मनुष्य की क्रूरता नष्ट होती और सौम्यता बढ़ती जाती है। प्रथम योरप और भारत में द्वंद्व-युद्ध की चाल थी, अब भी वहाँ मनुष्य की जगह पशुओं से द्वंद्व-युद्ध होने की चाल है, जो अत्यंत रोमांचकारी है। भारतीय भीम प्रो० राममूर्ति नायडू ने एक बार ऐसा ही रोमांचकारी दृश्य देखकर सहस्रों

मनुष्यों में खडे होकर कहा था कि यदि इँगलैंड के मनुष्य यह प्रतिज्ञा करें कि वे कभी ऐसे भयंकर खेल न खेलेंगे, तो मैं इस साँड को विना शस्त्र लिए गिरा सकता हूँ।

श्रृंगार के लिये जिस सुंदर पक्षी के पर स्त्रियाँ अपनी टोपी में रखती हैं, उनकी नस्ल का नाश हो गया है। योरप में, खासकर फ्रांस में अब सुंदर पक्षी हैं ही नहीं। लदन के एक व्यापारी ने एक वर्ष में ३२ हज़ार उडनेवाले, ८० हजार जल के, ८० हजार अन्य पक्षी पंखों के लिये मरवाए थे। विलायत के एक शहर मे २ दिन में ७४००० लावा पक्षी मारकर लदन भेजे गए थे।

दक्षिण फ्रांस में गेरोन नदी के तालाबों मे प्रतिवर्ष २० हजार घोडे मारे जाते हैं। क्या यह राक्षसी उदाहरण नहीं है? पोलो के खेल, घुडदौड आदि की बाजी मे जिस निर्दयता से घोडों को दौडाया जाता है, वह कभी मनुष्यता का काम नहीं कहा जा सकता। पशु का मृत्यु के समय तडफना एक ऐसा दृश्य है, जिसे देखकर मनुष्य मांसाहार कर ही नहीं सकता। इस समय खेती को कीडों से बचाने के लिये विज्ञान की बडी भारी सहायताएँ दरकार हैं, परंतु हिसाब से जाना गया है कि एक सप्ताह में आधा एकड अन्न खा जाने के लिये जितने कीडे पैदा होते हैं, उन्हें एक पक्षी एक दिन में खा जाता है।

एक-एक पुरुष कितना मांस खा जाता है, इसका हिसाब देखकर अक्ल चकरा जाती है। विलायत के सिडनी स्मिथ-नामक एक पुरुष ने ४० गाडी मांस अपने जीवन मे खाया था। सन् १८७० ईसवी में जॉर्ज नेमिल ने, लॉर्ड पादरी होते समय जो भोज दिया था, उसका ब्यौरा ज़रा धीरज से सुनिएगा—

मैदा १५० मन, मद्य (एल) ९८५० मन, अन्य मदिराएँ २८०८ मन, एक पीपा ममालेदार मदिरा ९॥ मन, बैल ८०, जंगली साँड ६, बछडे ३००, सुअर ३००, भेडें १००८, सुअर के बच्चे ३००, हिरन ४००, राजहंस ३०००, मुर्गे ३०००, मुर्गी ७०००, मोर पक्षी १००, चकवा २००, कबूतर ४०००, खरहा ४०००, बकरी के बच्चे २००, तीतर ५००, काठफोडा २०००, प्लोभर पक्षी ४००, विटर्ण पक्षी २०४, बक १०००, हस ४०००, कौंच १००, बटेर १००, फेजर पक्षी ७००, रीस पक्षी २००, मृग-मांस के पकौडे १५००, ठंडे पकौडे ४०००।

इसके सिवा ११ हज़ार भिन्न-भिन्न प्रकार के पक्वान्न और एक हजार से कुछ अधिक मछलियाँ और कितने ही प्रकार के मुरब्बे, बिस्कुट आदि की व्यवस्था हुई थी।

१ हज़ार परोसनेवाले, ६२ पकानेवाले, ५१५ पर्यवेक्षक और प्रबंधक थे।

प्रसन्नता की बात है कि अब अमेरिका और फ्रांस मे एवं सर्व योरप में भी मांस-त्यागी मनुष्यों का समूह बढ रहा है।

मांस-भक्षण के विरुद्ध युक्ति

१—मांस में स्वाद नहीं। कच्चे फल और मांस खाकर देखो। २—मांस स्वाभाविक नहीं, भारी-से-भारी मनुष्य भी केवल मांस खाकर नहीं रह सकता। ३—मांस में पुष्टि नहीं, वैज्ञानिक खोज है कि अन्य खाद्यों से मांस में कोई विलक्षण पुष्टता नहीं। अँगरेज़ों से स्काटिश

और आयरिश विशेष बलवान् होते हैं, मराठी फ़ौज में भी आयरिश खूब हैं। सिंह से अरना भैंसा बलिष्ठ होता है, मथुरा के चौबों का कोई मांसाहारी मुकाबला नहीं कर सकता। राममूर्ति प्रसिद्ध हैं, दादाभाई नौरोजी मांस नहीं खाते थे। बैल जितना बोझ ले जाता है, उतना १० सिंह भी नहीं ले जा सकते।

मांस में विशेषता यह है कि मांसाहारी क्रोधी, क्रूर, भयंकर तथा उत्तेजित होते हैं।

मांस और रोग

मांस को देखकर नहीं कह सकते कि यह रोगी पशु का मांस है या नीरोग्य का। रोग तो प्रति शरीर में है! फल को तो पहचान सकते हैं, लोभी दूकानदार रोगी, दुर्बल और सस्ते पशु ही काटते हैं। प्लूरोनिमोनिया, रिंडरपैस्ट, सीसिल्स (एक प्रकार की शीतला), एंथेक्स (एक खास फोड़ा), कंठमाला, क्षयी, कुष्ठ, अदीठ, पक्षाघात आदि भयंकर रोग मांस से होते हैं। ये रोग बकरी और हंस के मांस से होते हैं।

अध्याय दसवाँ

रोग-कीटाणु और घर के दुश्मन जंतु

प्रकरण १

कीटाणु

ऐसे बहुत-से कीटाणु संसार में हैं, जो केवल आँखों से नहीं देखे जा सकते। इनमें से बहुत-से जीवाणु तो ऐसे भयंकर हैं, जिन्होंने मनुष्य-जाति को तबाह कर दिया है। संसार के अनेक भयंकर रोग बहुधा इन्हीं जीवाणुओं के कारण होते हैं। हैज़ा, प्लेग, महामारी, चेचक, मलेरिया, काला आज़ार, फिरंग, क्षय, इन्फ्ल्युएंज़ा, सुज़ाक आदि अनेक छूत के भयानक रोग इन्हीं जीवाणुओं द्वारा फैलते हैं। इन्हें देखने के लिये सूक्ष्मदर्शक यंत्र काम में लाया जाता है, जो वास्तविक वस्तु को बहुत बढ़ाकर दिखाता है।

आजकल विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ इन जीवाणुओं के उपयोग की बहुत कुछ खोज की गई है, और इन्हें खूब बढ़ाकर देखने के लिये क़ीमती यंत्र बनाए गए हैं। परंतु प्राचीन आर्य-ग्रंथों को देखने से पता चलता है कि जीवाणुओं के संबंध में पुरानी जानकारी भी कम न थी। अथर्ववेद और उपनिषदों में इसके बहुत कुछ प्रमाण मिलते हैं।

उपयोगी कीटाणु

मनुष्य के लिये भयंकर काल-रूप जीवाणु का वर्णन करने से प्रथम हम कुछ ऐसे कीटाणुओं का ज़िक्र भी कर देना चाहते हैं, जो मनुष्य के लिये उपयोगी भी हैं। जैसे—

१—वे जिनकी सहायता से दूध का दही और दही का मक्खन या घृत अथवा पनीर बनाया जाता है।

२—जिनके द्वारा गन्ने के रस का सिरका अथवा जौ, महुआ, अंगूर आदि का मद्य या आसव तैयार किया जाता है।

३—जिनके द्वारा ख़मीर तैयार होता है, जिससे डबल रोटी या जलेबी बनती है।

४—जिनसे मैला या विष्टा सड़ जाता और खाद की शकल में बन जाता है।

५—जिनसे मृत शरीर सड़-गलकर पंचतत्त्व में मिल जाता है।

६—जिनके द्वारा पौधे वायु से नत्रजन ग्रहण करते हैं।

ये सारी उपयोगी क्रियाएँ कीटाणुओं द्वारा ही होती हैं। यदि ये कीटाणु नष्ट कर दिए

जायँ, तो बड़ी कठिनाई का सामना हो। वनस्पति तो फिर बिना खाद के उग ही नहीं सकती।

परिमाण

साधारणतया ये कीटाणु परिमाण में २५००० होते हैं, अर्थात् २५ हज़ार कीटाणुओं को एक पंक्ति में पास-पास बैठाया जाय, तो एक इंच स्थान घेरेंगे। यदि उन्हें तौला जाय, तो एक माशा वज़न पर १,००,००,००,००,००,००,००० अर्थात् एक पदम कीटाणु चढ़ेंगे। यदि आप ज़ोर से साँस लें, तो ये कीटाणु मीलों उड़ जायँ। एक फूँक से आप उन्हें मीलों उड़ाकर दूर फेंक सकते हैं। फिर भी ये क्षुद्र कीटाणु जब ज़ोर पकड़ते हैं, तो मनुष्य की जाति को विध्वंस कर डालते हैं। प्लेग और हैज़े एवं इन्फ्ल्युएंज़ा के कीटाणुओं ने नगर-के-नगर तबाह कर डाले, और कोढ़, चेचक और आतशक के कीटाणुओं ने न-जाने कितने मनुष्यों को अंधा, काना, लँगड़ा, लूला, अपाहिज बना दिया। इनकी अनेक जातियाँ और आकृतियाँ हैं। जैसे—

जो बिंदु अणु हैं, जैसे— उनकी सामूहिक आकृति भिन्न-भिन्न है— गुच्छे की आकृति। चतुष्कोण। माला की आकृति। अपष्टक आकृति। युगल आकृति (सुज़ाक के कीटाणु)

ये कीटाणु शलाकाणु हैं—निमोनिया के युगल शलाकाणु। प्लेग के शलाकाणु। हनुस्तंभ के शलाकाणु। ऐंथेक्स के रोगाणु। टाइफाइड के पुच्छ-युत शलाकाणु। क्षय के झुके हुए शलाकाणु। हैज़े के चक्राणु। 'कामा' की शकल के। सूत्राणु (शाखाहीन) शाखा सूत्राणु। चक्राणु (बारी के ज्वर के) लहरदार अणु— उपदंश-रोग में। मलेरिया के अणु। काला आज़ार के अणु। निद्रा-रोग के अणु। पेचिश के अणु। रक्त के श्वेताणु जो भक्षक हैं।

कुछ कीटाणु ऐसे होते हैं, जो भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न आकृति धारण कर लेते हैं। उनमें शरीर का जीवन-मल सिकुड़कर एक स्थान पर एकत्र हो जाता है, और उसके चारों ओर एक मोटा कोश बन जाता है। इस दशा में ये कीटाणु बहुधा सप्ताहों, महीनों और कभी-कभी वर्षों तक पड़े रहते हैं। तथा बिना भोजन और जल के जीवित रहते और साधारण अवस्था की अपेक्षा अत्यधिक गर्मी-सर्दी सहन कर सकते हैं। इन कीटाणुओं का नष्ट करना अति कठिन है, परंतु सब कीटाणु ऐसा नहीं कर सकते।

ये सभी कीटाणु एक से लीन हैं। अति सूक्ष्म होने के कारण इनके सेल की भीतर की मींगी जीवन-मूल से पृथक् नहीं होती, बल्कि मिली रहती है। इनमें कुछ चल होते हैं, जो उस तरल में, जिसमें वे रहते हैं, चल सकते और कुछ अचल होते हैं।

कीटाणुओं की खेती

आजकल वैज्ञानिक लोगों ने अपने उपयोग के लिये इनमें से बहुत-से कीटाणुओं की खेती करनी प्रारंभ की है। बहुत-सी परीक्षाओं के बाद उनके भोजन ढूँढ़ निकाले हैं। मास-रस, रक्त-रस, जेलाटीन, एगर-एगर, ग्लेसरीन आदि इनका भोजन समझा गया है।

ईश्वर की विचित्र माया देखिए कि इन कीटाणुओं में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं होता।

एक कीटाणु लंबाई या चौडाई के रुख फट जाता है, और बस दो कीटाणु बन जाते है। इसी भाँति दो से चार, चार से आठ और आठ से सोलह। यह सिलसिला तब तक जारी रहता है, जब तक उन्हें अपनी खुराक मिलती रहती हैं। बहुधा आधे घटे में एक से दो बनते हैं। कभी-कभी एक घटे का समय भी लग जाता है, पर आधे घटे मे यदि एक के दो बनें, तो हिसाब से चौबीस घटे में एक कीटाणु के २ पदम (२,००,००,००,००,००,००,०००) यह संख्या कितनी भयानक है, पर ईश्वर की माया यह भी तो देखिए कि उन्हें अपनी पूरी वृद्धि के सदैव साधन नही मिलते। कभी सर्दी, कभी गर्मी, कभी भोजन का अभाव, कभी शत्रु कीटाणुओ द्वारा नाश आदि कारणो से इन्हें बढवार में बहुत विघ्नो का सामना करना पडता है। पर जब कभी इनके लिये उपयुक्त साधन मिल जाते है, तब ये प्रलय मचा देते है, यह सभी जानते है।

इन कीटाणुओ को ख़ास प्रकार की गर्मी पसद है। इससे कम या अधिक गर्मी में वे अधिक नहीं घट-बढ सकते। उसी ताप-परिमाण की गर्मी में वे ठीक घटते-बढ़ते है। रोगोत्पादक कीटाणु मनुष्य के रक्त के ताप-परिमाण को बहुत पसंद करते है, और उसी मे उनकी ठीक-ठीक वृद्धि होती है। सडानेवाले कीटाणु ग्रीष्म-ऋतु में अधिक उपजते हैं। ऐसी शीत-ऋतु, जिसमे चीज़ जम जाय, इन कीटाणुओं की वृद्धि को एकदम रोक देती है। पर उन्हें नष्ट नहीं करती। अलबत्ता तेज़ गर्मी उन्हें मार डालती है। रोगोत्पादक जंतु साधारण ६०% गर्मी में मर जाते है। तेज़ धूप में भी ये नष्ट हो जाते है। बिजली की तेज रोशनी से भी ये मर जाते हैं।

कीटाणुओं का विष

इन कीटाणुओ मे दो प्रकार के विष होते हैं। एक ऐसा कि जो उनके शरीर के भीतर होता है, और उनके मरने पर शरीर से बाहर आकर मनुष्य को हानि पहुँचाता है। दूसरा जो उनके शरीर से बाहर ही रहता है।

इन कीटाणुओ द्वारा निम्न-लिखित रोग उत्पन्न होते हैं—

१—मुँहासे तथा अनेक प्रकार के फोडे-फुंसी। २—टाइफाइड, टाइफस, चेचक, ख़सरा। ३—मोतीभरा, लाल बुख़ार। ४—काली खाँसी, इन्फ्ल्युएंज़ा, लँगडा बुख़ार, मस्तिष्क ज्वर। ५—निमोनिया, डिफ्थीरिया, सुर्ख़ बाद। ६—प्रसूति का जहरीला ज्वर। ७—वायु का रोग। ८—हैज़ा, पीला ज्वर, प्लेग। ९—पेचिश। १०—जलांतक, हनुस्तंभ। ११—फिरंग-रोग। १२—मलेरिया, काला ज़ार, निद्रा-रोग, बारी का ज्वर। विष-रोग। १३—कोढ़। १४—सुज़ाक। १५—क्षय। १६—ज़ुकाम, नेत्र-रोग। १७—अन्य भिन्न-भिन्न रोग।

कीटाणु शरीर में कैसे प्रवेश करते हैं ?

रोग-कीटाणु किस प्रकार शरीर के भीतर पहुँचते है, इस बात को समझने के लिये शरीर की बनावट की एक बारीकी को समझने की आवश्यकता है।

कल्पना कीजिए, मनुष्य के शरीर में एक नली है, जिसका एक सिरा मुख है और दूसरा गुदा। यह नली बहुत कुछ दाँव-पेच खाती हुई मुख से गुदा तक आर-पार गई है। जिस प्रकार शरीर के बाहर चमड़े का खोल मढ़ा है, उसी भाँति भीतर इस नली के बाहरी और भीतरी भाग पर भी झिल्ली का एक खोल है। यह श्लैष्मिक झिल्ली है। इसी नली में भोजन-मार्ग, श्वास-मार्ग, मूत्र-मार्ग, मल-मार्ग आदि हैं। इस झिल्ली को पार करके जब तक कोई वस्तु नली से शरीर में नहीं पहुँचती, तब तक वह मानो शरीर के बाहर ही है। वह श्लैष्मिक झिल्ली पर वैसी भाँति रक्खी है, जैसे शरीर के बाहर चमड़ी पर।

चमड़ी और श्लैष्मिक झिल्ली दोनो की ही बनावट ऐसी है कि जब तक इनमें कोई विकार न हो, कोई भी रोग-जंतु इनको भेदन करके शरीर के भीतर नहीं प्रवेश कर सकता। श्वास-मार्ग, आँतो और त्वचा पर सदैव ही थोड़ें-बहुत कीटाणु रहते है, पर जब तक इनकी दीवारें दुरुस्त है, ये शरीर में घुस नहीं सकते। परंतु ज्यों ही इन दीवारो मे दोष हुआ कि ये विष-जंतु शरीर में घुसकर शरीर को हानि पहुँचाते है। अब इस बात को उदाहरण से समझिए—

१—मान लीजिए, आपके ही मकान की दीवार में पक्की सीमेंट लगी हुई है, उसमें पानी नहीं भर सकता। परंतु यदि उसमें दरार हो गई, तो पानी भरेगा, और दीवार को कमज़ोर करेगा।

२—आपके कहीं चाकू लग गया या ज़रा चोट आ गई। यदि आप बुद्धिमान् हैं, तो आपने तत्काल टिंचर आइडिन लगा दिया कि किसी भी रोग-जंतु का उस फटी हुई त्वचा द्वारा शरीर में प्रवेश न हो। और जो जंतु वहाँ चमड़ी पर हो भी, तत्काल नष्ट हो जाय। परंतु यदि आपने ऐसा नहीं किया, घाव को तुच्छ समझकर यों ही अरक्षित छोड़ दिया, तो कीटाणु संधि मे से रक्त में घुस गए और बढ़ने लगे। परिणाम यह हुआ कि घाव पक गया और बढ़ गया।

३—आप ओस मे सो गए। नाक की श्लैष्मिक झिल्ली पर ठंढी वायु का धक्का लगने से उसमें कमज़ोरी आ गई। रोग के कीटाणुओं की वृद्धि का अवसर मिल गया, आपको ज़ुकाम हो गया। अब आप भुगतिएगा।

४—आपकी धर्मपत्नी ने प्रसव किया। गर्भाशय की श्लैष्मिक झिल्ली का फट जाना स्वाभाविक ही है। अब यदि मैल-भरे हाथों या गंदे नाख़ूनोवाली दाई ने वहाँ कीटाणु पहुँचा दिए, तो प्रसूतज्वर हो गया और जान के लाले पड़ गए।

अब आप समझ गए होंगे कि श्वास तथा चमड़ी के द्वारा किस प्रकार रोग-जंतु शरीर में पहुँच जाते हैं। रोग-जंतुओ को शरीर में पहुँचने के दूसरे मार्ग भी हैं। गर्द-गुबार द्वारा दूध, जल, अन्न में कीटाणु मिलकर भोजन के साथ शरीर मे पहुँच जाते है। ख़ासकर क्षय, प्लेग, हैज़े के जंतु।

एक बात और ध्यान में रखने योग्य है। शरीर में एक शक्ति है, जो इन रोग-जंतुओं का

विरोध करती है। जिनमें यह शक्ति कम होती है, उन्हीं को रोग जल्द लगता है, औरों को नहीं। यदि एक आदमी बचपन ही से दुबला-पतला है, उसे सदा सर्दी, जुकाम, खाँसी, बदहज़मी बनी रहती है, बस मौका पाते ही क्षय के रोग-जंतु उसे अपना शिकार बना लेंगे।

मलेरिया, तिजारी या चौथिया ज्वर के जंतु खून चूसनेवाले मच्छरों द्वारा चमडी को भेदकर भीतर पहुँचते हैं। ये मच्छर मादा जाति के होते हैं। इन रोगों के जंतु आदि इन मादा मच्छरों के मुख और आमाशय में रहते हैं। जब वह शरीर पर बैठकर खून चूसने के लिये अपनी सुई की नोक के समान सूँड चमडी में चुभाते है, यह रोग-जतु शरीर में प्रवेश कर जाते है। पीला ज्वर अत्यंत भयानक है, जो आफ्रिका मे अधिक होता है। वह मच्छरो से ही उत्पन्न होता है। काला आज़ार जो आसाम, बगाल और मदरास के प्रांतो में होता है, एक जाति के खटमलों द्वारा होता है। प्लेग के जतु एक प्रकार के पिस्सुओं के शरीर में रहते हैं, जो चूहो के शरीर पर पाए जाते हैं। अति निद्रा रोग (यह रोग भारत में नहीं होता, आफ्रिका में होता है) एक प्रकार की मक्खी के द्वारा शरीर में पहुँचता है। टाइफ़स ज्वर भी पिस्सुओं द्वारा होता है। चूहे, गिलहरी, पालतू कुत्ते या सियार आदि के काटने का ज्वर भी ऐसे ही जीवाणु द्वारा होता है, जो उनकी लार में लगे रहते हैं।

मक्खी और रोग

घरेलू मक्खी भी बहुत-से रोग-जंतुओं को गंदे स्थानो से अपने पैरों पर लपेटकर भोजन पर पहुँचा देती है। रोगी के मल-मूत्र, थूक, बलग़म, जूठन पर बैठकर रोग के असंख्य जंतु ले जाती है, और फिर स्वच्छ भोजन, फल, दूध पर छोड देती है, इससे रोग-जतु अन्य शरीरो में पहुँच जाते हैं। विष्ठा में साधारणतया असंख्य कीटाणु रहते हैं, फिर यदि हैजे या अन्य क्षय के रोगी का विष्ठा हुआ, तो उसकी भयानकता का कहना ही क्या है। इन कीटाणुओ को घर की मक्खी ही बहुधा फैलाती है। जो लोग अपने भोजनो पर मक्खियाँ बैठने देते हैं या हलवाई की दूकान पर भिनभिनाती मक्खियोवाली मिठाइयाँ खाते हैं, वे वास्तव में दूसरों के मल-मूत्र आदि का एक विषैला अंश भी खा जाते हैं। मक्खियो के विषय में और भी हम अभी लिखेंगे।

दूसरे भय

हरे फल या बंद डिब्बो के विलायती खाद्य—पनीर, दूध, मास आदि—मे एक ऐसा भयानक विष उत्पन्न हो जाता है, जिसकी कुछ बूँद ही ससार के मनुष्यो को समाप्त कर देने के लिये काफ़ी हैं। रोगी गाय के दूध से क्षय रोग और रोगी बकरी के दूध से माटला ज्वर के कीटाणु मनुष्य के शरीर में पहुँच जाते है। आप बाज़ार से दूध पीते हैं। आपको यह पता भी नहीं कि जिस गाय, भैंस या बकरी का यह दूध है, वह रोगी है या स्वस्थ। आपका ग्वाला यदि गाय को आपके द्वार पर लाकर दुह जाता है और आप देखते है वह रोगी, दुर्बल और कमज़ोर है, तो भी आप इसकी ज़्यादा परवा नहीं करते। स्मरण रखने की बात है कि दूध बड़ी आसानी

से रोग-जंतुओं को अपने अंदर ग्रहण कर लेता है, और भारतवर्ष में गायें ऐसी गंदी रक्खी जाती हैं कि गो-भक्ति के लिये किसी भी हिंदू को शर्म आनी चाहिए। गायों के रहने की जगह गंदी, जहाँ गोबर और पेशाब सड़ा करता है, दूध दुहने के बर्तन और दुहनेवाले गंदे, दुहने के बाद दूध को इस तरह पड़ा रहने दिया जाता है कि उसमें मक्खियाँ-मच्छड़ पड़कर मर जाते हैं, परंतु उसी दूध को पीने में मनुष्यों को ज़रा भी घृणा नहीं आती। ऐसी दशा में अमृत के समान दूध विष और रोगों का घर बन जाता है।

भेड़ों में एंथ्रक्स-नामक रोग के जंतु होते हैं। इन पशुओं के व्यापार करनेवाले कसाई, चमार, ऊन बनानेवालों के शरीर और वस्त्रों में इस रोग के जंतु बहुत होते हैं। गाय और सुअर का मांस तनिक भी खराब होने से बहुत-से कीटाणु उसमें हो जाते हैं।

छूत के कीटाणु

सुज़ाक, आतशक के रोग-जंतु छूत के जंतु हैं। सुज़ाक का पीब यदि आँख में छू जाय, तो आँख आ सकती है या उपदंश का विष अँगुली में छू जाय, तो वह उपदंश का घाव हो सकता है। पर इन दोनों रोगों का जननेंद्रिय पर प्रकट होना दूषित स्त्री-पुरुष के सहवास का ही निश्चय फल है। अन्य कारण जो लोग बहुधा बताया करते हैं, सर्वथा मक्कारी है।

चेचक, खसरा के कीटाणु उस भूसी में रहते हैं, जो दानों के सूख जाने पर गिर जाती है। यह या तो छूने से हाथों की त्वचा पर लग जाती है। और फिर भोजन के साथ शरीर में पहुँच जाती या श्वास द्वारा भीतर जा पहुँचती है।

टाइफाइड (मियादी ज्वर) के जंतु पसीने, मूत्र और मल में मिलते हैं, और उन्हीं के छूने से शरीर में किसी भाँति पहुँच जाते हैं। छूतवाले रोगियों के वस्त्रों द्वारा भी यह रोग फैलते हैं। बहुधा धोबी के घर जाकर अन्य वस्त्रों में ये जंतु भर जाते और उनके घर पहुँच जाते हैं। इसका सर्वोत्तम उपाय यह है कि धोबी के घर से आए हुए कपड़ों को बिना एक दिन तेज़ धूप में रक्खे कदापि काम में न लाना चाहिए।

कोढ़ भी छूत का रोग है। जो लोग यह समझते हैं कि यह ख़ानदानी रोग है, अर्थात् पिता से संतान में जाता है, वह भूल पर है। वास्तव में यह खान-पान द्वारा रोगी के शरीरजंतु दूसरे शरीर में जाने से ही रोग होता है। यदि कोढ़ का रोग रोगी के पुत्र-पत्नी आदि को होगा, तो उसका जूठा खाने, वस्त्र छूने और मल-मूत्र उठाने तथा शौच का ख़याल न करने से होगा।

बहुत-से रोग-जंतु श्वास के साथ भी शरीर में पहुँच जाते हैं। ये जंतु वायु में रहते हैं। क्षय के जंतु ऐसे ही हैं। यदि कोई क्षय का रोगी खाँसता या ज़मीन पर बलगम थूकता है, तो बलगम सूख जाता और वह धूल के साथ वायु में उड़ जाता है। यह क्षय के जंतु-युक्त धूल जब किसी स्वस्थ पुरुष के श्वास द्वारा फेफड़ों में पहुँचती है, और फेफड़ों में ज़रा भी कमज़ोरी हुई, तो तत्काल क्षय का पाप रोग पीछे लग जाता है। यही हाल चेचक, खसरा और टाइफ़ाइड के जीवाणुओं का है।

आतशक के रोग-जंतु माता-पिता के वीर्य और रज के द्वारा गर्भस्थ शिशु के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। बहुधा आतशक तीन पीढ़ी तक चलती है। यह भयानक रोग कैसा है, यह आप आतशक के अध्याय में पढ़ेंगे, और आप इससे भय करेंगे।

शरीर में रोग-जंतुओं से युद्ध

शरीर में रोग-जंतु एक बार यदि पहुँच जायँ, तो वे बड़ी तेज़ी से बढ़ते हैं। इसके दो कारण हैं—

१—वहाँ उन्हें मन-पसंद गर्मी मिलती है।

२—वहाँ उन्हें ख़ुराक ख़ूब मिलती है।

वे वृद्धि के साथ-साथ ख़ूब जहर बनाते और रक्त के साथ-साथ विष-सहित सारे शरीर में फैल जाते हैं। परंतु हम पीछे कह चुके हैं कि शरीर में इन विषैले कीटाणुओं के विरुद्ध युद्ध करने की शक्ति है। इन कीटाणुओं के शरीर में पहुँचते ही शरीर-तंतुओं से और इनसे भयानक युद्ध छिड़ जाता है। शरीर में जो 'श्वेताणु' हैं, ये इन जंतुओं को मारकर खा जाते हैं। इसीलिये इनका नाम 'भक्षकाणु' है। ये रक्त के तरल में तैरते दीखते हैं। इन्हें शरीर-रक्षक सिपाही कहना चाहिए। जिन स्थानों पर रोग-कीटाणु एकत्र हुए, वहाँ इन श्वेत कणों की सेना पहुँची। यदि ये जीत गए, तो शरीर नीरोग हो गया, और हार गए, तो रोग ने शरीर को आक्रांत कर लिया, और अंत में मृत्यु हो गई।

आपको एक बालतोड़ हुआ। अवसर पाकर उस ज़रा-सी दीवार की दरार से कुछ रोग-जंतु चमड़ी में घुस गए। अब एकदम रक्त के इन श्वेताणुओं की सेना उधर दौड़ी। इसी कारण वहाँ बहुत-सा रक्त जमा हो गया, वह स्थान अधिक लाल और सूजा हुआ हो गया। जीवाणुओं को इन श्वेत भक्षकाणुओं ने घेर लिया और खाना प्रारंभ किया। दोनों अणुओं में घनघोर युद्ध होता रहा। कुछ समय बाद पीला मुँह बन गया। यह वह स्थान है, जहाँ असंख्य जीवाणु और श्वेताणु मरे पड़े हैं। शरीर का वह भाग भी मुर्दा हो गया समझिए। अब वह घाव फूट गया और मवाद बह चला। ये श्वेताणुओं, कीटाणुओं और स्थानीय सेलों की अनगिनती लाशें हैं। यदि श्वेताणु विजयी हुए, तो पीब कम होते-होते बंद हो गया। नया मांस उत्पन्न हो गया, और दर्द-चुभन भी नष्ट हो गई और चमड़ी फिर मिल गई। पर यदि श्वेत कण निर्बल रहे, तो ज़ख़्म गहरा और फैला हुआ हो गया, सड़ भी गया। कभी-कभी जहरबाद होकर हड्डी तक गल गई या मृत्यु हो गई।

रोग-नाशक क्षमता और सुई

इन भक्षकाणुओं के सिवा हमारे शरीर में कीटाणु-नाशक और भी चीज़ें हैं। शरीर में जो रोगनाशक क्षमता है, यदि किसी भयानक रोग से एक बार कोई आदमी बच जाता है, तो उसी क्षमता के कारण वह रोग फिर बहुत काल तक उसके शरीर में नहीं होता।

आधुनिक काल में कृत्रिम रोग क्षमता उत्पन्न करने की यह रीति काम में लाई जाती है

कि उसी रोग के मुर्दे कीटाणुओं को शरीर में प्रविष्ट करते हैं। जैसे चेचक, प्लेग, हैजे के मृत कीटाणु टीके की रीति द्वारा चमड़ी के भीतर पहुँचाए जाते हैं। अन्य रोगों पर भी इस विधान का अनुभव विद्वान् लोग कर रहे हैं।

सुई की पिचकारी द्वारा भी बहुत-से कीटाणु-जन्य रोगों का विधान जारी हो रहा है। यह सभी लोग जानते होंगे। ये पिचकारी की दवाइयाँ इस प्रकार बनती हैं कि घोड़े आदि जानवरों के शरीर में इन मृत रोग-जंतुओं और विषों को पहुँचा देते हैं, जब उसके शरीर में रोग-जंतु-नाशक और विषघ्न क्षमता उत्पन्न हो जाती है, तब उसके रक्त में से तरल भाग पृथक् कर लिया जाता है। जिसमें रोग-नाशक क्षमता होती है, वह सुई द्वारा चमड़ी के भीतर पहुँचा दिया जाता है। यों शरीर में यह क्षमता देर में उत्पन्न होती, परंतु इससे बनी-बनाई क्षमता शरीर में पहुँच जाती तथा आनन-फानन उसका प्रभाव होता है।

इसकी सहायता से शरीर के श्वेताणु शरीर पर शीघ्र विजयी हो जाते हैं। डिपथीरिया, हनुस्तंभ तथा और दो-चार रोगों के लिये ऐसी औषध जीवनी है, आनन-फ़ानन प्रभाव दिखाती है।

मियादी रोग

चेचक, खसरा, टाइफाइड आदि ज्वरों पर औषध का कुछ प्रभाव नहीं होता। समय पर ही ये ज्वर उतरते हैं, रोग के आरंभ में रोग-कीटाणुओं का शरीर के श्वेत जंतुओं तथा अन्य शरीर-तंतुओं का युद्ध आरंभ हो जाता है, और जितने दिनों में वे विजयी नहीं होते, ज्वर नहीं उतरता। ऐसे मियादी रोगों के समय के चार भाग किए जा सकते हैं—

१—जब कि रोग-जंतु शरीर में प्रवेश करते और बढ़ते हैं, उस समय में ज्यादा कष्ट नहीं होता।

२—जब रोग के कीटाणु भरपूर मात्रा में बढ़ जाते हैं, तब रोग परिपूर्ण हो जाता है।

३—जब रोग ठहर जाता है।

४—जब या तो शरीर-तंतु विजयी होते हैं और रोगी विज्वर हो जाता है, या रोग-जंतु विजयी होते हैं, और मृत्यु होती है।

रोग-नाश की स्वाभाविक क्षमता मनुष्य के स्वास्थ्य पर निर्भर है। शरीर को गंदा रखने, पौष्टिक भोजन न खाने, स्वच्छ वायु न प्राप्त कर सकने, अति परिश्रम या चिंता करने, नशीली वस्तु इस्तेमाल करने से यह स्वाभाविक रोग-नाश की क्षमता कम हो जाती या सर्वथा नष्ट हो जाती है। प्लेग के भयानक जंतु चूहों द्वारा फैलते हैं। चूहे ज़मीन में बिल बनाकर रहते और इनके शरीर पर असंख्य पिस्सू होते हैं। इन पिस्सुओं में प्लेग-जंतु होते हैं। ये पिस्सू जब किसी चूहे या स्वस्थ मनुष्य को काटते हैं, तो रोग के कीटाणु उक्त घाव में प्रवेश करके उसके रक्त में घुस जाते हैं, और प्राणी प्लेग का शिकार हो जाता है। घर में चूहों के अकस्मात् मरने से पता चलता है कि प्लेग के कीटाणु घर में भर गए हैं। चूहे के मरते ही पिस्सू उसके शरीर को छोड़कर घर के और लोगों के शरीर पर काटते हैं।

ये पिस्सू अँधेरे कमरों में पैदा होते हैं, अत चूहे और पिस्सुओं से बचने के लिये उजालेदार और पक्के मकान बनवाने चाहिए।

पिस्सू की अवस्थाएँ

कीटाणुओं से कैसे रक्षा हो सकती है ?
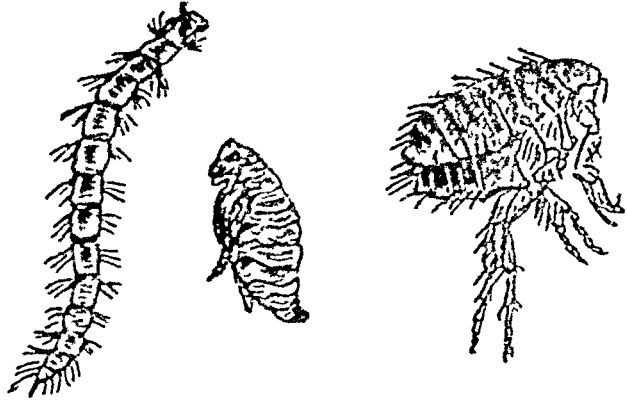
१—प्रतिदिन स्वच्छ जल से स्नान करो, और शरीर को मोटे अँगौछे से रगड़कर पोंछ डालो। कभी-कभी साबुन भी लगाओ। बहते हुए जल में स्नान करना उत्तम है, पर वर्षा-ऋतु में नहीं। दाँतों को नित्य अच्छी तरह माँजो। भोजन करके उन्हें ख़ासतौर से शुद्ध कर लो, ताकि ज़रा-सा भी जूठा अन्न उनमें अटका न रहे। मीठा खाने के बाद तो और भी सावधानी से मुँह को साफ़ करो। पान यदि खाओ, तो बहुत कम। उसके बाद अच्छी तरह कुल्ला कर डालो।

२—प्रतिदिन थोड़ा-बहुत व्यायाम करो। प्रात काल ख़ूब जल्दी उठकर स्वच्छ वायु में सैर करो और शुद्ध वायु को ख़ूब पिओ। ख़ूब ज़ोर-ज़ोर से साँस लो।

३—सड़ा, गला, बासी तथा गदा भोजन न करो। बाज़ार की चाट, पकौड़ी, मिठाइयाँ, ख़ोंचे की चीज़ें मत खाओ, ख़ासकर जब कि छूत की कोई बीमारी फैल रही हो। मक्खी, मच्छर आदि से भोजन को सावधानी से बचाओ। स्वयं शुद्ध शरीर और शुद्ध वस्त्र पहनकर भोजन करो। यथासंभव भोजन को हाथ से कम छुओ। चम्मच आदि का अधिकाधिक उपयोग करो। हाथ के नाख़ून जिस स्त्री-पुरुष के बढ़े हुए या गदे हों, उसे भोजन कदापि न छूने दो।

४—सब्ज़ी तरकारियाँ बाजार से लेकर बिना अच्छी तरह धोए काम में मत लो। ख़ासकर पत्तों की सब्ज़ी। हैज़े आदि के दिनों में ककडी, फूट, खीरा, अमरूद आदि मत खाओ।

५—सदा साफ़ पानी पिओ। यदि साफ़ पानी न मिले, तो उसे उबाल लो। यदि घर में कुआँ हो, तो उसमें महीने में एक बार परमेगनेट ऑफ़् पुटास डालो। यदि नगर में कोई छूत की बीमारी फैल रही हो, तो निश्चय उबाला हुआ पानी पिओ।

६—दस्त जाने पर हाथों को बहुत अच्छी रीति से साफ़ करो। नाख़ूनों को मत बढ़ा रक्खो। हैज़ा और टाइफ़ाइड के रोगियों के शरीर आरोग्य होने पर भी बहुत दिन तक रोग-जतु बने रहते हैं, जिनसे अन्य लोगों के रोग लगने का पूरा भय है।

७—हवादार और प्रकाशवाले मकान में रहो। मुँह ढाँपकर न सोओ। मच्छरों का संदेह हो, तो मच्छरदानी अवश्य लगाओ। सोने के कमरे में स्वच्छ वायु का पूर्ण प्रवाह बना रहना आवश्यक है। दो व्यक्ति कदापि एक शय्या पर न सोवें। पति-पत्नी और शिशु तथा माता को भी अवश्य पृथक्-पृथक् सोना चाहिए। ८ घंटे से अधिक न सोओ।

८—किसी के अँगौछे या रूमाल से मुँह या हाथ मत पोंछो। मोजों को तकिए या टोपी पर मत रक्खो। उन्हें दूसरे दिन अवश्य धो लो।

९—सदैव नाक से साँस लो। इधर-उधर थूको मत। खाँसना, छींकना और जम्हाई लेना हो, तो दूसरे व्यक्ति से दूर लो।

१०—रोगी को छूकर हमेशा हाथ धो लो। घर में यदि कोई रोगी हो, तो उसे पृथक् कमरे में रक्खो। उसके भोजन के बर्तन, वस्त्र आदि पृथक् रक्खो। यदि रोग छूतवाला है, तो वस्त्रों को परमेंगनेट पुटास के पानी से धोओ। ऐसे रोगी के वमन, मल जला देने चाहिए। रोगी को पूर्ण आराम होने तक पृथक् रक्खो।

११—सदाचारी रहो। एक स्त्री अथवा एक पुरुष से सहवास होने से मूत्र या जननेंद्रिय-संबंधी रोग नहीं होते।

१२—आत्मिक बल बढ़ाते रहो। प्राणायाम और अध्यवसाय द्वारा मनन और चिंतन करो।

प्रकरण ७

घर के दुश्मन जंतु

मक्खी, मच्छर, जूँ, खटमल, चूहे, पिस्सू और चींचली घर के शत्रु हैं, इनका यत्न से नाश करो।

मक्खी

बहुत कम लोग हमसे इस बात में सहमत होंगे कि घरों में जो मक्खी भिनभिनाया करती हैं, वे मनुष्य की शत्रु हैं। यह नन्हा-सा निर्दोष जंतु अधिक-से-अधिक शरीर पर बैठकर ज़रा गुदगुदा सकता है। इससे अधिक हानि की आशा मनुष्य नहीं कर सकते।

मक्खी की टाँग में हज़ारों रोग जंतु लिपट रहे हैं

परंतु हम यह विश्वास दिलाते हैं कि मक्खी भारतवर्ष में प्रतिवर्ष हज़ारों आदमियों को मार डालती है।

यह मक्खी किस भाँति मनुष्य का ख़ून करती है, इसके जानने के लिये हम उसके चरित्र और अभ्यासों का यहाँ वर्णन करते हैं।

ये मक्खियाँ मैल में सेई जाती मैल में रहती और मैला ही खाती हैं, उनके छः टाँगें और असंख्य बाल हैं। प्रत्येक पैर में गोल गद्दी होती है और इन गद्दियों में लसदार एक पदार्थ होता है। यदि यह पदार्थ न होता, तो मक्खी छत पर उलटी न चल सकती। परंतु इस लस के साथ वह बहुत-सी गंदगी अपने शरीर पर लपेट लेती और फल या तरकारी पर बैठकर वहाँ छोड़ देती है। यदि वह मल क्षय, टाइफ़ाइड या अन्य किसी छूत के रोग का है, तो समझिए वह इस रोग को अन्यत्र विस्तार कर रही है। जो कोई भी इस पदार्थ को खायगा, वह उक्त रोगों में ग्रसित हो जायगा।

यदि आप सावधानी से मक्खी को खाते समय देखो, तो मालूम होगा कि कोई कठिन वस्तु खाने से पूर्व वह अपने आमाशय से कुछ रस निकाल लेती है और इससे वह वस्तु पिघल जाती है। उस रस के साथ असंख्य रोग-जंतु भी निकल आते हैं, जो उस वस्तु को जंतुमय बना देते हैं।

मक्खियाँ दुखती आँखों पर, जो फूली हुई हों, बड़े चाव से बैठ जाती और कुछ पीब खाती और कुछ अपने शरीर, टाँगों और पैरों में लथेड़ लेती हैं। फिर उड़कर स्वस्थ बालक की आँखों पर रोग छोड़ देती है। इस प्रकार मक्खियाँ क्षय, टाइफ़ाइड, हैज़ा, संग्रहणी, खसरा, चेचक, आँख आना, प्लेग, फोड़े-फुंसी आदि अनेक भयानक रोगों को जन्म देती हैं।

यों तो मक्खियाँ कई प्रकार की होती हैं, परंतु घरो मे जो मक्खियाँ होती हैं, वे प्राय. सब जगह एक ही प्रकार की पाई जाती है। ये मक्खियाँ अंडज प्राणी हैं, अर्थात् अंडो से उत्पन्न होती है। गोवर, लीद आदि मे इनके अंडे छत्तो-के-छत्ते लगते है। कुडे-करकट में अथवा गंदी जगहों में भी अंडे ख़ूब पाए जाते हैं। एक-एक छत्ते मे ७५ से सवा सौ तक अंडे होते है। यह अंडे १२ से २४ घंटे के भीतर-भीतर पक जाते और इनमें से बच्चे निकल आते है। कई बार की जाँच से परिणाम निकला है कि औसत एक सेर गोबर या लीद में से ६८५ बच्चे निकलते है। यह औसत है। वैसे डेढ़ या पौने दो सेर लीद के ढेर में से २०,००० तक बच्चे पाए गए हैं।
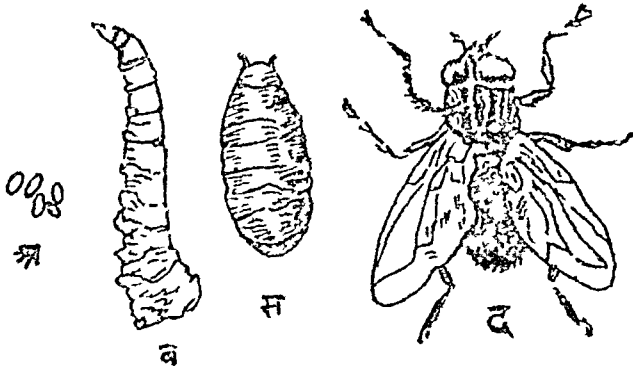
मक्खियों की चार अवस्थाएँ

(अ) अंडा।

(ब) इल्ली।

(स) इल्ल।

(द) पूरी मक्खी।

ये बच्चे एक खोल मे ढके रहते है, और बढ़ने लगते हैं। जब पूरे बढ जाते हैं, तो खोल फट जाता और मक्खी निकल पडती है। यह मक्खी जितनी बढनी होती है, उतनी ख़ोल के अंदर ही जहाँ ४ से ६ दिन तक रहती है बढ़ चुकती है। वाहर निकलने के बाद नहीं बढ़ती, इसीलिये जो भी मक्खियाँ घरो मे दिखाई देती है, सब एक ही सी बडी होती हैं। कभी-कभी जो छोटी मक्खियाँ दिखाई पडती है, वे वास्तव मे इसी जाति की मक्खियाँ होती हैं। मक्खी की आयु तीन-चार सप्ताह से अधिक नहीं होती।

मक्खी के संबंध मे इतना ज्ञान प्राप्त करने के बाद अब हमे यह भी अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि इनसे रोग किस प्रकार उत्पन्न होता है। क्योकि यह सदा घर में रहनेवाली दुश्मन है, इनसे सावधान रहना अत्यंतावश्यक है। हम कह आए हैं कि इसकी छओं टाँगो में छोटे-छोटे बाल होते हैं, जिनमे लाखो रोग-जंतु लदे रहते हैं। एक-एक मक्खी की टाँगो पर ८० लाख तक रोग-जंतु पाए गए हैं। गंदी-से-गंदी जगह बैठकर उत्तम-से-उत्तम भोजन पर मक्खी बैठ जाती है। इसी प्रकार यह क्षय, टाइफ़ाइड, पेचिश आदि के रोग-कीटाणुओ को रोगियो के मल-मूत्रादि से हमारे भोजन तक ले आती हैं। इसलिये इस घर के भेदी से हमें बहुत साव-धान रहना चाहिए।

टाइफाइड फ़ीवर—विषमज्वर के रोगी के मल-मूत्र में अच्छे हो जाने के भी महीनों बाद तक कीटाणु रहते हैं। मक्खियाँ उस मल-मूत्र पर बैठकर रसोई में भोजन पर बैठती और वहाँ रोग-कीटाणुओं को छोड जाती हैं।

पेचिश के कीटाणु भी ये मक्खियाँ इसी प्रकार फैलाती हैं।

बच्चों को गर्मियों में दस्त आते और अक्सर बच्चे उनमें मर भी जाते हैं। इन दस्तों में भी एक प्रकार के कीटाणु होते हैं, मक्खियाँ दस्त पर बैठकर बच्चों के मुख पर बैठती हैं, जहाँ प्राय. होठों पर दूध लगा रहता है और वहाँ उन कीटाणुओ को छोड जाती हैं, जो बालक के अंदर प्रवेश करके रोग उत्पन्न कर देते हैं, इसलिये बालकों को मक्खियो से बचाना चाहिए। यह बहुत ज़रूरी है। अन्य रोगो के कीटाणु भी इसी प्रकार बालकों में प्रवेश करते हैं।

मक्खी की टाँग मे लिपटे हुए कीटाणु

शीशे पर मक्खी ने इतने कीटाणु छोडे हैं
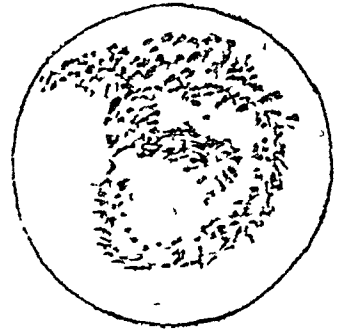
क्षय के कीड़े थूक से और हैज़े के कै-दस्त से भी इसी प्रकार इन मक्खियों द्वारा पहुँचते हैं। हैज़े के संबंध में नटेल साहब ने, जिन्होने इस संबंध में बडी खोज की थी, लिखा है कि मक्खियाँ हैज़े को फैलाती हैं। इस संबंध में जितनी जाँच हुई है, इसकी सच्चाई के सबंध में तिल-मात्र भी संदेह नहीं है।

१—अब विचार यह होता है कि इन मक्खियो के उपद्रव से किस प्रकार बचा जाय। यह कोई मुश्किल काम नही है, परतु म्युनिसिपैलिटियों तथा नगर-निवासियो दोनो को थोडा उद्योग करना होगा। ९० प्रतिशत मक्खियों के अंडे गोबर, लीद, कूड़ा, करकट, रसोई व घर के कचरे आदि में होते हैं। गोबर, लीद आदि खुला शहरों या घरों में नही छोडना चाहिए। अस्तबलो की सफाई का रोज़ प्रबध होना चाहिए, घर व रसोई का कचरा आदि ढके हुए पीपों मे रहना चाहिए और रोज़ या दूसरे दिन शहर के बाहर जाना चाहिए। मल-मूत्र आदि भी दूर जंगलो मे गहरा गाडने का प्रबंध होना चाहिए। घरो के पाख़ानो में राख व मिट्टी का पूरा प्रबंध होना चाहिए और हर वक्त मिट्टी व राख से ढके रहने चाहिए। पाख़ानों, मोरियों आदि में फ़िनाइल, चूना व कामेलीन आदि डालने का पूरा प्रबंध होना चाहिए। हम हेल्थ आफ़िसरो व म्युनिसिपैलिटियो का ध्यान विशेषतया इन बातो पर आकर्षित करते हैं।

२—मिट्टी का तेल मक्खी-मच्छरों का बडा भारी दुश्मन है। घरों, पाख़ानों व ऐसे स्थानों पर जहाँ गोबर आदि पडता हो तथा कूडा-कचरा गिरता हो, उस जगह थोडा मिट्टी का तेल ज़रूर डाल देना चाहिए।

३—किसी लोहे के टुकडे को ख़ूब गर्म करके उस पर थोडी कार्बोलिक एसिड डाल देने से जो भाफ उडती है, उससे मक्खियाँ मर जाती हैं।

४—नीम के गीले पत्तो की धूनी देना या चूना गढे स्थानो मे डालनाभी लाभ करता है।

५—मरीज़ों के कमरों मे जालियाँ व पर्दे लगाने चाहिए। यदि फिर भी कुछ मक्खियाँ घुस आवें, तो इन्हें नष्ट कर देना चाहिए, नहीं तो वे बाहर जाकर रोग फैलावेंगी। पीब की पट्टियाँ व मरीज़ों के कपडे दूर धुलने चाहिए। सार्वजनिक जलाशयो मे कदापि नही धोने चाहिए।

६—भोजनालयों तथा हलवाइयो की दुकानों व घर के रसोई-घरो में दूध-घी आदि खाद्य पदार्थों को जालियों से ढकने का पूरा प्रबंध होना चाहिए।

७—सारांश यह कि म्युनिसिपैलिटी के अधिकारियों तथा नगर-निवासियो को ऐसा प्रबंध करना चाहिए कि इस छोटी-सी मक्खी के महान् उपद्रव से बचना हो सके। सब कुछ लिखकर हम आशा करते हैं कि अपनी सुविधा व अवस्थानुसार मक्खियो को दूर रखने के उपाय सब लोग अपने-अपने यहाँ करेंगे। क्योंकि घर का दुश्मन छोटा भी बुरा होता है, मशहूर है कि 'घर का भेदी लंका ढावे।'

जुएँ और जमजुएँ

जो स्त्री-पुरुष वस्त्रों और सिर के बालों को ठीक-ठीक शुद्ध नहीं रखते, उनके शरीर और सिर में जुएँ तथा जमजुएँ हो जाती हैं। ये शरीर को काटती है, जिससे शरीर मे खुजली मचती है। खुजलाने से ददोडे या घाव हो जाते हैं। सिर में भी जुएँ घाव कर देती है।

उपाय

जमजुएँ दूर करने के लिये वस्त्रों को ख़ूब गर्म पानी से धो डालना आवश्यक है कि वे सब नष्ट हो जायँ। जमजुएँ प्रायः नाभि के नीचे के भागो में केशो की जड में रहती हैं। बढ़ते-बढ़ते ये अन्यत्र भी फैल जाती हैं। इनको दूर करने के लिये यह उपाय करना चाहिए कि एक रत्ती दाल चिकना (जो पंसारी से मिल सकता है, पर ख़बरदार यह तीव्र विष है) आधी छटाक जल मे घोलकर रख लो, इस पानी से उस स्थान को सप्ताह मे दो बार धो डालो।

यदि किसी के सिर मे जुएँ हो जायँ, तो उनके मारने का उपाय यह है कि मिट्टी का तेल और नारियल का तेल समान भाग मिलाकर दो-तीन दिन तक यही तेल बालो मे रात्रि के समय मल दो और ऊपर एक कपडा बाँध दो। फिर प्रातःकाल गर्म पानी और साबुन से धो डालो। पर इस बात की सावधानी रखना चाहिए कि जब तक यह तेल रोगी के सिर पर रहे,

उसे आग के पास न जाना चाहिए। यदि सिर में घाव हो गए हों, तो उन पर वैसलीन या नारियल का तेल लगाना चाहिए।

जुओं की लीखें या बालों में मोती के समान लगी हुई होती हैं। इनको नाश करने के लिये बालों को हफ्ते में दो चार सिरके से धो डालना चाहिए और पश्चात् महीन दाँतो की कंघी से बालों को भली भाँति स्वच्छ कर डालना चाहिए।

खटमल

खटमल वस्त्रों और चारपाइयों में होकर न केवल काटकर नींद ख़राब करते हैं, परंतु ये अनेक भयानक रोग-पुंजों को शरीर में प्रवेश कराते हैं। वस्त्रों में से इनको नाश करने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि इन्हें गर्म पानी में बोर दो और उबलने दो। यदि चारपाई की चूलों में खटमल हो जायँ, तो एक भाग कार्बोलिक एसिड चार भाग जल में मिलाकर चूलों में डालो। तारपीन का तेल भी डाला जाता है।

अध्याय ग्यारहवाँ

जड़ी-बूटी

प्रकरण १

अशोक

विवरण

अशोक-वृक्ष की दो जाति होती हैं। एक जाति का पत्ता रामफली के समान और फूल नारंगी के रंग का होता है। यह फूल वसंत-ऋतु मे खिलता है। इस जाति को पाश्चात्य वनस्पति-शास्त्रवेत्ता 'Jonsia Asoka' के नाम से पुकारते हैं, और यही उत्तम अशोक है। दूसरी जाति के अशोक के पत्ते आम के समान होते हैं। इसका फूल सफ़ेद रंग का कुछ पीलापन लिए होता है। इसमें वर्षा-ऋतु के प्रारंभ में फल आते हैं। कच्चे फूलों का रंग हरा और पकने पर कुछ कालापन लिए लाल हो जाता है। ये फल खाने योग्य नहीं होते। इनमें से बीज निकलते है। वे बीज भी किसी औषधि में काम नहीं आते। सिर्फ़ छाल काम आती है। उसकी मात्रा दो माशे की है। इस जाति को उत्तम अशोक नहीं माना जाता। फिर भी दवा के काम में दोनो ही आते हैं।

गुण-दोष और उपयोग

वैद्यक निघंटुकारों ने अशोक को ठंडा, मधुर, कड़ुआ, कब्ज़ करनेवाला, रंग को उज्ज्वल करनेवाला, अपची, बालतोड, कृमि, सूजन, विष और रक्त-दोष को नाश करनेवाला कहा है। फिर भी उसका ख़ास उपयोग स्त्रियों के रोगो पर ही ख़ासतौर से होता है। शोढल का वचन है—"अशोकस्य त्वचा रक्तप्रदरस्य विनाशिनी।" अशोक की छाल रक्तप्रदर का नाश करनेवाली है। परंतु अनुभव से मालूम हुआ कि वह सफ़ेद, लाल, नीला, काला, सडा, दुर्गंधित विविध प्रकार के प्रदर को दूर करती है। इस काम के लिये अशोक-घृत तथा अशोकारिष्ट इत्यादि शास्त्रोक्त औषधि काम में लाई जाती है। इनके सिवा विद्वान् वैद्यो ने और भी प्रयोग बनाए हैं, परंतु उपर्युक्त दोनो प्रयोग सर्वोत्तम हैं।

अशोक-घृत

अशोक की छाल का नरम गूदा २॥ सेर लेकर बारीक कुट्टी काटकर १६ सेर पानी

मे पकावे। जब चार सेर पानी बाक़ी रहे, तब उतारकर छान ले। फिर जीरा सफ़ेद २ सेर लेकर १६ सेर पानी में औटावे, ४ सेर पानी रहे उतारकर छान ले। ४ सेर चावलों का धोवन ले। यह इस प्रकार बनावे कि १ सेर मोटे चावलों को एक बार धोकर जब धूल-मिट्टी निकल जाय, तब आठ अंगुल पानी भर दे, और दोपहर तक रक्खा रहने दे। वह पानी निथारकर ले। बकरी का दूध ४ सेर ले। जल-भंगरा का रस ४ सेर ले और गाय का घी ४ सेर ले। सबको लोहे की कढ़ाई में डालकर मिला दे। विदारीकंद ८ तोला, शतावर १२ तोला, असगंध ८ तोला, टोडी ८ तोला, मुलहठी ८ तोला, फ़ालसा ८ तोला, अजीर ८ तोला, दारुहल्दी के क्वाथ में बकरी के दूध से तैयार किया हुआ काढ़ा ४ तोला, अशोक की छाल का गूदा ४ तोला, मुनक्का ४ तोला, चौलाई की जड़ ४ तोला, इन सबको पानी मे लुगदी पीस ले। यह भी उसी कढ़ाई में घोल दे। मंद अग्नि से पकावे। जब पानी का भाग जल जाय, घी-मात्र रह जाय, तब उतारकर छान ले। इसमें से रोज प्रात-सायंकाल रोगी की शक्ति के अनुसार ।) भर से १ तोला तक कुछ गर्म दूध में डालकर पीवे। रक्तप्रदर या रक्त-स्राव पर इसका प्रयोग रामबाण है। इसके सिवा श्वेतप्रदर, सफ़ेद धातु जाने पर भी अत्यंत उपकारी है। जिन प्रदरों में मांस के धोवन के समान नीला, पीला, चिकना, काला स्राव सदा बहता रहता है, उनमें भी अत्यंत फ़ायदा करता है। नया प्रदर तो प्रदरांतक, प्रदरारि लोह इत्यादि औषधि से मिट जाता है, परंतु जीर्ण रोगों में जब एक भी औषध माफ़िक नहीं आती, तब यह औषध अवश्य गुण करती है। इस प्रकार यह अशोक-वृक्ष स्त्रियों के लिये अत्यंत गुणकारक होने से इसे 'अंगनाप्रिय' और सब शोक और दुख हरनेवाला होने से 'अशोक' कहते हैं। यह यद्यपि स्त्रियों के रोगों की औषध है, पर पुरुषों के भी जीर्ण प्रमेहों पर बहुत फ़ायदा करता है।

अशोकावलेह

अशोक की छाल का गूदा दो सेर, मोचरस १ सेर, सेमर का गोंद ४० तोला, धाय के फूल ४० तोला, अरवा चावल ४० तोला, सबको १६ सेर पानी में पकाकर ४ सेर रहे, तब छाने। फिर ज़ीरा सफ़ेद, रूमी मस्तगी, आँवले का चूर्ण ३-३ माशे। बूरा ४० तोला मिलाकर मंदाग्नि से पाक करें। तैयार होने पर चार रत्ती कपूर डाले। काँच के पात्र में धरे। ख़ुराक ३ माशे की है। ऊपर से बकरी का दूध पीवे। सब प्रकार के प्रदरों के लिये अत्यंत उपयोगी है। साथ ही गर्भाशय को भी शुद्ध करता है।

अशोकादि क्वाथ

अशोक की छाल, अनंतमूल, लोध, दारुहल्दी, बड़ी हरड़, सफ़ेद चिरमिटी की जड़, डाभ की जड़, ये सब चीज़ें समान भाग लेकर जौ कूटकर उसमें से सवेरे-साँझ दोनो समय २ तोला ले, ६४ तोला पानी के साथ पकावे। ४ तोला बाक़ी रहे, तब उतार-छानकर पीवे। श्वेतप्रदर के लिये यह महौषध है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि

सफ़ेद चिरमिटी की जड़ को पहले गाय के दूध में अच्छी तरह उबालकर पीछे धोकर काम मे लावे।

जैसे यह औषध रक्तप्रदर के लिये रामबाण मानी जाती है, उसी तरह रक्तार्श (ख़ूनी ववासीर) के लिये भी उत्तम गुणकारी है।

योरपियन वनस्पति-शास्त्र के विद्वान् इस औषध के विषय में इस प्रकार अपना अभिप्राय लिखते है—

The bark is strongly astringent, as it contains tanin. It is much, used by native Physicians in uterine affections, especially in menorrhagia A decoction of the bark in milk is generaly prescribed, the dose is I once three times a day commenced from the fourth day of the monthly period and continued daily till the bleeding ceases. Fresh decoction must be made every day. A decoction of the bark in water with dibute sulphuric acid is also used The bark is useful in internal haimorrhoids also. Flowers pounded and mixal with water are useful in harmorrhagic dysentery

अशोक की छाल अत्यंत ग्राही है, क्योंकि उसमें टेनेन एसिड है। गर्भाशय के कष्टों में और रक्त-स्राव मे तथा रक्तप्रदर में देशी चिकित्सक लोग इसे बहुत काम में लाते हैं। इसकी छाल को दूध के साथ उबालकर पीना आमतौर से प्रचलित है। (८ तोला छाल, ८ तोला दूध और ६४ तोला पानी मिलाकर पकाओ, पानी जलने पर दूध शेष रहे, तब छानकर पिओ।) प्रतिवार की दवा का परिमाण २॥ तोला है, और ऋतु-स्राव के चौथे दिन बाद ही प्रारंभ करके दर्द बिल्कुल बंद हो जाने तक देना चाहिए। प्रतिदिन ताज़ा दूध पकाना चाहिए। इसी तरह दूध के स्थान पर छाल के पानी के साथ क्काथ करके उसमें गंधक का तेज़ाब अल्प मात्रा में देने से भी यही फ़ायदा होगा। यही क्काथ ख़ूनी ववासीर को अथवा रक्तातिसार को भी आराम करता है।

प्रकरण २

अड़ूसा

अड़ूसे के गुण

अड़ूसा—वातकारक, स्वर के लिये उत्तम, कड़ुआ, कषैला, हृदय को हितकारी, हलका, शीतल, कफ, पित्त, रक्त-विकार, प्यास, श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन, कोढ़ तथा क्षय को नष्ट करता है।

विशेष विवरण

अड़ूसे का झाड़ चार से आठ फीट तक ऊँचा होता है, जिसमें आमने-सामने ऊपर की ओर शाखाएँ निकलती हैं। इसका पत्ता चार से आठ इंच तक लंबा और २ से ३ इंच तक चौड़ा होता है। फूलों को धारण करनेवाली सलाई लंबी कलँगी के समान होती और वे बहुधा शाखाओं के सिरे के पास निकलती हैं। फूलों का रंग सफेद होता है और उस पर हलके बैंगनी या भूरे रंग के छींटे होते हैं। इसका फल पौन इंच लंबा और ४ बीज-वाला होता है।

उपयोग

अड़ूसा बहुत प्राचीन काल से दवा के तौर पर इतना अधिक विख्यात है कि साधारण गाँव के आदमी भी उसका उपयोग—दस्त, मरोड़, उल्टी, ज्वर, त्रिदोष, कमलवाय, सूजन, सन्धिवाय आदि रोगों पर करते हैं। परंतु आयुर्वेद-शास्त्र में खासकर यह वस्तु पुरानी खाँसी, दम, कफ और क्षय-रोग पर अक्सीर मानी गई है।

इस देश की वनस्पतियों के गुण-दोषों को जाँच करने में भारत-सरकार ने इंडाइजेन्यस ड्रग कमिटी ऑफ इंडिया जो नियत की थी, उसने अड़ूसे की बाबत इस प्रकार अपनी रिपोर्ट प्रकट की थी—"यह बात यहाँ प्रकट की जाती है कि हिंदोस्तान के अस्पतालों में हाल की की हुई आज़माइशों और परीक्षणों से यह वनस्पति पुरानी श्वास, खाँसी और दम के रोग में बहुत लाभकारी प्रमाणित हुई है। परंतु क्षय को नष्ट करने में इस वनस्पति की जो शक्ति है, वह निस्सन्देह माननीय है।"

फार्मेकोपिया ऑफ़ इंडिया में इस वनस्पति को ख़ास अनुभव के आधार पर खाँसी और दर्द के लिये अपूर्व माना गया है। उक्त पुस्तक में इस बात पर ख़ास ध्यान रखने को ज़ोर दिया गया है कि यह दवा उसी खाँसी और दमे के रोगी पर आज़मानी चाहिए, जिसे ज्वर न हो। परंतु वैद्य लोग ज्वरवाले रोगों में भी बेखटके इस वस्तु को देते रहते और

फायदा भी उठाते हैं। पर इस बात का विचार अवश्य उन्हें भी करना उचित है कि यह ज्वर वायु का न हो।

सर्जन जे० एफ़० डबल्यू० मिडोज लिखते हैं— 'इसके ताज़े पत्तों का क्वाथ करके देने से कफ के साथवाली तर खाँसी को बहुत उपयोगी है।" कच्छभुज के सर्जन डबल्यू० बेकन साहब का कथन है कि "इसके पत्तों का चूर्ण करके एक से बीस ग्रेन तक की मात्रा में उत्तम कफ औषध की तरह पुरानी खाँसी में दे सकते हैं।"

मद्रास के सर्जन पी० किसली मेकाकोल लिखते हैं कि "अड़ूसे के पत्तों को उबालकर उसकी भाफ से सेंक करने से सन्धिवात तथा उसका आराम हो जाता तथा सूजन भी कम हो जाती है।"

बंगलोर के सर्जन मेजर जोननार्थ लिखते हैं कि "यह वनस्पति मैसूर में साधारण है। देशी वैद्य लोग इसकी जड़ का चूर्ण मलेरिया के लिये बहुतायत से काम में लाते हैं।"

सर्जन मेजर फिटस पेटीरक कहते हैं—"पाडु रोग के साथ यदि जलोदर का भी रोग हो, तो इसका प्रयोग मूत्रल औषध की तरह किया जा सकता है।"

सर्जन मेजर शेव कहते हैं—"इसके पत्तों का रस आमातिसार और रक्तातिसार में काम में लाया जा सकता है। मरोड में यदि ख़ून जाता हो, तो उसे बंद करने के लिये यह अपूर्व है।"

पैरिस केमिकल सोसाइटी के मेंबर के० एम्० नाडकनी लिखते हैं—

"अड़ूसे के पत्तों का ताजा रस दो ड्राम (॥। तोला) शहद के साथ या अदरक के रस (१ ड्राम) के साथ देने से या उसकी जड़ या पत्तों का काढ़ा करके उसमें काली मिर्च या छोटी पीपल मिलाकर पीने से यह उत्तम कफ-मिक्श्चर की तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है। यह श्वास, खाँसी, क्षय आदि में बहुत ही उपयोगी है। इसके पत्तों का रस मरोड और ख़ून के दस्तों में भी ख़ास तौर पर उपयोगी है। इसके काढ़े का सेवन करने से सन्धिवात, पक्षाघात और वेदना-युक्त सूजन में उत्तम असर होता है।"

क्षय पर इसका हुक्मी असर है या नहीं, परंतु उपर्युक्त विद्वानों के अनुभव से यह बात निर्विकार है कि यह वनस्पति कफ, खाँसी, ख़ून गिरना, उल्टी आदि की अपूर्व औषध है। इसके अनेकों प्रयोग शास्त्रों में लिखे हैं, जिनमें मुख्य नीचे लिखे जाते हैं—

१ वासा-स्वरस

(योगरत्नाकर) इसके पत्तों को पीसकर उसका ताज़ा रस कपड़े में निचोडकर ६ माशे से १ तोला तक शहद मिलाकर पीने से उल्टी और दस्त में गिरते हुए ख़ून को बंद करता है।

२ वासावलेह

(भावप्रकाश) अडूसे का रस ६४ तोला, मिश्री ३२ तोला, घी ८ तोला मिलाकर

मंदाग्नि से पकावे। चाटने लायक अवलेह तैयार करे। फिर ठंडा कर ८ तोला छोटी पीपल का चूर्ण मिला दे। दूसरे दिन बिलकुल ठंडा होने पर ३२ तोला शहद मिलावे। कॉंच या चीनी के पात्र में रक्खे। मात्रा ६ माशे से १ तोला तक। खाँसी, दम, रक्त-पित्त, हृदय-रोग और क्षय की प्रथम श्रेणी में लाभदायक है।

३ वासासव

अडूसे के पत्ते १० सेर को २ मन पानी में पकावे। १० सेर पानी रहे, तो उतारकर छान ले। इसमें २० सेर गुड, १६ तोले धाय के फूल, तज, इलायची, तमालपत्र, नागकेसर, कंकोल, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा प्रत्येक २ तोले चूर्ण कर डाल दे। मिट्टी के चिकने बासन में १५ दिन सन्धान करे, पीछे छानकर काम में लाए। मात्रा १ से २ तोले तक। पाडु, जलोदर, सूजन, क्षय, कास पर अत्युत्तम है।

४ गुर्दे के दर्द पर

अडूसा और नीम के पत्तों को उबालकर पेड़ू पर सेक करने से और अडूसे का रस आधा तोला बराबर शहद मिलाकर पीने से अत्यंत चमत्कारिक लाभ देता है।

५ दम-नाशक सिगरेट

अडूसे के ताज़े पत्तों को सुखा और चूरा करके उसकी सिगरेट या बीडी बनाकर पीने से रोग में बहुत ही उत्तम प्रभाव करती है।

प्रकरण ३

ढाक

ढाक सब जगह प्रसिद्ध वृक्ष है। जंगलों में वन-के-वन ढाक के होते हैं। इसकी लकड़ी घरों में जलाने और पत्ते दोने तथा पत्तल बनाने के काम आते हैं।

मुर्जरिबात अकबरी में लिखा है कि इसके बीज नपुंसकों की चिकित्सा के लिये अति उत्तम हैं। इसके बीज पित्तपापड़ा के नाम से मशहूर है। उन्हें आध घंटा पानी में भिगोकर उनके ऊपर की पतली लाल छाल दूर करके अंदर की मींगी को सुखा ले और फिर एक मिट्टी की हाँडी लेकर उसकी पेंदी में छेद करके उसमें ये बीज भरकर मुँह बंदकर कपड़मिट्टी कर दे। पातालयंत्र से तेल निकाले। यह तेल लिंगेंद्रिय के अग्रभाग और सीवन छोड़कर बाकी के भाग में मालिश करे, तो लिंगेंद्रिय अत्यंत पुष्ट और दृढ़ होती है।

ढाक के बीज कृमि-रोग की महौषधि है। इसमें नाना प्रकार के कृमियों को नाश करने की शक्ति है।

ढाक के बीज, निसोत, अमलतास, अजमोद, कबीला, वायविडंग और गुड़ सब साथ मिलाकर २ माशे की गोली बनावे। १ गोली सुबह-शाम बड़े आदमी को और आधी गोली बच्चे को देने से पेट के कीड़े बिलकुल मर जाते और बाहर भी निकल आते हैं।

ढाक के बीज, कबीला, वायविडंग, भुनी हुई हींग, काली जीरी, छोटी हरड़, काला नमक और निसोत ये सब चीजें बराबर लेकर कूटकर चूर्ण करे। इसमें से रोज़ रात को ६ से ९ माशे तक लेकर ठंडा पानी पीवे। इससे प्रातःकाल ३-४ दस्त होंगे। इससे प्रत्येक प्रकार के कीड़े बाहर निकल जायँगे।

एक रोगी को साँप ने काट लिया था। इससे उसके पैर पर सूजन चढ़ गई और दिन-पर-दिन उसका ज़हर शरीर के अंग-प्रत्यंग में फैलता गया, तमाम शरीर में फफोले पड़ गए। ये फफोले भरते-फूटते रहते थे। तमाम शरीर में विस्फोटक हो गया और दाह होने लगी।

इस रोगी को ८ बार अमलतास का जुलाब दिया गया और पीछे यह दवा दी गई।

ढाक का पचांग प्रत्येक २ सेर लेकर सुखाकर और जलाकर राख कर ली गई, फिर उस राख में दस सेर पानी डालकर खूब घोलकर रात-भर रक्खा रहने दिया। प्रातःकाल इस पानी को निथारकर कढ़ाई में जला लिया गया। जलाते वक्त जब २ सेर पानी रह गया, तब उसमें बकरे का मूत्र दो सेर, आक का दूध, काले सिरस की सूखी छाल, सिरस के फूल, गेरू, हल्दी, दारुहल्दी, तुलसी-मंजरी, मुलहठी, बेर की लाख, सेंधा नमक, बालछड़, हींग,

सोंठ, काली मिरच, पीपल, कूठ, अमलतास का गूदा, बांझ ककोटी की सूखी हुई जड़, अनंतमूल, चौलाई की जड़ प्रत्येक ८ तोला चूर्णकर डाल दिया और मंदाग्नि से बिना कलई के ताँबे के बर्तन में डालकर पकाया गया, जब गीरे के समान हो गया, तब नीचे उतार दो-तीन थालियों में डालकर धूप में रख दिया गया। जब गाढा हो गया, तब घी का हाथ लगाकर दो-दो आने-भर की गोलियाँ बना लीं।

ये गोलियाँ सायं प्रात एक-एक ? तोला गाय के घी के साथ उस बीमार को चटाई गई। ऊपर तुरत का काढ़ा हुआ गाय का दूध दिया गया। साथ ही रोज़ सवेरे १ गोली सिरस के क्वाथ में और एक गोली शाम को भँगरे के रस में घिसकर घावों पर लगाई गई थी। इस प्रयोग से उस रोगी के १ मास में बिलकुल घाव सूख गए और दो महीने में तमाम शरीर का ज़हर दूर हो गया। यह प्रयोग गुजरात के एक सद्वैद्य महोदय ने किया था।

ढाक के बीज जिस प्रकार खाने से पेट के कीड़ों को नष्ट करते हैं, उसी प्रकार बाहर चुपड़ने की दवाइयों में उपयोग करने से दूसरे जंतुओं को भी नाश करते हैं। नीचे-लिखी विधि से नहरू को बहुत फायदा होता है—

ढाक के बीज, कुचला, रसकपूर, कपूर, गूगल, सब बराबर लेकर बारीक पीसकर पानी के साथ खरल करके पीपल के पत्ते पर उसका लेप करें और नहरू पर बाँध दें। इतना कसकर न बाँधे कि घाव तन जाय, घाव पर जरा घी चुपड़ ले। यह पट्टी तीन दिन में खोलनी चाहिए। यह दवा इस रोग पर रामबाण है।

साँप के ज़हर के लिये ढाक बहुत अच्छी दवा है। इस पर इसका उपयोग इस तरह करें कि इसके जड़ के ऊपर की छाल पीसकर उसका ताज़ा रस जहर की प्रबलता और रोगी की शक्ति का विचार करके ४ से १० तोला तक पिलावे। इससे न दस्त होंगे, न उल्टी, किंतु साँप का जहर उतर जायगा।

प्रकरण ४

आँवला

आँवले के गुण

रक्त-पित्त और प्रमेह को नष्ट करनेवाला और वीर्य को अत्यंत बढानेवाला तथा रसायन है। शरीर को मोटा करने में ख़ास शक्ति रखता है। आँखो और केशो को हितकारी, टूटी हड्डी को जोडनेवाला और आयु को बढानेवाला है।

विवरण

आँवले के वृक्ष कुदरती तौर से जंगलो में बहुत होते है, और बाग-बग़ीचो मे भी बहुतायत से लगाए जाते है। ये पेड २०-२५ फ़ीट ऊँचे और इनके तने बहुत टेढे, तिरछे होते हैं। इनके ऊपर की छाल खरखरी और भूरे रग की होती है। इनकी शाखाएँ भी टेढी, तिरछी होती है। इन शाखाओ में कुछ नीले और कुछ पीले रंग के छोटे-छोटे फूल आते है, और उनमें पीछे फलो का गुच्छा आता है। ये फल गोल, चमकीले और आँवला-सार गधक के रंग के समान होते है। उनके ऊपर बहुत बारीक ५-६ लकीरे होती हैं। फल के अंदर बहुत सख्त तिकोनी गुठली होती है। इस फल का बहुत बडा व्यापार होता है।

उपयोग

आँवले का प्रत्येक अंग दवाई के काम में लाया जाता है। फिर भी फलों का इस्तेमाल ज़्यादा होता है। (१) इसकी छाल में 'ग्राही' गुण होता है, और इसलिये उसका रस निकालकर उसमें हल्दी और शहद मिलाकर प्रमेह की बीमारी मे देते है। (२) इसके पत्तो को पानी में उबालकर कुल्ला करने से मुँह के छाले मिटते हैं। क्योंकि पत्तों के अंदर Tenic acid होता है, जिसमें छालों को बहुत जल्दी आराम करने की शक्ति होती है। (३) इसकी गुठलियों की मिगी को कूटकर गर्म खौलते पानी मे डाल दो, ठंडा होने पर वह पानी छानकर अगर आँखें धोई जायँ, तो बहुत दिन की दुखती आँखें आराम हो जायँगी। (४) इसके नरम-नरम पत्ते छाछ के साथ लेने से अजीर्ण के पतले दस्तो में फायदा होता है। (५) जड की छाल का काढ़ा कमलवाय, अजीर्ण वगैरह में बहुत फ़ायदा पहुँचाता है। (६) आँवले के सूखे फल मे गेरिक ऐसिड का ख़ास हिस्सा रहता है। इसलिये इसके इस्तेमाल करने मे दस्त के साथ ख़ून गिरने और रक्त-पित्त मे ख़ास तौर से फायदा होता है। (७) सूखे फल के चूर्ण को लोह-भस्म के साथ देने से पांडु, कमलबाय और

मंदाग्नि में आराम होता है। (८) इसके फलो को पीसकर पेड़ू पर लेप करने से मसाने का दर्द मिटता है। (९) फलों को भभके मे अर्क खींचकर पिलाने से कमलवाय, मदाग्नि और कफ मिटता है। (१०) इसका शर्बत ठंडा और मूत्र-जनक है। (११) इसकी छाल दस्तों को बंद करती है। (१२) इसकी ताज़ी छाल के रस मे हलदी और शहद मिलाकर पीने से सुजाक मिटता है। (१३) मुरब्बा खाने से पित्त के रोग मिटते है। (१४) आँवले को घोट-छान, मिश्री मिलाकर पीने से पेशाब के साथ ख़ून आना बंद होता है। (१५) दो तोले सूखे आँवले, ४ तोले गुड़, डेढ़ पाव पानी मे औटाकर आध पाव रहने पर मल-छान-कर पिलाने से गठिया मिटती है। इसके सेवन के समय फीकी रोटी, सेंधा नमक और काली मिर्च डालकर मूँग की दाल खाना और हवा से बचना चाहिए। (१६) आँवलो को सरसो के तेल में कुछ दिनो रखकर उस तेल को मस्तिष्क मे मलने से सिर-दर्द, जलन, विचारों का बिगड़ना, बालों का गिरना ये रोग मिटते है। (१७) पुरानी सूखी खाँसी को तर करने के लिये आँवले का चूर्ण शहद से चाटना चाहिए। (१८) बालो को साफ करने के लिये आँवले से धोना चाहिए। (१९) आँवलों के चूर्ण की फकी देने से बैठी हुई आवाज़ खुल जाती है। (२०) आँवलों के चूर्ण को शहद के साथ चाटने से प्रदर मिटता है। (२१) १५ माशे आँवले और १५ माशे मेहदी के पत्तो को डेढ़ पाव पानी में रात-भर भिगो प्रातःकाल छानकर पीने से बवासीर मिटती है। (२२) आँवले के रस मे शहद मिलाकर पीने से सब तरह के प्रमेह मिटते है। (२३) आँवले और मुलहठी के काढे में शहद मिलाकर कुल्ले करने से कंठ और गले के ज़ख़्म आराम होते है। यद्यपि इस वृक्ष के भिन्न-भिन्न अंगो में ऐसे अनेकों उत्तम-उत्तम गुण है, फिर भी दवाई के तौर पर विशेष उपयोग ताज़े फलों का ही होता है। इन फलो के रस मे ग्राही, मूत्रल, पित्तशामक, रक्त-शोधक, सारक और रुचिकारक गुण होने से दस्त, आँव, मरोड़, प्रमेह, प्रदर, दाह, कमलवाय, अम्लपित्त, पित्त की उल्टी, विस्फोटक, पांडु, रक्तपित्त, वातरक्त, अर्श, बद्धकोष्ठ, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, खाँसी इत्यादि तकलीफ़ों को अच्छी तरह से नाश करता है। दृष्टि को तेज करनेवाला, वीर्य दृढ़ करनेवाला और आयु की वृद्धि करनेवाला है। ख़ून ही प्राणियो का जीवन है। यह ख़ून जब तक शरीर को पोषण करने योग्य शुद्ध होता है, तब तक किसी प्रकार की बीमारी और वृद्धावस्था नहीं आती। परंतु अप्राकृतिक आहार-विहार से जब ख़ून में खार, खटास या कीटाणु बढ़ जाते है, तब उसकी यथार्थ कार्य करने की शक्ति कम हो जाती है और ठीक-ठीक पोषण न होने के कारण अवयवो की शक्ति में कमी होकर अनेको उपद्रव शुरू हो जाते हैं। इन्ही उपद्रवो को हम नाना प्रकार के रोग अथवा वृद्धावस्था कहते हैं।

रक्त में अगर विजातीय द्रव्य न मिलने दिए जायँ अथवा किसी उपाय से दूर कर दिए जायँ, तो किसी भी बीमारी की बिना ख़ास चिकित्सा किए हुए वह ख़ुद आराम हो जायगी और इसी प्रकार वृद्धावस्था दूर होकर युवावस्था हो जायगी। योरप के वनस्पति-शास्त्र के

बड़े-बड़े विद्वानों ने इस संबंध में अच्छी तरह खोज करके सेव, जैतून के फल और आँवला इन तीन चीजों में ही उपर्युक्त गुण पाए हैं। इनमें आँवला सबसे अधिक सुलभ है। आँवलों में इन दिव्य गुणों के होने के कारण ही संसार के देशी और विदेशी सभी चिकित्सक उसे आदर के भाव से देखते हैं। एक अमूल्य गुण के कारण ही उसका नाम वयस्था (आयु को कायम रखनेवाली) धात्री (माता) के नाम से पुकारा जाता है। चरक ऋषि कहते हैं—

लंबी आयु, स्मरण-शक्ति, बुद्धि, तंदुरुस्ती, जवान अवस्था, तेज़ स्वर, वर्ण, उदारता, शरीर और इंद्रियों का बल, वाणी की सिद्धि, धातु की पुष्टता और कांति यह सब रसायन सेवन से प्राप्त होते हैं। जिस औषध से अच्छी तरह से रस, रक्त, वीर्य वगैरह धातुओं की वृद्धि हो, उसी को रसायन कहते हैं। आँवले में यह संपूर्ण गुण हैं और शीत वीर्य होने के कारण उसमें और विशेषता आ गई है। आँवले की मुख्य करके बहुत-सी दवाएँ प्राचीन काल में बनाई गई थीं, जिनमें च्यवनप्राश रसायन सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

बेल की जड़, अरणी, अड़ूसा, पाढल, शालपर्णी, कुम्हारी, मुद्गपर्णी माषपर्णी या (उड़द-मूँग), काकड़ासिंगी, आँवला, जीवंती, तालीसपत्र, त्रिफला, खरैटी, गिलोय, विदारीकंद, कचूर, चंदन लाल, भीमसेनी कपूर, कमलगट्टा, बड़ी इलायची, दाख, असगंध, शतावर, मोथा, प्रत्येक आठ-आठ तोला, पके ताजे आँवले ५००। आँवलों को कपड़े में पोटली बाँधकर एक कलई के बर्तन में १६ सेर पानी भरकर तमाम दवाइयों का काढ़ा करे। पोटली भी उसी में डाल दे। जब ख़ूब उबल जायँ और चौथाई पानी रह जाय, तो कपड़े में छानकर पानी को लेवे और पोटली में से आँवले निकालकर उनकी गुठली निकाले और मज़बूत कपड़े में आँवला को अच्छी तरह छाने, जिससे उनका रेशा निकल जाय। आँवले का यह गूदा २४ तोला ख़ालिस तिल के तेल में मंदी मंदी आँच से ख़ूब भूना जाय। उसके बाद २४ तोला घी डालकर फिर भूना जाय, फिर ५ सेर चीनी की चाशनी क्वाथ में करके भूना हुआ आँवलों का गूदा उसमें डालकर मंदी-मंदी आँच से पकावे। इतना पकावे कि उसमें से घी और तेल छूट पड़े। फिर उसमें सोलह तोला वंशलोचन, आठ तोला छोटी पीपल, आठ तोला तज, एक तोला तमालपत्र, एक तोला इलायची, एक तोला नागकेसर, बारीक कपड़-छन करके मिला दे। और दूसरे दिन ठंडा होने पर चौबीस तोला पुराना शहद मिलाकर घी के चिकने बर्तन में या काँच के बर्तन में भरकर रक्खे।

कहा जाता है कि अश्विनीकुमार-नामक दो स्वर्गस्थ वैद्यों ने इस औषध को सेवन कराकर अत्यंत वृद्ध और जर्जरीभूत हुए च्यवन ऋषि को फिर से नवयौवन प्राप्त कराया था, जिससे यह औषध "च्यवनप्राशावलेह" नाम से प्रसिद्ध हुई।

च्यवनप्राश सेवन की सामान्य विधि

(१) जिसके शरीर में किसी प्रकार का रोग न हो, परंतु शरीर की आरोग्यता स्थिर बनी रहे, इस इच्छा से जिसे सेवन करना हो, उसे अपनी प्रकृति के अनुसार सुबह-शाम आधा तोला

से चार तोला तक औषध खाकर ऊपर से यथाशक्ति जल या गाय का दूध पी लेना चाहिए। और प्रकृति के ही अनुसार दूध-चावल का हलका आहार करना चाहिए। व्यावहारिक जीवन में कार्यों की अधिकता कम करके शांतिमय जीवन व्यतीत करे। इस प्रकार एक-दो वर्ष तक इस औषध के सेवन करते रहने से उसके अंदर दीर्घजीवनप्रद तत्त्वों का शरीर में संचय होता है और रस, रक्त, वीर्य आदि में उत्पन्न हुए दोष दूर हो जाते हैं। मल-मूत्र की प्रवृत्ति यथा-योग्य हो जाती है। रस, रक्त आदि धातुओं के शुद्ध रहने से शरीर स्वस्थ रहता है, स्मरण-शक्ति बढ़ती है, शरीर की कांति तथा वर्ण सुंदर होता है, शरीर और इंद्रियों का बल बढ़ता है। वीर्य शुद्ध और अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है। वीर्य गंभीर बनता है। वृद्धावस्था एक-दम अपना असर नहीं जमा सकती, और जीवन-डोरी अवश्य लंबी हो जाती है।

(२) जिन कारणों से आजकल के नौजवानों में धातुक्षय का रोग उत्पन्न होता है—और जो सैकड़ों पेटेंट दवाइयों में पैसे को पानी की तरह बहाकर भी नीरोग नहीं बन सकते हैं—उस रोग पर यह अवलेह बहुत अच्छा लाभ करता है। ऐसे रोगियों की प्रकृति यदि ऐसी विलक्षण हो कि ठंडी या गर्म औषध माफ़िक़ न आती हो, तो भी यह अवलेह उनके लिये बहुत ही लाभकारी है। रोज़ सुबह-शाम एक तोले से चार तोले तक यथाशक्ति औषध खाकर ऊपर से गाय का दूध पी लेना चाहिए। ख़ुराक सिर्फ़ दूध-चावल की ही रक्खे। इस प्रकार एकाध वर्ष तक सेवन करते रहने से बहुत दिन की पैदा हुई धातु-क्षीणता दूर होती है और वीर्य पुष्ट हो जाता है। इस प्रयोग में श्रम, प्रवास, काम-काज की प्रवृत्ति आदि बहुत कम कर देनी चाहिए।

(३) आँवले में ज्वर दूर करने का विचित्र गुण है। तीव्र ज्वर होने के पीछे ज्वर का कुछ असर शरीर में रह जाता है अथवा किसी दूसरे रोग से रक्त में गर्मी बढ़ने से चमड़ी के ऊपर ख़ुश्की रह जाती है—जिसे जीर्णज्वर कहते हैं—इसके लिये च्यवनप्राश एक से दो तोला तक, गिलोय का सत ४ रत्ती और स्वर्ण वसंतमालती एक रत्ती साथ मिलाकर देने से इच्छानुसार फल मिलता है।

(४) मंदाग्नि-रोग में वैद्य लोग प्राय शंखवटी, गंधकवटी आदि औषध अधिकतर दिया करते हैं। परंतु अनुभव से प्रतीत हुआ है कि ऐसे रोग यदि बहुत पुराने हो गए हों, तो क्षार मिली हुई दवाइयाँ इसमें नुकसान करती हैं।

इन कठोर औषधियों से अँतड़ी की स्थिति उलटी बिगड़ जाती है। ऐसी अवस्था में प्रति सप्ताह एकाध बार सोंठ के काढ़े में एरंडी का तेल मिलाकर देना चाहिए, जिससे अँतड़ियों में इकट्ठा हुआ चिकना मल निकल जाय। और औषध की जगह द्राक्षासव और च्यवनप्राश का सेवन करना चाहिए। सोते समय त्रिफला की फंकी लेनी चाहिए। ख़ुराक सिर्फ़ दूध-भात लेनी या सिर्फ़ दूध। प्रति दूसरे-तीसरे दिन एक उपवास भी करना चाहिए। ऐसा करने से मंदाग्नि का असाध्य रोग भी आराम होगा।

(५) अजीर्ण और अम्लपित्त का रोग जो बहुत पुराना होने के कारण जड से आराम ही न होता हो, तो ऐसे रोगियों को भी यदि उपर्युक्त विधि से द्राक्षासव और च्यवनप्राश सेवन कराया जायगा, तो २-३ महीने में अत्यंत पुराना और हठीला रोग भी आराम होगा। साथ ही पुरानी कब्ज़ की बीमारी भी दूर होगी।

(६) संग्रहणी के रोग मे च्यवनप्राश हुक्मी दवा है। च्यवनप्राश से दस्त घट होते है, सिर्फ़ यही बात नहीं है, परंतु अँतडी और शरीर मे नवीन रक्त का भी संचार होता है। परंतु यह ज़रूरी बात है कि जब तक यह प्रयोग चलता रहे, तब तक दूध, छाछ अथवा दूध-भात इन्हीं वस्तुओं में से किसी एक का साधन करना चाहिए।

(७) पुराने कमलवाय में और पांडुरोग में च्यवनप्राश को लोह-भस्म के साथ सेवन करने से अपूर्व लाभ होता है। इसके सिवा ख़ूनी बवासीर में च्यवनप्राश, लोह-भस्म और गधक-रसायन के साथ देने से जादू का असर होता है।

(८) क्षय, खाँसी और दम के रोग में सब ख़ुराकों को छोडकर दूध और च्यवन-प्राश पर ही गुज़ारा करे, तो हमें भरोसा है कि जो रोगी बचने की आशा त्याग चुके है, उन्हें भी आराम होगा।

(९) खुजली, दाद, फोडे-फुंसी इत्यादि चमडी के रोगो में वायविडग का चूर्ण (६ माशे से एक तोला तक) च्यवनप्राश के साथ खाने से उत्तम परिणाम मिलेगा।

(१०) वासावलेह और च्यवनप्राश बराबर लेकर उसमें प्रतिबार एक-दो रत्ती लोह-भस्म मिलाकर खाने से रक्त-पित्त का कष्ट-साध्य रोग आराम होता है।

(११) प्रदर और प्रमेह के रोग मे च्यवनप्राश और चंद्रप्रभावटी का देर तक सेवन करने और दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य का सेवन करने से इच्छित परिणाम मिलता है।

इसके सिवा आँवले से और भी कई प्रकार की दवाइयाँ बनती है, जिनमें से कुछ प्रयोग नीचे लिखे गए हैं—

१ आँवले की रसायन—ताज़े सूखे हुए आँवलों को कपड़छन चूर्ण करके उसे ताज़े आँवलो के रस में भिगो दे और छाँह में सुखावे। सूखने पर फिर भिगोकर सुखावे। इस तरह १०० बार भिगोवे और सुखावे, फिर अच्छी तरह सुखाकर शीशी में भरकर रख दे। यह चूर्ण ३ माशे से ६ माशे तक गाय के दूध के साथ पीने से धातु पुष्ट और पित्त की शाति होती है।

२ आमलकी स्वरस—आँवले का रस दो तोला, हल्दी का चूर्ण तीन माशे, शहद एक तोला मिलाकर देने से सब प्रकार का प्रमेह आराम होता है।

३ धात्रीलोह—अच्छे ताज़े सूखे आँवलों का चूर्ण आठ तोला, लोह-भस्म ४ तोला, मुलहठी दो तोला, इन सबको बारीक कूटकर सात बार हरे आँवलो के रस की और सात बार गिलोय के रस की भावना दे। इस चूर्ण को एक माशे से तीन माशे तक मात्रा देने से पाडु,

कमलवाय, अजीर्ण और अम्लपित्त को लाभ होता है। भोजन के बीच में इसकी एक ख़ुराक लेने से कब्ज़ नहीं होता तथा ख़ुराक पचते समय खट्टी डकार आना आदि शिकायतें दूर होती हैं। भोजन के अंत में लेने से परिणामशूल आराम होता है।

४ कल्याण गुड—ताजा आँवलों का रस १६२ तोला लेकर उसमे २०० तोला गुड तथा पीपलामूल, ज़ीरा, बच, सोंठ, काली मिरच, पीपल, अजमोद, वायविडंग, सेंधा नमक, त्रिफला, अजमोद, चित्रक की जड, प्रत्येक दो-दो तोला लेकर चूर्ण करके मिला दे तथा ३२ तोला निसोत का चूर्ण और ३२ तोला तिल का तेल मिलाकर मंदी आँच से पकावे। जब तैयार हो जाय, तब उसमे तज, तमाल-पत्र और इलायची प्रत्येक एक-एक तोला चूर्णकर मिलाकर काँच के पात्र मे धरे। यह औषध प्रतिदिन प्रातः-साय एक से चार तोला खाय। इससे सर्व प्रकार की संग्रहणी, पुरानी मरोड और बद्धकोष्ठ आराम होगा।

५ धात्र्यासव—पके हुए ताजे आँवले २००० का रस निकाले। उस रस के वज़न से आठवाँ भाग शहद, २०० तोला खाँड, आठ तोला पीपल का चूर्ण मिला सबको मिट्टी के चिकने बर्तन में भरकर उसका मुँह बंदकर जौ या गेहूँ के ढेर में २१ दिन रखकर पीछे छान लें। ज्यो-ज्यो यह दवा पुरानी होगी, त्यो-त्यो गुणकारी होगी। दोनो समय २ से ४ तोला तक लेने से कमलवाय, पाडु, वात-रक्त, विपमज्वर आदि रोग दूर होते हैं।

६ बृहद्धात्री घृत—आँवले का रस, विदारीकंद, शतावर का रस, भूमिकूष्मांड का रस, गाय का दूध और घी, प्रत्येक ६४-६४ तोला और काँस, डाभ, काला गन्ना, ख़स, सरकंडा, प्रत्येक की जड १६-१६ तोला कूटकर ८ सेर पानी मे पकावे। ६४ तोला पानी शेष रहे, तब इसे छानकर उपर्युक्त रस और दूध तथा घृत भी इसमे मिला दे। मंदाग्नि से पचावे। जब घी शेष रहे, तब छान ले। इसमें मुलहठी, निसोत, जवाखार, विधारा, प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोला, मिश्री और शहद प्रत्येक ३२ तोला मिला दे। एक तोला इसमे से खाकर ऊपर से यह काढा पीवे। अशोक की छाल, गिलोय, अडूसे के पत्ते, दारुहल्दी, नागरमोथा और रसोत प्रत्येक तीन माशे। इससे स्त्रियो के विविध प्रदर आराम होगे और क्षीण शरीर पुष्ट होगा।

७ बवासीर पर महौषध—गाय का मक्खन २० तोला लेकर लोहे की कडाही मे डालकर चूल्हे पर चढ़ाकर मंदी आँच से पकाना। जब झाग बंद हो जाय, तब सूखे आँवलो का चूर्ण दो तोला डालकर लोहे की कलछी से चला-चलाकर थोडा भून ले। जब थोडा भुन जाय, तब बड की कोपल की लुगदी उसमें डालकर भूने। जब अच्छी तरह सिक जाय, तब कडाही को धरती पर उतारकर २४ घंटे पडी रहने दे। फिर उसे नीम के डंडे से ख़ूब घोटे। यह दवा सुबह-शाम एक तोला सेवन करे और ख़ुराक मे सिर्फ़ दूध-भात ही सेवन करे। इस प्रकार कुछ दिन सेवन करने से बवासीर की समस्त पीडा और गिरता हुआ ख़ून बंद हो जाता और बवासीर का मस्सा भी सूख जाता है।

आँवले का तेल

ताज़े आँवलों का रस एक सेर, तिल का तेल ५ सेर कलई के बर्तन में चूल्हे पर चढ़ावे। उसमें खस, नागरमोथा, चंदन, कपूर, कचरी, गुलाब के फूल प्रत्येक ५ तोला, कचूर, तमालपत्र, ब्राह्मी, तज, प्रत्येक २॥ तोला लेकर बारीक पीसकर पानी के साथ चटनी-सी बना ले और तेल में मिला दे। फिर २० तोले काले भँगरे की लुगदी बनाकर डाल दे। मंदाग्नि से पकावे, जब रस जल जाय, सिर्फ तेल-मात्र रह जाय, उतारकर ठंडा कर ले। फिर छानकर ६ माशे कपूर मिलाकर शीशी में भर ले। यह तेल सिर में लगाने के लिये सर्वोत्तम वस्तु है। इससे सिर-दर्द, मग़ज़ की गर्मी, बालों की जड़ की कमज़ोरी दूर होती है। बाल काले, चिकने और मज़बूत होते हैं।

प्रकरण ५

चौलमोगरा

ये एक प्रकार के वृक्ष के फल हैं। इसका वृक्ष न अत्यंत मोटा और न अत्यंत छोटा, मध्यम कद का होता है। इसका रंग कुछ हरा होता है। इस वृक्ष की मोटी डालियों में मज-बूत और गोलाकार फल उत्पन्न होते हैं। ये फल देखने में बादाम के फलों के समान होते और असोज या कार्त्तिक के महीने में पकते हैं। इनके बीज इतने कोमल होते हैं कि उनकी मींगी से हाथ के दबाव से ही तेल निकल आता है। इनका स्वाद और गंध अप्रिय नहीं होता, फिर भी कोई पशु-पक्षी इन्हें नहीं खाता।

ये वृक्ष हिमालय के नीचे के प्रदेशों में जैसे सिकिम, चटगाँव, तिनासरीम, रंगून आदि की तरफ़ बहुत होते हैं। चटग्राम की तरफ से ये फल कलकत्ते के बाज़ार में बिकने के लिये मनों की तादाद में आते हैं। उनमें पक्के फलों में कच्चे भी मिले होते हैं। पक्के फलों के अंदर की मींगी का रंग बादाम के छिलके से मिलता-जुलता है। कच्चे फलों की मींगी का रंग काला होता है, और तेल भी उनमें कुछ कम होता है। जो तेल निकलता है, वह अशुद्ध भी होता है। कलकत्ते में ये फल नवंबर, दिसंबर के महीने में आते हैं। चटगाँव के बाज़ार में इनका भाव ३-४ रुपए मन रहता है, पर कलकत्ते के बाज़ार में ६) से ६) रु० मन तक बिकते हैं।

इसमें से तेल निकालने के लिये फलों को तोड़कर मींगी को अलग कर लेते हैं और उसे धूप में सुखाकर अधकुटी करके केनविस की थैलियों में भरकर अरंडी के तेल की तरह साँचों में दबाकर तेल निकाल लेते हैं। परंतु इस तरह तेल निकालने से उसमें कुछ कचरा आ जाता है और बिलकुल शुद्ध तेल नहीं निकलता, फिर भी प्रथम जो तेल निकलता है, वह मैल-रहित, उजला, स्वच्छ और सूखी घास के समान रँगवाला होता है, और पीछे का तेल मटमैला होता है। ४-५ मन बीजों में एक मन तेल निकलता है, और कलकत्ते के बाज़ार में इस तेल का भाव लगभग ६०) रु० मन होता है।

यह तेल चमड़ी के रोगों पर रामबाण है। यदि इसका विधि-पूर्वक उपयोग किया जाय, तो निश्चय कोढ़ को आराम कर देता है। हमें इस वस्तु का बहुत बड़ा अनुभव है। इस तेल को पीने और चुपड़ने, इन दो रीतियों से उपयोग होता है। साधारण खुजली से लेकर अनेक प्रकार के कोढ़-सहित समस्त रोग इससे जड़-मूल से नष्ट होते हैं। उपदंश, आतशक गर्मी की यह महौषधि है।

यह तेल सन् १८५६ में पहलेपहल योरप के डॉक्टरों की दृष्टि में आया।

वोटानिकल-शास्त्र मे इसे Gyno-cardia Odorata-नामक वृक्ष की पैदायश कहा गया था, वैसा ही अब तक माना जाता था। परंतु जो डिम्प्रिज-नामक एक फ्रेंच फार्मासिस्ट ने हाल में साबित किया है कि चौलमोगरा का वृक्ष जीनो कारडिया आडोरेटा से भिन्न वृक्ष है। सन् १८६६में उसने खोज की कि चौलमोगरा के नाम से जो बीज योरप में आते है, वे जीनो कारडिया के नही हैं। इस पर इस सबध मे निर्णय करने को लेफ्टिनेंट कर्नल डी० प्रेन से कहा गया और उन्होने खोज करके पता लगाया कि कलकत्ते के बाज़ार मे जो बीज 'चौलमोगरा' के नाम से बेचे जाते हैं, वे 'जीनो कारडिया' के नहीं है। परंतु सन् १८६० में सर जार्ज किंग ने प्रकट किया कि ये बीज 'टारकटो जेनस' कुरम्मी जाति के है। इन दोनो बीजो को सरलता से पहचान लिया जा सकता है। क्योंकि 'टारकटो जेनस' के बीजों से 'जीनो कारडिया' के बीज कुछ नन्हें होते हैं। साथ ही 'जीनो कारडिया' के बीज का छिलका ज्यादा मोटा, कडा और एक तरफ़ किनारीदार होता और मींग का रंग फीका-पीला होता है। पर 'टारकटो जेनस' के बीज का किनारा सपाट और मीग का रग कालौंस लिए होता है।

कुछ वर्ष वाद एक प्रधान अँगरेज़ डॉक्टर ने अनेक रोगियों पर इसकी परीक्षा करके प्रकट किया कि क्षय की खाँसी और कंठमाला के रोग के लिये भी यह तेल अत्यंत उपयोगी है। इस प्रकार इस औषध का विशेष उपयोग मालूम होने पर स० १८६८ मे इस देश के अँगरेजी डॉक्टरो ने सरकारी फ़ार्माकोपिया में उसे दाखिल कर लिया और इस प्रकार उसके गुण-दोष लिखे गए—

कोढ़, वात-रक्त, कंठमाला और चमडी के सब रोग और वायु के रोगों पर इसका उपयोग करना। इस समय इसकी मात्रा इस प्रकार स्थिर की गई कि यदि इसके बीज का चूर्ण ही काम में लाना हो, तो सुबह-शाम, और दुपहर इस प्रकार दिन-भर में तीन बार २ रत्ती प्रमाण पानी के साथ लेना। और जो तेल लेना हो, तो प्रतिवार ५ से ६ बूँद लेना, इसी तरह दिन मे तीन बार यह औषध आज कल विस्तृत रीति से तमाम योरप में प्रचलित हो गई है। और दिन-प्रति-दिन इसके अमूल्य गुणों की कदर होती जा रही है। डॉक्टरों ने चमडी के लिये इसके सयोग से अनेक प्रकार के मलहम तैयार किए हैं।

यद्यपि यह दवा चमडी और रक्त-विकार के लिये ऐसी चमत्कारिक नहीं है, फिर भी इसमे एक बडा भारी दोष है कि यह पचने में अत्यंत भारी है। इसलिये मंदाग्नि के रोगियों को यह दवा बहुत ही विचार-पूर्वक देनी उचित हैं। ऐसे रोगियो को प्रथम एक-दो बूँद से शुरू करनी चाहिए। पीछे धीरे-धीरे बढाते जाना चाहिए। अच्छी तंदुरुस्तीवाले को प्रारंभ में ५-६ बूँद देकर फिर बीस-पचीस बूँद तक बढा देना चाहिए। यह दवा ख़ाली पेट नहीं देनी चाहिए, बल्कि भोजन के आध घंटे पीछे देना चाहिए। इससे यह अच्छी तरह हज़म हो जायगी। इसी तरह यह तेल सादा या अन्य रक्त-शोधक दवाइयो में मिलाकर मलहम के तौर पर मालिश

करने के काम में लानी चाहिए। इससे असाध्य कोढ़ के रोगी भी आराम होंगे, और हुए हैं। कोढ़ की शुरुआत में इसका उपयोग करने से रोग के लक्षण आगे न बढ़कर प्रतिदिन कम होते जाते हैं। खुजली, दाद आदि रोगों की बात कुछ कहनी ही नहीं।

एक बंगाली वैद्यराज का अनुभव है कि सुहागे के फूले के साथ इस तेल को मिलाकर मलने से दाद तत्काल आराम होता है।

पेरिस की कैमिकल सोसाइटी और इँगलैंड की ब्रिटिश फार्मास्युटिकल कान्फ्रेंस के मेंबर और लंदन की F I S E L A. डिग्री प्राप्त डॉक्टर नाडकर्णी होव अपने "इंडियन प्लंट्स ऐंड ड्रग्स"-नामक ग्रंथ में लिखते हैं—

चौलमोगरा तेल कोढ़-रोग के लिये हिंदोस्तान में एक प्रतिष्ठित वस्तु है। यह अत्यंत लाभकारी स्थिति में कंठमाला और चमड़ी के रोगों तथा पुराने संधिवात के रोगों में काम आती है।

यह तेल दूध या काडलिवर आइल के साथ लेना चाहिए या कैप स्यूल में रखकर देना चाहिए। जब तक यह दवा सेवन की जाय, तब तक नमक, मिर्च, गर्म मसाला, खटाई आदि ख़ुराक बिलकुल बंद करनी चाहिए। घी-मक्खन ख़ूब खाना चाहिए। खाँड, मिश्री, गुड़ अथवा इनसे बनी चीज़ें न खाय। यह तेल क्षय-रोग पर भी विजयिनी शक्ति रखता है। पीना और छाती पर मालिश करना चाहिए। दाद पर इसकी मालिश एक महीना करने से दाद जड़ से नष्ट हो जाता है।

आजकल इँगलैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि के डॉक्टरों ने खाज, चकत्ता, गर्मी, बद, कंठमाला, नासूर, दाद आदि रोगों को नष्ट करनेवाली चीज़ें इस तेल से मिलाकर खाने और लगाने की अनेक-अनेक पेटेंट दवाइयाँ तैयार की हैं और उन्हें स्पेसिफिक मेडीसन के नाम से खपाकर लाखों रुपए कमा रहे हैं। खेद है, वैद्य लोग इस अद्भुत वस्तु से बिलकुल अज्ञान हैं।

चौलमोगरा का तेल हिंदोस्तान के सभी बड़े शहरों में अँगरेज़ी दवा बेचनेवालों के यहाँ मिल सकता है। इस तेल में कितने ही अप्रतिष्ठित व्यापारी दूसरे घटिया तेल मिला देते हैं, इसलिये ख़याल रखना चाहिए कि तेल ख़ालिस लिया जाय।

प्रकरण ८

तुलसी

गुण

तुलसी चरपरी, कड़वी, अग्निप्रदीपक, हृदय को हितकारी, गर्म, वात तथा पित्त को करनेवाली और कुष्ट, मूत्रकृच्छ्र, रक्त-विकार, पसली की पीड़ा, कफ तथा वात को नष्ट करती है। सफ़ेद और काली तुलसी दोनो गुणो में समान है।

विवरण

तुलसी सर्वमान्य और सर्वपूज्य वनस्पति होने से सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसलिये अधिक विवरण व्यर्थ है। आयुर्वेद मे इस वनस्पति को पाँच प्रकार का बताया है, तो भी सफ़ेद और काली तुलसी ये दो प्रकार की मुख्य हैं, और ये हरएक स्थान पर मिल सकती है।

उपयोग

पवित्र वस्तु वही कही जा सकती है, जो स्वच्छ हो, और कोई विकार न करे। तुलसी भी ऐसे ही गुणवाली है, जो सैकडों रोगो को दूर करती है, और इसीलिये वह हरएक स्थान पर पूजनीय और स्तुति-पात्र हो गई है। यद्यपि तुलसी में अनेक रोगो को दूर करने की शक्ति है, तो भी उसमें मुख्य गुण वायु को शुद्ध करने का है। पद्मोत्तरखंड मे लिखा है—

तुलसी गंधमादाय यत्र गच्छति मारुत ; दिशोदशपुनात्याशु भूतग्रामाश्चतुर्विधान्।

अर्थ—तुलसी की सुगंधि-युक्त वायु जहाँ-जहाँ जाती है, वहाँ की वायु तत्काल शुद्ध होती है।

अगस्त्यसंहिता में लिखा है कि—

तुलसी विपिनस्यापि समन्तात्पावन स्थल क्रोशमात्र भवत्येव. ।

अर्थ—तुलसी की वायु से चारो दिशाओं में दो-दो मील तक की वायु शुद्ध होती है।

पद्मोत्तरपुराण में और भी लिखा है कि—

तुलसी काननं चैव गृहे यस्यावतिष्ठते ; तद् गृह तीर्थभूत इह नायान्ति यमकिंकराः।

अर्थ—जिसके घर के द्वार पर तुलसी का बग़ीचा रहता है, वह घर तीर्थ के समान पवित्र है। इससे वहाँ पर यमदूत अथवा तरह-तरह की प्राणनाशक व्याधियाँ नहीं आ सकती।

ऊपर लिखी बातों से यह सार निकलता है कि तुलसी में अनेक प्रकार के रोगो को उत्पन्न करनेवाले विषैले जन्तुओ को नष्ट करने की शक्ति है, और इसीलिये उसके संसर्ग में रहने से अकालमृत्यु के पंजे से बचाव रहता है।

यह तो भले प्रकार अनुभव में आया हुआ है कि तुलसी का रस शरीर पर चुपड़ लेने

से मच्छर नहीं काटते। पास न आकर दूर से ही भाग जाते हैं, और इससे मलेरिया का ज्वर, जो मच्छरों के विष से हो जाता है, होने का डर नहीं रहता। यदि मकान के चारों ओर तुलसी के वृक्ष हों तो उसकी गंध से मच्छर वहाँ आ भी नहीं सकते हैं। बंबई के विक्टोरिया गार्डन में मलेरिया को दूर करने के लिये काली तुलसी बहुतायत से बुवाई गई थी, और उसका परिणाम भी बहुत अच्छा हुआ, जिसकी साक्षी सर जार्ज वर्डवुड ने उस समय दी थी।

सन् १७०७ में 'इंपीरियल मलेरिया कान्फ्रेंस' हुई थी, उसका भी यही निर्णय हुआ था कि काली तुलसी से मलेरिया के उपद्रव दूर होते हैं।

लंदन के इंपीरियल इन्स्टीट्यूट के डॉक्टर मोल्डिंग तथा डॉ० पोलोना का अभिप्राय भी ऐसा ही है कि तुलसी के पत्तों में एक प्रकार का तेल है, जो वायु द्वारा हवा में संचार करता है, जिससे हवा शुद्ध होती और अनेक प्रकार के ज्वर के कीटाणुओं को नष्ट करती है।

डॉ० मेजर लोरीमस ने बहुत वर्षों के अनुभव से यह सिद्ध किया है कि तुलसी के पत्तों से जो सुगंध निकलती है, उससे मच्छर मर जाते हैं।

यह तो शास्त्र, पुराणों और विदेशी विद्वानों के अभिप्राय की बात हुई, परंतु अब अपने वैद्यक ग्रंथों को देखिए। शार्ङ्गधर में लिखा है कि—

पीतो मारिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः ; द्रोणपुष्परसोऽप्येवं निहन्ति विषमज्वरम्।

तुलसी के पत्तों का रस एक तोला लेकर उसमें काली मिरचों का चूर्ण एक माशा मिलाकर पीने से विषमज्वर दूर होता है।

बारी के और चौथिया ज्वरों पर इस प्रयोग का अनुभव सिद्ध है, और वह इस प्रकार है कि ज्वर होने की बारी जिस दिन हो, उस दिन प्रातःकाल ऊपर-लिखे अनुसार औषध देकर ठंडे जल में अच्छी तरह स्नान करावे, और भोजन में आध सेर दही और चावल दे। इससे उसी दिन ज्वर आना बंद हो जायगा और जो आएगा, तो बड़े जोर से आएगा, जिससे शरीर के पिछले भाग में से इकट्ठा हुआ ज्वर का जहर निकल जायगा। यदि दूसरे, तीसरे और चौथे दिन ज्वर आता हो, तो चार दिन तक यही प्रयोग जारी रखना चाहिए। बारी अवश्य छूट जायगी।

इसके अलावा तुलसी में 'थायमल'-नामक औषधि-द्रव्य होने से इसका उपयोग त्वचा के रोगों पर भी बहुत लाभकारी होता है।

इसके पचांग का चूर्ण करके नीबू के रस में मिलाकर लगाने से दाद, खुजली आदि दूर हो जाते हैं। इसके चूर्ण को आतशक के जख्म पर बुरकने से उसके कीड़े मर जाते हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत अथर्ववेद में तो यहाँ तक कहा है—

काली तुलसी रूप को बढ़ाती है, अर्थात् शरीर कुरूप हो गया हो, तो यह औषध उसे रूपवान् बनाती है।

शरीर पर सफ़ेद कोढ़, मकड़ी का फलना आदि के जो घाव हो जाते हैं तथा दूसरे त्वचा-रोगों के लिये यह उत्तम औषध है, ऐसा अथर्ववेद के मंत्रों में लिखा है।

कोढ़ और सफ़ेद कोढ़ महारोग जो त्वचा को छोड़कर मांस, हड्डी तक पहुँच गए हों, वे भी सफ़ेद तुलसी से अच्छे हो जाते हैं।

कोढ़, सफेद कोढ़-जैसे महान् रोगों को अच्छा करने के लिये पश्चिमी वैद्य अभी तक शंका में हैं। उसे यह औषध सफ़ेद या काली तुलसी-जैसी सस्ती वनस्पति अच्छा कर देती है, यह क्या प्रकृति के उपकार की बात नहीं है। तुलसी में नर और मादा ये दो जाति होती हैं, उनमें से स्त्री-जाति की पुरुषों के रोगों पर, और पुरुष-जाति की स्त्रियों के रोगों पर काम में लाई जाती है। एक रोगी जिसकी उँगली गल गई थी, उसका चेहरा अत्यंत विपमय हो गया था, उसे एक संन्यासी ने एक वर्ष तक तुलसी का सेवन कराकर आरोग्य किया था।

दूसरा तुलसी में एक गुण और है कि चाय के बदले में इसके पत्तों को पानी में उबालकर उसमें दूध और शक्कर मिलाकर पीने से थकान-सुस्ती आदि दूर होकर फुर्ती आ जाती है। तुलसी में विषघ्न गुण भी होने से सर्पदंश पर इसका उपयोग बहुत अच्छी तरह होता है। साँप के काटने पर तुरंत एक-दो मुट्ठी तुलसी के पत्ते खा लो, और तुलसी की जड़ मक्खन में घिसकर दंश की हुई जगह पर लगा दो। इससे ज़हर बाहर निकल पड़ेगा। इस लेप का रंग आरंभ में सफ़ेद होता है, परंतु ज्यों-ज्यों इसमें विष मिलता जाता है, इसका रंग काला पड़ता जाता है। जब लेप का रंग काला हो जाय, तो दूसरा लेप कर देना चाहिए। इस प्रकार ज्यों-ज्यों लेप का रंग काला पड़ता जाय, लेप बदलते रहना चाहिए। इससे ज़हर उतर जाता है।

तुलसी में कृमिघ्न गुण भी है, यह बात ऊपर बताई जा चुकी है। इसकी जड़ पानी में घिसकर स्नायु-रोग पर उपयोग करे, अर्थात् नहरू के मुँह और सूजन पर लेप करे, तो थोड़ी ही देर में दो-तीन इंच लंबा नहरू बाहर निकल आता है। बाहर निकले नहरू को बाँधकर फिर उसी प्रकार लेप करे, तो दो-तीन दिन में ही सारा नहरू बाहर निकल आएगा, सूजन और तकलीफ़ कम हो जायगी। बाद में दो-तीन दिन तक बराबर लेप करते रहने पर रोग बिलकुल निर्मूल हो जाता है। निघंटुरत्नाकर में लिखा है कि इसके रस में आध माशा इलायची का चूर्ण मिलाकर पीने से सब प्रकार की उल्टी शांत हो जाती है। सिर-दर्द में लेप करने से दर्द आराम हो जाता है।

तुलसी में चमड़ी को सुंदर बनाने का भी गुण है, यह ऊपर बताया जा चुका है। इसलिये शरीर के ऊपर सफ़ेद दागों को दूर करने की शक्ति है। मुँह पर कील, मुँहासे, धब्बे आदि भी इससे दूर होते हैं। इस विषय में बंगाल के प्रसिद्ध कविराज श्री रामचंद्र विद्याविनोद लिखते हैं—

"ताँबे के बर्तन में एक दिन तक नीबू का रस भर रक्खे, फिर उसमें तुलसी के पत्तों का रस तथा काली कसौंदी का रस नीबू के रस के बराबर मिलाकर धूप में रक्खे, गाढ़ा होने पर मुँह पर लगावे, तो मुँह के काले-काले धब्बे दूर होते हैं।"

तुलसी में कफ, खाँसी और श्वास को दूर करने का अपूर्व गुण है। इसके कई प्रयोग हैं, एक

खास प्रयोग इस प्रकार है—नागर बेल के पान (कच्चे), काली तुलसी के पत्ते, लौंग और थोड़ा-सा कपूर। सबको मिलाकर दिन में दो-तीन बार खाने से श्वास-नली में रुका हुआ कफ निकल जाता है, और श्वास, खाँसी की पीड़ा कम होकर आराम मिलता है।

कासारि चूर्ण—मुलहठी, भोंफली की जड़, अडूसे की पत्ती, तुलसी के पत्ते और बुड़वच, सब एक-एक भाग, आक के फूल और छोटी पीपल आधा-आधा भाग। सबका चूर्ण करो। बड़े आदमी को देखकर एक माशे से दो माशे तक और बालक को उसकी आयु के अनुसार देनी चाहिए। इससे सब प्रकार की खाँसी दूर होती है। उसमें भी पसली का चलना, दूध फेंकना, उल्टी होना आदि और बालकों की खाँसी सब दूर हो जाते हैं।

तुलसी में भूत-बाधा, हिस्टीरिया, मूर्च्छा, धनुर्वात आदि वायु के रोगों को दूर करने की भी शक्ति है, और इसलिये ऐसे रोगों पर प्रयोग करने के लिये बहुत-सी दवाइयाँ तुलसी के रस के अनुपान से दी जाती हैं। इतना ही नहीं, बल्कि इसे अकेले भी प्रयोग में लाते हैं।

भूत-प्रेतविनाशक अंजन—साँप की काँचली की राख, हींग, मैनसिल (शुद्ध), हिंगुल, सिरस के बीज, छोटी पीपल, काली मिर्च सब बराबर लेकर चूर्ण करके, लहसन के रस में खरल करके गोली बनावे। यह गोली तुलसी के रस में घिसकर आँखों में लगाने से त्रिदोष, हिस्टीरिया, मूर्च्छा, बाई, भूत-बाधा, धनुर्वात आदि रोग दूर होते हैं।

वायु-विनाशक चूर्ण—काली तुलसी ६ भाग, असगंध की जड़ चार भाग, भँगरा ६ भाग, सोंठ, मिर्च, पीपल, प्रत्येक एक-एक भाग उसमें मालकाँगनी दो भाग लेकर चूर्ण करके प्रातः-साय ३ माशे शहद में मिलाकर चाटने से अनेक प्रकार के वायु-रोग दूर होते हैं।

धनुर्वात के लिये यह औषध शहद के बदले काली तुलसी और लहसुन के रस के साथ देनी चाहिए, और सारे शरीर पर इस रस की मालिश करनी चाहिए, इससे वेदना कम हो जाती है।

इसके अतिरिक्त तुलसी के बीजों में एक और विचित्र गुण देखने में आया है। वह यह है कि इसके सेवन से पतली धातु गाढ़ी होती है। वीर्य की वृद्धि होती है। शरीर में गर्मी और शक्ति बढ़ जाती है, और कफ-वायु से पैदा होनेवाले बहुत-से रोग दूर हो जाते हैं। आजकल की नपुंसक स्थिति में पड़े हुए नौजवान जो कि इस प्रकार की दवाइयों के लिये परेशान हुए फिरते हैं, वे तुलसी के बीज या जड़ का चूर्ण करके उसमें बराबर पुराना गुड़ मिलाकर बेर के समान गोली बनाकर, सुबह-शाम एक-एक गोली धारोष्ण दूध के साथ ले, तो बहुत शक्ति पैदा हो। इस प्रयोग को अधिक दिन तक स्थिर रखने से ताम्र-भस्म खाने से जितना बल शरीर में पैदा होता है, उतना हो जाता है, और अकाल में आई हुई वृद्धावस्था दूर हो जाती है।

इसके उपरांत तुलसी के पत्तों में भी अनेक ऐसे ही उत्तम गुण हैं—

(१) इसके पत्तों से सूखी खाँसी मिटती है। और उनका रस मिलाने से ज़ुकाम मिटता है। (२) खाँसी मिटाने के लिये इसके और अडूसे के पत्तों का रस पिलाना चाहिए। (३)

इसके रस का मर्दन करने से दाद और त्वचा के दूसरे रोग मिटते हैं। (४) पक्वाशय का क्रम बिगड़ने से आमाशय में जो शूल हो जाती है, उसके मिटाने के लिये तुलसी के पत्तों का फॉट पिलाना चाहिए। (५) तुलसी का फॉट पिलाने से बच्चों के यकृत-संबंधी रोग मिटते हैं। (६) नाक से दुर्गंध-युक्त स्राव को मिटाने के लिये तुलसी के सूखे पत्तों का नस्य देना चाहिए। (७) इसके चूर्ण का नस्य देने से पीनस-रोग मिटता है। (८) दूषित जल-वायु और पृथ्वी आदि के कारण से जो ज्वर हो जाता है, उसको मिटाने के लिये उसकी जड़ का क्वाथ पिलाना चाहिए। (९) मूत्र और वीर्य-संबंधी अंगों के रोग मिटाने के लिये इसके बीज में चीनी मिलाके फंकी देनी चाहिए। (१०) बच्चों के पेट की शूल मिटाने के लिये इसके पत्तों के रस में सोंठ बुरकाके पिलाना चाहिए। (११) कान की पीड़ा मिटाने का सबसे उत्तम प्रकार यह है कि इसके पत्तों का रस कान में डालना चाहिए। (१२) बच्चों का मल ढीला करके विरेचन के १-२ वेग कराने के लिये इसके पत्तों का फॉट पिलाना चाहिए। (१३) इसके पुष्प और सोंठ के चूर्ण को प्याज़ के रस और मधु के साथ चाटने से सूखी खाँसी तर हो जाती है। (१४) बच्चों का श्वास मिटाने के लिये इसके ताज़े पत्तों के रस में मधु मिलाकर पिलाना चाहिए। (१५) सर्प का विष उतारने के लिये इसके पत्ते, मंजरी और कोमल जड़ों का रस पिलाना चाहिए। (१६) इसके पत्तों का क्वाथ पिलाने से पसीना होके ज्वर उतर जाता है। (१७) पित्त बढ़ाने के लिये इसके पत्तों का रस पिलाना चाहिए। (१८) ज्वर में घबराहट होती है, वह इसके पत्तों का शर्बत पिलाने से मिट जाती है। (१९) फुफ्फुस में जो प्रमाण से अधिक द्रव हो गया हो, उसको मिटाने के लिये इसके पत्तों का रस पिलाना चाहिए। (२०) इसके पत्ते और काली मिरच की गोली बनाके दाँतों के नीचे दबाए रहने से दंत-पीड़ा मिटती है। (२१) इसके रस और काली मिरच के चूर्ण को घी के साथ चटाने से वात-रोग मिटते हैं। (२२) इसके रस में इलायची दाने का चूर्ण मिलाके चटाने से वात और पित्त की वमन बंद होती है। (२३) इसके स्वरस में काली मिरच का चूर्ण मिलाकर चटाने से ज्वर और विषमज्वर छूटता है। (२४) इसके सूखे पत्तों को पीसकर उबटना करने से मुख की कांति बढ़ती है। (२५) कान के पीछे की सूजन मिटाने के लिये इसके पत्ते और एरंड की कोंपलों को बराबर ले पीस नमक मिलाकर गुनगुना लेप करना चाहिए। (२६) मुसलमान लेखक बताते हैं कि तुलसी का रस मिश्री मिलाकर पीने से खाँसी दूर हो जाती है। (२७) उसके पत्तों का रस पीने से संधियाँ मज़बूत होती हैं। (२८) चेप रोगवाले रोगी के आस-पास हवा शुद्ध करने के लिये इसके पेड़ दरवाजे में लगा देने चाहिए। (२९) किसी भी ज़ख्म में कीड़े पड़ गए हों, तो इसके रस से मर जाते हैं। (३०) घर में इसके पेड़ लगाने से मच्छर, पिस्सू आदि नहीं आते। (३१) खुजली, दाद आदि चमड़ी के रोगों पर इसका उपयोग बहुत अच्छा होता है। (३२) इसके रस में काली मिरच डालकर पीने से कब्ज़ियत दूर होती है। (३३) इसके बीजों का चूर्ण कब्ज करता है। (३४)

मरोड़ में तुलसी के बीजों को बबूल के गोंद में पानी के साथ देने से विचित्र प्रभाव दिखाता है। मरोड़ के सिवा दूसरे रोगों में अथवा धातु-पुष्टि के लिये बीजों का चूर्ण ज्यादा वक्त न रखें, इसलिये सेवन के लिये थोड़ी हद की फकी लेनी चाहिए। (३५) इसका रस कान में डालने से कान के दर्द को अक्सीर है। (३६) इसकी पत्ती और लहसन का रस और पुराना शहद मिलाकर देने से इन्फ्लुएञ्ज़ा और दूसरे कारणों से उत्पन्न हुई खाँसी में विचित्र लाभ करता है। सिविल सर्जन थोरटन कहते हैं कि इसके पत्ते, डण्डी और जड़ का रस सर्प-दंश में देने से विष उतर जाता है। इसके सिवा पत्तों का रस उत्तेजक तथा पित्त और कफ को निकालनेवाला है। खाँसी में यह बहुत अच्छा काम करता है। और खुजली, दाद आदि चमड़ी के रोगों में शरीर पर लगाने के काम भी आता है।

तुलसी में इस प्रकार के अनेक उत्तम गुण होने से हरएक धर्म में इसका वृक्ष पवित्र माना गया है। हिंदू स्त्री-पुरुष तो इसे एक देवी मानकर प्रतिदिन पूजा करते हैं, पर मुसलमानों में भी एक पवित्र पौधा माना जाता है, जो तुलसी-जैसा ही होता है। ईसा मसीह क्राइस्ट की कबर के ऊपर तुलसी का पेड़ लगा हुआ था, जिससे जान पड़ता है कि प्राचीन ईसाई भी इसे पवित्र मानते थे। इस प्रकार हरएक धर्मों में इसका माहात्म्य होने के कारण इसके पवित्र गुण ही हैं।

वन-तुलसी

वन-तुलसी हिंदुस्थान के सब स्थानों में पैदा होती और बोई जाती है।

इस वृक्ष के सूख जाने पर इसकी सुगंध उत्तम हो जाती है। इसके बीज छोटे, काले कुछ लंबे अर्थात् एक इंच का सोलहवाँ भाग लंबे होते हैं। इनकी एक ओर मेहराब का चिह्न होता है और दूसरी ओर वे चपटे और मोटी नोकवाले होते हैं। इनमें कुछ सुगंध नहीं होती है। परंतु इनका स्वाद तेलिया और कुछ चरपरा होता है। इनको पानी में भिगोने से इन पर चेप का एक प्रकार का ढक्कन बन जाता है। उसके पचांग का अर्क खींचने से कुछ पीला उड़नेवाला और जल से हलका तेल निकलता है। यह पड़ा रहने से जम जाता है और उसकी कलमें जम जाती हैं।

प्रयोग—(१) यह चरपरी, उष्ण, रूक्ष, शीतल, रोचक, दीपन और पाचन में हलकी होती है। (२) इसका स्वाद शीतल, सलोना और चरपरा होता है। (३) इसके बीज चरपराहट मिटानेवाले, उत्तेजक, मूत्र-वर्द्धक और पसीना लानेवाले हैं। (४) इसके चेप में मिश्री डालकर पिलाने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है। (५) वृष के रोगों को मिटाने के लिये इसके बीजों का फाँट पिलाना चाहिए। (६) इसके फाँट में जायफल का चूर्ण बुरका के पिलाने से अतिसार मिटता है। (७) मिश्री और घी में तली हुई सौंफ क चूर्ण की फकी देके ऊपर इसका फाँट पिलाने से आमातिसार मिटता है। (८) बच्चों के दाँत निकलते समय जो अतिसार हो जाता है, उसको मिटाने के लिये इसका फाँट पिलाना चाहिए। (९) बच्चा होने के पीछे की पीड़ा मिटाने के लिये इसके बीजों का हिम पिलाना चाहिए। (१०)

पौने चार माशे से १ तोले तक बीजों की फंकी देने से पुरुषार्थ बढ़ता है। (११) बिच्छू के दंश पर इसके पत्तों का लेप करना चाहिए। (१२) इसके सूखे पत्तों का चूर्ण घाव पर बुरकाने से उसके कीड़े निकल जाते हैं। (१३) इसके पंचांग का क्वाथ पिलाने से पसीना आने लगता है। (१४) शीतज्वर चढ़ने के समय जो ठंड लगती है, उसको मिटाने के लिये इसके पत्ते के रस में सोंठ और काली मिर्च का चूर्ण बुरका के पिलाना चाहिए। (१५) जवान मनुष्य का अतिसार बंद करने के लिये उसको पौने चार माशे से ७॥ माशे तक बीजों की फंकी देनी चाहिए। (१६) बच्चे का अतिसार मिटाने के लिये २-३ रत्ती बीज अनार के शर्बत के साथ पिलाना चाहिए। (१७) इसके धुले हुए बीजों को पीसकर उनकी पुल्टिस बनाकर बिगड़े हुए घावों पर बाँधना चाहिए। (१८) रक्तरोग की अधिकता में अनार शर्बत के साथ इसके बीजों की फंकी देनी चाहिए। (१९) गुदा के भीतर मस्से की पीड़ा मिटाने के लिये इसके बीजों की फंकी देनी चाहिए। (२०) इसके पौने चार माशे बीजों को पाव भर पानी में भिगोकर, उसमें कुछ शक्कर मिलाकर, उन सबको पी जाने से मूत्र और वीर्य संबंधी अंगों के रोग मिटते हैं। जब तक वे नहीं मिटें, तब तक नित्य पीना चाहिए। (२१) इसके बीजों का शर्बत पिलाने से ज्वर में शांति होती है। (२२) मूत्रशुद्धि करने के लिये इसका शर्बत पिलाना चाहिए। (२३) कम सुनना और कान की पीड़ा मिटाने के लिये इसके पत्तों का रस कान में डालना चाहिए। (२४) बच्चों को विरेचन के एक-दो वेग लगाने के लिये इसकी जड़ का क्वाथ पिलाना चाहिए। (२५) इसके पत्तों का स्वाद लौंग-जैसा है। ये बहुधा शाकादि में बघार देने के लिये काम में आते हैं। (२६) इसके बीजों को कभी-कभी पानी में भिगोकर या कहीं-कहीं रोटी में मिलाकर खाते हैं। यह शीतल और बहुत पौष्टिक है।

पहचान

तुलसी की जितनी जातियाँ हैं, उनमें सबसे अधिक सुगंध इसके पत्तों को हाथ में मलने से आती है। ऐसी उत्तम सुगंध और किसी तुलसी के पत्तों में नहीं आती है।

प्रयोग (१)—इसके पत्तों का रस पिलाने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है। (२) इसके पंचांग के क्वाथ का तरड़ा देने से अर्द्धांग और गठिया मिटती है। (३) इसका बफारा देने से भी ये दोनों रोग मिटते हैं। (४) शरीर पुष्ट करने के लिये इसके बीजों की फंकी दी जाती है। (५) पारे से पैदा हुई गठिया को मिटाने के लिये इसके पत्तों के क्वाथ का तरड़ा या इसके पंचांग के क्वाथ का बफारा देना चाहिए। (६) वीर्य पुष्ट करने के लिये इसके पत्तों का क्वाथ पिलाया जाता है। (७) पत्तों के क्वाथ के गंडूष कराने से पारे के दोष से मुख से पानी का गिरना बंद हो जाता है। (८) इसके पत्तों के रस का ललाट और कनपटियों पर लेप करने से मस्तक-पीड़ा मिटती है। (९) स्नायु-संबंधी पीड़ा मिटाने के लिये इसके बीजों की फंकी देनी चाहिए।

प्रकरण ७

ब्राह्मी

विवरण

ब्राह्मी के पौदे अधिकतर तरी के स्थानों में पाए जाते हैं। बंगाल में कलकत्ते के आस-पास के तमाम स्थानों में यह कसरत से पैदा होती है। गुजरात में, सूरत और बड़ौदा के आस-पास मिल सकती है। हरद्वार से बद्रीनारायण की तरफ जाने के रास्तों में तो बहुत ही अधिक होती है।

आर्य-ग्रंथों में इस औषधि की दो किस्में लिखी हैं। ब्राह्मी और मडूकपर्णी—इन दोनो में मुख्य भेद यह है कि ब्राह्मी के पत्ते पतले होने से उनके अग्र भाग गोल होते हैं। परंतु डंठल की तरफ से कुछ-कुछ अंदर को घुसे होते हैं। थूहर के पत्ते का पतले-से-पतला टुकड़ा करने पर जैसा आकार उसका हो जाता है, इसी प्रकार ब्राह्मी का होता है। बारीकी से देखने से इसके पत्तों के ऊपर बहुत छोटे-छोटे चिह्न दिखाई देते हैं। इसकी हरएक गाँठ में से जड़ निकलकर ज़मीन में गई हुई होती है। वसंत-ऋतु से ग्रीष्म-ऋतु तक इस वनस्पति में फूल आते हैं। ये फूल कुछ नीली झलक लिए सफ़ेद होते हैं। ब्राह्मी के पौदे का स्वाद अत्यंत कड़ुआ होता है।

मंडूकपर्णी का पौदा भी ब्राह्मी की तरह से ही भूमि पर छत्ते की तरह उगता है और उसकी भी शाखाओं की हरएक गाँठ में से जड़ निकलकर ज़मीन में घुसी हुई होती है। परंतु इसमें मुख्य बात यह है कि इसके पत्ते ब्राह्मी की अपेक्षा कुछ मोटे और गोल होते हैं। इसके फूलों का रंग भी लाल होता है। इसके भी पौदे का स्वाद कड़ुआ होता है, लेकिन यदि इसके सिर्फ़ पत्तों को खाया जाय, तो एक विचित्र प्रकार की गंध मालूम देती है।

गुण, धर्म, उपयोग

प्राचीन वैद्यों ने इस औषध को पांडुरोग, प्रमेह, रुधिर-विकार, खाँसी, ज्वर, सूजन, स्वरभेद, उन्माद, अपस्मार आदि विविध रोगों को दूर करनेवाली माना है, तो भी आज कल उन्माद, अपस्मार, उपदंश और कंठमाला आदि रोगों में अधिकांश देते हैं। ज्ञान-तंतुओं को पोषण करके, धारणा-शक्ति और स्मरण-शक्ति को बढ़ाना, यह इसका मुख्य गुण होने के कारण हिस्टीरिया, चित्तवृत्ति की अस्थिरता, स्मरण-शक्ति की कमी, उन्माद आदि मस्तिष्क के बहुत प्रकार के रोगों को शांत करती है। उपदंश, कंठमाला और कुष्ठरोग में तो यह पौटास आयोडाइड, संखिया, रसकपूर और सार्सापरिला का काम करती है। श्वास और कफ का नाश करने की इसमें अद्भुत शक्ति है। स्वरभेद की भी उत्तम औषध है।

यह कहा जाता है कि ब्राह्मी के सब गुण उसी तेल-जैसे तत्त्व में है, जो उसकी पत्तियों में रमा हुआ है। यह तत्त्व धूप में उड जाता है, इसलिये ब्राह्मी को तोडने के बाद छाया में ही रखकर सुखाना चाहिए। यदि चूर्ण करना हो, तो भी छाया मे सुखाना चाहिए। ३० सेर हरी पत्तियों के सूखने पर साढ़े तीन सेर सूखा चूर्ण बैठता है। उसका रंग हलका तथा नीला होता है।

उन्माद, अपस्मार और चित्त-वृत्तियों के विकारों मे यद्यपि यह दवा सबसे अच्छा काम करती है, तो भी इसका उपयोग अधिकतर पुराने रोगो पर ही करना चाहिए। क्योंकि रक्त के दौरे में तेजी पैदा करने का गुण इसमें अधिक होने से मस्तिष्क मे रक्त का वेग अधिक बढ जाता है। इसलिये नया रोगी जिसके सिर मे से यथेष्ट रक्त न निकल गया हो, जितना कि निकल जाना चाहिए, उसमे इस रक्त के और अधिक बढ़ जाने से शांति होने के बदले बेचैनी बढ़ जाती है।

ज्ञान-तंतुओं की विकृति दूर करने के लिये इस औषधि के वैद्यक शास्त्रों मे विविध प्रकार के उपयोग लिखे है। कुछ प्रयोग नीचे लिखे जाते हैं—

ब्राह्मी घृत

बुटबच और शंखाहूली दोनो का चूर्ण ६४ तोला, ब्राह्मी का रस ६४ तोला, गाय का पुराना घी ६४ तोला, पानी २५६ तोला। सबको मंदी-मंदी आँच मे पकावे। जब पानी का अंश जल जाय और घृत-मात्र रह जाय, तब उसे उतारकर ठंडा करके रख लेना चाहिए। इस घृत को प्रतिदिन सेवन करने से उन्माद, प्रलाप, अपस्मार, वायु और स्वरभेद आदि रोग शात होते हैं। मात्रा एक तोले से दो तोले तक दोनो समय।

सारस्वतारिष्ट

ब्राह्मी का पचांग (जड-सहित) ८० तोला उखाडकर स्वच्छ जल मे धो लेना चाहिए। शतावरि, विदारीकंद, हरड, अदरक, खस प्रत्येक २०-२० तोला। सबको जोकुट कर १२॥ सेर पानी में क्वाथ करे। चौथाई रहने पर उतार ले और कपड़े में छानकर उसमें ४० तोला पुराना शहद, १। सेर शक्कर (चीनी), २० तोला धाय के फूल। सम्हालू के बीज, निसोत की जड, छोटी पीपल, लौंग, बुडबच, असगंध, बहेडा, गिलोय, इलायची, वायविडंग और तज प्रत्येक एक-एक तोला। सबका चूर्ण कर सबको एकत्र कर एक मिट्टी के बर्तन मे भरे। उसमे एक तोला सोने के वर्क भी डाल दे, और बर्तन का मुँह बंद करके महीना-भर तक रक्खा रहने दे। एक महीने बाद जब देखे कि वर्क अच्छी तरह घुल गए हैं, तब उसे स्वच्छ कपड़े मे छानकर बोतलों मे भर ले।

इस औषध को सारस्वतारिष्ट के नाम से पुकारते है। प्रतिदिन तीन बार (प्रात, दोपहर, सायं) तीन मासे की मात्रा दूध में मिलाकर पीने से मनुष्य की आयु बढती है। वीर्य को शुद्ध करती है, धारणा-शक्ति, स्मरण-शक्ति, बुद्धि, बल और कांति को

बढ़ाती है। वाणी को शुद्ध करती है। हृदय की गति में बल पैदा करती और हरएक रोग को दूर करती है। बालक, युवा, स्त्री-पुरुष सबके लिये समान हितकारी है। क्योंकि शरीर के ओज-नामक तत्त्व की वृद्धि करती है। मोटे स्वरवाला, अस्पष्ट भाषण करनेवाला (तोतला मनुष्य) यदि इसका सेवन करे, तो उसका रोग दूर होकर कोयल के समान स्वर हो जाता है। इसके सेवन से स्त्रियों के ऋतु-दोष और पुरुषों के वीर्य-दोष दूर हो जाते हैं।

अधिक चलने, गाने या भाषण करने से जिनकी शक्ति और स्मरण-शक्ति क्षीण हो गई हो, उन्हें इसके सेवन से संतोषजनक लाभ होता है। जो दीर्घजीवी होना और स्त्रियों को प्रिय लगना चाहें, जिन्हें वाणी की शुद्धि, धारणा-शक्ति और स्मरण-शक्ति बढ़ानी हो, अथवा उन्माद, अपस्मार आदि रोग दूर करना हो, वे इस अमृत-तुल्य अरिष्ट का सेवन एक-दो मास करें। यह प्रयोग भैषज्यरत्नावली से लिया गया है।

सारस्वत घृत

जड़-सहित ब्राह्मी के पौधे को उखाड़कर जल से धोकर लकड़ी की मूसली से कुचलकर २५६ तोला रस निकाले। इस रस में गाय का पुराना घी ६४ तोला, हल्दी, चमेली के फूल, त्रिसोत, हर्र का बक्कल प्रत्येक चार तोला। छोटी पीपल, वायविडंग, सेंधा नमक, शक्कर, घुडबच, सबका चूर्ण एक-एक तोला घृत में डालकर मंदी आँच से पकावे। जल का अंश जल जाने पर जब घृत-मात्र रह जाय, उतार ले और छानकर काँच के बर्तन में रक्खे।

इस घृत की १ से २ तोला तक की मात्रा दूध में मिलाकर लेने से वाणी इतनी शुद्ध हो जाती है कि किन्नर के समान गला हो जाता है। और एक मास के सेवन करने से धारणा-शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि कठिन-से-कठिन विषय भी आसानी से समझ में आ जाता है। सब प्रकार के कोढ़ दूर होकर शरीर सुंदर कांतिवाला हो जाता है। सब प्रकार की अर्श, पाँचो प्रकार की वायु-व्याधि, प्रमेह तथा पाँचो प्रकार की खाँसी दूर होती है। वंध्या स्त्रियाँ तथा क्षीण वीर्यवाले पुरुषों के कुल विकार दूर होकर गर्भोत्पत्ति होती है। बल और जठराग्नि में भी वृद्धि होती है। यह प्रयोग रसरत्नाकर का है।

ब्राह्मी रसायन

रस बल के अनुसार पीवे। उसके अच्छी तरह पच जाने पर साठी के चावलों का ६गुने पानी से बनाया हुआ 'भात' फीका ही तीसरे पहर को खाय या केवल दूध पर ही रहे। जल पीना और छूना बिलकुल त्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार ७ दिन तक इसके स्वरस का सेवन करने से अनुपम कांति, बुद्धि और स्मरण-शक्ति प्राप्त होती है। १४ दिन सेवन करने से कठिन-से-कठिन ग्रंथ को समझने की शक्ति पैदा होती है। और बहुत दिन की भूली हुई विद्या स्मरण हो आती है। २१ दिन के सेवन से एक ही बार में सुनी १०० बातें याद हो जाती हैं।

मेध्य रसायन

ब्राह्मी को छाया में सुखाकर बनाया हुआ चूर्ण ५ तोला, मुलहठी का चूर्ण ५ तोला, शंखाहूली का चूर्ण ५ तोला, गिलोय का चूर्ण ५ तोला और सोने केवर्क या भस्म ३ माशे लेकर सबको खरल में डालकर अच्छी तरह घोटे, फिर उसे एक शीशी मे भरकर रख ले। उसमे से ४ रत्ती से २ माशे तक शक्ति अनुसार लेकर घी और शहद मे मिलाकर खावे। इससे स्मरण-शक्ति की वृद्धि होती है। घी और शहद कम-ज्यादा लेने चाहिए।

इस औषधि के ये दिव्य गुण सिर्फ प्राचीन ग्रंथो मे ही नहीं लिखे है, बल्कि आजकल के संशोधको को भी अच्छी तरह दिलजमई हो चुकी है। वात रक्त, कुष्ट का रोग दूर करने के लिये डॉक्टर बोइलू ने इस वनस्पति की ख़ास परीक्षा अपने ऊपर की, और जिस प्रकार लाभ हुआ, वह उन्होने इस प्रकार वर्णन किया है—

"ब्राह्मी लेने के आरभ मे वात-रक्त, कुष्ट के रोगी को हाथ-पैर और चमडी पर गर्मी-सी लगती है। खुजली भी चलती है। और कुछ दिन बाद शरीर में इतनी गर्मी बढती है कि तमाम शरीर खुजली के मारे लाल हो जाता है। रक्त का वेग ख़ूब तेज़ हो जाता है। नाडी बहुत मज़बूत और भरी हुई चलती है। आठ दिन बाद भूख बढ़ती है और पाचनक्रिया का काम ठीक-ठीक होता है। कुछ दिन बाद चमडी नरम और एक-सी हो जाती है। त्वचा के रोम-कूप खुल जाते है और उनमे से पसीना आने लगता है। बहुत दिन से मारी गई चमडी फिर से अपना कार्य करने लगती है। जठराग्नि दिन-दिन सुधरने लगती और भूख ठीक-ठीक लगने लगती है। यह वनस्पति यदि तदुरुस्त आदमी को दी जाय, तो उसे थोडे ही समय मे अच्छा असर दीखने लगता है। रुधिराभिसरण की गति बढ जाती है। इसीलिये खुजली बहुत चलती है। यदि यह औषधि अधिक मात्रा में ली जाय (यानी ३० रत्ती से अधिक), तो तद्रा उत्पन्न होगी और सिर मे दर्द होने लगेगा, जो उसके बंद कर देने पर भी उसका असर कई महीने तक रहेगा। दूसरे इससे भयकर मरोड भी पैदा हो जाती है। मै इस औषधि की मात्रा बढ़ाता गया और उसके दो मास पीछे मुझे मालूम हुआ कि यह बहुत दिन तक इकट्ठा होने पर उपद्रव करनेवाला एक तीव्र विष है। कल मुझे प्रात.-काल इतनी ठंड लगी कि बहुत-से कपडे ओढने पर एक घटे बाद शरीर मे गर्मी आई। उसके बाद श्वास-नलियों के अग्र भाग मे कुछ खिचाव होने लगा और धनुर्वात-जैसे लक्षण दीखने लगे। यह सब देखकर मुझे विचार हुआ, अब शायद हृदय की चाल बंद हो जायगी। शाम को ख़ून की उल्टी और ख़ून का ही दस्त हुआ, पर शीघ्र ही बंद हो गया। अगले दिन सवेरे तक इस विष के कुल असर से मैं मुक्त हुआ। परंतु गर्दन में दर्द होने लगा और कुछ कमज़ोरी भी आ गई।"

उपर्युक्त बातो से सिर्फ़ यही मतलब है कि जो ब्राह्मी को उचित मात्रा मे लिया जाय, तो रुधिराभिसरण की क्रिया के लिये वह प्रबल उत्तेजक है।

खासकर चमडी के ऊपर की बीमारियों में बहुत लाभकारी है, परंतु जो यह अधिक मात्रा में ली जाय, तो बेहोशी पैदा करती है। इस औषधि की सेवन-मात्रा ठीक-ठीक इस प्रकार है—

ब्राह्मी के पौदों को जड से उखाडकर उसका मैल-मिट्टी पानी से धोकर उसके छोटे-छोटे टुकडे करके छाया में सुखाकर चूर्ण कर ले। कुछ वैद्य इसकी पत्तियों को ही उपयोग में लेते हैं, पर यह उनकी भूल है। क्योंकि इस वनस्पति में वेलरीन नाम का जो तत्त्व रमा है, उसका मुख्य भाग तो उसकी जड में ही रमा हुआ रहता है। इसलिये सिर्फ पत्तों को ही काम में न लेकर जड-सहित काम में लानी चाहिए।

वात-रक्त—बीस से चालीस वर्ष तक के रोगी को पहले दो सप्ताह तक इस चूर्ण में से २० ग्रेन (१० रत्ती) देना। फिर प्रति सप्ताह ४ रत्ती मात्रा बढाते रहें और फिर एक महीने तक ६० ग्रेन (३० रत्ती) की मात्रा लगातार लेनी चाहिए। उसके बाद प्रति सप्ताह ५-५ ग्रेन (२॥-२॥ रत्ती) कम करनी चाहिए और १० ग्रेन (५ रत्ती) तक कम कर देनी चाहिए। फिर एक महीने तक इतनी मात्रा लेकर बंद कर देनी चाहिए, जिससे उसका उत्तेजक ज़हरी असर स्थिर न हो सके। एक महीना बंद रखकर फिर १० ग्रेन (५ रत्ती) से शुरू करके प्रति सप्ताह ५-५ ग्रेन (२॥-२॥ रत्ती) बढाकर ६० ग्रेन (३० रत्ती) तक पहुँचे। फिर प्रति सप्ताह ५ ग्रेन (२॥ रत्ती) कम करते-करते दस ग्रेन (५ रत्ती) तक आकर एक महीने तक उसका उपयोग बंद कर देना चाहिए।

इसी प्रकार जब तक रोग दूर न हो जाय, बराबर करते रहना चाहिए। यह चूर्ण शुरू दिन में न लेकर रात्रि को सोते समय गर्म जल से लेना चाहिए। जब तीस ग्रेन (१५ रत्ती) की मात्रा तक पहुँच जाय, तो चूर्ण के दो भाग करके आधा सवेरे, आधा शाम को लेना उत्तम होगा। चमडी के कुल रोगो मे और रुधिराभिसरण को सतेज करने में यह औषध बहुत लाभकारी है। डॉक्टर गौर्ट का कथन है कि कुल जाति के कोढ के रोगों पर यह अद्भुत चमत्कार दिखाती है, परंतु उसके बाद के विद्वानो का इस मामले में कुछ मतभेद है। उनका कहना है कि रोग के शुरू होने की स्थिति मे ही उसका असर लाभकारी है, रोग के बढ जाने में बहुत लाभकारी सिद्ध न हुई। पर खुजली, जो किसी इलाज से भी आराम न हुई हो, तो इससे अवश्य आराम हो जाती है। डॉक्टर वर्टिन का कहना है कि सारे शरीर पर ही नहीं, शरीर के किसी भाग पर कैसी ही गभीर खुजली हो गई हो, वैसी स्थिति में यह औषधि दी गई और बहुत संतोषजनक परिणाम पाया गया। आतशक और प्रमेह की दूसरी और तीसरी स्थिति मे पहुँचे हुए रोगी इसके प्रयोग से आराम हो गए हैं। कठमाला, फोडा, गाँठो का बढना और सूजन तथा संधियो के दर्द मे यह उत्तम असर करती है। मस्तिष्क के रोगो में और बेहोशी मे इसका अधिक उपयोग किया जाता है।

प्रकरण ८

लहसुन

लहसुन बहुतायत से घरों मे मसाले के तौर पर काम मे लाया जाता है। फेफड़े की तकलीफों और जोड़ो के अकड़ जाने पर लहसुन अत्युत्तम दवा है। लहसुन के बारे में हाल ही में विलायत के एक प्रसिद्ध डॉक्टर ने लिखा है —

"क्षय-रोग की जो खोज-जाँच हमने गत दो वर्षों मे की है, उसमें १०८२ क्षय के रोगियों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के ५६ उपाय काम मे लाए गए। उस पर बारीकी से देखने से यह परिणाम निकलता है कि उपर्युक्त ५६ प्रकार के भिन्न जाति के उपायों मे से क्षय के जंतु और उसके कारणो को नष्ट करने में सिर्फ़ दो औषध ही सफल हुई है। इनमें एक लहसुन और दूसरा पारा। लहसुन में एक तेल होता है, जो हवा मे फौरन् उड जाता है। उसका नाम एलील सल्फ़ाइड है। उसी तेल मे लहसुन के समस्त गुण है।

"यह तेल प्रबल जतुनाशक और खासकर क्षय के जंतुओ को नष्ट करने में अद्भुत शक्ति रखता है। शरीर में जाकर यह तेल आक्सीजन वायु के साथ मिलकर "सल्फ्युरिक एसिड"-नामक अम्ल को उत्पन्न करता है। और फेफडा, चमडी, मूत्रपिंड तथा यकृत के द्वारा बाहर निकलता है। शरीर के किसी भी भाग पर उसको लगाने से चमडी उसे चूस लेती है। इस रीति से शरीर के गंभीर अवयवों में वह प्रवेश कर सकता है। हमारे अनुमान में लहसुन ने सर्वोत्तम परिणाम दिखाया है। क्षय के जंतुओं पर, त्वचा, हड्डी, गाँठ, फेफड़े या शरीर के दूसरे किसी भी भाग मे दर्द होने पर उसका स्वच्छंद उपयोग किया जा सकता है।"

डॉक्टर मिचिन ने लिखा है—

"एक जवान आदमी की चिकित्सा करते हुए हमारा ध्यान लहसुन की तरफ़ गया। इसके समस्त पैर की हड्डियो में क्षय का भरपूर आक्रमण था। जब यह रोगी हमारे पास सम्मति के लिये आया, तो हमने उसे तमाम पैर कटवा देने की सम्मति दी। रोगी को यह स्वीकार न था। और वह चला गया। छ महीने बाद वही रोगी बिलकुल आरोग्य स्थिति में मुझे मिला। मैंने आश्चर्य से उसकी हकीकत पूछी, तब उसने बताया कि एक मनुष्य ने लहसुन और नमक दोनो को समान प्रमाण में पीसकर लेप बनाया था, उससे फ़ायदा हुआ। मेरा ध्यान लहसुन पर गया और मैंने उसका उपयोग किया, जिसमें मुझे विशेष सफलता प्राप्त हुई।"

इस प्रकार लहसुन का उपयोग इटली में खूब होता है। वहाँ यह चीज़ घरेलू तौर पर काम मे लाई जाती है। इटली में लहसुन का उपयोग अमीर-ग़रीब खूब अच्छी तरह

करते है। इसी कारण वहाँ क्षय-रोग बहुत कम होता है। परंतु वहीं के लोग जो अमेरिका आदि देश में बस गए है, उग्र गर्मी के कारण जो लहसुन छोड बैठे है, फल-स्वरूप वे बहुतायत से क्षय के शिकार बनते है।

साठ बूँद लहसुन मे २ बूँद 'एलील सल्फाइड' तत्त्व रहता है। यह तत्त्व जितनी जल्दी और आसानी से शरीर में फैल जाता है, उतनी आसानी से दूसरी कोई चीज नहीं फैल सकती। इस बात की परीक्षा करनी हो, तो इस तरह करनी चाहिए कि लहसुन की कली को पीसकर लुगदी करना और उसे पैरो के तलुए से बाँधना चाहिए। ११।२० मिनट बाद आपके मुँह की साँस सूँघकर हरएक कह सकेगा कि आपने लहसुन खाया है। इससे यह साबित हुआ कि लहसुन का "एलील सल्फ़ाइड" नाम का तत्त्व आपके पैर के तलुओं से रक्त और रस-वाहिनी नसों द्वारा तमाम शरीर में फैलकर अंत में फेफडे में पहुँचकर श्वास द्वारा बाहर निकलता है। इस विधि से यह तत्त्व रस और रक्त की मार्फ़त फेफडे, चमडी, स्नायु, यकृत, मूत्र-पिंड, हड्डी आदि शरीर के समस्त छोटे-बड़े अंग में दाख़िल हो सकता है। इसलिये यदि लहसुन को भरपूर मात्रा मे काम मे लाया जाय, तो शरीर के चाहे जिस भाग में क्षय के जंतु हों, रोगी को आरोग्य-लाभ होगा।

एक डॉक्टर साहब ने १० वर्ष के एक लडके का हाल लिखा था—इसके हाथ की हड्डी में क्षय रोग का प्रभाव हो गया था। इस कारण उसके हाथ की एक उँगली भी लाचार काटनी पडी थी। उसकी हथेली में तीन गहरे घाव हो गए थे और उनमें से सदा पीब बहता रहता था। इस रोगी पर सब उपाय करके थक गए। पीछे लहसुन की एक कली बारीक पीसकर चर्बी के साथ मिलाकर सडे हाथ पर बाँधी। चर्बी मिलाने का कारण यह था कि अगर लहसुन का रस चमडी पर लगाया जाता, तो जलन पैदा होकर फफोला हो जाता, इसलिये उसके दाह के असर को दूर करने के लिये मक्खन, घी, वैसलीन, चर्बी आदि मिलानी पडती है। इस उपचार से लडके को डेढ महीने में बिलकुल फायदा हो गया।

गत महायुद्ध मे एक डॉक्टर ने अनुभव किया। उन्होंने लहसुन के रस में फिटकरी का पानी मिलाकर घाव धोने और उसका भीगा हुआ कपडा उस पर बाँधने से बड़े-बड़े घाव आराम किए हैं।

नीम

नीम की जड की छाल १ तोला कुचलकर ६४ तोला जल मे १५ मिनट तक पकाके छानकर पी लेनी चाहिए। बारी के या स्थिर ज्वर मे जब कोई दवाई काम नहीं करती, वहाँ इस प्रकार उबाला पानी बहुत लाभ करता है। जिन्हे बहुत दिनो से ज्वर आता हो और उन्हें कुनैन माफिक न आती हो, इस दवाई के देने से बहुत जल्दी लाभ होता है। इसके देने की विधि इस प्रकार है कि ज्वर चढ़ने से पहले थोडी-थोडी देर मे चार तोले से आठ तोले तक दिन में दो या तीन बार पिलाना चाहिए।

निंब-सत्त्व

नीम की ताज़ी अंदर की छाल खूब कुचलकर पानी में घोलकर बारीक कपड़े से छान-कर एक बर्तन में रख दो। पानी रखने पर जो नीचे सत्त बच रहे, उसे सँभालकर रख लो।

इस सत्त को ४-६ रत्ती कुनैन की मात्रा में मिलाकर देने से ज्वर छूट जाता है। जिन्हें कुनैन माफिक नहीं आती है, उन्हें यह बहुत लाभकारी है। ज्वर छूटने पर यदि सत्त की मात्रा निरंतर कुछ दिन देते रहें, तो जीर्ण ज्वर और कमज़ोरी दूर हो जाती है।

निंबादि चूर्ण

नीम के ताज़े सूखे पत्ते १० तोला, सोंठ, मिर्च, पीपल छोटी, हर्र, बहेड़ा, आँवला, सेंधा नमक, काला नमक, प्रत्येक एक-एक तोला। जवाखार २ तोला, अजमोद ५ तोला, सब को कूटकर कपड़छान कर ले।

बारी के ज्वर या निरंतर रहनेवाले ज्वर में दिन में तीन बार ३ मासे से ६ मासे तक देने से ज्वर उतर जाता है।

निंब हरिद्रा-खंड

नीम का रस ६४ तोला, शक्कर ३२ तोला लेकर मंदी-मंदी आँच से पकावे। गाढ़ा होने पर चित्रक, हर्र, बहेड़ा, आँवला, मोथा, काली जीरी, अजवायन, अजमोद, सरसों, टाक के बीज, पाढ़ की जड़, मीठा नीम, सोंठ, मिर्च, पीपल, नौसादर, दंतीमूल, मेहँदी के बीज, नीम के बीज, बावची, प्रत्येक दो-दो तोला। वायविडंग, अनंतमूल चार-चार तोला। सबका चूर्ण कर पाक में मिला ले।

इसके १ तोला रोज़ जल के साथ सेवन करने से बीस प्रकार का क्रिमि-रोग, व्रण, कोढ़, नाड़ी-व्रण, भगंदर, दाद, खुजली आदि रोग नष्ट होते हैं। अजीर्ण और सूजन आदि रोग भी दूर हो जाते हैं।

घी-तेल

नीम के पत्तों का रस ४० तोला, चमेली या मेहँदी के पत्तों का रस ४० तोला, तिल का तेल २ सेर, गुड़बच, राल, मुर्दासंग, कागज की राख, बकरे की जली हड्डी, मीठा तेलिया और देवदार, प्रत्येक का चूर्ण एक-एक तोला। आंबा हल्दी, नीलाथोथा, सिंदूर, कबीला, प्रत्येक ३-३ मासा। पहले तेल को गर्म करके दो भिलावे उसमें डाल दो, जब भिलावे का तेल उसमें निकल आवे, तो भिलावे को निकालकर फेंक दो। फिर उसमें नीम, चमेली और मेहँदी का रस डाल दो। चूर्ण भी डाल दो। पकते-पकते जब तेल-मात्र रह जाय, नीचे उतारकर राल और मुर्दासंग का चूर्ण डाल दो और तेल को बोतलों में भरकर रख लो। इसका हरएक प्रकार के कुष्ठ रोगों में उपयोग करे।

अपस्मार का आनुभविक प्रयोग

जिसके दबाने से दूध निकल आवे, ऐसी कच्ची निबौली लेकर एक मिट्टी की हाँड़ी में भर

हाँडी का मुख ख़ूब बंद करके एक ऐसे पानी के गड्ढे में उस हाँडी को रख दे, जिसमें हमेशा कीचड़ रहती हो। परंतु यह ध्यान रहे कि उस हाँडी में पानी न जाय। इसके बाद २० तोला काली मिर्च थूहर के मोटे वृक्ष में खोखला करके भर दे, और उसका मुँह भी ऊपर मिट्टी से बंद करके इन मिर्चों को भी उसमें छ महीने तक पड़ा रहने दे। छ महीने बाद दोनों चीजों को बाहर निकालकर बराबर-बराबर लेकर नस्य बनाकर शीशी में भर कसकर डाट लगा देनी चाहिए। जिसे वायु का रोग हो और उसके मुँह में झाग आने लगे या बेसुध हो जाय, तब उसे यह नस्य सुँघाना चाहिए। इसी प्रकार ५ बार करने से रोगी के सिर में से वाय का कीड़ा निकल जायगा या मर जायगा और दर्द सदा के लिये मिट जायगा। नस्य का असर ठीक कपाल तक पहुँचे, इतनी ज़ोर से सुँघाना चाहिए। इसके लिये उत्तम रीति यह है कि एक काग़ज़ की नली बनाकर उसमें नस्य रखकर दूसरा आदमी नथने पर नली रखकर ज़ोर से फूँक मार दे।

दूसरा उपाय

ऊँट जब बहुत-सी नीम खा लेता है, तब उसे अजीर्ण होने पर ज़ोर से छींकें आने लगती हैं। उस समय उसके नथुनों में से ज़मीन पर कीड़े झड़ते हैं। उन कीड़ों को उठाकर डिबिया में बंद कर के रख लो। जब वे मर जायँ और सूख जायँ, तब उनका चूर्ण करके नाक में नस्य देने से भी वायु का कीड़ा मर जाता है।

अर्श का उत्तम उपाय

नीम की पत्ती २१, मूँग की धुली दाल में मिलाकर पकौड़ी बनाकर (बिना मसाला डाले) रोज़ २१ दिन तक खाय। इससे हरएक प्रकार का अर्श मिट जाता है। इस औषध का सेवन करने पर सिर्फ़ छाछ ही पीनी चाहिए। दूसरी कोई चीज़ न खाय। यदि यह नित्य न खा सके, तो मिठी छाछ भात ले लो थोड़ा नमक भी कभी-कभी डाल सकते हैं।

जिस समय इस रोग के लक्षण मालूम पड़ें, तो रोगी को तुरंत बस्ती के बाहर एक-दो मील ले जाकर आक की टहनियों की झोपड़ी में रक्खो। इस स्थान पर दूसरे मनुष्यों को आना-जाना नहीं चाहिए। सिर्फ़ उसकी सेवा-सुश्रूषा करनेवाले दो-एक आदमी रहें, वह भी झोपड़ी से बाहर ही। इस झोपड़ी की वायु शुद्ध रखने के लिये रात-दिन नीम के तेल का दीवा जलाते रहना चाहिए। उसके पास ही एक नीम की हरी लकड़ी भी जलती रहनी चाहिए, जिससे रोगी के श्वास में उसका धुआँ भी जा सके। इसके बाद औषध की तरह एक-एक दो-दो घंटे में दिन-भर ६-६ माशे निबौलियों का तेल खाते रहना चाहिए। ख़ुराक में सिर्फ़ मूँग का पानी और भात देना चाहिए। इस प्रकार की व्यवस्था करने पर प्लेग का भयंकर रोग भी शांत हो जाता और रोगी मृत्यु से बच जाता है।

निबौलियों का तेल

निबौलियों के तेल में गंधक का अंश है। इतना ही नहीं, उसमें चालमूगरा, सार्सा-

परिणाम, काडलीवर आइल-जैसे गुण हैं। यदि इसकी १०-९ बूँदें रोज़ दूध में डालकर निरंतर ली जावें तो खुजली, दाद और फोड़े-फुंसी आराम हो जाते हैं। यदि इसके तेल में गंधक या जस्त की भस्म मिलाकर शरीर पर मालिश की जाय, तो खुजली, दाद नष्ट हो जाते हैं। बकरी की हड्डी की राख इसमें मिलाकर लगाने से व्रण, नाड़ी-व्रण आदि रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

निंबौलियों में से कड़ुआ, चरपरा, पीला, नहीं उड़नेवाला तेल निकलता है। तेल निकालना हो, तो निंबौलियों को कुचलकर पानी में पकाने से तेल ऊपर तैर आता है, निंबौलियों को कोल्हू में पेलने से भी तेल निकल आता है।

बिगड़े हुए घावों पर यह तेल लगाने से वे शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। स्त्रियों का दूध बंद करने के लिये नीम के पत्तों का कल्क बनाकर स्तनों पर लेप करते हैं। इसके बीजों का तेल लगाने से जुएँ, लीखें मरती हैं। पित्तीवाले के इसके तेल की मालिश करनी चाहिए। बच्चों के ऐसे फोड़े जो नीचे से हरे रहते हैं और ऊपर से खुरंड आ जाते हैं, उन पर यह तेल लगाना चाहिए। इस तेल के मालिश करने से त्वचा के रोग मिटते हैं। नीम की कोमल डंडियों से निरंतर दाँतन करने से मुख के कई रोग मिटते हैं। श्वास शुद्ध और मीठा हो जाता है। नीम के पत्तों को पीसकर उनकी छोटी-छोटी टिकियाँ बना मंद आँच सेवी में तले। तलते-तलते जब वे जल जावें, तब निकाल ले और उस घी में बराबर मोम मिलाकर एकशीशी में रख ले। शीत-काल में इसको हाथ-पैरों में लगाते रहने से हाथ-पैर कोमल बने रहते हैं और कभी नहीं फटते। नीम के पत्तों को घी में जला बारीक पीस मोम में मिलाकर शिथिल पड़े हुए फोड़ों पर लगाते हैं। नीम के तेल की ३० बूँदों से ४ माशे तक की मात्रा लेकर ऊपर से पान खाने से श्वास मिटता है। नीम की छाल की भस्म बहनेवाले फोड़ों पर लगानी चाहिए। जिस ज्वर में वाँइटे चलते हों या पैरों में शीत आ गया हो, उस दशा में नीम का तेल मलना बहुत लाभकारी है। विशूचिका में भी यह तेल बहुत लाभकारी है। इस तेल को पान में लगाकर खिलाने से या रास्नादि क्वाथ में ३० बूँद तेल डालकर पिलाने से वाँइटे और कई प्रकार के वायु के वेग मिटते हैं। गहरी शीतला निकल आने पर इसके तेल को सारे शरीर पर चुपड़ देने से बहुत लाभ होता है। गठिया की सूजन मिटाने के लिये नीम के तेल की मालिश करनी चाहिए। नीम की छाल के क्वाथ से कुल्ले करने से मसूड़ों के असाध्य रोग मिटते हैं। रात्रि में नीम के वृक्ष के नीचे सोने से ज्वर छूट जाता है। नीम के तेल में शहद मिलाकर उसमें बत्ती भिगोकर कान में रखने से कान का पीव बहना बंद होता है।

प्रकरण ६

भिलावा

विवरण

भिलावा सर्वत्र प्रसिद्ध वस्तु है, इसलिये विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है।

गुण-धर्म और उपयोग

आर्य वैद्यों ने भिलावे को अर्श, संग्रहणी, कोढ, वायु, कफ, क्रिमि, गुल्म, अफारा, मंदाग्नि, वद्धकोष्ठ आदि रोगों को नष्ट करनेवाला माना है। इसलिये यह भाँति-भाँति के प्रयोगों से काम में लाया जाता है। परंतु हमारा अभिप्राय सिर्फ़ जडी-बूटियों ही से है, इसलिये सबको छोडकर हम केवल जडी-बूटियों के ढंग पर ही उसका वर्णन करेंगे।

हैज़े का अक्सीर उपाय

एक भिलावा लेकर उसकी गुठली निकालकर ६ माशे इमली के साथ पीस लो। फिर उसमे दो तोला प्याज़ का रस मिलाकर पिला दो। यह औषध सिर्फ़ एक वार ही देन पडती है। इसके पेट में जाने के पाँच मिनट में ही लाभ दीखने लगता है। दस्त और उल्टी बद हो जाती है। इमली के साथ भिलावा देने से धसका नहीं रहता। यह जठराग्नि को दीप्त करके और जंतुओं का नाश करके तब शरीर में गर्मी बढ़ाकर रोग को विचित्र रूप से दूर करता है। हैज़े के रोग में प्याज़ का रस बहुत लाभकारी है। इस बात को प्राय सब लोग जानते भी है। इसके अलावा भिलावे का इस प्रकार के रोगो में लाभकारी होना बहुत-से वैद्यक शास्त्रों में लिखा भी है।

हैज़े के बहुत-से केसों में इस प्रयोग की परीक्षा की जा चुकी है। दूसरी किसी औषधि से यदि आराम न हो और हाथ-पैर ठडे पड गए हो, ऐसी भयंकर स्थिति मे यह बहुत गुण-कारी है। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष, हर प्रांत में, हैज़े में बहुत-से रोगी मरते है, ऐसी दशा में इस औषध का उपयोग बहुत ही लाभदायक है।

हैज़े के सिवा साधारण दस्त, मरोड आदि रोगो मे भी प्याज़ के रस के अलावा सिर्फ़ भिलावे को ही इमली के साथ पीसकर देने से विचित्र लाभ होता है।

सर्प-दंश का उपाय—भिलावे मे साँप के ज़हर को दूर करने की अद्भुत शक्ति है। यह बात शार्ङ्गधर-संहिता में लिखी है। एक साधु ने, जिसने इस प्रकार के बहुत-से रोगियों को अच्छा किया था, एक ख़ास प्रयोग बतलाया कि ढाक के पेड की जड के पास दो हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसमें पाव-भर भिलावे भर दो और ऊपर से मिट्टी डाल दो। ६ महीने

तक ८-८ दिन के अंतर से उसे पानी से बराबर सींचते रहो। उस ढाक के पेड़ पर जो फूल आवें, उन्हें इकट्ठा करते रहो। जिसे साँप ने काट लिया हो, उसे एक तोला यह फूल और एक अतीस की कली मिलाकर खुराक आध-आध घंटे के बाद देने लगो, जब तक कि विष न उतर जाय।

ढाक के पेड़ की जड़ में डाले हुए भिलावों का असर तीन वर्ष तक रहता है। यदि हर तीन वर्ष के बाद उसकी जड़ में भिलावे डालते रहें, तो यह पेड़ हमेशा के लिये सर्प-दंश के लिये उपयोगी रहेगा।

ढाक की जड़ के रस में भी साँप के ज़हर को नष्ट करने की अद्भुत शक्ति है। यदि इसमें भिलावे का संयोग हो जाय, तो निस्संदेह गुणकारी हो जाता है।

वायु के रोगों पर भिलावे का निर्भयता से उपयोग

वायु के बहुत-से रोग भिलावे के उपयोग से आराम हो जाते हैं। यह बात बहुत लोग जानते हैं। परंतु इसके सेवन में कई प्रकार की कठिनाइयाँ होने से जितना चाहिए, उतना लाभ नहीं उठा सकते। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि कुछ लोगों की प्रकृति तो इतनी नाज़ुक होती है कि छूने से ही उनके शरीर पर सूजन हो जाती है। इतना होने पर भी कुछ ऐसे होते हैं कि भिलावे के उपयोग बिना वे जल्दी नष्ट नहीं होते। ऐसे अवसर रोग पर भिलावे खाने की एक उत्तम रीति यह है कि ४-५ सेर भिलावे लेकर थोड़ा कुचलकर खेत की दो-तीन क्यारियों में खाद की तरह डाल दो। उन क्यारियों में मेथी बुवाकर रोज़ पानी से सींचो। आठ-दस दिन में मेथी का साग तैयार हो जायगा। इस साग को पकाकर खाने से गठिया, उपदंश से उत्पन्न हुआ पक्षाघात, अफारा आदि अनेक वायु के रोग नष्ट हो जाते हैं।

भारी चोट का उपाय

कभी-कभी किसी आकस्मिक घटना से मनुष्य के चोट लग जाया करती है। कोई ऊपर से गिर जाता है, कोई नीचे से ही फिसल जाता है। इससे शरीर में कई प्रकार की व्याधि हो जाती है। किसी-किसी पर तो उसका असर ज़िंदगी-भर रहता है। किसी का ख़ून जम जाता है, किसी के सूजन आ जाती है, किसी को ख़ून के दस्त और उल्टी होती है, किसी के शरीर में बहुत दर्द रहता है। इस प्रकार की चोटों पर हल्दी के लड्डू खिलाने और कई प्रकार के लेप लगाने का लोगों में साधारण रिवाज है। उपाय साधारण चोट पर तो लाभकारी होते हैं, परंतु ज्यादा चोट लगने पर इन प्रयोगों से अच्छा फायदा नहीं होता।

जूनागढ़ के पास गिरनार-नामक एक प्रसिद्ध पहाड़ है। उसकी चट्टानें बहुत ढलवाँ हैं। वहाँ पर एक ओर आचार्यजी की कुटी है, उसमें एक साधु खगेंद्र स्वामी-नामक रहा करते थे। यह स्वामीजी एक दिन पहाड़ की चोटी पर शौचादि के लिये गए। वापस लौटते समय उनका पैर फिसल गया और वह करीब १०० हाथ नीचे आ गिरे। जहाँ पर गिरे, वहाँ पत्थर-ही-पत्थर थे, इसलिये उनके शरीर में बहुत गहरी चोट लगी। इतने ऊँचे से पत्थरों

पर गिरना और प्राण बचे रहना असंभव था, परतु यह घटना एक चमत्कार-जैसी थी। उनकी आँख, नाक, कान और माथे आदि किसी अग पर घाव भी नही हुआ था, न कही से खून न ही निकला, परंतु सारे शरीर में बहुत गहरी चोट लगी थी। वह बिल्कुल हिल-डुल भी नही सकते थे। जब यह खबर और लोगो को लगी, तो उन्हें डोली मे डालकर ऊपर कुटिया मे लाए। इसके बाद जूनागढ़ मे खबर हुई, तो वहाँ के बड़े-बड़े लोग जागीरदार, डॉक्टर आदि गए। डॉक्टर ने देखकर स्वामीजी से कहा कि आप ४-६ महीने तक अस्पताल में रहोगे, तो आपको बहुत सुबीता रहेगा। दूसरे प्रतिष्ठित लोगो ने भी इसी बात की राय दी। स्वामीजी ने कहा कि अभी कुछ दिन तक तो कही आने-जाने की शक्ति नहीं है, जरा शक्ति आ जाय, तो फिर देखा जायगा। यह कहकर कई दिन तक डॉक्टर की दवाई ली, परंतु चोट इतनी भारी थी कि उससे कुछ भी लाभ न हुआ। आखिर स्वामीजी ने अपने पास से एक वैद्यक की पुरानी पुस्तक निकाली। यह पुस्तक प्राचीन हाथ की लिखी हुई थी। उसमें लिखा था कि यदि ज़्यादा गहरी चोट लग जाय, तो सात भिलावे लेकर उनके टुकड़े कर डालो और उन्हें पाव-भर घी मे तल लो। भिलावे पक जाने पर उन्हें फेंककर घी को उतार लो। उसमें गेहूँ का आटा और गुड डालकर हलुआ बनाकर सात दिन तक खाओ। ऐसा करने से कैसी भी गहरी चोट हो, अवश्य लाभ होता है। भिलावो का हलुआ खाने से यदि शरीर में फूट निकले, तो शरीर पर भैंस की छाछ चुपडनी और तीन घटे तक धूप में बैठना चाहिए। इस प्रकार करने से चार दिन में उसका असर मिट जाता है। उस पर तिल का तेल, मिरच, गुड आदि खूब खाना चाहिए, इससे भी भिलावों का असर कम हो जाता है, इस प्रकार उस पुस्तक में लिखा था। इसे पढ़कर स्वामीजी ने तुरत एक चेले से भिलावे मँगाए और उसका हलुआ बनाकर खाया। उसी रात्रि को स्वामीजी को बड़े आराम से नीद आई, इससे पहले अठवाडो मे नीद नहीं आई थी। इसी प्रकार दूसरे दिन भी उन्होने हलुआ खाया। उस रात्रि को स्वामीजी ने बिना किसी की सहायता के स्वय ही करवट बदल ली। इससे पहले ३-४ आदमी बड़े परिश्रम से करवट बदलवाते थे, उस समय स्वामीजी को असह्य कष्ट होता था। तीसरे दिन भी इसी प्रकार सात भिलावो का हलुआ खाया। इससे उनके शरीर में कुछ गर्मी मालूम होने लगी। पेशाब करने को ४-५ आदमी उठाते थे, तब खाट पर बैठकर ही पेशाब करते थे। परंतु उस दिन एक आदमी की ही सहायता से, थोडा सहारा पाकर खाट से नीचे उतरकर मोरी पर पेशाब किया। इसके बाद चौथे दिन भी यह हलुआ उन्होने खाया, तो स्वामीजी को बहुत ज़्यादा गर्मी लगने लगी और सारा शरीर लाल हो गया और चमडी पर छोटी-छोटी लाल फुन्सियाँ-सी निकल आईं। परंतु उस दिन वह बिना किसी आदमी के सहारे सिर्फ़ एक लाठी के सहारे से ही अपनी खाट से उठकर बाहर बरामदे में घूम आए। इसके बाद पाँचवें दिन उन्होने हलुआ नहीं खाया। क्योंकि सारे शरीर में भिलावो का असर फूट निकला था। इसलिये हलुआ बंद करके पुस्तक मे लिखे अनुसार भैंस की छाछ शरीर पर मली। इस

प्रकार चार दिन तक करने से भिलावों का असर मिट गया और दस दिन में ही हृष्ट-पुष्ट हो गए। भिलावों से उनके शरीर में बहुत शक्ति आ गई थी। पाचन-शक्ति भी ख़ूब सुधर गई थी। एक दिन वह लोगों से मिलने की इच्छा से नीचे उतरकर गाँव में गए। वहाँ पर रास्ते में उन्हीं डॉक्टर साहब की गाड़ी सामने खड़ी मिली। उन्हें स्वामीजी को देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि वे स्वप्न देख रहे हों। उन्होंने बड़े आश्चर्य के साथ पूछा—"स्वामीजी महाराज! यहाँ कैसे? इतनी जल्दी आप खाट से कैसे उठकर खड़े हो गए? स्वामीजी की शकल के आप कोई दूसरे तो नहीं हैं?" यह सुनकर स्वामीजी मुस्किराए और दो-एक बातें कहीं, तो आवाज़ पहचानकर डॉक्टर साहब ने कहा कि महाराज! आपका शरीर तो ६ महीने से पहले उठ नहीं सकता था, आप इतनी जल्दी इतने हृष्ट-पुष्ट कैसे हो गए? बताइए तो?"

यह सुनकर स्वामीजी ने उत्तर दिया कि तुम्हारी डॉक्टरी दवाई दूसरी होती है और हमारी साधु लोगों की दवा अलग होती है। तब डॉक्टर ने पूछा कि बात तो बताइए, हुआ क्या? तब स्वामीजी ने विस्तार-पूर्वक सब बात डॉक्टर-साहब को सुनाई।

इस प्रयोग में ७ भिलावों का हलुआ रोज़ खाने की बात लिखी है, परंतु रोगी की प्रकृति, देश, काल, बल और आयु का विचार करके उतनी ही संख्या में भिलावे देने चाहिए, इससे अवश्य असंतोष-जनक लाभ होगा।

प्रकरण १०

हल्दी

हल्दी प्रतिदिन रसोई के मसाले में काम आती है, इसलिये प्रसिद्ध वस्तु है ।

उपयोग

अत्यंत प्राचीन काल से वैद्य लोग इसका प्रयोग करते चले आ रहे हैं । सुश्रुत में लिखा है कि सब प्रकार के प्रमेहों के लिये यह एक ही वस्तु है । ख़ासकर कफजन्य प्रमेह में । इसके अतिरिक्त निघंटुकारों ने भी इसे प्रमेह का घोर शत्रु माना है । आजकल भी प्रमेह में हल्दी के चूर्ण को आँवले के रस में मिलाकर देते हैं । इससे कई प्रकार का प्रमेह दूर हो जाता है । एक तोला हल्दी का चूर्ण आठ तोला गो-मूत्र के साथ लेने से अंडकोषों की ख़ारिश अच्छी हो जाती है । और यदि इसके चूर्ण को गुड़ में मिलाकर गो-मूत्र के साथ लिया जाय, तो दाद नष्ट हो जाता है । ज़ुकाम के आरंभ में नाक द्वारा हल्दी की धूनी ली जाय और कुछ घंटों तक पानी न पिया जाय, तो कठिन-से-कठिन ज़ुकाम भी एकदम बंद हो जाता है । यह बात साधारण मनुष्य भी जानते हैं । इसके अलावा हल्दी और भी बहुत-से कठिन रोगों पर बहुत ही लाभकारी प्रमाणित हुई है ।

अर्बुद या रसौली का रोग एक ऐसा रोग है कि बिना आपरेशन के आराम नहीं होता । पर यह मालूम हुआ कि एक योगीराज एकमात्र भस्म के लेप से ही इस रोग को जड़-मूल से नष्ट कर देते थे । बहुत कुछ सेवा-सुश्रूषा करने पर उन्होंने यह प्रयोग बताया कि हल्दी की सूखी गाँठ को आग की एक अंगारी पर रखकर इस तरह जलाओ कि बल उठे और धीरे-धीरे जलती रहे । जलकर कोयला हो जाने पर उसे उतारकर एक शीशी में रखकर कसकर डाट लगा दो । आवश्यकता पड़ने पर पानी में मिलाकर रसौली पर पैसे की बराबर जगह में लेप कर दो । तीन-चार दिन तक दिन में ४—६ बार रोज़ इसी प्रकार लेप करो । इससे उस स्थान का मांस गलकर एक घाव हो जायगा । जब घाव हो जाय, तो रसौली के चारों ओर हाथ से दबाओ, उससे उसमें से मेदा का भाग निकलेगा, और रसौली बैठती जायगी । केवल घाव होते ही रसौली नहीं बैठ जाती, परंतु उसके अंदर के दोषों को पककर निकालने में समय लगता है । और जब तक सब दोष अच्छी तरह से निकल न जायँ, तब तक उस घाव का बना रहना ज़रूरी है । इसके लिये जब घाव भरने लगे, तो तुरंत हल्दी की भस्म का लेप कर देना चाहिए, जिससे आवश्यकतानुसार घाव क़ायम रह सके । यह रसौली के अंदर तक के

दोषों को निकालने में बहुत ही नायाब वस्तु है। इसके अतिरिक्त सब प्रकार के फोड़े-फुंसियों को भी नष्ट करने में चमत्कारिक प्रभाव रखती है।

उपदंश रोग

जो एक घृणित असाध्य रोग है, जिसे बड़े-बड़े डॉक्टर-वैद्य भी प्राय अच्छा नहीं कर सकते। उसके लिये एक महात्मा ने विचित्र विधि बताई थी। वह यह कि रोगी के किसी पैर में नल और पिंडली की संधि में (घुटने के चार अंगुल नीचे नसों के बीच में) हल्दी की एक सूखी गाँठ जलाकर दाग दे दो। उससे एक फफोला पड़ेगा। उस पर सूत की एक गोली बनाकर आक के दूध में भिगाकर रख दो। और उस पर किसी भी पेड़ के पत्ते रखकर पट्टी बाँध दो। इससे ८ दिन में गोली की जगह में घाव हो जायगा। जब घाव हो जाय, तो उस पट्टी को खोल घाव में शुद्ध मोम की गोली बनाकर रख दो। और फिर पट्टी बाँध दो। उसके बाद नित्य गोली निकालकर घाव को पानी से धोओ और फिर गोली बाँध दो। गोली पर किसी भी पेड़ के पत्ते बाँध दो। इस क्रिया से घाव में से कम-से-कम ८ दिन में और ज्यादा-से-ज्यादा २० दिन में मवाद, लाहू, पीब आदि निकलनी शुरू होगी। और उसके रास्ते तमाम विष निकल जायगा। ज्यों-ज्यों जहर निकलेगा, रोगी को आराम होगा। ज्यों-ज्यों आराम होगा, त्यों-त्यों शक्ति आवेगी। घाव में जब तक मोम की गोली रहती है, तब तक घाव भरता नहीं। जब रोगी को आराम दीखे, तब गोला निकाल लेनी चाहिए। इसके बाद थोड़ी ही देर में घाव भर जायगा। जब तक मवाद निकलता हो, तब तक मवाद उत्पन्न करनेवाली खुराक जैसे—तेल, गुड़, मिर्च, खटाई, बड़े, केला आदि खाने को दो। परंतु मोम की गोली रखना बंद करके फिर दूध-भात, रोटी आदि ही देनी चाहिए। इस रीति से भयंकर असाध्य उपदंश भी आराम होगा। और इस रोग के प्रभाव से शरीर के दूसरे अंग दूषित होकर खाँसी, क्षय, दम, संधिवात, लीवर आदि कोई भी रोग हो गया हो, तो जड़ से मिटेगा। परंतु ये रोग अन्य कारणों से हुए हों, तो यह क्रिया बिलकुल फ़ायदा न करेगी। उलटी हानि करेगी। कभी-कभी तो यदि मोम की गोली न निकाली जाय, तो रोगी के मरने की भी संभावना है। इसलिये क्रिया करने से प्रथम अच्छी तरह परीक्षा कर लेना चाहिए कि रोग वास्तव में उपदंश ही है।

प्रकरण ११

रीठा

विवरण

रीठे के वृक्ष सब जगह होते है। इसके फल ही रीठे होते है, जो बहुधा रेशमी कपड़े धोने के काम में आते हैं।

गुण, दोष और उपयोग

रीठे में त्रिदोष को दूर करने की, नष्टार्तव को नष्ट करने की, जहर को उतारने की, आधा शीशी, हिस्टीरिया और अपस्मार आदि रोगो को शात करने की अद्भुत शक्ति है। इसके अलावा भिन्न-भिन्न रोगो में भिन्न-भिन्न प्रकार से उपयोग किया जाता है।

विषो पर प्रयोग

सर्प-दंश होने पर या अफीम, तेलिया सखिया, नीला थोथा, हरताल आदि विष उतारने के लिये तीन रीठे दो छटाक जल मे डालकर अच्छो तरह मलिए। जब खूब भाग आ जाय, तब थोडा-सा आँख मे लगाकर बाकी पिला दीजिए, इससे उल्टी होकर विष निकल जायगा। जो विष अधिक चढा हो और एकाध बार पिलाने पर लाभ न हो, तो थोडी-थोडी देर में पिलाते रहिए। विष उतरते समय यदि आवश्यकता पडे, तो बीच मे पिलाते रहिए। साँप, बिच्छू, खनखजूरा आदि विषैले जतुओ के काटने पर इसका अजन करना और दंश की जगह पर इस पानी को लगाना लाभकारी है।

रीठे के जल का अजन करने से विष उतरने के बाद आँखो मे जलन होती है, उसके लिये आँखो मे मक्खन या ताज़ा घी लगाना चाहिए।

बिच्छू के विष पर

रीठे का वक्कल बारीक पीसकर गुड मे मिलाकर तीन गोली बनावे। पाँच-पाँच मिनट में एक-एक गोली ठडे पानी में देनी चाहिए। एक रीठा पानी में घिसकर उसका अंजन करना चाहिए। और दंश पर लेप करना चाहिए, जिन्हें हुक्का पीने की आदत हो, वे एक फल चिलम में रखकर पिएँ, इससे तत्काल विष दूर होगा।

अनत वायु पर

स्त्रियो के प्रसव के बाद वायु का जोर होने से सिर में चक्कर आने लगते है। आँखो के आगे अँधेरा होने लगता है। दाँती भिच जाती है, इसके लिये रीठे के जल का आँखो में अंजन करना चाहिए। अवश्य लाभ होगा।

आधासीसी

रीठे को काली मिरच के साथ घिसकर दो-चार बूँद नाक में टपका दो। इससे नाक द्वारा बहुत-सा सड़ा-गला बलग़म निकलेगा, और सिर-दर्द तुरंत शांत होगा। बहुत ही उत्तम है।

हिस्टीरिया और अपस्मार पर

एक फल का वक्कल उतारकर गौ के दूध या जल में घिसकर नाक में टपकाने से और यदि ज्यादा बेहोश हो, तो आँख में लगाने से रोगी तुरंत होश में आ जायगा।

नष्टार्तव पर

रीठे की गुठली की मींगी पीसकर गोली बनाकर जननेंद्रिय में रखने से बंद हुआ मासिक धर्म फिर से जारी हो जाता है। प्रसव के समय इस गोली को धारण करने से प्रसव बिना कष्ट के हो जाता है, और गर्भाशय की कुल खराबियाँ ठीक हो जाती हैं। रीठे के छिलकों के झागों में रुई की बत्ती भिगोकर योनि में रखने से भी प्रसव शीघ्र हो जाता है।

कफ पर

रीठे के छिलकों का चूर्ण ४ रत्ती से ८ रत्ती तक खाना चाहिए। छाती में पत्थर की तरह चिपका हुआ भी कफ पतला होकर निकल जायगा। साधारणतया उल्टी कराने या नस्य देने में, अंजन लगाने में ही इसका उपयोग किया जाता है। उल्टी कराने के लिये जल में रीठे का कितना अंश होना चाहिए, यह कोई नियत नहीं है, पर ६ माशे से १ तोला तक तो पानी में घुलना ही चाहिए।

वैद्यक शास्त्र में तो इसका विशेष उल्लेख नहीं है। पर जड़ी-बूटी जाननेवाले साधु-संतों ने इसकी बहुत खोज की है। उसी के कुछ प्रयोग नीचे लिखे जाते हैं—

जादू नस्य—रीठे का वक्कल, नकछिकनी, कायफल, नौसादर, सफ़ेद मिरच, विदाल और चिरचिटे के बीज तथा वायविडंग सब बराबर लेकर खूब बारीक चूर्ण कर लो। जब आवश्यकता पड़े, थोड़ा लेकर पान में खाने का चूना मिलाकर सुँघा दो, इससे सर्दी, आधा-सीसी, सिर-दर्द, हिस्टीरिया आदि रोग शांत होते हैं।

रज.प्रवर्तक—कड़ुई तोंबी का वक्कल, इंद्रायण की जड़, विषखपरा, मैनफल के बीज और रीठे का वक्कल सब बराबर लेकर चूर्ण बनाकर गुड़ में मिलाकर गोली बनाकर रख लेनी चाहिए। इससे नष्टार्तव दूर होता है।

स्नान रज—रीठे के वृक्ष की छाल, पत्ते और फलों का वक्कल बराबर लेकर चूर्णकर रख लेना चाहिए। इस चूर्ण को पानी में उबालकर यदि किसी ढोर के शरीर पर डाला जाय, तो उसके जूएँ मर जाते हैं। मनुष्य भी यदि इस जल से स्नान करे, तो दाद, खुजली आदि चमड़ी के रोग मिट जाते हैं।

त्रिदोष विषहर वटिका—रीठे का वक्कल, अंकोल की जड़ की छाल, समुद्र फल के बीज,

काली कोयल के बीज, सब बराबर-बराबर लेकर चूर्णकर तुलसी के रस में खरलकर ६-६ रत्ती की गोली बना लेनी चाहिए। रोगी की शक्ति देखकर २ से ४ गोली तक गर्म जल मे देनी चाहिए। इससे दस्त और उल्टी होकर तीनो दोषों की शुद्धि होकर महा उग्र सन्निपात भी दूर हो जाता है। इसके सिवा यदि इस औषध पर खूब विचार किया जाय, तो और भी बहुत भयकर रोग अच्छे हो सकते हैं।

प्रकरण १२

आक

आक के पेड प्राय सभी स्थानो मे होते है, इसलिये इनका विस्तार से लिखना व्यर्थ है। यह दो प्रकार का होता है—लाल और सफ़ेद। लाल आसानी से सब जगह मिल सकता है, इसलिये यहाँ लाल का ही वर्णन करेंगे।

इसकी जड की छाल मरोड के दस्तों को बहुत फायदा करती है। इसका उपयोग इस प्रकार करे कि आक की जड की छाल १६ तोला, ज़ीरा ८ तोला, जवाखार ८ तोला, नागरमोथा ८ तोला और अफीम ४ तोला लेकर बारीक चूर्णकर जल के साथ घोटकर २-२ रत्ती की गोली बना ले। एक-एक गोली दिन में तीन बार प्रात., दोपहर, सायं जल के साथ। इन गोलियो के लेने से पहले एरंडी के तेल का जुलाब ले लेना चाहिए। इस बीच में सिर्फ़ दूध-चावल या दही-चावल का पथ्य देना चाहिए।

औषध मे डालने के लिये आक की छाल वह उत्तम होती है, जो मौसम में बड़े पेड की जड से निकाली गई हो। उसकी जड को दो-तीन दिन छाया में रखकर ऊपर की मिट्टी और निर्जीव बक्कल को दूर करके अदर की छाल का चूर्ण करके शीशी मे भर कसकर डाट लगा देनी चाहिए। उत्तम छाल का बना हुआ चूर्ण बिल्कुल सफ़ेद रग का होता है।

जितना लाभ मरोड और दस्तो मे इस औषध द्वारा होता है, उतना ही श्वास-नली के दर्द पर भी बहुत लाभकारी है। पुराने सूखे हुए कफ को तत्काल निकाल डालता है। दमा, रक्त-पित्त, उर.क्षत और क्षय की खाँसी में बहुत लाभ करता है।

आक के फूल की कली और सेंधा नमक ११ माशे, अफ़ीम ३ रत्ती, अजमोद १ माशे। सब चीज़ो को खरल करके चने के बराबर गोली बना लीजिए। रोगी की प्रकृति के अनुसार यदि गर्म हो, तो अजमोद निकाल देनी चाहिए। इन गोलियो मे आक पडा हुआ है, जो जमे हुए कफ को निकालता है। और सेंधा नमक उसकी चिकनाई को दूर करके आराम से निकाल देता है। जब पुराना कफ निकल जाता है, तब श्वास-क्रिया आराम से होने लगती है, और धीरे-धीरे पुराना श्वास-रोग भी आराम हो जाता है। दूसरा प्रयोग इस प्रकार है—

आक के फूल की कली १२५, जायफल, जावित्री, लौंग, अकरकरहा, प्रत्येक एक-एक तोला लेकर सबको खरल करके १॥-१॥ माशे की गोली बना लो और रोज़ाना एक-एक गोली सुबह-शाम खानी चाहिए।

आजकल की नवीन पद्धति की शोध से पता लगता है कि इसके फूलो की कली और

मिरच बराबर-बराबर लेकर २-२ रत्ती की गोली बनाओ। दिन में चार बार एक-एक गोली देने से दमा, हिस्टीरिया, वायु आदि रोगों में बहुत लाभ होता है।

अजीर्ण के बढ़ जाने पर जो पेट में दर्द होता है, उसके लिये नीचे लिखा नुसखा बहुत लाभकारी और पाचक है। गुल्म, शूल, अजीर्ण आदि रोगों में यह प्रयोग बहुत अच्छा है—

आक के पत्ते १००, करंज के पत्ते १००, बरने की छाल आध सेर, ग्वार-पाठा ८ तोला, गूगल २ तोला, लहसन २० तोला, सेंधा नमक २० तोला, करंज की छाल २० तोला, काला नमक १२ तोला, सोंठ, मिरच, पीपल प्रत्येक ७ तोला, कच्चा लवण ८ तोला, समुद्र नमक २ पाव, विड लवण ४ तोला, ज़ीरा ४ तोला, राई १२ तोला, चीता ३२ तोला। सबको बारीक कर ३२ तोला आक का दूध, १६ तोला सरसों का तैल मिलाकर एक हाँडी में भरे। हाँडी को कपरौटी करके चूल्हे पर चढ़ावे, जब जलकर कुल दवाइयाँ राख हो जायँ, नीचे उतारकर एक शीशी में भर लेनी चाहिए। दिन में तीन बार ६ माशे की मात्रा से छाछ के साथ लेनी चाहिए।

अर्श पर एक विद्वान् वैद्य का सिद्ध लेप है, जो इस प्रकार है—

छोटी पीपल, हल्दी, शंख-भस्म, सज्जी खार, सेंधा, चौटली, नागकेसर, नीला थोथा, धतूरा, मुर्ग़े की बीट, बिडाल के बीज सब बराबर-बराबर। सबका चूर्णकर थूअर, आक और गाय के दूध की भावना देकर अर्श पर लेप करना चाहिए।

खाँसी के लिये—अजमोद ८ तोला, हड़ का बक्कल, विड लवण, खैरसार, सेंधा, हल्दी, भारंगी, इलायची, सुहागा, कायफल, अडूसा, जवाखार, सज्जी सब ४-४ तोला, आक के फूल १६ तोला, इन सबका चूर्णकर घीग्वार की भावना देनी चाहिए। फिर हाँडी में बंद-कर कपरौटी कर चूल्हे पर चढ़ा देना चाहिए। भस्म होने पर शहद में ३ माशे से ६ माशे तक लेनी चाहिए।

सूखे पत्तों का चूर्ण श्वेत कुष्ठ पर लगाने से तत्काल फायदा करता है। तेल या किसी मलहम में मिलाकर भी लगाया जा सकता है।

पुराना कुष्ठ जिसमें घाव और नासूर हो गए हों, जिसके सूराख़ छोटे होने के कारण मवाद अच्छी तरह नहीं निकलता है और इसके लिये आपरेशन तक कराने की नौबत आई हो, उसके लिये यह प्रयोग बहुत उत्तम है। इससे ज़ख़्म का सूराख़ बढ़ जाता है और मवाद ख़ूब निकलने लगता है, और शीघ्र अच्छा हो जाता है।

अध्याय बारहवाँ

मुष्टियोग

प्रकरण १

सिर-दर्द

१—बड़ी हरड का वक्कल, काबली हरड, काली हरड, धनिया प्रत्येक १-१ तोला कूटकर घी में थकोरे। फिर तिगुने शहद की चाशनी में मिला दे। यह इत्रीफल काशनी का नुसख़ा है। मात्रा दो तोला है। यह सिर-दर्द, भौंह, नेत्रों के दर्द और बीमारी में बहुत फ़ायदेमंद है।

२—काबली हरड का वक्कल, बड़ी हरड का वक्कल, आँवले का वक्कल, काली हरड प्रत्येक ३ तोला, गुलाब के फूल, सनाय, निसोत प्रत्येक १४ माशा, सोंठ १॥। माशा कूट-छान-कर रोगन बादाम में थकोरे, और तिगुने शहद या मिश्री में चाशनी करे। यह इत्रीफल मुलैयन है, तबियत को नर्म करता है, बिगड़े मल को निकालता है, मस्तिष्क को शुद्ध करता है, सिर-दर्द, कानों की भनभनाहट और आँखों की अँधेरी को गुणदायी है।

३—गर्म जल में हाथ-पैरों के तलुए धोने से और पैरों पर गर्म पानी के तरड़े देने से सिर-दर्द आराम होता है।

४—खिले चने दो तोला ८ माशा, महीन पीसकर ३ तोला ८ माशा बादाम रोगन में भूने और नशास्ता २ तोला ८ माशा, सफ़ेद पोस्ता के दाने २ तोला ८ माशा, मिश्री १४ तोला मिलाकर गाय के दूध में हरीरा बनाकर २ तोला ८ माशा गाय के घी में बघारकर गुनगुना पीवे, तो दुर्बलता का सिर-दर्द जाय।

५—धनिया और काहू प्रत्येक ३॥ माशा पानी में पीसकर छान ले। १ तोला मिश्री मिला ले, और तोला-भर ईसबगोल छिड़ककर पीवे। इससे गर्मी का सिर-दर्द आराम होगा।

६—दो-तीन धतूरे के बीज रोज़ निगलने से पुराने सिर-दर्द को फ़ायदा होगा।

७—सोंठ, वायविडंग और गुड़ बराबर पानी में पीसकर गुनगुना नाक में टपकाने से सर्दी का सिर-दर्द आराम होता है।

८—हुक़्क़े की चीकट, जो चिलम में जम जाती है, साँभर नमक, नौसादर, तीनों एक-एक

माशा लेकर पोटली बनावे। प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व जिधर दर्द हो, उसके विपरीत भाग में पानी में भिगोकर दस बूँद टपका दे, तो आधासीसी का दर्द जाय।

मृगी, हिस्टीरिया

१—पुत्रवती स्त्री के दूध में निर्वसी घिसकर पिलावे, तो मृगी जाय। २—मृगी के दौरे के वक्त सीताफल के बीजों की मींगी पीस कपडे की बत्ती मे रख उसका धुआँ नाक मे पहुँचावे। ३—दौरे के समय दो काली मिर्च पानी मे पीसकर दोनो नथुनो मे ३-३ बूँद टपकावे। ४—हाथी के मद का फाहा भिगोकर नाक में टपकावे, तो हिस्टीरिया जाय। ५—फलालैन का एक टुकडा गर्म पानी मे भिगोकर निचोडे, और उस पर तारपीन का तेल छिडककर गले में लपेट दे। रोगी होश मे आ जायगा।

मस्तिष्क के अन्य रोग

स्मरण-शक्ति की कमी—मुरब्बा आँवला, किशमिश, बादाम की मींगी प्रत्येक दस-दसतोला पीसकर पिट्ठी कर लो। वंशलोचन, दालचीनी, छोटी पीपल, इलायची प्रत्येक ६-६ माशा और ब्राह्मी २ तोला, सबका चूर्णकर मिलाओ। खुराक २ तोला दूध के साथ खाय।

भ्रम—जिसमे सब चीजें घूमती-सी मालूम देती हैं। धनिया, आँवला, किशमिश, मिश्री प्रत्येक १-१ तोला रात को मिट्टी के बर्तन मे भिगो दे। प्रातःकाल मल-छानकर पीवे, तो भ्रम-रोग जाय।

नीद की कमी १—खसखस का तेल तलुओ और तालुए पर मले। २—भॉग की पत्ती बकरी के दूध मे पीसकर पैरो के तलुए पर मले। ३—भुना धनिया, काहू के बीज की मींगी, पोस्त के दाने भुने प्रत्येक नौ-नौ माशा, सफ़ेद करा ३ तोला ८ माशा कूट-छानकर फकी बना ले। ७ माशे की मात्रा है।

नेत्र-रोग

१—भुनी फिटकरी ३॥ तोला, हल्दी ७ माशा, (यदि कच्ची हो, तो और भी अच्छा) अफीम ५ माशा, सबको पके हुए कागज़ी नीबू के रस मे लोहे की कढाई मे पकावे, और गोली बनाकर रक्खे। जब ज़रूरत हो, पानी मे घिसकर नेत्रो पर पतला-पतला लेप करे, आँखों मे आँज भी दे। यह दवा आँख दुखने, दर्द, वमन, कोयो की सूजन, सुर्खी आदि के लिये अपूर्व है।

२—ग्वारपाठे का गूदा १ माशा, अफ़ीम १ रत्ती पीसकर पोटली बाँधे। पानी मे भिगो-भिगोकर नेत्रो पर फेरे। एकाध बूँद नेत्रो के भीतर टपकावे। आँख दुखने पर अद्वितीय है।

३—अमचूर लोहे के तवे पर पानी मे घिसकर लेप करने से भी नेत्र-पीडा आराम होती है।

४—काली मिर्च, कबीला, पीपल बराबर ले, महीन पीस नेत्रों में आँजे, तो रतौंध को फ़ायदा हो।

५—सेंधा नमक की सलाई आँखों में आँजे।

६—हुक्के के नेचे की चीकट आँखो मे आँजे।

आक के दूध में रुई भिगोकर सुखा ले, और घी दिए में भरकर उसका काजल आँखों में लगावे, तो पलकों का मोटा होना, खुजाना, ख़ुश्की होना, बालों का झड़ना आदि आराम होता है।

यदि पलक गिर पड़े और किनारे लाल पड़ जायँ, तो साँप की काँचली जलाकर तिल के तेल मे घोटकर पलको पर लेप करे।

कुँदरू के गोंद का काजल पलको की सभी बीमारियों में बहुत लाभ दिखाता है। विधि यह है कि कुँदरू के गोंद को दिए में रखकर ऊपर औंधा बासन रख दे। जब काजल आ जाय, तब छुटा ले।

यदि नेत्रों के आगे मक्खी-मच्छर-से उड़ते देखें, तो समझिए मोतियाबिंद होनेवाला है। इसके बाद पुतलियाँ बदल जायँगी, और नेत्रो की ज्योति जाती रहेगी। प्रारंभ ही में इसके लिये यह दवा खिलाई जाय, तो बहुत फ़ायदा करती है। बच, हींग, सौंफ़, सोंठ बराबर शहद में मिलाकर पाक बनाकर तीन माशा खाय।

मोतियाबिंद को रोकने की यह उत्तम दवा है—१० तोला इमली के पत्ते फूल या काँसे को कटोरी में नीम के घोटे से, जिसमें पैसा गड़ा हो, इतना घोटे कि गाढ़ा हो जाय। पीछे पुत्री की मा के दूध में ४० प्रहर खरलकर काम में लावे।

नीम का काजल—जो नेत्रो के लिये अति हितकारी है—नीम के पत्तो को कुल्हड़ मे रख-कर कपरौटी कर इतनी आग दे कि जलकर भस्म हो जाय। उस भस्म को नीबू के रस मे खरलकर लगावे। इससे नेत्रों और पलको की खाज भी मिटती है।

आँखो की ज्योति के कम होने पर कई बार सिर मे कघी करना, पैर दबवाना और मसल-वाना, पानी में सिर डुबोकर पानी में आँखें खोलना, इन कामो से नेत्रो की ज्योति बढ़ती है।

चमेली के फूलो की डंडी में बराबर बूरा मिलाकर खरलकर गोली बना ले। नित्य घिस-कर आँखों में लगावे। ज्योति की वृद्धि होगी।

छोटी हरड़ और मिश्री बराबर पीसकर गोली बनाकर नेत्रो में नियम से लगावे, तो नेत्रों की ज्योति की वृद्धि करे और लाली को दूर करे।

यदि नित्य सीसे की सलाई प्रात काल मुख में गीली करके आँखो में आँजी जाय, तो कभी कोई नेत्र-रोग न हो।

सिरस का काजल—जो नेत्रों की ज्योति बढ़ाने को अद्वितीय है—इस प्रकार बनाया जाय कि सिरस के पत्तों के रस में गाढ़ा कपड़े का टुकड़ा भिगोया जाय। तीन बार भिगो और छाया मे सुखाकर बत्ती बना चमेली के तेल में काजल पारे, और उसका अंजन लगावे।

काली मिर्च १६, पीपल ६०, चमेली की कली ५०, तिल के फूल ८०, सबको खरल-कर सुर्मा बनावे। ज्योति को ख़ूब तेज़ करता है।

माँडा, फूली, जाला, नाख़ूना, मोतियाबिंद आदि के लिये लाभदायक प्रयोग। समुद्र-फल, रीठे की मींगी, खिरनी की मींगी, छोटी हरड की मींगी, सब बराबर ले नीबू के रस में घोटकर गोली बनावे और घिसकर आँखो में लगावे।

हल्दी की एक गाँठ लेकर उसमें छेदकर उसे गेहूँ की बाटी में रखकर आग में पकावे, जब बाटी जल जाय, हल्दी को निकालकर रख ले, और ज़रूरत होने पर उसे फटकरी के साथ घिसकर नेत्रों में लगावे। नाख़ूना के लिये बहुत उत्तम है।

बड़ का दूध नेत्रों में भर दे, तो जाला दूर हो।

बढ़िया सफ़ेद शोरा कलमी १ तोला, हल्दी १ माशा ख़ूब खरल कर ले। नेत्रों में लगावे, इससे जाला, फूला, ढरका आदि आराम होता और ज्योति बढ़ती है।

नौसादर और सफ़ेद फटकरी बराबर मिलाकर ख़ूब खरल करके लगावे, तो जाला, फूली, रतौंधी, ढलका और नेत्रों की कम ज्योति ठीक हो।

मुंडी का पाक

नेत्रों के सब रोगों पर अद्वितीय है। त्रिफला, छोटी हरड, काबली हरड का छिलका, धनिया, पित्तपापड़ा, मुलहठी प्रत्येक १-१ तोला। सबकी बराबर पर गुलमुंडी और सबसे तिगुनी चीनी चाशनी कर मिला दे। मात्रा २ तोला।

रगडा—जो ढलका, सुर्ख़ी, कोओ की सुर्ख़ी और खुजली को लाभदायक है—समुद्रफेन, कत्था सफ़ेद, भुनी फिटकरी, बड़ी हरड का छिलका, रसौत, अफ़ीम, नीला थोथा, सबको बराबर ले फूल की थाली पर रगडा बनावे।

चाकसू उबालकर छील लो, और परवाल उखाड़कर उन्हें घिसकर दो-तीन बार रोज़ लगाओ, परवालों को बहुत फ़ायदा होगा।

कान के रोग

१—काली मिर्च दो पीसकर चम्मच में रख प्रतिदिन कान मे फूँक दे, तो बहरापन दूर होगा। २—कान के दर्द के लिये एक तोला चमेली के तेल में १०-१५लौंग जलाकर तेल कान में टपकवे, दर्द को आराम होगा। ३—कान बहने के लिये उत्तम नुसख़ा यह है कि पीली कौडी जलाकर राख कर लो, पिचकारी लगाकर उसे काग़ज़ की नली से फूँक दो, फ़ायदा होगा। ४-—स्त्री के दूध की धार कान मे लगावे। कान बहने के लिये अजीब है। ५—कान पर सूजन हो, तो प्याज़ का रस, मेथी, अलसी और ईसबगोल पकाकर बाँधे, और उसी का पानी भी टपकावे। ६—यदि कान मे कीड़े पड गए हो, तो एलुवा पानी में पीसकर कान मे भर दे। कुछ देर बाद पानी निकाल डाले। ७—कोई भी तेज़ शराब कान में डालने से दर्द और कीड़े को मार देगी। ८—यदि कान में खुजली हो, तो तेल और सिरका औटा-

कर कान मे डाले । ६--यदि कान में पानी भर जाय, तो माथे को उसी तरफ़ झुकाकर उस कान पर हथेली रखकर उसी ओर के पाँव से खड़े हो जाना, और दो-एक बार कूदना ।

नाक के रोग

१—किशमिश, धनिया और मिश्री १ तोला रात का भिगो दो । सुवह मल-छानकर पिओ, तो नकसीर को फायदा होगा । २—आँवले भिगोकर टिकिया बनाकर तालुए पर बाँधे । ३—ज़ुकाम और सर्दी का यह उम्दा नुसख़ा है—अजवायन १½ तोला, अफ़ीम १½ तोला, काली मिरच २ तोला, अकरकरा, बालछड़, नरकचूर, गूगल, तज, जायफल और सोंठ प्रत्येक ३½ माशा तिगुने शहद में चाशनी करे । मात्रा १ तोला । ४—कोरे काग़ज़ का धुआँ नाक में ले, तो ज़ुकाम को गुण करे । ५—गर्म पानी का तरड़ा सिर पर देने से ज़ुकाम जल्द आराम होता है । ६—नज़ले की गोली—पोस्त के दाने, छिली मुलहठी, अफ़ीम प्रत्येक १० माशा । गोंद बबूर, कतीरा, काहू के बीज प्रत्येक ७ माशा । अजवायन, रीजाबोल और अकरकरा २ माशा कूटकर चने प्रमाण गोली बना ले । मात्रा दो गोली है । ७—मरवा के पत्ते का रस नाक में निचोड़ने से मस्तक की दुर्गंध और कृमि नष्ट होते हैं ।

दाँत के रोग

१—हल्दी भूनकर जिस डाढ़ में दर्द हो, उसके नीचे रक्खे, तो दर्द बंद हो । २—यदि दाँत में कीड़ा लग गया हो, तो अकरकरा ३॥ माशा, नौसादर, अफ़ीम १॥-१॥ तोला महीन पीस कीड़े खाए छेदों में भर दो । ३—यदि दाँत हिलते हों, तो उस पर सावधानी से सेंहुड़ का दूध लगावे । वह आसानी से गिर जायगा । ४—नीम की दाँतन सदा करने से दाँत में कीड़ा नहीं लगता । ५—भुनी फिटकरी १ भाग, भुना नीला थोथा ½ भाग, कत्था १॥ भाग कूटकर मंजन बना ले, तो दाँत मज़बूत होते हैं । ६—यदि मसूढ़ो से ख़ून जाय, तो सेलखड़ी पीसकर मंजन करे । ७—मूँगा पीसकर मंजन करने से दाँत उजले और मज़बूत होते हैं । ८—सीप की भस्म दाँतो में मलने से दाँत उजले होते हैं ।

मुख और जीभ के रोग

१—जला हुआ कागज, बड़ी इलायची के दाने, सफ़ेद कत्था, भुनी फिटकरी बराबर पीसकर बुर्के, तो मुँह आने को फायदा करे । २—मिश्री और कपूर पीसकर बुर्की करे, तो बच्चों का मुँह आने को लाभदायक है । ३—यदि किसी के मुँह से लार बहे, तो रूमी-मस्तगी ७ माशा, मिश्री १० तोला मिलाकर चाशनी करे । मात्रा २ माशा । ४—अकर-करा, राई, पीपल, सोंठ पीसकर जीभ पर मलने से जीभ का भारीपन दूर हो जाता है । ५—होंठों के फटने पर घी-नमक मिलाकर होंठ और नाभि पर मले । ६—यदि गले में सूजन हो, तो खट्टे शहतूत के रस में बूरा मिलाकर पीवे । ७—धनिया चबावे । ८—यदि काग लटक आया हो, तो ईसबगोल सिरके में पीसकर तालू पर मले । ९—यदि गला पड़ गया हो, तो अदरक को खोखला करके, उसमें हींग और नमक भरे, फिर आटे की बाटी मे रखकर

भूभल में पका ले। जब सुगंध आने लगे, आटा अलग करके खाय। आवाज़ खुल जायगी। १०—यदि गुड मे चावल पकाकर खाय, फिर गुनगुना पानी पीवे, तो आवाज़ खुल जाय। ११—यदि सिंदूर खाने मे गला पड गया हो, तो दिए का गुल पान मे रखकर खाय, तो आवाज़ खुल जायगी। १२—चूल्हे की लाल मिट्टी मे एक काली मिरच पीसकर काग को उससे उठा दे, तो बच्चे का काग अच्छा हो जाता है।

पेट के रोगों की दवा

१—साम्हर नमक, सेंधा नमक, काला नमक प्रत्येक १-१ तोला। पोदीना, नरकचूर १॥-१॥ तोला। बडी हरड का बकला, बहेडे का बकला, आमला, पीपल, काली मिर्च, सोंठ, बच, काला ज़ीरा, सफ़ेद ज़ीरा प्रत्येक ३-३ तोला, धनिया २ तोला ४ माशा, सौफ़, अजवायन प्रत्येक ६-६ माशा सबको कूट-छानकर नीबू के रस मे भिगोकर सुखा ले, फिर आँवले के रस में भिगोकर बेर के बराबर गोली बनावे ।। अत्यत पाचक और वायु का अनुलोमन करनेवाली है।

२—सनाय की गोली—जो अजीर्ण, अफारा, मंदाग्नि को दूर करती है—सनाय, बडी हरड, काली मिरच प्रत्येक ३॥ माशा, मुनक़्क़ा ५ तोला कूट-छानकर पानी में गोलियाँ बाँधे। मात्रा ८ माशा। प्रात काल के समय ले। मुलैयन और दस्तावर है।

३—सुहागा ७ माशा, अजवायन ३ तोला काली मिरच ३॥ तोला, एलुआ ४ तोला ८ माशा कूट-छानकर ग्वारपाठे के रस में चने प्रमाण गोली बनावे। यह गोली अजीर्ण की उम्दा दवा है, और जिनका पेट बढ गया हो, उन्हें बहुत मुफ़ीद है।

४—हींग की गोली, जो वादी, तिल्ली, और पेट के अफारे को दूर करती है, भूख लगाती है। सोंठ दो भाग, सुहागा, बडी हरड का बकला, सेंधा नमक, हींग प्रत्येक १ भाग, सहजन की जड का रस १ भाग। झरबेरी के समान गोली बनाकर १ गोली नित्य खानी चाहिए।

५—एलुए की गोली—जो अजीर्ण को दूर करती है, और पेट तथा पहलू की पीडा को नष्ट करती है—एलुआ ७ माशा, काली मिरच, हिंगोटा के फल की मींगी १४ माशा, कूट-छानकर नीबू के रस में चने प्रमाण गोली बनावे। मात्रा ४ गोली। गर्म पानी के साथ खाय।

६—लाल मिरच नीबू के रस में ४० दिन घोटकर २ रत्ती प्रमाण पान में खाय।

७—अनारदाने का चूर्ण—जो पतले दस्तों को रोकता है, भूख लगाता है, अँतडियो को बलवान् बनाता है—अनारदाना १ पाव, सोंठ, ज़ीरा सफ़ेद १४-१४ माशा, सेंधा नमक २ तोला सबको कूट-छानकर १ तोला खाय।

हैज़े की गोली—आक की जड बराबर अदरक के रस में घोटकर काली मिरच के प्रमाण गोली बनावे। दो-दो घटे मे दे। बहुत गुण करेगी।

८—यदि मिट्टी, कोयला, राख खाने पर मन चले, तो नित्य ३॥ माशा अजवायन खाय।

९—जी मिचलाता हो, तो इमली मुँह मे रक्खे।

१०—यदि शराब पीने से मितली हो, तो साठी के चावल पानी में भिगोकर वह पानी पीवे।

११—नीबू या अनार का शर्बत भी वमन को रोकता है।

१२—हरे पोदीने का रस १ पाव ले, ३ पाव खाँड की चाशनी करे। ३॥ माशा मस्तगी मिला दे। यह शर्बत मितली, वमन आदि के लिये अत्यंत गुणकारी है।

१३—जिगर की सूजन में अजवायन, सौंफ और काले नमक की गोली बनाकर दे।

१४—जलंधर रोग में १० तोला ताजा गो-मूत्र नित्य पीवे। दूध भोजन करे।

१५—यदि किसी स्त्री का पेट प्रसव के बाद बड़ा हो गया हो, तो यह दवा उसे बहुत गुण करेगी—मिर्च, पीपल, पीपलामूल, वच, चीता, छड़ीला, नागरमोथा, वायविडंग, देवदारु, त्रिफला, कूट, बीजाबोल, सौंफ, गजपीपल, इन्द्रजौ, प्रत्येक ३॥ माशा, निसोत १० माशा कूट-छानकर सबके बराबर पुराना गुड़ मिलाकर २-२ माशे की गोलियाँ बनावे। १५ दिन तक १ गोली प्रातःकाल खाय।

तिल्ली

१—तिल्ली की यह उम्दा दवा है—एलुआ, हींग, सुहागा, नौसादर, सफेद सज्जी, सब बराबर लेकर घीगुवार के लस में बेर के समान गोली बनावे।

२—आक के पीले पत्ते अच्छी तरह धोकर पानी में भिगोकर धूप में रख दे। ३ दिन बाद वह पानी पीवे, तिल्ली को बहुत गुण करेगा।

३—चिरचिटे की बाल सुखाकर एक कोरी हाँडी में बंद करके राख कर ले। उसमें बराबर खाँड़ मिलाकर ६ माशे रोज़ पानी के साथ फंकी ले। तिल्ली बहुत जल्दी आराम होगी।

मुलैयन

मुनक्का पाव-भर, मस्तगी २ तोले, सफेद चंदन २ तोले १० माशा कूट-छानकर मुनक्का के बीज निकालकर गुलाब में पीसकर दवा में मिलावे। मात्रा ७ माशा। दस्त को नरम करती है। वायु-शूल को गुण करती है। मुनक्के के बीज निकाल लिए जाने चाहिए।

पेट के कीड़े

यदि पेट में कीड़े पड़ गए हो, तो कबीले की गोली दे। नुसख़ा यह है कि हींग, पोदीना, वायविडंग, सेंधा नमक, काबली हरड़, कबीला बराबर कूट-छानकर गोलियाँ बनावे। मात्रा ३ गोली नित्य।

घाव

१—ताजा घाव हो, तो उसे साफ करके साफ चीनी भर दो।

२—पटेरा कास, जिसकी चटाइयाँ बनती है, जलाकर घाव पर बुरकी देने से घाव भर जाता है।

३—यह गोली गंजे व घाव को फायदा करती है—बेल गिरी की मींगी, कथा, नीला थोथा, सब बराबर लेकर गोलियाँ बनावे। घिसकर लगावे, ऊपर गुड़ बाँधे, जल्द आराम होगा।

४—यह तेल हर प्रकार के घावों को लाभदायक है—१ सेर ख़ालिस मीठा तेल कढ़ाई में डालकर औटाओ, पीछे नीम की पत्तियों की टिकियाँ और कनेर के पत्तो की टिकियाँ आध पाव, मोम १ पाव, बकायन की पत्तियाँ १३ तोला ४ माशा, सबको पकाओ। जब पक जाय, छानकर काम में लाओ।

५—यह तेल नासूर को फायदा पहुँचाता है और आतशक के लिये भी नायाब है—भिलावाँ, कौंच के बीज १-१ तोला। ख़ुरासानी अजवायन, मुर्दासंग प्रत्येक ३-३ माशा। नीला थोथा २ माशा, तिल का तेल ½ पाव। पहले तेल पकावे, जब उफान आवे, भिलावाँ उसमें डालकर जलावे। फिर कौंच के बीज, अजवायन पृथक्-पृथक् डाले। इसके बाद नीला थोथा मुर्दासंग पीसकर मिलावे और आँच पर से उतारकर ख़ूब रगड़े, जब दूध के समान हो जाय, तब छानकर काम में लावे। बहुत गुणकारी है।

मलहम नं० १—जो घाव को फौरन् भरता है—मीठा तेल १ पाव लोहे के बर्तन में गर्मकर उतार ले, फिर कौंच के बीज पीसकर मिलावे और नीम के पत्ते तथा नरमा की पत्तियों की टिकिया मिलाकर ६ तोला ८ माशा मोम गर्म करके तेल में मिलाकर काम में लावे।

मलहम नं० २—गूगल, पारा प्रत्येक ३॥ माशा, रसौत ७ माशा, प्रथम गूगल, रसौत को रगड़े, फिर पारा मिला दे। यह मलहम बिना चिकनई बनता है। पर सब प्रकार के घावों पर अद्वितीय है।

मलहम नं० ३—राल ३॥ माशा, शिंगरफ १ माशा, मुर्दासंग १ माशा, कौंच के बीज छिले हुए ३ माशा, सरसों का तेल ३ तोला ४ माशा। पहले कौंच के बीज तेल में जलावे, पीछे नीम की पत्ती की टिकिया उसमें जलावे, फिर छानकर दवा उसमें डालकर रगड़े। यह मलहम सब प्रकार के घावों को शीघ्र अच्छा करता है।

मलहम नं० ४—जो पैरों की बिवाई को फ़ायदा करता है—राल, घी १॥-१॥ तोला, मोम ५ माशे, घी-मोम मिलाकर राल मिलावे।

मलहम नं० ५—जो थनैल, उपदंश और नासूर को भी फायदा पहुँचाता है—सरसों का तेल, सेलखड़ी, मोम प्रत्येक १ तोला ८ माशा, जंगाल ४ माशा। मलहम बनावे।

मलहम नं० ६—जो घाव भरने में अद्भुत है—पुरानी रुई जली हुई १० तोला, मोम ५ तोला, ख़ुरासानी वच ५ तोला, गाय का घी ४ तोला ४ माशा, नीला थोथा २ रत्ती। प्रथम घी और मोम को एक बर्तन में गर्म करो और उसमें रुई की राख भरे। फिर वच मिलाकर नीला थोथा भून-पीसकर मिलाओ, बस मलहम तैयार है।

फुटकर

दाद की दवा—सुहागा १६ माशे, मालकाँगनी १६ माशे, शीतल चीनी १६ माशे,

पारा १६ माशे, इन सबको बारीक पीसकर कागज़ी नींबू के रस में गोली बना लो। पानी में घिसकर लगाने से आराम हो जाता है।

बवासीर की दवा—निबौरी की गिरी, बकायन की गिरी, कच्ची इमली की गिरी, भँगरा गूगल, सब बराबर। इसमें चौगुनी मिश्री मिलाकर झरबेरी-सी गोली बना ले। सुबह-शाम खाय।

हुचकी की दवा नं० १—छुहारा १ माशा, मुनक्का १ माशा, मिश्री १ माशा, घी ६ माशे, शहद २ तोले, सबको पीसकर चटनी बनाकर थोड़ी-थोड़ी खानी चाहिए।

हुचकी की दवा नं० २—इलायची १ माशा, वंशलोचन १ माशा, अगर १ माशा, ज़हरमुहरा ख़ताई १ माशा, पोदीना सूखा १ माशा, पीपल ४ रत्ती, शर्बत अनार २ तोला, सबकी चटनी बनाकर थोड़ी-थोड़ी खानी चाहिए।

हुचकी की दवा नं० ३—(पिलाने की) पोदीना सूखा ४ माशे, अगर २ माशे, छोटी इलायची छिलके-सहित ४ माशे, सबको ज़रा कुचलकर पाव-भर पानी में पकावे, जब चौथाई रह जाय, ठंडा करके थोड़ी-थोड़ी देर में पिलावे।

अरहर की भूसी हुक़्क़े में रखकर पीने से और मोर के पंख जलाकर ३ माशा शहद में चाटने से भी हुचकी बंद हो जाती है।

जाले और धुंध के लिये सुरमा—सीसे की गोली चलाई हुई १६ माशे, पीपल छोटी ७ माशे, सीसा पत्र करके ज़ीरे की तरह काटकर पीपल डालकर सुरमे की तरह पीस ले। रात को सोती बार लगावे। दाँतों में दर्द हो, तो मंजन करे।

बच्चों की पसली चलना—तूतिया १ माशा, रीठा २ माशे, इनकी गोली बाजरे के समान बना ले। माता के दूध में घिसकर पिलावे।

दाँत के दर्द की दवा—पोस्त ताड़, पोस्त बबूल, पोस्त कचनार, पोस्त अनार, पोस्त बेरी, पियावाँसा प्रत्येक १० तोले ८ माशे, फिटकरी ८ माशे, वायविडंग ८ माशे एक बड़ा पानी डालकर जोश दे। जब आधा रह जाय, तब सोते समय कुल्ले करे। और दो-तीन घंटे पानी से परहेज करे। १५-२० दिन लगातार कुल्ले करे, सिर्फ रात को सोती बार ही। कुल्ले करने के बाद ५-६ कुल्ले गर्म पानी से करे, पानी ठंडा होने पर थूक दे।

पेट के दर्द की दवा—नमक लाहौरी २ तोले, नमक साँभर १ तोला, नमक काला ६ तोले, नौसादर ८ तोले, अजमोद ७ तोले, काली मिर्च ३ तोले, सफ़ेद मिर्च ३ तोले, करफ़स ३ तोला, अफतीमून ४ तोला, सबुलतीक ४ तोला, हींग ४ तोला, जीरा सफ़ेद १ तोला, ज़ीरा स्याह ४ तोला, दारचीनी १ तोला, लवकुरतम १ तोला, जजबील १ तोला, मुलहठी १ तोला, अनेसू १ तोला, नमक नकछिकनी २६ तोला, गंधक का तेज़ाब ८ तोला, सबको ख़ूब बारीक पीसकर बोतल में भरकर, बोतल का मुँह बंद करके ४० दिन तक जमीन में गाड़ दे। बाद में दर्द, भूख, हाज़मे में ४ रत्ती से १ माशा तक सुबह दे। ख़ूब भूख बढ़ती है।

पेट के दर्द का लेप—समुद्रसोख १६ माशे, मैदा लकडी २४ माशे, हालों २४ माशे, तज २४ माशे, मेथी १६ माशे, हल्दी १६ माशे, सबको कूट पानी मे मिलाकर पेट पर लेप करे। उपले की आग मे दूर से सेंके। ऊपर मे एरंड के पत्ते बाँध दे। हल्दी की पोटली को अलसी के तेल में भिगोकर सेंके।

हाजमे और पेट के दर्द की दवा—सौफ, काली मिर्च, लौंग, सेंधा नमक, काला नमक, गधक आँवलासार प्रत्येक ३ तोला, अम्लबेत ६ माशे, जवाखार ६ माशे, सज्जी गुलाबी ६ माशा, ज़ीरा काला ६ माशे, इलायची सफ़ेद ६ माशे, चकोतरे का छिलका ६ माशे, सबको कूट-पीसकर ३ दिन नीबू के अर्क में घोटे, फिर ४ दिन घीगुवार के रस में। मात्रा १ माशे से २ माशे।

कब्ज़ की दवा—बेल, अजवायन, वच, चीता, हींग भुनी, अतीस, सौंफ़, पाढर, चव्य, कुटकी, सेंधा नमक, काला नमक, साँभर बुरारी, बडा नौन, मूड जवाखार, इन्द्रजौ, सोठ, पीपल, कालीमिर्च, हरड, बहेडा, आँवला, तज, पत्रज, बडी इलायची, सब बराबर। सबको पीसकर गर्म पानी से ले। मात्रा १ से ४ माशे तक। अतिसार में छाछ के साथ दे।

पेशाब अधिक आने की दवा—बशलोचन १ तोला, सालब मिश्री १ तोला, समुद्र-सोख ५ तोला, ताल मखाने ५ तोला, सफ़ेद मूसली १० तोले ८ माशे, बबूल की फली १० तोला ८ माशे, बिनौले की गिरी १० तोला ८ माशे, सबको बारीक पीसकर सबकी बराबर खाँड मिलावे। मात्रा ६ माशे से १ तोला तथा २ तोला जामुन की शिकजबीन, अर्क गाज़बाँ १५ तोला में मिलाकर साथ लेने से अधिक पेशाब आना बंद हो।

खून शुद्ध करने की दवा—चोबचोनी ५ तोला, असगंध १ तोला, मूसली सफ़ेद, लौंग, जाविश्री, कहरवा, वंशलोचन, १ तोला प्रत्येक। चिडियाकंद, शतावर, कौंच के बीज की गिरी, जायफल, अकरकरा, कुलींजन, केसर, अजवायन, हालो, मेथी, मस्तगी, गोंद ढाक, सत गिलोय, इलायची सफ़ेद, दालचीनी, पत्रज, बडी इलायची, कमल गट्टा की मीगी, तोदरी सफेद, जीरा गुलाब का, ज़ीरा काला, मूँगे की जड, प्रत्येक ८ माशा, बाल छड, अगर, किशमिश १६ माशा, बादाम गिरी ४ तोला, बहमन दोनो १६ माशे, पिस्ता ४ तोला, चिलगोजा ४ तोला, कस्तूरी २ माशे, उश्वा ११ माशे, मोती ६ माशे, वर्क चाँदी ६ माशे, वर्क़ सोना १ तोला, अबर २ माशे, संगयस्व ४ माशे, गोखरू बडे ६ माशे, ताल मखाने ६ माशे, सबको बारीक कपड छानकर शहद में मिलाकर ४० दिन परहेज़ से खिलावे। मात्रा १ तोला से २ तोले तक।

मलेरिया ज्वर को दवा १—कुनैन ३ माशे, कसीस ३ माशे, गधक का तेज़ाब ३ माशे, सखिए का पानी (लीकर आर्सनिक एलिस) २० बूँद।

विधि—प्रथम कुनैन को खरल में डालकर उसमें गंधक का तेजाब, जो बहुधा सुनार लोग काम में लाते हैं, डाल दो। जब कुनैन उसमें घुलकर पानी हो जाय, तब कसीस मिला

दो। इन सबको छानकर १ पूरी बोतल में भर लो। बाकी बोतल को पानी से भर दो, इसमें संखिए का पानी डाल दो। दवा तैयार है। फसली मलेरिया पर हुक्मी है। मात्रा १॥ तोला। बुख़ार चढ़ने से प्रथम ३ मात्रा पेट में पहुँचने से उसी दिन बारी रुक जायगी। रोगी को सिर्फ़ दूध-भात खिलाना और पका हुआ पानी पिलाना चाहिए।

२—करंज की मींगी १ छटाक, काली मिर्च १ तोला पानी में बेर के समान गोली बनावे, सब प्रकार के बुख़ारों को रोकती है।

बुख़ार उतारने की दवा—मलेरिया बुख़ार जोर का चढ़ा हो और बहुत बेचैनी हो, तो उसका जोर कम करने को यह दवा दे—

पान में खाने का चूना और नौसादर दोनो एक-एक माशा अलग-अलग पीसकर मिला दे। ऊपर फौरन् ६ माशा सिरका डाल दे। झाग उठेंगे, उनके बंद होने पर ? छटाक पानी मिला दे। यह दवा प्रत्येक घंटे में १-२ तोला पिलावे। पसीना आकर बुख़ार उतर जायगा और शरीर हल्का हो जायगा।

सिर-दर्द की दवा—कपूर, अजवायन का सत, पिपरमेंट, तीनो चीजें बराबर लेकर एक शीशी में रक्खे, पानी हो जायगा। सिर पर लगाने से फौरन् दर्द मिटेगा। अगर सर्दी से दर्द हो, तो सोंठ, अफीम, गेरू इन तीनो का लेप गर्म करके किया जाय। अगर गर्मी से है, तो सफेद चंदन कपूर के साथ घिसकर लेप करे। अगर ज़ुकाम बंद होने से दर्द हो, तो दो माशा ख़ूब कलौं, २ छटाक मिश्री के शर्बत को गुनगुना करके पिलावे, ज़ुकाम जारी हो जायगा, और हरारत जाती रहेगी। दिमाग में यदि रेजिश हो और सिर भारी मालूम पड़े, अक्सर दर्द रहे, आँखो में भारीपन हो, तो बिदाल के फल के अंदर का जाला ६ माशे पानी मे भिगो दे। ५ मिनट के बाद मलकर नाक मे २०-२० बूँद टपका दे। ख़ूब गंदी रेजिश निकलेगी। तीन दिन ऐसा करे। सिर्फ़ मूँग की दाल और ख़ुश्क रोटी खाय, दिमाग साफ हो जायगा, पीनस को भी इसी तरह फायदा होगा।

कमलबाय—जिसे पीलिया भी कहते है—शर्बत अनार पानी मे मिलाकर दिन मे तीन बार पीने से फायदा होगा। पर यह शर्बत बाजारू न होना चाहिए। उम्दा अनार का रस १ पाव निचोडकर उसमें ३ पाव सफ़ेद खाँड की चाशनी कर लेना चाहिए। यह कमलबाय की स्वादिष्ठ दवा है। कड़ुई तोरई का शाक २-३ दिन भर-पेट खाने से भी फायदा होगा। कड़ुई तोंबी के बीज का अर्क नाक में टपकाने से दो रोज मे फायदा होगा।

साँप के काटे की दवा—यह दवा हमे लाहौर मे एक पंजाबी से मिली थी। उस पंजाबी का यह हाल था कि सौ-पचास साँप सदा पाले रखता था। साँप पकडने का ही कार्य करता था। पास कोई हथियार साँप पकडते वक्त नही रखता था। उसे इस बात की परवा नही थी कि साँप कितना ज़हरी है या काट खायगा। वह अंधाधुंध भट मे हाथ डालकर साँप को पकडकर खींच लेता था। उसके हाथ मे आते ही साँप बिलकुल सुस्त-सा हो जाता

था। यह भी देखा गया कि वह साँप का फन पकडकर ज़बर्दस्ती काटने को अपने शरीर पर लगाता था, पर साँप को उसके शरीर से इतनी घृणा थी कि फन छुआता ही न था। बहुत ख़ुशामद और दवाव के बाद उसने दवा बताई। उसे हमने ख़ुद १५-२० बार आज़माया और अचूक पाया। दवा यह है—रीठा २, चिरमिटी (सुनारो के तोलने की रत्ती) ५, नौसादर १ माशा, रेशम का बढ़िया कपडा १ तोला। कपडे में तीनो चीज़ो की पोटली बनाकर निर्धूम कोयलो पर जला ले। जब धुआँ बंद हो जाय, तब आहिस्ता से उठा ले, पीसकर ३ पुडियाँ बनावे और घी में प्रति घटे १ पुडिया चटावे। उसी मे से थोडी ज़ख्म पर लगावे, अवश्य आराम होगा। उक्त पंजाबी का कथन था कि मै गत बीस बरस से इस औषध को प्रतिक्षण मुख में रखता हूँ। मेरे पसीने की गंध से साँप दूर भागते है। और रोगी को आराम करने को तो मेरे मुँह की लार ही काफी दवा है। यह आदमी साँप के काटे स्थान को मुँह से चूसता था, यह भी सुना गया।

पेचिश

१—बेलगिरी १ तोला, कुडे की छाल २ तोला, सौंफ़, काली हरड प्रत्येक १-१ तोला, ईसबगोल ६ माशा, मिश्री ३ तोला। हरड को घी में भूनकर सिवा ईसबगोल के सबको कूट-छानकर ७ माशे से १ तोला तक शक्ति अनुसार सुबह-शाम खाय। भात और मसूर की दाल का भोजन।

२—छोटी हरड, सोठ, सौफ़ घी में भून ले। प्रत्येक १ तोला। बूरा सबके बराबर मिलाकर ६ माशा सुबह-शाम फंकी ले।

३—बबूल का गोंद प्रतिदिन १ तोला डेढ माशा ११ दिन तक पीसकर खाय। अगर दस्त ज्यादा आवे, तो पोस्त का डोडा महीन पीसकर ४॥ माशे से ६ माशे तक पीवे।

४—मुलतानी मिट्टी पीसकर बिहीदाने व ईसबगोल के लुआब मे मिलाकर खाय।

५—कुडे की छाल, अतीस, बेलगिरी, मोथा, नेत्रबाला, इनको प्रत्येक को ४-४ माशा लेकर १ पाव पानी मे पकावे। १ छटाक शेष रहे, छानकर दोनो समय पिए, तो आम, शूल, ख़ून मरोड फ़ौरन् आराम होगे।

खाँसी की गोली—वंशलोचन, केसर, बहेडे का बकला, लौंग, काकडासिंगी, काली मिर्च, पीपल, इलायची छोटी, मुलैठी, कुलींजन प्रत्येक ६-६ माशा, कत्था ३२ माशा, कस्तूरी १॥ माशा बबूल की छाल का रस ६४ माशा, अदरक का रस १० तोला, पान बँगला १०। उर्द के समान प्याज़ के अर्क में गोली बना ले। देने से हैज़े को फायदा करेगी।

धातु पुष्ट की दवा—बबूल की फली १ तोला, ताल मखाना ६ माशा, बीजबंद ३ माशा, मिश्री ३॥ तोला, छाँह में सुखाकर फली के बीज निकालकर कपड-छानकर चूर्ण बनावे। ६ माशा मात्रा दूध के साथ फंकी ले।

सुज़ाक की दवा—वंशलोचन, माजूफल, कत्था सफ़ेद, प्रत्येक १-१ तोला। चंदन का

तेल ३ तोला। सबका चूर्ण कपड-छान करके तेल में २४ गोली बनावे। ६ गोली नित्य खाय। पथ्य दूध-भात। शर्तिया आराम।

जिगरो हरारत को दवा—कुनैन ६ रत्ती, लोहभस्म ६ रत्ती, बबूल गोंद ६ रत्ती, सबकी १२ गोली बनाना। पानी के साथ १-१ गोली दोनो समय खाना।

गर्भ रहने की दवा—पान बँगला १, लौंग १ अफ़ीम १ रत्ती, सबको पीसकर चने बराबर गोली बनाओ। पानी न डाला जाय। ऋतु-स्नान के बाद स्त्री खाय। उसी दिन प्रसंग करे। गर्भ रह जायगा।

कोढ़ की दवा—विसखपरा का रस ४ तोला नित्य पीवे, २१ दिन मे लाभ होगा।

सफेद दाग की दवा—नीलाथोथा और सहजने के बीज पानी मे घिसकर लगावे।

बिच्छू काटने पर—फिटकरी सफ़ेद फूला करके पानी मे घोलो, और ४-४ कतरे दोनो आँखों में डालो। फ़ौरन् ज़हर उतरेगा।

अध्याय तेरहवाँ

प्रसिद्ध नुसख़े

प्रकरण १

स्वर्ण-वसंत-मालिनी

सोने के वर्क १ तोला, मोती २ तोला, हिंगुल शुद्ध ३ तोला, काली मिर्च ४ तोला, खपरिया शुद्ध ८ तोला। पहले मक्खन में घोटे, फिर नीबू के रस मे घोटे, जब तक कि चिकनाई नष्ट न हो जाय। क्षय और पुराने ज्वर का प्रसिद्ध नुसख़ा है।

मकरध्वज चंद्रोदय

पारा २० तोला, गंधक शुद्ध २० तोला, १ प्रहर घोटना। बाद को घीगुवार का रस डालकर ४ पहर घोटे, फिर छाया में सुखा ले और आतशी शीशी मे कपर मिट्टी करके भर ले। मुँह बदकर १२ पहर वालुका-यन्त्र मे पकावे। १२ पहर की अखंड आँच लगनी चाहिए। जब सिद्ध हो जाय, तब उसमें २० तोला गधक मिलाकर फिर उसी प्रकार पकावे। इस भाँति ६ बार करे। और प्रत्येक बार ४ पहर की आँच बढ़ाता रहे। अंत मे शीशी मे २० तोला गधक तथा ४ तोला सोने का वर्क डालकर ३६ पहर की आँच दे, तो दवा का रंग सुर्ख़ बानात की भाँति सुर्ख़ होगा। यह अद्वितीय दवा है, सब रोगो में रामबाण है। ख़ुराक १ चावल।

कस्तूरी भैरव

हिंगुल, विष शुद्ध, सुहागे का लावा, जावित्री, जायफल, मिर्च, पीपल, कस्तूरी, सब समान भाग। एक बार अदरख और १ बार ब्राह्मी के रस में खरल करना। मात्रा २ रत्ती। सन्निपात, मूर्च्छा, वात-व्याधि और कफ के रोग में देना चाहिए।

मृतसंजीवनी सुरा

पुराना गुड ३२ सेर, कुटी हुई बबूल की छाल २० पल, अनार की छाल, अडूसे की छाल, मोचरस, वाराहक्रांता, अतीस, असगध, देवदारु, बेल की छाल, श्योनाक की छाल, पाटला की छाल, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बृहती, कठेहली, गोखरू, बेर, बडे खीरे की जड, चीता, पुनर्नवा, प्रत्येक ४० तोला, कूटकर १२८ सेर पानी मे मिलाकर मिट्टी के बड़े बर्तन मे रखकर मुँह बद कर देना। १६ दिन बाद कुटी हुई सुपारी ४ सेर, धतूरे की जड, लौंग,

पद्माख, खस, लाल चंदन, मोचा, दारचीनी, इलायची, जायफल, मोथा, सोंठ, मेथी, मेढा सींगी और चंदन प्रत्येक ८-८ तोला लेना। सबको बंदकर ४ दिन बाद अर्क खींचना। बल, अग्नि और आयु के अनुसार मात्रा में देने से घोर सन्निपात, हैजा आदि रोग दूर होते हैं, खूब भूख बढ़ती है, और बल बढ़ता है, तथा शरीर में कांति, पुष्टि की वृद्धि होती है।

सुदर्शन चूर्ण

अगर, हल्दी, देवदारु, वच, मोथा, हरड़ बड़ी, जवासा, काकड़ासींगी, कटेहली, सोंठ, जायमान, पित्तपापड़ा, नीम की छाल, पीपलामूल, बाला, कचूर, कूट, पीपल, नेत्रबाला, कुड़े की छाल, मुलहठी, सहजने के बीज, नीलोफल, इंद्रजौ, शतावर, दारुहल्दी, लालचंदन, पद्माख, चीढ़, खस, दारचीनी, फिटकरी, शालपर्णी, अजवायन, अतीस, बेल की छाल, काली मिर्च, आँवला, गिलोय, कुटकी, चीता, पलवल का पत्ता, पृष्ठपर्णी सब बराबर। सबके बराबर चिरायते का चूर्ण मिलाना। यह प्रसिद्ध सुदर्शन चूर्ण का नुसखा है। यह चूर्ण पुराने ज्वर के लिये काल के समान है।

दशमूल का काढ़ा

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनो कटेहली, गोखरू, अरनी, गम्भारी, बेल की छाल, पाटल। यह प्रसिद्ध दशमूल का काढ़ा है, जो स्त्री-रोगों के लिये बहुतायत से काम मे लाया जाता है।

चंद्रप्रभा

वायविडंग, चित्रक, सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, देवदारु, चाभ, चिरायता, पीपलामूल, मोथा, कचूर, वच, स्वर्णमाक्षिक, सेंधा नमक, काला नमक, जवाखार, सज्जी, हल्दी, दारुहल्दी, धनिया, गज पीपल, अतीस प्रत्येक २-२ तोला, शिलाजीत ८ तोला, गूगल ८ तोला, लोहा ८ तोला, मिश्री १६ तोला, वंशलोचन ४ तोला, दंती, भिलावा, दारचीनी, तेजपात, इलायची प्रत्येक २ तोला। कज्जली ८ तोला। सबको मिलाकर ४ रत्ती की मात्रा में गोली बनाना। यह प्रमेह पर रामबाण दवा प्रसिद्ध है।

हिंग्वष्टक चूर्ण

सोंठ, मिरच, पीपल, सेंधा नमक, जीरा सफ़ेद, ज़ीरा काला, अजवायन और हींग भुनी हुई प्रत्येक बराबर। यह चूर्ण प्रसिद्ध पाचक है।

हेमगर्भ

चन्द्रोदय ३ भाग, स्वर्ण-भस्म १ भाग, ताम्र-भस्म १ भाग, गंधक १ भाग। सब चित्रक के रस में दो पहर खरल करके बाद में कौड़ी मे भरकर सुहागे से बंदकर हाँडी मे फूँकना। यह राजयक्ष्मा की प्रख्यात महौषध है।

योगराज गुग्गुल

चित्रक, पीपलामूल, अजवायन, काला ज़ीरा, विडंग, अजमोद, सफ़ेद ज़ीरा, देवदारु,

बड़ी इलायची, चाव्य, सेंधा नमक, कूट, रास्ना, गोखरू, धनिया, त्रिफला, मोथा, त्रिकुटा, दारचीनी, खस, जवाखार, तालीशपत्र, तेजपात, सब बराबर और सबके बराबर गुग्गुल मिलाकर घी का हाथ लगाकर १ लाख चोट पहुँचाना। वात-रोग की प्रसिद्ध दवा है।

वसंतकुसुमाकर

स्वर्ण-भस्म २ भाग, चाँदी-भस्म २ भाग, वंग, सीसा, लोहा भस्म प्रत्येक ३-३ भाग। अभ्रक, प्रवाल, मोती-भस्म प्रत्येक ४-४ भाग। सब एकत्र मिला क्रम से गाय का दूध, ईख का रस, अड़से की छाल का रस, लाख के काढे का रस, नेत्रबाला के काढे का रस, केले की जड का रस, केले के फूल का रस, कमल का रस, मालती के फूल का रस, केशर का पानी और कस्तूरी सबकी पृथक्-पृथक् भावना देकर २ रत्ती की गोली बना लो। चीनी, घी, शहद के साथ अनुपान है। प्रमेह और धातु-दौर्बल्य की एक-मात्र श्रेष्ठ दवा है।

सुहागसोंठ

त्रिकुटा, त्रिफला, दालचीनी, जीरा काला, जीरा सफ़ेद, धनिया, कूट, अजवायन, लोह-भस्म, अभ्रक-भस्म, काकड़ासींगी, कायफल, मोथा, बड़ी इलायची, जायफल जावित्री, जटा-मासी, तेजपात, तालीशपत्र, नागकेशर, कचूर, मुलहठी, लौंग, लाल चंदन सब बराबर, सबके बराबर सोंठ का चूर्ण। प्रथम सोंठ के चूर्ण का दुगुने गाय के दूध में खोया करे, फिर चौथाई घी मे भूने, इसके बाद चौगुनी मिश्री की चाशनी करके सब मिला दे। मात्रा ६ माशा। अत्युत्तम है। प्रसव के बाद स्त्रियो को सेवन करना चाहिए।

सितोपलादि चूर्ण

मिश्री, वंशलोचन, दारचीनी, छोटी इलायची, छोटी पीपल, प्रत्येक क्रमबद्ध दुगुनी लेकर चूर्ण बनाना। प्रसिद्ध है।

जवाहर मोहरा

कस्तूरी ४ रत्ती, अंबर ३ रत्ती, कहरवा ३ रत्ती, लहसनिया २ रत्ती, जदवदस्तर २ रत्ती, केशर २ रत्ती, ज़दवार ख़ताई २ रत्ती, मस्तगी २ रत्ती, दरियाई नारियल ३ रत्ती, मोती २ रत्ती, मोमियाई १६ रत्ती, पन्ना २ रत्ती, चुन्नी २ रत्ती, संगयशब २ रत्ती, अफीम २ रत्ती, मूँगा २ रत्ती, नीलम २ रत्ती, जहरमोहरा ३ रत्ती, वर्क़ सोना ३ रत्ती, नीलम २ रत्ती, लाजवर्द २ रत्ती, फिरोज़ा २ रत्ती, सबको खरल किया जाय। दिल और दिमाग के लिये अत्यंत गुण-कारी है।

दवाल मुश्क मोतदिल

गुल गावज़ुवाँ १ तोला, चंदन दोनो २ तोला, धनिया १ तोला, बहमन दोनो १ तोला, पीपल, केशर, कहरुवा, ऊदगरकी, याकूत सुर्ख़, याकूत सफ़ेद, कस्तूरी, सोने के वर्क, अंबर प्रत्येक ३॥ माशा, मोती ६ माशा, वर्क चाँदी ७ माशा, शर्बत सेब ५ तोला, मिश्री ३० तोला। मात्रा १ से ३ माशा तक। दिल को ताकत देती है।

ख़मीरा गावज़ुबाँ अंबरी

गावज़ुबाँ, गुल गावज़ुबाँ, धनिया (कुटा हुआ), आवरेशम (कटा हुआ), बहमन सफ़ेद, तुख्मबालंगा, सदल सफ़ेद, फिरंजमुश्क, अज़ख़र १-१ तोला। तबाशीर ६ माशा, अंबर अशहब २ माशा, १ सेर अर्क़ गुलाब में इसको भिगो दे। सुबह जोशकरे ६ छटाक रहे, तो छानकर १० छटाक मिश्री की चाशनी करे। अंबर और तबाशीर अलग-अलग पीसकर मिलावे। वर्क़ सोना २ माशा, वर्क़ चाँदी ६ माशा, मोती, याक़ूत सुर्ख़, ज़हरमोहरा ख़ताई, ज़मर्रुद, अज़ख़र ३ माशा। गुलाब में खरल कर जुदा-जुदा मिलावे। दिल-दिमाग को तरावट देनेवाला है।

ख़मीरा मरवारीद

मोती आबदार ६ माशा, यशवसब्ज़ ६ माशा, ज़हरमोहरा ४ माशा, क़ंद स्याह १ पाव, शर्बत सेब शीरीं २ छटाक, अर्क़ वेदमुश्क ½ सेर, अर्क़ गुलाब ½ सेर, अर्क़ संदल १ पाव, अर्क़ गावज़ुबाँ १ पाव, वर्क़ सोना ३ माशा, वर्क़ चाँदी १ तोला, मात्रा ।॥ माशा। कलेजे की गर्मी और दिल की धड़कन को उत्तम है।

केशरंजन तेल

तिल का तेल १ सेर ब्लाटिंग से छानकर तज २ तोला, पत्रज २ तोला, छारछबीला २ तोला, पाढरी २ तोला, सुगधवाला २ तोला, नागरमोथा २ तोला। चूर्ण बनाकर डालकर १५ दिन रख दे, दिन में धूप में और रात को ओस में। फिर छानकर रतनजोत विलायती डालकर २ दिन धूप में रक्खे। जब पूरा लाल रंग हो जाय, तो यह दवा मिला दे। आइल बर्गमेट १ औंस, नैरोली २ ड्राम, सिटरन २ ड्राम, वरवीना १ ड्राम। फिर काम में ले। ओटोडिरोज २ ड्राम।

जवाकुसुम तेल

धोई तिल्ली का तेल उपर्युक्त विधि से मूर्च्छित कर शुद्ध कर लिया जाय। फिर छानकर ये दवाइयाँ उसमें मिलाई जायँ। आइल लेमन २ ड्राम, बर्गमेट २० बूँद, कपूर २० बूँद, पिपरमेंट २० बूँद। एकत्र करके रतनजोत से रँग लिया जाय।

अमृतधारा

कपूर, सत अजवायन, पिपरमेंट, तेल इलायची, तेल दारचीनी, सब बराबर मिलाकर काम में लाओ।

अध्याय चौदहवाँ

खास नुसखे

प्रकरण १

पारा-भस्म

पारा शुद्ध १ तोला, नमक सेंधा ११ तोला, समंदर झाग १० तोला, हल्दी ३ तोला, लोवान कौडिया २० माशा, केशर असली २० माशे, सवकोअलग-अलग पीसकर कपड़छन करे। मिट्टी के प्याले में प्रथम आधा नमक विछावे, उस पर आधा समंदर झाग, फिर सब चीज़ें यथाक्रम जमावे। बीच मे पारा रख दे। फिर अनुक्रम से उसी प्रकार बाकी वस्तु जमा दे। और दूसरे प्याले मे सपुट कर दे, फिर मज़बूत कपरमिट्टी करे। गढे मे १५ सेर उपलो में हवा और औरत की साया बचाकर आँच दे। सर्द होने पर निकाले। इस तरह २५ आँच दे। बस तैयार है। जो गुलाबी निकलेगा, तो सोना बनावेगा। और आसमानी होगा, तो अक्सीर वाह कोढ़ होगा। मात्रा १ चावल।

पारे की गोली

सोने के वर्क़ १ तोला, पारा शुद्ध (बुभुक्षित) १ तोला नीबू के रस मे दो पहर घोटकर गोली बनाओ। अब नीबू के रस में सरगवा के पत्तो की लुगदी करके उसकी दो मूषा बनाओ। उसमे गोली रख दोनो मूषाओ को संपुट कर दो। यह मूषा एक कपडे में बाँधकर एक हाँडी में अधर लटकाओ और हाँडी को काँजी से भर दो। आठ दिन तक पकने दो। प्रतिदिन मूषा नई बदल दिया करो।

आठ दिन बाद १ मिट्टी का गहरा शकोरा लेकर उसमें चना और बेर के पत्तों की लुगदी दबाओ, उस पर कृष्ण अपराजिता की जड़ काचूर्ण और उस पर चदन का चूरा बिछा-कर उस पर गोली रख अनुक्रम से सब चीजें रख उस पर एक और शकोरा उथला रख दो। इस शकोरे के बीच मे उँगली जा सकने योग्य छेद होना चाहिए। अब सधि को वज्रमुद्रा से संपुट करो। (चाक, लोहा-मैल, राख, नमक बराबर पानी में खरलकर) ७ कपर-मिट्टी कर दो। रेत भरकर एक हंडे या कढाई में चूल्हे पर जढ़ाओ और मंदाग्नि दो। शकोरे में काले धतूरे के पंचाग का रस इतना भरो कि भीतर जाकर भी शकोरे में भरा रहे। सूखने पर फिर भरो। २१ बार तक भरो। ठंडा होने पर निकालो। गोली तैयार मिलेगी।

इस गोली को वज्रमूषा में रखकर कपरमिट्टी करके भूधर-यंत्र में चार आने उपलों की आँच में पकाओ। हाथ-भर लंबा-चौड़ा गड्ढा खोदकर उसमें मूषा रख, उसे रेत से दाब ऊपर आँच देने से भूधर-यंत्र बन जाता है। ५ पुट भूधर-यंत्र में दो, फिर पाँच आने की ५ पुट दो। फिर छः आने की पाँच पुट दे। इसी प्रकार एक-एक आना बढ़ाकर सौ पुट देना चाहिए और प्रत्येक पुट में गोली के नीचे सोलहवाँ भाग गंधक शुद्ध और समान सोने का जारन करना चाहिए। गोली तयार होने पर उसका रंग सिंदूर-जैसा होगा। उसे बाँस की नली में डालकर एक वर्ष तक रखकर तब काम में लाना चाहिए। मात्रा एक चावल। बुढ़ापे और मृत्यु को दूर करती है। यह महारसायन है, और सब रोगों की रामबाण दवा है।

कुश्ता फौलाद

यह दवा उत्कृष्ट वाजीकरण, तिल्ली, श्वास, सिल, दिक़, जलोदर, मंदाग्नि आदि पर सिद्ध है। मगर ख़ूब सावधानी से तैयार करनी चाहिए। फौलाद का रेता हुआ चूर्ण असली ५ तोला, जामुन का रस १० तोला, पारा शुद्ध २ माशा घीगुवार के ५ तोला रस में घोटे। फिर ५ तोले नीबू के रस में घोटे और टिकिया बना ले। फिर संपुट करके ६ सेर कंडों की आँच में फूँक दे। इसके बाद पारा २ माशा और हरताल तबकी ६ माशा मिलाकर नीबू के रस में घोटकर पाँच सेर कंडों की आँच दे, फिर इसी तरह खट्टे अनार के रस में घोटकर ५०० कंडों की आँच दे। इसी तरह आक के रस में घोटकर १० सेर उपलों की आँच दे। फिर ५ तोले बरांडी में घोटकर १० सेर की आँच दे। फिर पाँच पुट बड़ के दूध की दे। पाँच पुट घीगुवार की दे। पाँच कटेली के रस की दे।

हर आँच १० सेर की हो। और हर बार २ माशा पारा, ६ माशा हरताल मिलाई जाय। ख़ुराक एक खसख़स मक्खन में।

दूसरा

ईस्पात का चूर्ण १ तोला, पारा शुद्ध १ तोला, दोनों को देशी दुआतशा शराब में खरल करके कुल्हिया में कपरौटी करके ३ सेर उपलों की आँच दे। फिर १ तोला पारा और १० तोला शराब में १००० पुट दे। हर बार पारा नया और मिलाना। इसके बाद १ तोला पारा, ३ माशे सखिया, ४ रत्ती कपूर मिलाकर शराब में घोट १०० आँच दे। हर बार कपूर, संखिया नया मिलाकर। ख़ुराक १ खसख़स तक। मुक़व्वी बाह और जलोदर तथा कफ और वायु के सब रोगों पर रामबाण।
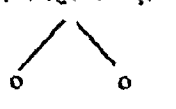
मोम का तेल

दर्द रीढ़, इस्तस्का, सरसाम, शीत, प्रसूत, दर्द पसली, सुनबहरी, ख़ून फसाद, नामर्दी, बहक आदि को फायदा करे। अलभ्य योग है, जिसे बहुत कम लोग बनाना जानते हैं।

मोम १ सेर, मस्तगी ४ तोला, लोबान कौड़िया ४ तोला, गूगल २ तोला, अजवायन

४ तोला, अजवायन खुरासानी ४ तोला, अजमोद ४ तोला, अकरकरा ४ तोला, लौंग ४ तोला, मालकांगनी ४ तोला, जायफल ४ तोला, जावित्री २ तोला, कुचिला १० तोला, भिलावा २ तोला, आँबाहल्दी ४ तोला, वायविड़ंग २ तोला, नरकचूर सोंठ का २ तोला, कस्तूरी २ तोला, सींगीमोहरा शुद्ध २ तोला, पाताल-यन्त्र या ढेकी-यन्त्र से तेल निकालना।

पाताल-यन्त्र की विधि तो यह है कि एक भट्ठी इस प्रकार खोदी जाय, जो नीचे से बिलकुल साफ हो। उसके ऊपर एक घड़े में उपर्युक्त सब चीज़ें भरकर रक्खी जायें, घड़े की पेंदी में एक छेद कनी उँगली के समान हो। भट्ठी में नीचे एक पानी का प्याला रख दिया जाय, इसके ऊपर घड़े के चारो ओर खूब आग लगा दी जाय, जिसकी गर्मी से तेल चूकर प्याले में जायगा।

ढेकी-यन्त्र की रीति यह है कि मिट्टी के दो घड़े जिनकी गर्दन लबी हो, परस्पर गर्दन मिलाकर ज़रा टेढ़े ढग पर इस /\ भाँति रक्खे जायँ। जिसमे दवा हो, वह चूल्हे पर हो, दूसरे में भाफ ० ० रूप तेल उड़कर आवेगा। उसमे एक छेद करके नली लगा दी जाय, जिससे तेल उसके रास्ते चूकर नीचे रक्खे प्याले में पड़े।

ताकत की गोली

यह गोली पुरुषत्व शक्ति-वर्द्धक और अत्यंत प्रभावशाली है, पर गर्म मिज़ाजवालों को न खानी चाहिए।

अकरकरा, जाफ़रान, संखिया सफ़ेद, कस्तूरी प्रत्येक ६-६ माशे २५ नीबू के रस मे खरलकर गोली बनाओ। एक गोली रोज खाई जाय। घी ज़्यादा खाना चाहिए।

पाचन की गोली

अमीरा को पसद और अत्यत स्वादिष्ट एव गुणकारी है।

सोंठ, मिरच, पीपल, ज़ीरा स्याह, सेंधा नमक, काला नमक, अकरकरा प्रत्येक ५-५ तोले। बड़ी इलायची का दाना २॥ तोले, दारचीनी २॥ तोले, मुनक्क़ा १ सेर, नीबू का रस २ सेर, कस्तूरी ३ माशे, कज्जली १ तोला। चने प्रमाण गोली बनानी चाहिए।

शक्ति-वर्द्धक अर्क

यह अर्क अमीर लोग बनाकर पी सकते है। अत्यंत शक्ति-वर्द्धक और रक्त-वर्द्धक है। रति-शक्ति की वृद्धि होती है। नायाब चीज़ है। अगूर ५ सेर, सेव २॥ सेर, बीही २॥ सेर, नासपाती २॥ सेर, मीठा अनार दाना २॥ सेर, अनार कधारी खट्टा २॥ सेर, नारंगी २॥ सेर। इन सबको टुकड़े-टुकड़े करके पानी मे डाल ओस में रक्खो। ३ दिन बाद अर्क खींच लो। सब पानी हो जायगा। इस अर्क मे ये दवाइयाँ भिगोना--

आँवला गुदा हुआ ऽ॥, जरिश्क ऽ॥, किशमिश ऽ॥, मुनक्का काली ऽ॥। तीन दिन बाद फिर अर्क खींचना। अब अर्क़ मे ये चीज़े मिलाना चाहिए। अर्क तरबूज़ ४ सेर, गन्ने का रस ६ सेर, गाजर का रस ६ सेर, बूरा ८ सेर, शहद १ सेर, मिश्री ३ सेर सबको मिलाकर

१५ दिन मुँह बाँधकर कपरमिट्टी करके रखना, और फिर सबका अर्क खींचना। मात्रा २ से ४ तोले तक है।

उन्मत्त अर्क

गनम के समान पाचक और रति-शक्ति को बढ़ाता है। धतूरा-पंचांग १ पाव, अजवायन, दारचीनी, लौंग, अकरकरा, जावित्री, सब १-१ पाव जौकुट कर लो। सबके बराबर भाँग मिलाओ और २५ सेर भैंस के दूध में कलई के बर्तन में रात को भिगो दो। प्रातःकाल अर्क खींच लो। मात्रा २ तोले से ४ तोला तक भोजन के बाद।

ताकत की अँगरेजी गोली

ये गोलियाँ उन लोगों के मतलब की हैं, जो अत्यंत वीर्यक्षय या वृद्धावस्था के कारण अशक्त हो गए हैं, परंतु काम-शक्ति को जाग्रत् रखना चाहते हैं। यदि खाने के समय ही सब दवाइयाँ मिलाकर एक गोली बनाई जाय, तो अधिक चमत्कार दिखाएगी। वरना १२ या २४ गोलियाँ एक साथ भी बनाकर रख ली जा सकती हैं। पिलफ़ास्फ़रस ३ ग्रेन, फ़ाइरिडेकृम १ ग्रेन, कोकेनसलफ़ास १ ग्रेन, एक्सट्रेक्ट कोका ½ ड्राम, डमय्यना ½ ड्राम, नेक्सवामीका ½ ड्राम, अलोइन ½ ड्राम, एक्सट्रेक्ट जंगियन आवश्यकतानुसार इसकी एक गोली बनावे। स्त्री-प्रसंग के बाद दूध के साथ खानी चाहिए। और फिर आराम करना चाहिए। शक्ति-क्षय नहीं होगी।

धातु-क्षय पर प्रयोग

सवा सौ गायों को उड़द का भुस और विदारीकंद खिलावे। उनके दूध को २५ गायों को पिलावे। इन २५ गायों का दूध ५ गायों को दे, और उनका दूध १ गाय को दे। यह दूध धातु-क्षय के रोगी को दे। अपूर्व लाभ होगा।

नायाब तिला

कुचला २॥ सेर गाय के ५ सेर दूध में दोला-यंत्र में पकाकर शुद्ध कर ले। अकरकरा गुजराती ½ सेर, दारचिकना ५ तोले, साँप काला १ नग।

साँप के मुँह में दारचिकना रक्खे। एक मिट्टी का बर्तन, जिसके पेंदे में कुछ सूराख हों, पहले कुचला बारीक कतरकर १ सेर पेंदे में बिछा दे, फिर अकरकरा १ पाव रक्खे, इस पर साँप को रक्खे, उस पर अकरकरा १ पाव और उस पर कुचला रखकर बंदकर कपरमिट्टी करे। ज़मीन के पाताल-यंत्र से तेल निकाले। यह तेल १ सींक पान में रात को खिलावे। एक सींक तिला को कोई शख़्स आज तक तीन-चार दिन से ज़्यादा बर्दाश्त नहीं कर सका।

तर खुजली का अमीराना नुसख़ा

राल १ तोला बारीक पीसकर ६ तोला चमेली के तेल में हल कर शुद्ध पारा ४ माशा, भुना हुआ तूतिया ३ माशा पीसकर मिलावे। चीनी के प्याले में रख १ पाव गुलाब-जल में थोड़ा-थोड़ा डालता जाय और हाथ से मले। जब मक्खन हो जाय, तब लेप करे।

पुत्र उत्पन्न होगा

एक चाँदी की डिबिया मे ३ माशा केशर, ३ माशा कस्तूरी, ३ माशा मोती-भस्म, ३ माशा स्वर्ण-भस्म गुलाब जल मे घोटकर मीठे नीम की जड मे दबा दो। तीन मास बाद सफ़ेद कनेर की जड में दबा दो। तीन महीने बाद घोडे की लीद मे दबा दो। ख़ुराक १ चावल है। मक्खन मे खाय। शर्तिया दवा है।

लज्जत का नायाब नुसखा

अकरकरा, सुहागा चौकिया, कपूर जंदबदस्तर, ऊदबिलाव का पित्ता, सब बराबर। कस्तूरी ½ भाग, शहद आवश्यकतानुसार।

गर्भ-रोधक —

यह दवा गिरते हुए गर्भ को रोकने की पूरी शक्ति रखती है।

समुद्रसोख २ तोला, काला बीजबद ले अरमनी, पठानी लोध १ तोला, छोटी इलायची २ माशा, कहरवा १ तोला, बंगलोचन ६ माशा, बताशे १ पैसे के मिलाकर १ तोला मात्रा में दे।

चाँदी बनाना

२ तोला चाँदी का शुद्ध टुकडा लेकर उसे चौकोर बनवा लो। तबकिया हरताल १ तोला, गंधक आँवलासार शुद्ध १ तोला, सखिया पीला १ तोला पीसकर चूर्ण कर लो। चाँदी की डली को पानी में भिगोकर उक्त चूर्ण लपेटकर अगरख पर रखकर लाल करके तपाओ। फिर बुझाओ, फिर तपाओ, इस भाँति सब चूर्ण ख़तम कर दो। अब यह चाँदी का टुकडा जल्द गलने लगेगा और भस्म हो जायगा। चोट मारने से मिट्टी की भाँति टूटकर बिखर जायगा। जब ऐसा हो जाय, तो इसे मूष में सुहागा देकर गलाकर रवा बना लो। अब १० तोले पारा एक लोहे की ऐसी मज़बूत मूष में भरो कि उसका मुँह ऐसा बद हो जाय कि गर्म होने पर पारा उडे भी नहीं और मूष फूटे भी नहीं। उसी मे यह चाँदी की डली भी डाल दो। प्रथम मदाग्नि से पकाओ और फिर तेज़ अग्नि मे एक पहर आँच देकर ठडा करके खोलो। चाँदी पर कुछ काला लिपटा हुआ दीखे, उसे खुरच लो। उस चूरे को सुहागा देकर गलाओ। बढ़िया चाँदी बन जायगी। इस चाँदी की डली मे बर्षों तक इसी भाँति पारे की चाँदी बनाए जाइए, और कभी १ रत्ती भी नही छीजेगी।

एक नायाब नुसखा

पारा शुद्ध २० तोले, गंधक शुद्ध २० तोले। गंधक शोधने की विधि यह है कि प्याज़ के रस मे ४१ दफे २-२ पहर घोटे। गंधक और पारे को मिलाकर दो-एक पहर घोट बाद को घीगुवार का रस डालकर ४ पहर घोटे, घोटकर सुखा ले। धूप में रक्खे। सुखाकर आतशी शीशी में भर दे। शीशी का मुँह बंद करके सात कपरौटी कर बालुका यंत्र में रखकर बारह पहर की आँच दे। बाद शीशी से दवा

निकालकर फिर २० तोले गंधक मिलाकर ऊपर की तरकीब से घोटकर और सुखाकर शीशी में भरकर बालुका-यंत्र में १६ पहर की आँच दे। इसी तरह सात शीशी इसी दवा की गंधक मिला-मिलाकर उपर्युक्त तरकीब से घोट-घोटकर चढ़ाई जायगी। यानी पहली शीशी की आँच १२ पहर की, दूसरी शीशी की आँच १६ पहर की, तीसरी की २० पहर की, चौथी की २४ पहर की, पाँचवीं की २८ पहर की, छठी की ३२ पहर की और सातवीं की ३६ पहर की, इसी तरह औषध सिद्ध होगी।

इसका रंग सुर्ख़ बानात की तरह होगा। यदि सिद्ध हुआ तो १ तोला चाँदी में १ माशा दवा डाली जायगी, तो सोना होगा। और खाने को ख़ुराक १ चावल है। पान या मलाई में दवा खाने के एक-दो घंटे के बाद दूध में घी-मिश्री डालकर पीवे। नामर्द मर्द होगा। जिसके पुत्र पैदा न हो, उसके पुत्र पैदा होगा।

पारे की गोली की विधि

१ तोला पारा कढ़ाई में चढ़ाकर उसके ऊपर ख़ुरासानी अजवायन और नीला थोथा दोनों १-१ तोला पीसकर बुरक दो, फिर कढ़ाई में पानी भर दो। अब नीचे आग जलाओ। जब पानी जल जाय, तो देखो कि पारे की गोली बन गई है। उसे धौलफुल्ली की लुगदी में लपेटकर दस उपलों की आँच में फूँक दो।

पारद-भस्म

१ तोला पारा में २ तोला कबूतर की बीट खरल में गेरकर खरल करो। १ पहर बाद धोकर साफ़ कर लो। फिर २ तोला पुराने गुड़ में खरल करके धो डालो। फिर २ तोला घर के धुएँ में खरल करो और धो डालो। अब इसे कुल्हिया में रख दो। उसमें २-२ तोला भाँग और आँबाहल्दी पीसकर भर दो और कुल्हिया का मुँह बंद कर दो। फिर ४ उपलों की आँच देकर फूँक दो, ठंडा होने पर देखो, सफ़ेद रंग की खील हो जायगी।

पारे का प्याला बनाना

लोहे की कढ़ाई में १० तोला नीला थोथा पीसकर बिछा दो। उस पर २० तोला शुद्ध पारा डालो। उसके ऊपर १० तोला जंगार और १० तोला नीला थोथा डालकर ऊपर से काँसे का कटोरा ढक दो और उड़द के आटे से दर्ज़ बंद कर दो। इसके बाद पानी से कढ़ाई भरकर आँच जला दो। तीन बार पानी फूँक दो। फिर पारा निकालकर गर्म पानी से ख़ूब धोओ। वह लुगदी के समान हो जायगा। अब कच्ची मिट्टी के प्याले पर उसका लेप करके उसे धीरे से ठंडे पानी में डाल दीजिए। मिट्टी का प्याला गल जाय, तब पारे का प्याला निकालकर काम में लाइए। गुण जगत् प्रसिद्ध है।

अध्याय पंद्रहवाँ

धातुओं की भस्म

प्रकरण १

अनेकों गंभीर और भयंकर असाध्य रोगों में जब वैद्य कुछ चारा नहीं देखते, तब धातुओं का उपयोग करते हैं। इन धातुओं का असर भी असाधारण होता है। हज़ारों मनुष्य तंदुरुस्ती तथा शक्ति बनाए रखने के लिये ही धातुओं की भस्म खाया करते हैं। पिछले ५० वर्षों में योरप के डॉक्टरों ने भी धातुओं की भस्म का उपयोग जाना है। परंतु ये धातु-भस्म एक तो वैद्य लोग बहुत ही महँगी देते हैं, दूसरे उनके असली और निर्दोष होने में बहुत ही संदेह रहता है। प्रायः लोगों को धातु फूँकने का शौक भी होता है। बहुत लोग जड़ी-बूटी में और लघुपुट से फूँकी हुई धातु को अच्छा समझते हैं। परंतु विद्वान् लोगों का यह मत नहीं है, क्योंकि चाँदी-सोने आदि उत्तम वस्तुओं को फूँककर केवल भस्म (राख) बनाने से ही कुछ फल नहीं होता, किंतु यदि वह भस्म और औषधियों की अपेक्षा थोड़ी (चावल या रत्ती के परिमाण में) मात्रा में, थोड़े दिनों में, बहुत दिनों के असाध्य रोगों को भी दूर करे और बल-वीर्य को बढ़ाकर शरीर की कांति को भी चमकावे, तब यह परम रसायन है।

रसायन उस औषध को कहते हैं, जो बुढ़ापे और व्याधि को नाश करे (यज्जराव्याधि-विध्वंसि भेषज तद्रसायनम्)।

भस्म चाहे बूटियों से बनी हो, चाहे धातुओं से, इससे कुछ मतलब नहीं, वह केवल कच्ची न रहनी चाहिए। क्योंकि कच्ची धातु विष है। वही शुद्ध भस्म किया हुआ अमृत है, जो धातु अच्छी तरह से भस्म होगा, उसमें कोई खटका नहीं है। यह गंभीरता से धीरे-धीरे शरीर में रमकर गुण करता है।

हम सर्वसाधारण के ज्ञान के लिये धातुओं की भस्म करने की सरल क्रियाएँ लिखते हैं—

स्वर्ण

लक्षण—आग में तपाने से लाल हो जाय, काटने से सफ़ेद रंग दे, कसौटी पर घिसने से केशर के समान लकीर बनावे, जिसमें चाँदी और ताँबे की मिलावट न हो, जो स्निग्ध, नरम और भारी हो, वह सोना शुद्ध है। उसी की भस्म करनी चाहिए।

गुण—स्वर्ण स्वादु और तिक्तता-युक्त कसैला है। पाक में स्वादु और चिपचिपाहटवाला

है। मास वर्द्धक, पवित्र, नेत्रों को हितकारी, मेदा और स्मृति को बढ़ानेवाला, हृदय को प्रिय, आयु, कांति, वाक्-शुद्धि, स्थिरता इनको उत्पन्न करता है। जंगम-स्थावर-विष, उन्माद, त्रिदोष, शोष, इन रोगों को आराम करता है।

शोधन—सोने के पतले-पतले पत्र कराकर आग में तपाकर तेल (तिल का), मट्ठा (गाय का), काँजी, गो-मूत्र, कुलथी का काढ़ा इन पाँचों चीज़ों में ७-७ बार बुझावे।

स्वर्ण-भस्म

शुद्ध पत्रों के कैंची से छोटे-छोटे टुकड़े कर लो। फिर बराबर शुद्ध पारा मिलाकर गोला बना लो। इसके बाद मिट्टी के शकोरे में सोने के वज़न के बराबर गंधक का चूर्ण रख ऊपर वह गोला रखना, फिर ऊपर गंधक का चूर्ण भरकर मिट्टी का लेप करना और ३० उपलों की आँच से फूँक देना। ठंडा होने पर बाहर निकालना। इस प्रकार १४ बार करने से भस्म उत्तम तैयार होगी। मात्रा १ से २ रत्ती तक। शहद या मलाई एवं मक्खन के साथ।

चाँदी

उत्तम चाँदी के लक्षण—गुरु (बोझल), स्निग्ध (जो रूक्ष न हो), मृदु (कोमल), दाह और छेदन में श्वेत रंग, घन की चोट को सहारे (फिरे नहीं और कम भी न हो), सोना, ताँबा, जस्त आदि न मिला हो, ऐसी चाँदी शुद्ध और भस्म करने योग्य है।

निकृष्ट चाँदी के लक्षण—जो जोड़े (दो धातुओं) से बनी हो, रूक्ष, कड़ी, लाल, काली, पीली, झलकवाली, हल्की और काटने-फूँकने से छीज जानेवाली चाँदी अच्छी नहीं।

चाँदी के गुण—चाँदी ठंडी, स्वाद में कसैली और खट्टी है। पाक में मधुर, दस्तावर और अवस्था को स्थिर करनेवाली है, नेत्रों को हित है, वात, पित्त, प्रमेह आदि रोगों को दूर करती है। यदि अच्छी तरह भस्म न की गई हो, तो शरीर में ताप, बल-वीर्य-नाश, पुष्टि की हानि और कोढ़ की बीमारी पैदा करती है।

चाँदी का शोधन—सोने की शोधन-विधि से करना।

चाँदी-भस्म

चाँदी एक भाग, पारा दो भाग, गंधक दो भाग लेकर पारे-गंधक की कज्जली करे। फिर चाँदी के बारीक पत्र करके नीचे-ऊपर कज्जली देकर शकोरे में संपुटकर (कपरमिट्टी करके) १० सेर उपलों की अग्नि पर गजपुट में फूँक दे। फिर खरल करके उसी प्रकार करे, जब तक चमक नष्ट न हो जाय और पानी में तैरने न लगे। इसकी मात्रा एक रत्ती है। ४ माशे इलायची दाना और मिश्री ले मक्खन मिलाकर खाय। उन्माद, शिर दर्द, प्रमेह, ज़ुकाम, जीर्णज्वर, पित्त और गर्मी के सब रोग नष्ट हो। शतावर के चूर्ण के साथ देने से बल-वीर्य की वृद्धि होती है।

ताम्र

ताँबे के लक्षण—जपा के फूल के समान जिसका रंग हो, स्निग्ध, कोमल और घन के सहारनेवाला, लोहा और सिक्का जिसमें न मिले हों, ऐसा ताँबा मारने योग्य है, और जो काला, रूखा, अति कठोर या श्वेत और घन को न सहारनेवाला हो, लोहे और सिक्के की मिलावट हो, ऐसा ताँबा योग्य नहीं।

गुण—ताँबा कसैला, कुछ खट्टा, मिट्ठा और पाक में कटु है। पित्त, कफ इनको हरता और शीतल है। नेत्रों को शोधन करनेवाला और रेचन है। शुद्ध मरा हुआ पांडु, उदर, अर्श (बवासीर), ज्वर, कुष्ठ, कास, श्वास, क्षय (क्षयी), रेजस (पीनस), (अम्लपित्त), जिसमें अन्न का पाक मंद होता है, खट्टी डकारें आती हैं, भूख नहीं लगती, नीचे अथवा ऊपर से कच्चा अन्न गिरता रहता है। शोथ, कीड़े, शूल, इनको दूर करता और मांस-वर्द्धक भी है। जो यह शुद्ध न किया हो अथवा अच्छे प्रकार न मारा हो, तो विष से भी अधिक दोष करता है, क्योंकि विष में तो केवल मारण (मार देना) यह एक ही दोष है, परंतु अशुद्ध और कच्चे ताँबे में १—दाह (अंगों में अग्नि की चोप लगनी), २—स्वेद (पसीना), ३—अरुचि (खाने की इच्छा न होना), ४—मूर्च्छा, ५—उत्क्लेद गाल, ६—विरेचन, ७—उद्वमन (उलटी), ८—भ्रम (चित्त ठिकाने न हो), ये आठ दोष हैं, इसलिये ताँबे को अच्छी प्रकार शोधे और मारे।

शोधन—ताँबे के अच्छे पत्र कराकर दो प्रहर गो-मूत्र में अग्नि से पकावे। फिर तेल, तक्र, काँजी, कुलथी के काढ़े में सात बार बुझाए, फिर गर्म जल से धोवे, तब ताँबा शुद्ध हो। मात्रा एक से दो रत्ती तक शहद में।

ताँबे की भस्म

शुद्ध पारा और गंधक सम भाग लेकर कज्जली करे, और बड़े नीबू के रस में खरलकर इसका लेप ताँबे के शुद्ध पत्रों पर करे। फिर दो शकोरों में संपुट करके गजपुट में फूँक दे। यदि शुद्ध पारा और गंधक न मिले, तो उतना ही शिंगरफ़ नीबू के रस में घोटकर पत्र पर लेपकर आँच दे। ६ या ७ आँच में उत्तम भस्म होगी। इस भस्म को नीबू के रस में गोला बनाकर वह गोला ज़मींकंद में रक्खे और उसे कपड़ मिट्टी करके सुखा ले। फिर उसे गजपुट में फूँक ले। यह भस्म निर्दोष और अति उत्तम बन गई। पीतल और काँसा की भी इसी भाँति भस्म होगी।

लौह

भस्म करने के लिये ईस्पात या फौलाद लेना चाहिए। लोह में जितना अधिक पुट दिया जायगा, उतना ही गुणकारी होगा।

गुण—लोह रक्त को बढ़ाने और रँगनेवाला, यकृत के कार्य को सुधारनेवाला, कुछ काबिज़, अत्यंत शक्ति-वर्द्धक और महारसायन है।

शुद्धि—अन्य धातुओं के समान ही शोधन करना चाहिए।

भस्म

शुद्ध लोहे का चूर्ण १२ तोला, शिंगरफ १ तोला, घीगुवार में दोपहर घोंटो, फिर ४ टिकिया बनाकर सपुट करके ४ सेर उपलों में फूँक लो सात आँच में भस्म होगा।

मंडूर-भस्म

लोहे की कीट को मडूर कहते है। यह जितना पुराना होगा, उतना ही उत्तम है। इसे बहेड़े की लकड़ी के कोयले में लाल करके गो-मूत्र में १०० दफ़ बुझाओ। फिर इमाम-दस्ते में कूटकर कपड़छान करके धोकर साफ कर लो। फिर त्रिफले के काढ़े में कड़ाई में डाल-कर तेज़ आँच दो। उसके बाद खट्टे दही तथा छाछ में ४ पहर घोटकर गजपुट की आँच दो। इस तरह २१ बार आँच देने से लाल हो जायगा। यह दवा पाडु, सूजन, पुराने बुख़ार, रक्त की कमी, सग्रहणी, अतिसार के लिये अद्वितीय है। मात्रा १ से २ रत्ती तक। मट्ठे या शहद के साथ।

वंग

भस्म करने के लिये उत्तम डली का राँग लेना चाहिए। इसकी शुद्धि करने की रीति यह है कि गलाकर पूर्वोक्त तेल, मट्ठा आदि चारों चीज़ों में ७-७ बुझावे देना चाहिए। पर ध्यान रहे कि बुझावे के समय बर्तन पर एक शकोरा ढक दो और उसमें छेद करके उसमे से धातु डालो, नहीं तो उछलकर वार कर देगी।

वंग-भस्म

अब शुद्ध राँग को कड़ाई में गलाओ, और उसमें क्रमश उसके बराबर ही हल्दी पिसी हुई, अजवायन-चूर्ण ज़ीरा-चूर्ण, इमली की छाल का चूर्ण और पीपल की छाल का चूर्ण एक-एक करके डालते जाओ। लगातार चलाते रहो। सफ़ेद रग और साफ चूर्ण हो जाने पर उत्तम भस्म हुई समझो। जस्त भी इसी भाँति भस्म हो जायगा। यह वग प्रमेह के लिये अत्युत्तम है। प्रदर पर भी लाभकारी है। १ रत्ती वंग-भस्म, १ रत्ती शिलाजीत, १ रत्ती वंशलोचन, १ रत्ती सफ़ेद इलायची, १ रत्ती सत गिलोय, सबको पीसकर शहद में खाना चाहिए।

सीसा-भस्म

सीसा भी राँग की भाँति शुद्ध किया जाय। लोहे की कड़ाई में सीसा और जवाखार बराबर मिलाकर धीमी आँच से पकाओ। सीसे की राख न होने तक बराबर जवाखार डालते रहो। लाल रंग हो जाय, तो उतारकर पानी से धोकर आँच में सुखा लो। यह पीले रंग का उत्तम नाग-भस्म तैयार होगा। यह भस्म शरीर को लोहे के समान ठोस बनाती है। स्नायु-रोग, रक्त-विकार, धातु-क्षय दौर्बल्य पर उत्कृष्ट है। पुरानी खाँसी, सुज़ाक में अद्भुत है।

अभ्रक भस्म

अभ्रक ऐसा लेना, जो पत्थर के समान भारी, काला और साफ हो। आग मे डालने से जिसके पर्त न फैल जायँ। इसे पूर्वोक्त रीति से ७-७ बार बुझाकर शुद्ध करो। फिर कूट-कर चूर्णकर चतुर्थांश धान मिलाकर एक मज़बूत कबल मे गाँठ बाँध ३ दिन तक भिगो दो। ३ दिन बाद एक बडे कूँड़े में रखकर हाथ से खूब मसलो, जिससे सारे अभ्रक के बारीक कण पानी में घुल-घुलकर आ जायें। इसे निथरने दो, जब नीचे बैठ जाय, पानी निथार-कर फेंक दो और अभ्रक ले लो। अब इसमें ५० पुट गो-मूत्र के दो प्रत्येक बार। दो पहर घोट-कर गजपुट में फूँक दो। जब लाल हो जाय, तब ७ पुट आक के दूध की दो। ७ पुट कुकरौंधा के रस की दो। ७ आँच त्रिफला की दो। फिर ७ आँच बड की डाढी के काढे की दो। यह उत्तम अभ्रक-भस्म बनेगी। मात्रा १ रत्ती है। क्षय की उत्कृष्ट महौषध है। १ वर्ष पुराना होने पर सेवन करो।

स्वर्णमाक्षिक

सोनामाखी शुद्ध ३ भाग, सेंधा नमक १ भाग, बडे नीबू के रस में घोटकर लोहे के बर्तन में पकाओ। बारबार चलाते रहो। जब लाल हो जाय, तब एरंड के तेल में घोटकर गजपुट की आँच दे दो।

हरताल-भस्म

१ पाव तबकिया हरताल को दोला-यंत्र में चूने के पानी में १ पहर लटकाकर पकाओ, फिर १ पहर पेठे के रस में पकाओ। फिर १ पहर काँजी में पकाओ। फिर घीगुवार के रस में गोला बनाकर एक पका हुआ काशीफल लो। उसमे टाँकी लगा यह गोला रखकर बंद कर ७ कपरौटी कर दो। सुखाकर आँच दो। शुद्ध हरताल-भस्म मिलेगी। मात्रा १ चावल है। बारी के ज्वर के लिये काल है। एक घटे प्रथम दो। सुज़ाक के लिये भेड के खोवा में दो। धातु-दौर्बल्य के लिये गाय के दूध में दो। नामर्दी के लिये नर-चिडिया के भुने हुए मांस या मलाई में दो। सन्निपात में अदरख के रस में, फालिज मे मुर्गी के कच्चे अडे में, कोढ और रक्त-विकार में शहद मे दो, सिद्ध है।

सखिया-भस्म नं० १

सखिया की डली को आक के दूध में डुबा दो। ७ दिन डुबा रक्खो, फिर दो शकोरों में बद कर दो। पर डली को नीम के पत्तो में लपेट दो। ४ उपलों की आँच में फूँक दो। सफ़ेद भस्म होगी। नामर्दी पर अजीब है।

संखिया-भस्म नं० २

संखिया की एक डली एक तोले की लो। आधा सेर सिंदूर, आधा एक शकोरे में बिछाकर बीच मे डली रखकर आधा ऊपर बिछा दो और कोयलो पर रख दो। थोडा सिंदूर और लेकर पास बैठे रहो। देखो कि जहाँ से धुआँ निकले, वहीं सिंदूर डालकर

दवा दो। धुआँ न निकलने दो। जब धुआँ निकलना बंद हो जाय, तो होशियारी से डली में सींक गाडकर देखो। यदि सींक छिद जाय, तो समझो सिद्ध हो गया। सावधानी से सिंदूर उतारो। भीतर पीले रंग की भस्म तैयार मिलेगी। मात्रा एक खसखस है। सब प्रकार के शीत और कफ के रोगों पर हुक्मी है।

शिगरफ-भस्म

शिगरफ की एक तोले की एक डली लो। उसे ३ दिन दौना-मरुआ के अर्क में भिगो दो। चौथे दिन एक तोला अफीम उसी अर्क में मिलाकर एक कपड़े की पट्टी पर लेपकर सुखा दो और उसे शिगरफ पर लपेट और कसकर डोरे से बाँध दो। फिर एक सेर कड़ुआ तेल ख़ालिस कढ़ाई में चढ़ाकर बेर की लकड़ी की मंदी आँच ४ पहर तक दो। इसी प्रकार ३ दिन आँच दो। शिगरफ भस्म हो जायगा। मात्रा ½ रत्ती से १ रत्ती। रति-शक्ति-वर्द्धक और अत्यंत अग्नि चैतन्य करता है। सब प्रकार की वात-व्याधि में अपूर्व है।

मूँगा-भस्म

मूँगा एक छटाक लेकर घीगुवार के रस में घोटकर संपुट करके गजपुट में फूँक दो, सफ़ेद हो जायगा। एक रत्ती पान या मलाई में देने से खाँसी, ज्वर और कमताक़्ती को बहुत लाभदायक होगा। इसी प्रकार मोती की भस्म हो सकती है।

हीरा भस्म

बड़ी कटेहली की जड़ का रस निकालकर हीरे के चूरे को घोटे। इसके लिये बहुत सख़्त खरल चाहिए। इसके बाद गजपुट की आँच दे। बाद में घोड़े के पेशाब में २१ बार बुझावे, फिर फौलाद के खरल में रगड़े। फिर हीरे से दुगुना शिगरफ डालकर जंगली अंजीर के दूध में १ दिन खरल करे, फिर १ दिन आक के दूध में खरल करे। फिर नर्मा कपास के अर्क में खरल करे, फिर सेहुँड के दूध में खरल करे। फिर उसकी गोली बनाकर सुखा ले। अब इस गोली को नीचे लिखी दवाइयों के गोले के बीचोबीच में रख दे।

मेढ़े का सींग ४ तोला, कछुआ की पीठ ४ तोला, हाथी-दाँत ४ तोला, कनेर की छाल ४ तोला, स्वर्णमाक्षिक शुद्ध १ तोला, मेढासींगी ४ तोला, सबको चूर्ण करके २ भाग करे। एक भाग को प्रथम ८ तोला गूलर के दूध में और फिर ८ तोला सेहुँड के दूध में खरल करके उस गोले में हीरा रख दे। कपरौटी कर गजपुट में रखकर फूँक दे। ठंडा होने पर निकाले। फिर जो आधा हिस्सा दवा बाकी रही, उसे प्रथम रीति से दोनों दूधों में खरल करे, और हीरे को स्त्री के दूध में खरल करके गोली बना उस गोले में रखकर गजपुट में फूँक दे। बस हीरा-भस्म हो जायगी। चुन्नी भी इसी भाँति फूँकी जा सकती है। मात्रा १ चावल है। नामर्दी और तपेदिक पर अक्सीर है। मक्खन में खाय, ४० दिन में आराम होगा।

अध्याय सोलहवाँ

आकस्मिक उपचार

प्रकरण १

घाव और चोट

बहुधा ऐसा होता है कि सफर और जंगल में, समय-कुसमय, कभी ऊँची जगह से गिर जाने, कुचल जाने आदि से या अन्य किसी आकस्मिक कारण से चोटें लग जाती हैं। प्राय ऐसे स्थानों में चिकित्सक का मिलना सभव नहीं होता, ऐसी दशा में यह उचित है कि प्रत्येक मनुष्य को ऐसे अवसर पर कुछ कर्तव्य का ज्ञान होना चाहिए, जिससे यदि कभी ऐसी दुर्घटना हो जाय, तो जब तक चिकित्सक की सहायता न मिले, तब तक रोगी की उपयुक्त व्यवस्था हो सके। सबसे प्रथम नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिए—

चौडी पट्टी पर हाथ लटकाया गया है

१—घाव से निकलते लोहू को सबसे पहले बंद करना।

२—घाव में किसी तरह का मैल, मिट्टी, काँटा, शीशे का टुकडा आदि न रहने देना।

३—घाव पर मक्खी आदि न बैठने देना।

४—बेहोश घायल के चारो तरफ भीड न होने देना।

५—जिसकी हड्डी आदि टूट गई हो, उसे आराम से किसी तरह उपयुक्त स्थान पर पहुँचाना।

घावों के प्रकार—घाव कई प्रकार के होते है—

१—जिनमें से खून निकले।

२—जिनमें खून न निकले।

३—धारवाले शस्त्र—जैसे छुरी, चाकू आदि के घाव।

४—कुचले हुए घाव—जैसे गाडी आदि के नीचे आ जाने से हो जाते हैं, जिनमे थोडा रक्त निकलता हो।

५—नील पडना—कुचले घाव में से खून न निकलने से वह नीला हो जाता है। इसमें नीली दर्ददार सूजन हो जाती है।

६—नोकदार शस्त्रों के घाव—जैसे तीर, सुई, काँटा आदि के। इन घावों का रूप छोटा होता है, पर बहुत गहरे होते हैं। यदि ये घाव नाड़ी या धमनी तक पहुँचते हैं, तो मृत्यु कर देते हैं।

७—बंदूक की गोली आदि के घाव—इनमें कभी-कभी हड्डी भी टूट जाती है। आजकल डॉक्टर एक यंत्र की सहायता से गोली निकाल सकते हैं।

८—ज़हरीले जानवरों के काटने के घाव—जैसे पागल कुत्ता, सर्प आदि के।

कुचलना—अधिक चोट लगने से सूजन बड़ी लाल और पीड़ावाली होती है। चोट के स्थान पर, त्वचा के नीचे, रुधिर के एकत्रित होने से एक नीले रंग की दर्दवार सूजन हो जाती है। मोच आ जाने से भी यही बात होती है।

उपचार १—चोट के स्थान को शरीर से ऊँचा कर लो, यदि पाँव पर चोट हो, तो लेट जाना चाहिए, और कुछ समय तक चलना बंद रखना चाहिए। यदि हाथ में हो, तो हाथ को रूमाल से गले में लटका लेना चाहिए।
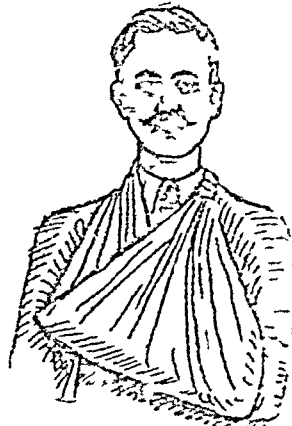
सकरी पट्टी पर हाथ लट-काया है

बाँह की ऊपर की हड्डी टूट गई है

२—सूजन के लिये चोट के स्थान पर बर्फ़ या ठंडे जल में कपड़ा भिगोकर लपेट देना चाहिए। दर्द ज्यादा हो और चोट पुरानी पड़ गई हो, तो गर्म पानी में कपड़ा भिगोकर और निचोड़कर स्थान को सेकना चाहिए। परंतु चोट यदि जोड़ पर हो, तो अवश्य डॉक्टर को दिखाने की जल्दी करनी चाहिए।

यदि चोट बड़ी हो, जैसे सिर के बल ऊपर से गिर गया हो, जिससे दिमाग में कुछ हानि हो गई हो अथवा पैरों के बल गिरने से कमर में धमक लग गई हो, ऐसा रोगी अगर बेहोश हो गया हो, साँस और नाड़ी की गति धीमी हो गई हो, तो उसकी दशा चिंता-जनक समझनी चाहिए। ख़ासकर यदि चोट सिर में हो, तो मृत्यु की अधिक संभावना है। ऐसे मनुष्य को शीघ्र पीठ के बल लिटा देना चाहिए और उसके चारों ओर कदापि भीड़ न होने देना चाहिए। यदि जंगल या यात्रा में दुर्घटना हो गई हो, तो यथासंभव बिना हिलाए किसी चिकित्सक के यहाँ पहुँचा देना चाहिए। कपड़े ढीले कर देने चाहिए। जल पास हो, तो उसके मुँह पर छींटे मारने चाहिए। सिर के नीचे तकिया न लगाना चाहिए, बल्कि एक मनुष्य उसकी टाँगें उठाए रहे।

यदि ज़रूरत हो, तो नक़ली ढग से साँस चलाना चाहिए। यदि वह जल पी सकता हो, तो जल पीने को दीजिए, पर बेहोशी की हालत मे जल मुँह में मत डालिए। बेहोशी की हालत में जल फेफडे में चला जाता है, इससे हानि की सभावना है।

मामूली घाव—मामूली घाव जिनसे ख़ून निकल रहा हो, दो हालतों मे प्राण नाश करते हैं, या तो उनका ख़ून बद न हो, या घाव में मैल, मिट्टी या कोई जहरीली चीज़ रह जाय। इसलिये उचित है कि तत्काल ख़ून बंद करने और घाव को होशियारी से धोकर स्वच्छ करने का बदोबस्त करना चाहिए। हाथो को घाव मे लगाने से पहले राख, मिट्टी या साबुन से अच्छी तरह धो लेना चाहिए, और घावो के आस-पास से वस्त्रो को दूर रखना चाहिए।

सबसे उत्तम तो यह है कि घाव को गर्म करके ठंडे किए पानी से धोना चाहिए। पर ऐसा सभव न हो, तो सिर्फ़ स्वच्छ ठडे पानी से ही काम लेना चाहिए। पट्टी लगाने के लिये स्वच्छ रुई और कपडा काम में लाना चाहिए। ये पट्टियाँ और रुई १॥ घटे तक पानी मे ख़ूब उबाल ली जायँ।
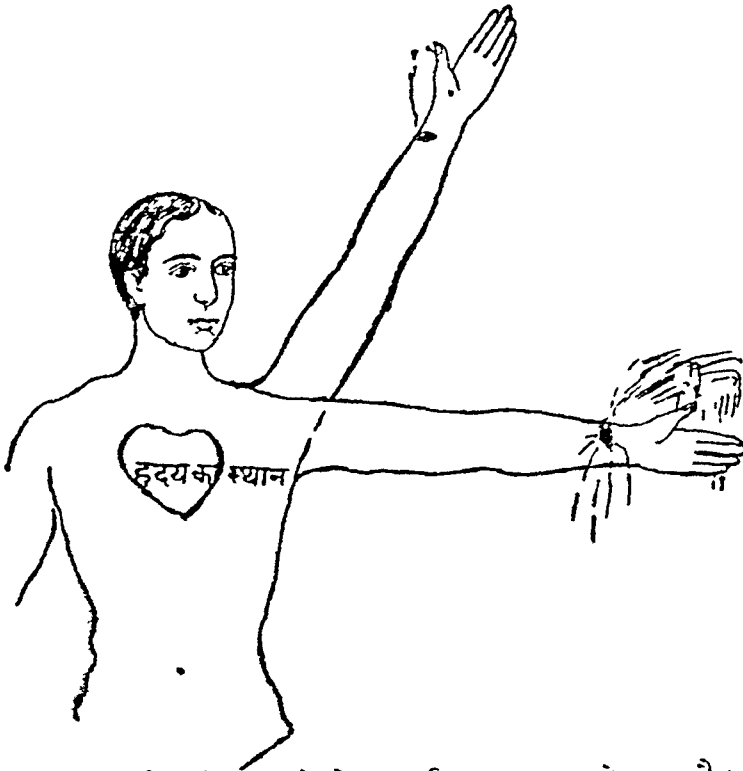
हाथ हृदय से ऊँचा करने से खून निकलना बद हो गया है।

ख़ून बद करने की विधि—प्रथम यह देखना चाहिए कि ख़ून नाडी, धमनी या

बारीक नाडियों या किसमे से निकल रहा है। यदि बारीक नाडी से खून निकलता होगा, तो घबराने की कुछ बात नहीं, वह स्वयं बंद हो जायगा। नाडी से जब खून निकलता है, तब उसकी धार बडे ज़ोर से, किंतु रुक-रुककर निकलती है, जैसे पिचकारी का पानी निकलता है। इस रक्त का रंग बिलकुल लाल होता है। यदि धमनी से खून निकलता होगा, तो वह कुछ गाढा और काला होगा। उसकी धार ऊँची नहीं उछलेगी, जैसे सोते में जल बहता है, उस माफिक निकलेगा। ये धमनियाँ चमडी के नीचे तमाम शरीर मे है, किंतु हाथ-पाँव के ऊपरी भाग मे उनके जाल बिछे है। बारीक नाडियों से बहुत धीरे-धीरे जल की बूँदों के समान ख़ून घाव के मुख पर एकत्र हो जाता है। ये शरीर के रोम-रोम में व्याप्त है।

बारीक नाडियों का रक्त सिर्फ ठंडे पानी से धोने से, बर्फ लगाने से या स्वयं हवा लगने से ही बंद हो जायगा। धमनी से निकलते खून को बंद करने की चेष्टा करती बार स्मरण रहे कि धमनियो में खून हृदय की ओर जाता है, इसलिये हाथ या पाँव को धड से ऊँचा करके घाव के उस तरफ दबाव पहुँचाइए, जिधर से लोहू घाव के मुख पर आ रहा हो।

जब तक ख़ून बंद न हो, हाथ या पैर उठाए रहना चाहिए। अगर बर्फ़ पास हो, तो उसे कपडे मे लपेटकर घाव पर रखना चाहिए। हाथ-पाँव पर कोई गहना आदि चीज़ हो, तो उसे हटा देना चाहिए।

ख़ून बंद हो जाने पर उस पर पट्टी लगा देना चाहिए। हाथ के घावों मे हाथ को रूमाल से बाँधकर गले मे लटका देना चाहिए।

नाडी से ख़ून निकलना भयंकर है। झटपट तत्परता से रक्त बंद करने की व्यवस्था करनी चाहिए। घाववाले अंग को धड से ऊँचा उठाना आवश्यकीय है। फिर प्रधान नाडी को दबाइए। या घाव में साफ उँगली को डालकर कटी हुई नाडी के मुँह को दबाना चाहिए। यदि उँगली से भी ख़ून बहना न रुके, तो स्वच्छ महीन कपडे का टुकडा या रूमाल घाव में भरकर उसे ख़ूब दबाना चाहिए। यदि हो सके, तो किसी चिकित्सक को फ़ौरन् बुलवा लीजिए। पर यदि घायल को किसी सवारी में डालकर अस्पताल ले जाया जाय, तो यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि धड से घाववाला स्थान ऊँचा रहे।

परंतु यदि निकट अस्पताल आदि न हो, तो यही उचित है कि कपडे या रुई की एक गेंद-सी बनाकर उसे घाव पर ख़ूब दबाकर बाँध देनी चाहिए।

यदि रुई या वस्त्र न हो, तो धोती या तौलिए मे एक बडी गाँठ देकर वही घाव पर बाँध देना चाहिए। अथवा रुपया, ठीकरा या साफ़ पत्थर का टुकडा ही रूमाल आदि में लपेटकर उसी तरह बाँध देना चाहिए।

परंतु यदि घाव गर्दन में है, तो घाव में उँगली देकर दाबने की अपेक्षा दूसरा मार्ग

नहीं है, क्योंकि पीछे बताई हुई रीति से कपड़ा लपेटने से तो मृत्यु ही होने का भय है।

गले और कंधे के घाव के लिये यथासंभव शीघ्र चिकित्सक बुला लेना ही उपयुक्त है।

पैर ऊपर उठाने से रक्त कम बहेगा
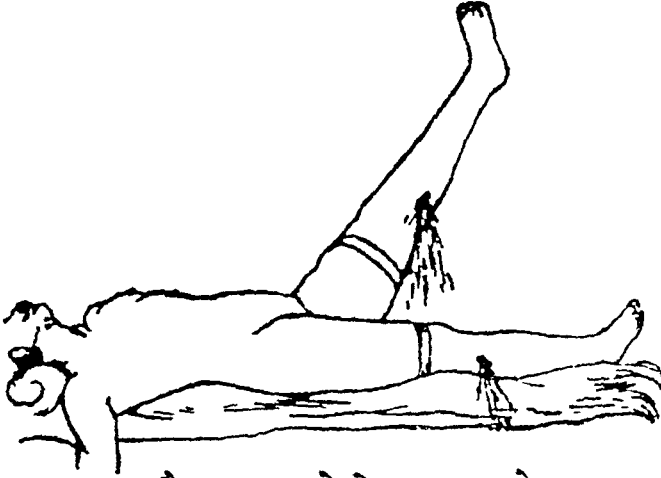
हाथ और पाँवों के घावों में से यदि ख़ून किसी तरह बंद न हो, तो हाथ या पाँव के ऊपर रबर का मोटा, चौड़ा फीता या नल ख़ूब कसकर बाँध देना चाहिए। यह न मिले, तो एक रूमाल को ही ऐंठकर बाँध देना चाहिए। फिर एक लकड़ी लेकर उसे ख़ूब मरोड़िए। जब तक कि ख़ून निकलना बंद न हो। यह जान लेना चाहिए कि हाथ-पैर को इस तरह कसना ख़तरनाक है। यदि २-२॥ घंटे इस तरह हाथ-पाँव कसे रहें, तो नीचे का भाग मुर्दा हो जाता है, इसलिये यह उपाय तभी काम में लाना चाहिए, जब और उपाय काम न दें।

जब घाव का ख़ून बंद हो जाय, तब उसे सावधानी से धोना चाहिए, जिससे घाव में मैल-मिट्टी न रहे। फिर स्वच्छ रुई लगाकर पट्टी बाँध देनी चाहिए।

आइडो फार्म (पीले रंग की अँगरेज़ी दवा) मिल जाय, तो थोड़ा घाव पर छिड़ककर तब पट्टी बाँधनी चाहिए।

यदि घायल बेहोश हो गया हो, तो ख़ून बंद कर चुकने और पट्टी बाँधने के बाद उसे होश में लाने के उपाय करने चाहिए। यदि वह पानी पी सकता हो, तो माशा-भर नमक पानी में घोल कर उसे पिलाना चाहिए, फिर नीचा सिर और ऊँचा पैर करके लिटा दीजिए। यानी तकिया सिर की जगह पाँवों के नीचे लगा दीजिए। ऐसा करने से मस्तक में रक्त पहुँचने से जल्दी होश आवेगा।

कभी-कभी रेल इत्यादि से हाथ-पाँव कट जाने पर बिल्कुल लोहू नहीं निकलता। ऐसी दशा में ठंडे जल से घाव को धीरे-धीरे धोकर साफ रुई में कटे हाथ या पाँव को लपेट देना चाहिए। परंतु शीघ्र-से-शीघ्र उसे अस्पताल पहुँचाइए, क्योंकि ऐसे घाव शीघ्र सड़ने लगते हैं, जिससे रोगी को बहुत कष्ट होता है।

ख़ून की कै—कभी-कभी मनुष्य पेट के बल पत्थर आदि पर गिर पड़े, तो आमाशय से ख़ून

की उलटी होती है। यह खून काले रंग का आता है। पर यदि लाल रंग का आवे, तो समझिए कि खून मुंह, फेफड़े या गले से आया है। ऐसे मनुष्य को ठंडा पानी या बर्फ देना चाहिए। इससे बहुत फ़ायदा होता है।

पट्टी

रीफ गाँठ   ग्रेनी गाँठ

पहले तिकोनी पट्टी बाँधने की रीति समझनी चाहिए। इसका सबसे लंबा किनारा पट्टी का आधार है, बगल के किनारे आधार की भुजाएँ तथा आधार के सम्मुख के सिरे पट्टी के सिर समझने चाहिए। इसको ३ प्रकार से काम में लाया जाता है—
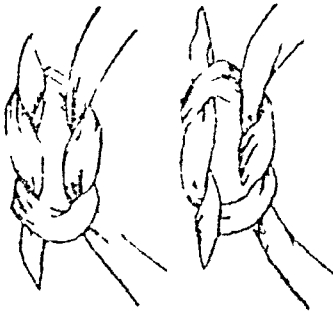
(१) पूरी पट्टी बिना मोड़े, (२) चौड़ी तह करके। (३) पतली तह करके। चौड़ी तहवाली को ऊपर के मध्य भाग के बीच तक लाकर बीच से दूसरी ओर मोड़ देते हैं। इसे और एक बार मोड़ देने पर वह सकरी बन जाती है। चित्र में देखिए।
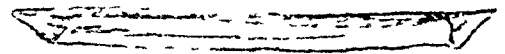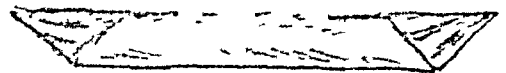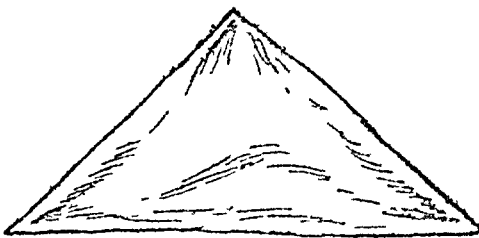
तिकोनी पट्टियाँ

पट्टियों में दो गाँठें काम आती हैं। तिकोनी पट्टी में रीफ गाँठ देना चाहिए।
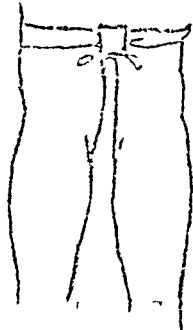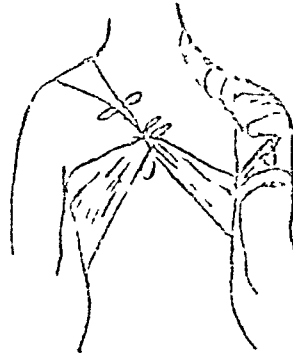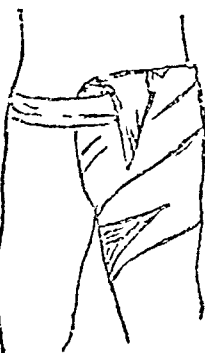
पट्टी बाँधने की रीति

पट्टी बाँधना – पट्टी १॥ या २॥ इंच चौडी, पतली गजी की हों— जो धोबी की धुली हो— पर जिनमें कलफ न हो, उन्हें आध घंटा तक पानी में पकाकर सुखा लेना चाहिए । रुई भी बहुत स्वच्छ धुनी हुई हो । परंतु कुसमय में रुमाल, धोती, तौलिया, दुपट्टा आदि से भी काम चल सकता है । पर हर हालत में कपडा रंगीन न होना चाहिए । पट्टी बाँधने की सबसे सरल विधि तिकोनी पट्टी की है । रुमाल को दुहराकर तिकोना किया और सरलता से बाँध दिया । आवश्यकता होने पर इसके कई पर्त करके लंबी पट्टी के समान भी बाँध सकते हैं ।

सिर की पट्टी

सिर के घावों के लिये भी पट्टी, बडे रुमाल या अँगौछे से दोनों किनारों के बीच थोडा फाडने से बचा लेना चाहिए ।
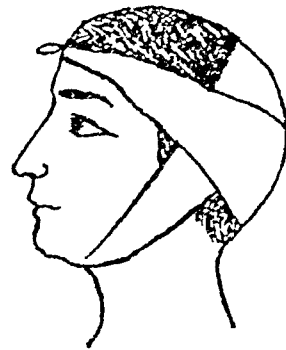
सिर के मध्यभाग में चोट है ।

सिर के अग्रभाग में चोट है ।

सिर के पीछे के भाग में चोट है ।

परंतु गले में हाथ लटकाने के लिये अथवा कुहनी, कूल्हे, हाथ, पैर आदि घावों के लिये इस तरह बाँधने की जरूरत नहीं । सिर्फ हाथ को एक रुमाल या अँगौछे से गले में लटका लेना चाहिए ।

कम चौडे स्थानों पर जैसे उँगलियाँ, हाथ, पाँव, जाँघ, धड आदि के लिये इन पट्टियों की ज़रूरत पडती है ।

इनका बाँधना जरा कठिन है । वे पट्टियाँ पहले लपेटकर तैयार रखनी चाहिए, फिर उन्हें पिन या गाँठ बाँधकर रहने दे । पट्टी बाँधने से घाव के किनारे मिले रहते हैं, दबाव पडकर खून कम निकलता है, और मक्खी, धूल आदि से घाव सुरक्षित रहता है ।
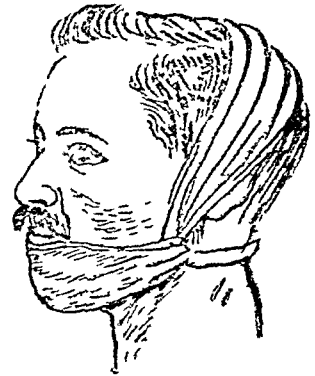
जबाडा टूट गया है
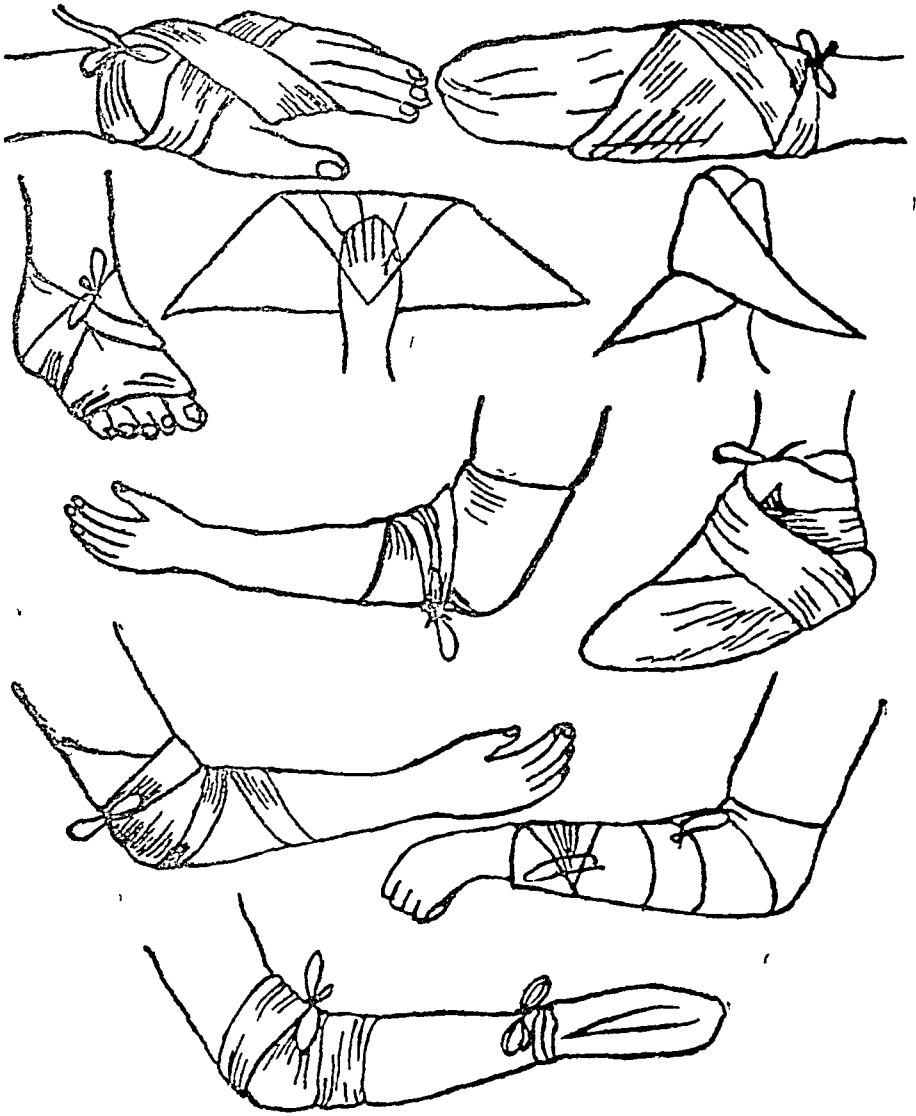
भिन्न-भिन्न अंगों पर पट्टियाँ बाँधने की रीति

जोड और हड्डियों मे चोट—छत या पेड से गिर जाने पर यदि हड्डी टूट जाय या जोड उखड जाय, तो रोगी के मित्रो को चाहिए कि केवल इतनी चिकित्सा करें कि रोगी को और हानि न पहुँचे। उखडे जोड को बैठाने या टूटी हड्डी को मिलाने का काम अनाडी न करे, वरना रोगी सदा के लिये अपग हो जायगा।

मोच—मोच प्राय टखने या कलाई में आया करती है। सधि के एकदम मुड जाने से उसके बाँधनेवाली नसें थोडी खिचकर फट जाती हैं। कभी-कभी सूक्ष्म नलियाँ और कभी
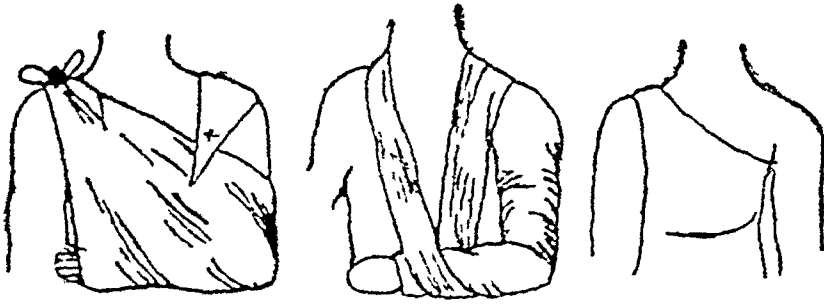
हाथ को रूमाल में बाँधकर गले में लटका लेने की रीति

जोड की थैली के फट जाने से मोच आई हुई गाँठ में सूजन हो जाती है। खून और मधि के पानी के इकट्ठे हो जाने से ऐसा होता है। गाँठ पर दर्द होता है, पर जोड हिल सकता है।

उपाय—मोच आते ही शीघ्र हृदय की ओर दबाकर मालिश प्रारंभ कर दे। १०-१५ मिनट तक ऐसा करने से दर्द और सूजन कम हो जाती है। यदि दर्द बहुत हो, तो ठंडे पानी में भीगे कपड़े को जोडपर दबाकर लपेट देना चाहिए।

जोड हट जाना—जोड पर बहुत जोर पडने या उस पर किसी भारी चीज़ के गिरने से, हड्डी कभी-कभी निकल आती है। इसे जोड का उखडना कहते हैं। सबसे अधिक कंधे और कूले के जोड हट जाया करते है, कभी-कभी जबडे, कुहनी और घुटने के जोड भी उखड जाते हैं।
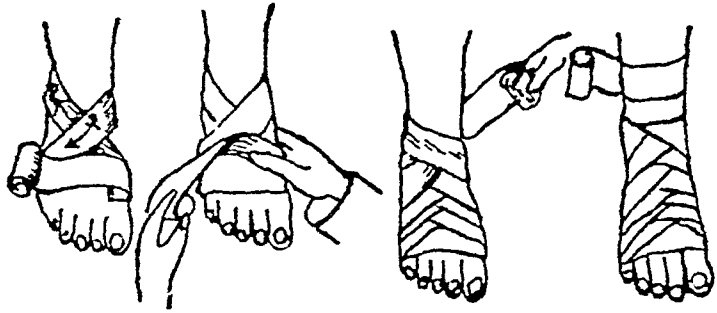
पैरों पर पट्टियाँ बाँधने की भिन्न-भिन्न रीतियाँ

कुहनी के जोड उखड़ने पर ऐसी लकडी बनाओ

कुहनी के जोड उखड़ने पर चित्र की भाँति लकड़ी बनाकर गद्दी लगाकर सावधानी से बाँध दो।

उपाय—चिकित्सा करने से प्रथम उखडे जोडों को खूब अच्छी तरह मिलाना चाहिए। यदि हाथ का कोई जोड उखड़ गया हो, तो गले में रूमाल डालकर हाथ को लटका देना चाहिए। २४ घंटे के भीतर-भीतर जोड डॉक्टर को निश्चय दिखा देना चाहिए।
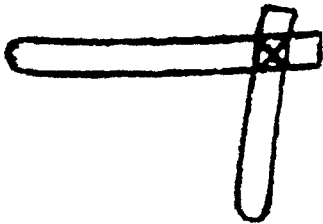
रोगी का जोड उखड़ जाय, तो रोगी को कदापि उठने न देना चाहिए। न उसके पाँव को
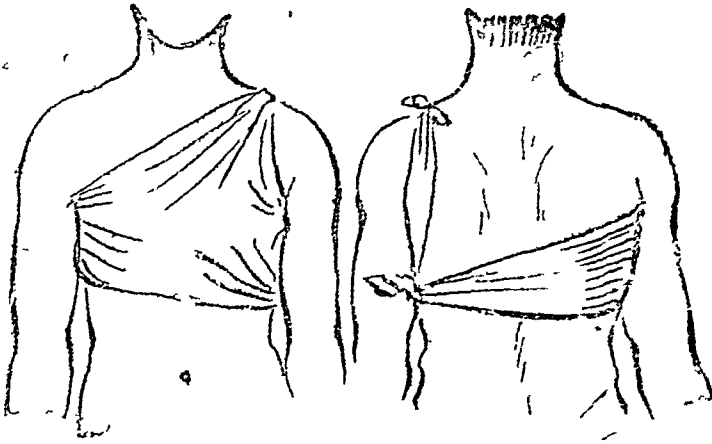
छाती का भाग पीठ का भाग

छाती की हड्डी टूटने पर इस प्रकार पट्टी बाँधो

सीधा करने या फैलाने का यत्न करना चाहिए। उखडे स्थान पर गीला कपडा लपेट देना चाहिए, तथा शीघ्र अस्पताल पहुँचाना चाहिए। देर होने से फिर जोड ठिकाने नहीं बैठता। चोट लगने के बाद यदि उस अंग पर चुस्त कपडा हो, तो उसे उतारने की चेष्टा न कीजिए, कपडा फाड डालिए। यदि आदमी मज़बूत हो और दर्द ज़्यादा हो, तो भंग या शराब-जैसी कोई नशे की चीज़ उसे दी जा सकती है।

जाँघ की हड्डी टूट जाने पर

हड्डी का टूटना—लाठी, छत या वृक्ष से गिर पडने या गाडी के नीचे गिर जाने से, अर्थात् बड़े आघात से हड्डी टूट जाया करती है। अस्थि-भेद दो प्रकार का होता है—एक वह, जिसमे हड्डी तो टूट जाती है, किंतु घाव नहीं होता। दूसरा वह, जिसमें घाव होकर हड्डी बाहर निकल आती है। पिछले प्रकार के भंग से प्राय प्राणो का भय होता है। ऐसे भंग प्राय थोडी भी असावधानी से सड जाते और ज्वर, सूजन उत्पन्न होकर प्राण लेते है। पर प्रथम के अस्थि-भंग की शीघ्र व्यवस्था कर ली जाय, तो आरोग्य, युवा मनुष्य और बालक की हड्डी १॥ मास में जुड जाती है। वृद्ध को कुछ ज्यादा कष्ट उठाना पडता है।
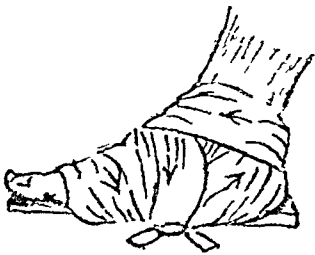
पैर की हड्डी टूटना

पहचान—टूटा हुआ अंग टेढा हो जाता है। वह अंग हिल नहीं सकता। दर्द बहुत होता है, और टूटे अंग का नीचे का भाग फूल जाता है।

उपाय—जहाँ तक बन सके, टूटे स्थान को व्यर्थ नही हिलाना चाहिए। इससे नाडी, धमनी, शिरा, पुट्ठे आदि को हानि पहुँचती है और रोगी को भी दुख होता है।

यदि सिर्फ़ एक ही हड्डी हो, तो उस भाग को चारो ओर से किसी चीज से लपेट देना चाहिए। यथा—बाँस के पंखे या चिकु के टुकडे से, परंतु घाववाले अंग मे प्रथम घाव को बाँधकर तब ऐसा किया जाना चाहिए। इसके बाद फ़ौरन् रोगी को होशियार डॉक्टर के पास ले जाना चाहिए, पर यदि भग के स्थान मे दो या ज्यादा लंबी हड्डियाँ है, तो वृक्ष के समान लकडियाँ लगानी चाहिए। बाँधते वक़्त यह ध्यान रखना चाहिए कि हड्डी की कोई कोर चमड़ी को छेडकर बाहर न निकल आवे। दूसरी बात यह है कि टूटी हड्डी के ऊपर और नीचेवाला जोड भी उस लकडी या सहायक वस्तु के मध्य में आ जाना चाहिए। टूटी टाँग के बाँधने में टखना और घुटना भी बाँध देना चाहिए, जिससे रोगी इन पर कोई गति न कर सके। भग पर बाँधने के लिये वृक्षो की शाखा, लबी, सूखी घास का मुट्ठा, किताब के पट्ठे, कापियाँ, कोट, कुर्ते आदि की बाँह में घास भरकर तकिए, छडी, छाता, लबी लकडी, पतले लंबे दरख्त के टुकडे, बदूक, तलवार की म्यान इत्यादि। टूटी उँगली को अच्छी उँगली के सहारे बाँध देना चाहिए। इसी प्रकार जब टाँग के अस्थि-भंग में कुछ न मिले, तो दोनों टाँगो को सीधा करके एक टाँग को दूसरी के साथ बाँध दो।
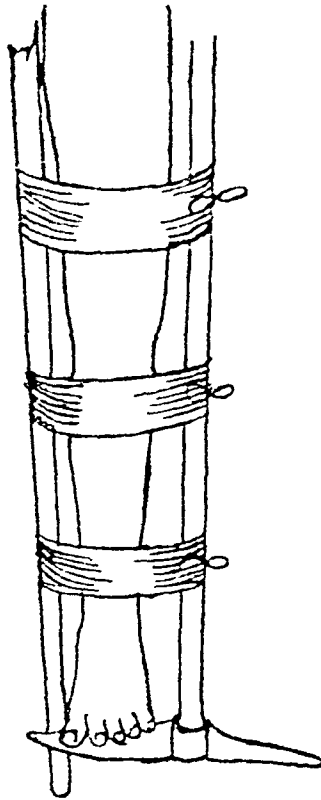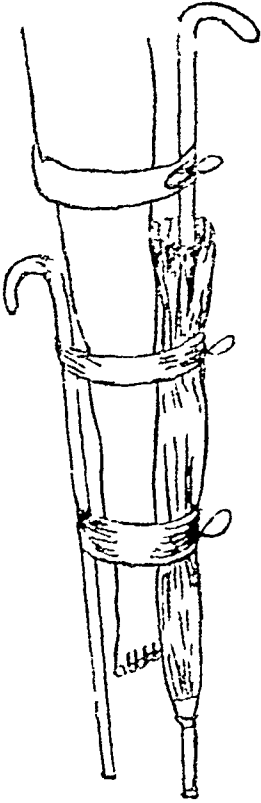
छाता और छडी से टाँग बाँध दी है — कुदाल और लाठी से टाँग बाँध दी गई है

रीढ की हड्डी टूट जाने मे घायल को हिलने भी न देना चाहिए। ऐसे रोगी का बचना

वहुत कठिन है । मुँह की टूटी हड्डी को भीगे रूमाल से बाँध देना चाहिए । जबडे के भग को चौकोर वस्त्र से बाँध देना चाहिए ।

भग के ऊपर लकडी आदि लगाने के प्रथम रुई या कपडे की गद्दी आदि कोई नरम वस्तु रख देनी चाहिए । खासकर टखनो, कलाई, कुहनो, पाँव की उँगलियों और घुटनो के दोनो ओर ।
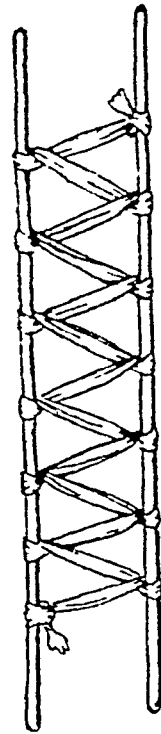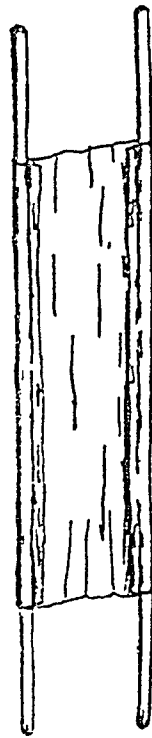
दो कोटों से बनाई स्टेचर साधारण कपडे का स्टेचर सिर के साफे से बनाया हुआ स्टेचर

खोपडी, रीढ की हड्डी, मुँह की हड्डियाँ, पसली, हँसली, कंधे तथा कूल्हे की हड्डी में लकडी आदि नहीं लगाना चाहिए। कंधे या हँसली की हड्डी टूटने पर सिर्फ उस ओर के हाथ को गले मे लटका लेना चाहिए और अति शीघ्र अस्पताल पहुँचाना चाहिए ।

प्रकरण २

विषैले जंतुओं का काटना

सर्प

सर्प दो प्रकार के होते हैं एक विषधर दूसरे विष-रहित । विषधर साँप बहुत कम होते हैं। ऐसे साँपों में कोबरा, गेहुवाँ और करैत बड़े भयानक होते हैं। इनकी खास पहचान इनका फन है। जब ये क्रुद्ध होते हैं, तो फन फैला देते हैं। ऐसे सर्पों के ऊपरी जबड़े में दो बड़े-बड़े पैने दाँत होते हैं, जो प्रायः ½ इंच से १ इंच तक अंतर से होते हैं। जब साँप किसी को काटता है, तब इन दाँतों की तेज नोक चमड़ी और मांस को छेदकर रक्त की नलियों में घुस जाती है। इन दाँतों की जड़ में दो थैलियाँ होती हैं, जिनमें विष इकट्ठा रहता है। साँप किसी को काटते ही फौरन् उलट जाता है, जिससे इन थैलियों से विष निकलकर घाव में चला जाय। ये दाँत पीले होते हैं। ज्यों ही रक्त में विष प्रवेश करता है कि वह आनन-फानन सारे शरीर में फैल जाता है। पर यदि किसी उपाय से यह विषाक्त रक्त हृदय तक पहुँचने से रोक दिया जाय, तो मनुष्य बच सकता है। इसलिये सर्प-दंशित मनुष्य में सर्व प्रथम यही उपचार करने चाहिए कि रक्तवाही शिराओं पर दबाव डाला जाय। पहले अँगूठे से दबाव डाले, और बाद को इसे छोड़ने के पहले दो या तीन बाँध बाँधे, जो घाव के ऊपर के अंग में हो। यदि साँप ने

ज़हरी दाँत

उँगली में काटा है, तो उँगली, कलाई, बाँह और बगल के पास बाँध बाँधे जायँ। घाव से जितना संभव हो, रक्त निकलने दिया जाय। यदि घाव नीचे को लटका दिया जायगा, तो खूब रक्त निकलेगा। और बार-बार घाव पर गर्म जल भी डालना चाहिए या गर्म जल से भरे बर्तन में डाल देना चाहिए। यदि मिल जाय, तो घाव में पोटाशियम परमेंगनेट भर दिया जाय। घाव चौड़ा न हो, तो चाकू से चीर दे। सब काम बिना विलंब झटपट करने चाहिए। यदि दंश होते ही घाव को तत्काल गर्म अंगारे या लोहे से दाग दिया जाय, तो सबसे उत्तम है। कास्टिक, पोटाश, नाइट्रिक एसिड या कार्बोलिक एसिड, जो भी तत्काल मिल जाय, घाव में भर दो। और रोगी को तत्काल किसी अस्पताल में पहुँचा दो। उसे सोने न दो। खड़ा रक्खो और दौड़ाओ। उसे हिम्मत दिलाते रहो। रोगी को शराब, गर्म चाय, काफ़ी या कहवा पिलाओ। अथवा १ पाव घी एकदम पिला दो।

हज़म होने पर और पिलाओ। अँगरेज़ी दवाख़ाना पास हो, तो साल वोलेटाइल-नामक दवा एक ड्राम दे दो। नहीं तो नीचे लिखी दवा दो, जो साँप के काटे पर रामबाण है।

कुहनी के ऊपर बाँध

रीठा दो अदद, नौसादर १ माशा और घुंघची (चिरमिटी) ४ अदद। तीनों चीज़ों को १ तोला के अंदाज रेशमी वस्त्र में पोटली बाँधकर कोयलों पर फूँक लो। जब निर्धूम हो जाय, तो धीरे से उठाकर पोटली-सहित पीस लो। और उसके तीन भाग करो। १ भाग घी में चटा दो, जरा-सा घाव पर भी लगा दो। प्रत्येक घंटे में १ भाग दो। ऊपर १ पाव घी पिलाओ, अवश्य आराम होगा। आज़मूदा नुसख़ा है।
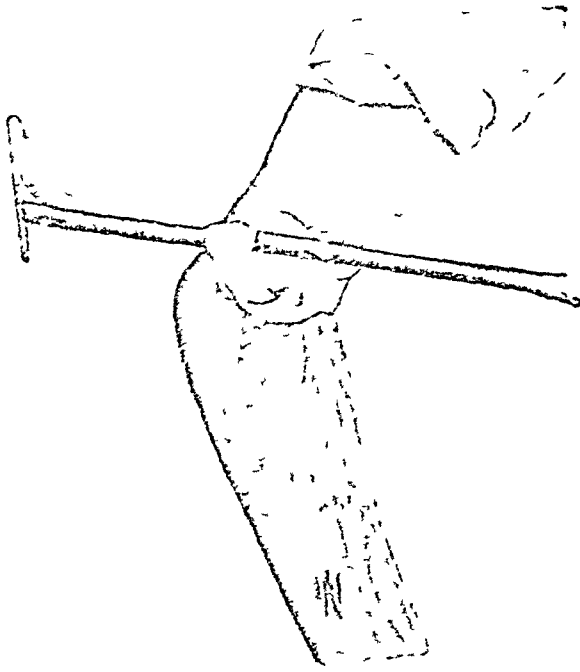
यदि पैर में साँप ने काटा हो, तो घुटने के ऊपर बाँधो। और घाव को तेज़ चाक़ू से चार रेखाओं में चीर दो। यदि साँप बहुत ज़हरीला हो, तो घाव ½ इंच गहरा कर दो। यदि दंश कलाई, उँगली, टखने या पैर पर या अँगूठे के बीच में हो, तो चीरा लगाने का ध्यान रक्खो कि नस न कट जाय। वहाँ सिर्फ़ लंबाई में काटो। हाथ में काटा हो, तो बाँध कुहनी के ऊपर लगाओ। पिंडली या बाँह के आगे के भाग में बाँध लगाना व्यर्थ है, क्योंकि इन अंगों में २-२ हड्डियाँ रहती हैं, इसलिये यहाँ बाँधने से इस पर दबाव न होगा।

यदि रोगी बेहोश हो गया हो, तो उसे कृत्रिम रीति से साँस लिवाओ। यदि इस बात में संदेह हो कि साँप ने ही काटा है, तो नीम की पत्तियाँ खिलाकर देखो। साँप के काटे हुए को नीम की पत्तियाँ कड़ुई नहीं मालूम होंगी। बेहोश रोगी के नाक में कायफल, नकछिकनी और काली मिर्च की नस्य देने से उसकी बेहोशी दूर होगी। सब चीज़ें न मिलें, तो जो चीज़ भी मिले, पीसकर काग़ज़ की नली से नाक में फूँक दो।

बावला कुत्ता या गीदड़

पागल कुत्ते की पहचान यह है कि उसकी जीभ सदा बाहर को निकली रहती और

उससे लार टपकती रहती है। यदि कोई ऐसा कुत्ता किसी को काट खाय, तो उसे मार नहीं डालना चाहिए, बल्कि बाँध रखना चाहिए और परीक्षा करनी चाहिए कि यह पागल है या नहीं। यदि कुत्ते ने कपड़े के ऊपर से काटा है, तो घबराने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि विष उसकी लार में होता है। ऐसी अवस्था में लार बहुत कम घाव में पहुँची होगी, परंतु सावधान हो जाना चाहिए। रोगी का यह उपचार करे—

१—साँप ही की भाँति २ स्थानों में पट्टियाँ बाँधो।

२—घाव को गर्म पानी से ख़ूब धोओ, ताकि रक्त अच्छी तरह बाहर निकल जाय। फिर घाव पर कार्बोलिक एसिड या नाइट्रिक एसिड लगाओ। ये चीज़ें न मिलें, तो पोटाशियम परमेंगनेट को ही घाव में भर देना चाहिए। या लाल मिर्च भर दे। इसके बाद रोगी को कसौली भेज देना चाहिए, जहाँ इसका ख़ास अस्पताल है। वहाँ के लिये सरकार ग़रीबों को मुफ्त रेल का पास भी देती है।

गीदड़ का भी यही उपचार करना चाहिए। ज़ख्म में सुर्मा पीसकर भर देना चाहिए। शुद्ध कुचला आधी रत्ती खाने से भी विष उतरता है।

डंक—बिच्छू, भिड़, ततैया, मधु-मक्खी आदि के डंक की पहले ठीक ठीक परीक्षा करनी चाहिए। यदि डंक टूट गया हो, तो उसे निकाल दो और घाव को स्प्रिट या एमोनिया से धोकर उसमें परमेंगनेट पोटाशियम रगड़ो। इसके बाद टिंचर ऑफ़् आइडियन लगा दो, बस रामबाण है।

डंकवाले जंतुओं में बिच्छू बड़ा भयानक है। कभी कभी इससे मृत्यु भी होती है। वेदना का तो कहना ही क्या है! एक छटाक नमक पानी में घोलकर बारबार लगाने से बिच्छू का काटा हुआ शीघ्र आराम होता है। गुडमार बूटी को रोगी चबावे, उसकी लार दंश-स्थान में लगावे, शेष को निगल जाय। अद्भुत फायदा होता है। भिड़, ततैया आदि के काटे पर दिया-सलाई, नमक या गोबर का पानी, लोहा, कपूर आदि घिसने से भी फायदा होता है।

लगाकर घुस जाओ। यदि कंबल को चीर-कर बीच में गिर जाने के योग्य स्थान कर लो, तो उत्तम है। यदि धुआँ बुरी तरह भर गया हो, तो सतह पर लेट जाओ, और अंदर खिसको। यदि भीतर के लोग बेहोश हो गए हों, तो उन्हें बाँधकर घसीट लो। धुआँ हमेशा सतह
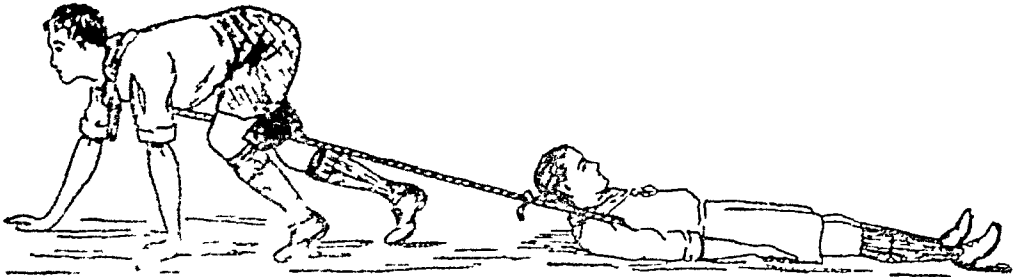
धुआँ भरे घर में से घसीटकर ले जाना

के ऊपर होता है। चारपाइयों, बिस्तरों और मेजों के नीचे अच्छी तरह देखो कि वहाँ कोई छिपा तो नहीं है। बाहर लाकर बेहोश प्राणी को कृत्रिम श्वास तथा उचित उपचार करो।

पानी में डूबना

डूबने में आदमी इसलिये मर जाता है कि पानी में होकर हवा फेफड़े में नहीं पहुँच
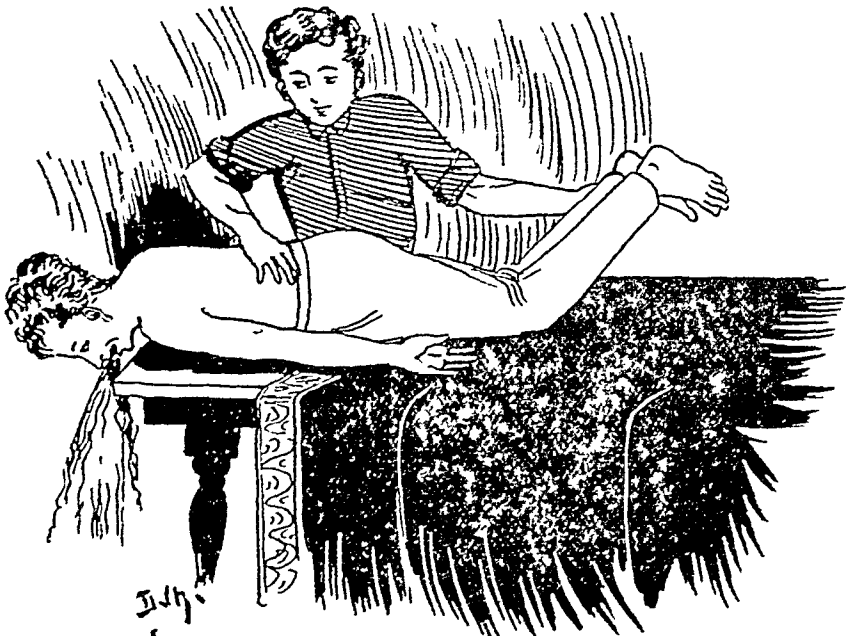
मुँह से पानी निकालने की रीति

सकती । जो कोई डूबने को ही हो, और निकाल लिए जाने पर साँस लेने लगे, तो वह बच जायगा ।

पानी में डूबे हुए आदमी को शीघ्र जल से निकालकर शरीर से कपड़ा दूरकर शरीर पोंछ-कर देखो । यदि शरीर गर्म और शिथिल हो, तो इलाज करो, यदि ठंडा होकर अकड़ गया हो, तो व्यर्थ है ।

बहुधा डूबे हुए आदमी की श्वास और नाड़ी की गति बंद हो जाती है । घबराओ मत । उसके नेत्रों को होशियारी से उजाले में देखो । यदि तुम्हारी परछाईं उसमें दीखे, तो जीवित समझो, अन्यथा मृतक ।

पहले मुँह और नथुनों को साफ़ करो । मुँह खोलो, और जीभ धीरे-धीरे आगे को खींचो, जिससे हवा भीतर जाय । गर्दन और छाती पर के कसे कपड़े हटा दो ।

यदि उसे श्वास न आता हो, तो उसका मुँह खोलकर तत्काल उलटा लटका दो । फिर पेट को धीरे-धीरे पसलियों के नीचे दबाओ, जिससे सब पानी निकल जाय ।
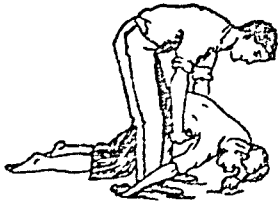
यदि डूबा हुआ व्यक्ति बालक हो, तो उसे घुटनों के सहारे उलटाकर पेट दबाकर जल निकाल दो ।

बालक का पानी निकालना

इसके बाद रोगी को तत्काल चित लिटा दो, उसके सिर के नीचे तकिया या और कुछ लगा दो, जिससे वह उभर जाय । फिर मुँह साफ़ करके ठोढ़ी को नीचे दबाकर जीभ को, जो भीतर लौट जाती है, किसी चिमटे या कपड़े की पट्टी या उँगलियों से बाहर निकाल लो । रोगी के हाथों को कंधे के ऊपर से पूरे फैलाओ । फिर हाथों को कोहनियों पर मोड़-कर पसलियों के बराबर से पेट तक लाकर ज़रा दबा दो । यह क्रिया प्रति मिनट १५ से २० बार तक करो । कम ज्यादा न होने पावे । इससे श्वास आने लगेगी । गले को सहलाना भी असर करता है ।
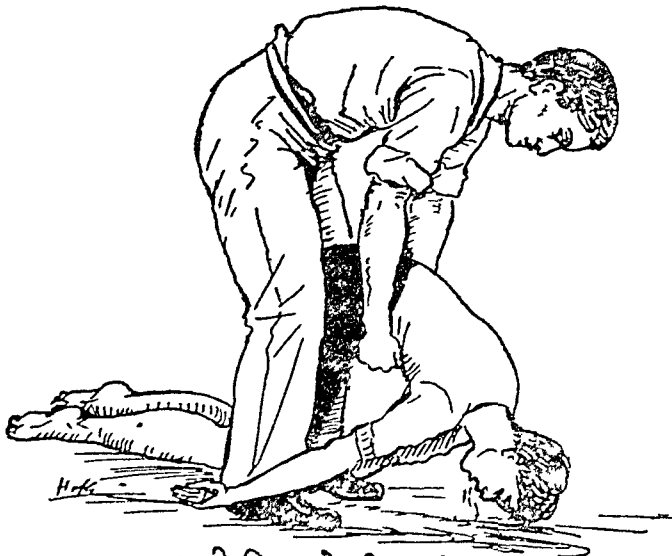
पानी निकालने की दूसरी रीति

यदि इस क्रिया से
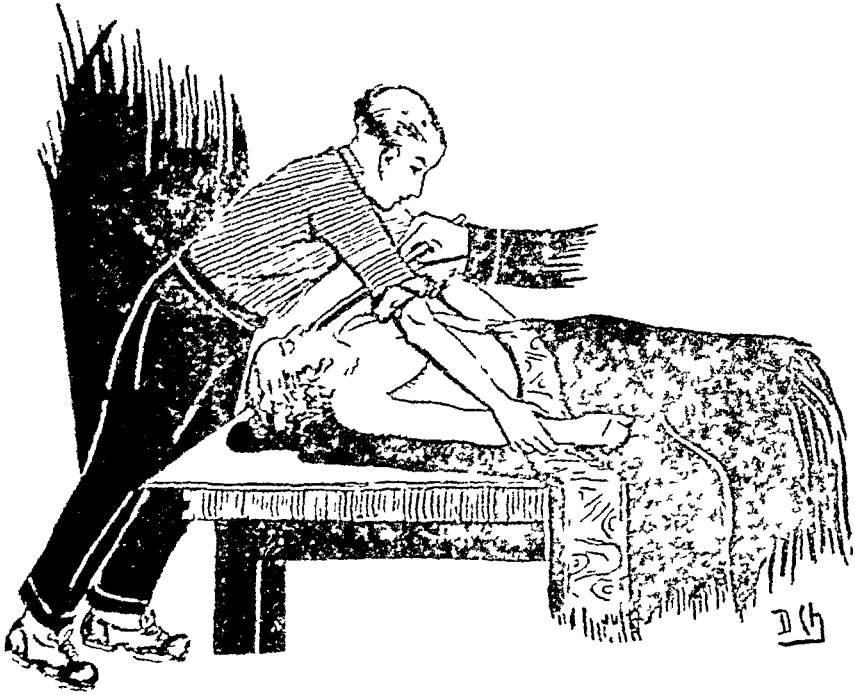
कृत्रिम श्वास दिलाने की रीति

साँस न आवे, तो योग्य डॉक्टर का बुलाओ और तब तक यही क्रिया करते रहो।
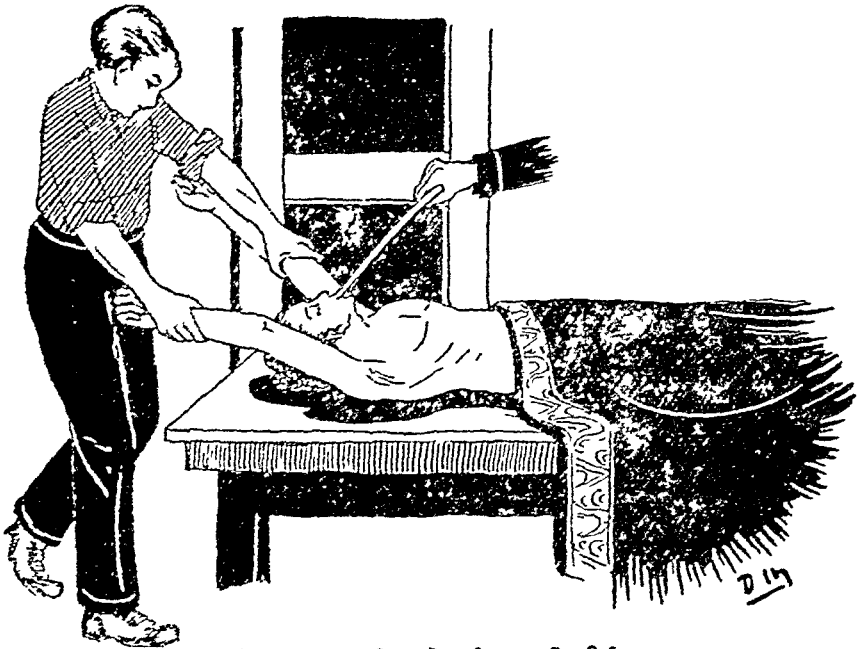
कृत्रिम श्वास दिलाने की दूसरी रीति

प्रकरण ४

जहर खाना

यदि रोगी बेहोश हो और उसका कारण ठीक तौर पर मालूम न हो, तो ध्यान से नीचे-लिखी बातों की जाँच करे—

१—उसके चारो तरफ कोई ज़हर, ज़हरीला द्रव्य, उसकी खाली शीशी या और कुछ ऐसी ही वस्तु तो नहीं है।

२—वहाँ संदेह योग्य जो कुछ मिले, हिफ़ाजत से रक्खे, फेंके नहीं।

३—देखे कि रोगी के शरीर पर, खासकर हाथ-पैरो पर कहीं किसी प्रकार के जानवर के काटे के निशान तो नहीं।

४—उसके होठो या कपडो पर किसी प्रकार के दाग तो नहीं।

५—उसके मुख से किसी प्रकार की दुर्गंध तो नहीं निकल रही है।

६—उसकी आँखों की पुतलियाँ अपनी असली हालत में है या घट-बढ़ गई है। आँखों की पुतलियाँ धतूरे के विष से लंबी और पतली पड जाती है तथा अफ़ीम के विष से छोटी।

उपचार

यह बात मालूम होने पर कि रोगी ने विष खाया है, निम्न-लिखित उपचार शुरू कर दे—

१—सबसे प्रथम योग्य डॉक्टर को बुला भेजे।

२—विष के नाश करने या उसे हलका करने का कुछ उपाय करे।

३—रोगी को घी, मीठा तेल, दूध, चाय, काफी या घुला हुआ आटा पिलावे, जिससे उसके आमाशय की दीवारो की भी विष से रक्षा हो।

४—रोगी को उल्टी कराने की कोशिश करे। उसके गले मे उँगली या पर अथवा नर्म पत्ते डाले। यदि मुँह, होठ और गले मे किसी प्रकार के घाव या छाले न हो, तो रोगी को उल्टी कराने के लिये दो चम्मच मीठा तेल और एक चम्मच नमक गर्म पानी मे मिलाकर पिला दे।

५—विषो के दो प्रकार के प्रभाव होते हैं—पहले वे जो चुपचाप अपना काम करते हैं, दूसरे वे जो गले, पेट, मुँह आदि मे जलन करते है। पिछले प्रकार के विषो में कै न करानी चाहिए। ऐसे विष अम्ल या क्षार पैदा करते हैं। इनके नाश की तरकीब यह है कि विपरीत क्रिया करे। अर्थात् क्षारीय विषो मे अम्ल-पान और अम्ल विषो मे क्षार-पान करावे। ज़िंक सल्फेट चौथाई चम्मच

आधा गिलास पानी में मिलाकर पिलाने से तुरंत कै होती है। अफीम के विष में दो आना-भर तूतिया आधे गिलास पानी मे मिलाकर देने से कै हो जाती है।

विष की जातियाँ

१—जो स्नायु के संगठन को नष्ट करते हैं। जिनके कारण से रोगी मतवाला होकर बकने-झकने लगता है। जैसे भंग, धतूरा, गाँजा, चरस आदि।

२—जो स्नायु और रक्त में उत्तेजना उत्पन्न करते है। जैसे संखिया, पारा, शीशे का चूर्ण, मिट्टी का तेल आदि।

३—निद्रोत्पादक। जैसे अफीम आदि।

४—ज्वलन विष जो तंतुओं को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। जैसे तेज़ाब।

यह बहुत ज़रूरी है कि उपचार करने से प्रथम इस बात का ठीक-ठीक पता लगा लिया जाय कि कौन विष खाया गया है।

अम्ल विष

(१) गंधक का तेज़ाब या शोरे का तेजाब अथवा कोई भी तेज़ाब पी लिया हो, तो होठ, मुँह और गले में तत्काल छाले पड जायँगे। शोरे के तेजाब से जो छाले पड़ेंगे, उनका रंग पीला तथा गंधक के तेज़ाब से पडे छालों का रंग काला होगा। (२) मुख, गले और पेट में दर्द और जलन होगी, प्यास अधिक लगेगी। (३) लाल रंग की वमन होगी। (४) बातचीत करने में कठिनाई होगी। बेहोशी छाई रहेगी।

उपचार

ऐसे रोगी को उल्टी न कराओ। उन्हें तत्काल 'सोडाबाई कार्बोनेट' या चाक मिट्टी पानी में घोलकर पिला दो।

इसके बाद १० तोला एरंडी का तेल ½ सेर पानी मे मिलाकर पिला दो। दूध ख़ूब बारंबार दो।

सोडा समय पर न मिले, तो आटा, मैदा, सेलखडी, खडिया मिट्टी पानी मे घोलकर पिला दो।

कार्बोलिक एसिड पी जाने से होठ या मुँह पर सफद छाले हो जायँगे। मास पेशियाँ ढीली हो जायँगी, बेहोशी होगी और साँस से कार्बोलिक एसिड की गंध आवेगी।

इसके लिये ½ औंस सोडियम सल्फेट १ सेर गर्म पानी में मिलाकर पिला दो। फिर १० तोला एरंडी का तेल ½ सेर गर्म पानी में मिलाकर पिला दो। दूध ख़ूब पिलाओ। पैरों मे गर्मी पहुँचाओ। कृत्रिम रीति से साँस उत्पन्न करो।

क्षार विष

एमोनिया, कास्टिक सोडा और पोटास आदि ऐसे विष है, जिनका प्रभाव यह होता है कि वमन और दस्त जारी हो जाते है। शरीर में दर्द होता है, मुँह मे छाले पड जाते हैं और बेहोशी उत्पन्न हो जाती है।

उपचार

ऐसे रोगी को भी कै न कराओ। नीबू या संतरा चूसने को दो, दूध खूब पिलाओ। दूध मे घी भी मिलाओ। १० तोला एरंडी का तेल ½ सेर गर्म पानी में पीने को दो।

शीशे का चूरा

इससे पेट मे भारी ऐंठन उठती है, पतले दस्त आ जाते है और उसके साथ खून के कतरे भी गिरते हैं। कै भी होने लगती है। और उसके साथ शीशे का चूर्ण भी निकलता है।

उपचार

नरम, गर्म और चिकना खाना भर-पेट खिलाओ, जैसे दलिया, साबूदाना आदि, जिससे शीशे का चूरा उसमे लिपट जाय और आँतो को कम हानि पहुँचावे। इसके बाद कै कराओ।

मिट्टी का तेल

मुँह, गर्दन और पेट में जलन, दर्द, ऐंठन होती है। साँस मे तेल की बू आती है। कै होती और उसमें तेल निकलता है। कडी प्यास लगती और बेहोशी आती है।

उपचार

प्रथम तत्काल कै कराओ, फिर रोगी को लिटाकर पैरों मे गर्म पानी की बोतलें रख दो। थोडी बराडी पिला दो।

तारपीन का तेल

इससे साँस मे घुरघुराहट होती है। आँखो की पुतलियाँ सिकुड जाती हैं। मांस-पेशियाँ सख्त हो जाती हैं। साँस से तेल की बू आती है।

उपचार

प्रथम तत्काल कै कराओ, फिर दस्त लाने को एनीमा दो। दूध में आटा या मैदा घोल-कर पिलाओ।

अफीम और मारफिया

इससे जम्हाई आती हैं। आँखो की पुतलियाँ सिकुड जाती है। बारबार बेहोशी आती है। साँस धीरे-धीरे तथा गहरी चलती है। पसीना खूब आता है। साँस मे अफ़ीम की बदबू आती है।

उपचार

तत्काल आध सेर पानी में १० ग्रेन पोटेशियम परमेंगनेट घोलकर पिला दो। बेहोशी हो, तो स्टमक पर से उतार दो।

मरीज को टहलाते रहो और मुख पर छींटे मार-मारकर चैतन्य करते रहो। बारबार खूब तेज़ चाय या काफी पीने को दो। कृत्रिम रीति से साँस लाओ।

धतूरा

गला सूख जाता है, प्यास बहुत होती है, निगलने में कष्ट होता है, रोगी लडखडाता है, चेहरा लाल हो जाता है, पुतलियाँ लंबी और पतली पड जाती है। वह अनाप-शनाप बकता, और कल्पित वस्तुओ को पकडता तथा उनसे बाते करना चाहता है। अत मे बेहोश होकर गिर जाता है।

उपचार

गर्म पानी मे नमक घोलकर पिलाओ। गर्म काफी या चाय पीने को बारबार दो। यदि रोगी बेहोश हो, तो कृत्रिम रीति से साँस लाओ और गर्म पानी की बोतलें बगल और जाँघो पर रक्खो। अगो को परस्पर रगडो।

शराब

अत्यंत शराब पीने से चेहरा और आँखें सुर्ख हो जाती हैं, होठ नीले पड जाते है, बेहोशी आती तथा पैर लडखडाते है, साँस से शराब की बू आती है। बेहोशी होती है।

उपचार

ठडे पानी के छींटे आँखों पर दो, होश मे आने पर कै कराओ। गर्म चाय पीने को दो। चूना-नौसादर नाक में रगडो। बेहोशी हो, तो कृत्रिम रीति से साँस दिलाओ। यदि नशा हल्का हो जाय, तो पेडो का शर्बत पिलाओ।

भग-गाँजा-चरस

इसमे रोगी प्रथम खूब मुस्तैद व चुस्त चालाक दीख पडता है, बाद को सुस्त होकर बेहोश हो जाता है। आँखो की पुतलियाँ फैल जाती हैं।

उपचार

कै कराओ। गर्म चाय पिलाओ। अरहर की दाल का पानी दो। पैरों मे गर्म बोतल रक्खो। कृत्रिम साँस दिलाओ, मक्खन खूब खिलाओ।

कुचला और संखिया

इससे कभी-कभी उल्टी और दस्त आते है। पीठ टेढी पड जाती है। दाँती भिच जाती है, आँखो की पुतलियाँ स्तब्ध हो जाती हैं। साँस लेने में कष्ट होता है। नाडी निर्बल, किंतु तेज़ चलती है।

उपचार

फौरन् कै कराओ। ½ सेर पानी में १० ग्रेन पोटेशियम पर्मेंगनेट मिलाकर दो। गर्म चाय दो, १५ बूँद एमोनिया पानी में मिलाकर पिलाओ। १ पाव घी पिला दो। उल्टी हो, तो हर्ज नहीं, पिलाते रहो। प्यास हो तो दूध में घी मिलाकर दो।

लू लगना

बहुत देर तक कडी धूप मे काम करने या मार्ग चलने से अत्यत प्यास,

ज्वर, बेहोशी, आँखें लाल, भ्रम आदि होकर रोगी बेहोश हो जाता है। उसे ही लू लगना कहते है।

उपचार

ऐसे रोगी को ठडे, शीतल, हवादार स्थान में कपडा खोलकर लेटाना चाहिए। फिर केले आदि के पत्तो पर ठंडे पानी के छींटे देकर हवा करना, घिसा हुआ चदन मिला पानी बार-बार पिलाना, ठंडे पानी के छींटे मुख पर देना, ठडे इतर सुँघाना आदि क्रियाओं से प्रथम मूर्च्छा दूर करनी चाहिए, फिर नीचे लिखा पानी बार-बार पिलाना चाहिए।

घिसा हुआ चदन १ तोला, नींबू का रस ४ तोला, भुनी हुई कच्ची अँबिया (कैरी) का रस ८ तोला, मिश्री १६ तोला सबको २ सेर पानी मे मिलाकर बार-बार थोडा-थोडा देना चाहिए।

फाँसी आदि से गला घुटना

यदि श्वास बंद हो जाय, तो श्वास चलाने के लिये पानी में डूबे मनुष्य की तरह उपचार करना चाहिए। यदि गले मे कुछ अटक जाय, तो गुद्दी पर धीरे-धीरे मुक्का मारना चाहिए, जिससे वस्तु धीरे-धीरे नीचे खसक जाय।

बेहोशी

ठडे पानी के छींटे दे। इससे लाभ न हो, तो नाक में सूँघनी फूँक दे। या चूना (पान में खाने का) और नौसादर दोनो को बराबर ले पीस शीशी मे भर कडी डाट लगा ले और बार-बार उसे सुँघावे। यदि श्वास बंद हो गया हो, तो पानी मे डूबे मनुष्य की-सी क्रिया करे, फिर भी यदि होश न आवे, तो यह क्रिया करे —

एक असली फ़लालैन का टुकडा तेज़ गर्म पानी में भिगोकर निचोड ले और उस पर तारपीन का तेल जल्दी से छिडक दे। उस पट्टी को गले मे लपेट दे। बारबार गर्म पानी के छींटे दे, तो रोगी होश में आवेगा।

प्रकरण ५

कृत्रिम श्वास-क्रिया

श्वास-क्रिया जीवन के लिये अनिवार्य है। वह लू लगने, पानी में डूबने, धुएँ से गला घुटने, फाँसी लगने या बिजली का धक्का लगने से बंद हो जाती है। इस प्रकार अकस्मात् अस्वाभाविक रीति से बंद हो जाने पर श्वास-क्रिया को कृत्रिम रीति से फिर जारी रखना चाहिए। यह प्राण-रक्षा की सरल और बहुमूल्य रीति है, जिसे न-जानने के कारण अनेकों जानें यों ही चली जाती हैं। कृत्रिम श्वास लाने की तीन रीतियाँ हैं, जिनमें से जैसा सुबीता हो, काम में लानी चाहिए—

१—रोगी को नंगा कर तुरत पेट के बल लिटा दो। हाथ आगे की ओर फैला दो। फिर उसकी बगल में घुटने टेककर उसके सिर की ओर मुँह करके बैठ जाओ। रोगी

कृत्रिम श्वास की पहली रीति

का गला, मुँह, नथुना भली भाँति साफ़ कर लो। फिर अपने हाथों की हथेलियों को मरीज़ की पीठ पर कमर के पास रखकर आगे को गर्दन की ओर दबाते हुए सरकाओ, और ज्यों-ज्यों छाती की ओर पहुँचते जाओ, त्यों-त्यों अधिक दबाव करते जाओ। फिर कंधों की सीध में पहुँचकर दबाव को बिलकुल कम कर दो। और हाथों को बिना उठाए फौरन अपनी जगह पर ले आओ और फिर पहले की भाँति करो। इस प्रकार १ मिनट में १५ से १८ बार तक करो। यदि रोगी फिर भी साँस न ले, तो २-१ घंटे तक ऐसा ही करते रहो, जब तक कि कोई वैद्य परीक्षा करके यह न कह दे कि अब इसमें प्राण नहीं है। इसे बीच-बीच में एमोनिया सुँघाते रहो। जब उसकी साँस चलने लगे, तब उसके शरीर में गर्मी पहुँचाने के लिये उसे फलालैन में लपेट दो या गर्म पानी की बोतलें बगल और जाँघों में रक्खो।

१—कपड़े उतार दो और रोगी को चित लिटा दो, उसके कंधों के नीचे तकिया या कोई नरम चीज रख दो, जिससे उसका सिर लटकता रहे। फिर उसके मुँह, गले और नथुनों को साफ कर दो। फिर भुजाओं को कोहनी के नीचे से पकड़कर ऊपर को उठाओ। इसके बाद उन्हें अपनी ओर यहाँ तक खींचो और फैलाओ कि उन भुजाओं की कोहनियाँ तुम्हारी तरफ़ ज़मीन को छू लें। इस क्रिया से रोगी का वक्षःस्थल फैलेगा, और वायु को भीतर प्रवेश करने का अवसर मिलेगा। फिर भुजाओं को छाती के पास उठाकर लाओ और कुह-

कृत्रिम श्वास की दूसरी रीति

नियों पर मोड़कर छाती पर रखकर इस प्रकार दबाओ कि फेफड़ों की वायु बाहर निकले। पानी में डूबे हुए रोगी को इसी भाँति करो। एक दूसरा आदमी घुटने टेककर उसके मुख को साफ करे, और उसकी जीभ को रूमाल से पकड़ रक्खे। फिर उसे एमोनिया (चूना, नौसादर मिलाकर) सुँघाओ।

२—उसके कपड़े उतार दो या ढीले कर दो। फिर उसे चित लिटा दो। एक आदमी रूमाल से मरीज़ की जीभ बाहर खींच ले। दो सेकंड तक खींचकर फिर छोड़ दो। इस प्रकार १ मिनट में १५ से १८ बार तक करो। जब श्वास चलने लगे, तब शरीर में गर्मी पहुँचाओ। और रक्त-संचालन की चेष्टा करो। यह क्रिया उस रोगी की की जानी चाहिए, जिसकी पसुली की कोई हड्डी टूट गई हो।

बेहोशी की हालत में खास सँभाल

किसी भी कारण से कोई आदमी जब तक बेहोश रहे, उसे खाने-पीने की कोई भी चीज़ मत दो, बल्कि उसे शीघ्र होश में लाने के लिये चेष्टा करो। यहाँ हम संक्षेप से इसके लक्षण और उपचार लिखते हैं—

सिर में चोट लगना—इससे चेहरा पीला पड़ जाता है, आँखें बंद हो जाती हैं, कभी-कभी कै आती है। ऐसे रोगी के सिर पर बर्फ़ रक्खो, रोगी को आराम पहुँचाओ, और पैर गर्म रक्खो।

लू लग जाना—नाडी मंद, चेहरा पीला, सिर-दर्द, तेज़ ज्वर। सिर पर बर्फ़ रक्खो, कच्ची कैरी का पना पिलाओ। शरीर को ढककर गर्म रक्खो, होश में आने पर बर्फ़ चूसने को दो।

हिस्टीरिया या मृगी—स्वास में घुरघुराहट, आँख की पुतलियों का सिकुड जाना, चेहरा सुर्ख़ हो जाना, मुँह में झाग-कंप, दाँत मिच जाना। कपड़े ढीले कर दो। सिर ज़रा ऊँचा रक्खो। पैरों में गर्मी पहुँचाओ और एमोनिया सुँघाओ। गर्म पानी से भिगोकर उस पर तारपीन का तेल छिड़ककर गले में बाँधो।

अफीम से—चेहरा पीला पड जाना, पुतलियाँ छोटी पड जाना। मुँह से अफीम की बू आना। क़ै कराओ, जगाते रहो।

मूर्च्छा-रोग—चेहरा पीला पड जाना, नाडी मंद, रोगी को नीचा सिर करके लिटा दो, ठंडी और स्वच्छ वायु लगने दो। भीड़ मत इकट्ठी होने दो।

जहरीली गैसों के कारण—कोयले आदि की जहरीली गैसों से जो बेहोशी हो, उससे चेहरा स्याह होना, घुरघुराहट, भरी श्वास आना ख़राब होता है। रोगी को तत्काल स्वच्छ वायु में लिटा दो, कृत्रिम साँस दिलाओ।

ख़ास चेतावनी

इस अध्याय में जो कुछ उपचार बताए गए हैं, वे वास्तव में उन रोगों और आपत्तियों के वास्तविक इलाज नहीं हैं, केवल योग्य चिकित्सक आने तक प्रारंभिक उपचार हैं। उचित है कि समय न खोकर ऐसी घटनाएँ उपस्थित होते ही तत्काल योग्य चिकित्सक को बुलाकर रोगी उसके सुपुर्द करना चाहिए।

अध्याय सत्रहवाँ

रोगी की सेवा

प्रकरण १

सेवा-धर्म

प्राचीन बुज़ुर्गों का कहना है कि सेवा धर्म योगियों के धर्म से भी अत्यंत कठिन है। क्योंकि योग में तो अपने शरीर और आत्मा का साधन करना पड़ता है, परंतु सेवा में पराए शरीर और आत्मा के लिये अपना सबसे बड़ा त्याग करना पड़ता है। जिस हृदय में स्वभाव से ही ईश्वरीय दया नहीं है, जो आत्मा संस्कार से ही उदार नहीं है, जिनमें भगवान् ने त्याग और परोपकार की बुद्धि नहीं दी है, वह सेवा-धर्म कदापि नहीं कर सकता।

परंतु जगत् का व्यवहार ऐसा है कि जीवन में प्रत्येक मनुष्य के सामने सेवा करने का प्रसंग आ ही जाता है। कोई भक्त युवक अपने माता-पिता की सेवा करते हैं, कोई पतिव्रता अपने पति की सेवा करती है, कोई व्यक्ति अपने इष्टदेव की सेवा करता है, कोई नौकर अपने स्वामी की सेवा करता है, कोई आधुनिक सभ्य अपनी पत्नी की सेवा करता है, परंतु मैं जिस रोगी की सेवा का ज़िक्र इस अध्याय में करता हूँ, वह सेवा इन सब सेवाओं से भिन्न है। इन सब सेवाओं की अपेक्षा इस सेवा में अत्यधिक त्याग, उदारता और धीरज की ज़रूरत है। रोगी अपने कष्ट और दुर्बलता के कारण प्राय चिड़चिड़े हो जाया करते हैं, और उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं रहता कि हमारी सेवा करनेवाला निस्स्वार्थ भाव या हार्दिक प्रेम से सेवा कर रहा है। वे उन्हें बहुधा कठोर वचन से तिरस्कार किया करते हैं। ऐसी बातों का जो बुरा माने वह रोगी की सेवा नहीं कर सकता। साथ ही रोगी के मल-मूत्र, थूक आदि से घृणा करनेवाला भी रोगी की सेवा के पवित्र पुण्य को प्राप्त नहीं हो सकता। रोगी की सेवा वही महान् आत्मा का व्यक्ति कर सकता है, जो देव-दूत के समान रोगी की निस्स्वार्थ भाव से सप्रेम सेवा कर सकता है।

रोगी को जो दु ख हो, वे सब रोग के ही चिह्न हैं, यह सब मानने का कोई कारण नहीं है। बहुत-से दु ख अपने आप मिट जाते हुए देखे गए हैं। परंतु जहाँ-जहाँ उनके दूर होने में देरी होती है, वहाँ-वहाँ प्राय सेवा की अज्ञानता के कारण ही रोगी को अधिक दु ख-दर्द सहने पड़ते हैं।

रोगी का शरीर ठंडा हो गया या बुखार आ गया या चक्कर आने लगे या भोजन के बाद ही उल्टी हो गई या किसी अंग में दर्द हो गया अथवा एक ही जगह पड़े-पड़े उसके अंग में घाव हो गए, तो यह रोग का दोष नहीं है। रोगी की सेवा ठीक-ठीक न करने का परिणाम है। रोगी की सेवा का सिर्फ इतना ही अर्थ नहीं है कि दवा पिला दी, हाथ-पाँव पर तेल मल दिया, और छुट्टी पाई, प्रत्युत रोगी के लिये स्वच्छ और पूरी वायु पहुँचने का प्रबंध करना, प्रकाश रखना, ठंड न लगने देना, रोगी की हिम्मत न टूटने देना, इन सब बातों का पूरा ध्यान रखना ज़रूरी है।

कोई रोग असाध्य है या नहीं, यह प्रश्न दूसरा है। और रोग के कारण जो कष्ट हैं, वे भी अलग हैं। परंतु हवा, पानी, दवा, भोजन, स्वच्छता आदि का यदि ठीक-ठीक बंदोबस्त है, तो निस्संदेह ख़राब-से-ख़राब दशा में भी रोगी को बहुत कुछ सुख पहुँचाया जा सकता है।

नीरोग रहना और नीरोग होना मोटी दृष्टि से दो बातें हैं, परंतु ध्यान से देखा जाय, तो दोनों के मूल सिद्धांत एक ही हैं। बहुधा लोगों का कहना है कि इन बातों का ज्ञान डॉक्टर-वैद्यों को ही होना ठीक है, परंतु यह बड़ी भूल की बात है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को जीवन और तंदुरुस्ती के नियम जानने बहुत ज़रूरी हैं। इँगलैंड-जैसे सुधरे हुए देश में अपने जन्म के प्रथम वर्ष में सौ बच्चों में १५ बच्चे, ५ वर्ष के भीतर ४०, और कहीं-कहीं तो ५०-६० तक मर जाते हैं। अकेले लंदन-नगर में १० वर्ष की अवस्था के कोई १० हज़ार बच्चे मर जाते हैं। बंबई में, सन् १९१८ ई० में, एक वर्ष तक के बच्चों की मृत्यु-संख्या १२ हज़ार (?) के लगभग थी। १९१९ में १२॥ हज़ार हुई। तमाम भारत में प्रतिवर्ष २० लाख बच्चे मर जाते हैं, क्या यह संख्या भयंकर नहीं है? आप यदि बाल-बच्चेदार हैं, तो आपको विचारना चाहिए कि बच्चों को रोग क्यों होता है। मैलापन, हवा की कमी, अन्न-संबंधी बेपरवाही, गंदा घर इत्यादि कारणों से बच्चे बीमार होते हैं, घर में बच्चों की उचित सम्हाल नहीं होती, इससे वे अशक्त और रोगी हो जाते हैं। इन बातों की तरफ लाखों मनुष्यों का ध्यान तक नहीं है।

प्रकरण २

रोगी के योग्य घर

रोगी के रहने योग्य उपयुक्त घर में ५ बातों की सख्त जरूरत है : १ साफ हवा, २ साफ जल, ३ साफ पाखाना, मोरी आदि। ४ सफाई, ५ घर गरम रखना।

साफ हवा

रोगी के कमरे में जितनी शुद्ध वायु होगी, उतना ही उत्तम है। सिर्फ इस बात का ध्यान जरूर रखना चाहिए कि रोगी के शरीर पर तेज हवा के झोंके न लगें। साफ हवा आने के लिये घर इस तरह बना हुआ होना चाहिए कि उसके कोने-कोने में बाहर की शुद्ध हवा पहुँच सके। मकान में यदि शुद्ध वायु पहुँच सके, तो बहुत-से रोग तो आप ही नष्ट हो जाते हैं। कुछ पुराने ढंग के ऐसे भी गृहस्थ देखे जाते हैं, जो अपने मकान की खिड़की बरसों तक नहीं खोलते। खासकर रोगी के घर में हवा आने को ज़रा-सा सूराख भी होगा, तो उसमें कपड़े ठूँस-ठूँसकर उसे बंद कर देंगे। उनके ख्याल में खुली हवा ठंड पहुँचानेवाली होती है। बहुधा देखा गया है कि अपने घरों को कुछ लोग खूब साफ कर लेते हैं, परंतु उसके बाहर चारों तरफ की गंदगी पर कुछ ध्यान नहीं देते। बाहर मैला, कूड़ा कर्कट, सड़ा हुआ पानी जमा रहता है। मोरियों में दुर्गंध उड़ती रहती है, कहीं-कहीं रोगी के कमरे के बाहर ही खोई का पानी जमा होता रहता है। इन सब गंदे स्थानों की हवा यदि रोगी के कमरे में जाने दी जाय, तो समझ लीजिए कि फिर रोगी के कमरे की सफाई से कोई लाभ नहीं है। गंदी हवा निस्सन्देह रोगी के लिये जहर के समान है।

हमारे यहाँ के घर बहुधा इस ढंग से बनाए जाते हैं कि चारों तरफ मकानात और बीच में चौक। इस चौक की हवा यदि रोगी के लिये काफी समझी जाय, तो भूल की बात है। रोगी को तो बाहर से आती हुई स्वच्छ हवा की जरूरत है।

रोगी के कमरे में जलती हुई अँगीठी

सर्दी के दिनों में प्रायः ऐसा किया जाता है कि कमरे की सब खिड़की और दरवाज़े बंद कर एक जलती अँगीठी पास रखकर सो जाते हैं। कमरे में अधिकांश खटर-पटर सामान भरा रहता है। इस मूर्खता के काम से सैकड़ों मनुष्य मर जाते हैं।

रोगी के कमरे में सर्दी के दिनों में यदि अँगीठी रखने की जरूरत ही हो, तो जरूरी बात है कि द्वार, खिड़की भली भाँति खोल दी जायँ, जिससे ताज़ी हवा बराबर कमरे में आती रहे। यदि रोगी को खूब अच्छी तरह गर्म कपड़े उढ़ा दिए गए हों, तो ठंड लगने का उसे कोई भय नहीं है।

परिश्रम

बहुधा ऐसा होता है कि रोगी ८-७ घंटे तक खाट पर पड़ा रहता है। फिर उसकी चादर आदि बदलने के समय, यदि कुछ अच्छा हो गया हो, तो उसे कमरे में इधर-उधर टहलने को कहा जाता है, जिससे लोग समझते हैं कि बल आवेगा। पर होता यह है कि वह प्रथम से ही पड़े-पड़े थका हुआ होता है, ज़रा-से परिश्रम से पसीना आ जाता है, और उसमें हवा लगी कि बुख़ार आया रक्खा है। इस पर सबको आश्चर्य होता है। सिर्फ़ नाक बहने लगने का ही यह मतलब नहीं है कि रोगी को सर्दी लग गई है। सर्दी लगने के अनेक प्रकार हैं। हवा की गर्मी में अगर फेर-फार हो, तो रोगी पर बुरा प्रभाव होने का बहुत ही भय है। जो हवा बिछौने पर सोते हुए रोगी को लाभ पहुँचाती है, वही खड़े और घूमते हुए रोगी के लिये असावधानी से हानिकर हो सकती है। रोगी को साफ़ और ताज़ी हवा ज़रूर चाहिए, पर वास्तव में इसी पर उसकी हानि लाभ निर्भर नहीं है। सामने से आने वाली हवा की गर्मी पर भी ध्यान देने की ज़रूरत है। वह यदि बहुत ठंडी होगी, तो रोगी को उलटकर ज्वर आने का ख़तरा है। कमरे की व कमरे के बाहर की हवा समान रूप से शुद्ध और ठंडी हो। यह कुछ आवश्यक नहीं है, और न यही ज़रूरी है कि रात-दिन सदा कमरे की हवा गर्म बनी रहे।

प्रातःकाल जब ठंडी हवा चल रही है, रोगी के कमरे में अँगीठी रखकर उसे गर्म कर देना अच्छा मालूम देता है। परंतु दोपहर के समय खुली हवा आने के लिये सब खिड़कियाँ निर्भय खोल देनी चाहिए।

यदि रोगी अपने आप उठने-बैठने और चलने-फिरने के योग्य है, तो कमरे की खिड़कियाँ ऐसी होनी चाहिए, जिन्हें वह अपने आप खोल-बंद कर सके।

रोगी के शरीर को गर्मी पहुँचाना

कमरे के सब द्वार और खिड़कियाँ बंद कर देने तथा रोगी के श्वास और शरीर की गर्मी से कमरा गर्म हो जाता है। पर कमरे को गर्म रखने का यह ढंग बहुत भयंकर और रद्दियल है। बहुत रोगी सिर्फ़ इसी कारण से मर जाते हैं।

इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि रोगी के कमरे में ताज़ी शुद्ध हवा जितनी ज़रूरी है, उतनी ही ज़रूरी बात यह है कि रोगी का शरीर गर्म रहे। रोगी को कभी नंगा नहीं रहने देना चाहिए। नीरोग शरीर में जितनी जल्दी गर्मी उत्पन्न हो जाती है, उतनी जल्दी रोगी और अशक्त शरीर में नहीं होती, इसलिये रोगी के शरीर की गर्मी को कभी नष्ट न होने देना चाहिए। बहुत बार सिर्फ़ शरीर की गर्मी कम होने से ही मृत्यु हो जाती है। इसी अवस्था में बारंबार रोगी के शरीर की परीक्षा करके देखते रहना चाहिए। यदि उसके पाँव ठंडे होने लगे हों, तो तत्काल गर्म पानी से भरी हुई बोतलें हाथ-पाँव पर रखना चाहिए। गर्म रुई से, कपड़े की तह से, या ईंटों से उसके हाथ-पाँव को सेककर गर्म करना चाहिए। ऊन के मोजे

पहना देने चाहिए। गर्म-गर्म दूध पिलाना चाहिए। अँगीठी पास रखना चाहिए। इन छोटी-छोटी बातों में ऐसे समय सुस्ती दिखाने से रोगी हाथ से चला जाता है। रोगी के पथ्य-पानी का चाहे जैसा बंदोबस्त हो, पर यदि ऐन वक्त पर रोगी को गर्म बिस्तर पर सुलाना और सेंकना न सूझ पड़ा, तो रोगी मर जायगा।

उपर्युक्त आवश्यकताएँ सर्दी के दिनों में ही पड़ती हों, यह बात नहीं। गर्मी के दिनों में भी ऐसी घड़ी आ जाती है। इस दुर्घटना का मुख्य समय पौ फटने के समय का होता है, जब पेट ख़ाली रहता है। सुबह की ठंड जितनी हानि पहुँचाती है, उतनी शाम की नहीं। शाम का समय प्रायः ज्वर चढ़ने का होता है। उस समय प्रायः हाथ-पाँव और आँखें जला करती हैं। परंतु बहुधा सावधान घरों में देखा गया है कि रात हुई और हाथ-पाँव सेंके तथा मोज़े पहनाए जाते हैं। परंतु प्रातःकाल का, सर्दी का जो रोगी के लिये घातक काल है, ख़याल बिलकुल नहीं किया जाता।

कभी-कभी रोगी को गर्म रखने के लिये तेज़ गर्म पानी से रोगी के पैरों को धोते हैं। इससे यह हानि होती है कि रोगी की पसलियों का रक्त रोगी के मस्तिष्क में चढ़ जाता है। इस काम के लिये इतना गर्म पानी काफ़ी है, जितने में आसानी से उँगली डुबाई जा सके। कभी-कभी जस्ते के डब्बे में गर्म पानी भरकर उस पर पैर रखकर रोगी को सुला दिया जाता है, पर यह भी योग्य नहीं। ये डब्बे पहले तो ख़ूब गर्म हो जाते हैं, और पीछे एकदम ठंडे पड़ जाते हैं। रबर की बोतलों में गर्म पानी भरकर सेंकना बेशक अच्छा है, परंतु उसकी डाट ख़ूब अच्छी तरह बंद होनी चाहिए, जिससे रिस-रिसकर पानी से बिछौना न भीग जाय।

हवा का बचाव

साधारणतया कभी-कभी और ख़ास तौर पर जब कि पसीना आ रहा हो या गीले कपड़े से उसका शरीर अँगोछा जा रहा हो, उस समय रोगी के शरीर को हवा के झोंके से बचाना चाहिए। एकाएक रोगी को जुकाम या खाँसी हो गई या बुख़ार हो आया, तो उसका मतलब यह है कि उसके पलँग पर सीधे हवा के झोंके लगते हैं। और उसकी सम्हाल ठीक-ठीक नहीं होती। मतलब यह कि शुद्ध वायु कमरे में खेलती ज़रूर रहे, परंतु रोगी के शरीर पर उसका प्रभाव न हो। दरवाज़े यदि सावधानी से बंद रक्खे जायँ, तो खिड़की खुली रखने से रोगी को कदापि सर्दी का भय न रहेगा। बहुत लोगों का यह ख़याल है कि दिन की हवा की अपेक्षा रात की हवा ख़राब होती है। इसलिये दिन में तो वे खिड़की, दरवाज़े खुले रखते हैं, परंतु रात को बंद कर देते हैं। यह बड़ी मोटी और भयंकर भूल है। हमारी समझ में शहरों की आब-हवा ख़ास तौर पर दिन की अपेक्षा रात को ही शुद्ध रहती है। दिन का गर्द-ग़ुबार, मिलों की चिमनियों के धुएँ का ज़हर रात को प्रायः नहीं रहता। इसलिये सिवा उस समय के जब बेहद ठंड पड़ती हो, खिड़की कभी न बंद करनी चाहिए। पाठकों को यह बात याद कर लेनी चाहिए कि दरवाज़े बंद करने और खिड़कियाँ खुली रखने के लिये ही बनाई गई हैं।

लैंप—कुछ लोग खिड़की बंद और दरवाज़ा खुला छोड़ देते हैं, जिससे घर-भर की गंदी हवा रोगी के कमरे में घुस आती है। यदि दरवाज़े में एकाध लैंप जलता हुआ होगा, तो उधर से आनेवाली हवा धुएँ से भरी होगी। यह बात भी जाननी चाहिए कि लैंप के योग से हवा में आक्सिजन (प्राण-वायु) कम होता है। एक लैंप में इतना आक्सिजन खर्च होता है, जितना ७ मनुष्यों के श्वास को काफी होता है।

रोगी के कमरे का लैंप ऐसा न होना चाहिए, जो धुआँ दे। यदि चिमनी से धुआँ निकलने लगे, तो उसके नीचे की जाली साफ़ कर देने से धुआँ निकलना बंद हो जायगा। परंतु बहुत लोग सुस्ती से इस बात की कुछ परवा नहीं करते।

रोगी के गीले कपड़े सुखाना—बहुधा ऐसा देखने में आता है कि रोगी के कपड़े धोकर एक रस्सी पर उसी के कमरे में सूखने को लटका दिए जाते हैं, यह भी बड़ी भूल की बात है। इससे हवा में गीलापन हो जाता है, जो रोगी की साँस के साथ पेट में जाकर बहुत नुकसान करता है। ख़ासकर कुर्ता, धोती आदि वस्त्र जो मल-मूत्र और पसीने के कारण अधिक रोगमय हैं, उनकी भाफ रोगी की श्वास में जाना बहुत ही अहितकर है।

मल-मूत्र—रोगी के मल-मूत्र की बू भी कमरे में बिलकुल न रहने देनी चाहिए। बहुधा पेशाब का बर्तन खाट के नीचे छिपाकर रख दिया जाता है। खाट के नीचे छिपाकर रख देने से उसका ज़हरीला असर नहीं दूर हो सकता। पेशाब का बर्तन जरूर ढक्कनदार रहना चाहिए, और मूत्र उसमें हरगिज जमा नहीं रहना चाहिए। दस्त और हैज़े के रोगियों के मल-मूत्र के बर्तन तथा तपेदिक के रोगियों के थूकने के बर्तन बारबार बिना आलस्य के अच्छी तरह साफ होने चाहिए।

रोगी के बर्तन—रोगी के काम में लाने को जो बर्तन दिए जायँ, वे कलईदार पीतल या चाँदी या काँच और चीनी के होने चाहिए। इन्हें रोगी के कमरे में कभी न धोना चाहिए, न जूठे पड़े रहने देना चाहिए।

दुर्गंध दूर करने का प्रयत्न—स्वच्छ वायु जहाँ है, दुर्गंध वहाँ न होगी। कमरे को फिनाइल से धोना, गंधक की धूनी देना, पुष्प, इतर लाकर रखना भी उचित है।

पाख़ाना और मोरी—रोगी के इतने निकट हो कि उसे इनके लिये तनिक भी तकलीफ़ न हो, और वे अत्यंत सावधानी से साफ कर दिए जायँ कि उनकी दुर्गंध या ज़हरीला असर रोगी पर न हो, न वायु ख़राब हो।

सफ़ाई और सामान—रोगी के कमरे में एक पलँग, एक बेत की कुर्सी या मोढ़ा, एक छोटी-सी मेज, जिस पर पानी की सुराही और दवा आदि हो, इन्हें छोड़कर और कुछ नहीं, एक साफ तौलिया भी रहना चाहिए।

प्रकरण ३

फुटकर व्यवस्था

रोगी की सेवा करनेवाले चाहे कैसे ही सावधान और मुस्तैद क्यो न हो, फिर भी यह नहीं बन सकता कि कोई २४ घटे रोगी के सिरहाने ही बैठा रहे। ऐसा करने की ज़रूरत भी नहीं है। ज़रूरत सिर्फ इस बात की है कि रोगी के कल्याण के लिये किन बातो की आवश्यकता है, वे सब बाते सरलता से रोगी को प्राप्त हो जायँ।

प्राय रोगियो को नीद नही आती। ऐसा होता है कि रोगी की जरा झपकी लगी कि कोई अनजान व्यक्ति बेपरवाही से रोगी के कमरे मे किसी कार्य को घुस आया, और उसी की आहट से उसकी आँख खुल गई, फिर उसे नीद आना मुश्किल है। इस बात की बहुत ही जरूरत है कि न दिन मे और न रात मे कोई अनजान मनुष्य रोगी के कमरे मे जाने-आने न पावे।

कमरे की खिडकियाँ खुली और दरवाज़े बंद रहे, वरना ठंडी हवा के झोके रोगी को बहुत ही कष्ट देगे।

मकान की सफाई का भी सावधानी से बदोबस्त करना चाहिए। जिन मकानो मे नई सफेदी की गई हो, वे यदि तत्काल ही बद कर दिए जायँगे, तो अवश्य ही उनकी हवा खराब हो जायगी।

रोगी को कैसे समाचार सुनाना चाहिए, कैसे नहीं, कौन-कौन-से पत्र-तार उसे देने चाहिए, कौन से नहीं तथा उससे किसको मिलने देना चाहिए, किसको नहीं, ये बाते बहुत ही विचारने योग्य है। जिस व्यक्ति पर रोगी की सेवा का भार है, उसे ऐसा प्रबध अवश्य कर देना चाहिए। वह यदि रोगी के पास न भी हो, तो भी ऐसी कोई बात न हो, जो रोगी के लिये अहितकर हो। रोगी अपने बिछौने पर पडे-पडे शून्य मस्तक से कुछ इनी-गिनी बातो को विचारा करते है। कही चिट्ठी भेजी हो, तो उनका मन उसी के जवाब मे लग जाता है, और वहाँ पर बारबार उत्कठित होकर जवाब या किसी बंधु के आने की कडी प्रतीक्षा करते हैं। प्राय रोगी को यह वहम भी हो जाता है कि मुझसे कुछ सच्चे समाचार छिपाए जा रहे है। इन सबके लिये यह उत्तम है कि रोगी के साथ ऐसा सरल व्यवहार किया जाय कि उसे कुछ भी उद्वेग न रहे। रोगी के पास से यदि कुछ देर या दिनो के लिये बाहर जाना अनिवार्य ही हो, तो रोगी से यह बात अवश्य कह देनी चाहिए, और अपनी गैर हाज़िरी मे भी सब काम ठीक-ठीक तौर से चलते रहे, इसका बदोबस्त अच्छी तरह कर लेना चाहिए।

शोर गुल

रोगी के लिये सबसे अधिक दुखदाई बात शोर-गुल है। कटु और कर्कश आवाज की बात तो एक ओर रही, साधारण धीमी आवाज या धमाका भी रोगी को अच्छा नहीं लगता। उसके पास बैठकर इधर-उधर की गपशप उड़ाना उसे कभी अच्छा नहीं लगता, और उसके सामने ही बैठकर काना-फूसी करना उसे अप्रिय लगता है। ऐसे लोगों से वह चिढ़ जाता है। अक्सर काना-फूसी से उसे शका हो जाती है कि ये सब मेरी बीमारी के बाबत ही काना-फूसी कर रहे हैं। अगर रोगी के मस्तक मे चोट लगी है, तो उसे ज़रा-सा शब्द भी कष्ट पहुँचावेगा। जिस आवाज़ से उसकी नींद उड़ जाय, वह उसे बिल्कुल अच्छी नहीं लगेगी। कभी-कभी वह इस छोटी-सी बात पर इतना सतप्त हो जाता है कि उसका परिणाम बहुत ही भयंकर होता है।

रोगी यदि सो रहा हो, तो उसे न जगाना चाहिए, न उसकी नींद उड़ाना चाहिए। बीमार की नींद एक बार उड़कर फिर नहीं आती। ३-४ घटे सो लेने पर यदि उसे जगा दिया जाय, तो उसे फिर नींद आ सकती है, परतु आँख लगते ही यदि किसी ने उसे उठा दिया, तो फिर नींद नहीं आती। इसका कारण क्या है, सो हम नहीं जानते, पर बात बिल्कुल सत्य ज़रूर है। दुःख से दुःख बढता है, पर भूलने से घटता है। यदि नींद से कुछ भी शांति मालूम हो, तो नींद के समय बिल्कुल शांति रहनी चाहिए।

तंदुरुस्त आदमी को यदि दिन मे सोने दिया जाय, तो रात को उसे नींद न आवेगी, परन्तु रोगी की बात इसके विपरीत है। वह जितना सोवेगा, उतनी ही अधिक उसे नींद आवेगी।

रोगी की यदि नींद उचट गई हो, तो गर्म पानी से रोगी के पैरों को धोना या नरम हाथों से उसके पैर दबाना चाहिए।

दवा-पानी इस ढग से दे कि रोगी को कष्ट न पहुँचे। मीठी-मीठी बातो से रोगी को नींद लाने की चेष्टा करे। उसके पैर धोने या मोजे पहनाने मे ढील करनी अनुचित है।

प्राय वैद्य-डॉक्टरो की आदत होती है कि रोगी को देखने जाने पर पहले या पीछे कमरे के बाहर द्वार पर खड़े होकर देर तक बातचीत करते रहते हैं। वैद्य आए हैं, यह जानकर पल-पल मे रोगी उसके अपने पास आने की बाट तकता है। इसमे ज्यो-ज्यो देर होती है, रोगी की बेचैनी बढती जाती है। देखकर आने के बाद बाहर घुस-फुस सुनने से उसे शंका होती है कि मेरे विषय मे कुछ खराब बात कही जा रही है। रोगी यदि शात और विचारशील हुआ, तो उधर ध्यान न देगा, परतु बहुधा रोगी इस बात से उद्विग्न हो जाते है। वैद्य लोगों की ये दोनो आदतें ठीक नहीं है।

खटाखट बूट बजाते चलना या चोर की तरह दम रोककर चलना ठीक नहीं है, इससे बीमार को दुःख होता है। हलके पैरो से होशियारी के साथ चलना चाहिए। डॉक्टर और

रोगियों के संबंधियों मे घुस-पुस होने से रोगी के मन मे बडी भारी बेचैनी हो जाती है। यदि रोगी को आपरेशन कराना हो, और ऐसे वक्त डॉक्टर घुस-पुस बाते करने लगे, तो रोगी ज़रूर घबरा जायगा। चिकित्सक को उचित है कि वह प्रसन्नता के साथ रोगी के सामने ही बडी शाति से बातचीत करे और वह शीघ्र नीरोग हो जायगा, इस बात का विश्वास उसे दिला दे।

चिकित्सक को यदि रोगी के घरवालों से कोई बहुत ही पोशीदा खास बात कहनी हो, तो उसे रोगी के कमरे से दूर, जहॉ रोगी न सुन सके, करना चाहिए, और जो कुछ कहना हो, वह रोगी को देखकर जाने के बाद मे कहना चाहिए। चिढकर बोलना रोगी को अच्छा नहीं लगता। स्वाभाविक बोल-चाल मे ही बोलना चाहिए। रोगी की सेवा करनेवाले व्यक्ति के कपडे, हाथ और शरीर स्वच्छ रहना चाहिए।

रोगी के मतलब की चाहे जितनी गडबडी उसके पास होती रहे, उसे बुरी नही लगती, पर फ़ज़ूल गडबड वह बिलकुल पसद नहीं करता। इस्तरी किए हुए कपडा की खडखडाहट ख़ास तौर से उसे नापसद होती है, इसी तरह तालियो के गुच्छों की आवाज या बूट की आवाज़ उसे पसंद नही होती। दर्वाज़े और खिडकियो को खोलते समय भडभडाहट होना रोगी को बहुत ही बुरा मालूम होता है।

रोगी के कमरे मे बे मतलब बार-बार आना-जाना भी वाहियात है। इसलिये यह प्रथम ही से विचार लेना चाहिए कि उसे कौन-कौन-सी चीजों की ज़रूरत है, ताकि बार-बार उसे नाचना न पड़े। दरवाज़ों पर या खिडकियो पर यदि चिक के पर्दे हो, तो उन्हें नीचे से बॉध देना चाहिए, जिससे वे हवा से हिलकर खड-खड न करे।

मुलाक़ाती

कभी-कभी मिज़ाज पूछने को आए हुए लोग रोगी के पास बैठकर अपनी ही बका करते हैं, रोगी को बोलने भी नहीं देते। कोई-कोई ऐसे होते है कि हर बात को हँसी मे ही उडाते है। दोनो प्रकार के मनुष्यो को रोगी नापसद करता है। कुछ लोग ऐसे आते है कि सौ बार बैठने को कहो, तो भी खडे-खडे घटो गप्पें उडाया करेंगे। रोगी के समाचार पूछने के लिये मनुष्य को चाहिए कि वह रोगी के पास अच्छी तरह बैठे और शाति-पूर्वक उससे बातचीत करे। उसका कहना अच्छी तरह सुने, जिधर रोगी का मुँह हो, उधर ही बैठे। उसके सामने न बैठकर इधर-उधर बैठने से रोगी को उनकी बात सुनने के लिये बार-बार गर्दन मोडनी पडती है। बात करनेवाला कितना ही पास बैठा हो और कितने ही जोर से क्यो न बोल रहा हो, उसकी ओर देखे बिना सुननेवाला नहीं रह सकता, इसीलिये रोगी के सामने ही बैठना चाहिए। इसी तरह यदि कोई बराबर खडा ही रहे, तो उसे बराबर अपनी ऑखे तुम्हारे मुख की ओर लगी रहँगी। और वह जरूर थक जायगा। रोगी यदि किसी काम मे लगा हुआ हो, तो बीच मे नहीं बोलना चाहिए।

काम काज

रोगी मनुष्य थोडा आराम होते ही काम-काज और अपने व्यवसाय की तरफ ध्यान देने लगता है। कभी-कभी वह अपनी शक्ति के बाहर काम करने लगता है। परतु कभी-कभी दोष उसके पासवालो का होता है। फर्ज करो, रोगी ने एक चिट्ठी लिखने को किसी से कहा, बस वह सैकडो तरह के सवाल करके उसे थका देगा। इससे कम परिश्रम मे तो वह स्वयं चिट्ठी लिख सकता था।

बिल्कुल आराम होने से प्रथम ही यदि कोई रोगी अपना काम-धधा करने लगेगा और वह धधा ऐसा होगा, जिसमे ज्यादा सोच-विचार करने की ज़रूरत पडे, तो निश्चय रोगी के शरीर को भारी धक्का लगेगा। रोगी धीरे-धीरे कही टहल रहा हो, तब किसी ज़रूरी काम के लिये उसके पास दौड़कर एकाएक जाने या पुकारने का उसके मस्तक पर ऐसा ही असर पडेगा, जैसा उसके गाल पर एक तमाचा मार देने का पडना चाहिए। रोगी को किसी समाचार के लिये १०-५ मिनट खडा रखना बहुत ही खराब बात है। जितनी देर मे दस तक गिना जाता है, उतनी देर तक भी एक जगह खडा रहना रोगी के लिये कष्टकर है। उचित यह है कि उसके साथ दस पॉच कदम धीरे-धीरे चलकर बात कहनी चाहिए।

दुर्बल रोगी को जब घुमाने के लिये बाहर ले जाया जाय, तब उचित है कि उससे ज्यादा बातचीत न की जाय। हृदय, फुफ्फुस, मस्तक आदि अंगो पर एकदम बोलने का, चलने-फिरने का, उठने-बैठने का प्रभाव कैसा होता है, इसको गंभीरता से देखना चाहिए। बहुधा ऐसा देखा गया है कि रोगी को स्वय काम कर लेने मे उतनी तकलीफ नहीं होती, जितनी औरो से काम लेने मे होती है।

रोगी को दवा-पानी खिला-पिला और आराम से सुलाकर यदि आप बेफिक्र हो सो गए, तो उससे यह मतलब न निकालना चाहिए कि रोगी अवश्य ही रात-भर आराम से सोवेगा। गाढी नींद आने के बाद यदि रोगी की नींद उचट गई, तो फिर उसे रात-भर नींद आना मुश्किल है।

रोगी की सेवा करनेवाले और मुलाकातियो को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनसे जो बातें की गई है, उनका उस पर क्या असर होगा। ख़ासकर बुरी और चिंता-युक्त बातो का रोगी की नींद पर बुरा असर पडता है।

रोगी को परिश्रम से बचाना बहुत ही जरूरी है। काम करते वक्त परिश्रम मालूम नहीं पडा करता, पर जब काम पूरा हो जाता है, तब उसकी थकान ठीक-ठीक मालूम होती है। रोगी जब अधिक सतप्त और त्रस्त होता है, उस समय अधिक मजबूत जान पडता है। कुछ लोग जो रोगी से मिलने आते हैं, घंटो इधर-उधर की थोथी बकवाद उसके पास बैठकर करते-करते बीच-बीच मे यह भी पूछते जाते है कि तुम्हें हमारी बातचीत से तकलीफ तो नहीं

हो रही ? क्या यह संभव है कि रोगी मुँह खोलकर कहे कि तुम्हारी चक-चक मुझे पसंद नहीं है।

इस बात का ध्यान रखना परमावश्यक है कि जिस पलँग पर रोगी सो रहा हो, उसमें धक्का न लगने पावे, उस पर पाँव रखकर कोई खड़ा न रहे। न उस पर कोई बैठे। अकारण उसे कोई छुए भी नहीं। कुर्सी पर बैठकर यदि धरती पर पाँव टिक रहे हों, तो धक्का बुरा नहीं मालूम होता, मगर पलँग पर लेटे हुए के पलँग के धक्का लगे, तो सोनेवाले के सारे बदन में धक्का लगने के समान तकलीफ़ होगी।

रोग दो प्रकार के होते हैं—एक सच्चा, दूसरा बनावटी। दोनों एक दूसरे के विरुद्ध हैं। अभी तक जो कुछ मैंने कहा है, वह सच्चे रोगों के लिये है। बनावटी रोगों की सेवा हो ही नहीं सकती, कुछ धनवान् व्यक्ति ख़ासकर स्त्रियाँ ख़ामख़ाह अपने को रोगी समझा करती हैं, यह उनका शौक है। ऐसे रोगी सबके सामने जिस काम के करने की असमर्थता दिखाते हैं, उसे ही उसके पीछे मजे में कर डालते हैं। दूसरों के सामने ऐसे रोगी 'भूख नहीं' की बड़ी शिकायत करते हैं, परन्तु पीछे ख़ूब सफाचट करते हैं।

रोगी की सेवा करनेवाले में दो गुण अवश्य होने चाहिए, एक प्रबंध की योग्यता, दूसरा धैर्य। रोगी को जो कुछ कहना है, वह संक्षेप से स्पष्ट कह देना चाहिए। जिस विषय में शंका हो, वह बात ही रोगी के सामने न निकालो, चाहे वह छोटी हो या भारी। प्रसूति के अवसरों पर मुझे ऐसा अनुभव हुआ है कि दाई के घबरा जाने से ही उनकी मृत्यु हो गई है। दाई के चेहरे को देखकर ही उन्होंने कल्पना कर ली कि अब मैं नहीं बचूँगी। वैद्य 'अब क्या करूँ और क्या न करूँ' के फेर में पड़ता है, तो रोगी अपना मन सब ओर से खींचकर अंतिम यात्रा करने के लिये तैयार हो बैठता है। अमुक दवा अच्छी है, पर उससे लाभ होगा या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। यह बात कहने से रोगी अधमरा हो जाता है। चिकित्सक को उचित है कि वह स्थिर होकर अपना मत दे। डॉक्टर और सेवक सबको चाहिए कि वे रोगी को कभी कुछ और कभी कुछ न कहें। एक बार स्थिर करके यदि उससे किसी अंग काट डालने के लिये भी कहा जायगा, तो भी रोगी मान लेगा। परन्तु ऐसा कहकर उससे कहा जाय कि अच्छा एक दवा देकर देखें, फिर न होगा तो आपरेशन ही करेंगे। इस बात से ही रोगी शंकित हो जायगा, और समझेगा कि अवश्य मेरी दशा भयंकर है।

रोगी की कल्पना-शक्ति बड़ी तेज़ हो जाती है। रोगी से किसी ने कह दिया कि हवा बदलने मसूरी जाना अच्छा है, बस मानो वह मसूरी पहुँच ही गया। ऐसी विचार-कल्पना उठती रहेगी। फिर उससे कहा गया, मसूरी से तो नैनीताल ठीक है। बस फिर क्या है, वह नैनीताल का ही संकल्प-विकल्प करने लगा। परिणाम इसका यह होता है कि वह पड़ा-ही-पड़ा उतना थक जाता है, जितना मसूरी और नैनीताल में घूम-फिरकर आया हो।

रोगी के कमरे में जोर से कुछ पढ़ना उचित नहीं। क्योंकि जिनमें स्वयं पढ़ने की शक्ति नहीं है, वे दूसरों का जोर से पढ़ा हुआ नहीं सुन सकते। आँख दुखनेवाले, बच्चे या पागलों को छोड़कर और सब रोगी दूसरों का पढ़ा सुनना नापसंद करते हैं। कुछ लोग समझते हैं कि बाँचकर सुनाने से रोगी के मस्तक को आराम मिलता है, यह भूल है। कोई बात रोगी के कान में डालना ही हो तो धीरे से डालना चाहिए। बहुधा रोगी कहा करते हैं कि पढ़कर मत सुनाओ, ज़बानी ही मतलब कह डालो। छोटे-छोटे बच्चे तो गप शप पसंद ही करते हैं। यदि कुछ पढ़कर रोगी को सुनाना ही है, तो धीरज के साथ यथाविधि साफ़-साफ़ पढ़कर सुनाना चाहिए, वह भी बहुत देर तक नहीं। न गा-गाकर, न चिल्लाकर। रोगी सहन करेगा या नहीं, यह पहले निश्चय करके फिर पढ़ना या बातचीत करना चाहिए।

और एक बात है, कई घर दो-दो, तीन-तीन मंजिले होते हैं। उनमें रोगी नीचे की मंज़िल में है। और ऊपर की मंज़िल में कोई चलता-फिरता है या खर-खर करता है, तो रोगी को दुःख होता है। खासकर लकड़ी की छत पर धमाका ज्यादा होता है। प्रायः इससे रोगी की निद्रा नाश हो जाती है।

चिकित्सक का चुनाव

चिकित्सक का चुनाव बहुत सावधानी से उचित समय पर करना चाहिए। रोग के आरंभ होते ही तुरंत किसी उत्तम और योग्य चिकित्सक को बुलाकर उसे रोगी सौंप देना चाहिए। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जब तक रोग साधारण और मामूली रहता है और रोगी चलता-फिरता रहता है, तब तक इलाज मालजे की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। जब रोगी निर्बल होकर चारपाई पर पड़ जाता है, तब इधर-उधर को दवा देकर और भी गड़बड़ करके रोग को बिगाड़ देते हैं। इसके बाद जब रोग भयंकर हो जाता है, और जान के लाले पड़ जाते हैं, तब अच्छे चिकित्सक की खोज होती है। यदि भाग्य सीधे हुए और आयु शेष हुई, तो बहुत परिश्रम करके कोई-कोई उत्तम वैद्य-डॉक्टर रोगी को बचा लेते हैं, नहीं तो अपने माथे पर हत्या का काला टीका लगाकर घर लौट जाते हैं। यह बड़ी ही भयानक भूल है। रोग, शत्रु और अग्नि इन्हें कभी थोड़ा या छोटा न समझे, न उन्हें तुच्छ समझकर इनकी तरफ़ से बेपर्वाह रहे, नहीं तो ये अवसर पाकर थोड़े ही समय में सर्वस्व नाश कर डालते हैं, और फिर कुछ करते-धरते नहीं बनता।

धूर्त, मूर्ख और अताई वैद्य-डॉक्टर

ये लोग बरसाती मेंढकों की तरह सब जगह भरे पड़े हैं। किसी भी शहर या ग्राम में जहाँ आँख के अंधे और गाँठ के पूरे की धमाचौकड़ी रहती है, वहीं अगल-बगल की कोठरी, बैठक, सड़क, पुल, कहीं-न-कहीं इनकी सूरत देखने को मिल ही जायगी।

जिसे कोई रोज़गार नहीं आता, और न जिसके पास पूँजी का ही सहारा है, परिश्रम करके कोई कला सीखने के नाम जिनकी नानी मरती है, ऐसे निठल्ले, बोधा-बसंतों के वैद्य-डॉक्टर बन

जाने से बढ़कर कोई रोज़गार है ही नहीं। जिसमें कामयाबी होने पर तो उनकी तारीफ़ होती है, और मरने पर रोगी के भाग्य को रोया जाता है।

कुपढ़ ब्राह्मणों के आवारा लड़के, अभागे कमबख्त क्लर्क, धूर्त, रंगे गीदड़, रँडुए, पेंशन-याफ्ता बूढ़े, परीक्षा में सदा फेल होनेवाले और विद्या पढ़ने के कठिन परिश्रम से भागे हुए विद्यार्थी प्रायः वैद्यराज या डॉक्टर बन जाते हैं। अखबारों में, रेल के स्टेशनों पर, तार के खंभों पर, थिएटर की दीवारों पर, जिधर देखो, उधर इनकी टें-टें चिपकी मिलेगी। कोई गुरु के प्रसाद से, कोई बाप-दादों के पुराने नुसखों के तुफैल से, कोई अपने बीसियों वर्ष के परिश्रम और हजारों के खर्च से, कोई किसी सिद्ध महात्मा की बूटी से पूरे पहुँच गए हैं। बहुधा ये लोग कलकत्ते आदि से वी० पी० द्वारा एक लंबी डिगरी और होम्योपैथी का बक्स मँगाकर कोट-पतलून पहन पूरे डॉक्टर बन जाते हैं। ये गरीबों का रक्त चूसनेवाले ठग यमराज के एजेंट दिन-दिन बढ़ रहे और अपना हलुवा-मॉडा सीधा कर रहे हैं। इन धूर्तों के पंजों में फँसे हुए बेचारे गरीब एक तरफ लुट रहे हैं, दूसरी तरफ अपना स्वास्थ्य और जीवन खोकर कुत्ते की मौत मर रहे हैं।

यह रोज़गार भी इतना सस्ता है कि दस-बीस पुरानी-धुरानी शीशियों से ही अलमारी चमचमा उठती है। पढ़ने-लिखने के नाम पूरे पढ़-पत्थर, चिकित्सा-ग्रंथों का पढ़ना तो एक ओर रहा, उनका पूरा नाम तक भी नहीं सुना। अमृतसागर, इलाजुलगुर्बा और होम्योपैथिक उनकी पोथी और लंबी-चौड़ी गपोड़ेबाजी इनका ईमान-धर्म! कैसी आश्चर्य की बात है कि लोग ज़रा-ज़रा-सी बात में तो अपनी योग्यता की कुल खुर्चन खर्च कर देते हैं, पर प्राणों का जहाँ सवाल आता है, मरने-जीने का जहाँ प्रश्न उठता है, वहाँ सोचने-विचारने की आवश्यकता ही नहीं समझते।

इस प्रकार ये अभागे लोग कॉच के बर्तन की तरह तनिक ठेस से चूर चूर हो जाने-वाले जीवन-रूपी पात्र को उछाल-उछालकर उसकी मज़बूती की परीक्षा लेते हैं, इसका परिणाम जो कुछ है, वह छिपा नहीं है। मरनेवालों की संख्या को देखकर रोमांच हो आते हैं, होश फाख्ता हो जाते हैं और दिल दहल उठता है! और अधमरे होकर जीनेवालों की तो कुछ बात ही न पूछिए। भारतवर्ष की संपूर्ण आबादी का एक बड़ा भाग ऐसे ही युवकों और युवतियों से भरा है। ग़रज़ इस प्रकार के धूर्त और मूर्ख वैद्यों से सदा बचना चाहिए।

सुचिकित्सक का लक्षण

भगवान् धन्वंतरि अच्छे वैद्य का लक्षण यों लिखते हैं—

जिसने चिकित्सा-शास्त्र को पढ़कर उसके तत्त्व को समझ लिया हो, अपने गुरु को चिकित्सा करते, दवा बनाते, चीर-फाड़ करते देखा हो, फिर आप भी जिसने गुरु की अधीनता में काम किया हो, शस्त्र-कर्म, चीर-फाड़ में जिसका हाथ हलका हो, साफ स्वच्छ

रहनेवाला और बहादुर हो, कठिन रोग को देखकर घबरानेवाला, हक्का-बक्का और किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जानेवाला न हो। चिकित्सा के काम मे आनेवाला सब सामान, चीर-फाड के शस्त्र, यंत्र (पिचकारी आदि) और औषधादि जिसके पास हर वक्त तैयार रहें, जिसे वक्त पर काम की बात सूझती हो, तेज तबियत और बुद्धिमान् हो और अपने वैद्यक कारबार में ही लगा रहे, अनेक धधो के करनेवाला और निरर्थक समय खोनेवाला न हो, मीठा और प्यारा बोलनेवाला और रोगियों से अपने बधु-कुटुबो की तरह हमदर्दी रखनेवाला हो, सच्चा धर्मात्मा हो, ऐसा चिकित्सक उत्तम होता है।

ऐसे ही गुणी चिकित्सक को विचारकर बुलाना चाहिए और फिर उसी की आज्ञा का पालन करना चाहिए। मन मे धीरज रखे और उत्साह से काम करे, तो बडे-से-बडा कष्ट-साध्य भी रोगी बच जायगा।

स्मरण रहे, बार-बार चिकित्सक को बदलना या कभी किसी और कभी किसी चिकित्सक की सम्मति से इलाज करना हानिकारक है, क्योंकि ऐसी दशा मे न किसी की ज़िम्मेदारी रहती है और न किसी की स्वतंत्र सम्मति ही। सब लोग हॉ में हॉ मिलाकर काम करते है, रोगी बेचारा उसी की चपेट में आकर मर मिटता है।

चिकित्सक को बुलाने का समय

यदि रोग भयंकर और तेज़ी से बढनेवाला न हो, तो प्रात काल के समय ही वैद्य को रोगी दिखाना चाहिए। क्योंकि उस समय प्रकृति शात और स्थिर होती है, नाडी अपना असली स्वरुप प्रकट करती है, इससे रोग को पहचानने में वैद्य को धोखा नही होता। पर यदि रोग भयकर हो और रोगी तकलीफ से छटपटाता हो या उसकी दशा में एकदम कोई बडा उलट-फेर हो गया हो, तो तत्काल ही चिकित्सक को ख़बर देना और उसको बुलाकर दिखाना चाहिए। चिकित्सक का धर्म है कि वह ऐसे अवसरो पर दिन-रात के चौबीसो घटे निरालस्य होकर ऐसे रोगी को सँभाले।

दूत

चिकित्सक को बुलाने के लिये ऐसा मनुष्य जाना चाहिए, जो रोगी का प्रिय सबधी, स्वजातीय या प्रिय मित्र हो, जो धैर्यवान् और समझदार हो, क्योंकि चिकित्सक के प्रश्नो का वह ठीक-ठीक समाधान कर सकेगा। रोगी की ठीक दशा चिकित्सक को बता सकेगा और चिकित्सक उसी के अनुसार अपनी विचार-कल्पना बॉध सकेगा, और रोग की दशा के अनुसार यंत्र, शस्त्र या औषधादि आवश्यक सामग्री भी साथ ला सकेगा।

दूत को चाहिए कि वह अच्छे वेष से, सभ्यता के साथ, सवारी लेकर या निकट हो, तो पैदल ही चिकित्सक को बुलाने जाय।

दूत के कर्म

दूत को चाहिए कि वह वैद्य के स्थान पर जाकर देखे कि वह क्या कर रहा है और

कैसी दशा में है । यदि वैद्य अशुद्ध स्थान पर बैठा हो, आग जला रहा हो, खाना या और कुछ पका रहा हो या किसी कठिन और विचार-पूर्ण काम में लगा हो, तो कुछ ठहरकर बात करे ।

रोगी की खाट के पास ही चिकित्सक के लिये कुर्सी, मोढ़ा या और कोई ऐसा आसन जिस पर आराम से बैठकर वह रोगी को देख सके, उपस्थित रखना चाहिए । ठंडा या गर्म जल, साबुन (जैसी ऋतु हो) और एक स्वच्छ अँगौछा तैयार रखना चाहिए, जिससे रोगी को देख-कर चिकित्सक हाथ धो सके ।

चिकित्सक जिस समय रोगी को देख रहा हो, और वह कुछ पूछे, तो उसके प्रश्न का उत्तर ठीक-ठीक और सच्चा देना चाहिए । कोई ऐसी गुप्त बात हो, जिसका संबंध रोगी के पास रोग से हो, तो उसे चिकित्सक के न पूछने पर भी बता देना चाहिए । बहुधा देखा गया है कि रोगी कोई बदपरहेजी करके मामला बिगाड़ लेता है, तो उसे चिकित्सक के नाराज़ होने के डर से छिपा डालता है । इसका परिणाम कभी-कभी बहुत ही शोचनीय हो जाता है, क्योंकि चिकित्सक को असल बात तो मालूम होती नहीं, वह समझता है, हमने जो दवा दी है, उसी से बिगाड़ हुआ है । कदाचित् रोग को पहचानने में भूल हो गई हो, इसी भ्रम में वह दवा बदल बैठता है । बस यही गज़ब हो जाता है, इसलिये इस विषय में भारी-से-भारी गलती को साफ़ कह देना चाहिए ।

चिकित्सक जब रोगी को देखने लगे, तो उसके पास बहुत-सी भीड़ नहीं जमा होनी चाहिए । सिर्फ़ वही आदमी पास रहें, जो हर वक्त रोगी के पास रहते हों, और रोग के विषय में सब बातें जानते हों । यदि पहले से कोई वैद्य चिकित्सा कर रहा हो, तो उसका भी सब हाल कह देना चाहिए । उसने क्या दवा दी, उससे क्या हानि-लाभ हुआ, इसके विषय में जो कुछ जानते हों, सो भी बयान कर देना चाहिए । उचित तो यह है कि पहले जिसका इलाज हो, उसके नुसख़े सुरक्षित रक्खे जायँ, और वे सब चिकित्सक को दिखा दिए जायँ, ताकि वह रोग की गहराई को समझ-सोचकर दवा दे । चिकित्सक की सम्मति को ख़ूब ध्यान से सुनना और जैसा कहे, उसके अनुकूल काम करना चाहिए ।

प्रकरण ४

औषध

वैद्य जब रोगी को भली भाँति देखकर और सोच-समझकर नुसखा लिख दे या दवाई दे दे, तो उसे लेकर श्रद्धा और विश्वास-पूर्वक यथाविधि तैयार करके या तैयार हो, तो जो विधि वैद्यजी ने दवाई खिलाने-पिलाने की बताई हो, उसके अनुकूल ठीक समय पर दे देनी चाहिए। दवा के विषय में वैद्य से तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिए । संरक्षकों का काम यह है कि प्रथम अच्छी तरह सोच विचारकर सर्वोत्तम और सर्वगुण-संपन्न वैद्य के हाथों में अपना रोगी दे, परंतु दे देने के बाद उस पर विश्वास करना चाहिए, और जो दवाई वह बतावे, सो रोगी को देनी चाहिए । जो क्रिया करने के लिये वह कहे, निस्संदेह होकर करनी चाहिए ।

कोई-कोई मूर्ख रोगी, परिचारक या संरक्षक, वैद्य के नुसख़े को पढ़कर उनसे कहते हैं—"वैद्यजी, यह नुसख़ा तो गर्म बहुत है या ठंडा बहुत है, यह तो बीमारी बढ़ा देगा, इसकी अमुक दवा, अमुक हानि कर देगी, इसमें यह दवा और मिला दें, तो कैसा ? और देखो, एक नुसख़ा मैं बताता हूँ, इससे फलाने को आराम हुआ था ।" इत्यादि । ये बातें निरी मूर्खता से भरी हुई हैं । एक और इनके भी गुरु होते हैं, वे इलाज किसी से कराते हैं, दवाई किसी और ही की देते हैं, बीच-बीच में अपनी भी टाँग अड़ाते जाते हैं । एक और इनके भी उस्ताद होते हैं, उन्होंने अभी एक वैद्य को दिखाया और उसकी दवा दी, पाँच मिनट बाद एक डॉक्टर साहब को दिखाया और उनकी दवा दी, फिर थोड़ी देर बाद एक हकीम साहब को ले आए और उनका नुसख़ा पिलाया, इस तरह घंटे-भर में न-मालूम कितने चिकित्सकों की दवा दी जा चुकती है । यह संकर क्रिया—ख़िलत-मिलत इलाज—आख़िर बीमार के प्राण लेकर छोड़ती है ।

अच्छी औषध

वही है, जो थोड़ी मात्रा में दी जाय, खाने में बदज़ायका न हो, और जिसके सेवन करने से जल्दी आराम हो जाय । परंतु ऐसा प्रसंग कभी सौभाग्य से ही आता है, नहीं तो जहाँ एक गुण होता है, वहाँ दूसरा नहीं होता । वैद्य लोग रोग के लक्षण और स्वभाव को जानकर ही रस-विशेष की (मीठी, खट्टी, नमकीन, चरपरी, कड़ुई, कसैली) औषधि दिया करते हैं । दवाइयों के निज गुणों के सिवा उनके रस में भी गुण होते हैं, जैसे कड़ुआ स्वाद ज्वर को दूर करता है, इत्यादि । इसी तरह और भी समझो ।

रोगों में भी कोई देर में आराम होनेवाले होते हैं, कोई जल्दी । जैसे—पुराना बुख़ार,

गठिया, रक्त-विकार (ख़ून की ख़राबी) आदि की बीमारी दवाई लेने पर भी जल्दी आराम नहीं होती, और हैजा आदि की बीमारी या तो जल्दी आराम हो जाती है या मार डालती है। इसलिये इलाज कराने में—औषधि खाने में घबराना नहीं चाहिए, धीरज से काम लेना चाहिए। धीरे-धीरे सब ठीक होता है, रोग के बढ़ने में देर लगती है, पर घटता बड़ी मुश्किल से है।

औषध के प्रकार

आजकल इस देश मे कई प्रकार की चिकित्सा-पद्धतियाँ दो जारी हैं— आयुर्वेदिक, यूनानी, डॉक्टरी (एलोपैथिक) और होमियोपैथिक आदि। इनमें से आयुर्वेदिक, यूनानी और डॉक्टरी का रिवाज बहुत ज्यादा है, बड़े-बड़े शहरों में होमियोपैथिक का भी रिवाज बढ़ रहा है। इनके सिवा पानी का इलाज, उपवास का इलाज, रंग का इलाज आदि कई प्रकार के इलाज और भी हैं, पर वे बहुत प्रचलित नहीं हैं। न वे कठिन, भयानक और आशुकारी रोगों में अच्छे सफल होते देखे गए हैं।

चीर-फाड और मूढ़ गर्भ आदि की चिकित्सा मे डॉक्टरी-पद्धति उत्तम है। पुराने उलझे हुए जटिल और देर तक चलनेवाले रोगों मे आयुर्वेद अपनी जोड़ नहीं रखता। यूनानी चिकित्सा गर्मी और पित्त के बीमारों तथा नाज़ुक मिज़ाज रोगियों को हितकर है। और होमियोपैथिक प्राय बच्चों के लिये ठीक रहती है।

आयुर्वेदिक और यूनानी दवाइयाँ प्राय एक-सी होती हैं और वे मामूली तौर पर इतनी तरह की होती हैं—

क्वाथ—काढ़ा या जुशाँदा, अर्क, आसव, शर्बत आदि पतली पीने की दवाइयाँ, चूर्ण, गोली, चटनी, घृत, रस, भस्म आदि खाने की, तेल आदि मालिश करने की, मलहम, लेप आदि बाहर लगाने की, इनके सिवा धुआँ पीने की, सूँघने की, वफारा देने की, आँख मे लगाने की, कान में डालने की, मंजन करने की, कुल्ला-गरारा करने की, इत्यादि। प्राय डॉक्टरी दवाइयाँ भी ऐसी ही होती हैं।

चालाक पंसारी

ये सब औषधियाँ प्राय पंसारी या अत्तार की दूकान से मिलती हैं। पर ये लोग परले सिरे के उस्ताद होते हैं। ग्राहक जो नुस्ख़ा लेकर आया, उसमें की कोई दवा यदि उनके पास न हुई, तो कभी-कभी ये लोग उसकी जगह कुछ-न-कुछ रखकर दवाइयों की तादाद पूरी कर देते हैं, पर यह नहीं कहते कि यह दवा हमारे यहाँ नहीं है।

चाहे वर्षों की सड़ी-गली दवा इनकी दूकान में रक्खी हो, उसे कभी नहीं फेंकते, सबके दाम वसूल करते हैं। क्योंकि हानि-लाभ तो वैद्यजी के सिर है, बीमार ख़राब होगा, तो इनकी बला से, वैद्य जाने, और बीमार। इन्हें अपने टके वसूल करने से काम।

ये लोग दवा तोलकर नहीं देते, अंदाज से रख देते हैं, इसलिये दवा मात्रा मे कम-

ज्यादा हो जाती है और दवा का यथार्थ गुण रोगी को नहीं पहुँचता, इसलिये चाहिए कि दवा अच्छी तरह देख-भालकर लें और वैद्यजी को दिखा लें।

काढा या क्वाथ—सूखी जड़ी-बूटी की दवाइयों को अठगुने पानी मे पकाओ। चौथाई पानी बच रहे, तो उतार छानकर शहद, मिश्री, शर्वत, घृत आदि जो कुछ डालना हो, डालकर गुनगुना पिला देना चाहिए। काढा मिट्टी की हाँडी मे मंदी-मंदी आग से पकाना चाहिए, और उसका मुँह ढकना नहीं चाहिए। क्वाथ के और भी प्रकार होते हैं, जैसे हिम, फाट, स्वरस आदि।

हिम—उसे कहते हैं जो रात्रि को ६ गुने पानी मे मिट्टी के बर्तन मे ओस मे रख दिया जाय, सबेरे मल-छानकर शहद आदि मिलाकर पीना चाहिए।

फाट—उसे कहते हैं कि गर्म पानी मे दवाइयों को कुचलकर डाल देना और १२ घंटे के बाद मल-छानकर पीना।

स्वरस—हरी वनस्पति को कूट-पीसकर रस निचोड़ने को कहते हैं।

चूर्ण—बारीक पीसकर कपड़छान करके बनानेवाली दवा को चूर्ण कहते हैं। इसकी फकी लेकर ऊपर से ठंढा या गर्म पानी या कोई पतली चीज़ जो वैद्य बतावे, अवश्य पीना चाहिए। कोई-कोई स्वादिष्ट पाचक चूर्ण बिना पानी के भी चाटे जाते हैं। चूर्ण की मात्रा ६ माशे से लेकर १॥ माशे तक है। एक साल का पुराना चूर्ण किसी काम का नहीं रहता। उसे फेंक देना चाहिए।

गोली—सूखी दवा का चूर्ण करके पानी या किसी और पतली चीज़ की सहायता से अथवा गीली दवा पीसकर गोली बनाते है। कोई गोली चबानी पडती है, कोई-कोई गोली मुँह में रखकर रस चूसना पडता है। यह भी १ वर्ष बाद उतर जाती है।

पतली दवाइयाँ—अर्क या आसव। अर्क भभके में खींचे जाते है, आसव का संधान किया जाता है। यह अँगरेज़ी मिक्सचर की तरह पिए जाते है। अर्क तो साल-भर में ख़राब हो जाते है, पर आसव ज्यों-ज्यो पुराने होते हैं, त्यों-त्यों गुणकारी होते जाते हैं।

चटनी या शर्बत—उँगली से चाटे जाते हैं, कभी-कभी शहद या मिश्री मिलाकर कोई चूर्ण ही चटनी बना लिया जाता है। शर्वत, अर्क आदि पीने की दवा में भी मिलकर पिए जाते है। शर्वत बनाने की विधि यह है कि जिस वस्तु का शर्वत बनाना हो, यदि वह सूखी हो तो काढ़ा करके, गीली हो तो स्वरस निकालकर तिगुनी खाँड में ३ तार की चाशनी कर लेना चाहिए। होशियारी से रखने पर यह चीज़ दो-तीन साल तक भी नहीं बिगडती, पर जो चाशनी कच्ची रह गई, तो फिर बरसात मे ख़राब हो जायगी।

घृत—जिस दवा का घृत बनाना हो, उसकी चटनी पीस ली जाय, और उसी दवा का अलग काढ़ा कर लिया जाय, फिर काढा, चटनी, घी तीनो वस्तुएँ मिलाकर आग पर मंदी आँच से पकाना चाहिए, जब पानी जल जाय, घी रह जाय, तो उतारकर छान लेना चाहिए। पर

यह काम बड़ी होशियारी का है। कभी तो घी जल जाता है, कभी कच्चा रह जाता है, इसमें यह काम वैद्य के सामने ही करना चाहिए।

तोल का हिसाब यों है कि घी से चौगुना काढ़ा और चौथाई चटनी।

यह उस घी के बनाने की विधि है, जिसकी कोई तोल नुसखे में न लिखी हो और जिसमें विधि हो, उसे उसी अनुसार बनावे।

यह घी कभी अकेला चाटा जाता है, कभी दूध, मिश्री या शहद में मिलाकर।

रस या धातु भस्म--इनके विषय में लोगों में यह भ्रम फैला हुआ है कि रस, भस्म ४० वर्ष की अवस्था से प्रथम न खानी चाहिए, पर यह कोरा भ्रम है। उत्तम पदार्थ तैयार हों, तो सब कोई बेखटके खा सकते हैं। इनके बनाने की विधि हमने अन्यत्र लिखी है। ये रस अक्षय हैं अर्थात् पुराने होने पर इनका गुण बढ़ता है। ये घृत, शहद, मलाई अथवा अदरक या पान के रस में खाने चाहिए। पर सावधान रहें कि पथ्य में गड़बड़ न होने पावे।

रसौषध में कई गुण हैं, एक तो वे बहुत थोड़ी मात्रा (रत्ती या आधी रत्ती) में ही वह काम करते हैं, जो बड़े-बड़े कटोरे-भरी कड़वी कसैली दवा भी नहीं कर सकती। दूसरे उधर गले से दवा उतरी, उधर गुण दिखा दिया। तीसरे बेस्वाद नहीं, इसीलिये औषधि में रस की बड़ी ही प्रशंसा है, पर वह बड़ी तेज़, आनन-फ़ानन में, जैसे रत्ती (चावल)-भर ही जादू की तरह लाभ दिखाती है वैसे ही अनाड़ी के हाथ से कभी-कभी भारी हानि भी कर देती है, इस-लिये अनाड़ी से रस नहीं लेना।

दवाइयों का बाहरी प्रयोग

तेल की मालिश—दर्द, खुजली और ज्वरादि दूर करने के लिये तेल-मालिश करना होता है। तेल इस प्रकार से मालिश करना चाहिए, जिससे रोगी को तकलीफ़ न हो, और तेल शरीर के भीतर पेवस्त हो जाय। सिर में तेल-मालिश करना हो, तो थोड़ा तेल हथेली पर लेकर सिर पर जमाकर धीरे-धीरे दबाना चाहिए, जिससे सब तेल भीतर चला जाय।

लेप—जैसा पतला या गाढ़ा लेप वैद्य ने बताया हो, वैसा लगाना चाहिए। लेप की दवाई खूब बारीक पीसनी चाहिए। पकानी हो, तो पका लेनी चाहिए। द्रव पदार्थ (पानी आदि) उसमें इतना मिलाना चाहिए कि पक चुकने पर लेप काफ़ी पतला रहे। लेप प्राय. बाहर लगाया जाता है। सूखे लेप को त्वचा पर न रहने देना चाहिए, उसे उतारकर तब दूसरा लेप लगाना चाहिए, परतु यदि पका हुआ फोड़ा फोड़ने के लिये लेप लगाया जाय, तो उसे सूख जाने पर भी लगा रहने देना चाहिए, ऐसा होने से खाल में तनाव होकर फोड़ा जल्दी फूट जाता है। रात में लेप नहीं लगाना चाहिए।

उत्कारिका (पुल्टिस या लूपटी)—प्राय रात में ही बाँधी जाती है, और कच्चे फोड़े को पकाने या दर्द दूर करने को बाँधते हैं। गाढ़ी लेई-सी पकी हुई दवा को उत्कारिका या पुल्टिस कहते हैं।

मलहम—दो तरह के होते हैं—एक चिकने, घी, तेल, चर्बी, मोम आदि में दवा मिलाकर तैयार किए हुए, दूसरे चिपकदार। चिकने मलहम उँगली से फोड़े-फुंसी पर लगा देने चाहिए। चिपकदार मलहम धुले हुए पर नए, साफ़ कपड़े के फाए पर लगाकर चिपका देने चाहिए। फाए के लिये लट्ठे का कपड़ा सर्वोत्तम है।

धुआँ पीना—धुआँ खाँसी या श्वास आदि मे पिया जाता है, और ख़राब ज़ख्म या बवासीर के मस्सों आदि को दिया जाता है। धुआँ पीने के लिये तो हुक़्क़ा बहुत अच्छा यन्त्र है। बवासीर के मस्सों या आतशक के ज़ख्मों को धुआँ देना हो, तो कुर्सी पर बैठकर नीचे आँच पर धुएँ की दवा डालकर कपड़े से झाँपकर बहुत अच्छी तरह धुआँ लिया जा सकता है। जिस अंग को धुआँ देना हो, वही अंग धुएँ के सामने करना चाहिए। सपूर्ण शरीर को धुआँ देना हो, तो नग्न होकर गर्दन तक सब शरीर को कपड़े से झाँपकर धुआँ लेना चाहिए। आँखें, नाक और मुँह धुएँ से बाहर रक्खे।

सूँघने की दवाइयाँ - ये तंबाकू की तरह सूँघ ली जाती हैं। घी आदि सूँघना हो, तो हथेली पर रखकर नाक के नथुने से लगाकर ज़ोर से ऊपर को साँस खींचना चाहिए। एक नस्य लेने की रीति होती है, वह इस प्रकार से कि रोगी को चित लिटा दिया जाय, और उसका सिर चारपाई के सिरहाने से नीचे की ओर कर दिया जाय, जिससे गर्दन सिरहाने के सिरवे पर रहे, ऐसा करने से नाक ऊँची हो जायगी, तब रोगी की आँखों पर कपड़ा ढक दिया जाय। दवा अगर पतली हो, तो बूँदें टपका देनी चाहिए, तीन-चार या जितनी बताई गई हो। अगर सूखी दवा हो, तो एक कागज की नली बनाओ। कागज़ लपेटकर, जैसे काग़ज़ का हुक़्क़ा बनाते हैं, जिसका एक सिरा इतना पतला हो कि ना० के नथुने में जा सके, दूसरा सिरा कुछ मोटा हो। इसमें ज़रा-सी दवा रख दें, और नली का पतला सिरा रोगी की नाक में देकर दूसरे सिरे को मुँह से लगाकर फूँक मार दे, ऐसा करने से दवा ठीक पहुँचती और तत्काल असर करती है। इसके पीछे रोगी को छींक आती है, आँख, नाक से पानी निकलता है, मुँह से थूक आता है। थूकना हो, तो सामने न थूककर इधर-उधर थूकना चाहिए।

बफारा—बफारा या भाफ देने की अनेक रीतियाँ हैं, जो हमने अन्यत्र बताई हैं। उसी के अनुसार बफारा लेना चाहिए, पर साधारण और सीधी-सादी तरकीब यह है कि एक या दो भगौने (जैसी ज़रूरत हो), जिनमें काफी पानी आवे, पानी से भरकर और दवाई डालनी हो, तो डालकर पकाने को रख दे। जब पानी उबलने लगे, तब रोगी को रस्सी या बेत की बुनी ख़ाली चारपाई पर नंगा लिटा देवे, और ऊपर से कंबल आदि कपड़े इस प्रकार से उढ़ा दे कि ये चारपाई के चारो ओर धरती तक लटके रहें फिर एक भगौने को ढकने से ढककर धीरे से उठाकर चारपाई के नीचे उस स्थान पर रक्खे, जहाँ पर रोगी का वह अंग हो, जिसे भाफ देनी है। यदि सारे शरीर को भाफ देना हो, तो एक बर्तन पैरो के तले, दूसरा कमर के नीचे रख देना चाहिए। फिर ढकने को धीरे-धीरे सरकाना चाहिए, जिससे उतनी भाफ ऊपर

उठे जितनी रोगी सह सके। एकदम भाफ को खोल देने से रोगी के जल जाने का भय है। ख़बरदार! अगर भाफ ज्यादा आती हो, और रोगी से सही न जाती हो, तो ढकना आगे को सरकाकर भाफ कम कर देनी चाहिए। इस तरह से भाफ आराम से जितनी चाहो, उतनी ली जा सकती है। रोगी को चाहिए कि शरीर के जिस हिस्से मे दर्द या सूजन या तनाव हो, वह हिस्सा विशेषकर भाफ के सामने कर दे।

ठीक-ठीक पसीना लेने से दर्द मिटता है, सूजन कम होती और शरीर हलका हो जाता है। बहुत ज़्यादा पसीना लेने से ख़ुश्की और गर्मी बढ़ जाती है, और देह टूटने लगती है।

पसीना या भाफ लेने की कोई ख़ास तरकीब वैद्य के इच्छानुसार करनी चाहिए। पसीना लेते समय आँखों पर भीगे हुए केले के पत्ते, कमल के पत्ते, गुलाब के फ़ूल या साफ धुनी हुई रुई के फाए, जो पानी में भिगोकर निचोड़ लिए हों, रखने चाहिए।

कुर्सी पर बैठकर और बर्तन नीचे रखकर भी भाफ अच्छी तरह ली जा सकती है। बफारा लेने से पहले प्राय. तेल मालिश किया जाता है, सो वैद्य की सम्मत्यनुसार ही करना चाहिए।

आँख में लगाने की दवा—आँख का काम बहुत नाज़ुक होता है। उस पर नाना प्रकार की क्रिया और भाँति-भाँति के प्रयोग बडी ही सावधानी से किए जाते हैं, इसलिये वे सब चिकित्सक द्वारा या उसकी पूरी सँभाल में होने चाहिए।

इसके सिवा कोई ख़ास विधि औषध-सेवन की वैद्य बतावे, तो उसी प्रकार बुद्धिमानी से उसका सेवन करना चाहिए। साराश यह कि दवा खाने की हो या लगाने की, उसकी विधि वैद्य से भली भाँति पूछ लेनी चाहिए, और वह जैसे बतावे, वैसे काम मे लाना चाहिए।

यदि प्रयोग कुछ कठिन या भयानक हो तो उसे वैद्य से ही कराना चाहिए। और स्वय अच्छी तरह देखते रहना चाहिए कि जिससे वह क्रिया समझ मे आ जाय और आगे को अपने आप ही कर सको।

औषध का समय

प्राय. निम्न-लिखित समयों पर दवाई दी जाती है—१ प्रात काल, २ प्रात काल के भोजन के पहले, ३ भोजन के बीच में या प्रथम ग्रास पर या ग्रास-ग्रास पर, ४ भोजन के अत में, ५ बार-बार, ६ शाम को, ७ रात को, सोते वक्त।

१—आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा-पद्धति के क्वाथ और दूसरी दवाइयाँ भी प्राय सुबह और शाम को ही पी जाती है। प्रात काल ली हुई औषध विशेष गुणकारी होती है, परतु दवाई ख़ाली पेट में (बिना कुछ खाए-पिए) लेनी चाहिए। दवाई लेने के पीछे दो-तीन घटे तक भी कुछ नही खाना-पीना चाहिए। ऐसा करने से औषध अपना पूरा गुण दिखाती और रोग को शीघ्र दूर कर देती है।

परतु बालक, वृद्ध, स्त्रियाँ और कोमल प्रकृति (नाज़ुक मिज़ाज) मनुष्यों को ख़ाली पेट मे

औषध लेने से ग्लानि और उकलाहट पैदा हो जाती है, और जी मिचलाने लगता है। इनके लिये यह उचित है कि औषध पिलाने के पीछे उन्हें तत्काल भोजन कराया जाय। ऐसा करने से ग्लानि आदि कुछ न होगी, और औषध आराम से पच जायगी।

२ – मंदाग्नि आदि दूर करने के लिये अग्नि प्रदीप्त करनेवाली दवाइयाँ भी प्रातःकाल के भोजन के पहले ही दी जाती हैं।

३—अरुचि आदि दूर करनेवाली दवाइयाँ भोजन के बीच में या ग्रास-ग्रास पर दी जाती हैं। जैसे भाँति-भाँति की स्वादिष्ठ और खुशज़ायका चटनियाँ, खट्टे-मीठे पने आदि। मंदाग्नि दूर करनेवाले कोई-कोई चूर्ण भोजन के प्रथम ग्रास में दिए जाते हैं।

४—अजीर्ण दूर करने और भोजन को पचाने के लिये पाचक औषधियाँ भोजन के अंत में ली जाती हैं।

५—किन्हीं विशेष रोगों को, जिनमें रोगी बहुत तकलीफ पा रहा हो और दुःख से छटपटा रहा हो, दूर करने के लिये बार-बार औषध दी जाती है। जैसे हिचकी, श्वास, खाँसी, प्यास, छर्दि चढ़े हुए ज्वर में और ज्वर की बारी रोकने आदि के लिये बार-बार लेने की दवाइयों का समय नियत होता है। जैसे घंटे-घंटे-भर में एक खूराक, दो-दो घंटे में एक खूराक इत्यादि। यदि ऐसी दवाइयाँ पतली हों, तो उनकी शीशी पर खूराक की पहचान के लिये काग़ज़ के टुकड़े पर दाग बने हुए निशान लगे रहने चाहिए, जिससे दवाई एक खूराक में कम-ज्यादा न चली जाय। प्रायः हामियोपैथो चिकित्सा में कई दवाइयाँ क्रमशः बार-बार पिलाई जाती हैं। जैसे दो प्रकार की दवाई बार-बार पिलानी है। पहले एक, फिर नियत समय पर दूसरी, फिर नियत समय पर पहली, फिर दूसरी इत्यादि। इसमें विशेष सावधानी रखनी चाहिए कि एक ही दवा लगातार दो बार न पिलाई जाय। दवाइयों की शीशियों की पहचान रखनी चाहिए।

६—जो दवाइयाँ दिन में दो बार ली जाती हैं, वे प्रायः प्रातःकाल और सायंकाल इन्हीं दो समयों पर ली जाती हैं। शाम को दवाई लेने की रीति वही है, जो सुबह को लेने की। नं० १ और २ की भाँति समझ लेना चाहिए। यदि रात्रि को भोजन के साथ भी दवाई लेनी हो, तो नं० ३ की भाँति ले लेनी चाहिए।

७—प्रातःकाल को दस्त साफ लाने की कोई-कोई साधारण रेचक और पाचक औषधें रात को सोते वक्त ली जाती हैं। यदि इनके सिवा भी कोई विशेष समय औषध देने का वैद्य निश्चय करे, तो उसी समय औषध देनी चाहिए। डॉक्टरी दवाइयों में दवाई के साथ भोजन लेने के विषय में भी कुछ विशेष नियम होते हैं। किसी दवाई को लेकर निर्दिष्ट समय तक भोजन नहीं करना होता। जैसे कोनैन मिक्स्चर के लेने पर। इस प्रकार के सब विषयों में जैसी विधि चिकित्सक नियत करे उसी के अनुसार दवाई खानी-पीनी चाहिए।

औषध का पिलाना

दवा पीना बीमारों के लिये बड़ा कठिन काम है। कितने ही रोगी तो इसीलिये इलाज भी नहीं कराते कि न-मालूम कैसी-कैसी कड़ई, कसैली, बदज़ायका दवाई पीनी पड़ेगी। कितनों को दवाई की शकल देखते ही थर्राहट आती है। तरह-तरह का मुँह बनाने लगते हैं। ऐसे लोग दवाई पीने की अपेक्षा बीमार रहना ही अच्छा समझते हैं। बात है भी ऐसी ही। रसना बड़ी प्रबल इन्द्रिय है, यह बुरे स्वादों को चखना नहीं चाहती। परंतु समझना चाहिए—दवाई पीने में थोड़ी देर कष्ट होता है, परंतु रोग से निरन्तर कष्ट पाना होता है, दवाई आरोग्यता और खुशी पैदा करने के लिये है, परंतु रोग दुःख, पीड़ा, रज और मृत्यु बुलाने के लिये है, इसलिये रोग की बड़ी तकलीफ की अपेक्षा दवाई पीने की थोड़ी-सी तकलीफ सह लेनी चाहिए। रोगी प्रायः रोग से चिड़चिड़े हो जाते हैं, इसलिये उन्हें धीरे से समझा-बुझाकर आश्वासन और तसल्ली देकर, बच्चे हों, तो उन्हें खिलौने, रुपए-पैसे आदि से बहला-फुसलाकर दवाई खिला-पिला देनी चाहिए।

दवाई साफ, स्वच्छ सोने-चाँदी या काँसे की कटोरी में लेकर परमेश्वर का नाम लेकर रोगी को पिला दे। रोगी को चाहिए कि सावधानी से बैठकर प्रसन्न चित्त से दवाई को एक साँस में पी जाय, उसका स्वाद न ले। पी चुकने पर पात्र उलटा करके पृथ्वी पर रख दे, और ठंडे या गर्म जल से (जैसा कि वैद्य ने बताया हो) कुल्ले कर डाले। पीछे इलायची के दाने या पान आदि से मुँह का स्वाद ठीक कर ले। ये चीजें वैद्य की आज्ञानुसार पहले से ही तैयार रखनी चाहिए। यह नहीं कि उसी वक्त पैसे लेकर बाजार को दौड़ा जाय। खट्टी दवाई काँच, पत्थर या मिट्टी के पात्र में पिलानी चाहिए। रोगी अगर कमजोर हो और बैठने की शक्ति उसमें बिलकुल ही न हो, तो रोगी को लेटे-ही-लेटे टोंटीदार पात्र से, जिससे से बहुत मोटी धार न निकलती हो, पिला देना चाहिए।

बहुत छोटे बच्चों को छोटे-से चम्मच या छोटी शीशी से थोड़ी-थोड़ी दवाई लेकर पिलाना चाहिए। बच्चे दवाई पीकर खूब रोते हैं। बच्चा जब तक बेहाल न हो, और धीरे-धीरे रोवे, तब तक दूसरा घूँट फिर पिला देना चाहिए, जल्दी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि जल्दी करने से बच्चे घबरा जाते और दम लेना भूल जाते हैं। दवाई श्वास की नली में चली जाती है, और धसका उठकर फंदा लग जाता है। बच्चा दवाई और खाए-पिए की सबकी उल्टी कर देता है। कुछ समझदार और कुछ नादान ऐसी उम्र के बच्चे यदि दवाई न पीवें, और दाँत भींच ले, या कोई बड़ा रोगी बेहोश हो जाय और उसके दाँत भिच जायँ, तो प्रथम उँगली (तर्जनी) में अंगुस्ताना (जैसा दर्ज़ी लोग सीते वक्त लोहे या पीतल का बना हुआ उँगली में पहने रहते हैं) पहनकर वह उँगली डाढ़ों के पीछे मसूड़ों में डालकर कुछ ज़ोर लगाकर जबाड़ी खोल दें, फिर कोई मोटी गोल चीज़, जैसे रूल या बेलन का सिरा दाँतों के बीच में दे दें, और दवाई चमचे से मुँह में डाल दें।

जिस रोगी ने अपना मुँह भींच लिया हो, और वह मुँह न खोले, तो उसकी नाक पकड़कर भींच ली जाय। नाक के स्वर बंद होने से श्वास लेने के लिये रोगी मुँह खोल देगा, तब तत्काल दवा पिला देनी चाहिए।

यदि रोगी को निगलने की भी शक्ति और ज्ञान न हो, दवाई लौट-लौटकर बाहर को निकले, तो रबड की नली, जिसके एक ओर चौडे मुँह का फूल लगा रहता है, दूसरी ओर से रोगी की आहार-नलिका (हलक) में डालकर धीरे-धीरे आमाशय में उतार देनी चाहिए और उस फूल को दवाई में डालना चाहिए। दवाई जब पेट में भली भाँति पहुँच जाय, तब नली निकाल लेनी चाहिए। वह नली अच्छे वैद्य और डॉक्टरों के पास होती है।

प्राय होमियोपथी दवा में कई दवा क्रम से दी जाती है। जैसे - दो प्रकार की दवा क्रमशः घंटे-घंटे-भर में पिलानी है, तो एक बार एक और दूसरी बार दूसरी। ऐसी दशा में विशेष सावधानी रखनी चाहिए, ऐसा न हो कि एक ही दवा बार-बार पिला दी जाय। शीशियाँ एक-सी न होनी चाहिए, और उनकी पहचान बनी रहनी चाहिए। कोई ताकत की दवा या दस्त की साधारण दवा रात्रि को गर्म पानी या दूध से ली जाती है। दूध औटा हुआ और मिश्री मिला हुआ होना चाहिए।

जुलाब और वमन की दवा—कोठे में जब मल सडने लगता है, तब जुलाब की ज़रूरत होती है, और जब मेदा (आमाशय) खुराक को पचा नहीं सकता, तो उल्टी की दवा देनी पड़ती है। ये दोनो औषध ऐसे समय दी जानी चाहिए, जब ऋतु साम्य हो, न गर्मी हो, न सर्दी। साधारणत इनका समय इधर चैत्र वैशाख और उधर क्वॉर-कात्तिक है। पर बहुत आवश्यक होने पर चाहे जब ली जा सकती है।

जुलाब लेने से एक दिन प्रथम हल्की गिजा खिचडी-जैसी खानी चाहिए। अगले दिन बडे तड़के उठकर दवा, जो प्रथम ही तैयार कर रक्खी हो, पी या खा लेनी चाहिए। ऐसा उद्योग करना चाहिए कि तबियत बिगड़े नहीं और उल्टी न हो, क्योंकि उल्टी की दवा से दस्त और दस्त की दवा से उल्टी होना अच्छा नहीं है। ऐसी दशा में सावधान हो जाना चाहिए। पान, इलायची, सुगंध सेवन करना हितकारी है। सोवे नहीं। प्रत्येक दस्त पर ठडा या गर्म पानी, जैसा वैद्य ने बताया हो, पीता रहे। जब दस्त हो चुके, तो खिचडी-दही खाय। जल कम पीवे। उत्तम जुलाब होने से तबियत हल्की हो जाती है, भूख लगती है। नहीं तो घबराहट, अरुचि, जी मचलाना, पेट में उपद्रव आदि होते हैं, जिनका प्रबंध वैद्य की सम्मति से करना चाहिए।

वमन कराने से प्रथम कफ भडकानेवाली वस्तु डटकर खाना चाहिए। फिर दवा पीकर या मोर पख या उँगली मुँह में डालकर उल्टी कर डालनी चाहिए, यह काम साहस का है। पर इसका फल ऐसा विचित्र होता है कि महीनो और वर्षो की बीमारी का पातक एक ही दिन में कट जाता है। वमन के पीछे हलका पथ्य ग्रहण करना चाहिए।

प्रकरण ५

पथ्य

पथ्य—जैसे राजा को मन्त्री, वैसे औषध को पथ्य समझना चाहिए। कहा है—"पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणै। अपथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणै।" अर्थात् बदपरहेज को औषध से क्या? (कितनी ही दवा-दारू करो, आराम न होगा) और परहेजवाले को दवा से क्या? (वह रोगी ही न पड़ेगा, अत दवा की जरूरत ही नहीं)।

पथ्य के विषय मे वैद्य की आज्ञा को औषध से भी अधिक ध्यान से सुनकर पालन करना चाहिए, क्योंकि अन्न प्राण है, दवा उसी की सहायक है, यह प्राण-अन्न यदि विष-रूप से शरीर मे गया, तो समझिए कि औषध भी विष हो गई।

भिन्न-भिन्न रोग पर भिन्न-भिन्न पथ्य प्रस्तुत विधि है, पर सबका साधारण मतलब यही है कि पथ्य हल्का हो, जल्दी पच जाय, दोषों को शमन करनेवाला हो, कोई विकार न करे। रोगी चाहे जैसा हो, निर्बल हो ही जाता है, पडा रहता है, ऐसी दशा में पडे-पडे वह जैसा पथ्य पचा सके, वही पथ्य देना चाहिए।

बहुत-से मनुष्य खाने-पीने की साधारण वस्तुओ का भी ज्ञान नही रखते, और वे इस बात को नही जानते कि रोगी को कब, कैसा पथ्य देना चाहिए। देर तक रोगी पडा रहनेवाला व्यक्ति पथ्य की चीज़ें खाते-खाते ऊब जाता है। दाल-भात, रोटी वह देखना भी नहीं चाहता, ग्यारह-बारह बजे तक उसे भूख नही लगती, पर तब तक यदि उसे कुछ हल्का आहार न दिया जायगा, तो वह अधिक दुर्बल हो जायगा। कमजोर रोगी को प्राय रात मे कुछ ज्वर हो जाया करता है। प्रात काल ज्वर उतरने पर उसका चेहरा अत्यंत निस्तेज हो जाता है। ऐसी अवस्था मे प्रात काल उसे सुपाच्य पथ्य अवश्य ही देना उचित है। थोडा-सा दूध, चाय, साबूदाने का पानी या अरारोट की कॉजी देना उचित है। यदि चिकित्सक की स्पष्ट आज्ञा भी हो, तो भी बिना रोगी की रुचि और पाचन-शक्ति पर विचार किए, ज़बर्दस्ती बार-बार रोगी को भोजन देना अनुचित है।

प्राय देखा जाता है कि पथ्य-पानी के संबंध मे घर की स्त्रियाँ चिकित्सक की आज्ञा का उल्लंघन किया करती हैं। लुक-छिपकर ऐसी चीजें खिला देती है, जिन्हें चिकित्सक मना कर गया है। फल सदैव बुरा पडता है।

बिल्कुल कमजोर रोगी को ठीक समय पर पथ्य देना आवश्यक है। उसमे ५ मिनट की भी देरी होनी ठीक नही है। पथ्य देने का समय भी ऐसा होना चाहिए कि उस समय

या उसके पहले-पीछे कोई शारीरिक या मानसिक काम न करना पड़े। भोजन करने के बाद थोड़ी देर तक उसे पूरा विश्राम मिले। कमजोर रोगी अच्छी तरह निगल भी नहीं सकता। ऐसी हालत में यदि उसे बोलना पड़े, तो उससे ही भोजन इधर-से-उधर होने से ही फंदा लग जाता या रोगी थक जाता है, फिर वह पानी भी नहीं पी सकता। करवट बदलने या हिलने-डुलने के बाद ज़रा विश्राम लेने देकर उसे पथ्य देना चाहिए।

ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं कि कितने ही रोगी उपवास से हो मर जाते हैं। पहले यह देखना चाहिए कि रोगी को भूख कब लगती है। फिर उस समय उसे कुछ भी थकावट न हो, इसका ख़याल रखना चाहिए। रोगी के खाने से बचे हुए पदार्थों को इस विचार से कि वह जब इच्छा होगी, फिर खा लेगा, उसके सिरहाने पर रख देना बहुत बुरा है। जो पदार्थ अरुचि के कारण छोड़ दिया गया है, उसे उसके सामने हो पड़े रहने देने से और भी अरुचि बढ़ेगी। इसलिये उत्तम बात यह है कि भोजन का पदार्थ सुंदर पात्रों में रोगी के सामने लाया जाय, और खा लेने पर तुरत कमरे से बाहर ले जाय, पलँग के पास कभी न रक्खा जाय। बार-बार "भूख लगी है?" पूछना उचित नहीं। परंतु रोगी से अच्छी तरह पूछकर पथ्य देने का समय जरूर निश्चय कर लेना चाहिए। रोगी के सामने एकदम बहुत-सा भोजन न ले जाना चाहिए और न उसे दूसरे नीरोगी मनुष्यों के लिये बनाया हुआ भोजन दिखाना चाहिए, न उसकी गंध ही उस तक जानी चाहिए। उसके सामने हर वक्त खाने-पीने की बातें भी न करनी चाहिए। न रसोई की जिंस दाल-चावल ले जाना चाहिए। इन तमाम कारणों से अन्न में अरुचि हो जाया करती है। रोगी के भोजन करने के समय घर के आदमियों को इधर-उधर चलकर धमाका नहीं करना चाहिए, और न धूल उड़ाना चाहिए। अशक्त रोगी के खाने के समय कोई न आवे, न उसके कान में ज़रा-सा भी शब्द जाय। न उसे भोजन के समय से प्रथम कोई बातों में लगा ले। भोजन के बाद किसी की मुलाकात या कहीं जाने का भी प्रोग्राम न रहे कि उसे खाने में जल्दी करनी पड़े।

बासी दूध, खट्टे पदार्थ, ठंडा या दुर्गंधित अन्न रोगी के पास कभी न ले जाना चाहिए। यदि रोगी का पथ्य बनाते समय बिगड़ भी जाय, तो तत्काल और तैयार कर देना चाहिए। रोगी ने क्या खाया है, उसके पेट में कितनी गुंजायश है, अब क्या देना चाहिए, रात को क्या दिया जायगा, ये सब बातें अच्छी तरह विचारने की हैं। यदि भोजन का समय नियत कर लिया जाय, तो रोगी को उसी समय भूख लग जाती है।

ठीक समय पर रोगी को भोजन न मिलना, या किसी एक विशेष वस्तु की आशा दिखाकर उसके स्थान में अन्य किसी वस्तु को ठीक समय पर ला रखना, दोनों से रोगी क्षुभित हो जाता है। फल-फूल भी रोगी को ठीक समय पर ही देने उचित हैं।

पात्र जो रोगी के पथ्य के साथ रोगी के सामने लाया जाय, वह बाहर से मैला न

हो। खाने-पीने की चीजों के बर्तन बाहर-भीतर से बिल्कुल स्वच्छ और साफ रहने उचित है। पीते समय पीने का पदार्थ उसके शरीर या बिछौने पर न गिर पड़े, इसका पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए।

रोगी को क्या खिलाना चाहिए, यह एक बड़ा विकट प्रश्न है। बड़े-बड़े चिकित्सक भी इस प्रश्न का उत्तम उत्तर नहीं दे सकते। आम तौर से लोगों का ख़याल है कि मांस का शोरबा पुष्टिकर आहार है। कुछ लोग मुर्गी के अंडे को अत्यंत शक्ति-वर्धक समझते हैं, परंतु यह भूल है। खासकर गर्म मिजाजवालों के लिये यह वस्तु निस्सन्देह हानिकारक है। पहले ही से रोगी मांसाहारी हो तो बात ही दूसरी है, नहीं तो अन्न ही रोगी का सर्वोपरि पथ्य है। जो रोगी मांसाहार करते हैं, उन्हें रक्त-दोष पैदा हो जाता है, मुँह और जीभ पर छाले हो जाते हैं। मसूढ़ों से ख़ून गिरने लगता है। सन्धियाँ दुखने लगती हैं, और चक्कर आने लगता है। शाक-भाजी, फल-फूल रोगी के लिये उत्तम प्रभाव करते हैं। अरारोट का काँजी फौरन् हज़म हो जाती है, परन्तु यदि रोगी में ज़रा भी पाचन-शक्ति ठीक हो, तो उसे दलिया देना चाहिए, यह पुष्टिकारक और हल्का है।

यवागू—थोड़ा कुटा हुआ चावल जौ या गेहूँ के दलिए का यवागू बनता है। मांड, पेया और लपसी यह तीन तरह का यवागू होता है। चावल आदि १६ गुने पानी में ख़ूब सिझाकर छान लेने से माँड कहाता है। ११ गुने पानी में ख़ूब सिझा लेने से पेया कहाता है, और ६ गुने पानी में पकाने से लपसी कहते हैं। पेया और लपसी छानी नहीं जाती। यवागू पानी की तरह पतली होने से पेय और गाढ़ी होने से लपसी कहाती है। माँड छानकर पिलाया जाता है। इसमें सेंधा नमक या मिश्री मिलानी चाहिए।

खिचड़ी—यह भी उपर्युक्त प्रकार से तीन प्रकार की होती है—इसमें मूँग या अरहर की दाल २ हिस्सा और चावल १ हिस्सा डालने चाहिए।

खील का माँड—ताज़ी खील (धान का लावा) थोड़े गर्म पानी में थोड़ी देर भिगो रखना, फिर घुल जाने पर कपड़े में छानकर पीना चाहिए। इसमें मिश्री या नमक डालना भी ठीक है।

बार्लि-अरारोट—यह अँगरेज़ी पथ्य है। बनता इस तरह है कि इसे पहले गर्म पानी में ख़ूब मिला लेना, फिर दूध डालकर पकाना, सीजने पर मिश्री मिलाकर खाना।

साबूदाना—बनाने की भी यही विधि है—उसे कुछ देर पानी में भिगोना उचित है। ये सब वस्तुएँ पीने योग्य होनी चाहिए। बाज़ार में यह चीज़ें इन्हीं नाम से मिलती हैं।

दाल का जूस—मूँग, मसूर, अरहर, मोठ इनकी दाल का जूस बनाना हो, तो इन्हें १८ गुने पानी में ख़ूब सिझाना, पीछे सेंधा नमक, हल्दी, जीरा, धनिया आदि मसाला यथा-योग्य चिकित्सक की राय से डालना।

शाक—तोरई, कद्दू, पेठा, करेला, बैंगन, आलू व परवल आदि का शाक अवस्था-विशेष में चिकित्सक की सम्मति से दे सकते हैं।

दूध—पुराने किसी-किसी रोग में दूध देने की विधि है। उसे क्षीर-पाक की विधि से दे। अधिकांश में छोटा पीपल का क्षीर-पाक होता है, उसकी विधि यह है कि आध पाव गाय या बकरी का दूध ले, उसमें एक पाव पानी मिलावे और २ पीपल की पोटली बनाकर साबुत (या अन्य औषध, जो चिकित्सक ने बतलाई हो) डालकर लोहे की कढ़ाई में इस तरह पकावे कि मलाई न पड़े, जब पानी जल जाय, तो दूध छानकर मिश्री मिलाकर रोगी को दे।

रोटी—जल्द हज़म होनेवाली रोटी बनाना हो, तो पहले आटा गूँधकर एक घंटा तक पानी में भिगो रखना चाहिए, फिर उसको ख़ूब मसलकर गोला बनाना, तथा एक बर्तन में पानी चूल्हे पर चढ़ा वह गोला १५-२० मिनट तक सिझाकर बाहर निकाल लेना। फिर उसे अच्छी तरह गूँधकर हाथ से पतली-पतली रोटी बनाकर सेंकना, यह रोटी बहुत जल्दी हज़म होती है। सेंकने को तवे की जगह कोरे घड़े का ठीकरा लेना चाहिए।

घृत—रोग का अंश (ख़ासकर ज्वर का) रहते घृत नहीं देना, किंतु पुराने ज्वर में जब अँतड़ियाँ खुश्क हो जाती हैं, और शरीर का स्नेह (धातु) नष्ट हो जाता है, तब कोई-कोई बुद्धिमान् चिकित्सक घृत देते हैं, अस्तु। घृत चिकित्सक की सम्मति से देना चाहिए।

दूध और दूध से बनाए पदार्थ कहीं-कहीं ठीक समझे जाते हैं। मक्खन सब चिकने पदार्थों में हल्का और पुष्टिकर है। उसके साथ रोगी थोड़ी-बहुत रोटी आदि खा सकता है। गेहूँ की धानी, भुने चने, चावल के मुरमुरे, अरारोट, साबूदाना आदि वस्तु रोगी के लिये पथ्य हैं। पुरानी बीमारियों में मलाई देना अच्छा है। वह पचने में दूध से भी हल्की है।

ताज़ा दूध रोगी के लिये एक अनमोल वस्तु है। परंतु उसका उपयोग ठंडा होने से प्रथम ही होना चाहिए। वह बासी न होने देना चाहिए, बासी दूध सबसे निकम्मी वस्तु है, उससे प्राय दस्त लग जाते हैं। गर्मी के दिनों में दूध बहुत जल्दी खट्टा हो जाता है। बाज़ार का दूध अत्यंत गंदा होता है।

मिठाई रोगी के पसंद की वस्तु नहीं होती। तंदुरुस्ती में जो रोगी मीठा खाते हैं, वे भी रोगी अवस्था में मीठे से घृणा करते हैं। रोगी प्राय खट्टी, चरपरी चीज़ें पसंद करता है।

चिकित्सक रोगी को बहुधा नित्य नहीं देख सकता, वह अधिक-से-अधिक दिन में एक बार देखेगा। कभी-कभी तो २, ४, ६ या ८ दिन में उसे रोगी को देखना नसीब होता है। ऐसी दशा में वह यह अनुमान नहीं लगा सकता कि रोगी को क्या चीज माफ़िक आती है, क्या नहीं। इसलिये घरवालों को ही इस बात का ध्यान रखना चाहिए, और यदि चिकित्सक की बताई किसी वस्तु से रोगी को कुछ हानि हुई हो, तो उसे कह देना चाहिए। पथ्य लेने पर रोगी की तबियत कैसी रही है, इस बात का ध्यान रखना बहुत जरूरी है।

बहुत रोगी चाय पीते हैं। फ़ुर्ती लाने के लिये थोड़ी चाय दी जा सकती है, पर ज्यादा देने से हानिकारक हो जाती है। प्रातःकाल १ प्याला चाय रोगी को पिला दी जाय, तो

उसे २-३ घंटे नींद आ जायगी। पर जिन्हें २४ घंटे नींद नहीं आती, उन्हें चाय कभी न पिलानी चाहिए। रात-भर जागने के बाद थकान उतारने को प्रातःकाल १ प्याला चाय दी जा सकती है। ज्वरवालों को काफी से चाय अच्छी लगती है। काफी चाय से अधिक उत्तेजक तो है, परंतु पाचन-शक्ति भी इसी से ख़राब होती है।

चटनी या अचार—प्रायः हानिकर है, पर रुचि सुधारने को कभी-कभी थोड़ी-थोड़ी मात्रा मे अदरख, पोदीना, अनारदाना, सेंधा नमक, जरिश्क, सौंफ ये सब बराबर पीसकर चटनी बनाकर देना—मुनक्का, काली मिरच और नमक (उचित) पीसकर चटनी चटाना।

हरड छोटी नीबू के रस की तथा नीबू का पुराना अचार स्वस्थ होने पर कभी-कभी देना।

रोगी का भोजन पवित्र स्थान मे पवित्रता-पूर्वक नहा-धोकर धुले वस्त्र साफ़ पहनकर बनाना चाहिए। भोजन की अनेक प्रकार के जीवों (मक्खी, मच्छर, चींटी, कव्वों वग़ैरा) से ख़ूब रक्षा रखनी चाहिए, और रोगी की चारपाई के सामने एक छोटी-सी मेज लगाकर उस पर चुनकर आराम से रोगी को तकिए आदि के सहारे बैठाकर खिलाना चाहिए। रोगी पीने योग्य पदार्थ को पीवे, और खाने योग्य पदार्थ को खावे।

पानी—सन्निपातादि की दशा मे सेर का आधा पकाकर पानी लेना चाहिए। साधारण दशा मे सेर का तीन पाव पका छान और ठंडाकर पिलाना चाहिए।

बर्फ़—सोडा आदि वमन के दौरे आदि में दे सकते है। बर्फ़ को मुँह मे रखकर चूसना चाहिए।

शृत-शीत जल—१ तोला दवा को १ सेर पानी में डालकर पकावे। आधा जल रहने पर छानकर पी ले, भोजन के काम मे लावे, इसे शृत-शीत जल कहते हैं।

अंशूदक—दिन-भर धूप में और रात्रि-भर चाँदनी में रक्खा रहने से जल अंशूदक कहलाता है। बहुधा यह भी रोगी को दिया जाता है। इसके अतिरिक्त लौह बुझाया, ईंट या पत्थर आदि से बुझाया हुआ पानी भी काम मे आता है। इसे छानकर कोरे घडे मे भरकर रखना चाहिए और चिकित्सक की अनुमति से ठंडा या गर्म पिलाना चाहिए। जल ताँबे या मिट्टी के कोरे पात्र में रखना चाहिए, और वह बर्तन ढका रखना चाहिए, परंतु रोग विशेष मे चिकित्सक की अनुमति से यथायोग्य जल लेना चाहिए।

ठंडा जल—मूर्च्छा, दाह, विष-विकार, रक्तपित्त, मदात्यय, थकान, श्रम, विदग्धाजीर्ण, तमकश्वास, वमन आदि रोगों मे ठंडा जल पीना चाहिए।

गर्म जल—पसली का दर्द, प्रतिश्याय (ज़ुकाम), वातव्याधि (गठिया आदि), गले के रोग, अफारा, कोष्ठबद्ध, दस्त, वमन और शुद्धि आदि कर्म के पीछे, नवीनज्वर, अरुचि, संग्रहणी, गुल्मरोग, श्वास, कास, हिक्का, इन रोगों मे और घृत आदि चिकनाई पीने पर गर्म जल पीना चाहिए, इनमे ठंडा जल पीने से अनेक प्रकार के विगाड हो जाते है।

भिन्न-भिन्न रोगों मे पथ्यापथ्य

नए बुखार मे—जब तक दोष पच न जायँ, * तब तक लघन करना चाहिए। पर रोगी बहुत दुर्बलहो, बच्चा हो या गर्भिणी हो, तो हलका भोजन दे—जैसे मिश्री, बताशा, अनार, धान की खील, खीलों का मॉड अथवा पानी में पकाया हुआ साबूदाना। पीने को एक बार उबालकर ठंडा किया हुआ पानी।

दोष के पक † जाने पर उपर्युक्त द्रव्य, तथा कसेरू, मुनक्का, सिवाड़ा, गन्ना, मूँग की दाल का पानी, खूब पतली मूँग की दाल-चावल की खिचडी (बिना घी डाले), उपर्युक्त पकाकर ठडा किया हुआ पानी। परतु कफ के ज्वर मे, वात कफ के ज्वर मे अथवा सन्निपात-ज्वर में ठंडा करके पानी न देकर गर्म ही देना चाहिए।

दो-तीन दिन ज्वर उतरे हो जायँ और शरीर मे ग्लानि न हो, तो पुराने चावल का भात, मूँग, अरहर की दाल. घिया कद्दू, पालक, परवल का शाक और रोटी देना। नए ज्वर में पेट साफ रखना ज़रूरी है।

ज्वर अधिक रहने से खीलो का मॉड. साबूदाना, दूध, दूध-भात आदि विचारकर देना। ज्वर तेज़ न हो, तो पुराने चावल का भात, मूँग, मसूर की दाल, परवल, बैंगन, गूलर मूली, घिया तथा पालक देना। रात को एक उफान का दूध। गरम पानी ठडा करके पीने को देना। काग़ज़ी नीबू की थोडी खटाई भी दी जा सकती है।

सन्निपात ज्वर मे—लघन, चौगुने पानी में दूध पकाकर देना। जब तक ज्वर न उतर जाय, तब तक भात, कफ-वर्धक भोजन, तैल-मर्दन, स्नान, दिन में सोना, ठडा जल, हवा लगने देना सन्निपात रोगी को हानिकारक है।

अन्य ज्वरों मे निषिद्ध कर्म—पकवान, भारी चीजे, दिन में सोना, रात को जागना, अधिक परिश्रम, ठडी हवा में फिरना, मैथुन और स्नान, ज्वर छूट जाने पर जब तक पूर्ण शक्ति न हो जाय, निषिद्ध है। पर गर्मी की ऋतु हो और पित्त या वात के ज्वर में बिना स्नान किए रोगी को कष्ट हो, तो गर्म जल में थोडा साबुन घोलकर शरीर अँगौछ देना चाहिए।

तिल्ली और जिगर—जीर्णज्वर में जो पथ्यापथ्य है, वही तिल्ली के रोग में भी देना चाहिए। केवल साधारण दूध न देकर दूध में २-४ पीपल औटाकर वह दूध पीने को देना चाहिए। चबेना, भारी चीज़, चरपरी चीज़े, परिश्रम, रात को जागना, दिन को सोना तथा मैथुन आदि निषिद्ध हैं।

---

* वमन की इच्छा, मुह में पानी भर-भर आना, कलेजा भारी होना, अरुचि, झपकी, आलस्य, मुह का स्वाद खराब होना, शरीर का भारीपन, भूख न लगना, पेशाब ज्यादा आना, तेज ज्वर, ये लक्षण आम दोष ज्वर के है।

† भूख लगना, देह का हलकापन, ज्वर का कमी, वात पित्त कफ और मल का निकलना दोष पचने के लक्षण है।

ज्वरातिसार (पतले दस्तों में)—रोगी बलवंत हो, तो पहले उपवास, फिर मीठा अनार या अनार का रस मिलाकर मसूर का पानी, पतली खिचडी, धान का मॉड, सिंघाड़े की लपसी दो। रोगी दुर्बल हो, तो पानी में पकाकर साबूदाना, पुराने चावल का भात दो, गरम पानी ठंडा करके पीने को देना, मीठी छाछ और भात देना।

भारी और चरपरी चीज़ें, गेहूँ, जौ, उर्द, चना, अरहर, मूँग, शाक, गन्ना, गुड, मुनक्का, ज़्यादा नमक-मिर्च, ज़्यादा पानी या पतली चीजें, धूप, तैल-मर्दन, आग में तापना, स्नान, कसरत, मैथुन और रात मे जागना हानिकारक है।

अतिसार—अतिसार की अपक्व * अवस्था मे लंघन कराना आवश्यक है, पर रोगी बहुत दुर्बल हो, तो धान की खीलों का सत्तू बनाकर, पानी से पतला करके या पानी में साबूदाना उबालकर अथवा भात का माड देना। गर्म पानी ठंडा करके पीने को देना, प्यास ज्यादा होने पर धनियॉ या सौंफ का श्रृतशीत बनाकर देना।

पक्कातिसार में † पुराने महीन चावल का भात, मसूर की दाल, चावल, बैंगन, केले की तरकारी, गाय का फीका और एक बार उबालकर ठंडा किया हुआ दूध देना चाहिए। अति जीर्ण अतिसार में केवल उपर्युक्त विधि से दूध ही देना। ख़ून भी जाता हो, तो बकरी का दूध देना। ज्वरांश न हो, तो गाय या भैंस का मठ्ठा या दही दिया जा सकता है।

संग्रहणी—संग्रहणी रोग में पक्व-अपक्व का विचार अतिसार के समान ही करना चाहिए। दही (मीठा), चावल या खिचडी या केवल दही अथवा केवल तक्र (छाछ) देना। संग्रहणी में सूजन होने पर केवल गाय का दूध ही पथ्य है। और उसके देने की विधि यह है कि गाय का दूध एक बार उबालकर ठंडा कर लिया जाय। वही दूध फीका थोडा-थोडा रोगी को दिया जाय।

बवासीर—पुराने चावल का भात, मूँग, चना, कुरथी, परवल, गूलर, ज़मींकंद, छोटी मूली, केले का फूल, सेजने का डंठल, दूध, घी, मक्खन, पकवान, मिश्री, किशमिश, अंगूर, पपीता, छाछ, छोटी इलायची, नदी या तालाब में स्नान, साफ हवा में टहलना ये उपकारी है।

भुना हुआ या सेका हुआ पदार्थ, भारी वस्तु, दही, पिट्ठी की चीज़ें, उर्द, सेम, घिआकद्दू, धूप, आग तापना, पूर्वी वायु, दस्त-पेशाब रोकना, मैथुन, घोडा या बाइसिकिल की सवारी, सख़्त चीज़ पर बैठना निषिद्ध है।

अग्निमांद्य—अजीर्ण—प्रथम उपवास, फिर हल्का भोजन, जैसे साबूदाना, खिचडी।

---

* बारबार अनेक रंग का मल निकले, खाया आहार न पचे, पेट में दर्द हो, पानी में दस्त डूब जाय, तो अपक्वातिसार के चिह्न समझना।

† दर्द की कमी, दस्त का रंग पीला, पानी में दस्त डालने से तैर जाय, यह पक्वातिसार है।

धीरे-धीरे अग्नि-वृद्धि होने पर पुराना चावल, मसूर, परवल, बैंगन, कच्चा केला आदि की तरकारी, मट्ठा, कागज़ी नीबू, बेल का मुरब्बा, अनार, मिश्री। भोजन के २-३ घंटा बाद पानी पीना। प्रात काल बासी मुँह बासी पानी पीना।

चबेना, अधिक जल, जौ, गेहूँ, उर्द, शाक, गन्ना, गुड, दूध, दही, घी, मावा, मलाई, नारियल, मुनक्का, चरपरी चीज़ें, तेल-मालिश, मैथुन, रात्रि-जागरण हानिकारक है।

हैज़ा—रोग की प्रबल अवस्था में केवल उपवास। रोग कुछ शमन होने पर भूख लगे, तो सिंघाडे की लपसी या साबूदाना पानी में औटाकर, अधिक भूख लगने पर पुराने चावल का माँड, मसूर की दाल व पानी, मीठा खाने की इच्छा हो, तो थोडी मिश्री या बताशा, शरीर-बल-वृद्धि होने पर ३-४ दिन के अंतर से गर्म पानी में स्नान।

पूर्ण आरोग्य और बल-वृद्धि होने तक मीठी चीज़ें, व्यायाम, पकवान, चबेना, स्नान, मैथुन, आग-धूप का तापना, शोक आदि न करना चाहिए।

क्रिमि-रोग—पुराने चावल का भात, परवल, करेला, गूलर, काँजी, बकरी का दूध, कागज़ी नीबू। रात को साबूदाना दूध। पिट्ठी, भारी चीजें, मिठाइयाँ, गुड, उर्द, दही, अधिक घृत, दिन में सोना, मल-मूत्र के वेग का रोकना हानिकारक है।

पांडु कमलवाय—जीर्ण ज्वर या यकृत-रोग के समान पथ्यापथ्य पालन करना।

रक्तपित्त—ऊर्ध्वगत रक्तपित्त में रोगी का बल, मास और शक्ति का क्षय न हो, तो उपवास करावे। क्षीण होने पर पुष्टिकर ठंडा आहार दे। घी, शहद और धान की खीलें दे। पिंडखजूर, किशमिश, फालसा खाने को दे। ज्यादा रक्तस्राव हो, तो पाचन-शक्ति को देखकर पुराने चावल का भात, मूँग, मसूर, चने की दाल का पानी, परवल, गूलर, पेठे की तरकारी व मिठाई, बकरी का दूध, खजूर, अनार, सिंघाड़ा, किशमिश, आँवला, मिश्री, नारियल, तिल का तेल और पक्का खाना। रात को पूरी, तरकारी, सूजी, चने का बेसन, घी और कम मीठे पदार्थ खाने को देना। गर्म पानी ठंडा कर पीने को देना।

चरपरी और तेज़ चीजें, चबेना, दही, सरसों का तेल, लाल मिरच, नमक (अधिक), सेम, आलू, शाक, खट्टी चीजें, उर्द की दाल, पान आदि न खाय। मल-मूत्र का वेग न रोके। दतौन न करे, व्यायाम, घूमना, धूल और धूप में रहना, ओस लगने देना, रात को जागना, स्नान, सगीत, मैथुन, क्रोध, घोडे या साइकिल की सवारी त्याग दे। स्नान करने से कष्ट हो, तो गर्म पानी ठंडा होने पर किसी-किसी दिन स्नान करे।

तपेदिक—रोगी बहुत कमज़ोर न हो, तो दिन को पुराने चावल का भात, मूँग की दाल, परवल, बैंगन, गूलर, सैंजने का डठल, सफेद पेठा की तरकारी खाय। सेंधा नमक काम में लावे। रात को जौ या गेहूँ की रोटी, हलुआ, तरकारी, परावठे, पूरी, थोडा दूध, कफ ज़्यादा हो, तो भात न देकर रोटी देना। अग्नि-बल क्षीण होने पर दिन को भात या रोटी, रात

को थोड़ा दूध मिलाकर साबूदाना अथवा दिन-भर मे दो-तीन बार थोड़ा-थोड़ा साबूदाना। गर्म पानी ठंडा करके पिलाना तथा शरीर सदा वस्त्र से ढका रहना चाहिए।

ओस मे बैठना, आग मे तापना, रात को जागना, संगीत, चिल्लाकर बोलना, कसरत, घोड़ा या बाइसिकिल की सवारी करना, पैदल चलना, परिश्रम करना, हुक्का पीना, स्नान, दही, लाल मिर्च, अधिक नमक, सेम, मूली, आलू, उर्द, शाक अधिक खाना, हींग और प्याज़ आदि हानिकारक है।

खाँसी—रक्तपित्त और तपेदिक का कहा हुआ पथ्य पालन करना।

हिचकी और श्वास—रक्तपित्त के अनुसार पथ्य भोजन कराना। विशेष वायु का अनुलोमन जिसमे हो वह कराना, वायु का वेग ज्यादा हो, तो पुरानी इमली भिगोकर उसका पानी पीने को देना। मिश्री के शर्बत में नीबू मिलाकर पीने को देना। नदी या तालाब में स्नान करना। पर कफ की ज्यादती हो, तो शर्बत न पीना चाहिए। ज़रा-सा तबाकू मुख में रख लेना उत्तम है।

भारी रूखी और तेज़ चीजे, दही, लाल मिर्च आदि, रात्रि-जागरण, परिश्रम, अग्नि तापना, पेट-भर भोजन, चिंता, शोक, क्रोध आदि का सदा त्याग करे।

गला बैठ जाना—खाँसी और श्वास की तरह पथ्य पालन करे। भोजन के साथ थोड़ा-सा पुराना गुड़ और घी मिलाकर खाय।

अरुचि—हलका और रुचिकर भोजन थोड़ा-थोड़ा देना। खाने की चीज़, स्थान पात्र आदि साफ-सुथरे हों, मन जिस कारण से विकृत हो, उसका त्याग करे।

वमन—प्रथम उपवास करे। फिर मूँग भाड़ पर भुनवाकर उसे उबालकर पानी छाने, उसमे मिश्री मिला बर्फ़ और धान की खीले डालकर दे। सुगंधित पुष्प आदि सूँघे, घृणा का कोई काम न करे।

तृष्णा (प्यास)—मधुर और शीतल द्रव्य खाने को दे। उग्र-वीर्य वस्तु न खाय। शर्बतचंदन, शर्बत-नीलोफर, तरबूज, संतरा, गन्ना खाय।

मूर्च्छा, भ्रम, संन्यास—पुष्टिकर और तृप्तिकारक आहार दे। दिन को पुराने चावल का भात, मूँग मसूर, चना, उर्द की दाल, गूलर, परवल, पेठा, बैंगन, केले का फूल, मक्खन, मट्ठा, दही, मुनक्का, अनार, पक्का आम, पपीता, शरीफा, कच्चा नारियल और फल। रात को पूरी, शाक, रोटी, हलुआ, मिठाई, खुरमा, दूध, घी, मैदा, सूजी, पक्वान्न। प्रातःकाल धारोष्ण दूध और शर्बत, तिल-तेल मर्दन, बहती नदी में स्नान, सुगंध द्रव्य, स्वच्छ वायु, चाँदनी रात, गीत वाद्य आदि पथ्य हैं।

भारी और तेज चीज़ें, रूखे-खट्टे पदार्थ, भय, शोक, क्रोध, उद्वेग, मद्य-पान, रात-दिन बैठे रहना, आग तपाना, घोड़े आदि की सवारी, मल, मूत्र, निद्रा, क्षुधा आदि को रोकना, रात्रि-जागरण, मैथुन और दतौन हानिकारक हैं।

मदात्यय—वात के मदात्यय मे चिकना और गर्म भात, पूरी, खट्टी और नमकीन चीजे लाभदायक है। शीतल जल पीना, स्नान करना लाभदायक है। पैत्तिक मदात्यय में ठंडा भात चीनी मिलाया। मूँग का जूस, चाँदनीरात, शीतल वायु, चदनादि अनुलेपन, स्त्री-आलिंगन उपकारी है। कफज मदात्यय मे उपवास, गर्म पानी पीना, स्नान करना उत्तम है।

दाह-रोग—मूर्च्छा-रोग के समान पथ्यापथ्य जानना।

उन्माद—मूर्च्छा-रोग के समान पथ्यापथ्य जानना। वायु का शमन हो, शरीर स्निग्ध रहे, ऐसा आहार-विहार करना। इसके रोगी को आग और पानी से बचाना उचित है।

मृगी—हिस्टीरिया—मूर्च्छा और उन्माद-रोग की तरह पथ्यापथ्य जानना।

वातव्याधि—स्निग्ध और पुष्टकर आहारादि उपकारी है। मूर्च्छा-रोग के समान पथ्यापथ्य उपयुक्त है। गर्म पानी मे स्नान करावे। सिर्फ लकवा-रोग मे या कफ का संश्लेप होने पर या ज्वरांश होने पर स्नान बद करना चाहिए।

वातरक्त—दिन को पुराने चावल का भात, मूँग, चने की दाल, कड़ुई तरकारी, परवल, गूलर, केला, पेठा आदि। नीम का पत्ता, सफेद पुनर्नवा, परवल के पत्ते का शाक खाना चाहिए। रात को पूरी, रोटी और तरकारी, कम मीठे का कोई भी पदार्थ खाना चाहिए। जल-पान के समय भिगोया हुआ चना विशेष लाभदायक है। तरकारी घी में बनी हो।

नए चावल, भारी पदार्थ, खट्टी चीज़ें, भाँग आदि, सेम, मटर, गुड, दही, दूध, तिल, उर्द, मूली का शाक, खटाई, आलू, प्याज़, लहसन, लाल मिर्च आदि, मिठाइयाँ, कसरत, धूप मे बैठना, मल-मूत्र का वेग रोकना, आग के पास बैठना, क्रोध, दिन में सोना आदि वातरक्त में निषिद्ध हैं।

उरुस्तंभ—वातव्याधि के समान पथ्यापथ्य है। विशेष वायु का जोर न हो और कफ का शमन हो ऐसी वस्तु खाय। मूँग, चना, मसूर की दाल, छुहारा, किशमिश, खजूर खाय। स्नान कम होना चाहिए। नदी-स्नान स्रोत मे प्रतिकूल होकर करे।

आमवात—उपर्युक्त पथ्यापथ्य ही रक्खे। स्नान बिलकुल न किया जाय। रुई और फ़लालेन से दर्द-स्थान को बाँधना चाहिए। ज्वर हो, तो भात बद कर रोटी, साबूदाना आदि देना चाहिए।

शूल—प्रबल पीडा की अवस्था मे अन्न बिलकुल बद कर दिया जाय। दिन को दूध-साबूदाना, रात को भी दूध। पित्तज शूल में जो मिचलाना, ज्वर, दाह अधिक प्यास आदि हो, तो शहद मिलाकर जो की लपसी देना। आराम होने पर पुराने चावल का भात, खिचडी, परवल, बैंगन, केला आदि, आँवला, कसेरू, मुनक्का, पपीता, नारियल का पानी, हींग आदि खाना। तरकारी कम खाना। पेठे का मुरब्बा या आँवले का मुरब्बा खाना। भोजन के समय पानी न देकर भोजन के दो घटे बाद देना। सहने पर स्नान।

भारी चीज़, अधिक भोजन, सब प्रकार की दाल-शाक, दही, रूखी चीज़, खटाई, लाल

मिर्च, शराब, धूप, परिश्रम, मैथुन, शोक, क्रोध, मल-मूत्र के वेग को रोकना, रात्रि-जागरण त्यागना चाहिए।

उदावर्त आनाह (अफारा)—पुराने चावल का गरम-गरम भात घी मिलाकर खाना, शूलरोगोक्त तरकारी तथा दूध पीना चाहिए। मिश्री का शर्बत, कच्चे नारियल का पानी, पका पपीता, शरीफा, गन्ना, बेदाना, अनार आदि खाना। भूख न खुली हो, तो दूध-साबूदाना, जौ के आटे की लपसी, धान की खील देना, सहने पर ठंडे या गरम पानी से स्नान।

गुल्म-रोग—वायु को शमन करनेवाला आहार-विहार करना चाहिए। दिन को बारीक पुराने चावल का भात, घी, शूलरोगोक्त तरकारी, रात को पूरी, रोटी, हलुआ, दूध। कच्चे नारियल का पानी, मिश्री का शर्बत, पपीता, पका आम, शरीफा। गर्म पानी से स्नान करना तथा पेट साफ रखना, इस रोग में विशेष उपकारी है।

अधिक मिश्री, घूमना, रात्रि-जागरण, धूप, मैथुन और वात-वर्धक आहार-विहार त्याग देना चाहिए।

हृद्रोग—स्निग्ध-पुष्टिकर आहार, ज्वर न हो, तो वातव्याधि की तरह आहार-विहार, पथ्य, छाती के दर्द में रक्तपित्त और कासरोगोक्त पथ्य लेना चाहिए।

रूक्ष या वायु-वर्धक द्रव्य भोजन, उपवास, परिश्रम, रात्रि-जागरण, अग्नि या धूप में बैठना और मैथुन हानिकारक है।

मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, शुक्राक पथरी—स्निग्ध-पुष्टिकर आहार, दिन को पुराने चावल का भात, परवल, गूलर, केला, लौकी, तोरई की तरकारी, कागज़ी नीबू, रात को पूरी, रोटी, हलुआ, दूध (थोड़ा मीठा डालकर), जल-पान। जल-पान में मक्खन, मिश्री, तरबूज़, पका मीठा फल आदि। भोजन सहजे पर सवेरे कच्चे दूध में पानी मिलाकर लस्सी बनाकर पीना। नदी या तालाब में स्नान।

रूक्ष पदार्थ, भारी पदार्थ, खटाई, दही, गुड़, उर्द की दाल, लाल मिर्च, शाक, मैथुन, घोड़ा, साइकिल या ऊँट की सवारी, कसरत, मल-मूत्र का वेग रोकना, तेज़ शराब पीना, चिंता, रात्रि-जागरण इस रोग में हानिकर है।

प्रमेह, मधुमेह, शुक्रमेह—दिन को पुराने चावल का भात, मूँग, मसूर, चने की दाल, परवल, गूलर, सैजन का डंठल, केले का फूल, कच्चा केला आदि की तरकारी, कागज़ी नीबू, रात को रोटी-पूरी, तरकारी, थोड़ा दूध (कम मीठा मिलाकर) कड़ुआ और कसैला रस फायदेमंद है। जल-पान में गन्ना, सिंघाड़ा किशमिश, बादाम, खजूर, अनार, भीगा चना, थोड़े मीठे का मोहनभोग आदि आहार करना, सहन पर स्नान।

अधिक दूध, मट्ठा, लाल मिर्च, शाक, खटाई, उर्द की दाल, दही, गुड़, लौकी तथा अन्य कफ-वर्धक वस्तु, शराब, मैथुन, दिन में सोना, रात में जागना, धूप में फिरना, मूत्र-वेग-धारण धूम्र-पान हानिकर है।

बहुमूत्र—मधुमेह तथा मेद रोग—दिन को पुराना चावल, मूँग, मसूर, चने की दाल का जूस, गूलर, नेनुआ, कच्चा केला, परवल, सैंजन की तरकारी, मक्खन निकाला दूध पीना चाहिए। आँवला, जामुन, कसेरू, पक्का केला, कागज़ी नीबू, पुरानी शराब। रूक्ष क्रिया, घोड़ा-हाथी की सवारी, घूमना, कसरत लाभदायक हैं। पीड़ा की प्रबल अवस्था में दिन को भात न खाकर जौ के आटे का रोटी या लपसी खाना, या पूर्वोक्त दूध पीना। गर्म पानी ठंडाकर पीना चाहिए।

कफजनक और भारी पदार्थ, दही, दूध, मीठे पदार्थ, काशीफल, घीया, उर्द की दाल, खट्टा, लाल मिर्च, मिठाई, तीव्र मदिरा, रात को जागना, दिन में सोना, मैथुन, तथा आलस्य हानिकारक हैं।

नपुंसकता, वीर्य का पतलापन तथा दुबलापन—सब प्रकार का पुष्टिकर आहार, पुराने चावल का भात, मूँग, मसूर, चना, आलू, परवल, गूलर, बैंगन, गोभी, शलजम, गाजर, पकवान, घृत, रात को पूरी, रोटी, दूध, मीठा। जल-पान में हलुआ, खुरमा, बादाम, पिस्ता, किशमिश, खजूर, आम, कटहल और पपीता आदि उपकारी है। अग्नि-बल विचारकर सब प्रकार का पुष्टिकर भोजन देना। सहने पर स्नान।

अधिक लवण, लाल मिर्च, खट्टी चीज़ें, आग और धूप का बचाव, रात्रि-जागरण, अधिक मद्य-पान, मैथुन, अधिक परिश्रम।

उदर-रोग तथा शोथ—पीड़ा प्रबल हो, तो दूध, साबूदाना, कुछ ठीक हो, तो दिन को पुराने चावल का भात, मूँग की दाल का पानी, परवल, बैंगन, गूलर, ज़मींकंद, सैंजना, छोटी मूली, अनन्नास, अदरख आदि की तरकारी, थोड़ा नमक, रात को दूध, साबूदाना, अधिक भूख हो, तो एक-दो पतली रोटी खाने को देना। पानी गरम पीना उचित है।

पिट्ठी आदि भारी चीज़, तिल, नमक, दिन में सोना और परिश्रम त्याग दे।

विद्रधि और व्रण—दिन को पुराने चावल का भात, मूँग और मसूर की दाल, परवल, बैंगन, गूलर, कच्चा केला, सैंजन का डंठल, पकवान, रात को रोटी-तरकारी, गर्म पानी ठंडा करके पीना और कभी-कभी नहाना।

सब प्रकार के कफजनक भारी पदार्थ, भोजन, दूध, दही, पिट्ठी, मिठाइयाँ, दिन में सोना, रात का जागना, स्नान, मैथुन, घूमना, व्यायाम अनिष्ट हैं।

उपदंश और बद—दिन को पुराने चावल का भात और मूँग, मसूर, अरहर, चने की दाल, [illegible], गूलर, बैंगन, पेठा आदि की घी से बनी तरकारी। बेसन की रोटी, घी। ज्वर अधिक हो, तो भात बंद करके रोटी या साबूदाना देना।

कुष्ठ और श्वित्र

वात-रक्त रोग का जो पथ्यापथ्य है वही कुष्ट रोग में भी जानना। यह रोग छूत से उड़कर लगता है, इसलिये रोगी के वस्त्र, बिछौना, भोजन, श्वास आदि से सुरक्षित रहना चाहिए।

शीत पित्त—कड़वी चीजें, कच्ची हल्दी और नीम का पत्ता खाना उपकारी है। इसके अतिरिक्त वात-रक्त में जो आहार-विहार है, वह इस रोग मे भी समझना। गर्म पानी से स्नान और गर्म वस्त्र से शरीर को ढॉपे रखना उपकारी है।

अम्लपित्त—शूल रोगोक्त पथ्यापथ्य ही इस रोग मे उपकारी है। वातज अम्लपित्त में चीनी और शहदके साथ धान की खीलो का चूर्ण खाना चाहिए। जौ और गेहूँ की लपसी भी लाभदायक है।

सब प्रकार के भारी पदार्थ, अधिक नमक, मिठाई, चरपरे और खट्टे रस तथा तेज चीजों का खाना, दिन मे सोना रात को जागना, मैथुन और मद्यपान निषेध है।

विसर्प विस्फोटक—वात-रक्त और कुष्ठ-रोग के अनुसार पथ्यापथ्य जानना।

चेचक—प्रथम साबूदाना, दूध, और उसके बाद ज्वरादि के अनुसार पथ्यापथ्य। परवल, बैंगन, कच्चा केला, गूलर आदि की तरकारी, अनार, किशमिश, नारंगी, अनन्नास आदि। बदन पर मोटा कपड़ा रखना, घर हवादार और बिछौना साफ़ रखना।

गर्म चीज़ें, भारी पदार्थ, तेल मलना, हवा लगना निषिद्ध है। यह रोग उड़कर लगनेवाला है।

नासा-रोग—पीनस, जुकाम आदि रोगो मे (कफशामक) द्रव्य देना, थोड़ा भी कफ हो तो भात न देकर रोटी देना, मूँग की धुली दाल, रूखा गेहूँ का फुलका प्राय समस्त नासा-रोगों में हितकारी है। पक जाने आदि पर रक्तपित्त के समान पथ्य देना। ज्वर हो तो भात न देना।

नेत्र-रोग—अभिष्यंद-रोग मे हल्का, रूक्ष और कफ-नाशक द्रव्य भोजन करना, ज्वरादि हो तो लंघन करना, मास, शाक, उर्द, दही, और भारी चीजें खाना, दिन में सोना, पढना, स्त्री-प्रसंग, धूप मे फिरना हानिकारक है। दृष्टि-दौर्बल्य और रतौंधी-रोग मे पुष्टिकर, स्निग्ध और वायु-नाशक द्रव्य भोजन करना। रूक्ष पदार्थ, व्यायाम, तेज़ रोशनी, परिश्रम आदि से बचना।

शिरोरोग—कफज, क्रिमिज और त्रिदोषज शिरोरोग के सिवा सभी शिरोरोगो मे वायु प्रधान है। इसलिये वातव्याधि कथित पथ्यापथ्य उन सब रोगो मे विचार कर देना। मधुर आहार, स्नान, दिन में सोना, भारी पदार्थों का सेवन हानिकर है। क्रिमिज शिरोरोग में क्रिमि-रोग की तरह पथ्यापथ्य पालन करना।

स्त्री रोग—प्रदर-रोग मे दिन को पुराने चावल का भात, मूँग, मसूर, चने की दाल, केले का फूल कच्चा केला, करेला, गूलर, परवल, पेठा आदि की तरकारी। दो-तीन दिन के अंतर में सहने पर स्नान। ज्वरांश हो, तो केवल दूध का पथ्य।

कफजनक द्रव्य, मिठाई, लाल मिर्च, अधिक नमक, दूध, आग मे तापना, धूप मे फिरना, ओस में बैठना, दिन मे सोना, रात को जागना, अधिक परिश्रम, घूमना, शराब, चढ़ना-

उतरना, विशेष मैथुन, दस्त-पेशाब रोकना, संगीत या ज़ोर से बोलना हानिकारक है। मासिक धर्म न हो, तो स्निग्ध क्रिया करे। उर्द, तिल, दही, काँजी आदि खाने से मासिक धर्म ठीक होता है।

गर्भिणी—गर्भावस्था में पुष्टिकर और रुचिकर आहार करना उचित है। अधिक परिश्रम करना या एकदम परिश्रम छोड़ बैठना उचित नहीं। साहस के या ज़ोर करना पड़े या पेड़ू पर दबाव हो—ऐसे काम नहीं करना चाहिए। पैदल या तेज़ सवारी से अधिक दूर नहीं जाना चाहिए। सदा प्रसन्न-चित्त रहना उचित है, भय, शोक, चिंता और रात्रिजागरण त्याग देना चाहिए। उपवास, जागरण, दिन में सोना, तापना, मैथुन, बोझ उठाना, सख़्त जगह पर सोना, ऊँचे पर चढ़ना हानिकर है।

गर्भावस्था में जो रोग हो, उसी के मुताबिक़ पथ्य देना चाहिए, किंतु उपवासवाले रोगों में लघु आहार देना चाहिए।

प्रसूति-रोग—रोग विशेष के अनुसार पथ्यापथ्य देना। साधारणतया पुराने चावल का भात, मसूर, उर्द, बैंगन, मूली, गूलर, परवल, कच्चे केले की तरकारी और अनार फ़ायदेमंद है।

तेज़ और भारी पदार्थ, अग्नि-संताप, परिश्रम, ठंढ और मैथुन प्रसूति के लिये हानिकर हैं। प्रसव के बाद तीन-चार मास तक प्रसूता को सावधानी से रखना चाहिए।

स्तन-रोग—विद्रधि-रोग के समान या प्रसूति-रोग के समान पथ्यापथ्य।

बाल-रोग—दूध पीनेवाले बच्चे को जो रोग हो, उसी रोग के अनुसार पथ्यापथ्य उसकी माता को देना।

प्रकरण ६

परिचारक

जो पुरुष या स्त्री रोगी के पास उसे दवा, पथ्य आदि देने और उसकी हर तरह की सेवा करने को हर समय हाज़िर रहे, उसे परिचारक कहते हैं।

परिचारक कोई घर का आत्मीय बंधु, जैसे माता, पिता, भाई और स्त्री-पुत्र आदि अथवा भक्तिमान् शिष्य या नौकर होना चाहिए। नए, मूर्ख और टके के बदले काम करनेवाले परिचारक जहाँ तक बने न रखना चाहिए।

जहाँ तक बने परिचारक का भार स्त्री को देना चाहिए। रोगी की धर्मपत्नी और माता सर्वश्रेष्ठ परिचारक हैं। और स्त्री रोगी के लिये माता और पिता सर्वश्रेष्ठ परिचारक हैं। पुरुष की अपेक्षा स्त्री का स्वभाव कोमल, मधुर और प्रेम-पूर्ण दयार्द्र होता है, इसलिये वह रोगी के लिये पुरुष की अपेक्षा अधिक आत्मत्याग कर सकती है।

अँगरेज़ी अस्पतालों में परिचारिका स्त्रियाँ होती हैं, जो नर्स कहाती हैं, इन्हें रोगी-सेवा का काम सिखाने के बड़े-बड़े स्कूल हैं, जहाँ इन्हें वर्षों यह विद्या सीखनी पड़ती है। ये इतनी योग्य और चतुर होती हैं कि इन्हें देखकर, इनकी बात सुनकर ही रोगी का आधा रोग उड़ जाता है।

परिचारक के गुण

(१) रोगी को सच्चे मन से प्यार करनेवाला हो। नहीं तो मन लगाकर रोगी की सब तरह की सेवा न करेगा। (२) रोगी की रक्षा में तत्पर हो। नहीं तो बदपरहेज़ी से रोगी को न रोक सकेगा। इसके सिवा सन्निपात की बेहोशी में या दस्त-पेशाब की हाजत में रोगी चाहे जब शीत हवा में उठ खड़ा होगा और नुकसान उठावेगा। (३) रोगी से घृणा न करनेवाला हो। नहीं तो उसके मल-मूत्र, थूक आदि न उठावेगा। ऐसी दशा में रोगी और भी मैला और घृणित हो जायगा। (४) बलवान् हो, नहीं तो दिन-रात जागने से ही फिर तुरंत उसकी एक खाट रोगी की खाट के पास पड़ने की नौबत आएगी। न वह वक़्त-बे-वक़्त दौड़-धूप कर सकेगा। (५) हँसमुख हो। जिसे देखते ही रोगी के मन में उत्साह आ जाय, वह अपने रोग की भयंकरता, दुःख की अकुलाहट सबको भूल जाय। नहीं तो उसकी मोहर्रमी सूरत देखते ही रोगी और उदास हो जायगा। (६) धैर्यवान् हो। रोग-जैसे भयंकर शत्रु के साथ युद्ध करने के लिये बड़े धैर्यवान् की आवश्यकता है। रोगी की दशा चाहे बिगड़ती ही चली जाय, पर शांति के साथ चिकित्सक के आज्ञानुसार काम किए

चला जाय। (७) परिचारक को आलसी भी न होना चाहिए, जैसे साँप को आँख से आँख मिलाकर खिलाडी खिलाते हैं, उसी तरह भयंकर रोग मे रोग से आँख लडाकर लडना पडता है, जो ज़रा चूका कि गया। कब पसीना पोछा जाय, कब दवा दी जाय, कब क्या किया जाय, इसके लिये समय की बडी भारी पाबंदी चाहिए। जो कहीं अजगर मिल गए, तो बेडा पार है। रोगी दस्त को चिल्लाता ही रहे, इधर जो पीनक आई, तो बिना कान में बाँस चलाए, आँख खुलेगी ही नहीं। (८) परिचारक को पवित्र रहना भी आवश्यक है। जिसमे यह गुण न होगा, वह रोगी को कैसे पवित्र रक्खेगा? उत्तम दवा को अपने मैले-गदे हाथों से मैली करेगा।

सबसे अधिक भयंकर मूर्ख परिचारक हैं। जो काम तो करे भले के, पर परिणाम हो बुरा। जैसे आपने किसी बदर की कहानी सुनी होगी, जिसने मालिक के मुँह पर से मक्खी मारने को पत्थर दे मारा था। सच है "नादान दोस्त अच्छा नहीं, दाना दुश्मन अच्छा।" ऐसे मूर्ख परिचारक चिकित्सक और घरवालों से छिपाकर रोगी को कुपथ्य करा देते हैं, जिससे कभी-कभी तो रोगी का प्राण नाश ही हो जाता है।

परिचारक के इतने काम है—

(१) वैद्य को बुलाना और रोगी की हर बात की सूचना देना। (२) यथाविधि औषध रोगी को पिलाना। (३) पथ्य-पानी ठीक-ठीक रोगी को पहुँचाना। (४) रोगी की दशा को ध्यान से देखते रहना। और किसी भी परिवर्तन को कारण के साथ वैद्य को बताना। (५) नाडी, मूत्र, मल, ताप आदि की परीक्षा करना, और सावधानी से लिखते रहना। (६) रोगी की सफाई का प्रबंध। (७) मनोरजन का प्रयत्न। (८) भयंकर दशाओं को पहचानना और वैद्य तथा अन्यों को सावधान कर देना। (९) वक्त-बेवक्त वैद्य के न मिलने या उसके पहुँचने तक आवश्यक कार्यवाही करना। (१०) काम मे आनेवाले सामानों को प्रथम से ही सग्रह कर रखना।

इनमें से प्रथम के ३ प्रकरणों को तो हम पीछे बता आए हैं। इससे आगे का हाल लिखते हैं—

रोगी की दशा को ध्यान से देखते रहना—यह काम बडे कसाले, समझदारी और ज़िम्मेदारी का है। रोगी मे क्या लक्षण आरोग्य के है, क्या लक्षण महत्त्व के हैं, कौन लक्षण लापरवाही से उत्पन्न हुए है, वह लापरवाही किस बात मे हुई, इन सब बातो के ऊपर जान के वारे-न्यारे हो जाते हैं। बहुधा लोग इस बात को नहीं समझते कि रोगी का बिगाड-सुधार कैसे पहचाना जाता है। इससे वे वैद्य की बात का ठीक-ठीक जवाब नहीं दे सकते। कभी-कभी कोई साहसी रोगी जब तक बिल्कुल विवश नही हो जाता, खाट पर नहीं गिरता। पर लोग उस पर रोग का अकस्मात् आक्रमण समझते है। यह कोई नही देखता कि वह कब से खोखला हो रहा था। कभी-कभी रोगी धीरे-धीरे सुधर जाता है। पर निर्बलता विशेष होने

से उठ-बैठ नहीं सकता। वायु भटकने से या अन्य वेगों से रोगी थक जाता है। जब पीछे थकान और पस्ती आती है, तो सिवा समझदार परिचारक के और कोई नहीं समझ सकता कि अब रोगी प्रकृतिस्थ है।

सच बोलना सहज काम नहीं है। जो लोग झूठे नहीं हैं, वे भी प्राय झूठ बोला करते हैं, और मज़ा यह कि वे यह नहीं जानते कि वे झूठ बोल रहे हैं। उनके सामने कोई बात हो रही हो, तो वह उसका सच्चा उत्तर देने के स्थान मे मनमाना देंगे या अधूरा देंगे अथवा कह देंगे कि मुझे मालूम नहीं है। असल बात यह है कि उन्होने उस घटना को ध्यान से नहीं देखा, जब वह घटना हो रही थी, तब उनका ध्यान और कहीं था, जिस परिचारक में यह मन चले पनकी बीमारी हो, वह रोगी की जान का गाहक होता है, वह बैठा तो रहता है रोगी के पास, पर मन उसका लाल मुँह के बंदर की तरह दुनिया मे ऊधम मचाता रहता है, ऐसी दशा मे विना कान पर ढोल बजाए तो वह सुनने से रहा। रोगी की मिनिन-मिनिन तो एक ओर रही। दूसरे एक और झक्की आदमी होते हैं, जो सेर को मन, राई को पहाड बना देते है, विना लंबी-चौड़ी भूमिका और नमक-मिर्च के उनके मुँह से बात तक नहीं निकलती। कभी-कभी अपनी चोरी छिपाने को रोगी के संबंध मे चिकित्सक को बहका देते हैं। जैसे किसी को नींद आ गई, पड़कर जो चित हुए, तो पहर दिन चढ़े उठे। रात-भर रोगी चिल्लाया किया, अंत मे स्वयं उठकर पेशाब करने गया, मनमाना पानी पिया, और क्रोध किया, छटपटाया, अब चिकित्सक ने पूछा—कहो, रात को रोगी को नींद कैसी आई? तो "आप मरे जग प्रलय" की मसल पर आपने फ़ौरन् कहा—"जी हाँ, ख़ूब नींद आई, अभी उठा है।" इसके अनंतर चिकित्सक ने रोगी को देखा, नाडी बेचैन है, आँखे चढ़ी हैं हरारत है इत्यादि। तो बस अनर्थ हो गया, और रोगी आराम होने में के बजाय १५ दिन पीछे फेक दिया गया।

भूख कैसी है? या कितना खाया? यह जानने की अपेक्षा यह जानना ठीक है कि क्या खाया? क्योकि बहुत खाने या कम खाने का आधार भूख पर नहीं है, पसंद पर है। भाती हुई वस्तु और की अपेक्षा अधिक खाई जाती है। कितनो ही बार रोगी पूछने पर कहता है कि "मुझे भूख नहीं है।" पर इसके कारण कई है? रसोई अच्छी नहीं बनी या उसे पथ्य से अरुचि है, या बेवक्त खाया था, या भूख कम है, इन चारो कारणों को रोगी 'भूख नहीं है' इस एक वाक्य मे प्रकट करता है, पर वास्तव में ये चारो कारण भिन्न-भिन्न हैं, और एक ही उपाय से दूर नहीं हो सकते। पर इन चारो की खोज करने ही से इनकी बारीकी का पता चलेगा।

कुछ लोगों का ख़याल है कि परचारक का काम यही है कि रोगी को शारीरिक श्रम से बचावे, पर मैं यह कहता हूँ कि शारीरिक श्रम तो उससे कराना भी चाहिए, पर मानसिक श्रम से सर्वथा बचावे और देखे कि उसके शरीर में जो अचानक फ़र्क़ पडा है, उनका कारण मानसिक परिश्रम तो नहीं है।

बच्चो की सँभाल में और भी विचार और मानसिक शक्ति ख़र्च करनी पडती है। वे

थोड़ा सुधरने पर खेलने-खाने लगते हैं, ऐसी दशा में उसे मा-बाप ढीला छोड़ देते हैं, परिणाम यह होता है कि आराम हुए बच्चे मर जाते हैं।

परिचारक को गाँठ की अक्ल होनी चाहिए। रोगी ने माँगा पानी, बस, भर गिलास सामने धर दिया। माँगा भोजन, भर कटोरा हाथ दिया। क्या यह दिल्लगी नहीं है? एक तरफ़ तो यह दिल्लगी है और दूसरी तरफ भारी भूल भी है। रोगी कितना पानी पीवेगा? कैसा भोजन करेगा? किस तरह पिएगा—यह बात तो उसे अपनी बुद्धि से तोलना चाहिए।

सौ बातों की बात यह है कि परिचारक को रोगी का मन वश में कर लेना चाहिए। रोगी को अन्न न भावे और वह दिन-दिन निर्बल होता जाय, तो परिचारक को उसे किसी तरह कुछ खिलाने की युक्ति सूझनी ही चाहिए। कोई बिना खिड़की खोले खाना नहीं पसंद करता। कोई बंद मकान में नहीं खा सकता। कोई बिना हाथ-मुँह धोए भोजन नहीं करता। किसी को बिना गप-शप टुकड़ा नहीं उतरता, इन सबको सिखाने की पाठशाला कहीं नहीं है, ऐसी बातें स्वयं ही परिचारक को सूझनी चाहिए। सारांश यह कि ध्यान-पूर्वक एकचित्त होकर काम किया जाय, तो हज़ारों तरकीबों से हज़ारों के प्राण बचाए जा सकते हैं।

बहुधा ऐसा होता है कि एक महीने प्रथम रोगी ने कह दिया कि उसके दस्त-पेशाब के समय कोई उसके पास न रहे। अब दिन-दिन वह निर्बल होता गया, उठने की शक्ति न रही। पर परिचारक इसी आज्ञा का पालन कर रहे हैं। ऐसी दशा में रोगी चक्कर खाकर गिर पड़े, तो यह हत्या किसके सिर है? समझदार को चाहिए कि उसकी संदिग्ध आज्ञाओं को न माने, और किसी-न-किसी बहाने से उसके आस-पास ही बना रहे।

परिचारक में दो अवगुण कभी न होने चाहिए—(१) इस बात को न देखना कि रोगी के आस-पास क्या हो रहा है। (२) मनमाने अनुमान से काम लेना, इन दोनों दुर्गुणों से बचने में जो सदा सतर्क रहेगा, वह सैकड़ों परिचारक के सद्गुण सीख जायगा।

प्रकरण ७

आवश्यकीय ज्ञान

इस प्रकरण मे उन बातों का साधारण ज्ञान बताया जाता है, जिनको जानना रोगी की सेवा करनेवालो को ज़रूरी है।

नाडी

नाडी पुरुष की दाहने हाथ की और स्त्री की बाएँ हाथ की देखी जाती है, क्योकि पुरुष मे दाहने और स्त्री मे बाएँ अंग की प्रधानता है *।

नाडी देखने की विधि यह है कि अँगूठे की जड मे ३ उँगली रखकर देखना चाहिए।

इसकी परीक्षा कठिनतर है, बडे-बडे अनुभवी वैद्यो को भी नहीं आती, पर हम आवश्यक तथा साधारण ज्ञान लिखते है—

तदुरुस्त मनुष्य की नाडी हल्की, साधारण और समान गति से चलती है।

तंदुरुस्ती की दशा में उम्र के हिसाब से नाडी की गति इस प्रकार होती है—

आयु	नाडी की चाल १ मिनट मे				
तुरत का जन्मा बालक—	१४०	से	१२०	बार	तक
१ वर्ष तक का	१३०	से	११५	,,	,,
२ ,, ,,	११५	,,	१०५	,,	,,
३ ,, ,,	१०५	,,	९५	,,	,,
४ से ७ तक . .	१००	,,	९०	,,	,,
८ ,, १४ ,, .	९०	,,	८०	,,	,,
१५ ,, २१ ,, . .	८०	,,	७५	,,	,,
२२ ,, ५० ,,	७५	,,	७०	,,	,,

बुढापे में ७० से कम चला करती है।

यह एक मोटा-सा हिसाब है। एक ही उम्र के बलवान् और दुर्बल व्यक्ति की नाडी मे थोडा अंतर हो सकता है। पुरुष और स्त्रियों की नाडी मे भी थोडा भेद होता है। इससे

* पैर के टखनों, कठ, नाक और लिगेंद्रिय में भी नाडी ज्ञान होता है, जब मुमूर्षावस्था में हाथ की नाडी साफ़ न दीखे, तो इन नाडियों को टटोलना चाहिए।

असमान हो, तो ज्वर समझना चाहिए। पर स्मरण रहे, जिसमें बड़े पुरुष को ज्वर रहता है, उतनी तेज़ी में बच्चे स्वस्थ रहते हैं।

ज्वर में—वायु के दोष से साँप की तरह लहराती हुई, पित्त के दोष से उछलती हुई तेज़, और कफ में धीमी तथा भारी चलती है।

विष खाने पर, मूर्च्छा में, सन्निपात में—यदि नाड़ी की गति १२० से ऊँची हो जाय, तो चिंता की बात समझना। उसी रोग में रोगी की मृत्यु हो सकती है। ज़ाहिर शरीर कम गर्म हो और नाड़ी तेज़ हो, तब भी भयानक समझना चाहिए। सन्निपात में नाड़ी असम, अस्थिर और चंचल चलती है। कभी-कभी चक्कर करती-सी दीखती है।

मृत्यु-सूचक नाड़ी—(क) ज्वर में पहले नाड़ी साँप की तरह लहराकर मेंढक की तरह फुदके, पीछे देखते-ही-देखते खो जाय, तो जानना चाहिए कि सन्निपात हो गया। यह क्रम जितना ही उलट-फेर से हो, उतना हो रोगी को ख़तरे में जानना। (ख) नाड़ी कभी धीरे, कभी ढीली, कभी गिरती-पड़ती, कभी व्याकुल व्यर्थ भटकती हुई, कभी सूक्ष्म, कभी गायब, कभी अँगूठे की जड़ से दूर, कभी पास दीखकर खो जाय, फिर धीरे-धीरे दौड़े, तो समझिए, रोगी का बचना असंभव है। (ग) जिसके शरीर में कहीं सूजन न हो, पर नाड़ी थोड़ी देर चलकर फिर धीमी हो जाय, तो वह रोगी ७-८ दिन से अधिक नहीं जिएगा। (घ) जिसकी नाड़ी अँगूठे की जड़ से आधे जौ के बराबर खसक जाय, तो उसकी मृत्यु तीन दिन में निश्चय जानना। (ङ) यदि किसी की मध्यमा (बीच की उँगली) और अनामिका (कनी के पास की उँगली) के नीचे नाड़ी मालूम न होकर केवल तर्जनी (अँगूठे के पासवाली उँगली) के नीचे मालूम हो, तो जानना कि इसकी जीवन के दिन रह गए हैं। (च) सन्निपात में जिसका शरीर अत्यंत गर्म और नाड़ी रुककर सा[illegible] १२ प्रहर से अधिक न जिएगा। (छ) नाड़ी भौंरे की तरह दो-तीन-चार [illegible] रोगी की मृत्यु हो जाय, और बार-बार ऐसा ही हो, तो समझ लीजिए कि सूर्यास्त तक देर पर चलती हो, [illegible]गी। (ज) जिसकी नाड़ी अँगूठे की जड़ से खसककर पीछे थोड़ी तक उसका जीवन है। [illegible] कलेजे में जलन-जलन पुकारता हो, तो उसी जलन को शांति

यह नाड़ी-ज्ञान अत्यंत [illegible] सकती है। ध्यानस्थ होकर, एकाग्र मन से, अभ्यास से उसकी सूक्ष्म गति पहचानी जा चाहिए। [illegible] ठहरकर नाड़ी देखकर मत निश्चय करना

थर्मामीटर

जो लोग नाड़ी-परीक्षा नहीं कर सकते, उनके पास थर्मामीटर [illegible] सबने देखा होगा। यह एक काँच की नली है, जिसके नीचे के भाग में पारा रहता है, और [illegible] निशान की लकीरें बनी रहती हैं। ये नाप के निशान हैं। बड़ी लकीरें डिग्री कहलाती हैं। हर द[illegible]

लकीरों के बीच में चार छोटी लकीरें बनाकर ५ बराबर फ़ासले बनाए गए हैं। ऐसे प्रत्येक फासले से २ दशमलव या डिग्री का पाँचवाँ भाग प्रकट होता है। उससे गर्मी इस तरह नापी जाती है—

बगल में यदि थर्मामीटर लगाया जाय, तो बगल का पसीना पोंछकर ऐसे ढंग से उसे बगल में लगाओ कि पारेवाला भाग अच्छी तरह दबा रहे। दाहनी बगल में लगाओ और जब तक थर्मामीटर लगा रहे, रोगी को चुपचाप पड़े रहने को कह दो। जितने समय का थर्मामीटर हो, उतने समय के बीतने पर निकालकर गर्मी देख लो।

मुँह में लगाने की तरकीब यह है कि पारेवाला भाग ज़बान के नीचे दबाया जाय और होंठ बंद रक्खे जायँ। बगल की अपेक्षा मुँह में एक डिग्री गर्मी ज़्यादा होती है। ५ डिग्री से ऊपर गर्मी होने से रोगी के प्राण-नाश की संभावना होती है।

अरिष्ट-ज्ञान

प्राचीन सिद्धर्षियों ने अत्यंत गहन अरिष्ट-लक्षण बताए हैं, जिनके द्वारा पहले ही से रोगी की मृत्यु का ज्ञान हो जाता है। हम संक्षेप में ऐसे कुछ लक्षण लिखते हैं—(१) जिस रोगी के केश-रोम बिना तेल लगाए ही ऐसे हो जायँ, मानो तेल-मालिश की गई है, वह रोगी बच नहीं सकेगा। (२) जिसके नेत्र चंचल, स्तब्ध अथवा गढ़े में धस जायँ, या बाहर निकल पड़ें या टेढ़े हो जायँ या फैल जायँ, सिकुड़ जायँ, जिसकी भौं सिकुड़ जाय, जिसकी दृष्टि उद्भ्रांत [illegible] जाय, कम दीखने लगे या अंधा हो जाय, नेवले के समान जिसके नेत्र हो जायँ या [illegible]तर के समान हो जायँ, जिनमें से पानी बहने लगे, पलक के बाल झड़ जायँ, [illegible]सकी नाक [illegible] जाय, सिकुड़ जाय या टेढ़ी हो जाय, अथवा नाक में फुंसियाँ [illegible] जायँ, पैरों से [illegible] का रंग होकर ऊपर शरीर पर फैले, जिसके होंठ फैल जायँ, अर्थात् मुँह बंद न हो [illegible], हो[illegible] पके हुए जामन के समान हो जाय, जिसके दाँत [illegible], काले, लाल और मैल [illegible]ली, सुन्न जायँ, अचानक बिना कारण जिसके दाँत गिर जायँ, जिसकी जीभ टेढ़ी, [illegible] जाय, जिसकी और लिपी-सी हो जाय, वह रोगी अवश्य मरेगा। (३) जिसकी [illegible] दिया जाय, तो उसे पीठ टूट जाय, अर्थात् जो बैठ न सके, जिसके मुँह में भोजन [illegible] हो हल्के या भारी हो चबा न सके, वह रोगी मरेगा ही। (४) जिसके अंग बिना लकड़ी के समान हो गई या जायँ, जिसके रोम-कूपों से ख़ून निकलता हो, जिसकी [illegible]युक्त सब रोगी १५ दिन से अधिक सिकुड़ गई हो, जिसके अंडकोश बिल्कुल लटक [illegible] कारण दूज के चंद्रमा के समान टेढ़ी नहीं जी सकते। (५) जिस पुरुष के [illegible]रीर पर स्नान करने या जल में तैरने के समय रेखाएँ पड़ जायँ, अथवा जिस प[illegible] अलग दीखे, उनकी ६ मास की आयु शेष समझना। पानी कमल के पत्ते की [illegible] की नसें हरी हो जायँ, और रोम-कूप सिकुड़ जायँ, और वह खट्टी (६) जिसके [illegible]र की नसें [illegible] (७) जिसके मुख चीज़ [illegible] रुचि करे, तो उसे मृत्यु के मुख में ही समझना चाहिए।

और सिर पर से सूखे गोबर के समान चूर्ण झरे, वह अधिक-से-अधिक एक महीने ज़िंदा रहेगा। (८) जिसकी बाईं आँख भीतर धस गई हो, जीभ काली हो गई हो, मुँह में से सड़ी दुर्गंध आती हो, तथा जिसके सिर पर पक्षी मँडराने लगें, उसका इलाज व्यर्थ है। वह मरे के ही समान है। (९) स्नान करने के बाद फ़ौरन् ही जिसकी छाती का पानी सूख जाय, और सारा शरीर बड़ी देर तक गीला रहे, वह १५ दिन के भीतर ही मर जायगा। (१०) जिसके शरीर का रंग बारंबार बदले, कभी पुष्ट और कभी दुर्बल दीखे, कभी ठंड लगे, कभी गर्मी लगे, चटकाने से जिसकी उँगलियाँ न चटखें, जिसकी छींकने और खाँसने की आवाज़ अद्भुत हो जाय, जिसका श्वास लंबा या बहुत छोटा हो जाय, शरीर में दुर्गंध आए, अथवा शरीर में सुगंध आए, जिसके घाव, वस्त्र आदि में अत्यंत बढ़िया सुगंध आए, ऐसे रोगी की आयु १ वर्ष ही जाननी चाहिए। (११) जिसकी छाती गर्म और पेट अत्यंत ठंडा रहे, दस्त जिसका फटा हुआ हो, प्यास ज्यादा हो, उसे मृतक ही समझना चाहिए। (१२) जिसका मूत्र, थूक, दस्त, वीर्य पानी में डूब जाय, उसकी आयु एक मास की है। (१३) जो जागते हुए अनेक प्रकार के राक्षस, भूत, प्रेत और भयंकर मूर्तियों को देखे, वह अवश्य मरेगा। (१४) सप्तर्षि नक्षत्र के पास जो अरुंधती तारा है, वह जिसे न दीखे, और जो आकाश-गंगा को न देख सके, वह मृत्यु के मुख में है। (१५) जो गंध, रस और स्पर्श को विपरीत समझे, या कुछ समझ ही न सके, और जो दीपक बुझने के समय की गंध को न पहचान सके, वह अवश्य मरेगा। (१६) जिसकी परछाईं, धूप, पानी, घी अथवा तेल में उसे विकृत, टूटी-फूटी, भयंकर दीखे या न दीखे, उसे मुर्दा ही समझना चाहिए। (१७) जिसके नेत्रों की पुतली में परछाईं न पड़े, उसको भी आयु समाप्त समझना। (१८) जो खूब पुष्टिकर पदार्थ खाकर भी दुबला ही होता जाय, अथवा जो अल्पाहार करके भी बहुत सा मल-मूत्र त्यागे, जो कम खाने पर भी कफ और श्वास की बाधा से कष्ट पावे, जो जल्दी-जल्दी श्वास ले, जो चित या करवट से न सो सके, जिसके पैर सीधे न पड़ें, जो अकारण ज़ोर से हँसकर बेहोश हो जाय, और बेहोशी में ज़बान को चाटे, और नाना प्रकार के शब्द करे, ऐसे रोगी कभी बच नहीं सकते। (१९) जिसकी गर्दन आदि ठंडी होने पर भी खूब पसीना आवे, जिसको बाल उखाड़ने से कुछ तकलीफ़ न हो, गले में कोई तकलीफ़ न होने पर भी जिसके गले से आहार न उतरे, जिसे निरंतर नींद ही आवे या नींद क़तई न आवे, जिसके पैरों में अकारण पसीना आवे, वह मृत्यु के मुख में गया समझना चाहिए।

ख़ास-ख़ास रोगों के अरिष्ट-लक्षण

ज्वर—रोगी दुर्बल हो और ज्वर के संपूर्ण लक्षण हों, तो रोगी न बचेगा। जो रोगी बकवाद करे, किसी को न पहचाने, श्वास जोर का चले, सूजन आ गई हो, बहुत कमज़ोर हो, भूख कतई न हो, वह नहीं बचेगा। बल-युक्त पर बोलने में असमर्थ, नेत्र लाल हो गए हों, हृदय में दर्द हो, सूखी खाँसी हो, यह खाँसी चाहे प्रातःकाल में हो या सायंकाल में, रोगी अवश्य मरेगा।

रक्त-पित्त—रक्त-पित्त उस रोग को कहते हैं, जिसमें मुँह, नाक, कान, नेत्र, गुदा, लिंग, इन मार्गों से ख़ून जाता है। ऐसे रोगी का रक्त काला, रंग-बिरंगा, ताँबे के रंग का, हल्दी के रंग का, हरा हो, या रोम-कूप से रक्त निकले, कंठ, मुँह और हृदय एक ही समय में विकृत हो जायँ, कपड़े पर से दाग न छुटे, रक्त में सड़ी गंध आवे, ख़ून भयंकर वेग से आवे, रोगी वृद्ध हो अथवा उसे ज्वर, पांडु, उल्टी, खाँसी, सूजन या दस्तों की बीमारी हो, तो उसका बचना असंभव है।

श्वास, खाँसी, ज्वर, उल्टी, प्यास, दस्त ये लक्षण एक साथ जिस रोगी को होंगे, वह कदापि बच नहीं सकेगा।

क्षय—क्षय के रोगी को पसली में दर्द, अफारा, ख़ून की उल्टी, कंधों में जलन, ये लक्षण हों, तो उसकी मृत्यु होगी।

अतिसार—मांस के धोवन के समान दस्त हो, तेल, घी, चर्बी, दूध, दही, शराब के समान दस्त हो, स्याही, मवाद, पानी और शहद के समान दस्त हो, तो रोगी नहीं बच सकता।

पथरी—पेशाब रुक जाय। अंडकोष सूख जायँ, दर्द ज़्यादा हो, तो बचना कठिन है।

गुल्म—जिसके दस्त, पेशाब और अपान वायु बंद हो जायँ, श्वास, सूजन, हिचकी, भ्रम, मूर्च्छा, वमन, अतिसार हो, रोगी दुर्बल हो, आँखों के नीचे सूजन आ गई हो, लिंगेंद्रिय टेढ़ी पड़ गई हो, चमड़ी और शरीर शिथिल हो गया हो, जुलाब देने से अफारा कम होकर फिर फ़ौरन् ही अफारा हो जाय, ऐसा गुल्म-रोगी नहीं बच सकता।

पांडु-रोग—सूजन तमाम शरीर पर हो, आँख और नाख़ून पीले हो, वह नहीं बचेगा।

सूजन का रोगी—तंद्रा (झपकी), दाह, अरुचि, उल्टी, मूर्च्छा, अफारा, अतिसार जिसे हो। जिस पुरुष की सूजन पैर से ऊपर को चली हो और स्त्री की मुख से पैर को चली हो, गुप्तांग और कोख में भी सूजन हो, शरीर पर रंग-बिरंगी रेखाएँ दीखने लगें, वह रोगी मरेगा।

कुष्ठ—जिसके अंग गल गए हो, नेत्र लाल हो गए हों, स्वर बैठ गया हो, अग्नि मंद हो, कीड़े पड़ गए हों, प्यास और पतले दस्त होते हो, शरीर सुन्न हो गया हो, वह कोढ़ी आराम नहीं होगा।

वायु की बीमारी के रोगी, मृगी के रोगी, कोढ़ के रोगी, रक्त-पित्त के रोगी, उदर-रोगी, क्षय-रोगी, गुल्म-रोगी, प्रमेह-रोगी, इनका रोग यदि कम भी हो, परंतु कमज़ोर हो गए हों, तो भी इनके बचने की आशा नहीं रहती। कफ-ज्वर के रोगी को पौ-फटने के समय ख़ूब पसीना टपके, तो उसका जीवन दुर्लभ समझना चाहिए।

भगंदर—जिसके मल, मूत्र और अपान वायु के साथ कीड़े निकलें, ऐसे भगंदर-रोगी की मृत्यु निश्चय है।

प्रकरण ८

रोगियों के संबंध में विशेष ज्ञातव्य

शीघ्र आराम होने योग्य रोगी

१—जिस रोगी का शरीर सब प्रकार की खारी, तेज़, कड़ुई, दस्तावर, वमनकारक आदि औषध को खाने और सहन करने की शक्ति रखता हो। २—जो जवान हो। (बालक और वृद्ध कठिनाई से आराम होते हैं)। ३—जो पुरुष हो। (स्त्रियाँ भीरु, लज्जालु और कम समझ होने के कारण देर में आराम होती हैं)। ४—जितात्मा हो, लोलुप न हो। पूरा परहेज-गार हो। ५—जिसका रोग शिर, हृदय, वस्ति, कंठ, फेफड़े आदि मर्मस्थानों में न हो। ६—जिस रोग के उत्पादक कारण साधारण हों।

दिन में सोने-न-सोने योग्य रोगी

रोगी को दिन में सोना अच्छा नहीं है। इससे अनेक हानि होती हैं, दिन में सोने से कफ, खाँसी और सिर-दर्द बढ़ जाता है, शरीर भारी और आलस्यमय हो जाता है, भूख मारी जाती है। इसके सिवा वह रात को जागता, और सबको तंग करता है, फिर रात को जागकर दिन में सोता है।

जीर्ण ज्वरवाले रोगी प्रायः उस समय सो जाया करते हैं, जब ज्वर के बढ़ने का समय होता है। हमने अनेक ऐसे रोगी देखे हैं, जिनके ज्वर की बारी अनेक उपाय करने पर भी नहीं टूटी। पर जब परीक्षा से ज्ञात हुआ कि रोगी सो जाता है, अतएव जिस दिन रोगी को न सोने दिया, उसी दिन ज्वर न आया। यह पक्की तजुर्बे की बात है।

ऐसे रोगी को जगाने में युक्ति से काम लेना चाहिए। जिससे उसे जागने का कष्ट न मालूम हो। दिल ऐसा बहल जाय कि वह सोने और रोग बढ़ने के समय को ही भूल जाय। ऐसा करने से पहले ही दिन लाभ होगा।

परंतु अतिसार, शूल, हिचकी, श्वास, प्यास के रोगी, बादी से पीड़ित, क्षीण-बल और क्षीण कफवाले, रसाजीर्णी, बालक और वृद्ध, हैज़े का रोगी, मूढ गर्भिणी (जिसके मरा बच्चा हुआ हो), ऐसे रोगियों को दिन में सोना लाभकारी है।

वमन योग्य रोगी—कफ की प्रबलता में, नए ज्वर में, अतिसार में, लिंग, गुदा और योनि-मार्ग से ख़ून निकलने में, राजयक्ष्मा में, कोढ़ की बीमारी में, कंठमाला में, प्रमेह में, श्लीपद (जिसमें पैर हाथी के पैर के समान मोटा हो जाता है) में, पागलपन में, खाँसी में, श्वास में, जी मिचलाने पर, विसर्प में, विष खाने तथा दूध के ख़राब होने पर वमन कराना चाहिए।

वमन के अयोग्य रोगी—गर्भिणी स्त्री, भूखा, रूखे शरीरवाला, दुखी बालक, वृद्ध, दुर्बल, मोटा, हृद्रोगवाला, चोट लगने से कमज़ोर, प्रथम ही से वमन करता हुआ, तिल्ली की बीमारीवाला, रतौंधीवाला जिसके पेट में कीड़े हों, जिसे सूखी डकार आती हो, जिसका गला बैठ गया हो, जिसे पेशाब जलन से आवे, पेट के रोगी, वायगोलेवाले, बवासीरवाले, बहुत भूखवाले, अफरे में, श्रम-रोगी, अष्ठीला और पसली में दर्दवाले तथा वायु के रोगी को वमन न करावे।

ऐसे रोगी अजीर्ण से परेशान हों या इन्होंने विष खा लिया या इनका कफ बढ़ रहा हो, तो इन्हें मुलहठी के पानी या ऐसी ही किसी हल्की वस्तु से वमन करावे।

विरेचन के योग्य रोगी—वायगोला, बवासीर, फोड़ा-फुंसी, झाईं, कमलवाय (पीलिया), जीर्णज्वर, पेट के रोग, विष-रोग, वमन, विद्रधि, रतौंध, फूला, जाला, पक्वाशय, कृमि, वात-रक्त, नाक-मुखादि से रक्त बहना, कब्ज़ और आतशक के रोगी को जुलाब देना अच्छा है।

विरेचन के अयोग्य रोगी—मंदाग्नि, चोट या ज़ख्म की दशा में, अतिसार में, लिंगादि अधोमार्ग से रक्त आने पर, शोष रोगी, कठिन कोठेवाले, ये विरेचन के योग्य नहीं हैं।

स्वेदन के योग्य रोगी—श्वास, कास, ज़ुकाम, हिचकी, अफारा, बध, स्वर-भेद, वात-रोग, भारीपन, कफ के रोग, हड़फूटन, कमर, पार्श्व, पसली, कोख और ठोढ़ी के जकड़ जाने पर, अंडकोष के बढ़ने पर, आमवात, मूत्रकृच्छ्र, गाँठ (अर्बुद), रसौली आदि रोगों में स्वेदन अर्थात् बफारा देने से गुण होता है।

स्वेदन के अयोग्य रोगी—बहुत मोटे, रूखे अंगवाले, कमज़ोर, बेहोश, चोट से कमज़ोर, शराबी, आँख और पेट की बीमारीवाले। विसर्प, कोढ़ और प्रमेह के रोगी, गर्भिणी, रजस्वला और प्रसूति इनको बफारा न दे।

दाँतन के अयोग्य रोगी—अजीर्ण, उल्टी, श्वास, खाँसी, ज्वर, लकवा, प्यास, मुँहपाक, हृदय, नेत्र, सिर और कान के रोगवालों को दाँतन नहीं करनी चाहिए।

स्नान के अयोग्य रोगी—ज्वर, अतिसार, नेत्र-रोग, कान के रोग, बादी के रोग, अफारा, ज़ुकाम, अजीर्ण इन रोगों में तथा भोजन के बाद सदैव स्नान निषिद्ध है।

पान न खाने योग्य रोगी—लुस्मी, पित्त का रोगी, जिगर का बीमार, जिसका खून निकल गया हो, रूखा हो, आँखें दुख रही हों, ज़हर खाया हो, बेहोश हो, नशा पिया हो, शोष रोगी हो, उसे पान न खाना चाहिए।

तेल-मालिश न कराने योग्य रोगी—कफ के बीमार, जुलाब लिए हुए या फस्त खुलवाए हुए तथा बदहज़मी के बीमार को पांडु रोगी को तेल-मालिश नहीं करना चाहिए।

रोगी की शारीरिक स्वच्छता

रोगी के शरीर को साफ़ रखना रोग मिटने के लिये अत्यावश्यक है। शरीर से हमेशा

पसीना निकलता रहता है। यदि उसे पोछा नहीं, तो वह शरीर पर ही जम जाता या कपड़ों में मर जाता है। परिणाम यह होता है कि वस्त्र और शरीर दोनों में बू आने लगती है। इसके सिवा पसीने और मैल का ज़हर रोगी के शरीर मे पहुँचता है। पेट मे ज़हर का जाना और रोम-कूपों से ज़हर जाना एक ही बात है।

प्रायः लोग यह समझते हैं कि ज्वर मे या दूसरी बीमारी में भी रोगी का शरीर गीले वस्त्र से पोछना या ठंडा पानी पिलाना मौत को बुलाना है। यह विचार अत्यंत हास्यास्पद है। गर्म पानी से रोगी के शरीर को स्वच्छ करते रहना नित्य का आवश्यक काम होना चाहिए, इससे रोगी को बहुत होशियारी आ जाती है और उसका चित्त खिल जाता है।

रोगी के आस-पास की हवा को शुद्ध रखना जिस तरह आवश्यक है, उसी तरह उसकी त्वचा और रोम-कूपों को शुद्ध रखना आवश्यक है। खुला हुआ और शुद्ध त्वचा रखने का यही अभिप्राय है कि जितना जल्द हो सके, बीमार के शरीर से हानिकारक पदार्थ निकल जायँ।

पर बदन को साफ करते वक्त, धोते वक्त पोछते वक्त, बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। एकदम सारे बदन को न उघार देना चाहिए। ऐसा करने से पसीना निकलना बंद हो जाता है। कमज़ोर रोगी के शरीर को साफ़ करने के लिये गर्म पानी में साबुन घोलकर उससे शरीर को धोकर फिर गर्म पानी से धो-पोछकर शुद्ध करना चाहिए।

यह बात समझनी चाहिए कि हमारे शरीर पर कितना मैल होता है और उसे दूर करने के लिये कितने पानी की ज़रूरत है। शरीर शुद्ध रखने को ज्यादा पानी ही चाहिए, यह विचार गलत है। जो लोग विलायत जाते है, उन्हें स्नान के लिये एक लोटा ही पानी मिलता है, पर उसी से उन्हें १५-२० दिन तक शरीर साफ़ रखना पड़ता है। अगर अच्छी तरह से मैल धोया जाय, तो थोड़ा ही पानी काफ़ी है। नहीं तो शरीर पर बीस घड़े पानी डालना भी व्यर्थ है।

आप तीन कटोरियाँ लीजिए, एक मे ठंडा पानी भरिए, दूसरी मे साबुन मिला ठंडा पानी और तीसरी में साबुन मिला गर्म पानी।

अब आप पहले ठंडे पानी के बर्तन मे हाथ धोइए, बहुत कम मैल छुटेगा। साबुन मिले पानी में ज़्यादा, पर तीसरे मे तो मैल ही मैल दीख पड़ेगा। इसी तरह अदहन के लिये खुले हुए पानी के बर्तन के ऊपर थोड़ी देर हाथ रखकर हटा लो। फिर उसे दूसरे हाथ से मलो, मैल की बत्तियाँ-की-बत्तियाँ उतरती हुई मालूम होंगी। इन सब बातों का अभिप्राय यह है कि ठंडे पानी या सिर्फ़ गर्म पानी से शरीर यथेष्ट शुद्ध नहीं होता। एक खरदरा अँगौछा लेकर उसे गर्म पानी में (अगर उसमें कुछ स्प्रिट या लवेंडर मिला हो, तो उत्तम) भिगो लो। इससे बदन को खूब रगड़ो। इससे बदन के मैल की बत्तियाँ-पर-बत्तियाँ उतरेंगी। उन्हें देखने से मालूम होगा कि बदन पर कितना मैल था। सिर्फ साबुन लगा लेने या गर्म-गर्म पानी शरीर पर डालने से कुछ नहीं होता।

रोगी के स्नान के विषय मे एक बात विचारने की यह है कि पीने के पानी में जो सावधानी की जाती है, वही स्नान के पानी के विषय में होनी चाहिए। पीने के लिये साफ और हल्का पानी पसद किया जाता है, उसी तरह स्नान के लिये भी हल्का पानी ही होना चाहिए। खारी पानी मे चूने का खार ज्यादा है, इसलिये उसमें नहाने से बदन खुजाने लगता है। बदन का मैल भी दूर नहीं होता। जख्म धोने के लिये खारी पानी लिया गया, तो उसका भरना तो दूर रहा, वह और बिगडेगा। जहाँ हल्का पानी न मिले, वहाँ भभके का या बरसात का पानी लेना चाहिए। उबालकर पानी को ठंडा करने से उसका पौन भारीपन नष्ट हो जाताहै, भारी पानी मे यदि साबुन लगाकर स्नान किया जाय, तो साबुन का तेल, पानी का चूना, पसीना मिलकर शरीर स्वच्छ होने की अपेक्षा उस पर इन पदार्थों के मिश्रण का एक वार्निश हो जाता है।

रोग-मुक्त होने पर

अब तक हमने यह बताया है कि रोगी होने की दशा मे रोगी कीकैसी-कैसी सम्हाल रखनी चाहिए। अब रोग-मुक्त होने पर कैसी सम्हाल रखनी चाहिए, यह बताते हैं। जो मनुष्य इस बात पर ध्यान नहीं देते, वे पिछड-पिछडकर कई बार रोगी होते हैं। नीचे लिखी बातो पर ध्यान देना चाहिए।

बीमारी की दशा मे यदि रोगी का मन किसी चीज़ पर चले और वह उसे दे दी जाय, तो कुछ ज्यादा नुकसान नहीं होता, परंतु बीमारी के बाद की कमज़ोरी मे दे देने मे भारी हानि होती है।

रोग से उठने पर रोगी को खाने ही की लग जाती है। जो चीज़ उसे पसद होती है, उसके लिये उसका जी ललचाने लगता है। मिलने पर भी थोड़े से उसकी तृप्ति नहीं होती। इसका फल यह होता है कि रोग का लौटकर भयानक आक्रमण होता है। इसलिये बिना चिकित्सक के पूछे आराम होने के बाद भी जब तक कि पूर्ण रीति से शक्ति न आ जाय, कोई चीज़ रोगी को खाने को न दी जानी चाहिए।

रोगी की दशा बच्चे के समान हो जाती है। यह बिल्कुल धैर्य-हीन और आत्माभिमान-शून्य हो जाता है। वह बच्चो और नौकर-चाकरो से खुशामद करके और चुरवाकर चीज़े मँगाकर खा जाता है।

दूसरी बात यह है कि रोगी खाट मे पडे-पडे बिल्कुल तग हो जाता है, इसलिये आराम होते ही अपनी शक्ति की परवा न कर खूब घूमना शुरू करता है। खुली हवा में नंगे बदन बैठता है। घटो गप्पें मारता है। कोई नाविल पढने लगा, तो ४-४ घटे पढ़ता ही जाता है। उसे गर्म कपडे पहनने की भी चिंता नहीं रहती। फलत शरीर में जल्दी शक्ति नहीं आती। इसलिये अशक्त रोगी को बच्चो की तरह सम्हालना चाहिए। उसका शरीर और मन दोनो कमज़ोर हो जाते है, इसलिये जब तक दोनो बलवान् न हो, उसे सम्हालना चाहिए।

रोगी को हल्का आहार (खाना), सुबह-शाम टहलना और अधिक विश्राम करना चाहिए। जो रोगी इन बातों पर ध्यान नहीं देते, उन्हें ज्वर, दर्द, खाँसी चाहे कुछ न हो, पर न उनमें शक्ति आती, और न उनके चेहरे पर रौनक ही दीख पड़ती है।

आबोहवा और जगह बदलना भी रोगी पर बड़ा भारी प्रभाव डालता है। गरीब लोग यदि खर्च के कारण जगह न बदल सकें, तो कोठरी ही बदल दें। इसी से रोगी को बहुत लाभ होगा। पर धनवानों को हवा बदलने देश-विदेश जाना चाहिए।

बहुत-से मनुष्यों का यह कहना है कि बीमारी मिटी कि रोगी चंगा हुआ। परंतु यह भूल-भरी बात है। बीमारी की जैसी बहुत-सी अवस्थाएँ हैं, वैसी बीमारी के बाद की कमज़ोरी की भी हैं। यदि बीमारी मामूली हुई, तो कमज़ोरी भी बहुत थोड़े समय तक रहेगी। परंतु यदि बीमारी भयकर हुई, तो कमज़ोरी भी बहुत दिनों तक रहती है और कभी-कभी तो वह निर्मूल होती ही नहीं।

हम जानते हैं कि ऐसे असंख्य रोगी हैं, जिन्हें रोग से छुटते ही काम पर जाना पड़ता है, क्योंकि घर-भर का बोझ उन्हीं की कमाई पर होता है। बीमारी में कर्ज हो जाने से और चिंता बढ़ जाती है। ऐसे पुरुष प्राय अल्पायु हो जाते हैं।

अध्याय अठारहवाँ

तपेदिक्

प्रकरण १

क्या तपेदिक असाध्य है?

तमाम दुनिया मे हर साल १० लाख ९५ हज़ार स्त्री-पुरुष इस भयंकर रोग में मरते है। यानी प्रतिदिन ३००० और फी मिनट २ मनुष्य इस महारोग में घुल-घुलकर अत्यत कष्ट से प्राण खोते है। इस रोग की असाध्यता इतनी प्रसिद्ध हो गई है कि ज्यो ही रोगी या उसके घरवालो को मालूम हुआ कि वह इस पाप-रोग मे फँस गया है, तो वे जीवन से एकदम निराश हो जाते हैं।

कुछ दिन पहले संसार के बड़े-बड़े चिकित्सकों की भी यही राय थी कि इस रोग में फँसा हुआ रोगी किसी तरह नही बच सकता, परंतु निरंतर की खोज और परिश्रम से अब हाल ही मे यह भली भाँति सिद्ध हो गया है कि सब प्रकार का तपेदिक न केवल रुक ही सकता है, बल्कि अनेक हालतों मे बिलकुल दूर भी हो सकता है। जगत् के बडे-बड़े चिकित्सक जो पचासो वर्षो से निस्स्वार्थ भाव से जी-जान लडाकर इस मनुष्य-मात्र के शत्रु से युद्ध कर रहे थे, बहुत कुछ सफल हुए है। प्रत्येक देश के विद्वान्, मूर्ख, धनी और निर्धन, वैद्य और डॉक्टरो को उचित है कि सब स्त्री-पुरुष इस सर्व-साधारण के शत्रु से होशियारी से लडना सीखें, और आवश्यक होने पर दृढ़ता से लडें।

तपेदिक क्या है?

यह एक पुरानी बीमारी है, जो फेफडो मे बहुत सूक्ष्म कीटाणुओ की शकल मे पैदा होती है। ये कीटाणु गोल होते है, और कभी-कभी बिना ख़ुर्दबीन के भी देखे जाते है। किसी-किसी रोगी के शरीर में तो ये करोडों की गिनती में होते हैं। फेफड़ों मे घाव डाल-डालकर ये उसे धीरे-धीरे नष्ट कर देते है। इनसे एक विकराल ज़हर उत्पन्न होता है, जिसे "टोक्सिन" कहते हैं। ख़ुर्दबीन से ये कीडे थूक में गोल डंडियों के आकार के पाए जाते है। इनके साथ ही एक और रंगीन-सा पदार्थ देख पडता है।

तपेदिक के प्रधान चिह्न

खाँसी, कफ थूकना, ज्वर (हरारत सूरज छिपने के समय चढ़ती है), साँस लेने मे

तकलीफ, हृदय में दर्द, रात में पसीना, भूख की कमी, रुधिर का वमन, चीणता (कमज़ोरी और दुबलापन) ये चिह्न शुरू में बहुधा छिपे हुए तथा धीरे-धीरे दीखते हैं। घर के लोग इन्हें मामूली रोगों के चिह्न समझते रहते हैं। रोगी को फायदा तभी हो सकता है, जब कि रोग के आरंभ में ही उसका ठीक निदान हो जाय, और समय पर अच्छे चिकित्सक के हाथ में उसे सौंप दिया जाय। इसलिये हम ऐसे लक्षण लिखते हैं, जिन्हें सब लोग पहचान सकें।

तपेदिक के मरीज़ शुरू हालत में अक्सर ख़ासे भले-चंगे दीखते हैं। शुरू के मामूली चिह्नों में एक चिह्न यह भी होता है कि चमड़ी पर पीलापन छा जाता है और साथ ही कभी-कभी गालों पर तेज़ लाली की झलक मारने लगती है। जुकाम की ज्यादती होने लगती है। जब रोग बढ़ने लगता है, तब रोगी के स्वभाव और चाल-चलन में फर्क पड़ जाता है। उसे काम से नफरत पैदा हो जाती है। दिल-बहलाव के सामान उसे अच्छे नहीं लगते। वह जल्दी थक जाने की शिकायत करने लगता है। शाम के वक्त उसे हलका ज्वर होने लगता है, सुबह-शाम रुक-रुककर खाँसी उठने लगती है। मंदाग्नि, भूख की कमी, दिल की धड़कन तथा छाती में दर्द ये अलामात ख़ास तौर से गौर करने लायक हैं।

इन बातों के होने पर रोगी को और उसके घरवालों को चाहिए कि होशियार हो जायँ और फौरन् किसी अच्छे चिकित्सक की राय लें। कोई भी अच्छा डॉक्टर या वैद्य जिसने इस रोग के संबंध में नवीन आविष्कारों का अध्ययन किया है, बड़ी आसानी से रोग के पहले दर्जे को ठीक-ठीक पहचान लेगा। ख़ासकर वे लोग, जो हमेशा थोड़ा-बहुत खाँसते रहते हैं, अच्छी तरह अपनी जाँच करावें।

तपेदिक के भेद

गले का तपेदिक—गले के तपेदिक से फेफड़े की दिक का गहरा संबंध है। यह रोग ज्यादा नहीं होता, पर कभी-कभी तपेदिक के साथ यह भी पाया जाता है। दिक के तमाम प्रधान चिह्नों के अलावा इस रोगी में ये चिह्न ज्यादा होते हैं। गला बैठ जाना और आवाज खुरखुरी हो जाना। रोटी वगैरह सख्त चीज़ निगलने में बड़ी तकलीफ होना। गले के भीतरी हिस्से को देखने से बोलने की नलियों तथा श्वास-पास के मादे में छोटे-छोटे कीटाणु तथा घावों का पाया जाना, कंठमाला भी क्षय का ही रूप है, जो प्राय बच्चों को होता है। यह कुछ धीमा रोग है, इसका विकास गले की नलियों की सूजन, फोड़े तथा नेत्र या कान में जलन से होता है।

हड्डियों की दिक—इस रोग में धीरे-धीरे घुलकर हड्डियाँ अंत को लुप्त हो जाती हैं। यह रोग बहुत पाया जाता है। यदि रोग का हमला कमर के बाँस पर हुआ, तो एक या अधिक रीढ़ की हड्डी के नष्ट होने से कुबड़ापन हो जाता है। इस प्रकार कमर का बाँस टूटने से रीढ़ की हड्डियों के अंतर्गत गूदा पिचक जाय, तो बाँहें या टाँगे बेकार हो जाती हैं। अथवा

कभी-कभी बेवस दस्त-पेशाब निकल जाता है। यह रोग शुरू में थोड़ी तकलीफ-सा मालूम देता है, पर धीरे-धीरे जोड़ निष्क्रिय हो जाते हैं और हड्डियाँ पककर घुलने लगती हैं। कभी-कभी अंग कटवाने पड़ते हैं। प्रारंभिक लक्षण ये हैं कि जिस बाँह व टाँग में इसका आक्रमण हो, वह ठुंडी हो जाती और काम करते समय जल्द थक जाती है। जोड़ों पर ज़रा भी ज़ोर पड़ा कि तत्काल सख्त पीड़ा होने लगती है। कमर के बाँस पर जहाँ रोग के कीड़े लगते हैं, वहीं रोग के लक्षण दीखने लगते हैं। जैसे यदि गर्दन पर आक्रमण हुआ है, तो निगलने तथा श्वास लेने में कष्ट होगा या सूखी खाँसी सताएगी। यदि पीठ के भाग में बाँस की किसी कशेरुका में कीड़ा लगा है, तो ऐसा मालूम होगा कि छाती को किसी ने कसकर बाँध दिया हो। साथ ही पाचन-शक्ति भी नष्ट हो जायगी। यदि कमर के नीचे के भाग में बाँस में रोग हुआ है, तो मूत्राशय तथा निचली अँतड़ियों में दर्द होने लगता है। पेशाब ज़्यादा आने लगता है और पुट्ठों की ओर दर्द हो जाता है।

यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि इनमें से कोई लक्षण प्रकट हों, तो तत्काल उत्तम चिकित्सा करने ही से अपाहिज होने से बचाव हो सकता है।

हड्डी और कंठमाला के टिक का ज़ोर ख़ासकर बाल्यावस्था में ही होता है। कंठमाला से पीड़ित बालक प्राय: पीले रंग, पिलपिली त्वचा और ढीली मांस-पेशियोंवाला होता है। कंठ में गिल्टियाँ सूजी रहती हैं। चमड़ी पर फोड़ा-फुंसियों का निकलना, आँखें दुखना, कान बहना इत्यादि लक्षण अधिक पाए जाते हैं। ये बच्चे प्राय स्वभाव ही से सुस्त रहते हैं। कोई घबराहटवाले या चमक उठनेवाले होते हैं। इनकी चमड़ी के भीतर नसें चमका करती हैं। कुछ बालकों को ज्वर आने लगता है।

आँतों की टिक— यह रोग बहुत फैल रहा है। बंबई तो इस रोग का घर है। यह रोग अतिशय भयंकर और कष्टसाध्य है। इस रोग में — शुरू में — दस्तों में कब्ज़, मसूढ़े और दाँतों में ख़ून, पीब जाना, गले और ज़बान पर छाले पड़ना, छाती जलना और कभी-कभी खट्टी डकार या खट्टी वमन। अपचन और अंत में संग्रहणी का स्वरूप हो जाना, आवाज़ देकर कुछ चिकना, कुछ पतला मल आना। मूत्र की कमी, कभी कभी रात्रि में ज्वर, मिज़ाज चिड़चिड़ा, शरीर रूखा, नाख़न सफ़ेद और उन पर लकीरों का उभर आना। अंतिम अवस्था में पैरों या मुख से शुरू होकर सर्वांग शोथ।

सर्वांग क्षय— इस रोग में छोटे-छोटे असंख्य दाने सर्वांग में फैल जाते हैं। ये दाने बाजरे के समान होते हैं। प्रारंभ में मधुर ज्वर (मोतीझरा) के सब लक्षण मिलते हैं। शरीर निढाल रहता और सदा तप्त बना रहता। यह रूप भी बहुधा घातक होता है।

पुश्तैनी तपेदिक

लोगों का यह ख़याल झूठ है कि अक्सर तपेदिक माता-पिता से सीधी बच्चों को हो जाती है। और लोगों का यह विश्वास भी गलत है कि पुश्तैनी तपेदिक आराम ही नहीं

हो सकती। असल बात यह है कि रोग का आराम होना न होना इस बात पर कदापि निर्भर नहीं है कि उसने रोग मा-बाप से विरासत में पाया है या खुद हासिल किया है।

कुछ बच्चों को मा-बाप से क्षय लगना पाया जरूर जाता है, पर उसके कारण और हैं। वे ये हैं—जैसे बालक मा-बाप की रुग्णावस्था में उनके पास सदा सोता रहा है। वे उसका मुँह चूमते रहे हैं। अथवा वह गंदे, मैले कीटाणु-युक्त फर्श पर खेलता रहा है, जहाँ रोगी मा-बाप ने अक्सर थूक दिया है और वह थूक वहीं सूख गया है।

तपेदिक पैदा होने के कारण

(१) नशे की चीज़ें ज़्यादा इस्तेमाल करने से। (२) विषय-वासना की हद दर्जे की ज़्यादती से। (३) चंद और बीमारियों से, जो शरीर को दुर्बल बना देते हैं। जैसे निमोनिया, मोतीझरा (टाइफ़ाइड ज्वर), चेचक, खसरा, काली खाँसी, संग्रहणी, आतशक, शर्करार्बुद (कारबंकल) वगैरह-वगैरह। (४) कुछ पेशों से—जैसे छपाई, सिलाई, बुनाई, टोपी बनाना और उन तमाम धंधों से, जिनमें निरंतर छाती सिकोड़कर झुके बैठे रहना पड़ता है, या नाना प्रकार की धूल श्वास के साथ में हलक़ में जाती हो। जैसे रसोइए, हलवाई, पिसनहारे, चुरुट, बीड़ी बनानेवाले, तबाकू कूटनेवाले, मिरचों के व्यापारी, चिमनी साफ़ करनेवाले, लकड़ी तथा पत्थर या धातु का काम करनेवाले। (५) रोगी का मुँह चूमने, उसके पास सोने, सहवास करने, अत्यंत निकट से बातचीत करने, उसके वस्त्रों को

तपेदिक उत्पन्न करने के साधन

शराब — बंद घर — रात्रि को बारीक काम — घर का गंदा सामान — कारखानों का धुआँ — अनियमित जीवन

खुद इस्तेमाल करने, जूठा खाने, उसका थूक, मूत्र, दस्त आदि उठाकर बिना अच्छी तरह हाथ साफ किए भोजन करने अथवा थूक इत्यादि साफ करती समय हाथ में एकाध घाव होने पर उसके द्वारा रोग के कीटाणु रक्त में घुस जाने आदि कारणों से भी यह रोग लग जाता। (६) नीला गुदवाने से भी यह रोग हो जाता है। इस विषय में पूरा होशियार रहना चाहिए। क्योंकि गोदनेवाले प्राय गोदने के रंगों को अपने थूक में भिगोते हैं, और यही रोग फैलने का कारण है। यदि उसके थूक में रोग के परमाणु हों। (७) बच्चों का ख़तना

कराना मुसलमानों का धर्म-कृत्य है, पर इससे बहुत जानें व्यर्थ चली जाती हैं। यदि होशियारी और शीघ्रता से सुन्नत की जाय, तो यह एक मामूली बात है, पर बाद में अंग को चूसने की जो क्रिया है, वही हानिकर है। यदि चूसनेवाला रोगाक्रांत है, तो वह तत्क्षण रोग का बीज बच्चे के ताजे घाव मे डाल देगा। (८) कुछ रोगी अपने थूक को निगल जाते है। यह बड़ा भयकर है। ऐसा करना अँतड़ियो में तपेदिक के कीडे पहुँचाना है। थूक निगलने मे अवश्य अँतड़ियों का दिक हो जाता है।

तपेदिक के कीडे किस तरह जिस्म मे पहुँचते हैं

१ श्वास के साथ फेफडों में पहुँचकर।

२ ऐसे भोजन, फल आदि खाने से जिसमें रोग के कीडों का असर हो।

३ किसी घाव के द्वारा कीडे रुधिर मे मिलने से।

दिक के रोगी जब तक ज्यादा बीमार नहीं हो जाते, चलते फिरते और काम-धंधा करते रहते है। रोग चाहे कितना ही कम क्यों न हो, रोगी फिर भी थूक के साथ लाखों कीड़े बाहर फेंकता है। अक्सर वह लापरवाही से चाहे जहाँ थूक देता है। वह सूखकर चूर्ण हो जाता और ज़रा-सी हवा लगने से धूल में मिल जाता है। जो मनुष्य ऐसी धूल-मिश्रित हवा में श्वास लेता है, वह अवश्य रोग का शिकार हो जाता है। अगर उसका शरीर उन्हें नष्ट करने में समर्थ न हो।

तपेदिक फैलने के साधन

लापरवाही से थूकना   लापरवाही से झाड़ देना   जूठा खाना   जूठा खाना

बेपरवाही से पडे रहनेवाले थूक से उत्पन्न ख़तरे के सिवा रोगी की सूखी खाँसी अथवा जल्दी वा ज़ोर से बोलने अथवा छींकने से जो अंश थूक का बाहर जाता है, वह भी रोगी के पास रहनेवालो के लिये ख़तरनाक है।

चाहे माता-पिता के दोष से, चाहे ज्यादा नशीली चीज़ों के सेवन से या और किसी रोग की पीडा से शरीर यदि थोडे समय के लिये निर्बल हो जाता है, वही इन कीटाणुओं का शिकार हो जाता है।

पुश्तैनी तपेदिक से संतान को बचाने के उपाय

१ अगर माता को रोग हो चुका है, या उसके खानदान में रोग होता रहा है और उसे अपने बच्चों पर पुश्तैनी दिक के हमले का डर है, तो उसे अपनी तंदुरुस्ती की पूरी-पूरी सँभाल रखनी चाहिए। जहाँ तक बने वह खुली हवा में रहे और गहरी साँस ले, सदा सादा पुष्टिकारी भोजन खाय। वह कभी ऐसे कपड़े न पहने, जिनसे उसकी छाती या पेट कस जाय। सदा गहरी साँस ले। लहँगा या धोती कसकर न बाँधे। मौसम के अनुसार गर्म या ठंडे कपड़े की एक भीतरी पोशाक पहनने से ऊपर हल्की साड़ी या लहँगा पहनने से हर्ज न होगा। कमर पर बोझ भी कम रहेगा। उन्हें लहँगे, साड़ी आदि इतनी नीची न पहननी चाहिए कि धरती पर झाड़ू लगाने चलें। इससे धूल में मिले हुए असंख्य कीटाणु शरीर में प्रवेश करने लगते हैं।

२ पुरुषों को कमर पर कसकर पेटी, धोती नहीं बाँधनी चाहिए। इससे पेट भिच जाता है और आँतें स्वच्छंदता से काम नहीं करतीं। जिस पुरुष के शरीर में दिक का कुछ अंश है, उसके लिये पाचन-शक्ति या शारीरिक उन्नति में बाधा डालने से अधिक हानिकारक कोई बात ही नहीं है। इसी प्रकार दमघोंटू कालर, कसे हुए बूट भी नहीं पहनना चाहिए, जिससे ख़ून की स्वाभाविक गति में रुकावट पैदा हो।

३ अगर बच्चेवाली स्त्री में तपेदिक के लक्षण पाए जायँ, तो उसके बच्चे को किसी तंदुरुस्त धाय से पलवाया जाय या गाय का दूध किसी डॉक्टर की राय से पिलाया जाय। बच्चे को अलग बिस्तर पर सुलाया जाय। मा के साथ एक पलँग पर कभी न सुलाया जाय। सोने के कमरे में हवा के आने-जाने का अच्छा बंदोबस्त होना चाहिए। बच्चे को बहुधा खुली हवा में ले जाना चाहिए। बच्चे के सिर पर बहुत कपड़ा न लपेटा जाय, अथवा भारी कनटोपा इत्यादि न पहनाया जाय। किसी गर्म व धूपवाले कमरे में बच्चे को नंगे या सिर्फ़ कुर्ता पहनाकर नित्यप्रति दौड़ने देना बड़ा लाभदायक है। घरों में दरियाँ या कालीनों की अपेक्षा तख्ते या चटाई का फ़र्श रखना चाहिए, जिसमें गर्द कतई साफ़ हो सके।

४ दस महीने तक बच्चे को गर्म पानी से नहलाना चाहिए। दस से बारहवें महीने तक धीरे-धीरे बच्चों को ठंडे पानी से नहाने की आदत डाली जाय। गर्मी की ऋतु में यह आदत मज़े में डाली जा सकती है। ठंडे स्नान में यह ज़रूरी है कि जल्दी गर्मी व 'लौटाव' हो, उसका चिह्न यह है कि बच्चा प्रसन्न मालूम हो और शरीर पर लाली झलके। शरीर पर जब ठंडा जल पड़ता है, तब एक प्रकार की सफ़ेदी व पीलापन आ जाता है, जिसका कारण बाहरी रुधिरवाली नाड़ियों का सिकुड़ना है। ज्यों ही रुधिर का चक्कर आया कि चमड़ी पर लाली आई। जब कभी यह लौटाव देर में होने लगे, फ़ौरन् चिकित्सक को बच्चा दिखाओ।

बच्चों की कसरतें

ज्यों ही बालक को कुछ ज्ञान होने लगे, उसे कुछ गहरे, लंबे श्वास लेना सिखाना चाहिए। फिर नीचे-लिखी कसरतें सिखानी चाहिए—

१ किसी खुली जगह मे एँडियों को मिलाकर शरीर को सीधा करके और हाथों को पहलू से लगाकर सीधी स्थिति मे खडा करो। मुख बंद करके नाक से धीरे-धीरे साँस ले, जितनी हवा खींची जाय, खींचो। साथ ही भुजाओ को उठाकर कंधो के बरावर सीधा फैला लो। श्वास के द्वारा इस प्रकार खींची वायु को कोई ३-४ सेकंड तक रोके रहो। जब हवा को वाहर फेंको, तो वाहो को पहली हालत मे ले आओ। वाहर हवा जोर से फेंकनी चाहिए। इस कसरत का पूरा अभ्यास होने पर दूसरी करनी चाहिए।

२ इसमे भुजाओं को सिर की ओर ऊपर को उठाकर मिला दो, और पहली के समान श्वास की क्रिया करो।

३ यह कसरत हवा मे तैरने के समान है। सीधे खडे होकर अपने हाथ आगे को फैलाओ। जैसा तैरने के समय फैलाते है। दोनो हाथ मिले रहें, श्वास लेते समय भुजाओ को वाहर को ओर घुमाकर कमर पर दोनो हथेलियों को मिलाओ। कुछ सेकंड इसी तरह रहो। हवा को भीतर रोके रहो। जब श्वास को वाहर निकालो, तो हाथों को फिर आगे की ओर ले आओ। शुरू-शुरू मे श्वास लेते समय पैरो की उँगलियो के बल उठने तथा उकसने और निकासी के वक्त उतरने मे कुछ आसानी रहेगी।

४ नौजवान लडके-लडकियो तथा उन लोगो की, जिन पर दिक का शक हो, वहुधा कमर झुक जाया करती है। उन्हें यह कसरत करनी चाहिए कि तनकर खड़े हो जायँ और अपने हाथ कमर पर इस तरह रक्खें कि अँगूठे आगे को रहें। फिर श्वास खींचता हुआ धीरे-धीरे पीछे की ओर झुकता जाय, जितना झुक सके। इस स्थिति मे जितना श्वास रोका जाय, रोककर श्वास छोडता हुआ जल्दी से सीधा खडा हो जाय।

ध्यान में रखना चाहिए कि हमेशा आसान कसरतों से शुरू करो और जब तक वे अच्छी तरह न होने लगे, भारी कसरतो को मत करो। मश्क तब तक जारी रक्खो, जब तक कि श्वास लेना स्वभाव मे न दाखिल हो जाय। थके हुए हो, तो कसरत मत करो, न इतनी करो कि थक जाओ।

मुख से श्वास लेना—वालकों में और कभी-कभी बडो मे भी मुख से श्वास लेने की आदत पडने का कारण बहुधा कंठ मे व नाक मे एक प्रकार के माद्दे का पैदा होना व कंठ का फैल जाना है। इन्हें किसी सर्जन से तुरत दूर कराना चाहिए। ये आपरेशन विलकुल वेखटके हैं और इन माद्दो के रहने से वच्चो की सुनने और विचारने की शक्ति तथा शारीरिक उन्नति को वडा धक्का लगता है। श्वास की उपर्युक्त कसरतें ऐसे रोगियो के आपरेशन के वाद ही कराने से विशेष उपयोगी होगी।

गाना और जोर से पढ़ना—कंठ और फेफडो को पुष्ट करने के लिये खुली हवा मे गाना और ज़ोर से पढ़ना अत्युत्तम कसरतें है।

रात्रि में वायु की शुद्धि—वहुत लोगो का झूठा ख़याल है कि रात को हवा ख़राब

हो जाती है। दिन के बनिस्वत रात की हवा शुद्ध रहती है, ख़ासकर बड़े बड़े शहरों की। इसलिये हरएक आदमी को सोने के कमरे की खिड़की अवश्य खुली रखनी चाहिए, जिससे वायु का आना-जाना बना रहे। हाँ, उस हवा के झोंके से शरीर को बचाना जरूरी है। यदि बचाकर पलँग बिछाना सभव न हो, तो खिड़की पर एक साफ़ कपड़े का पर्दा डालने से काम चल सकता है।

पालन पोषण और शिक्षण—जिन बालकों का दिक की तरफ़ झुकाव हो, उनका विधिवत् पालन-पोषण करना एक महत्त्व का विषय है। बहुत-से बालक जन्म-दिन से ही कम खाते है। भोजन की ओर से उनकी घृणा दूर करने के लिये उन्हें अधिक मिठाई न देना। भोजन के घंटे नियत कर देना, अँतड़ियों को निर्विकार रखना आदि अति उत्तम उपाय हैं। जितनी जल्दी हो सके, बालकों को हरएक भोजन के अनंतर अपने दाँतों को ख़ूब साफ़ करना सिखाना चाहिए।

यदि ऐसे बच्चे खेल-कूद से जी चुरावें, तो उन्हें इस संबंध में भी उत्साहित करना चाहिए। ख़ूब गर्म कपड़े पहनाना या कपड़ों से लपेट रखना—दोनों बातें दोष-युक्त हैं।

पढ़ने में उन्हें ज्यादा मेहनत न करनी चाहिए। घंटों बैठे रहना, दिमाग़ से ख़ूब काम लेना, गाना-बजाना सीखने पर बहुत समय ख़र्च करना, बालक को क्षीण करनेवाली बात है।

तपेदिक को नष्ट करने के साधन
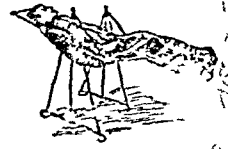
योग्य चिकित्सक सूर्य का प्रकाश खुली वायु पौष्टिक भोजन पूर्ण विश्राम

सदा प्रसन्न चित्त रहना, नियम-बद्ध रहना-सहना, सादा, पर श्रेष्ठ भोजन करना, सब प्रकार की नशे की चीज़ों को त्यागना, आँतों की सफाई का ध्यान रखना, तमाम शरीर को साफ़-सुथरा रखना और २४ घंटों में से कम-से-कम आठ घंटे सोना, यह तंदुरुस्त रहने के अति उत्तम उपाय है।

कारोबार मे लगाना—दिक की ओर झुकाववाले युवक को जब कारोबार में लगाने का समय आवे, तो उसे ऐसे धंधे करने चाहिए कि खुली हवा सदा मिले। जैसे बागवानी, खेती-बाड़ी व जंगलात के काम इत्यादि।

कमजोर मनुष्य कैसे दिक के हमले से बच सकता है ?

वे सब लोग जो नशा करने या दुराचार के कारण अथवा कठिन रोगों, आघातों से बलहीन हो गए हों अथवा तंदुरुस्ती बिगाड़नेवाले रोज़गारों की तकलीफें भोग रहे हों, कभी दिक के मरीज़ के पास न रहें। नशेबाज और विषयी लोगों के लिये इसके सिवा कोई इलाज नहीं कि वे अपनी आदत बदल डालें। यदि उन्हें कोई मूत्र-रोग हो गया है, तो धुन बाँधकर उसे निर्मूल करें, जिससे दुबारा उसका हमला शरीर पर न हो। शुरु में समस्त मूत्र-रोग अच्छे हो सकते हैं। ये रोग अत्यंत संक्रामक और भयंकर हैं, जो तपेदिक के कीड़ों के पक्के मित्र हैं।

तपेदिक को नष्ट करने के साधन

सावधानी से थूकना   स्वच्छ भोजन   पौष्टिक खाद्य   हाथ की स्वच्छता   साफ बर्तन   स्वच्छ हवादार शय्या

तपेदिक के रोगी के थूकने का प्रबंध

तपेदिक का रोगी अपने थूक को बड़ी होशियारी से त्यागे और इस कार्य को धर्म-तुल्य समझे। छोटे-छोटे बच्चों के पास बहुत कम रहे, उनका मुँह न चूमे। उसे जानना चाहिए कि दिक का रोग चाहे कम हो या ज्यादा, उसका थूक बीमारी फैलाएगा, अगर वह सूखकर चूर्ण बनने से प्रथम ही न नष्ट कर दिया जायगा। यदि रोगी चलता-फिरता है, तो उसे धातु या रबर के जेबी थूकदान हमेशा पास रखने चाहिए, और वे दिन में दो तीन बार तेज़ गर्म पानी या किसी कीटाणुनाशक द्रव से धो लेना चाहिए, और उसमें आधा पानी या कोई कीटाणुनाशक द्रव भरा रहना चाहिए।

घर पर या दूकान पर अथवा दफ्तर में जहाँ उसे ज़्यादा बैठना है, ढकनेदार थूकदानों का बंदोबस्त होना चाहिए। और वे धरती से कम-से कम ३ फीट ऊँचे रक्खे रहें, जिससे उनमें कुत्ता-बिल्ली मुँह न डाल सकें, और मक्खी-मच्छरों से भी बचाव रहे।

मक्खियाँ थूक पर यदि बैठने दी जायँ, तो वे तीन प्रकार से बीमारियाँ फैलावेंगी। प्रथम थूक के कण अपने पाँवों में लगाकर ले जाती हैं और भोजन आदि पर बैठकर वहाँ छोड़ देती हैं। दूसरे यदि उसने थूक खा लिया है, तो मौका पाकर वह खाने की चीज़ों पर

विष्ठा कर देती हैं और उसमें रोग के कीटाणु होते हैं। तीसरे ये मक्खी-कीटे आदि मरकर सूख जाते हैं और धूल में मिलकर श्वास के साथ फेफड़े में पहुँचते हैं।

थूकदान का थूक ऐसी होशियारी से फेंकना चाहिए कि रोग के कीड़े मर जायँ। जहाँ बदरौ का अच्छा प्रबंध है, वहाँ थूक को बेखटके मोरी में बहा देना चाहिए, पर जहाँ मोरियाँ न हों, वहाँ पर थूक को आग पर चढ़ाकर उसमें ज़रा-सी सज्जी डालकर ५ मिनट उबालो। वह थूक हानि-रहित हो जाता है। थूकदानों में यदि सदा सिरका मिला पानी भरा रहे, तो फिर थूक के कीड़े उसी से मर जाते हैं। अगर थूक का उबालना न बन सके, तो अख़बार की कई तह करके उसके चारों कोने समेटकर थूक को उसमें उलट लो और आग में डाल दो।

रूमाल में कभी न थूकना चाहिए। वे रोगी, जो रोग की अधिकता के कारण थूकदान इस्तेमाल नहीं कर सकते, उनके पास साफ़ कपड़े के चिथड़े गीले करके रख देने चाहिए। इस बात की होशियारी रखनी चाहिए कि ये चिथड़े गीले रहें और सूखने से पूर्व ही जला दिए जायँ, अथवा पतले कागज़ के टुकड़े करके रखे जायँ। कमज़ोरी के कारण जब रोगी थूकने को हिल भी न सके, तो इनमें धीरे से थुकवा लिया जाय, और वे सिरका मिले पानी में डाल दिए जायँ, या तत्काल जला दिए जायँ।

तपेदिक़ के रोगी का घर में रहने का प्रबंध

दिक़ का रोगी बिलकुल अलग कमरे में रक्खा जाय, और उसके पलँग, बिस्तर, चादर आदि दूसरा व्यक्ति कदापि काम में न लावे। न कोई दूसरा भला-चंगा मनुष्य रोगी के बिलकुल पास दूसरे बिस्तरे पर ही सोवे। कमरा थोड़े-थोड़े समय बाद कलई करवाकर साफ़ करा देना चाहिए। क्योंकि बड़ी होशियारी रखने पर भी सामान, फ़र्श व दीवारों पर रोग लगना संभव है। रोगी बोलते तथा खाँसते वक्त उससे तीन फ़ुट दूर रहने से रोग लगने का ख़तरा बिलकुल नहीं लगता। खाँसने, छींकने व ज़ोर से बोलने के समय जो रोग के कीड़े रोगी के मुख से बाहर निकलते हैं, ३ फीट से आगे नहीं जाते, शीघ्र पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। लेकिन उन थूक के कणों का धरती पर भी गिरकर सूखने देना ख़तरनाक है। इसलिये ज़रूरी है कि कमरे में कोई दरी आदि का फ़र्श न बिछाया जाय। सबसे उत्तम तो यह है कि कमरे में देवदारु के तख़्तों का फ़र्श करा दिया जाय और उसे गीले कपड़े से रोज़ पोंछकर तेल से चुपड़ दिया जाय। यदि संभव हो, तो कच्चे फ़र्श को गोबर-मिट्टी से और पक्के को सिरके मिले पानी से नित्य अवश्य धोना चाहिए। और उसमें कुछ सुगंध द्रव्य बिलकुल निर्धूम कोयलों पर जलाकर रख देने चाहिए, इस प्रकार कि धुआँ रोगी की हलक में न जाय। कमरे में धूप और हवा के आने जाने का अच्छा प्रबंध रहना चाहिए। मख़मल आदि से मढ़ी हुई मेज़, कुर्सी, कौंच, भारी-भारी पर्दे या और सामान जिनमें धूल जमा होती रहे, कमरे में कदापि न रखने चाहिए। चमड़े से मढ़े हुए बेंत या बाँस के बने सादे सामान अथवा चटाइयाँ सबसे अच्छी रहती हैं। पर्दे, चादर, गिलाफ़ निरंतर धुली रहनी चाहिए।

मित्र, कुटुंबी तथा नौकर आदि जरूरत से ज्यादा रोगी के पास बहुत न रहें। रोगी को उचित है कि खाँसते तथा छींकते समय अपने मुख या नाक के सामने सदा रूमाल रक्खे।

रोगी के समस्त वस्त्र (चादर, तकियो के गिलाफ, बनियान, जाकट, अँगौछा, रूमाल इत्यादि) आवश्यकता से अधिक हाथ मे नही रखना चाहिए, बल्कि वे रोगी के पलँग से उठाते ही जल मे डाल देना चाहिए। इन कपडों को प्रथम अलग धोकर तब धोबी को देना चाहिए।

तपेदिक का इलाज

क्या तपेदिक का भी इलाज है? इस सवाल का जवाब गभीरता-पूर्वक दिया जा सकता है कि "हाँ", परतु यह रोग अताइयों से, पेटेंट दवाओं से, ऊट-पटाँग लटकों से या अन्य गुप्त औपधियों से अच्छा नहीं हो सकता। वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर स्वच्छ जलवायु, धूप, श्रेष्ठ भोजन और आरोग्यकर रहन-सहन तथा खास-खास औषधियों की सहायता नितात आवश्यक है।

रोगी की पूरी खबरगीरी करना, यदि नए लक्षण उत्पन्न हो जायँ अथवा पुराने बढ़ जायँ या शीघ्र नष्ट न हों, तो तत्काल इलाज में हस्तक्षेप करना, रोगी के खाने-पीने का यथावत् प्रबंध करना सुयोग्य चिकित्सक का कर्तव्य है।

कभी-कभी रोगी आराम होकर विना चिकित्सक की राय के संसार के सुख-भोग और काम-धंधों मे तंदुरस्त मनुष्य की तरह लग जाते हैं, उन पर फिर बहुधा रोग का आक्रमण होता है, जो अति भयंकर होता है।

खुली हवा मे दिक के रोगी को दिन-रात रहने का अभ्यास बढ़ाना चाहिए। आँगन या छत पर, बराडे या चबूतरे पर, बेत की आराम कुर्सी पर लेटे रहना या धीरे-धीरे टहलना रात को गर्मी मे खुली छत पर और बरसात-सर्दी में खिडकी खुली छोड़कर सोना आवश्यक है। थोडे ही दिन मे रोगी को खुली हवा मे रहने का अभ्यास हो जायगा और मौसम की तबदीली, शीत-वर्षा आदि का उस पर कुछ भी प्रभाव न होगा। रोगी को कम-से-कम दिन-रात में ६-७ घटे खुली हवा मे रहना जरूरी है।

आयुर्वैदिक दवाइयो मे स्वर्ण, मोती, अभ्रक-भस्म, च्यवनप्राश, द्राक्षासव, द्राक्षादि घृत, छाग-घृत, लक्ष्मीविलास रस, कनकसुंदर रस, राजमृगाक रस, हीरा-भस्म, वासावलेह, अमृत-प्राश, सितोपलादि चूर्ण, स्वर्णमालती वसत आदि औषध तपेदिक पर भिन्न-भिन्न अवस्थाओं मे अपना उचित प्रभाव दिखाती हैं।

यूनानी ओपधियो में जवाहरात खास तौर पर इस रोग मे इस्तेमाल होते है।

डॉक्टरी चिकित्सा मे कॉडलीवर आइल, सीरप ऑफ फॉस्फेट ऑफ़ लाइम, और कई वस्तु दी जाती है। साथ ही नवीन शोध द्वारा कुछ इंजेक्शन भी प्रचलित है। भारत मे भुवाली (नैनीताल के पास) और धर्मपुर (शिमले के पास) तपेदिक के लिये सेनीटोरियम भी है, जहाँ बहुधा रोगी जाते हैं।

आब-हवा

नैनीताल, शिमला, अलमोड़ा, कश्मीर आदि स्थानों की ठंडी हवा क्षय के रोगियों को बहुत गुणकारी है, हर साल गर्मी में वहाँ सैकड़ों मरीज़ जाते हैं। वहाँ की स्वच्छ जल-वायु बहुत ही गुणप्रद है।

आहार-विहार

पुराने चावल, बकरी या गाय का दूध, मिश्री, मक्खन, मूँग, अरहर की दाल, घिया कद्दू, तोरई, पालक, टिंडे, भिंडी, परवल का शाक, पका हुआ पानी, खजूर, सेब, अनार, मुनक़ा, पपीता, नासपाती, बादाम तपेदिक के रोगी को खाना चाहिए। यथासंभव ख़ूब पुष्टि-कर भोजन करना और हल्के व्यायाम से उसे हज़म करना, तथा टहलने का अभ्यास बढ़ाए जाना, गहरी श्वास लेना, प्राणायाम करना, प्रसन्न रहना, धूप, गर्मी, मैथुन और भीड़ से बचना, शरीर पर जैतून का तेल, शतावरी तेल या चंदनादि तेल मालिश करना चाहिए।

प्रति सप्ताह वज़न करना और ध्यान करके देखना कि शरीर की वृद्धि होती है कि नहीं, बहुत ज़रूरी है। सदा अपने आप अच्छे चिकित्सक के सुपुर्द करना और उसकी पूर्णतया आज्ञा पालन करना चाहिए। अपनी इच्छा से सटर-पटर दवा कदापि न खाना चाहिए।

आरोग्य होने पर

आरोग्य होने पर रोगी को अपने चिकित्सक को अपना श्रद्धेय मित्र बना लेना चाहिए। तमाम बातों में जैसे पति-पत्नी-संबंध, विवाह, संतानोत्पत्ति, रोजगार, धंधे आदि के विषय में बराबर उसकी सम्मति लेना, और उसी सम्मति पर विश्वास रखना चाहिए। आरोग्य पाए हुए व्यक्ति के लिये भविष्य के लिये वे धंधे चुन लेने चाहिए, जो कि प्रथम बताए गए हैं, जिनमें खुली हवा में ज़्यादा रहना पड़ता है। उत्तम तो यह है कि गर्मी के दिनों में यथा-संभव उसे ठंडे पहाड़ों के आस-पास कहीं चला जाना चाहिए। ब्रह्मचर्य-व्रत ऐसे मनुष्य के लिये जीवन का रहस्य है—यथासंभव उसे ब्रह्मचर्य-पालन करना चाहिए।

अध्याय उन्नीसवाँ

हैज़ा

प्रकरण १

हमारे प्राचीन विचार और अंध विश्वास

भारतवर्ष में हैजा एक बहुत पुराना रोग है, और इसके नाम से लोग बहुत ही डरते हैं। मेरे ख़याल में प्लेग को छोड़कर और कोई ऐसा रोग नहीं है, जो हैजे के बराबर भय उत्पन्न करता हो। भारतवर्ष में मलेरिया, त्रिदोष, निमोनिया, संग्रहणी, चेचक आदि अनेक ऐसे रोग हैं, जिनमें लाखों मनुष्य प्रतिवर्ष मरते हैं। इन सबके मुकाबले में हैज़े से होने-वाली मृत्यु-संख्या बिलकुल थोड़ी है, परंतु फिर भी लोग इसके नाम से काँपते हैं। कई बार अनेक जिलों में इसका इतना ज़ोर हुआ है कि गाँव-के-गाँव इससे उजड़ गए हैं। कभी-कभी तो मुर्दों की इतनी भारी संख्या हो जाती है कि उनको उठाने और दाह करने के लिये मनुष्य नहीं मिलते। बहुधा ऐसा देखा गया है कि हैजे से मरे एक आदमी का दाह करके लौटे कि तत्काल घर के एक और आदमी को हैजा हुआ, इससे कुटुंब की हिम्मत टूट जाती है। एक जवान हट्टे-कट्टे आदमी को आप अभी हँसते-खेलते देखें और कुछ घंटों पीछे उसकी मृत्यु की ख़बर सुनें, तो बेशक आपका शरीर ढीला हो जायगा। कभी-कभी यह रोग २-३ घंटे में ही मनुष्य को मार डालता है। जो इसकी चपेट में आया, उसका बचना कठिन ही है। यही कारण है कि लोग इसके नाम से इतने भयभीत रहते हैं।

अफ़सोस की बात है कि हमारे देश के बहुत कम लोग इस महारोग फैलने के वास्तविक कारणों पर ध्यान देते हैं कि यह रोग ख़राब हवा, ख़राब पानी और ख़राब ऋतु के कारण फैलता है, पर लोग इस बात को न समझकर देवी-देवताओं को पूजते और यज्ञ-होम करते हैं। कहीं-कहीं काली आदि के मंदिर में बकरे काटे जाते हैं और लोग समझते हैं कि इससे रोग भाग जायगा। देहातों में देखा गया है कि जहाँ आस-पास के गाँव में हैजा फैला कि नीच जाति के लोग जो बहुधा भगत या स्याने कहाते हैं, पास के किसी देवी या चामुंडा के मंदिर में इकट्ठे होकर अनेक पाखंड करते हैं, उनमें एक तो सर हिलाता और मस्ती में बकता है, तब सब लोग समझते हैं कि देवी इसके सिर आ गई, तब सब लोग भक्ति-भाव से कहते हैं कि माता, हमारे ऊपर क्यों कोप किया है ? तब वह हुंकार भरकर कहता है कि इस

गाँव के ज़िमींदार ने मेरा भोग नहीं दिया है, मैं इस गाँव को भक्षण करूँगी, तब गाँववाले बकरा, मुर्गा, सुअर काटकर माता को तृप्त करते हैं।

कहीं-कहीं शतचंडी, सहस्त्रचंडी और नवदुर्गा का पाठ कराया जाता है। जब तक यह पाठ चलता है, ब्राह्मण को मिष्टान्न भोजन मिलता है। पीछे ब्रह्मभोज होता है। मिष्टान्न और पकान्न ख़ूब लोग खाते हैं, और फिर पटापट हैज़े मे मरते है। जिन दिनों में भोजन बहुत हल्का और पथ्य लेना चाहिए, और भारी पदार्थ खाने जिन दिनों में ख़तरनाक हैं, उन्हीं दिनों में उपवास करना या माल उड़ाना, यह हैज़े को चुनौती देने के बराबर है।

अब से कुछ समय प्रथम योरप में महामारी, हैज़ा, प्लेग इत्यादि रोगों को ईश्वर-कोप से उत्पन्न हुआ समझते थे। हमारी तरह वे ऋतु, अस्वच्छता आदि कारणों पर ध्यान नहीं देते थे। सन् १८५३ में स्काटलैंड के एडिनबरा शहर में हैज़ा फैला, उस समय वहाँ के नगर-वासियों ने उस समय की अँगरेज़ सरकार के प्रधान मंत्री लार्ड पामर्स्टन के पास एक प्रतिनिधि-मंडल भेजा, उसकी मार्फ़त उन्होंने मंत्री से यह अर्ज़ की कि रोग निवारणार्थ एडिनबरा नगर के निवासी एक दिन उपवास किया चाहते हैं, वह दिन आप नियत कर दें। लार्ड पामर्स्टन ने जवाब दिया, जब तक रोग उत्पन्न होनेवाले कारण एडिनबरा में मौजूद रहेंगे, तब तक चाहे जितना उपवास करो और चाहे जितनी भी ईश्वर-प्रार्थना करो, फिर भी रोग शांत नहीं होगा। उस समय महामंत्री के वचनों से लोगों के विश्वास को बड़ा धक्का लगा। परंतु उसके बहुत दिन बाद उस विद्वान् मंत्री की बात सच हुई और अब योरप में ऐसे रोग बहुत कम देखने को मिलते हैं।

हैज़े का इतिहास

हैज़े की बीमारी पूर्वी एशिया की ख़ास बीमारी है। दक्षिणी बंगाल और ख़ासकर गंगा और ब्रह्मपुत्र के संगम से लेकर समुद्र-तट तक के प्रदेश में और उसके आस-पास के नीचे के प्रदेश में, मद्रास अहाते में, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों के मुहानों के आस-पास के प्रदेश में, उधर ब्रह्मा में इरावती और साल्वीन नदियों के मुहाने के आस-पास के प्रदेश में, मलाका, कँबोडिया, कोचीन, चीन, टोन्किन और चीन में यॉगसीक्याँग नदी के मुहाने के पास के प्रदेशों में हैज़े की बीमारी थोड़ी-बहुत बनी ही रहती है। ईशान-कोण और अयोध्या के आस-पास की नीची भूमि में इसका उपद्रव निरंतर बना रहता है, और वहीं से यह रोग रेल और मनुष्यों के साथ समस्त देश में फैलता है।

ऐसा मालूम होता है कि जब से योरप के लोग भारत में आए, तब से पहले योरप में यह रोग नहीं था। इसीलिये योरप में इस रोग का ज्ञान बिल्कुल नवीन है। जब सन् १४९७ में वास्कोडिगामा पोर्तुगीज यात्री सबसे प्रथम योरप से भारत में आया, और मालाबार पाइंट पर लंगर डाला, तब उसके खलासियों को सर्वप्रथम यह रोग हुआ। यह बात वास्कोडिगामा ने अपनी डायरी में लिखी है। इसके बाद योरप के लिये भारत

का द्वार खुल गया, और योरपवासियों की अधिक आमदरफ्त होने लगी, फिर भी दो या तीन सौ वर्ष तक यह रोग योरप में नहीं गया। उन दिनों 'केप ऑफ् गुडहोप' के रास्ते योरपवाले आते-जाते थे। पर ज्यों-ज्यों मुसाफिरी को सरल करने के रास्ते सोचे और खोजे गए और सीधी मुसाफिरी होने लगी, मिश्र और अरब समुद्र के रास्ते यह रोग योरप में घुसा। फिर स्वेज नहर खुलने के बाद तो योरप में भी हमारी ही तरह यह रोग खूब प्रचलित हो गया।

सन् १४३८ में गुजरात के बादशाह अहमदशाह ने मालवे के एक शहर का घेरा किया। उस समय उसकी सेना में यह रोग ऐसा फैला कि धराधार कर दिया, और उसे वहाँ से घेरा उठाकर भागना पड़ा। तब से अँगरेज़ी राज्य होने तक इस रोग के लिये कोई बड़ा बंदोबस्त नहीं किया गया। अँगरेज़ी सरकार ने इस रोग की जाति पर विशेष ध्यान दिया।

सबसे प्रथम सन् १७८१ ई० में सरकार का ध्यान इस ओर गया। इस साल कर्नल पीयर्स बंगाल के ५ हज़ार सिपाही लेकर दक्षिण की तरफ सर आयर कूट की सेना से मिलने के लिये निकला। मार्ग में ही फौज में हैजा फूट पड़ा और ११४२ सिपाही इस रोग की भेंट चढ़े। कर्नल पीयर्स ने अपनी डायरी में लिखा है कि ऐसी भीषण रीति से यमदूतों ने कहर वर्षा किया कि सब कोई यह समझता था कि प्रत्येक इस महामृत्यु के पल्ले पड़ेगा। इसी साल बंगाल में खूब ज़ोर का हैज़ा फैल रहा था।

सन् १७८३ में हरिद्वार का कुंभ भरा, इसमें ऐसा भयंकर हैज़ा फैला कि २० हज़ार मनुष्य इसके चपेट में पिस मरे। इन दिनों मद्रास में इसका बड़ा ज़ोर था।

सन् १८१७ में बंगाल के जैसोर परगने में खूब हैज़ा फूटा, जिससे १० हज़ार मनुष्य मर गए। उसका आँखों देखा वर्णन डॉक्टर टिटलर लिखते हैं—

"बाजार में मरी फैल रही है। इसमें रोगी के प्रत्येक अंग में दर्द और ऐंठन होती है, फिर चक्कर, बेहोशी, उलटी और दस्त लगते हैं। रोगी का चेहरा चिंतातुर और शरीर अत्यंत निर्बल हो जाता है, और नाड़ी खो जाती है। जो ऐसे रोगी को प्रथम 'केलोमेल' की भरपूर मात्रा और पीछे अफ़ीम न दी जाय, तो रोगी २४ घंटे में मर जाता है।"

उसी साल के नवंबर मास में तत्कालीन गवर्नर जनरल वारन हेस्टिंग्स की फौज में हैज़ा फैल गया। इन दिनों मराठों से अँगरेज़ों की लड़ाई हो रही थी और बुंदेलखंड में सिंध के किनारे उसका पड़ाव था, उस समय का वर्णन वारन हेस्टिंग्स ने अपनी डायरी में इस तरह लिखा है—

"ता० १३वीं नवंबर, १८१७—कलकत्ता और दक्षिण के प्रांत में भयंकर हैज़ा फैल रहा है। छावनी में भी वह फूट निकला है। गंगा नदी के रास्ते चढ़कर यह रोग पटना, गाज़ीपुर, काशी और कानपुर तक पहुँच गया है। यहाँ तालाबों का पानी ही ज़्यादा पिया जाता है, जो कि

अत्यंत दूषित है। बहुत लोगों का विश्वास है कि इस पानी के पीने से रोग फैलता है। इसलिये यद्यपि एक हजार मनुष्यों के लिये गाड़ी का प्रबंध करना पड़ेगा, फिर भी मैं कल ही कूच करूँगा।"

ता० ५ नवंबर—आज हमने पुहुज नदी पार कर ली। यह भयंकर छूत का रोग बेचारे सिपाहियों पर कूच करते-करते हमला करता है, इससे कूच में बहुत असुविधा हो रही है। कल से आज तक ५०० मनुष्य मर चुके हैं।

सन् १८१८ ई० में सर्दी में रोग का कुछ ज़ोर शांत हुआ। परंतु ग्रीष्म-ऋतु आते ही उसका फिर प्रकोप हुआ, और गंगा और यमुना के रास्ते ऊपर चढ़ते-चढ़ते दिल्ली और आगरे आ पहुँचा। इसके बाद एक तरफ पंजाब और दूसरी तरफ बंबई अहाते तक फैल गया। पंजाब में ज़ोर कुछ ज्यादा रहा।

सन् १८१९ में अरब में 'ओमान' के हाकिम की मदद के लिये एक फौज लेकर कप्तान टॉम्सन बंबई से अरब गए। दूसरे वर्ष एक दूसरी टुकड़ी पहुँची। इसके पहुँचने के बाद थोड़े ही दिनों में 'ओमान' में हैज़ा फूट निकला। अरब के इतिहास में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार है—

इसी साल पहलेपहल ओमान में मरी फैली। इसी मरी में मनुष्य के पेट पर असर होता है, जिससे उल्टी और दस्त लग जाते हैं। शीघ्र ही मनुष्य मर जाता है। ओमान में बहुत मनुष्य मरे। हिंदोस्तान, मकरान और सिंध में भी यह रोग फैल रहा है। इसमें संदेह नहीं कि हिंदोस्तान से गई हुई सेना के द्वारा ही यह रोग उस देश में पहुँचा। सन् १८२१ में मस्कत में, ईरान के अनेक हिस्सों में, एशियाई तुर्किस्तान में, टिफिलिस में और आस्ट्राख़ान में यह रोग फैला। यह देख रूस ने इस रोग को अपने देश में फैलने से रोकने के लिये तत्परता से काम लिया, जिससे रूस में इसका प्रभाव नहीं बढ़ा।

इन दिनों में भारतवर्ष में कलकत्ता से मद्रास और सीलोन तक समुद्र के किनारे-किनारे-वाले गाँवों में हैज़े का भरपूर ज़ोर था। वहाँ से वह ब्रह्मदेश और श्याम में फैला। उसके बाद जावा में फूटा, जिससे एक लाख मनुष्य मर गए।

चीन में सन् १८२० के साल में पहली बार हैज़े के दर्शन हुए। चूँकि सन् १८१७-१८ में भारत में यह रोग फैल रहा था, और अँगरेजी जहाज़ों का पूर्व और पश्चिम दोनो तरफ आवागमन जारी था, उन्हीं के ज़रिए यह रोग चीन, अरबस्थान और मोरीशस टापू में फैला।

एक डॉक्टर जो एक जहाज़ का सर्जन था, लिखता है, ता० ९वीं ऑक्टोबर को ट्रीकीमाली से हमारा जहाज़ चला, उस समय उस बस्ती में हैज़ा फूट रहा था। जहाज़ पर ७० मनुष्यों को हैज़ा हुआ, जिनमें ४ मरे। २९वीं ऑक्टोबर को जहाज मोरीशस पहुँचा। उस पर के २६ मनुष्यों को किनारे पर उतारा गया और लुई बंदर के फौजी अस्पताल में रक्खा गया। इनमें ४ मनुष्य मर गए। १९वीं नवंबर को उस टापू में हैज़ा फैला, इससे प्रथम वहाँ कभी यह रोग

न हुआ था, वहाँ से चारों तरफ फैला। मॉरीशस के पास 'आइल ऑफ़् फ्रांस' का टापू है। वहाँ के गवर्नर की चेष्टा से यह रोग वहाँ फैलने से रुक गया।

सन् १८२३-२४-२५ के साल में हैज़े का ज़ोर बहुत कम रहा। सिर्फ़ बंगाल में थोड़ा-बहुत उपद्रव चलता रहा।

सन् २६ में फिर इसने जोर पकड़ा। सबसे ज़्यादा जोर दक्षिण बंगाल में, ख़ासकर कलकत्ते के आस-पास के प्रदेश में, हुआ।

१८२७ ई० में वायव्य प्रांत में उसका ज़ोर बढ़ा, और राजपूताना और पंजाब-भर में फैल गया। उसके बाद भारत-भर में जगह-जगह फैला, और अँगरेज़ी फौज में बहुत स्थानों पर ख़ूब ज़ोर से फूट निकला।

१८२९ में लेफ्टिनेंट कोलिन, जो उस वक़् हिरात में था, लिखता है—"हैज़े का ज़ोर तमाम अफ़गानिस्तान में फैल रहा है। यह ख़ुरासान से ईरान में दाख़िल हुआ है। ईरान की राजधानी तेहरान बर्बाद हो गई है। बुख़ारा भी चौपट हो रहा। वहाँ से यह रोग रूस की सरहद के औरनबर्ग नगर में आने-जानेवाले व्यापारियों के द्वारा फैला है।

सन् १८३० में ईरान में रोग का ख़ूब ज़ोर रहा, वहाँ से वह कास्पियन-समुद्र के रास्ते ताब्रीज और रेशी नगर में दाख़िल हुआ। उसके पीछे टिफलिस और आस्ट्राख़ान में आया। वहाँ से मास्को और पश्चिमी रूस में घुसा, इन दिनों पोलैंड और रूस में युद्ध हो रहा था। इस सुअवसर पर पोलैंड में भी इसके चरण पहुँच गए।

सन् १८३१ में समस्त रूस में हैजा फैल रहा था। वहाँ से स्वीडन में उसका प्रवेश हुआ, शीघ्र ही आस्ट्रिया और जर्मनी की राजधानियों में भी उसका प्रवेश हो गया। इन दिनों उत्तर-जर्मनी में कबूतर, हिरन और कुछ नदियों में मछलियाँ बेढंग मर रही थीं। यह अगस्त मास के लगभग की बात है। ऑक्टोबर के अंत में यह रोग हैंबर्ग के रास्ते जहाज़ में चढ़कर इँगलैंड पहुँचा। वहीं सँडरलैंड बंदर में जो लोग जहाज़ पर माल लादते-उतारते थे, उनमें फैला। फिर इँगलैंड में जगह-जगह फैल गया। सन् १८३२ के जनवरी में एडिनबरा में, फ़र्वरी में लंडन में और मार्च में डब्लिन में दाख़िल हुआ। इँगलैंड से केले के रास्ते फ्रांस में प्रवेश किया। इन दिनों पैरिस में एक-एक दिन में ४-५ सौ मनुष्य मरने लगे। जून में यह रोग डब्लिन से केनेडा के करीब के शहर में फैला। डब्लिन से एक जहाज १७२ यात्रियों के साथ एप्रिल में चला। कार्क बंदरगाह से निकलते ही उसमें हैजा फूट निकला। जिनमें ४९ मनुष्य क्वीवेक पहुँचते-पहुँचते मर गए। इन लोगों को क्वीवेक से थोड़े फ़ासले पर एक टापू में उतारा गया था, पर क्वीवेक से लोगों का जाना-आना बने रहने से यह रोग वहाँ फूट पड़ा। वहाँ से यूनाइटेड स्टेट्स न्यूयार्क और फ़िलडेलाफिया में फैल गया। वर्ष के बीतते-बीतते अमेरिका के अधिकांश में फैल गया।

१८३१ की बाबत—लेफ्टिनेंट वेलस जो उस समय अरब-समुद्र की जाँच में लग रहे

थे, लिखते हैं कि मक्का और मदीना जानेवाले यात्रियो मे हैज़ा ज़ोर का फैल रहा था। उनके द्वारा मिस्र, सिरियाँ, तुर्किस्तान में बढ़ते-बढ़ते आफ्रिका में फैल गया।

सन् १८३२ में इँगलैंड से भारत जाते-आते जहाज़ो की मार्फ़त ही यह रोग स्पेन और पुर्तगाल में दाखिल हुआ। और माद्रिड, सेविल तथा बर्सिलोना मे उसका खूब ज़ोर रहा। इन दिनों योरप में एक देश से दूसरे देश जाने में कोरेंटाइन में रखा जाता था। और उसका नियम भंग करनेवाले को प्राण-दण्ड मिलता था। इतनी कठिन व्यवस्था होने पर भी लोग आँख बचाकर निकल जाते थे। इस कारण रोग की रोक कुछ भी न हो सकी।

सन् १८३४ से १८३६ तक यह रोग हिंदोस्तान मे बहुत कम हो गया। सन् १८४० में कलकत्ता और मद्रास में तथा उसके आस-पास के गाँवो में यह रोग ज़ोर से फूट निकला। इस साल में इन दोनो जगहो से अँगरेज सरकार की तरफ से चीन में भेजे जाने के लिये सेनाओं की भरती हो रही थी। यह सेना एप्रिल मे सिंगापुर पहुँची। इस नगर में तथा पीनाग-मलाका आदि पडोस के नगरो में पिछले तेरह वर्षों में कभी भी हैज़े की घटना नहीं हुई थी। फ़ौज पहुँचने पर इस रोग के चिह्न प्रकट हुए। फौज आगे चलकर जुलाई में चुसान के टापू पर पहुँची। वहाँ पहुँचते ही २० सिपाहियों को हैज़ा हुआ। साथ ही टापू की बस्तियों मे फैल गया। यह फ़ौज ज्यो-ज्यो चीन में बढती गई और चीनी लोगो में छुआछूत बढ़ती गई, त्यो-त्यो चीन मे इसका ज़ोर बढता गया। सन् १८४१ से ४३ तक समस्त चीन मे यह रोग व्याप गया और उससे लाखो मनुष्यो का संहार हो गया।

प्रो० ई० पार्कस, जो सन् १८४२ मे ब्रह्मा में फौजी सरजन थे, लिखते हैं—"हैजे का प्रथम बार ज़ोर ब्रह्मा के उत्तर भाग में हुआ और यह चीनी लोगो के संसर्ग से। वहाँ से वह दक्षिण की ओर बढ़ते-बढते इरावती नदी के किनारे के गांवो होता हुआ रंगून मे दाखिल हुआ।"

सन् १८७० में काशगर से एक राजदूत हिंदोस्तान के वायसराय लार्ड मेयो से मिलने कलकत्ते आया था। हैज़े के संबध में बातचीत करते हुए उसने कहा था कि "यह रोग चीन से पहले यारकंद में आया, फिर यह चीन की तरफ़ जाने-आनेवाले रास्ते के प्रदेशो में फैला और काशगर, खोकद, बुखारा आदि शहर मे उसने हजारो मनुष्यो का संहार किया। हर जगह उसका ८-१० दिन ज़ोर रहता था। इससे २५ वर्ष प्रथम यह रोग हिंदोस्तान से और एक बार आया था। सन् १८४४ मे चीन और चिनाई तातार के बीच चाय का बडा भारी व्यापार चल रहा था, उन्हीं चाय के बोरो मे यह रोग तातार में भी पहुँचा। जहाँ २५,००० मनुष्य इससे मर गए। वहाँ से अफ़गानिस्तान के रास्ते पेशावर होता हुआ लाहौर में आया। उस समय लाहौर में इससे २०,००० मनुष्य मर गए।

सन् १८४५ और ४६ में बंबई के इलाके में यह रोग फिर फैला। और सन् १८२१ की तरह इस वक्त भी बंबई से अरब में दाखिल हुआ। अदन, मोखा, जेडा, मक्का वगैरा गाँवो में खूब ज़ोर रहा। इस साल में मक्का में हज्ज करने गए हुए लोगों मे १५,००० लोग इस रोग मे मरे।

वहाँ से यह रोग यूफ्रेटीस और टाइग्रीस नदी के ऊपर के देशो में फैलता हुआ योरप मे चला गया। उधर साल-भर से बुख़ारा और अफगानिस्तान मे जो बीमारी फैल रही थी, वह फैलते-फैलते लगभग इन्हीं दिनो में योरप में पहुँची । तारीख़ ४ जुलाई १८४७ में आस्ट्राखान में रोग के चिह्न देखे गए। वहाँ से ओरनबर्ग, विल्नि, नधगोरोड, मास्को वगैरा शहरो में पहुँचा, और पीछे रूस के विशाल देश में चारो तरफ़ फैल गया।

सन् ४८ में क़रीब-क़रीब तमाम योरप मे यह रोग देख पडता था । इसी साल रूस के कोसटाट बंदर से एक जहाज़ इँगलैंड के लीथ बदर पर आया । इस जहाज़ के ख़लासियों मे रास्ते ही मे हैजा फैल गया था, उनके ही कारण थोडे ही दिनों मे तमाम स्काटलैंड मे यह रोग फैल गया। उसी तरह से हैंबर्ग से निकला हुआ एक जहाज़ इँगलैंड के सँडरलैंड बंदर पर आया। उस पर भी ख़लासियों मे हैज़ा फैला हुआ था । इसी साल आयर्लैंड मे इस रोग का लक्षण दीख पडा। एक आदमी जो कि एडिनबरा से आया था, उसे बेलसफ़ास्ट के वर्कहाउस मे दाख़िल किया गया । सबसे पहले उसे यह रोग लगा, और उसके बाद वर्क-हाउस के दूसरे लोगो मे और वहाँ से तमाम आयर्लैंड मे फैल गया।

सन् १८३३ से १८४८ तक १५ वर्ष तक अमेरिका मे हैज़ा बिलकुल नहीं दीख पडा, परतु इसी साल के नवबर में फ्रास के न्यू आर्लियस को जाते हुए एक जहाज़ के यात्रियों मे बीमारी फैली। उनमे से कुछ को वहाँ के अस्पताल में रक्खा गया । उनसे यह न्यू आर्लि-यंस मे फैल गया, और वहाँ से मिसिस्पी-नदी के किनारे बसे नगरों मे फैला। दूसरे साल United States मे फैला। इस साल रोग का ज़ोर एशिया, योरप, अमेरिका और योरप के और-और हिस्सो मे जिस-जिस भाग मे दिखाई दिया, वहाँ वह अत्यत भयकर था, और लाखों मनुष्यो का सहार किया।

सन् १८५० मे यह रोग तमाम हिंदोस्तान मे बडे जोर से फूटा। अकेले बंबई मे इस साल मे ४७२९ और सन् ५१ में ४००० मनुष्य मरे । बबई से यह रोग जहाज़ो के द्वारा बसरे मे फैला। सन् ५४ मे लदन के कुछ हिस्सों मे इस रोग का ज्यादा ज़ोर रहा।

इस बार लदन के पीने के पानी मे ही इस रोग का असर ज्यादा था । नल की मार्फ़त जिस-जिस भाग मे गदा पानी आता था, उसी भाग में हैजे का जोर दिखाई पडा। और जहाँ-जहाँ पानी छनकर आता था, वहाँ बीमारी का ज़ोर बिलकुल नहीं था। यह बात ध्यान मे आते ही पार्लियामेंट ने एक कानून बनाकर वाटर कपनी को इस बात पर मजबूर किया कि वह शहर के लोगों को रेत से छानकर पानी पहुँचाए । और ज्यों ही साफ पानी मिलने लगा, त्यो ही रोग का ज़ोर वहाँ बहुत कम हो गया।

सन् १८५६ मे मारिशस मे यह रोग फैला। जनवरी मास मे ही दो जहाज़ कलकत्ते से मारिशस को रवाना हुए थे। इन दिनो कलकत्ते मे बीमारी का ज़ोर था। इससे इन दोनो जहाज़ो के ख़लासियो मे रोग फूट पड़ा। मारिशस के अधिकारियों ने इन लोगों को

ग्रेविम्रल के टापू पर रोक लिया। इस टापू के पास फ्लेट टापू है। दोनो मे बहुत कम अंतर है। और मनुष्यों का आना-जाना बना रहता है। उनमें रोग प्रवेश कर गया। ये लोग पोर्टलुई से सौदा-सुलफ लाते है। अतएव शीघ्र ही वहाँ भी रोग फैल गया। धीरे-धीरे आस-पास के समस्त टापुओ मे रोग फैल गया और हजारों मनुष्य इससे मर गए।

सन् ५७ मे जब गदर हुआ, तब भी हैज़ा सारे भारतवर्ष में फैल रहा था, और अँगरेजी फ़ौज में भी इसका पूरा जोर था। इन दिनो कालका और अंबाला छावनी में इसका ज्यादा ज़ोर रहा। अंबाला में तो अँगरेज़ी फ़ौज व छावनी थी ही। कालका में होकर उसका आना-जाना बना रहता था। वहाँ होकर जो टुकड़ी गुज़रती, उसमें हैजा फैलता। कारण यह था कि कालका में पीने के मतलब का पानी सिर्फ़ एक झरने से आता था, और वह झरना गाँव से नीचे की तरफ था, इससे उसमे बहुत कुछ मल-मूत्र का प्रवेश होता रहता था। इस पानी को फौज में जिसने पिया, उसे हैज़ा हुआ।

सन् १८५९ में बंबई-प्रात मे और मद्रास मे ज्यादा जोर रहा। १८६० मे दुष्काल और हैज़ा दोनो ने देश को तबाह किया।

सन् १८६१ में बंगाल की गोरी पल्टन में इस रोग का ज़हर अधिक देखने में आया। पंजाब की मियाँमीर की छावनी मे भी ख़ूब हैजा फूटा, जिससे उनके सिपाही मरे। पिछले साल जहाँ-जहाँ अकाल पडा, वहाँ-वहाँ इस वर्ष ख़ूब ज़ोर से हैज़ा फूटा।

सन् १८६३ में बंगाल, बिहार, मध्यभारत और दक्षिण में हैज़े का भरपूर ज़ोर रहा। इसी साल नवंबर में पंढरपुर में एक बडा मेला हुआ, उसमे हैज़ा फूटा, वहाँ से यात्रियों के साथ तमाम दक्षिण भारत में उसका प्रसार हुआ।

सन् १८६४-६५ में बबई, सिंध, ईरान और अरब के प्रदेशो मे इस रोग का फैलाव हुआ। इस साल जो लोग हज्ज करने मक्का गए, उनमें ३० हज़ार मनुष्यो ने इस रोग से प्राण खोया।

इन दिनो मिश्र, योरप और अमेरिका मे रोग का कुछ भी चिह्न न दीखता था। हज्ज करनेवाले यात्रियो मे से कुछ यात्री स्वेज और अलेग्ज़ेंडरिया गए, वहाँ से यह रोग मिश्र मे दाख़िल हुआ और सिर्फ़ तीन महीने मे ६० हज़ार मनुष्य मर गए। इससे लोगो मे ऐसी हडबडी फैली कि लोग तुर्क, यूनान, इटली आदि देशो को अधाधुंध भाग गए। वे जहाँ-जहाँ गए, रोग उनके साथ गया, और थोडे ही काल मे समस्त योरप में उसका राज्य हो गया।

इसी साल बंबई इलाके के भिन्न-भिन्न प्रात, कोकण, दक्षिण, गुजरात और सिंध में लगभग १७३०६२ मनुष्य हैज़े से मरे। और सन् १८६६ में ४६०७४ मनुष्य मरे, जिनमें ११२०२ मनुष्य सिर्फ़ धारवाड इलाके में मरे।

सन् १८६७ मे हरद्वार मे फिर कुंभ का मेला भरा। इस बार इतनी भीड़ थी कि पहले

बहुत कम देखी गई थी। लोगों में एक अफवाह इस समय उड़ रही थी कि अब से आगे गंगा का माहात्म्य नष्ट हो जायगा। इसलिये अंतिम बार गंगा के पवित्र जल में स्नान करने लाखों मनुष्य आए थे। अनुमानतः ३० लाख मनुष्य इस मेले में इकट्ठे थे। हरिद्वार-जैसे छोटी बस्ती में न इतने मनुष्यों को रहने, न खाने का बंदोबस्त था। ये लोग कोसों तक बाहर जहाँ-तहाँ पड़े रहते, दिन-भर भटका करते। कच्चा-पक्का खाते, रात्रि को ज़मीन पर पड़े रहते। ऐसी दशा में हैज़ा क्यों न फैलता? ११वीं एप्रिल को बदली हुई, और रात-भर पानी बरसा। अगले दिन अर्थात् १२वीं तारीख़ को पर्व-दिन था, दोपहर के समय स्नान का मुहूर्त था। हर की पैंड़ी पर, जो ६५० फ़ुट लंबी और ३० फ़ुट चौड़ी थी, इस एक ही समय में ३० लाख मनुष्य नहाने को इकट्ठे हो गए। हद से बाहर लोग न जा सकें, इस लिये चारों तरफ कटहरा लगा था, और उस स्थान पर मरे हुए सबंधियों की राख, हड्डी डाली जाती थी। पानी अत्यंत गंदा और घृणित हो गया था, परंतु स्नान करती बार प्रत्येक यात्री को उसी में आचमन करना पड़ता था।

परिणाम यह हुआ कि अगले ही दिन १३ ता० को हैज़े का उपद्रव शुरू हुआ। और एकदम फूट निकला, १५ ता० को लोग भागने लगे। इनमें से अधिक यात्री पंजाब और वायव्य कोण के थे। शीघ्र ही इनसे समस्त पंजाब में ज़ोर का हैज़ा फूट पड़ा और वहाँ से अफ़ग़ानिस्तान, आस्ट्राबाद, ख़ीव वग़ैरह शहरों में दाख़िल हुआ। वहाँ से रूस में पहुँचा और रूस से योरप में। इस झपाटे में काबुल में ८ हज़ार, रूस में २४१८०० और योरप में लगभग १० लाख मनुष्य मरे। हिंदोस्तान की मृत्यु-संख्या गिनी नहीं जा सकी।

१८६९ में बंबई इलाके में इसका ज़ोर हुआ। इस साल बरसात अधिक हुई थी, पर अनाज महँगा था, इस कारण दक्षिण में अधिकांश लोग भूखों मर रहे थे। इस कारण दक्षिण कोंकण, गुजरात और सिंध में कुल १०४६३२ आदमी मरे।

इसके बाद सन् ७५ से सन् ८१ तक ६ वर्षों में बंबई इलाके के भिन्न-भिन्न प्रांतों में क़रीब पौने ४ लाख मनुष्य हैज़े से मरे, जिनमें अनुमानतः दो लाख सिर्फ़ दक्षिण प्रांत में ही मरे। सन् १८७७ में २½ लाख से ऊपर मनुष्य मर गए, जिनमें अनुमानतः २ लाख सिर्फ़ दक्षिण-प्रांत में ही मरे।

सन् १८८२ में एक जहाज़ ५०१ हाजियों को लेकर बंबई रवाना हुआ। रास्ते ही में हैज़ा फूट निकला, इनमें कई तो मार्ग ही में मर गए। शेष के मक्के पहुँचते ही शहर में हैज़ा फैला, वहाँ से कुछ लोग मिश्र को भागे। मिश्र में इतना ज़ोर का हैज़ा फूटा कि २ या ३ मास में ही ५० हजार मनुष्य मर गए।

मिश्र में ऐसी भयंकर मरी सुनकर जर्मनी, फ्रांस और अमेरिका ने अपने-अपने डॉक्टरों को इस रोग की विशेष जानकारी के लिये मिश्र भेजा। जर्मनी की तरफ से डॉ० कार्क आया था, उसने बहुत खोज-जाँच की। फिर वह हिंदोस्तान में आकर बंबई और कलकत्ता गया

और अपनी परीक्षाएँ की। उसका परिणाम यह निकला कि हैज़े के रोगी के दस्त में एक प्रकार के सूक्ष्म कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। उनका नाम उसने "कोमा बेसीलस" रक्खा।

सन् १८८४ में योरप में फिर यह रोग फैला, और ३ वर्ष तक चलता रहा।

सन् १८६१ में हरद्वार में फिर कुंभ भरा। पर इस बार हैज़ा नहीं फैला। परंतु इसके एक वर्ष बाद वहाँ एक साधारण मेला भरा, उसमें हैज़ा भयंकर रूप में फूट पड़ा। सरकार ने तत्काल मेला बखेर दिया, और बाहर के यात्रियों को आने से रोक दिया। यहाँ से लौटे हुए लोग जहाँ-जहाँ गए, रोग उनके साथ गया। पंजाब, काश्मीर, अफगानिस्तान में रोग का खूब ज़ोर रहा। काश्मीर के श्रीनगर में १ लाख २४ हज़ार मनुष्यों की बस्ती में ४००० मनुष्य मर गए। अफगानिस्तान में रोग पहुँचते ही ईरान और रूस ने वहाँ के यात्रियों को ४० दिन तक कोरेंटाइन में रखने का बंदोबस्त किया। मई-मास में यह रोग मेशद शहर में पहुँचा। और इतना ज़ोर किया कि रोज ७-७ सौ मनुष्य मरने लगे। इस बार इतनी रोक-टोक करने पर भी रोग रूस में फैल गया, और वहाँ के २ लाख ८० हज़ार मनुष्य इसकी भेंट हुए।

सन् १८६६ में भारत में भयंकर अकाल पड़ा था। इसी साल बंबई में सर्व प्रथम प्लेग फैला। वहाँ से पूना, कराँची, सूरत, कच्छ, माडवी वग़ैरा शहरों में फैलने लगा। सन् १८६७ के प्रारंभ में जब इस मरी का ज़्यादा ज़ोर हुआ, तब इसके भय से आधी बंबई ख़ाली हो गई, और व्यापार को भारी धक्का लगा। इस भयंकर रोग के सामने लोगों को हैज़ा कुछ साधारण-सा दीखने लगा। यद्यपि बहुत जगहों पर हैज़ा फैल रहा था, फिर भी उधर लोगों का ध्यान बहुत कम गया। अकाल के मारे कुछ कंगाल मनुष्य हैज़ा और प्लेग के झपाटे में अंधाधुंध मरे।

हैज़े की उत्पत्ति के कारण

जब से योरप में हैज़ा फैला, और पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान इस ओर गया। तब से अब तक भारत और योरप में इस संबंध में बहुत कुछ छानबीन हुई है, फिर भी अभी तक कोई निश्चित सिद्धांत निर्धारित नहीं हुआ। किसी का मत है, पानी की ख़राबी से, किसी का मत है कि वायु या पृथ्वी की ख़राबी से और किसी का मत है, अजीर्ण से हैज़ा फैलता है। परंतु सबसे नवीन शोध करनेवाले विद्वानों का यह मत है कि इस रोग के उत्पादक अत्यंत सूक्ष्म जंतु हैं।

यह रोग अनेकों स्थानों में भिन्न भिन्न रूप से फैला। सब जगह इसके एक-से लक्षण नहीं पाए गए, इस कारण जहाँ-जहाँ जैसे जैसे स्वरूप और कारण दृष्टि पड़े, विद्वानों ने उन्हीं को रोग का मुख्य कारण मान लिया। भारतवर्ष में हैज़ा तीन प्रकार से फैला और योरप तथा अमेरिका में दो प्रकार से। भारतवर्ष के तीन कारण इस प्रकार के हैं—

१—भारतवर्ष के कुछ भागों में, जैसे दक्षिण बंगाल, वायव्य-प्रांत, अयोध्या, मद्रास, ब्रह्मा,

चीन आदि देशों मे यह रोग निरंतर बना रहता है। इन भागों में इसका उपद्रव मानो घर कर गया है। भारत के ये भाग नीचे और तर है। इन स्थलों मे क्वॉर-कार्तिक या अगहन के महीनों मे अथवा चैत्र-वैशाख मास मे रोग का जोर विशेष रहता है। बाकी महीनो मे थोडा-बहुत चलता ही रहता है। इन स्थलों मे जो तीर्थ-यात्री जाते हैं, उनमें अधिकाश कमार, गुडधानी, लड्डू, मुरमुरे आदि बाँधकर साथ ले जाते है। और उन्हें ही महीनों खाया करते हैं। और अधिकाश मे उसके शिकार होते है। योरप और अमेरिका मे अभी तक यह रोग निरंतर बना रहता नहीं दीखा है।

२—भारत के अन्य भागों मे यह रोग महामारी की तरह फैलता है। और एक स्थान से दूसरे स्थान पर आनन-फ़ानन पहुँचता है, और जहाँ पहुँचता है, सफाया कर देता है। योरप और अमेरिका मे भी जहाँ-जहाँ यह रोग फैला, महामारी के रूप मे फैला, और अधि-काश मे यहीं से गया। कभी-कभी योरप मे ख़ूब जोर का हैज़ा फूटा जरूर है, पर इससे जितनी मृत्यु हमारे देश में होती हैं, इतनी योरप मे नहीं होती, और न योरप-अमेरिकावाले इस रोग से इतना भयभीत ही होते है।

३—कभी-कभी हैजे का एकाध रोगी देखने मे आता है। किसी-किसी बस्ती में दो-चार केस होकर रह जाते है, और रोग का ज्यादा जोर नहीं होता। इसका कारण यही हो सकता है कि ऐसे रोगी कहीं बाहर से रोग का बीज लेकर आए, परतु उस स्थान में रोग के फैलने के कारण न होने से महामारी के रूप मे हैजा नहीं फैला।

इसमे तो संदेह नही कि रोग उड़कर लगनेवाला है, और इसकी छूत नदियो अथवा स्थल के रास्ते भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलती है। अब विचारणीय विषय यह है कि यह छूत किस प्रकार की है। इसकी उत्पत्ति का स्थान और कारण क्या है? किस तरह इसका एक स्थान मे फैलाव होता है। और किस-किस पदार्थ के द्वारा शरीर में प्रवेश करता है। इस पर भिन्न-भिन्न विद्वानो के भिन्न-भिन्न मत है, किन्हीं का मत है, इस रोग की छूत हवा मे है, किसी का मत है, पानी मे कोई कहते हैं कि गदगी से यह छूत उत्पन्न होती है। किसी का मत है, श्वास-नलिका मे होकर इस छूत का विष शरीर मे जाता है। किसी का मत है कि इस रोग का असर पहले आमाशय पर होता है। अब इन सब पर विचार करना चाहिए।

किसी बस्ती मे जब हैज़ा फूटता है, तो उसके फूटने के कारणों का वहाँ के प्रत्येक निवासी पर समान ही असर पडना चाहिए। क्योकि हवा, पानी, धरती, ख़ुराक सबकी एक-सी ही होती है, और इन्हीं में रोग की उत्पत्ति के कारण भी रहने चाहिए। बहुधा देखा गया है कि प्रारंभ में कुछ मनुष्यो को हैज़ा हुआ और फिर एकदम उसकी सख्या बढ़ गई।

अब इस बात पर विचार करना चाहिए कि हवा में हैज़े की छूत है या नहीं। आम तौर से यह रोग चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ मे, अथवा क्वार, कार्तिक या अगहन में फैलता है।

इन महीनों में खासकर चैत्र, वैशाख मे गर्मी का ज़ोर ज्यादा होता है। अगर रोग का विष हवा मे होता, तो उस पर गर्मी से कुछ बुरा प्रभाव नहीं पडना चाहिए, परंतु देखा गया है कि गर्मी इस रोग में हानिकारक है। रोगी के कपडे-लत्ते, सामान वगैरा जो दूसरे मनुष्य उपयोग में लेते है, बहुधा उन पर रोग का आक्रमण हो जाता है। रोगी के काम में आई हुई ये चीज़ें यदि वैसी ही घर मे रख दी जायँ, तो बहुधा देखा गया है कि रोग ने फिर जोर पकडा है। परंतु यही चीज़ें अगर ४-७ दिन तेज धूप में पडी रहें, तो उनमे से रोग का असर जाता रहता है। इसका यह अर्थ निकलता है कि गर्मी से रोग की छूत नष्ट होनी चाहिए, परंतु प्रत्यक्ष में देखा गया है कि रोग गर्मी मे ही ज़ोर पकडता है। सर्दी की ऋतु में कम हो जाता है, इससे निश्चय होता है कि रोग हवा मे नहीं रहता। विद्वानो ने ऐसे घरो की वायु को खुर्दबीन से देखा, जिसमें हैज़े के कई रोगी एक साथ मरे, पर उन्होंने रोगी के दस्त-पेशाब में रोग के जैसे कीटाणु देखे, वैसे वायु मे नहीं देखे गए। इसके सिवा वैद्य तथा रोगी के घरवाले और पडोसी सब पर हवा के जहर का असर पडना चाहिए, पर ऐसा भी नहीं होता। इससे निश्चय होता है कि हवा में इस रोग का विष नहीं है। न हवा से यह रोग उत्पन्न होता है, न हवा के द्वारा यह फैलता है।

सन् १८६१ में भारत-सरकार ने हैज़े के संबंध मे जॉच करने के लिये एक कमीशन नियुक्त किया था। उसने अपनी खोज के पश्चात् जो निर्णय किया, उसका अभिप्राय यह है—

'हैजे की बीमारी एक खास छूत से उत्पन्न होती है, और मनुष्यो के आवागमन से देश-देशांतरो में फैलती है। भारत के पूर्वी भाग इस रोग के जन्मदाता स्थल है। वहॉ यह रोग स्थायी रहता है। स्पर्शास्पर्श आदि द्वारा दूर देशो मे फैलता है।"

सन् १७६६ में तुर्क की राजधानी कुस्तुंतुनिया मे एक इंटर नैशनल सेनीटरी कांग्रेस की बैठक हुई थी, उसमे हैज़े के विषय मे बहुत कुछ विचार हुआ। उसका सारांश यह है—

"जिस मनुष्य को हैज़ा होता है, वही इस रोग को फैलानेवाला है। एक ही मनुष्य से हैज़े की मरी फैल सकती है। ऐसे रोगी के कपड़े-लत्ते, सामान अगर दूसरे स्थानो मे ले जाए जायॅ, तो वहॉ रोग फैलने का अवश्य भय रहेगा। स्थल पर रेल के ज़रिए और जल पर समुद्र के रास्ते रोग फैलता है।"

परंतु अच्छी तरह जॉच करने से यह बात मालूम हुई है कि उपर्युक्त निर्णय बिल्कुल ठीक नहीं है। सब घटनाओ पर विचार करने से पता लगता है कि हमेशा ऐसा नहीं हुआ कि कहीं हैज़ा फैल रहा हो और वहॉ के लोगो के अन्यत्र चले जाने पर सब जगह हैज़ा फैल गया हो। यदि इस प्रकार मनुष्यो के आने को ही हैज़ा फैलने का एक-मात्र कारण मान लिया जाय, तो समझ लीजिए कि पृथ्वी पर कोई स्थान किसी समय भी इस रोग से ख़ाली न रहे। क्योंकि आजकल के ज़माने में मनुष्यों का यातायात तो बहुत

ही अधिक मात्रा में होता रहता है। पहले जब रेलें नहीं थीं, कलकत्ते से दिल्ली तक महीनों का रास्ता था, परंतु रेलों के कारण अब तो घंटों में दिल्ली-कलकत्ता का आना-जाना हो रहा है। यदि इस प्रकार मनुष्यों के साथ ही यह फैलता हो, तो कलकत्ते में रोग फैलने के ७-८ दिन बाद ही दिल्ली में, दिल्ली में ३-४ दिन में लाहौर में, वहाँ से पेशावर आदि में, इस तरह तमाम हिंदोस्तान में थोड़े ही दिनों में फैल जाना चाहिए। परंतु ऐसी घटना दीख नहीं पड़ती। देश-भर में सर्वत्र रेलों का जाल फैला रहने और नित्य लाखों मनुष्यों का निरंतर आवागमन रहने पर भी हैजे का उतनी तेजी से फैलाव नहीं देखा जाता है। एक बार जब कि सन् १८९२-९३ में रूस और जर्मनी में खूब ज़ोर का हैजा फैल रहा था, उन दिनों सैकड़ों मनुष्य इँगलैंड जा रहे थे, पर इँगलैंड में रोग का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। इन जानेवालों में इँगलैंड पहुँचने पर किसी-किसी को रोग का आक्रमण हुआ भी, पर देश में रोग फैला नहीं। हमारे यहाँ भी बहुधा ऐसा ही देखने में आया है। इससे पता लगता है कि मनुष्यों के स्पर्शास्पर्श और आवागमन से भी यह रोग फैलता नहीं है। सबसे बड़ा उदाहरण इसका एक यह भी है कि यदि ऐसा होता, तो एक घर में ज्यों ही कोई रोगी होता, त्यों ही घर-भर में से किसी का भी बचना कठिन था, साथ ही डॉक्टर, सेवक, नौकर-चाकर वगैरा किसी की भी रक्षा न हो सकती थी। परतु ऐसी घटनाएँ शायद ही देखने में आती हों।

यह बात सत्य है कि एक मनुष्य से दूसरे को हैजे की बीमारी उड़कर लगती है, परंतु इसका कारण स्पर्शास्पर्श नहीं। इसके अन्य गंभीर कारण हैं। रोगी के नज़दीक रहनेवाले व्यक्तियों में जो रोगी के काम में आई हुई वस्तुओं का सेवन करते हैं, और अपने शरीर और कोष्ठ की सफाई का ठीक ध्यान नहीं रखते, उन्हीं पर इस रोग की छूत उड़कर लगने का भय रहता है। इसलिये रोगी के पास रहनेवालों को अपने बचाव का बहुत ही सावधानी से प्रबंध करना चाहिए। सफाई के अभाव से यह रोग किसी तरह फैलता है। इसका एक उदाहरण सं० १८८९ के लेसेंट-नामक एक मेडिकल मासिक में छपा था।

पेनिस्यूलर और ओरिसेंटेल कंपनी के स्टीमर प्रति सप्ताह सिंगापुर के तिलक भंग बंदर में जाया करते हैं। सन् १८८४ में इस कंपनी के एक मुसलमान यात्री को हैज़ा हुआ। तिलक भंग पहुँचकर वह मर गया। उसके बाद गाँव में केस होने लगे। इस रोग के फैलने के मूल कारण जब खोजे गए, तब मालूम हुआ कि मुसलमानी धर्म के अनुसार उस मुर्दे को नहलाया गया और जिस-जिसने उसे नहलाया, उनमें से कुछ को हैज़ा हुआ। मुर्दे को स्नान कराते वक्त उसके मल-मूत्र से भरे हुए अंगों को धोना भी पड़ा था। और उन्होंने अपने हाथों को और शरीर को भी पीछे सावधानी से नहीं धोया था। फल-स्वरूप ये लोग रोग की चपेट में आ गए। जो लोग मरते गए, उन्हें इसी प्रकार नहलाना

जारी रहा। नहलाने का निषेध करने पर धार्मिक विश्वास के कारण उन्होंने उसको स्वीकार नहीं किया। पीछे जहोर के सुलतान ने फ़र्मान निकालकर ऐसे रोगी को नहलाने की क्रिया बंद कर दी। इसके थोड़े ही दिन बाद हैज़ा बंद हो गया।

हैज़े से जो रोगी मर गया हो, अथवा जिसे रोग का आक्रमण हुआ हो, उसके कपड़े-लत्ते धोने, उसे नहलाने आदि में कितनी सफ़ाई की ज़रूरत है। यह बात ऊपर के प्रमाण से भली भाँति समझ में आ जायगी। यदि मल-मूत्र से भरे रोगी के वस्त्र आदि धोने तथा मल-मूत्र छूने के पीछे अपने हाथ अच्छी तरह साफ़ नहीं किए गए, तो निस्संदेह पेट में रोग के जंतु जाकर रोग को उत्पन्न करेंगे।

बहुधा देखा गया है कि यह रोग सर्व प्रथम धोबियों में फैलता है। वहाँ से गाँव के अन्य लोगों में। धोबी लोग ऐसे कपड़ों को जो कि हैज़े के रोगी से संबंध रखनेवाले हैं, सब कपड़ों में मिला देते हैं। उनकी छूत सब कपड़ों में भर जाती है और फल-स्वरूप उस कपड़े के पहननेवाले हैज़े के शिकार होते हैं। सन् १८८५ की साल में "मेलेंटो" नाम का एक जहाज़ इटली के पेलर्मो बंदर पर गया था। मार्ग में ही उस पर के कुछ मनुष्यों को हैज़ा हुआ। बंदर पर पहुँचकर उन्होंने अपने कपड़े धोबी को डाले। शीघ्र ही धोबियों में हैज़ा फैल गया और धीरे-धीरे तमाम बस्ती में फैल गया। हैज़े के रोगी के दस्त और पेशाब में इस रोग का ज्यादा विष रहता है, और उन्हीं के ज़रिए रोग एक स्थान से दूसरे स्थान जाता है। यह बात अधिकांश में ठीक है, परंतु फिर भी मल-मूत्र ही के ज़रिए रोग फैलता है, यह बात दावे से नहीं कही जा सकती। बहुत ठिकानों पर देखा गया है कि रोग उत्पादक अनेक कारणों के रहते भी रोग वहाँ फैलता नहीं है, इसका यह कारण हो सकता है कि उस स्थान में उस विष को पोषण करने योग्य ख़ुराक नहीं मिलती। सिवा उन लोगों के जो बिल्कुल गंदे और अपरिमिताहारी हैं और किसी पर रोग का आक्रमण नहीं होता, इसलिये रोग को महामारी के रूप में फूट पड़ने के लिये किन-किन संयोगों की ज़रूरत है, इस बात पर विचार करना जरूरी है।

जिन शहरों में बस्ती घनी और बिचपिच रहती है, जिन घरों में, गलियों में तथा इधर-उधर ज्यादा गंदगी रहती है, जहाँ घर की मोरी और नाबदान बराबर साफ़ नहीं होते, जहाँ मल-मूत्र लापरवाही से घर में ही इधर-उधर फेंक दिया जाता है, जहाँ पीने को साफ़ पानी नहीं मिलता, ऐसे स्थानों पर हैज़े के विष को भरपूर ख़ुराक मिलती है और जहाँ मकान में बड़े-बड़े हवादार और रोशनीवाले विशाल कमरे हों, घर के चारों तरफ़ स्वच्छता हो, पानी के गड्ढे कूड़े-करकट के ढेर आदि न हों, पानी स्वच्छ करके पिया जाय, उन स्थानों पर हैज़े का भय नहीं रहता और कदाचित् बाहरी विष के प्रभाव से एकाध मनुष्य को हैज़ा हो भी जाय, तो वह फैलता नहीं।

बंबई, कलकत्ता-जैसे नगरों में मध्यम श्रेणी के लोग और ग़रीब लोग बहुत ही बिचपिच

मे रहते हैं और बिल्कुल तंगी से अपनी गुजर करते हैं। उनके मकानों के आस-पास भी बडी गंदगी रहती है। बहुधा धनवान् घरों मे भी स्वच्छता की तरफ बहुत ही कम ध्यान देखा गया है। बाहर गॉव देहात मे बहुधा देखा गया कि घर के बाहर ही कूडे-करकटों के ढेर लगे रहते हैं। उन्ही पर मल-मूत्र पडता और सडता रहता है। पशुओं का गोबर बहुधा खाद के लिये सडाया जाता है। दिल्ली-जैसे शहर में प्राय पाखाने ऐसे देखने को मिलेंगे, जो मकान मे घुसने के मार्ग में है और वहाँ की दुर्गंध और अँधेरा कभी भी दूर नहीं होता। जयपुर मे पाखाने और मोरी का ऐसा गदा प्रबंध देखने को मिला कि जिसका बयान नही हो सकता। ऐसे पाखाने कभी साफ नहीं किए जा सकते और उनकी गंदगी पास के कुओं, बावडियों पर असर डालती है। जयपुर मे मोरी के बहने का कोई बंदोबस्त नहीं है। प्रत्येक घर के साथ एक कुड है और उसमें गदा पानी जमा होता रहता है। गली-भर सडी रहती है। पेशाब का छिडकाव प्रत्येक गली मे देखा जा सकता है। बहुत-से घरो मे रसोई का गदा पानी व नहाने और कपडे धोने का गंदा पानी घर के इधर-उधर इकट्ठा होता रहता और सडता है। अभी हाल मे एक केस मेरे सामने आया। एक गाँव मे प्लेग फैल रहा था, एक १४-१५ साल की लडकी पर, जिसका विवाह ५-६ दिन प्रथम ही हुआ था, प्लेग का आक्रमण हुआ और दो दिन बाद वह मर गई। कारण खोजने पर मालूम हुआ कि प्लेग-आक्रमण के दिन उसने एक पकौडीवाले के घर जाकर दही-बड़े खाए थे, उसके घर की मोरी की दुर्गंध सदा तमाम मुहल्ले मे रहती है, जब कभी हैज़ा, प्लेग होता है, सबसे पहले इसी घर मे उसके चिह्न दिखाई पडते हैं। पिट्ठी और खटाई का पानी, दही-कॉजी आदि बासी होने पर नित्य मोरी मे फेंक दी जाती थी और बारहो मास उनकी मोरी सडी रहती थी।

बंबई मे पाखानो की गटर की व्यवस्था है। वहाँ मल को भगी उठा नहीं ले जाता, वह पानी की गटर मे बह जाता है। उसका अधिकांश वहीं जमता रहता है। इन गटरो के पास रहनेवाले चाहे भी किसी मनुष्य को बडी आसानी से ऐसे छूत के रोग लग जाते हैं, और थोडे ही कारणों से रोग का भरपूर विस्तार हो जाता है। क्योंकि रोग-उत्पादक कारणों को भरपूर खुराक मिल जाती है। यह बात निश्चय है कि ऐसे रोग गदी जगह में इस तरह फैलते हैं, जैसे बारूद मे आग लगा दी हो।

यदि किसी गॉव या घर में मुद्दत से गदगी रही है, और उसमें किसी छूत के रोग का आक्रमण भी न हुआ हो, तो इसका यह अर्थ कदापि न लगाना चाहिए कि वहाँ गंदगी हानिकर नहीं है। हैजे-जैसे छूत रोग को सहारा देनेवाली वस्तु गंदगी को छोड दूसरी नहीं है। सन् १८८४ में योरप मे हैजा फैला। उस समय जो गॉव ज्यादा गंदे थे, वे उसके झपाटे मे आ गए, फ्रांस का टुलोन नगर योरप-भर मे गदा मशहूर है। पर वहाँ कभी हैज़ा नही फैला था। सन् १८८४ में जब योरप में हैज़ा फैला, तब एक जहाज़ वहाँ गया, उस पर

कुछ यात्रियों को हैज़ा हुआ, ये यात्री ज्यों ही बंदर पर उतरे हैं कि नगर में आनन-फ़ानन ऐसा हैज़ा फैला कि फ़्रांस और इटली तबाह हो गए।

यह बात तो स्पष्ट है कि रेल के प्रचलित होने पर इस देश में मनुष्यों का यातायात बढ़ा है, फिर भी सर्वत्र इससे रोग फैलने की घटनाएँ नहीं हुईं, परंतु जहाँ इस रोग की छूत को गंदगी या किसी भी अन्य कारण से आसरा मिला, वहाँ इस आने-जाने से ज़रूर हैज़ा फैला। रूस में सन् १८३० और १८४७ और १८९२ में हैज़ा बड़ा ज़ोर से फैला, सन् ४७ में सिर्फ़ सवा दो सौ मील में रेल थी। परंतु सन् ९२ में लगभग २०००० मील में इसका विस्तार हो गया था। इन ४५ वर्षों के जो आँकड़े संग्रह किए गए, उनमें पता लगा है कि रेलों के कारण हैज़ा १० गुना तेज़ी से एक गाँव से दूसरे गाँव में फैला है। इसके सिवा और एक ख़ास बात रेल से यह हुई कि यह रोग धीरे-धीरे आस-पास फैलने के स्थान पर कूदकर एक-दम बहुत दूर पहुँच गया है। रूस का ही उदाहरण लीजिए, मास्को और सेंट पीटर्सबर्ग नगर में ८०० मील का अंतर है। पर रेल के कारण प्रायः एक ही समय में दोनों नगरों में हैज़ा फैला, और फिर तीन ही सप्ताह में बीच के तमाम प्रदेश में फैल गया।

यह बात भी प्रकट हो चुकी है कि उपर्युक्त कारणों से यह रोग उन्हीं नगरों में तेज़ी से फैलता है, जहाँ सफ़ाई का यथेष्ट प्रबंध नहीं है। परंतु कहीं-कहीं देखने में आया है कि गंदी बस्तियों में भी कभी-कभी रेल की ख़ूब आवा-जाई होने पर भी हैज़ा नहीं फैला।

बंगाल, आसाम, ब्रह्मा, मद्रास आदि देशों में कुछ भागों में थोड़ा-बहुत हैज़ा प्रायः बना ही रहता है। प्रायः ऐसे सभी प्रदेशों की आब-हवा एक-सी ही होती है। जिस प्रदेश की धरती नीची है, बड़ी-बड़ी नदियाँ बहने के कारण धरती जहाँ अधिकांश बरसात में पानी में डूब जाती है, जहाँ खोदते ही जल्दी पानी निकल आता है, जहाँ धरती में जीव-जंतु अधिक होते हैं, जहाँ बस्ती घिचपिच रहती है, सदा सर्दी में ज़्यादा सर्दी और गर्मी में ज़्यादा गर्मी पड़ती है, जहाँ दिन और रात्रि का सर्दी गर्मी में बड़ा अंतर रहता है, ऐसे स्थलों में हैज़ा निरंतर बना रहता है। एकाध रोगी ऐसे ठिकानों पर निरंतर बना रहता है, और कभी-कभी रोग ज़ोर से भी कूद पड़ता है। गंगा, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी, इरावती आदि बड़ी-बड़ी नदियों के मुख के पास के प्रदेशों की ज़मीन, हवा और पानी में हैज़े के पोषक पदार्थ मिलते हैं। इसीलिये वहाँ इसका थोड़ा-बहुत ज़ोर सदा बना रहता है। वायव्य प्रांत के दक्षिण और पूर्व ओर के भाग और अयोध्या के कुछ भाग की आब-हवा बंगाल के दक्षिण की आब-हवा प्रायः मिलती-जुलती सी है। इन प्रदेशों में कितनी ही बड़ी-बड़ी नदियाँ बहती हैं। वहाँ की ज़मीन नीची है, इसलिये वह सदा तर और जीव-जंतुओं से भरपूर रहती है। वहाँ ५-७ हाथ पर ही कुओं में पानी निकल आता है, बस्तियाँ भी बहुत ही घनी हैं। इसलिये ये सब कारण हैज़े के उत्पादक तत्त्वों को पोषण करते हैं। और इसीलिये हैज़े का थोड़ा-बहुत ज़ोर सदा बना रहता है।

पंजाब और राजपूताने की धरती अधिकाश में रेतीली, सूखी और ऊँची है, इसलिये वहाँ हैज़े का प्रकोप ख़ासकर राजपूताने मे बहुत ही कम दीखता है।

एक बात और विचारने योग्य है कि जब-जब अनाज की मँहगी हुई और अकाल पडे, तब-तब हैज़े का भी देश मे प्रकोप हुआ। सन् १८६४ ई० मे बबई में बरसात की कमी से अकाल पडा, उसके अगले ही साल वहाँ खूब हैज़ा फूटा, और सन् ६६ मे अधिक वृष्टि से खेत सड जाने से अनाज का भाव चढ़ गया, लोग भूखे मरे, इससे प्रबल हैजे का प्रकोप हुआ। सन् ७६ और ७७ में भारत के अधिकाश मे अकाल पडा, और लाखों मनुष्य भूखे मरे, साथ ही हैज़ा भी फैला। इन दो वर्षों में अँगरेजी राज्य में ही दस लाख मनुष्य हैज़े से मर गए थे।

ऐसा देखा गया है कि जिस साल बरसात कम होती है, उससे आगामी वर्ष वर्षा शुरू होने पर आषाढ, श्रावण के मास में हैज़े का प्रकोप होता है।

बरसात की कमी के कारण ग्रीष्म में धरती शीघ्र सूख जाती है। उस सूखी धरती पर बरसात अधिक ज़ोर से पडे, हवा में फिर भी गर्मी बनी रहे, तो हैज़े के उत्पादक कारण उत्पन्न हो जायँगे। ऐसी हवा कभी-कभी गर्मी में भी देखने मे आती है।

वर्षा की कमी या ज्यादती से जब कभी-कभी अन्न का भाव चढ़ जाता है, और गरीब लोग भूखों मरने लगते हैं, और पूरी खुराक न मिलने से या कदन्न खाने से उनकी तंदुरुस्ती बिगड जाती है। वे दुर्बल, दुखी, रोगी होने से भूख-प्यास तथा सर्दी-गर्मी सहन करने मे असमर्थ होते है। अकाल में कच्चा-पक्का, जो थोडा-बहुत अन्न या सडे-गले फल-फूल-पत्ती जो मिल जाते हैं, खाकर निर्वाह करते है। इसस इनका आमाशय और अँतडियाँ कमज़ोर हो जाती है। और रोगोत्पादक जंतु उत्पन्न हो जाते है, ऐसी ही दशा मे इन्हे प्राय· पेट के लिये दूर देश की यात्रा और कडा परिश्रम करना पडता है। इससे उनका स्वास्थ्य और भी बिगड जाता है, ऐसी अवस्था मे उनका शरीर रोग के विष को तुरंत ग्रहण कर लेता है।

अकाल के दिनो मे जो वायु चलती है, वह भी बिलकुल नीरोग वायु नही होती, क्योकि अकाल की अधिक संभावना अनावृष्टि, अतिवृष्टि पर होती है, इससे प्राय. इन दिनो दिन और रात्रि की सर्दी-गर्मी में बहुत बडा अंतर रहता है। प्राय. दिन में कडी गर्मी और रात्रि मे कडी सर्दी पडती है, साथ ही हवा गीली चलती है। इससे शरीर ढीला और निस्तेज हो जाता है। इसलिये उन दिनो हैज़े को पोषक-तत्त्व मिलता है।

निस्सदेह यह रोग ग़रीबो का रोग है। कभी-कभी भले ही अमीर लोग इसके झपाटे मे आ जायँ, यह दूसरी बात है।

नीची और गीली धरती मे हैजे का ज़ोर प्राय वैशाख और ज्येष्ठ महीने मे होता है, और ऊँची तथा सूखी जगहो मे वर्षा ऋतु मे होता है। इन दिनो मे दिन और रात्रि की गर्मी मे विशेष अंतर रहता है। इस कारण हवा मे ज्यादा गीलापन रहता है। गुजरात, दक्षिण,

मध्य भारत और पंजाब के प्रदेशों में ज्येष्ठ-आषाढ के महीने मे, उपर्युक्त कारणो से ही हैज़ा फैलता दिखाई देता है। परंतु यदि इन दिनों में वर्षा हो जाय, तो गर्मी कम हो जाने से हैज़े का जोर भी कम हो जाता है। परंतु यदि वर्षा की कमी हो, तो भादो या आश्विन-मास में हैज़ा प्राय फैलता है।

भारतवर्ष मे, हरिद्वार, जगन्नाथपुरी, उज्जैन, नासिक, त्र्यंबक आदि अनेक स्थानो मे कभी-कभी भारी मेले भरते है, जहाँ लाखो मनुष्यों का जमघट हो जाता है, वहाँ बहुधा खूब ज़ोर का हैजा फूटता है। लोगो के तितर-बितर होने पर वे जहाँ जहाँ जाते है, रोग की छूत साथ ले जाते है। रेल होने के प्रथम तीर्थ-यात्रा को छोडकर लबी यात्राएँ लोग बहुत कम करते थे। उन दिनो में भी हरिद्वार-जैसी जगह मे लाखों मनुष्य इकट्ठे होते और हैजे मे मरते थे। जो वापस देश को लौटते थे, वे हैजे के कीटाणु अपने शरीर और वस्त्रों मे बॉधकर अपने देश को ले जाते थे।

अकाल में भूखे रहने के कारण पाचकाशय और अँतडियों पर जो बुरा प्रभाव गरीब लोगों पर होता है, बिल्कुल वैसा ही असर कुंभ-जैसे भारी मेले की भीड मे, अच्छा आहार न मिलने के कारण, मनुष्यो पर होता है। हज़ारो मनुष्य दूर देश मे लंबी यात्रा करके आते है। मार्ग में काफी तकलीफ और असुविधाएँ होती है। मेले मे भी सोने, बैठने, खाने, पीने आदि का बराबर कष्ट रहता है। बाजार का कच्चा-पक्का, सडा-गला, आटा, चना, चबेना, ताजा बासी पदार्थ, समय-कुसमय खाते हैं, और दिन-भर धूप मे भटकते रहते है। रात को एकाध कवल ओढ़कर धरती पर पड रहते है। इस अवसर पर स्वच्छ जल भी पीने को नहीं मिलता। बल्कि जो पानी ज्यादा गदा और गॅदला होता है, उसे ही पीना वे परम धर्म-कृत्य समझते हैं। हरिद्वार की हरि की पैडी का बडा माहात्म्य है, यहाँ हजारो मुर्दो के फूल डाले जाते है। बडे-बडे मेलो में यहाँ का जल बिलकुल गदा हो जाता है, पर लोग उसी कुड का जल पीने में माहात्म्य समझते है। इसमे लाखों नीच-ऊँच मनुष्य छूत के रोगी आदि नहाते हैं, धोती धोते हैं, इसलिये प्राय इस जल के अंश से रोग के परमाणु बहुत बढ जाते हैं।

यही हाल जगन्नाथपुरी का भी है। यहाँ प्राय सदैव हैज़े का प्रकोप बना रहता है। यहाँ भी यात्रियो की बडी भीड सदा बनी रहती है। और बहुधा यहाँ आकर मनुष्य हैजे के चक्कर में आ जाते है।

वहाँ जाकर यात्रियो को मंदिर में पकाया हुआ और जगन्नाथ का भोग लगाया हुआ भात खाना पडता है। इस भात को खाने का बडा माहात्म्य है। इस भात का चावल बहुत मामूली और रोगोत्पादक होता है। और बहुत करके कुसमय में लोगो को दिया जाता है। कभी-कभी तो वह बुस और सड जाता है, तब उसका प्रसाद बॅटता है। ऐसे अन्न से मज़बूत मनुष्य का स्वास्थ्य भी बिगडता है, पर जो लबी यात्रा करके आते है, मार्ग की असुविधाओं से जिनके शरीर अस्वस्थ है, उन पर हैज़े का प्रकोप होना साधारण बात है। फिर इतने

मनुष्यों के मल-मूत्र को साफ़ करने का भी ठीक प्रबंध नहीं होता। इससे हवा दूषित हो जाती है। इसके सिवा तालाबों का पानी स्वाभाविक रीति से रोगोत्पादक है।

ऐसी बस्तियों में जब लाखों मनुष्यों का जमघट आ जाता है, तब वहाँ का पानी पीने के योग्य ही नहीं रहता, उसके पीने से बहुधा ऐसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ लोग जगन्नाथपुरी में मंदिर के पास जो एक टंकी है, उसी का पानी पीते हैं। जगन्नाथ की मूर्ति के पास भोग रखने पर वह स्थान पानी से धो डाला जाता है, वही धोवन उस टंकी में जाता है, भक्त लोग इस धोवन को अतिशय पवित्र समझते हैं और जब तक वहाँ रहते हैं, इस पानी को पीते हैं।

इस हालत में चाहे किसी रोग के प्रभाव से, या अज्ञान, गरीबी, यात्रा या अन्य कारण से यदि मनुष्य की अँतड़ियों या आमाशय में ठीक कार्य करने की शक्ति नहीं होती, तो हैज़े का विष शरीर में प्रवेश करता है। उस समय यदि आब-हवा में भी इसके बीज को बढ़ने और पोषण होने के कारण हों, तो फिर वह फूट निकलता है। आगे के अंक में हम हैज़े के बीज का विस्तृत वर्णन करेंगे।

हैज़े का ज़हर

यह बात पिछले प्रकरणों में बता दी गई है कि हैज़ा हिंदोस्तान में किन-किन स्थानों में निरंतर बना रहता है, और उसका विष किस ढंग से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचता है, कैसी आबोहवा में यह विष ज़ोर पकड़ता है और कैसी प्रकृति के मनुष्यों पर उसका ज्यादा असर होता है। अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि यह ज़हर किस प्रकार का है। डॉ० एन्० सी० मेक्नामारा जो बंगाल में कई वर्ष तक हैज़ेवाले स्थानों में रहे, और जिन्होंने वर्षों तक अनुभव करके बारीकी से इस बात की खोज करके कई पुस्तक और लेख लिखे थे, उन्होंने सन् १८९६ के साल में एशियाटिक कालेरा-नामक एक पुस्तक छपाई थी, उसमें वे लिखते हैं—

अमुक जाति का सेंद्रिय पदार्थ मनुष्य के कमज़ोर आमाशय और अँतड़ी में प्रवेश करता है, जिसके असर से मनुष्य पर हैज़े का आक्रमण होता है। और जब आमाशय और अँतड़ी आरोग्य होती है, तब वह पदार्थ आमाशय के पाचक-रस (गेस्टिक ज्यूस) में मिलकर कमज़ोर हो जाता है। यह सेंद्रिय पदार्थ किस वस्तु से बना है यह जानने के लिये उक्त डॉक्टर साहब के समय में उपयुक्त साधन नहीं थे। परंतु इस संबंध में बहुत दिन तक विचार-विवेचन होते-होते दूसरे विद्वानों ने भी इस पदार्थ को स्वीकार किया, उन्होंने खोज करके जाना कि अच्छी तंदुरुस्तीवाले मनुष्य के शरीर में यह विष प्रवेश नहीं कर सकता। कदाचित् ऐसे मनुष्य पर रोग का हमला भी हो, तो उस पर उसका विशेष ज़ोर नहीं होता। इसका कारण यह है कि आमाशय का पाचक रस अम्ल होने के कारण हैज़े के विष को मिट्टी कर देता है। पर जिन मनुष्यों के आमाशय ख़राब होते हैं, तथा जिनके आमाशयों में क्षार पदार्थों का ज्यादा संग्रह होता है, उन्हीं को आम तौर से हैज़े का आक्रमण होता है। क्षार रस हैज़े

के विष की वृद्धि करता है। तिस पर यदि उष्णता की सहायता मिले, तो और जोर पकड़ता है। किसी क्षार पदार्थ में हैज़े का विष हो और वह मनुष्य के शरीर में यदि पहुँच जाय, तो अवश्य नुकसान करेगा। परंतु खट्टे रस में कुछ देर रहने से यह विष कमज़ोर पड़ जाता है।

सन् १८८३ में जब मिस्र में इस रोग का खूब जोर हुआ, तब जर्मनी, फ्रांस और अमेरिका की सरकारों ने इस रोग की खोज के लिये अपने-अपने देश के बड़े-बड़े डॉक्टरों को वहाँ भेजा, उनमें जर्मनी के डॉक्टर कार्क ने खुर्दबीन से हैज़े के रोगी के मल में बारीक-बारीक जंतु देखे। फिर इस डॉक्टर ने सन् १८८४ में हिंदोस्तान में आकर विशेष खोज की और निश्चय किया कि ये जंतु रोगी के दस्त में से मृत्यु के बाद उसकी अँतड़ी में भी पाए जाते हैं। इस खोज पर उसका यह मत स्थिर हुआ कि वह जंतु ही हैज़े का विष है। यही निर्णय अमेरिकन और फ्रांसीसी डॉक्टरों ने भी अपनी-अपनी खोज के बाद किया। इन जंतुओं का स्वरूप कामा (,) के आकार का था, इसलिये डॉक्टर कार्क ने इनका नाम 'कामा बेसील्स' रक्खा।

ज्यों ही डॉक्टर कार्क ने अपना यह निर्णय प्रकट किया, त्यों ही इँगलैंड में इसकी बड़ी भारी चर्चा उठी। तत्काल अँगरेज डॉक्टर क्लीन और अन्य प्रसिद्ध डॉक्टरों ने अपने-अपने विचार प्रकट करने शुरू किए, फलतः अँगरेज सरकार ने डॉक्टर क्लीन को इसकी विशेष खोज के लिये हिंदोस्तान भेजा। हैज़े के रोगी के दस्त में उसने भी वही जंतु देखे, परंतु उसने मालूम किया कि ऐसे ही जंतु क्षय, संग्रहणी, मरोड़ आदि रोगों में भी देखने को मिले हैं, तब उसने प्रकट किया कि डॉक्टर कार्क के 'कामा बेसील्स-नामक कीटाणुओं-मात्र से यह रोग नहीं हो सकता। इस विज्ञप्ति पर इँगलैंड में खूब आंदोलन चला।

सन् १८९२-९३ में रूस, जर्मन और फ्रांस में भयंकर हैजा फूटा। उस समय इन देशों के डॉक्टरों ने इस रोग का मूल-कारण जानने का बड़ा भारी प्रयत्न किया। इस समय यह नई बात मालूम हुई कि उक्त जंतु अधिकतर खाने-पीने की वस्तुओं द्वारा रोगी के शरीर में प्रवेश करते हैं। ये जंतु इतने छोटे होते हैं कि ६० जंतुओं को यदि इकट्ठा करके रक्खा जाय, तो सिर्फ एक बाल के बराबर उनकी मोटाई होगी। इन जंतुओं को गीली मिट्टी या गीले कपड़े में ख़ासकर गंदे कपड़े में यदि रक्खा जाय, तो उनकी संख्या बड़ी तेज़ी से बढ़ने लगती है। इनकी आयु एक से तीन दिन तक की है। परंतु क्षण-क्षण में असंख्य जंतु जन्म पाते हैं। तेज़ गर्मी और तेज़ सर्दी से इनका नाश हो जाता है। परंतु जब कभी उन्हें अनुकूल गर्मी और गीलापन मिलता है, तभी वे खूब जोर भरते हैं।

ये जीव ज़्यादातर पानी में रहते हैं। जिस पानी में सेंद्रिय पदार्थ ज्यादा होता है, उसमें से उन्हें खूब खुराक मिल सकती है। और ऐसे ही पानी में वे शीघ्रता से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। ऐसे पानी को अच्छी तरह उबालकर पीने से उनके सब कीटे नष्ट हो जाते हैं। और उसमें पर्मेंगनेट ऑफ् पोटास यदि थोड़ी डाल दी जाय, तो तमाम कीड़े मर

जाते हैं । यदि किसी वस्तु में उक्त जंतुओं के लगे रहने का संदेह है, तो उस वस्तु को अच्छी तरह धूप देने पर उनका नाश हो जाता है । हैजे के रोगी के कपड़े गर्मी की ऋतु में दिन-भर धूप में पड़े रहने दिए जायँ, तो फिर उनके सब कीड़े मर जाते हैं । रजाई, कंबल आदि के दोष को दूर करने के लिये ३-४ दिन तक धूप में डालना चाहिए । ये जंतु सूखे अन्न पर नहीं रह सकते, पके हुए पर अवश्य वृद्धि पा सकते हैं ।

खारी पानी में हैजे के कीड़े मिले रहने का भय है । इसलिये खारी पानी के कुएँ, तालाबों के पानी का हैजे के दिनों इस्तेमाल करना अत्यंत भयानक है । जिन जलाशय या नदियों का जल सेंद्रिय पदार्थ से शुद्ध हो—जैसे गंगा आदि का—वैसे जल में थोड़ी-बहुत मात्रा में ये जंतु मर जाते हैं । हिमाचल पर्वत से उतरते ही बर्फ गलकर जो पानी शीतल रहता है, उसमें प्रवेश करते ही इन कीड़ों का नाश हो जाता है ।

दूध एक ऐसी वस्तु है, जो प्रत्येक जाति के जंतुओं को अपनी तरफ बड़ी तेज़ी से आकर्षण कर लेता है । दूध दुहने के बाद यदि थोड़ी देर तक उसे आस-पास की हवा में खुला रक्खा जाय, तो उसमें जरूर ऐसे जंतुओं का प्रवेश हो जायगा । हैजे के जंतुवाले पानी से धोए हुए बर्तन में दूध दुहने से कभी-कभी उसमें रोग के जंतु प्रवेश पा जाते और बड़ी शीघ्रता से बढ़ जाते हैं । हैजा जहाँ फूट रहा हो, ऐसे ठिकानों में थोड़ी देर प्रथम दुहे हुए दूध को यदि ख़ुर्दबीन से देखा जाय, तो कभी-कभी उसमें उक्त जंतु दीख पड़ेंगे । यदि यह दूध चार-छ घंटे रक्खा रहे, और उसमें खटाई उत्पन्न हो जाय, तो उसमें इन जंतुओं का नाश हो जायगा । दुहकर तत्काल गर्म किए दूध में इन जंतुओं को प्रवेश का मौक़ा नहीं मिलता ।

हैजे के समान ही लक्षण कभी-कभी अतिसार में या संखिया खा लेने के बाद दीख पड़ते हैं । बहुधा ऐसा होता है कि हैजे के दिनों में यदि किसी को एकाध भारी दस्त हो जाय, तो उसे हैजा ही समझा जाता है । इसके विरुद्ध कभी-कभी हैजे के आक्रमण को साधारण अतिसार समझकर बेफ़िक्री में लोग बैठे रहते हैं । इस भूल का कभी-कभी खेद-जनक परिणाम देख पड़ता है, क्योंकि उसकी उचित चिकित्सा होती ही नहीं ।

कभी-कभी ऐसा होता है कि हैजे के जंतु शरीर में प्रवेश कर चुकने पर भी हैजा नहीं होता । कई दिन तक रोग के चिह्न प्रकट नहीं होते । परंतु शरीर में सुस्ती, बेचैनी आदि चिह्न अवश्य दीख पड़ते हैं । इस अवसर पर फ़ौरन् सावधान हो जाने की बड़ी भारी ज़रूरत है । थोड़ी भी सावधानी से मनुष्य के प्राण बच जाते हैं ।

कभी-कभी हैजे का रोगी आराम होने पर रोग फिर से उलट पड़ता है । वास्तव में बात यह है कि रोगी के शरीर में आराम होने पर भी कुछ दिन जंतुओं का ज़ोर अवश्य बना रहता है । इसलिये जब तक रोगी बिलकुल आरोग्य न हो जाय, उसे बहुत ही सावधानी से रहना उचित है । साथ ही उससे दूसरे लोगों को भी छूत का भय है, इसलिये उन लोगों को भी इससे कुछ दिन बचकर रहना चाहिए ।

हैज़ा फैलने की रीति

यह बात पीछे कही जा चुकी है कि कुछ नदियों के मुख के प्रदेशों में और कुछ नीचेवाले और सदा नम रहनेवाले प्रदेशों मे हैजे़ का सिलसिला थोड़ा-बहुत चलता ही रहता है। और वहाँ से जहाँ-जहाँ उसका बीज जाता है, हैज़ा फैलता है। यह बीज बहुत अंश में मनुष्यों के साथ ही फैलता है। सुदूर देशों में भी, जहाँ बड़े ही ज़ोर का हैज़ा फैलता रहा है, प्रथम मूल स्थान उपर्युक्त प्रकार का ही देखने मे आया है। ऐसा एक भी उदाहरण देखने में नहीं आया कि हैज़ा स्वयं ही फूट निकला हो, इसलिये यह बात प्रमाणित होती है कि हैज़ा वास्तव मे छूत की बीमारी है, और वह उड़कर ही फैलती है।

अब यह देखना चाहिए कि यह हैजे़ का ज़हर किस-किस ढंग से शरीर में प्रविष्ट होता है। हैजे़ के फैलाने का मुख्य साधन पानी है। ऐसे हज़ारो उदाहरण हैं कि दूषित पानी पीने से ही हैज़ा ज़्यादातर फूटा है। सन् १८२७ में जब वारनहेस्टिंग बुंदेलखंड में फौज लिए पड़े थे, उस समय उनकी फौज में बड़े ज़ोर से हैज़ा फूट निकला था। उसका कारण जब देखा गया, तो मालूम हुआ कि टंकी का पानी ज़हरीला था, उसी के पीने से हैज़ा फूटा। वहाँ से उसने तत्काल कूच किया, और एक-दो मंज़िल बाद ज्यों ही लोगों को स्वच्छ पानी पीने को मिला कि रोग का शमन हो गया। आजकल सरकारी छावनी के पीने के पानी की स्वच्छता का बड़ा भारी बंदोबस्त रहता है, और इस कारण सरकारी फ़ौज में हैज़ा बहुत ही कम फूटता है।

जिस बस्ती में हैज़ा फूट रहा हो, वहाँ के पानी की ख़ुर्दबीन से जाँच की जाय, तो उसमें "कोमाबेसीलस" जंतु देखने में आवेंगे। पानी में इन जंतुओं का दिखाई देना आसान नहीं है, क्योंकि पानी में इनकी संख्या बहुत ही थोड़ी होती है। पानी मे ये जंतु ख़ुर्दबीन से तभी दिखाई दे सकते हैं, जब पानी में इनकी ख़ूब बढ़ी हुई संख्या हो। हाँ, रोगी के दस्त मे इन जंतुओं की भरपूर संख्या देखने को मिल सकती है।

जल में हज़ारों प्रकार के और भी अनगिनत जंतु होते है, जिनमें अधिकांश निर्दोष होते हैं। इनमें हैजे़ के जंतु इस प्रकार मिल जाते हैं कि उनका पहचानना बहुत ही कठिन हो जाता है। सन् १८९२-९३ में जब जर्मनी के हैंबर्ग नगर में हैज़ा फैला, तब उनके पीने के पानी की परीक्षा बड़े-बड़े विद्वानों ने की। परंतु ८ दिन बाद वे जल में उक्त जंतुओं को देख सके। सन् १८९७ में जब बंबई में हैज़ा फूटा, तब प्रो० हैंकिन ने ख़ुर्दबीन से कई कुओं के जलों में उक्त जंतु देखे, और उन कुओं का पानी कानूनन् बंद कर दिया गया। इन उदाहरणों से प्रमाणित हो गया कि हैज़े का ज़हर ज़्यादातर पानी के द्वारा पेट में पहुँचता है। परंतु यदि पानी को अच्छी तरह छान और साफ करके पिया जाय, तो उससे कोई भय नहीं रहता।

कभी-कभी ऐसा होता है कि जल में अल्प मात्रा में ये जंतु रहते हैं। परंतु उनका शरीर

पर ज़्यादा प्रभाव नहीं पड़ता। शरीर में जाते ही वे नष्ट हो जाते हैं। जिन स्थानों में रोग सदा बना रहता है, जहाँ ये जंतु कभी नष्ट नहीं होते, थोड़े-बहुत बने रहते हैं, ज्यों ही उन्हें अनुकूल हवा और ख़ुराक मिलती है, तत्काल बढ़कर रोग फैला देते हैं। यदि किसी कुएँ में भरपूर बलवान् जंतु उत्पन्न हो गए हों, तो उन पर जंतुनाशक दवा भी पूरा असर नहीं करती। हाँ, कुछ कमी ज़रूर हो जाती है।

केवल यही बात नहीं कि जिस पानी में ये जंतु हों, उसके पीने ही से रोग शरीर में प्रवेश करता है, परंतु ऐसे पानी में बर्तन या वस्तु धोने पर भी रोग शरीर में प्रवेश करने का भय रहता है। एक बार आगरे में, शाहगंज मुहल्ले में, हैज़ा फैला। उस समय एक डॉक्टर ने, जिसे सरकार ने इसकी खोज को नियत किया था, जाँच करके पता लगाया कि वहाँ कुल १६ मर्द और ११ स्त्रियों को हैज़ा हुआ, जिनमें एक हिंदू और २६ मुसलमान थे। ये सब पास-पास रहते थे। ये सब ग़रीब लोग थे, और पास के एक कच्चे कुएँ का पानी पीते थे। बहुत बारीकी से पता लगा कि उस कुएँ के पानी में कुल्ला-दतौन करने और बासन माँजने तथा वहाँ का पानी पीने से उन पर रोग का आक्रमण हुआ था। उसमें रोग के जंतु थे। आख़िर कुएँ में 'पर्मेंगनेट ऑफ़् पोटाशियम' डालकर उस कुएँ तथा अन्य कुओं का भी पानी शुद्ध किया गया। इसके बाद शीघ्र ही रोग का उपद्रव शांत हो गया।

यह कहा जा सकता है कि यदि हैज़े का विष पानी ही के द्वारा शरीर में पहुँचता है, तो जितने लोग इस जल को पीते हैं, उन सब पर क्यों नहीं रोग का आक्रमण होता? इसका कारण क्या है?

इसका कारण यह है कि जिनके शरीर मज़बूत हैं, ख़ासकर जिनकी पाचन-शक्ति अच्छी है, उनके शरीर में ये जंतु जाते ही नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि तंदुरुस्त पाचनाशय में जब वहाँ पाचन-क्रिया होने लगती है, तो एक प्रकार का रस पैदा होता है। यह रस स्वाद में खट्टा होता है, इसके प्रभाव से ये जंतु तत्काल नष्ट हो जाते हैं। परंतु जिनकी पाचन-शक्ति कमज़ोर होती है, और जिनकी अँतड़ी भी ठीक काम नहीं कर सकती, उनके शरीर में ये जंतु ख़ूब वृद्धि पाते हैं।

जिस जल में मल-मूत्र मिलता रहता है, उसी में इन जंतुओं को विशेष पोषण मिलता है, और वे उसमें ख़ूब बढ़ते हैं। मैले पानी में अधिक जंतु रहते हैं। इसलिये यदि इस पानी का थोड़ा अंश भी पेट में जाय, तो हैज़ा हो जाता है। गंगा और यमुना के जल में ये जंतु बहुत कम जीवित रह सकते हैं।

यह भी देखा गया है कि जो लोग पानी को अच्छी तरह छानकर पीते हैं, उन्हें कोई खटका नहीं होता। देखा गया है कि एक ही गाँव में एक ही जलाशय का पानी भिन्न-भिन्न लोगों ने लिया, और जिन्होंने उसे छानकर या पकाकर पिया, उन पर रोग का आक्रमण नहीं हुआ, और जिन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया, उन पर हैज़े का आक्रमण हुआ। सन्

१८९२-९३ में जो जर्मनी में बडा भारी हैज़ा फैला था, उसके संबंध मे वहाँ के प्रसिद्ध डॉक्टर कार्क अपनी "Cholera in Germany during the winter of 1892-93"-नामक पुस्तक में लिखते हैं—

हैंबर्ग, आल्टोना और वॉड्ज़ बैंक ये तीनो नगर एक दूसरे के नज़दीक हैं। हैंबर्ग नगर एल्बा नदी पर बस रहा है। इसमें इस नदी का विना छना पानी नल द्वारा आता है, परतु आल्टोना थोडे अंतर पर है, इसलिये वहाँ इसी नदी का छना हुआ पानी मिलता है। आल्टोना के लोगों को जो पानी मिलता है, उसमें हैंबर्ग के ५ लाख मनुष्यों का मल-मूत्र मिला होता है। पर वहाँ के लोग उसे बिलकुल स्वच्छ करके लेते हैं। वॉड्ज़ बैंक अपनी आवश्यकता का जल पास के तालाब से लेता है। सन् १८९२ के अगस्त मास की १६वी तारीख़ को यह रोग हैंबर्ग में शुरू हुआ। और ता० २३ ऑक्टोबर तक, लगभग ९ सप्ताह तक, ख़ूब ज़ोरो पर जारी रहा। इस बीच मे १८ हज़ार मनुष्यों को यह बीमारी हुई, और उनमे से ८२०० मनुष्य मरे। इतना होने पर भी आल्टोना और वॉड्ज़ बैंक इन दिनो मे बिलकुल ही रोग-मुक्त रहे। इन नगरों में यदि कुछ लोगों को हैज़ा हुआ भी, तो उन्हें, जो हैंबर्ग के भागे हुए थे।

हैंबर्ग और आल्टोना के बीच सिर्फ़ एक ही मार्ग है। उस रस्ते पर हैंबर्ग की तरफ़ जो घर थे, उनमें से कुछ को हैंबर्ग वाटर वर्क्स की तरफ से पानी मिलता था। और कुछ को आल्टोना के वाटर वर्क्स से। जिन्हें हैंबर्ग की तरफ से पानी मिलता था, उन्हें रोग का आक्रमण हुआ। परंतु जिन्हें आल्टोना कपनी से जल मिलता था, उन पर रोग का बिलकुल आक्रमण न हुआ।

हैंबर्ग और आल्टोना का जल-वायु प्राय एक समान ही है। एक समान ही दोनो स्थानो पर बरसात, शीत और ऋतु-परिवर्तन होते है। सिर्फ़ जल भिन्न-भिन्न विधि से दोनो नगरो को मिलता था। हैंबर्ग जर्मनी का बडा व्यापारी नगर है। वहाँ सदा देश-परदेश के सैकडो स्टीमर आते-जाते रहते है। यहाँ पर रूस की तरफ़ से रोग-कीटाणु आए थे। रूस के जहाज़ियों में से किसी को हैज़ा हुआ, उसका मल-मूत्र नदी मे बहा दिया गया, और उस पानी को पीने से नगर मे रोग फैल गया।

और एक बात है। ये जतु ख़ाली पेट जितना नुकसान कर सकते है, उतना भरे पेट पर नहीं। क्योंकि ख़ाली पेट मे उक्त खट्टा रस रहता नहीं, वह रस भोजन करने पर ही उत्पन्न होता है, इसलिये यदि ख़ाली पेट यह दूषित जल पीने मे आवे, तो उसमें के जंतु अँतडी और रक्त मे प्रवेश कर जाते हैं। परतु भोजन के बाद यदि वह पानी पिया जाय, तो यह पाचक रस उसमें के जतुओं को नष्ट कर देगा।

जिन लोगों को एक ही साथ बहुत-सा पानी पीने का अभ्यास है, उन पर रोग का जल्दी आक्रमण होने का भय रहता है। पर जो थोडा-थोडा पानी बार-बार पीते है, उनपर असर कम होता है। क्योंकि थोडे पानी मे थोडे जतु होगे। उन्हे पाचक रस तत्कालनष्ट कर देगा।

यह भी एक बात है कि गरीब और अमीरों पर इस रोग का एक-सा प्रभाव नहीं पड़ता। ज्यादातर ग़रीब लोग ही इसके शिकार होते हैं, जिन्हें भर-पेट ख़ुराक नहीं मिलती। परंतु जो पुष्टिकर आहार करते हैं, उनकी अँतड़ी तक उक्त जंतु प्रायः नहीं पहुँचते। अकाल के समय यद्यपि अमीर-गरीब सब एक ही जल बर्तते हैं, तो भी ज्यादातर ग़रीबों पर ही रोग का आक्रमण होता है। प्राय. देखा गया है कि जब-जब अकाल पड़ा है, गरीबों में हैज़ा फैला है। जिस साल में बरसात और पाक की कमी होती है, उस वर्ष में नदी और तालाब जल्दी सूख जाते हैं। कुओं का पानी भी गहरा हो जाता है। इसीलिये बहुत-से लोग जल की स्वच्छता का बिना विचार किए जो जल सरलता से उन्हें मिल सके, उसी का उपयोग करते हैं। बहुधा हैज़े के दिनों में गरीब लोग नंगे बदन खुली हवा में रात को सोते हैं, और कच्चा-पक्का भोजन, जो मिल जाय, खाते हैं, इसमें वे बिलकुल कमज़ोर हो जाते हैं, और यदि उनके शरीर में रोग ने प्रवेश किया, तो उनका बचना कठिन हो जाता है।

हैज़ा केवल पानी ही के द्वारा फैलता है, इसी पर न भूलना चाहिए। पानी के कारण उसका प्रसार अधिक तो अवश्य होता है, और वही हैज़ा फैलाने का मुख्य कारण भी है, परंतु पानी के सिवा ख़ुराक, दूध, कपड़ा आदि के द्वारा भी इस रोग के जंतु शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं, और रोग फूट निकलता है। प्राय प्रथम इन्हीं वस्तुओं द्वारा रोग के जंतु पानी में मिलते हैं, और पानी से फिर उनका फैलाव सर्वत्र होता है।

सन् १८९४ में गर्मी के दिनों में कानपुर केंप में बड़े ज़ोर का हैज़ा फूटा, जिसमें बस्ती का सत्तरहवाँ भाग नष्ट हो गया। प्रोफ़ेसर हेनकिन ने छावनी में आकर रोग के मूल-कारण की जाँच की। पानी, ख़ुराक, दूध और सब सामान की जाँच की गई। पानी में जंतु नहीं मिले, पर ख़ुराक, दूध और रसोई-घर के पानी में पाए गए। यह भी पता लगा कि वहाँ के कुछ रसोइए नगर के उस हिस्से में रहते थे, जिसमें बीमारी फैल रही थी। उन्हीं के साथ रोग की छूत छावनी में आई।

दूध के द्वारा भी रोग फैलने के बहुत-से प्रमाण देखने को मिलते हैं। सन् १८९९ की अगस्त में शाहजहाँपुर-छावनी में दो अँगरेज़ सिपाहियों को हैज़ा हुआ। जो ग्वाला वहाँ दूध पहुँचाता था, वह गाँव के नज़दीक रहता था। उस गाँव में उस समय हैज़ा फूट रहा था, और उस दूध में रोग के जंतु थे, उसी से रोग का आक्रमण हुआ।

एक बार ऐसा हुआ कि एक अँगरेज़ डॉक्टर के पास किसी गाँव से कुछ फल आए। डॉक्टर और घर के दो-तीन आदमियों ने उन्हें खाया, और उसी रात को उन्हें हैज़ा हुआ। कारण खोजने से मालूम हुआ कि जो मजूर फल लेकर आया था, वह रास्ते में एक गाँव में कुछ देर ठहरा था, वहाँ हैज़ा फूट रहा था, उस गाँव के एक कुएँ से थोड़ा पानी लेकर उसने फलों पर छिड़क दिया था और वही रोग का कारण था।

बहुधा मक्खियों के द्वारा भी हैज़ा फैलता है। रोगी के मल, मूत्र, थूक और उलटी पर

मक्खियाँ बैठती रहती हैं। और रोग की छूत लेकर खाने-पीने की वस्तुओं पर बैठ जाती है। बस हैज़ा फैल जाता है।

सन् १८६१ में गया के जेलखाने मे एक बार हैज़ा फैला। २६ कैदियो को बीमारी हुई, जिनमे १७ मरे। वहाँ की खाने-पीने की किसी वस्तु में हैज़े के जंतु देखने मे नही आए। तब जेल मे जगह-जगह गर्म दूध के बर्तन भर-भरकर रख दिए गए। दूध के जिन बर्तनो में मक्खियाँ मरी पाई गईं, उसमें रोग के जंतु मिले। वस्त्रों के द्वारा भी हैज़ा फैलता है, ऐसे उदाहरण मिले हैं। परंतु वस्त्रों में लगे हुए रोग-जंतु चमडी द्वारा शरीर में प्रवेश करते हैं। इस विषय मे कुछ निश्चय नहीं हुआ। अवश्य यह जतु किसी तरह पेट में जाते हैं, तभी रोग को उत्पन्न करते हैं। सन् १८८६ मे बसरे में हैज़ा फैला। लोग बुरी तरह भागने लगे। एक दिन एक मछली पकडनेवाला शहर से नदी की तरफ़ जा रहा था, रास्ते मे उसे वस्त्रों की गठरी पडी मिली। उसने उसे उठा लिया, और अपने गाँव में चला गया। गाँव बसरे से ५० मील था, उसे वहाँ पहुँचने में चार दिन लगे। गठरी के वस्त्र स्त्रियो के थे, और उसने घर की चार स्त्रियो को वे वस्त्र पहनने के लिये बाँट दिए। ३ दिन बाद उन चारो स्त्रियों को हैज़ा हुआ और चारो मर गईं। उनके सिवा गाँव में और किसी को कुछ न हुआ। निस्सदेह यह रोग उनको कपडो द्वारा ही लगा था। यह बात साफ़ हो गई है कि रोगी के पास रहने और उसकी सेवा करने मे रोग के उडकर लगने का ज़रा भी ख़तरा नहीं है। सिर्फ़ उसके मल, मूत्र, उल्टी को सावधानी से उठाने और हाथ साफ करने का ख़याल रखना चाहिए। हवा के कारण भी रोग नहीं फैलता। सन् १८६१ मे मियाँ मीर की छावनी में, फ़ौज मे, हैज़ा फैला, डॉक्टरो ने फ़ौज को अन्यत्र हटाने की सलाह दी, पर चौमासे के कारण तमाम सेना का हटाया जाना संभव न था। जो फौज अन्यत्र भेजी गई, उसमें शीघ्र ही हैज़ा वहाँ भी फैला, और मियाँ मीर में जो फ़ौज रह गई थी, उसमे शाति हो गई। अत मे यह कहना आवश्यक है कि हैज़े का असर सब मनुष्यों पर एक-सा नहीं पडता। शुरू में जब हैज़ा फूटता है, जिस पर आक्रमण करता है, उनमें कोई ही बचता है। परतु ज्यो-ज्यो रोग पुराना होता है, रोग की भयकरता कम हो जाती है। इसके सिवा यह भी देखा गया है कि जहाँ हैज़ा फैल रहा हो, वहाँ के निवासी की अपेक्षा बाहर गाँव के आए हुए पर उसके विष का तेज़ असर होता है।

हैज़े के लक्षण

हैज़े के लक्षण भिन्न-भिन्न मनुष्यो मे भिन्न-भिन्न प्रकार के देखे जाते है। कोई मनुष्य हैज़े का आक्रमण होते ही थोडी ही देर मे मर जाता है। ऐसे रोगी को तो दवा देने का भी अवकाश नही मिलता। कुछ रोगी देर तक कष्ट भोगकर आराम हो जाते है। परतु उनका शरीर सदा के लिये अशक्त हो जाता है। हैज़ा होने के पीछे किसी का शरीर तो एकदम ठडा हो जाता है और किसी को तेज बुख़ार चढ़ आता है। किसी रोगी को दस्त ज्यादा आते हैं और किसी को उल्टी। कोई एकदम बेहोश पड जाता है और कोई छटपटाता रहता है।

यह बात कही जा चुकी है कि खाने-पीने की वस्तुओं द्वारा हैजे के जंतु पेट में प्रवेश कर जाते है। परंतु ये जंतु शरीर में प्रवेश होने के कितने दिन बाद रोग को प्रकट करते है, यह बात निश्चित नहीं कही जा सकती।

कभी-कभी दो-चार घटे मे और कभी-कभी दो-चार दिन बाद रोग के चिह्न देख पडते हैं। अनुभव से प्रतीत हुआ कि यदि रोग के जंतु शरीर के अधिक भाग में प्रवेश करते हैं, तब उसका असर कुछ जल्दी होता है। परतु साधारणतया शरीर मे जंतु प्रवेश के २-३ दिन बाद और किसी-किसी को ४-६ दिन बाद रोग के लक्षण देख पडते हैं। इससे अधिक देर होने पर शायद ही रोग का आक्रमण होता है।

यदि किसी गॉव-नगर में हैजा फैल रहा हो, और किसी के शरीर में नीचे लिखे लक्षण देखने को मिलें, तो यह समझकर कि उस पर हैजे का आक्रमण हुआ, झटपट उचित उपचार करना चाहिए—

(१) दस्त—सबसे प्रथम लक्षण दस्त होना है। साधारण रीति से दस्त बार-बार होता रहता है, पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि दस्त कम होते हैं, और दर्द भी नहीं होता, इस कारण बहुत-से लोग बेफिक्र हो जाते हैं, परंतु यह बडी भारी भूल है।

(२) सुस्ती—कुछ रोगियो को हैज़ा होने पर अरुचि, बेचैनी और हाथ-पॉवो का मानो दम निकल गया हो, ऐसा मालूम होता है, यदि गाँव में हैज़ा फैल रहा हो और ये लक्षण देख पडें, तो तुरंत उपाय करना चाहिए।

(३) दर्द—कुछ रोगियो को रोग प्रारभ होने के प्रथम कुछ दिन या घटे तक पेट मे अत्यत दर्द होता है। यदि बस्ती में हैजा फैला हो और तब ऐसा दर्द मालूम दे, तो तत्काल ठीक-ठीक बदोबस्त करना चाहिए।

(४) किसी-किसी को एकाएक रोग भयंकर रूप से आ दबाता है। रात को मनुष्य राज़ी-ख़ुशी सोया है, रात-भर सुख से सोया पिछली रात में दो-तीन ही घटे में उसकी दशा असाध्य हो गई।

रोग का प्रधान स्वरूप इस प्रकार है—

दस्त—बहुधा दस्त का विशेष ज़ोर होता है। शुरू के एक-दो दस्त भारी-भारी होते हैं। और उनका रंग पीला होता है। उसके बाद ही उनका रूप और रंग बदलने लगता है। अब यह दस्त पतला और सफ़ेद रंग का हो जाता है, जैसा कि चावल का मॉड होता है। कभी-कभी इसमें ख़ून भी आता है। कभी आँव भी आ जाती है, पहला दस्त पित्त के कारण पीले रंग का होता है, पर रोग की प्रबलता में पित्त का पैदा होना बंद हो जाता है। इसलिये उसका रंग सफेद हो जाता है। ज्यो-ज्यो दस्त का रंग सफ़ेद होता जाता है, त्यो-त्यो इसमे 'आल्ब्युमेन' का हिस्सा बढ़ता जाता है। हैजे का दस्त बहुधा क्षारगुणक होता है।

बहुत लोग इस भ्रम में रहते हैं कि जब तक दस्त का रंग सफ़ेद न हो, तब तक उसे

हैज़ा ही नहीं समझते। पर बात यह होती है कि जब तक अँतड़ी में पुराना पित्त मिला हुआ मल रहता है, तभी तक दस्त पीला रहता है, इसलिये यह भ्रम हो जाता है।

उल्टी—बहुधा उल्टी और दस्त साथ ही शुरू होते है। कभी-कभी उल्टी पहले होती है, पर अधिकांश में दस्त ही पहले होता है। किसी-किसी केस में उल्टी बिल्कुल नहीं होती। किसी-किसी को उल्टी बड़े ज़ोर से होती है और वह उससे बहुत ही हैरान हो जाता है। पहले की उल्टी में ख़ुराक आदि निकलती है, पर पीछे सिर्फ चिकना पानी बाहर आता है, किसी-किसी को ख़ाली उबकाई होती है और पेट में से कुछ नहीं निकलता। इससे शरीर को बहुत कष्ट होता है। कभी-कभी उल्टी के साथ ख़ून आता है। उल्टी के साथ पित्त का भाग शायद ही कहीं देखने में आता है। कुछ डॉक्टरों का मत है कि इस रोग में उल्टी हानिकर नहीं होती, उल्टी से रोग का ज़हर शरीर से बाहर आता है।

दस्त और उल्टी के साथ ही पेट में बड़े ज़ोर का दर्द होता है। कभी-कभी यह दर्द बहुत ही भयकर होता है। ज्यों-ज्यों रोग का ज़ोर बढ़ता है, त्यों-त्यों पेट का दर्द बढ़ता जाता है। किसी-किसी को यह दर्द कलेजे के पास, किसी को नाभि के पास और किसी को पेड़ू के पास ज़्यादा मालूम होता है। किसी-किसी को तमाम पेट में दर्द होता है। किसी को कभी कहीं और कभी कहीं फिरता नज़र आता है।

दस्त, उल्टी और दर्द इनके साथ ही शरीर की शक्ति और कम होने लगती है। पहले थोड़ी गर्मी कम होती है, परंतु ज्यों-ज्यों दर्द बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों गर्मी थोड़ी होती जाती है। छूने में चमड़ी ठंडी मालूम देती है। ज्यों-ज्यों शरीर की गर्मी कम होती जाती है, त्यों-त्यों रोगी को अत्यत गर्मी और बेचैनी मालूम पड़ती है। कभी-कभी वह ओढ़ने के हल्के कपड़े को भी फेंक देता है।

गर्मी की कमी के साथ ही हाथ-पैरों का अकड़ना बढ़ने लगता है। पहले पिंडलियों में ऐंठन होती है, स्नायु सख़्त होने लगते हैं। फिर हाथ अकड़ने लगते हैं। पर जो रोग ज़ोर पर हो, तो सारा शरीर ऐंठने लगता है। इससे रोगी त्रास पाकर चीख़ने लगता है और बेचैनी से तड़फता है। जवान और ज़ोरावर मनुष्य को यह कष्ट अधिक होता है।

रोग का जोर ज्यों-ज्यों बढ़ता है, त्यों-त्यों शरीर का रूप-रंग बदलता जाता है। आँखें गढ़े में धँसती जाती है। चेहरा बिलकुल फीका और चिंतातुर हो जाता है। चमड़ी से हाथ लगाने पर वह ठंडी मालूम पड़ती है। पसीना चिकना आता है। किसी-किसी रोगी को भ्रम से चक्कर आते हैं और किसी को दर्द ज़ोर से होता है। नाड़ी धीमी होती जाती है। प्यास ज़्यादा लगती है। पेशाब बंद हो जाता है। पेशाब के विषय में कुछ चिकित्सकों की यह राय है कि जब तक पेशाब बंद न हो जाय, तब तक रोग को हैजा मानना ही न चाहिए। पर बहुधा ऐसा होता है कि यह पेशाब रोग शुरू होने के प्रथम मूत्राशय में आया हुआ होता है, रोग होने पर तो पेशाब बनता ही नहीं।

शक्ति कम होने पर दस्त और उल्टी कम हो जाती है। चेहरा बहुत उतर जाता है और नाडी बिलकुल सुस्त हो जाती है। कमजोरी ज्यों-ज्यों बढ़ती है, चमडी का रंग काला और आँखें गढे मे होती जाती है। गाल पिचक जाते हैं और होठ-दाँत काले हो जाते हैं। इतनी अधिक प्यास किसी भी दूसरे रोग मे देखी ही नहीं जाती। मुँह बिलकुल बंद नहीं हो सकता, दाँत खुले दीखते रहते है। अंतिम अवस्था में साँस का ज़ोर और शरीर से तीव्र दुर्गंध आने लगती हैं। इसके बाद उस शरीर में प्राण बहुत ही कम देर ठहर सकते है।

इस रोग में नाडी बडी जल्दी क्षीण हो जाती है। रोग शुरू होने के थोडी देर बाद ही उसकी चाल ९०-१०० हो जाती है। हृदय की गति मे भी उसी तरह अंतर पड जाता है और कभी-कभी उसकी धडकन इतनी तेज हो जाती है कि फिर उसकी गिनती हो ही नहीं सकती। रोग यदि सुधार की दशा मे होने लगे, तो अंत करण और नाडी की गति में सबसे प्रथम सुधार दीख पडता है।

तंदुरुस्त शरीर की उष्णता ९८॥ से कुछ नीचे रहती है। इस रोग में उष्णता अत्यंत कम हो जाती है और ९६-९५ अथवा इससे भी कम हो जाती है।

कभी-कभी ९० और ८८ तक पहुँच जाती है। बेहोशी होने पर गर्मी फिर बढने लगती है, पर अंत में वह भी उतर जाती है। परंतु कभी-कभी विपरीत देखने मे आता है, अर्थात् गर्मी बढने लगती है। और वह बडी तेज़ी से बढ़ती है। कभी-कभी १०७-१०८ तक गर्मी बढ़ते देखी गई है। और इतनी गर्मी बढने पर फिर रोगी के बचने की आशा नहीं रहती।

इस रोग में श्वास की नली मे बहुत अंतर पड जाता है। प्रारंभ मे २०-२२ श्वास चलते हैं। ज्यों-ज्यों कमज़ोरी बढती जाती है, साथ ही श्वास भी बढता जाता है। कभी-कभी उसकी गर्मी ३०-३५ तक पहुँच जाती है। श्वास कष्ट से आने के कारण छाती उभरने लगती है और नसें फूल उठती है। दम घुटने लगता है। और इसीलिये खून शुद्ध नहीं रह सकता। और काला पड जाता है। साथ ही होठ, आँखें और हाथ, पैर और चमडी सब काले पड जाते हैं। श्वास नली में भरपूर हवा न जा सकने से रोगी इधर-उधर तडपता रहता है। यद्यपि श्वास-नली में या फेफडो में कोई ख़राबी नहीं होती, फिर भी श्वास अटकता है। यह इस रोग की ख़ासियत है। ज्यो ही रोग आराम होने लगता है, सब तकलीफ़ें भी कम होने लगती हैं।

इस रोग में आवाज़ भी बैठ जाती है। रोगी की बोली नज़दीक के बैठे मनुष्य भी मुश्किल से सुन सकते हैं। ज्ञानेंद्रियों पर रोग का भरपूर असर होता है। रोग का संपूर्ण वेग होने पर रोगी आँख से नहीं देख सकता, न कान से सुन सकता है और न सूँघ सकता है, समझने की शक्ति भी कम हो जाती है।

उपर्युक्त सपूर्ण लक्षण होने पर रोगी का बचना मुश्किल हो जाता है। कभी-कभी

आस-पास की दौड-धूप से ही रोगी का हृदय बंद होकर मृत्यु हो जाती है। ऐसी मृत्यु प्रायः मूर्च्छित रोगी की होती है।

शक्ति-हीन होने से प्रथम दस्त-उल्टी कम होने पर रोगी सावधान हो जाता है। नाडी जो अदृश्य हो गई हो, फिर दीखने लगती है, प्रथम बहुत धीमी और पीछे धीरे-धीरे ठीक होती हुई। साथ ही शरीर मे गर्मी बढने लगती है, और होठ, आँख, मुख, दाँत पर का काला रग कम होने लगना है। श्वास ठीक हो जाता है। यह स्थिति धीरे-धीरे सुधरती जाती है।

उल्टी, दस्त बंद होने पर शरीर का गर्म हो जाना अच्छा चिह्न है। किसी-किसी को १०१-१०२ तक ज्वर चढ़ने में भी हानि नहीं। दस्त बद होने पर पीले रग का एकाध दस्त होना अति उत्तम चिह्न है। पीले रंग का दस्त तब होता है, जब प्रत्येक अग ठीक-ठीक काम करने लगता है।

इस रोग में पेशाब बंद हो जाता है। सब चिह्न कम हो जाने पर पेशाब भी आने लगता है। किसी-किसी रोगी को ७-३ दिन तक पेशाब नहीं आता। जब तक पेशाब नहीं आवे, तब तक रोगी खतरे में समझना चाहिए। देर तक पेशाब यदि नहीं उतरे, तो रोग के फिर आक्रमण का भय रहता है। पेशाब बंद रहने से सन्निपात या बेहोशी होने का भी भय रहता है। पेशाब उतरते ही रोगी बड़ी जल्दी से सुधरता है। कभी-कभी एक दिन में २० सेर तक पेशाब रोगी को उतरता है। इससे कुछ हर्ज नहीं।

यह रोग उलटकर छापा मारता है। इससे सावधान रहना चाहिए। यह बहुत भयंकर आक्रमण होता है। यह बात थोड़ी-सी बदपरहेज़ी से ही हो जाती है। कई बार तो यहाँ तक देखा गया है कि ३-४ मास बाद भी रोग ने उलटकर हमला किया है।

गर्भवती को हैज़ा हो, तो बहुधा गर्भपात हो जाता है। इस रोग में किसी को साँस, किसी को त्रिदोष और किसी को मरोड का रोग हो जाता है। और बहुधा सदा के लिये शरीर निर्बल हो जाता है।

हैज़े के प्रभाव से होनेवाले शारीरिक परिवर्तन

हैज़े के प्रभाव से शरीर के भीतरी अगों में विशेष परिवर्तन हो जाता है। बडे-बडे अस्पतालों में हैज़े के मरे हुए रोगियों के शरीर को चीर-फाडकर देखा गया, और नीचे लिखी बातों का पता चला—

१—इस रोग का मुख्य प्रभाव आमाशय और अँतडियो पर पडता है। यह प्रभाव एक-सा नहीं पडता, भिन्न-भिन्न रूप मे होता है। किसी को कम, किसी को विशेष। यदि रोग के शुरू होने के बाद जल्दी ही रोगी की मृत्यु हो जाय, तब तो अँतडियो में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दीख पडता, पर यदि रोग कुछ देर ठहर गया हो, तो अँतडियो के कला भाग (श्लेष्मावरण) मे थोड़ा-बहुत रक्त का जमाव हो जाता है। किसी-किसी को सूजन हो जाती

है। कभी-कभी आमाशय में से रक्त-स्राव भी होने लगता है। यह स्राव रक्त की कोई नस फट जाने से होता है।

अँतड़ी का प्रारंभिक भाग, जो आमाशय के साथ जुड़ा रहता है, उसमें कभी-कभी रक्त का जमाव हो जाता है और कभी-कभी उसके भीतर का पिंड (ब्रनर्स ग्लैंड) कुछ बढ़ जाता है। पर बहुत करके इससे अधिक परिवर्तन नहीं होता है। रोग का मुख्य प्रभाव अँतड़ी के पीछे के भाग के श्लेष्मावरण में होता है। वहाँ थोड़ा-बहुत रक्त अवश्य जमा हो जाता है। उस पर चावल के माँड के समान पदार्थ लिपटा हुआ मालूम होता है। इसके बाद मलाशय के निकट का जो अन्य भाग है, उस पर हैज़े का सबसे अधिक प्रभाव होता है। इस भाग के तमाम अंशों में श्लेष्मावरण में लोहू जम जाता है और जहाँ छोटी और बड़ी अँतड़ी का मेल होता है, उससे ज़रा ऊपर के भाग में यह जमाव और भी अधिक होता है। किसी-किसी मनुष्य का इस भाग का श्लेष्मावरण बिलकुल सूज जाता है। किसी-किसी का सड़ जाता है। यदि रोगी ३-४ दिन रोगी रहकर मरता है, तभी सड़ाव होता है। कभी-कभी अँतड़ी की रक्त-नली फट जाने से रक्त-स्राव हो जाता है। और दस्त के साथ ख़ून आता है।

जब तक रोग का प्रभाव कम रहता है, तब तक श्लेष्मावरण में सिर्फ़ सूजन रहती है। पर ज्यों-ज्यों सूजन बढ़ती है, त्यों-त्यों वह भाग निर्जीव होकर श्लेष्मावरण से छुटकर अँतड़ी के प्रवाही दस्त से मिल जाता है। इस मिश्रण का रंग चावल के माँड के समान होता है। यदि यह सूजन देर तक रहती है और गहरी हो जाती है, तब एक दूसरे के दबाव के कारण रक्त की गति मंद हो जाती है और अंत में सड़ाँद उत्पन्न हो जाती है। और वहाँ ज़ख़्म हो जाते हैं। कभी-कभी मलाशय इन ज़ख़्मों से भर जाता है। इनमें अधिकांश श्लेष्मावरण तक गहरे होते है, अँतड़ियों में छेद हो जाते है। वह गल जाती है। ऐसी दशा में रोगी के बचने की आशा नहीं रहती। कभी-कभी अँतड़ियों के सड़ने के बदले सूजे हुए रज-कणों की श्लेष्मावरण पर पपड़ी-सी जम जाती है। यह पपड़ी कभी-कभी अँतड़ी से अलग रहती है। कभी चिपकी रहती है। यदि अलग रहती है, तब तो अँतड़ी और उसके बीच में एक प्रवाही पदार्थ भरा रहता है। यदि रोग देर तक चलता रहे, तो यह पपड़ी इतनी मोटी और कठोर हो जाती है कि अँतड़ी का मार्ग ही रोक लेती है, ऐसी दशा में दस्त भी रुक जाता है, और भयंकर कष्ट होता है।

हैज़ा होते ही अँतड़ी के प्रारंभिक भाग में चावल के माँड़-जैसा सफ़ेद खारा, प्रवाही पदार्थ मिला हुआ आता है। उसमें कभी-कभी रक्तांश भी मिला आता है। यदि रोग देर तक चलता रहे, तो पित्त फिर बनने लगता है। ऐसी दशा में उस प्रवाही का रंग नीला होने लगता है।

२—बहुधा हैज़े के रोगी के कलेजे में भी रक्त जम जाता और वह बढ़ने लगता है। यह रक्त काले रंग का होता है। पित्ताशय पित्त से भरा रहता है, परंतु जिस तरह तंदुरुस्त

हालत में वह पित्त नली के द्वारा "ड्युओडिनम" में जाता है, उस तरह रोग होने पर नहीं जाता। रोग का वेग कम होने पर तत्काल ही उसकी भी प्रगति जारी हो जाती है। इसके बाद जो दस्त होता है, वह पित्त मिला हुआ होता है। इस रोग में पित्त दस्त में नहीं आता है, बल्कि उल्टी में भी नहीं आता है, पर पित्त की गति शुद्ध होने पर उल्टी में भी पित्त आने लगता है। ऐसे लक्षण दीखने लगें, तो समझना चाहिए कि रोग नरम हुआ है। परन्तु कभी ऐसा होता है कि पित्त दस्त या उल्टी में आने की जगह रक्त में मिल जाता है। और तब ऐसा मालूम होता है कि मानो कमलवाय हो गया हो। तब रोगी की दशा खराब होने लगती है।

३—यदि रोगी झटपट मर जाय, तो उसके आमाशय और अँतड़ी पर तो रोग का कुछ असर नहीं होता, परन्तु गुर्दे पर होता है। और खूब होता है। पहले उसमें रक्त का जमाव होता है और सूजन बढ़ जाती है, साथ ही आकृति बढ़ जाती है। भीतर की नलियाँ फूली हुई मालूम पड़ती हैं। और उसका श्लेष्मावरण जगह-जगह रक्त-स्राव से भरा हुआ-सा दीखता है। अधिकांश में रोग शुरू होते ही पेशाब बनने की क्रिया दूर हो जाती है। रोग शुरू होने पर पेशाब यदि मूत्राशय में रुका होगा, तो एकाध बार आ जायगा। पर फिर घंटों तक एक बूँद भी पेशाब नहीं उतरता। यदि मूत्राशय में पेशाब निकालने की नली डाली जाती है, तो वह बिलकुल खाली मालूम पड़ता है। गुर्दे की तरह मूत्राशय में भी कभी-कभी रक्त-स्राव होता दीखने में आता है।

ज्यों ही रोग का वेग कम होता है, त्यों ही मूत्र भी बनने लगता है। इस मूत्र को यदि खुर्दबीन से देखा जाय, तो उसमें अनेक जाति के मूत्र-नली के परमाणु दीख पड़ते हैं, ठीक वैसे ही गुर्दे की सूजन में देखे जाते हैं। यदि मूत्र को एक काँच की नली में गर्म किया जाय, तो ये परमाणु 'अल्ब्यूमेन' में घुल जाते हैं, जो कि गुर्दे की सूजन के कारण उत्पन्न हो जाता है। रोगी के मरने पर यदि उसके गुर्दे में छेद करके उसमें का एक बारीक कण खुर्दबीन से देखा जाय, तो उसमें भी ये परमाणु अत्यंत अधिक संख्या में दीख पड़ते हैं। इन परमाणुओं से मूत्र-नली भर जाती है और पेशाब पैदा होने को ज़रा भी जगह नहीं रहती। इनके साथ ही श्लेष्मावरण के रज-कण भी सूजे हुए मालूम पड़ते हैं। स्वस्थ अवस्था में यही रज-कण रक्त उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। परन्तु रोग का प्रभाव इन्हीं पर विशेष होता है। यही कारण है कि जब तक रोग का प्रबल वेग रहता है, पेशाब ठीक नहीं उतरता।

पेशाब उतरना रोगी के लिये अत्यंत शुभ लक्षण है। पर २-४ बार पेशाब उतरकर फिर बंद हो जाना घातक है। यदि पेशाब जारी रहे, तो वह तंदुरुस्ती की दशा से कुछ विशेष होता है। और उसका रंग बिलकुल पानी के समान होता है। वह वज़न में भी बिलकुल हल्का होता है। हैज़ा आराम होने पर गुर्दे की सूजन भी आप ही आराम हो जाती है।

४—उल्टी और दस्त—ये हैज़े के प्रकट लक्षण हैं। परन्तु सिर्फ़ उल्टी और दस्त देखकर ही घबराकर रोग को हैज़ा न समझना चाहिए। हैज़े के दस्त का रंग चावल के माँड के समान

होता है, यह निश्चय समझना चाहिए। और उसमें १०० भाग में १ भाग मल और शेष भाग प्रवाही अंश रहता है। पिछले दस्तो में इतना भी मल नहीं होता। इस रोग में १५ से २० तक दस्त एक दिन मे आते है। दस्त अल्प-मात्रा में होने पर भी शरीर बिलकुल निचुड़ जाता है। और चेहरे पर ६ महीने के रोगी के समान चिह्न दीखने लगते हैं।

दस्त का यह प्रवाही भाग रक्त मे से आता है, उसमें चार का भी कुछ अंश होता है। चूँकि शरीर में से प्रवाही अंश बहुत निकल जाता है, इसलिये रक्त का गुरुत्व बढ जाता है। तंदुरस्त हालत मे रक्त का गुरुत्व १०५६ होता है, इस रोग में १०८१ तक हो जाता है। नलियो मे से जो प्रवाही भाग निचुड-निचुडकर अँतडियो में और अँतडियो मे दस्त के रास्ते बाहर जाता है, उस स्थान की पूर्ति स्नायु, चर्बी आदि का द्रव भाग करता है। इस कारण शरीर के समस्त अवयव का प्रवाही भाग दस्त के रास्ते थोडे ही काल में निकल जाने से शरीर बिलकुल शुष्क और अशक्त हो जाता है।

हैजे के दस्त में एक विशेष प्रकार की गंध होती है। वह गंध दस्त के साथ आनेवाले एक विशेष पदार्थ की होती है, यह पदार्थ सिर्फ़ हैजे के ही दस्त में आता है। इसमें यदि शोरे का तेज़ाब मिलाया जाय, तो इसका रंग लाल हो जाता है। रोग ज्यों-ज्यों कम पडता जाता है, त्यों-त्यों यह पदार्थ भी कम होता जाता है। और उसके बदले पित्त का भाग दस्त में अधिक आने लगता है।

५—कभी-कभी अँतडी और गुर्दे की तरह फेफडा, हृदय और स्नायु में से भी रक्त-स्राव होने लगता है। यह बात रोग के अत्यंत ज़ोर होने पर होती है, इससे कमज़ोरी और बेहोशी बढ़ जाती है। यदि रोगी जल्दी मर गया हो, तो चीरने पर उसका फेफडा सूखा, चिमड और वज़न में हल्का मालूम पडता है। उसे यदि काटा जाय, तो उसमें ख़ून या और किसी प्रवाही पदार्थ की एक बूँद भी नहीं निकलेगी। फेफडे पर असर इस रोग में ख़ासकर ठंडे देशों में होता है। सन् १८६२ मे जब जर्मनी के हेबर्ग नगर मे हैज़ा फैला था, तब १५२ मनुष्यों की लाशें चीरकर देखी गईं, इनमें से ६२ मनुष्यो के फेफडो मे सूजन थी।

६—गर्भाशय के श्लेष्मावरण मे कुछ सूजन हो जाती है और कभी-कभी उसके भीतर का भाग ख़ून से भर जाता है। इससे कमज़ोरी हो जाती है और शरीर ठंडा होने लगता है। बहुधा रक्त-स्राव होने लगता है। सगर्भा स्त्री के ऊपर तथा गर्भ के ऊपर इसका ख़ास असर पडता है। अधिकांश मे गर्भपात हो जाता है। सगर्भा स्त्री की मृत्यु होने पर गर्भस्थ जीव की भी मृत्यु हो जाती है।

७—इस रोग में मस्तक मे भी थोडा-बहुत रक्त जमा हो जाता है। यदि रोग ज़्यादा दिन तक ठहरे, तो सिर की नसें फूली हुई मालूम पडती हैं। यदि ज्यादा रक्त चढता है, तो बेहोशी हो जाती है। यदि मस्तिष्क मे ख़ून न चढा हो, तो भी कभी-कभी सिर्फ़ पेशाब की रुकावट के कारण बेहोशी हो जाती है।

कभी ऐसा होता है कि एकाएक आनन-फ़ानन ४-५ मिनट में ही देखते-देखते रोगी कुछ-का-कुछ हो जाता है। रोगी पर साधारण रोग का असर है, बात कर रहा है, एकदम दब गया। शरीर ऐसा हो गया कि पहचानना भी कठिन। चेहरा उतर गया, शरीर ठंडा पड गया। आँखें गढे में धँस गईं, गाल गढे में बैठ गए, नाडी का पता नहीं, श्वास आने-जाने में भी कठिनाई होने लगी। देखते-देखते रंग काला हो गया। ऐसी दशा होने पर शायद ही कोई बचता है।

एकाएक ऐसा क्यों होता है, इस बात पर विचार करना चाहिए। जब तक बेहोशी न हो, तब तक हृदय और फेफड़ा अपना-अपना कार्य करते रहते हैं। बेहोशी शुरू होते ही दिल की चाल में फर्क होने लगता है। श्वास कष्ट से आने लगता है। कभी-कभी ये लक्षण प्रथम होते हैं, पीछे बेहोशी आती है। हृदय की गति की ध्वनि साधारणतया जेब-घडी की टिक-टिक के समान होती है। व्याधि के कारण उसका रूप बदल जाता है। बेहोशी में हृदय की आवाज़ यदि स्टेथोस्कोप से सुनी जाय, तो बहुत अस्पष्ट मालूम पडती है। कभी-कभी सुनते-सुनते यह आवाज़ बदल जाती है, और ऐसा मालूम होता है, मानो भीतर धौंकनी चल रही है। कुछ देर में वह भी बदल जाती है, और ऐसी आवाज़ सुन पडती है, मानो कोई वस्तु किसी वस्तु से रगड खा रही है। इस तरह ज़रा-ज़रा-सी देर में आवाज बदलती है। ज्यों-ज्यों बेहोशी बढ़ती है, त्यों-त्यों रगड और धौंकनी की आवाज स्पष्ट सुनाई देती है। यदि रोग काबू में आ जाय, तो फिर वही टिक-टिक की आवाज़ आने लगती है।

बेहोशी में मरे हुए आदमी के हृदय को चीरकर जब देखा गया, तब इस प्रकार की आवाज़ का कारण मालूम हुआ। हृदय में रक्त के सफेद कणों का एक गोला बन जाता है। इस कारण रोगी को फ़ौरन् बेहोशी हो जाती है। अनेक बार तो रोग शुरू होने के एक-दो घंटे के भीतर ही उसकी मृत्यु हो जाती है। जब तक शरीर में रक्त शुद्ध रहता है, तब तक गोला नहीं बनता। हैजे में रक्त का प्रवाही भाग निकल जाता और रक्त का गुरुत्व केंद्र बढ जाता है, इस अवसर पर कभी-कभी खासकर हृदय के दाहनी ओर गोला बँध जाता है। इसी प्रकार जैसे बाहर की हवा लगते ही रक्त जमकर गोला बन जाता है। यह गोला हृदय के दाहने पार्श्व में बंधन उत्पन्न करता है। वहाँ से वह दाहने कोष्ट तक फैल जाता है। कभी-कभी यह गोला इतना बडा हो जाता है कि हृदय को बिलकुल ढक लेता है। फिर दाहने कोष में से फेफड़े में जानेवाली धमनी में दाख़िल होता है। इस धमनी में से कभी-कभी उसके टुकडे-टुकड़े होकर उसकी शाखाओं में दाख़िल हो जाता है।

स्टाइस्थोकोप में धौंकनी की तरह और रगडने की तरह जो शब्द-ध्वनि निकलती है, वह इसी गोले से हृदय की रगड से निकलती है। यदि यह गोला बडा हो, तो जीवन के लिये भयंकर है, इसके कारण हृदय से फेफडे में रक्त जाने की जगह नहीं रहती। इसलिये जितना रक्त फेफडे में जाना चाहिए, उतना जा नहीं सकता। रुका हुआ रक्त कलेजे और अँतडियों

में जमने लगता है। ज्यों-ज्यों रक्त अँतड़ी में जमा होता है, त्यों-त्यों दस्त ज्यादा होते हैं। यह गोला यदि देर तक रहे, तो जीवन ठहरना कठिन है। पर अधिकांश में यह फिर प्रवाही बन जाता है। ऐसा होने पर फिर हृदय की चाल ठीक-ठीक सुनाई पड़ने लगती है। यह बात कही गई है कि इस रोग में एकदम कमजोरी आ जाती है, और श्वास रुकने लगता है, तथा नाड़ी खो जाती है। इन सबका कारण फेफड़े में यथेष्ट रक्त का न पहुँचना ही है। धमनियों में रक्त की कमी से नाड़ी सुस्त पड़ जाती है। शिराओं में रक्त की कमी से चेहरा उतर जाता और काला पड़ जाता है। हर हालत में सभी मनुष्यों पर एक-सा प्रभाव नहीं पड़ता। यदि किसी की अँतड़ी पर ज्यादा प्रभाव पड़ता है, तो दस्त, उलटी ज्यादा आती है। यदि दूसरे अवयवों पर जहर का प्रभाव होता है, तो दुर्बलता बढ़ती है। जब गुर्दे पर प्रभाव पड़ता है, तब पेशाब बंद हो जाता है। मस्तिष्क पर असर पड़ने से बेहोश और हृदय पर असर होने से शरीर की मग्नावस्था हो जाती है। किसी वक्त सख़्त ज्वर आता है, किसी का शरीर बिलकुल ठंडा पड़ जाता है। परंतु इसका खास चिह्न चावल के माँड के समान रंगवाला दस्त होता है।

हैज़े की चिकित्सा

यह कहा जा सकता है कि हैज़े की कोई अमोघ दवा नहीं ईजाद हुई है। परंतु अब तक अँगरेज़ी, यूनानी और आयुर्वेदिक तथा होमियोपैथी जो उपचार उत्तमोत्तम प्रचलित हैं, उनका उल्लेख हम यहाँ करते हैं—

हैज़े का सर्वप्रथम बाह्य चिह्न दस्त है। हैज़े के दिनों में चाहे जिस कारण से किसी को दस्त लग जायँ, तो भी तत्काल उसका उचित उपचार फ़ौरन् करना चाहिए। हैज़े के दिनों में आँव, मरोड़, अतिसार होना अत्यंत ख़तरनाक है। शुरू से ही उनका ठीक-ठीक इलाज होना उचित है, जिससे रोग रुके, और शरीर कमज़ोर न पड़े। हैज़े का आक्रमण कमज़ोर शरीर पर ज्यादा पड़ता है। इसलिये इस ऋतु में शुरू से ही शरीर को सँभालना और रोग का उपचार यथावत् करना चाहिए।

दस्त होने के अनेक कारण हो सकते हैं। कभी-कभी रोग के परमाणु-युक्त और कच्चा अन्न खा लेने से, कभी-कभी अँतड़ी में पुराने एकत्रित मल के कारण से। कभी-कभी रक्त के दोष से दस्त होने शुरू हो जाते हैं। अस्तु। दस्त चाहे भी जिन कारणों से हो, उन्हें बंद करने से प्रथम आमाशय और अँतड़ियों में इकट्ठा हुआ मल निकालना बहुत ज़रूरी है। जब तक ये पदार्थ अँतड़ी में रहेंगे, तब तक रोगी ख़तरे में रहेगा।

यह बात कही जा चुकी है कि हैज़े के दस्तों का मुख्य कारण हैज़े के कीटाणु हैं। और ये कीटाणु ख़ुराक और पानी के साथ पेट में पहुँच जाते हैं। वहाँ से रक्त में प्रवेश करते हैं। आमाशय और अँतड़ी में ज़हरी रसादि इकट्ठा हो जाता है। दस्त और उलटी का कारण यही जहरी रस है। दस्त, उल्टी के रास्ते यही ज़हर बाहर आता है। यानी प्रकृति शरीर में से बल-पूर्वक इस

विष को फेंकती है। यदि यह जहर शरीर में से बाहर निकलने से पूर्व ही दस्त और उल्टी बंद कर दी जायँ, तो रोगी को लाभ होने की बहुत कम आशा है। इसलिये हैजे की चिकित्सा में सबसे प्रथम माननीय सिद्धांत यह होना चाहिए कि जब तक तमाम ज़हरी पदार्थ और दुर्गंधित अंश न निकल जाय, तब तक अफीम या और कोई तीव्र मल-रोधक दवा न देनी चाहिए। यदि ऐसा न किया जायगा, तो मल कुछ देर को रुककर फिर बड़े वेग से बाहर निकलेगा।

तब शरीर से हैज़े के विष को निकालने का एक ही इलाज जुलाब है। और जुलाब की सर्वोत्तम दवा एरंडी का तेल है। इसमें यह गुण है कि अँतड़ी पर बिना किसी बुरे प्रभाव के वहाँ के ज़हर को झटपट शरीर से निकाल फेंकता है। यह तेल इस प्रकार देना चाहिए—

एरंडी का तेल	१॥ तोला
गोंद का पानी	१॥ तोला
सौंफ या गुलाब का अर्क	२॥ तोला

अथवा

एरंडी का तेल	१॥ तोला
नींबू या नारंगी का रस	४ मासा
पानी	२॥ तोला

एरंडी का तेल स्वाद में बहुत ख़राब होता है, पर उपर्युक्त विधि से देने से ज़्यादा ख़राब नहीं मालूम होता। यदि उपर्युक्त दवा रोगी को देने पर उल्टी हो जाय, तो तत्काल ही दूसरी मात्रा दे दो। दवा देने के बाद आधा घंटा तक उसे कुछ पानी वग़ैरा मत दो। चुपचाप लेटने को कहो। आधा घंटा दवा पच जाने पर फिर उल्टी होने का भय नहीं रहता। एक या दो घंटे में दवा के असर से जुलाब होगा।

परंतु जो रोगी को अधिक उल्टियाँ हो रही हों, और दवा पचे ही नहीं, तब १॥ रत्ती 'केलोमिल' या नाराचरस जीभ पर डालकर अर्क सौंफ या गुलाब से उतार दो। इससे दस्त साफ़ आएगा। रोग के कीटाणु मरेंगे और उल्टी बंद होगी। दस्त साफ़ हो, दर्द कम हो, पेट मुलायम हो, ज़बान साफ दीखे, तब समझना कि ज़हर निकल गया। यदि प्रथम ही से ये लक्षण दीखें, तो जुलाब देने की ज़रूरत ही नहीं। पर जब तक दस्त सफ़ेद रंग का चावल के माँड़ के समान दीखे, पेट पर अफारा रहे, और देखने पर दस्त में प्रवाही भाग अधिक दीख पड़े, तब तक यह निश्चय जानना चाहिए कि रोग का जहर शरीर में है, और अभी दस्त बंद करना मुनासिब नहीं है। जब तक यह विष शरीर में दीखे, बराबर जुलाब की उपर्युक्त क्रिया जारी रखना उचित है। परंतु यथासंभव एरंडी के तेल का ही जुलाब देना उचित है। यदि विचार-पूर्वक ठीक मात्रा में एरंडी का तेल दिया जायगा, तो रोग में कोई ख़राबी होने का भय नहीं।

योरप में जब सन् १८६२ में हैज़ा फैला, तब जर्मनी, इटली और रूस के डॉक्टरों ने विशेषकर अफीमवाली दवाइयाँ देनी शुरू की। परंतु पीछे की खोज और अनुभवों ने यह बताया है कि जब तक शरीर में रोग का विष बाक़ी रहे, तब तक अफ़ीम-जैसी चीज़ देनी उचित नहीं। इस ढंग से उपचार करने से संतोष-जनक परिणाम हुआ है। जर्मनी के डॉक्टरों ने रोग के प्रारंभ में 'केलोमल' और एरंडी का तेल रोगियों को दिया, और उत्तम परिणाम पाया। रूस के एक प्रख्यात डॉक्टर का कथन है—हैज़े का ज़हर दस्त के द्वारा ही शरीर से बाहर निकलता है। इसलिये दस्त को एक अंदाज़ से जारी रखना ख़ास तौर से उत्तम है। सन् १८२६ में जो योरप में हैज़ा फैला था, उस वक़्त इँगलैंड की सरकार के कहने से "रॉयल कॉलेज ऑफ् फिज़ीशियंस" ने हैज़े के रोगियों पर अनुभव करके जो सूचनाएँ समय-समय पर प्रकट की थीं, उनका अभिप्राय यह था—

हर हालत में विष शरीर में रहते हुए अफीम-मिश्रित दवा देनी हानिकारक है। परंतु जब देखा जाय कि विष निकल गया है, तब बेशक अफीम की दवा देनी चाहिए।

अफीम-मिश्रित दवाइयाँ, जो हैज़े पर अचूक काम करती हैं, इस प्रकार हैं—

१—जायफल (बड़े) हरएक के दो टुकड़े करके एक में गड्ढा खोदकर ३ माशे शुद्ध सिंगरफ और दूसरे में २ माशे अफीम भर दे। फिर दोनों को मिलाकर कपरौटी करे। फिर ताँबे की देगची में ७ छटाक घी डालकर वे गोलियाँ उसमें डाल दे। देगची में भी मज़बूत कपरौटी कर दे। नरम आँच से २ घंटे बराबर पकावे। जब कपरौटी सुर्ख़ हो जाय, फिर गोलियों को निकाल पीसकर रख ले। एक रत्ती से ३ रत्ती तक उचित अनुपान से दे। अद्भुत है।

२—अफीम, हींग, कपूर, काली मिर्च, लाल मिर्च के बीज। सब बराबर ले मटर प्रमाण गोली बनावे, अर्क गुलाब से दे।

३—महुए की शराब १२॥ सेर, अफीम १६ तोला, जायफल, इंद्रजौ, इलायची प्रत्येक ८ तोला १ महीने बंद कर रक्खे, पीछे २० से ४० बूँद तक काम में लावे।

४—कपूर, इंद्रजौ, सुहागे का फूला, मिरच काली, हिंगुल शुद्ध, मोथा, अफीम सब बराबर ले पानी से गोली चने प्रमाण बनावे। इन्हें काम में ले, उत्तम है।

डॉक्टर लोग जो दवा ऐसे मौक़े पर देते हैं, उनके भी कुछ उत्तम नमूने लिखे जाते हैं—

एरंडी का तेल ६ माशा।

टिंचर ऑफ़् ओपियम १५ बूँद।

पानी शुद्ध २॥ तोला।

इस दवा से ऐंठन फ़ौरन् बंद होती है। दस्तों का वेग कम होता है। एक बार पेट साफ़ होने पर फिर विष संचय होने का भय है, इसलिये इसकी मात्रा अत्यंत उपयोगी है।

हैज़े के रोगी के हाथ-पैर ऐंठते हैं, उससे उसे बड़ी घबराहट होती है। जब तक शरीर

में हैज़े का विष रहता है, यह तकलीफ बनी रहती है। अफ़ीम देने से इसमें आराम मिलता है। परंतु अफीम लेना तब तक उचित नहीं, जब तक कि शरीर मे रोग का विष हो। इसलिये ऐंठन के लिये गर्म पानी की बोतल का सेंक करना या गर्म पानी में राई का चूर्ण मिलाकर, उसमें फलालैन का टुकड़ा भिगोकर और निचोड़कर उससे सेंक करना चाहिए।

उल्टियाँ रोकने की कोशिश बहुत कम करना चाहिए। उल्टी के ही ज़रिए से शरीर का विष बाहर निकलता है। उल्टी जारी रहने से रोग जल्दी आराम होता है। इसके सिवा उल्टी से रक्त की गति को जो उत्तेजना मिलती है, वह भी रोगी के लिये बहुत लाभदायक है। परंतु यदि यह देखा जाय कि उल्टियाँ अजीर्ण से आ रही हैं, अर्थात उल्टी में चिकना लसदार पदार्थ ही नहीं है, अन्न के कण भी हैं, तो यह दवा देनी चाहिए—

सेंधा नमक ६ माशा, राई का चूर्ण १॥ माशा, जल गुनगुना ७॥ तोला।

अगर रोगी के लिये उल्टी आना भयप्रद हो, तो उसे बंद करने को १॥ रत्ती 'कैलोमेल' देना चाहिए। छोटे-छोटे बर्फ के टुकड़े मुँह में रखकर चूसने दो। थोड़ा-थोड़ा बर्फ़ का पानी भी दे सकते हो। पर ज्यादा बर्फ देना भी ठीक नहीं है। इससे शरीर की गर्मी कम होने का भय है।

इस रोग में प्यास का बहुत ज़ोर रहता और गला सूखता है। इसके लिये ३-४ माशा ताज़ा नीबू का रस आधी छटाक पानी में मिलाकर उसका एक-एक चम्मच थोड़ी-थोड़ी देर से देना चाहिए। दवा के साथ मिलाने का पानी स्वच्छ होना चाहिए। यह पानी ख़ूब पकाकर ठंडा किया हुआ हो।

जब तक दस्त जारी रहें, तब तक ख़ुराक की तौर पर कोई भारी चीज़ नहीं देनी चाहिए। सिर्फ़ पानी में पकाया हुआ साबूदाना ज़रूरत देखकर दिया जा सकता है।

दस्त का अधिक ज़ोर होने पर, कुछ भी ख़ुराक देनी निरर्थक है। क्योंकि उसके पचने का कुछ प्रबंध नहीं हो सकता। ऐसी दशा में थोड़ी गर्म काफी दी जा सकती है, इससे शरीर में उत्तेजना होगी। यदि शरीर में ज़्यादा निर्बलता दीख पड़े, तो गुदा में गर्म जल की पिचकारी दी जा सकती है।

रोगी को शांति और आराम की बड़ी ज़रूरत है। बिछौने पर छटपटाने से रोग प्राय. बढ़ जाता है। दस्त-उल्टी के लिये भी उसे बिछौने से उठने देना ठीक नहीं। लेटे-ही-लेटे दस्त 'बेडपैन' में कराना और उसे साफ़ हवादार कमरे में सुलाना चाहिए।

जब रोगी की उल्टी और दस्त में पीला रंग आने लगे, तो समझना कि कलेजे में पित्त बनने लगा और रोग शमन हो रहा है। रोग सुधरने के बाद भी दो-तीन दिन तक रोगी को प्रतिदिन एक बार एरंडी-तैल देने की ज़रूरत है। इससे शरीर का तमाम विष बाहर निकल आवेगा और रोगी बहुत शीघ्र अच्छा हो जायगा।

कभी-कभी इस रोग में ख़ून आता है। इसका कारण अँतड़ी की एकाध नस का टूट जाना है—यह ख़ून आना अत्यंत भयंकर है। यदि वह जारी रहे, तो रोगी की जान जोखिम समझना चाहिए। रक्त देखते ही एरंडी का तेल बंद करके नीचे की दवा प्रति घंटे देनी उचित है।

तारपीन का तेल २० बूँद, गोंद का पानी ५ बूँद, पानी शुद्ध २॥ तोला—अथवा कुटजारिष्ट ६ माशा, पानी शुद्ध २॥ तोला, अहिफेनासव १० बूँद।

रोग आराम होने पर कुछ दिन तक खिचड़ी, साबूदाना, दूध, भात, दाल का पानी इत्यादि देना और कोई पाचक वस्तु जैसे गंधकवटी, लवणभास्कर आदि भोजन के पीछे लेते रहना।

कभी-कभी रोगी की हालत सुधरते-सुधरते ज्वर चढ़ आता है। और पेशाब बंद हो जाता तथा बेहोशी आने लगती है। यह बात बहुधा रोग की प्रारंभिक अवस्था में अफ़ीम या बराँडी देने से हो जाती है।

इस अवसर पर ज्वर उतारने और पेशाब लाने को यह अँगरेज़ी दवा देनी चाहिए—सिडलिट्ज़ पौडर २ ड्राम, पानी १ औंस।

इसके बाद प्रत्येक आधे घंटे पर यह दवा दे—नीबू की सिकंजबीन ६ माशा, अर्क गुलाब २॥ तोला, अर्क सौंफ २॥ तोला। (३ मात्रा)

यदि पेशाब बंद हो या थोड़ा आता हो, तो गुर्दों पर फ़ौरन् जोंक लगवाकर ख़ून निकलवा डालना चाहिए। या भरी हुई सींगी तुड़वानी चाहिए।

होमियोपैथी पद्धति में भिन्न-भिन्न लक्षणों और उपद्रवों का इस तरह प्रतिरोध लिखा है—

(१) अधिक क़ै-दस्त होने और कपाल पर ठंडा पसीना आने पर, 'वेराट्रम ६' देना।

(२) हाथ-पैर की अधिक ऐंठन पर 'किउप्राम ६' देना।

(३) क़ै-दस्त के साथ प्रबल प्यास, गात्र-दाह होने पर भी रोगी वस्त्र में शरीर को ढँके रखने की इच्छा करे, शरीर निढाल हो जाय, दुर्बलता और अस्थिरता दिखाई दे, तो 'आरसेनिक ६' देना।

(४) क़ै-दस्त के साथ पेट में ज्वाला या तीव्र वेदना और मृत्यु-भय तथा छटपटाहट अधिक हो, तो 'एकोनाइट रेडिक्स माटर' देना।

(५) निरंतर वमनोद्वेग, वमन होने पर भी शांति न हो, तो 'इपीकाक ६' देना।

(६) पर वमन होते ही वमनेच्छा की शांति हो जाय, तो 'आंटिम टार्ट ६' देना।

(७) गर्म दस्त, गर्म क़ै, प्रबल प्यास या प्यास बिलकुल न हो, तो 'पडो फ़ाइलम ६' देना।

(८) शीतांग हो, पर भीतर दाह हो, बेहोशी हो, तो 'सिकेली ३' देना। हिमांग, सर्व शरीर नीलवर्ण, दस्त, क़ै और पसीने की अल्पता और अंतर्दाह पर 'कैंफर' देना।

(६) नाड़ी लुप्त, मुख पर मुर्दनी, शरीर बर्फ-सा ठंडा हो, तो 'कोबा' या न्याजा २ विचूर्ण का प्रयोग कराना।

आयुर्वेदिक पद्धति मे—यदि नाड़ी क्षीण होने लगे, पसीना ठंडा हो, तो कस्तूरी-चंद्रोदय और कपूर प्रत्येक आधी रत्ती अदरख के रस में मिलाकर देना।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि रोग होते ही किसी उत्तम चिकित्सक के हाथ मे रोगी को सौंप देना। घरेलू तजुर्बेकारो और ऊँट वैद्यो के आसरे चिकित्सा का अवसर नहीं खोना।

हैज़े का बंदोबस्त

सबसे पहली बात यह है कि घर में अगर कोई आदमी हैज़े के चपेट मे आ जाय, तो घबराना नहीं चाहिए, सावधानी से उसकी चिकित्सा करानी चाहिए। और इस बात की भी सावधानी रखनी चाहिए कि घर की किसी चीज़ मे हैज़े के ज़हर का असर न होने पावे।

यह याद रखना चाहिए कि जिस रोगी को हैज़ा हुआ है, वह स्वयं विष-रूप है। इसलिये उसके दस्त, उल्टी, पसीना, वस्त्र आदि के हाथ लगाने पर हाथ अच्छी तरह कार्बोलिक साबुन से धोना चाहिए। ऐसा न करने से रोगी के पास रहनेवालो और सेवा करनेवालो को रोग लग जाने का भय रहता है। सेवा करनेवालो को सफ़ाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए। गंदगी पर हैज़े का जल्दी असर होता है। रोगी के काम मे आई कोई चीज़ अपने काम मे नहीं लेनी चाहिए, और खाने-पीने के लिये जब ज़रूरत पडे, दूसरे कमरे में जाकर खाना-पीना चाहिए।

हैज़े के रोगी की दशा ज़रा-ज़रा-सी देर में बदलती रहती है। न-जाने उसके लिये कब किस चीज़ की ज़रूरत पड़े, इसलिये हैज़े के रोगी की सम्हाल के लिये बहुत ही होशियार आदमी की ज़रूरत है।

दस्त और उल्टी—हैज़ा फैलने का सबसे प्रधान ज़रिया रोगी का दस्त है। इसलिये दस्त की सफाई का बंदोबस्त फौरन् होना चाहिए। जो आदमी दस्त उठावे, वह अपने हाथ और शरीर की सफाई की भरपूर निगरानी रक्खे। यह जान लेना चाहिए कि दस्त छूनेवाला रोगी सबसे ज्यादा ख़तरे में है। अगर दस्त फ़ौरन् ही न उठाया जायगा, तो उसके जतुओ का घर की वस्तुओ मे प्रवेश करने का पूरा अंदेशा है। मक्खियाँ बहुधा दस्त पर बैठकर पीछे खाने-पीने की दूसरी चीजो पर बैठ जाती हैं। यह अत्यंत ख़तरनाक बात है। जब तक दस्त मे गीलापन रहेगा, तब तक उसमें कीटाणुओ के रहने का भय है। इसलिये उत्तम बात तो यह है कि दस्त होते ही उस पर धधकते अगारे और गर्म राख डाल देनी चाहिए। यह सबसे उत्तम उपाय है। कुछ अँगरेजी दवा जतु-नाशक होती है, और उनका उपयोग भी लाभदायक होता है। इन दवाओं के नाम 'कार्बोलिक पौडर', 'क्लोराइड ऑफ् लाइम', 'कोरोजिव सब्लिमेंट' है। इन दवाइयो की गंध-मात्र से मक्खियाँ बहुत दूर भागती हैं। 'कार्बोलिक पौडर' सस्ती चीज है और प्रायः छोटे-कस्बो में भी मिल जाता है।

परंतु जहाँ उपर्युक्त व्यवस्था न बन सके, वहाँ दस्त पर राख या मिट्टी डालकर बस्ती से दूर ऐसे ढंग से ज़मीन में गाड़ देना चाहिए कि जिससे बस्ती में उसका कुछ बुरा प्रभाव न हो। दस्त को जलाशय के पास डालना या जलाशय में रोगी के दस्त, उल्टी के कपड़े धोना अत्यंत भयंकर है। दस्त उठानेवाले मनुष्य के हाथ गर्म पानी और कार्बोलिक साबुन से तुरत धुला देने चाहिए।

जिस ज़मीन पर या बर्तन में रोगी ने दस्त किया हो, उसे ख़ूब साफ करना चाहिए। और गर्म अंगारे या गर्म राख डालनी चाहिए। धरती पर यदि हुआ हो, तो जगह साफ़ करके वहाँ पर कार्बोलिक पौडर डालना चाहिए। अगर फर्श पक्का हो, तो उस पर २ अंगुल मोटी मिट्टी बिछी रहने देना चाहिए, पर यदि धरती कच्ची हो, तो उसकी सफाई की ज़्यादा चिंता करनी चाहिए। सबसे अच्छी बात तो यह है कि वहाँ से एक-एक बालिश्त मिट्टी खोदकर नई मिट्टी भरकर गोबर से लीप देना चाहिए। मिट्टी शहर से दूर फेंकी जाय। इस प्रकार मिट्टी खोदना ख़तरे से ख़ाली नहीं है। चाहिए तो यह कि जिस कमरे में रोगी रहा हो, या उसने दस्त-उल्टी की हो, वहाँ १०-२० दिन न जाना चाहिए। और उसके बाद उसे साफ करना चाहिए।

ख़ुराक—पके हुए भोजन मे हैज़े के कीटाणु बहुधा प्रवेश कर सकते है। उन दिनों में किसी को ठंडा या बासी पदार्थ नहीं खाना चाहिए। तुरंत का पकाया हुआ गर्म भोजन करना चाहिए। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इन दिनों मे गुड, मिठाई, शक्कर आदि जिन चीज़ो पर मक्खियाँ पहुँच सकती हो, उनका बिलकुल उपयोग नही करना चाहिए, बल्कि इन चीज़ो को पास भी नहीं रखना चाहिए। कच्चे अनाज मे इन जतुओ का बहुत कम प्रभाव होता है। यदि कुछ प्रभाव होता भी है, तो पकाते वक्त वे नष्ट हो जाते हैं। घर के प्रत्येक मनुष्य को नियमित रीति से पचन हो सकने योग्य हल्की ख़ुराक लेनी चाहिए।

जल—जिस घर मे हैजा हुआ हो, वहाँ का तमाम पानी फेक देना चाहिए। तमाम मिट्टी के घडे फोड़ देना, और ताँबे-पीतल के बर्तनों को काम में लाना चाहिए। उन्हें भी अच्छी तरह तपा लेना चाहिए। जिस कुएँ या तालाब का पानी घर मे आता हो, उसकी जाँच करानी चाहिए। और जहाँ का पानी शुद्ध हो, वहाँ से मँगाकर काम में लेना चाहिए। नल का पानी प्राय. ऐसे मौके पर शुद्ध रहता है। पानी पीने और खाने के बर्तन भी थोडी देर आग या गर्म राख मे रखने चाहिए।

मोरी और नाबदान—मोरी और नाबदानो को कार्बोलिक पौडर या कलई, चूना डालकर साफ़ रखना चाहिए। उसमें हर वक्त फ़िनाइल की गोली पडी रहनी चाहिए। गंदा पानी घर के बाहर कभी जमा न रहना चाहिए।

रोगी के काम में आए हुए कपडे, बिस्तरे बिना अच्छी तरह स्वच्छ किए कदापि काम में न लाने चाहिए। इन कपड़ो को उबलते पानी में आध घंटे तक रखने से उनमें के तमाम जंतु

मर जाते हैं । कपड़ों को अच्छी तरह गर्म करना चाहिए। कम कीमती कपड़ो को तो जला देना ही अच्छा है । कपड़ा धोनेवाले को अपना काम करके अपने हाथ कार्बोलिक साबुन से धोने चाहिए। बहुधा देखा गया है कि यह रोग पहले धोबियों में फैला है । इसका कारण यही है कि उन्हें रोगियों के वस्त्र धोने को दिए गए और उन्होंने अपने बचाव की तरफ़ कुछ ध्यान न किया। यदि गद्दे आदि बड़े-बड़े कपड़े धोने के योग्य नहीं, तो उन्हें कार्बोलिक पौडर लगाकर १०-१५ दिन धूप में पड़े रहने दो । तेज़ गर्मी में तो २-३ दिन में ही वे वस्त्र शुद्ध हो जाते हैं ।

मुर्दा—हैज़े के मुर्दे को गाड़ने या पानी में बहा देने की अपेक्षा जला देना अति उत्तम है। शरीर कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सिजन, नाइट्रोजन, सल्फर, फास्फरस, कलशियम आदि तत्त्वों से बना है। मरने के बाद उसमें सल्फ्यूरेड हाइड्रोजन, नाइट्रस एसिड, फोस्फेटस आदि पदार्थ बनकर हवा-पानी और मिट्टी में मिल जाते हैं। जलाने से यह क्रिया बहुत जल्दी हो जाती है। गाड़ने से देर लगती है, और रोग के ज़हर के फैलने का अंदेशा रहता है।

यदि हैज़ा-जैसे छूत के रोगियों को गाड़ दिया जाय, तो मिट्टी अपने जंतु-नाशक गुण के कारण २०-२१ दिन में रोग-जंतु का नाश कर देती है। जर्मन के एक डॉक्टर ने हैजे से मरे मुर्दों को कब्र में से उखाड़कर परीक्षा की और मालूम किया कि मिट्टी के प्रभाव से हैज़े के जंतुओं का १६ दिन में सर्वनाश हो जाता है। यदि ऐसे मुर्दे को गाड़ा ही जाय, तो लगभग ६ फ़ुट गहरा गाड़ना चाहिए।

ध्यान में रखना चाहिए कि कब्रस्तान की हवा सदैव गंदी रहती है, इसलिये उसके पास के जलाशय का पानी कभी न पीना चाहिए। इँगलैंड और जर्मनी में बहुधा ऐसे रोग से मरे हुए मुर्दे जला दिए जाते हैं।

हिंदुओं में मृतक-संस्कार की जो रीतियाँ प्रचलित हैं, वे बहुत ही वैज्ञानिक और लाभ-दायक हैं। मृतक को जलाना, घर को लीपना, धोना, मिट्टी के घड़ो को फोड़ देना, बर्तनों को आग में देना, मृतक के कपड़े दान दे देना, श्मशान में गए प्रत्येक मनुष्य का स्नान करना, मरने के बाद घरवालों का ४-५ दिन काम-धंधा बंद करना इत्यादि रीति बहुत ही आवश्यक और ज्ञान-युक्त है।

बहुधा लोग ऐसे मुर्दों को गंगा आदि नदियों में डाल देते हैं। यह रीति अत्यंत वाहियात है । गंगा-जैसी अमृत जलवाली नदी के स्वच्छ जल को दूषित बनाना एक प्रकार का पाप है। इस भूल से प्राय नदी तीर के गाँवों में रोग फैल जाता है। यदि मुर्दों को जलाकर उनकी राख नदी में डाल दी जाय, तो हरज नहीं।

सफ़ाई—जिस घर में हैज़ा हुआ हो, उसकी खिड़कियाँ कुछ दिन तक बिलकुल खुली रखनी बहुत ज़रूरी हैं। घर के आस-पास कूड़ा, कर्कट, कीचड़ अथवा सड़ी हुई चीज़ें इकट्ठी नहीं होने देनी चाहिए। और जिस घर में रोगी रहा हो, उसे कली चूने से पुतवाना बहुत ज़रूरी है।

सुगंध द्रव्य—हैजे के दिनों मे रोग-नाशक द्रव्यों से जलानेवाली धूप तैयार करनी चाहिए। लोबान, गूगल, कंकोल, सफ़ेद चंदन, गिलोय, वालछड़, छारछड़ीला, मोथा, कपूर, कचरी, लौंग, जायफल, जावित्री आदि सुगंधित पदार्थों की धूप बनानी और घर मे जलानी चाहिए।

म्युनिसिपैलिटियो का कर्तव्य

स्थानीय म्युनिसिपैलिटियों का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह नगर के पीने के पानी की सद्व्यवस्था कायम रक्खे। उसे साफ करने का भरपूर बंदोबस्त करें।

जिन बस्तियो में हैज़ा फैल रहा हो, वहाँ से यदि कोई मनुष्य अपनी बस्ती में आवे, तो उसे जलाशय पर नहाने, कपडे धोने या बासन धोने की मनाही कर देना चाहिए। क्योंकि उनके शरीर और वस्त्रो में रोग के जंतुओं का लगा रहना अत्यधिक संभव है। ऐसे लोगों के लिये जल लेने के लिये प्याऊ का बंदोबस्त करा देना चाहिए। म्युनिसिपैलिटियो का यह भी कर्तव्य है कि यदि बस्ती के निकट का जल गंदा हो गया हो, तो नल के जरिए दूर का पानी बस्ती में लावे। और ज्यों ही उसे यह सदेह हो कि अमुक कुएँ का पानी खराब है, उसे तुरंत ही उसका पानी बद करा देना चाहिए। जलाशय को शुद्ध रखने के लिये नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिए —

(क) पानी भरने को आनेवाले मनुष्यों के हाथ, पैर, कपडे और बर्तन में रोग की छूत लगने का संदेह हो, तो उन्हें जलाशय के पास नही जाने देना चाहिए।

(ख) म्युनिसिपैलिटियाँ अपने आदमियों को तैनात करें, जो ऐसे लोगो को अपने डोल भर-भरकर पानी अलग से दे दिया करें।

(ग) जिस पानी को लोग पीने के काम में लेते हों, उसमे कोई नहाने या कपड़े धोने न पावे, न वहाँ कोई बासन माँजने पावे।

(घ) जिन गाँवो मे नदी, तालाब के ऊपर जंगल जाने, वहीं दाँतन-कुल्ला करने और लोटा साफ करने का रिवाज है, वहाँ अगर हैज़ा फैल रहा हो, तो उन्हें रोकना चाहिए।

(ङ) बडे-बड़े मेलों में जहाँ लोग ठहरे, वहाँ गंदगी न हो, पानी स्वच्छ और खुराक अच्छी मिले, और यदि कोई रोगी हो जाय, तो फौरन् अस्पताल में ले जाया जाय। और यदि मेले में हैज़ा फूट निकले, तो यात्री अपने साथ रोग की छूत न ले जायँ, इसका पूरा-पूरा प्रबंध करना चाहिए।

(च) जब बस्ती में रोग फैलने का भय हो, तो प्रत्येक कुएँ का पानी निकलवाना और उसमे 'पर्मेंगनेट ऑफ़् पुटेशियम' डालना चाहिए। एक कुएँ के लिये २॥ तोला 'पर्मेंगनेट ऑफ़् पुटेशियम' काफ़ी है, जिसकी कीमत तीन चार आना होती है। इस दवा के पानी मे पड़ने से पानी का रंग जामनी हो जाता है। पानी में डालने के आध घंटा तक

उसका रंग वैसा ही रहे, तो जानना चाहिए कि दवा ठीक पड गई है। पर यदि थोडी देर ही में दवा का रंग नष्ट हो जाय, तो समझना चाहिए कि दवा कम पडी है, और फिर डाल देनी चाहिए। इस पानी को पीने से कुछ नुकसान नहीं होता।

यह दवा पानी का मैल काटने और जंतुओं के नाश करने की बडी भारी शक्ति रखती है। बहुधा गाँव के लोग इस दवा को पानी मे डालने से डर जाते है और उस कुएँ का पानी छोड़कर अन्य कुओं का पीते है।

'पर्मेंगनेट' को पानी में मिलाने की विधि यह है कि एक बाल्टी पानी में आधी छटाक दवा घोल लेनी चाहिए। और उस बाल्टी को कुएँ मे लटका देना चाहिए। जब वह डूब जाय, तब बाहर खींच लेनी चाहिए। कुछ पानी तमाम कुएँ मे फैल जायगा और उसका रग बदल जायगा। फिर बाल्टी पानी में डुबो देनी चाहिए। इसी प्रकार बार-बार करने से तमाम दवा पानी में मिल जायगी। आध घंटे बाद परीक्षा करके देखनी चाहिए, अगर पानी पर ठीक रंग न हो, तो थोडी दवा उपर्युक्त विधि से और डाल देनी चाहिए।

अगर पर्मेंगनेट किसी गाँव में न मिले, तो वहाँ बिनबुझी कली डालनी चाहिए। बुझी कली से कुछ लाभ न होगा। पहले कली को थोड़े पानी मे मिलाकर फिर कुएँ मे डालनी चाहिए। इसके बाद चरस चलाकर पानी कुएँ से खींचकर फिर उसी मे डालना चाहिए। इस तरह १॥ घंटे तक करना चाहिए। कली डालने से कुएँ के मेढक मर जाते है, इसलिये जिस कुएँ में मेढक हों, उसमे कली न डालनी चाहिए। अथवा उन्हे निकाल लेना चाहिए। साधारण कुएँ के जल को साफ करने के लिये २० सेर कली काफी है।

फिटकरी से भी पानी साफ़ होता है। इसमें भी पानी को साफ़ करने की अद्भुत शक्ति है। एक कुएँ के लिये २॥ सेर फिटकरी काफ़ी होगी। फिटकरी पानी में मिलाने का यह उपाय है कि एक बर्तन में चलनी के समान छेद करके उसमें फिटकरी का चूरा भर दो और उसे पानी में इधर-उधर हिलाओ, इस तरह वह पानी मे घुल जायगी।

अध्याय बीसवाँ

प्लेग

प्रकरण १

प्लेग का इतिहास

हिंदोस्तान मे सन् १८९६ मे प्लेग पहलेपहल बंबई शहर में शुरु हुआ। दो-चार दिन तो लोगों का इस तरफ ध्यान ही न गया, परंतु शीघ्र ही इससे चटापट मृत्यु होने लगीं, और बड़ी तेज़ी से रोग शहर में फैलने लगा। तब लोगों ने समझा कि यह एक भयंकर छूत का रोग है।

प्लेग एक प्राचीन रोग है, और इसकी जन्म-भूमि मिश्र देश है। मुसलमानी धर्म-प्रचार से प्रथम यहाँ यहूदियों की बड़ी बस्ती थी। वे लोग इसे ईश्वर का कोप मानते थे। उनके पास इसका कोई उपाय न था। वे इसे 'दोज़ख़' कहकर मानते थे। प्रसिद्ध बादशाह डेविड के समय से मिश्र में इसका भयकर ज़ोर हुआ था। उसने इसकी रोक-थाम के लिये कई कानून भी बनाए थे, पर उससे कुछ हुआ नहीं। लाखों मनुष्यो ने मिश्र देश छोड़कर अन्य देशों में रहना स्वीकार किया था।

एथेंस, रोम, कुस्तुंतुनिया आदि बड़े बडे नगरो में यह रोग समय-समय पर फैलता रहा है। सन् ५४२ ई० के बाद योरप और एशिया में इसका फैलाव हुआ। मिश्र से एक तरफ सीरिया, ईरान और हिंदोस्तान में उधर यूनान और इटली मे फैला। शीघ्र ही इस महारोग ने, जहाँ गया, आधी बस्ती का संहार कर दिया। इतिहासकार गिबन का कहना है कि एक ही समय में जस्टीनियन राजा की प्रजा के ऊपर युद्ध, अकाल और इस महारोग का हमला हुआ। तब से अब तक भी उस सुंदर देश की प्रजा-संख्या पूरी न हुई।

सन् ६३९ में सीरिया मे बडा भारी अकाल पड़ा था। उसके बाद ही प्लेग फैला, शीघ्र ही आस-पास के देशों मे भी रोग आँधी, तूफान की तरह फैल गया। अमीर-ग़रीब जो चपेट में आया, स्वाहा हो गया। बहुत कम लोग बचे। एक अरब-सरदार ने शहर-के-शहर उजड़वाकर ऊँचे स्थानो पर फिर से नगर बसवाए, पर उससे भी कुछ हुआ नहीं।

सन् १३९१ और १३६८ मे इँगलैंड में भयंकर प्लेग फैला। इसके बाद सन् १५६३-६४ में फैला। इन पिछले साल में लंदन के एक ही कब्रस्तान में ५००००० मनुष्य गाड़े गए थे।

इस देश में भी पुराने समय में रोग के हमले हुए थे। बंबई के कमिश्नर सर जेम्स केंवेल ने लिखा है कि सन् १६१८ में प्लेग अहमदाबाद में फैला था, और दिल्ली तथा आगरा तक रोग के चिह्न देख पड़ते थे। इस रोग का प्रारभ पंजाब में, सन् १६११ में, हुआ था। वहाँ से उधर काश्मीर तक और इधर दिल्ली-आगरे तक फैल रहा था। जहाँगीरनामे में भी इस रोग का ज़िक्र है।

पर जहाँ-जहाँ रोग फैला, चूहो का ही सर्वप्रथम सपाटा हुआ। यह मालूम होता था कि रोग के उपद्रव से चूहो का घनिष्ठ संबंध है। जिस चूहे पर रोग का आक्रमण होता था, वह अपने बिल से निकलकर घर के आँगन में चक्कर खाता और दीवार से टक्करें मारता था। जिस घर में चूहे इस तरह मरने लगते, और जो ऐसे घर को छोडकर भाग जाते, वे ही बच रहते थे। उस समय यह उपद्रव आठ वर्ष तक चला था, और इससे गाँव-के-गाँव उजड गए थे। मरे हुए मनुष्यो और उनके वस्त्रो से जो आदमी छू जाता, उसी पर रोग का आक्रमण होता था।

सोलहवीं सदी में जब अहमदाबाद मे प्लेग आया, तब उसका कारण यह हुआ कि प्लेग पहले आगरे मे शुरू हुआ था, उस समय जहाँगीर बादशाह आगरे की गद्दी पर था। उसने अपना मुकाम आगरे से उठाकर अहमदाबाद में किया। उसी के लश्करी अपने साथ इस रोग के बीज ले गए। इस चपेट में उन दिनो जो योरपियन लोग यहाँ रहते थे, वे भी मरते थे। टेरी ने लिखा है कि ६ दिन में ७ अँगरेज़ मरे। इनमें कोई भी २४ घटे से ज़्यादा बीमार पडा नहीं रहा। अधिकांश ने सिर्फ़ १२ ही घटे में मृत्यु पाई थी। इस रोग में रोगी की छाती पर काला और आसमानी रंग का दाग पड जाता था, और बड़े ज़ोर का बुख़ार आता था।

इसके बाद सन् १६८४ में, औरगज़ेब के ज़माने में, प्लेग का भारी प्रकोप हुआ। इसके बाद ही एक भारी अकाल पडा। सन् १६८९ में, जब कि औरगज़ेब का मुकाम बीजापुर में था, यह रोग फिर लश्कर में फैला था।

सन् १६८४ और ९० में सूरत में यह रोग फैला था, जिससे सूरत शहर उजाड हो गया था।

सन् १६८९ और ९० तथा १७०२ में, जब कि औरंगज़ेब दक्षिण फतह कर रहा था, यह रोग बंबई में फैला था। उस घटना का वर्णन सर जेम्स कैंवेल ने अपनी गज़ेटियर में लिखा है कि ८०० योरपियन उस ज़माने में बंबई मे रहते थे, जिनमें मुश्किल से ५० बचे थे, शेष सब स्वाहा हो गए। उस समय भी रोगी की बगल, जाँघ अथवा कान की जड़ में प्लेग होता था, और आँख के भीतर पुतली के आस-पास सूजन उत्पन्न हो जाती थी।

१९वीं सदी के प्रथम २५ वर्षों में गुजरात में अनेक स्थानों पर रोग का भयंकर रूप दिखाई पड़ता था। सन् १८१२-१३ में गुजरात, कच्छ और काठियावाड मे भारी अकाल पडा था। जहाँ-जहाँ अकाल का ज़ोर रहा, वहाँ-वहाँ भारी मरी फैलकर गाँव-के-गाँव उजाड हो गए।

कुटुंब-के-कुटुंब स्वाहा हो गए। कहीं-कहीं तो लाश उठाने को मनुष्य नहीं मिले, और स्त्रियों को मुर्दे श्मशान में पहुँचाने पड़े। जलाने के लिये ईंधन का भी तोटा पड़ गया। और लोगों ने घर की ईंटें और किवाड़े उतारकर मुर्दे जलाए। इस मरी में अहमदाबाद की १ लाख आबादी में से ५० हज़ार मर गए थे।

सन् १८१४ में बड़ी भारी बरसात हुई थी। १८१५ की मई में कच्छ में रोग फैला। शीघ्र ही रोग का प्रचंड रूप हो गया। रोगी की बगल में गाँठ होती थी, कोई-कोई तो पत्थर के समान सख़्त होती थी। इस समय तेली लोगों को यह रोग बिलकुल नहीं हुआ था।

सन् १८२६ में रोग बागड़ में आया, और वर्ष के अंत तक संपूर्ण सिंध में फैल गया।

सन् १८३६ में फिर यह रोग राजपूताने में आ दाख़िल हुआ। सबसे पहले 'पाली' गाँव में केस हुए। वहाँ से इधर-उधर फैला। उस समय उसका नाम 'पाली प्लेग' ही मशहूर हो गया था। इसके बाद धीरे-धीरे रोग पंजाब, उत्तर-हिंदोस्तान और हिमालय की तराई में समय-समय पर दीखता रहा। अंतिम बार सन् १८७७ में कुमायूँ-ज़िले में रोग फैला।

परंतु इन सबसे अधिक भयंकर मरी लंदन में, सन् १६६४-६५ में, फूट निकली थी। उस समय भारत की तरह वहाँ भी बड़े वहम चलते थे। लोगों का यह विश्वास हुआ कि शनि और मंगल के संयोग के कारण ही यह प्रजा-संकट आया है। कुछ लोगों का विश्वास था कि इसकी उत्पत्ति पूँछल तारे के कारण हुई है। जैसे जोशी बाबा आजकल यहाँ लंबा तिलक-छाप लगाए घूमते हैं, वैसे ही उस समय वहाँ घूमते थे।

पहले यह रोग वर्ष के अंत में वेस्ट मिनिस्टर-विभाग में रहनेवाले एक परिवार में दाख़िल हुआ। उसके २-३ मनुष्य मरे। यह छूत का रोग है, यह पड़ोसी जान गए थे। कितने ही घर छोड़ शहर के दूसरे भागों में फैल गए। फलतः तमाम शहर में रोग फैलने लगा। इस रोग में प्रायः जाँघ में जायफल के समान गाँठ होती थी, और उसके आस-पास काले रंग का चक्र रहता था।

रोग फैलते-फैलते कड़ी सर्दी पड़ने लगी। दिसंबर का महीना था। ३ मास तक नदी का पानी जमा रहा। इतनी सर्दी में रोग बिलकुल शांत रहा, पर ज्यों ही बर्फ़ गलने लगा कि रोग ने फिर ज़ोर बाँधा। मई के महीने में रोग भड़का। सितंबर महीने में २५ हज़ार मनुष्य मरे। लाशों को उठानेवाला कोई न रहा। घर-घर लाशें सड़ने लगीं। बहुधा मैदानी ज़मीन में बड़ा भारी गढ़ा खोदकर २०-३० मुर्दे उसमें डाल दिए जाते थे। प्रायः ऐसा होता था कि आज जो मुर्दे को उठाकर गढ़े में डाल आया है, कल उसी को उसी गढ़े में डाला जाता।

ऑक्टोबर में सिर्फ़ १० हज़ार मनुष्य मरे, और दिसंबर में रोग शांत हो गया। उस समय लंदन की आबादी ?१ लाख के लगभग थी, जिसमें उस साल ६७ हज़ार से ऊपर मनुष्य मरे थे। शायद ही कोई रोगी जीता बचा होगा। बहुधा स्त्रियाँ बिस्तरे में अपने बच्चे

के साथ मरी पडी मिलती थी। गली-कूचो और रास्तो पर प्राय लाशे पडी देख पडती थी। लोग बाजार मे कुछ सौदा खरीदने जाते और वहीं मर जाते थे। लदन की ऐसी भयकर मृत्यु-लीला कभी पृथ्वी पर अन्य शहर मे हुई न थी।

इस घटना के एक साल बाद, सन् १६६५-६६ में, लंदन में भयकर आग लगी, और प्राय तीन बटे चार शहर भस्म हो गया। उस समय लंदन शहर बडा ग़लीच, तग गली और मैले घरो से भरपूर था। आग लगने पर जब शहर नए सिरे से बसा, तब इसमें बहुत-से सुधार किए गए। आज इस शहर की आबादी ४२ लाख के लगभग है। फैलाव भी उसका प्रथम से प्राय २५ गुना है, फिर भी वह पृथ्वी-भर मे सर्वापेक्षा स्वच्छ नगर है।

उत्पत्ति का कारण

जब सन् १८९६ मे, बंबई में, प्लेग का भयंकर प्रकोप हुआ, तब इस बात की खोज सरकारी तरफ से होनी शुरू हुई कि इसका विष कहाँ से किस तरह आया। अख़बारों मे भी उसकी कडी चर्चा चली। दो बातें ख़ूब ज़ोर से चल रही थीं। एक यह कि यह रोग बबई मे ही उत्पन्न हुआ है, दूसरी यह कि उसकी उत्पत्ति का कारण बाहर से आया है।

उस समय से कुछ पूर्व कुमायूँ-गढ़वाल के ज़िलो में यह रोग कुछ-कुछ था। वहाँ से कुछ यात्री नासिक तीर्थ करने आए थे। वे बबई भी आए थे, इसी पर कुछ लोगो की राय हुई कि इस रोग का विष इन्हीं लोगो के साथ आया है। परतु इस समय रोग उन प्रांतो में न था। हांगकाग मे बेशक रोग तब था, पर उससे बंबई का कुछ सबध होगा, यह बात समझ मे नही आती थी। इसके सिवा हागकाग में यह रोग बहुत दिन से कम हो चला था।

शुरू में बंबई के जिस-जिस हिस्से मे रोग का ज़ोर हुआ, वहाँ अनाज की बडी भारी मंडी है, और इसलिये वहाँ चूहों की बडी भरमार है। रोग शुरू होने से प्रथम बहुत-से चूहे मरे थे। अनाज का व्यापार हिंदुओ के ही हाथ में है—उन्हीं को सर्वप्रथम रोग हुआ। फलत वहाँ के प्रसिद्ध डॉक्टरो ने इससे यही धारणा की कि रोग की उत्पत्ति का मूल-कारण कोई अनाज में ही होना चाहिए। परतु जैसा कि लोगो मे भय छाया हुआ है, प्लेग के रोगी को छूने-मात्र से ही रोग का किसी पर असर नही हो जाता। ऐसा होता, तो वैद्य डॉक्टरो की ख़ैर न थी। पर जिस घर में प्लेग का रोगी हो जाता है, वह घर ऐसा दूषित अवश्य हो जाता है कि वहाँ से हर किसी को रोग लग जाय। उस घर के पास रहनेवाले और रोगी के अत्यत निकट निरंतर रहनेवाले मनुष्यो को रोग की छूत लगना बहुत सभव है।

प्लेग की छूत को सम-शीतोष्ण हवा ज़्यादा अनुकूल पडती है। अधिक गर्मी और अधिक सर्दी से रोग के बीज नष्ट हो जाते हैं।

भारतवर्ष में वर्षा बीतते ही भिन्न-भिन्न प्रकार के ज्वर फैलने लगते हैं। इनमे मुख्य मलेरिया है। भादों और आश्विन मे पृथ्वी में सेंद्रिय पदार्थों की अधिकता रहती है, इससे मलेरिया की वृद्धि होती है। मलेरिया छूत की बीमारी हरगिज़ नहीं, परतु मलेरिया

सी ही ऋतु मे प्लेग बहुधा होता देखा गया है । इससे यह बात माननी पड़ती है कि यह हवा भी प्लेग के जंतुओं का पोषण अवश्य करती है । इस हवा की ऋतु मे एक घर से दूसरे घर और दूसरे से तीसरे घर इस प्रकार रोग-युक्त हवा फिरती रहती है, फिर जहाँ कहीं विशेष गदगी देख पड़ती है, वहीं उसका आक्रमण हो जाता है । उसका विस्तार चूहे तथा रोगी के वस्त्र और मल-मूत्र से होता है ।

उस समय शहर की सफाई का प्रबंध अच्छा न था, और शहर का यह भाग तो अत्यंत गदा और दुर्गंधित रहता था । वहाँ बहुत-से मकान गंदे, अँधेरे और सील भरे थे । हवा जाने-आने की उनमे गुंजाइश नहीं थी । गटर और गदे नालों का पानी बहुत कम निकलता था । वह वहीं ज़मीन में जज़्ब होता था । म्युनिसिपैलिटी की तत्कालीन रिपोर्ट मे लिखा है कि उस साल नित्य १२॥ लाख मन पानी आमद की अपेक्षा कम निकलता था । यही कारण था कि इतना पानी ज़मीन में सूखने से कुओं का पानी ३-४ फुट ऊँचा चढ आया था । रोग शुरू होते ही गटर साफ़ होने शुरू हुए, और लाखों मन सड़ी कीचड बाहर निकाली गई । यह जब धूप में सड़ी, तब अनेक प्रकार के रोग की ज़हरी गैस बनी, और रोग का ज़ोर बढा । प्लेग के साथ अन्य प्रकार के भी ज्वर बढने लगे । अभिप्राय यह कि जिस समय बंबई में रोग फैला, उस समय रोग फैलने के तमाम कारण नगर में थे, सिर्फ उसके कीटाणु-प्रवेश की देर थी, और कीटाणु आते ही रोग बुरी तरह फूट पडा ।

कभी-कभी ऐसा भी मालूम होता है कि ऋतु-परिवर्तन के साथ-साथ प्लेग-जैसे संक्रामक रोग उत्पन्न हो जाते हैं । वर्षा-ऋतु में वर्षा ठीक-ठीक हो और पानी का निकास यथावत् हो, तो जो गदगी दूसरी रीति से निकलना कठिन है, वह आसानी से निकल जाती है । परंतु जब बरसात कम पडती है, तब इसके विपरीत होता है । अर्थात् मैल और गंदगी वहीं गीली होकर सड़ती रहती है, निकलती नहीं । पीछे तेज़ धूप पडने से उसमें से गैस पैदा होने लगती है । नियमित रीति से रोग प्रथम चूहे के शरीर में प्रवेश करता है, और फिर रोगी के वस्त्र, मल-मूत्र के स्पर्श से सर्वत्र फैलता है ।

प्लेग के जतुओं को गर्मी की ऋतु प्रतिकूल है । गर्मी मे बहुत-से रोग-जतु नष्ट हो जाते हैं, जो शेष रहते हैं, वे निर्बल हो जाते हैं । एक बड़े अस्पताल के चीफ मेडिकल ऑफ़िसर डॉक्टर एन्० एच्० चौकसी ने प्लेग-कमीशन के सम्मुख बयान दिया था कि उनके अस्पताल में, मई और जून मास में, प्लेग के फ़ीसैकडा ५६-४० रोगी मरे थे, जिनमें अधिकांश अशक्त और कगाल थे ।

प्लेग का विष नीची और गीली धरती मे या नीचे के मकानों मे ज़्यादा होता है और ऊँचे तथा हवादार घरों में कम । यह रोग भंगियों को अधिक लगना सभव है । परंतु यदि वे खुलासा हवा मे रहें, तो उनका बचना बहुत संभव है । बड़े-बड़े शहरो मे उन्हीं लोगो को प्लेग का आक्रमण होता है, जो नीचे के अँधेरे घरों मे रहते हैं । बंबई के प्लेग-कमिश्नर के

सामने वहाँ के हेल्थ ऑफ़िसर ने कहा था कि शहर में जो मनुष्य ज़मीन के मकानों में रहनेवाले थे, उनमें सैकडे ८४ दूसरी मंज़िलवाले, सैकडे ७५ तीसरी मंजिलवाले, सैकडे ५६ चौथी मंज़िलवाले और सैकडे ४८ पाँचवीं मंज़िलवाले मरे है। ऐसे नगरों में नीचे की अपेक्षा ऊपर के मकानों की हवा साफ़ रहती है। इसीलिये उन पर कम प्रभाव पडता है। ज़मीन पर सोनेवालों और नगे पैर फिरनेवालों को रोग का आक्रमण अधिक होता है।

जिस घर मे इधर-उधर भटकते हुए अथवा मरे हुए चूहे दिखाई पडें, उस घर में रोग का प्रवेश होगा, यह जान लेना चाहिए। कुशल यही है कि उस मकान को तत्काल छोड दिया जाय।

चिह्न और चिकित्सा

प्लेग के चिह्न भिन्न-भिन्न रोगों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के होते है। किसी को एक-दो दिन ज्वर आता है, साथ ही बगल या जॉघ में सूजन होती है, होकर कुछ दिन मे दोनो बातें मिट जाती हैं, और रोगी आराम हो जाता है। किन्हीं को दो-तीन दिन ज्वर आता है, साथ ही बगल या जॉघ में गिलटी निकलती है, वह गाँठ पक जाती है, और उसकी तकलीफ़ कुछ दिन चलती है। अधिकाश में यह ज्वर खूब ज़ोर का होता है। किसी-किसी की गाँठ के चारो ओर भारी सूजन चढ़ जाती है, और नस-नस में रोग का ज़हर फैल जाता है। किसी-किसी रोगी को रोग के प्रारंभ में फेफड़ों में सूजन शुरू होती है। इस प्रकार के रोगी त्रिदोष की भयंकर अवस्था में देखे जाते हैं।

प्लेग का विष ख़ासकर चमडी और श्वास के रास्ते शरीर में दाख़िल होता है। शुरू में कुछ विद्वानों की राय थी कि इस रोग की उत्पत्ति अन्न से हुई है, और उसी के द्वारा उसका फैलाव भी हुआ है। पर विशेष खोज करने से इस मत मे भूल प्रकट हो गई। जल से भी रोग फैलता है, यह प्रमाणित नहीं होता। यह रोग तो अधिकाश में वायु के ही दूषित होने से फैलता है। जिस घर मे प्लेग का विष प्रवेश करता है, वहाँ की हवा निरतर श्वास के द्वारा शरीर में जाकर रोग का आक्रमण करती है। प्लेग रोग वास्तव मे ख़तरनाक है। ख़ासकर इसको श्वास और कफ से रोग लग जाने का भय रहता है। कभी-कभी रोग चमडी के द्वारा भी शरीर में प्रवेश कर जाता है। नगे पैर फिरनेवाले लोग, जिनके पैर मे घाव होते हैं, सदा ख़तरे में रहते हैं। रोग का जब आक्रमण होता है, तब वहाँ फफोला होता है। उसे तत्काल फोडकर वहाँ कार्बोलिक एसिड की पिचकारी मारने से बहुधा लाभ होता है।

इस रोग के शरीर में प्रवेश करने के ३ से ६ दिन बाद तक रोग के चिह्न प्रकट होते हैं। कभी-कभी १ या ६ दिन में ही, नहीं तो १२ दिन बाद तक रोग प्रकट होता है।

प्लेग का विष शरीर में प्रवेश करने पर पहले एक-दो दिन तक शरीर में सुस्ती मालूम पडती है। इसके साथ ही एक या दोनो तरफ़ बद-जैसी गाँठ निकलती है। शुरू में साधारण ज्वर होता है, पर इसके बाद दूसरे, तीसरे, चौथे दिन १०३°, १०४°, १०५° तक हो

जाता है। कभी-कभी तो १०६°, १०७°, १०८° तक हो जाता है। बच्चों और मज़बूत आदमियों में रोग का वेग प्रबल होता है।

कभी-कभी ज्वर तेज़ न होने पर भी रोग बहुत मालूम पड़ता है। साधारणतया प्रातःकाल की अपेक्षा शाम को ज्वर एकाध अंश अधिक होता है। जिन्हें आराम होना होता है, उन्हें ६-७ दिन तक ज्वर आकर फिर धीरे-धीरे उतर जाता है। १०वें दिन बिलकुल उतर जाता है। पर यदि गाँठ पकने लगे, तो ज्वर जल्दी नहीं उतरता, पकने पर उतर जाता है। कभी-कभी ज्वर एकदम उतरने लगता है, इससे रोगी की दशा प्रायः ख़तरे में पड़ जाती है। रोगी प्रायः बेसुधी की अवस्था में मृत्यु पाते हैं। किन्हीं-किन्हीं रोगियों को तीन-चार दिन ज्वर आने पर गाँठ पक जाती है, इससे बहुत कुछ ज्वर कम हो जाता है। अगर गाँठ का ज़ोर कम हो, तो उसके चीरने से ज्वर का वेग कम हो जायगा, और रोगी सुधरने लगेगा। अगर गाँठ का ज़ोर अधिक होगा, तो ज्वर फिर तेज़ हो जायगा, और वह इसी तरह उतरता-चढ़ता रहेगा, जब तक कि रोग की प्रबलता न कम हो जाय।

कभी-कभी एक गाँठ होने पर दूसरी गाँठ और उठ खड़ी होती है। कभी-कभी फेफड़ों में सूजन आ जाती है। ऐसा होने पर ज्वर बहुत दिन तक ठहरता है, और इसमें से शायद ही कोई बचता है।

प्लेग की गाँठ ख़ासकर जाँघ की जड़ में, बगल में और गले में उत्पन्न होती है। बहुधा ज्वर और गाँठ एक साथ ही देखे जाते हैं। कभी-कभी यह गाँठ पहले देख पड़ती है और ज्वर पीछे मालूम पड़ता है। कभी-कभी इसके विपरीत भी होता है। गाँठ की जगह पहले दर्द होता है, और फिर वह जगह मोटी होती जाती और दर्द बढ़ता जाता है। कभी-कभी गाँठ छोटी होती है। फिर भी उसमें इतना सख़्त दर्द होता है कि ऐसा भयंकर दर्द शायद ही कहीं देखने में आता हो। वास्तव में इधर की चमड़ी का जहाँ ज़्यादा तनाव-खिचाव होता है, वहीं अधिक दर्द होता है। सूजन की जगह हाथ नहीं लगाया जाता। बेहोश रोगी भी वहाँ छूते ही चमक पड़ता है।

यह ध्यान करने योग्य बात है कि गाँठ के चारों तरफ़ यथेष्ट सूजन रहती है। बहुत-से रोगियों की जाँघ में यदि गाँठ हुई, तो लगभग आधी जाँघ सूज जाती है। बग़ल में यदि गाँठ हुई, तो बग़ल के आस-पास और छाती तक भी सूजन आ जाती है। पीठ पर भी सूजन चढ़ जाती है। कभी-कभी गले के दोनों ओर का भाग तथा माथा भी सूज जाता है। गले की सूजन ख़तरनाक होती है, पर जाँघ की सूजन उतनी भयानक नहीं होती, क्योंकि यह सूजन ख़ासकर रक्त-नलियों में रक्त-स्राव उत्पन्न होने से होती है। सूजन के फैलाव होने पर रोगी यदि ज़िंदा रहे, तो वह पत्थर के समान सख़्त और पीड़ा-युक्त हो जाती है। इस जगह पर यदि फस्त दी जाय, तो बहुत थोड़ा रक्त निकलता है। पर इससे रोग शायद ही कम होता है। सूजन बहुत ज़्यादा होने पर शायद ही कभी रोगी को आराम होता है।

पर जिन्हें गाँठ के आस-पास थोडी ही सूजन होती है, उनमें से बहुतों को आरोग्य लाभ होता है।

गाँठ निकलने पर वह कुछ दिन बाद बैठ जाती है, पर बहुधा वह पकती ही है। यदि रोगी आराम होनेवाला होता है, तो गाँठ जल्दी ही पक जाती है। पर कभी-कभी गाँठ ज्यों-की-त्यों महीनों रह जाती है। यदि रोग का विष तेज होता है, तो कई गाँठे उत्पन्न हो जाती हैं। एक के बाद दूसरी पकती है। ऐसी दशा में प्राय रोगी बहुत-सा मवाद निकलने और शरीर निचुड जाने से कमज़ोर होकर मर जाता है।

गाँठ पकने पर उसे चीरने से उसमें से प्राय सफेद, गाढ़ी और लसदार रसी निकलती रहती है। बहुधा दुर्गंधित कचलोहू निकलता है। गाँठ का कम भाग पका हो, तो उसमें की रसी और सडा भाग निकल जाने पर घाव मे अगूर आने लगता है। कभी-कभी गाँठ चीरने पर भी सूजन बनी ही रहती है, बल्कि बढ़ती भी रहती है। ऐसा यदि होता है, तो फिर ज्वर चढ़ आता है। और बहुधा मवाद को बाहर निकलने का मार्ग नहीं मिलता, उससे दर्द बहुत बढ जाता है। ऐसे रोगी शायद ही कोई बचते हैं।

प्लेग का आक्रमण होने से रोगी एकाएक अशक्त हो जाता है। चलता-चलता लडखडाने लगता है। चेहरा बिल्कुल उतर जाता है, मानो चिंता मे बिलकुल डूब रहा है। आवाज़ खोखली और टूटी निकलती है। जवाब देने मे झुँझलाता है। यदि चित लेटता है, तो अधिकतर पैर-पर-पैर चढ़ा लेता और करवट से सोता है, तो सिकुडकर गाँठ-सी बनकर पड जाता है।

ज्यादातर रोग का ज़ोर तीसरे-चौथे दिन होता है। इस समय सन्निपात और मूर्च्छा के लक्षण दीख पडते हैं। बेहोशी भी हो जाती है। श्वास फूल जाता है। पुकारने से वह बोलता नहीं है। शरीर पर से कपडा फेंक देता है। दिन-भर बडबडाता रहता है। भ्रम हो जाता है। कुछ पूछने या छूने से चिल्ला उठता है। पागल की तरह पडा-पडा कुछ हाथ-पैर चलाया करता है। इससे बहुधा अशक्ति बढ़ जाती है, और बडी मुश्किल से आवाज़ सुन सकता है। दिमाग़ में ख़ून चढ़ जाता है। इससे बेहोश हो जाता है। हाथ-पैर और शरीर की नसें खिचती हैं। ऐसा रोगी शायद ही कोई बचता है।

इस रोग में फेफडा, हृदय और रक्त की गति पर बहुत जल्दी असर होता है। कभी-कभी १०५ तक ज्वर होने पर भी हाथ-पाँव बिलकुल ठडे रहते हैं। नाडी इतनी तेज़ हो जाती है कि उसकी धडकन गिननी कठिन हो जाती है। बहुधा प्रारंभ से ही अंत.करण में कमज़ोरी आ जाती और नाडी सुस्त और थर्राती हुई-सी हो जाती है। इसके साथ ही फेफडे में सूजन आ जाती है। बलगम में लोहू आने लगता है, और श्वास में वृद्धि हो जाती है। बहुधा रोगी को कब्ज़ रहता है। किसी-किसी को दस्त भी लग जाते है। कभी-कभी जीभ सूख जाती है। होठ और दाँतों पर पपडी जम जाती है। कइयो का मूत्र बद हो जाता है। किसी-किसी के मूत्र के साथ या उसके स्थान पर रक्त आता है।

प्लेग मे मरे हुए रोगियों के फेफडे, हृदय, गुर्दा, मगज़, आमाशय, अँतडी, कलेजा आदि अवयवों में कम या ज्यादा रक्त-स्राव दिखाई पडता है।

चिकित्सा

१—प्रत्येक २ घटे बाद टिंचर आइडिन ४-४ बूँद रोगी को पानी मे मिलाकर देते रहो। खाना मत दो। पानी खूब पिलाओ। गिल्टी को या तो सोना गर्म करके दाग दो या जोंक से उसका खून निकलवा दो। टिंचर आइडिन की पिचकारी भी लगानी उत्तम है।

२—अन्य चिकित्सा सन्निपात या अभिन्यास ज्वर के अनुसार करनी चाहिए। रोग भयानक है। उत्तम है कि उच्च कोटि के डॉक्टर को रोगी सौंप दिया जाय। क्योंकि अभी तक इस रोग की अव्यर्थ दवा नहीं मिली है।

३—केसर, बीजाबोल, एलुआ तीनो चीज़ें सम भाग लेकर गुलाब-जल मे घोटकर चने के समान गोलियाँ बनाओ, और प्लेग के दिनो मे नित्य रात्रि को एक गोली खाते रहो, तो प्लेग का आक्रमण होने का भय न होगा।

अध्याय इक्कीसवाँ

कुछ महत्त्व-पूर्ण रोग

प्रकरण १

मोतीझरा या टाइफ़ाइड ज्वर

उत्पत्ति और लक्षण

यह ज्वर एक रोग-कृमि से होता है। साधारणतया यह ज्वर तीन सप्ताह तक रहता है। परंतु कभी-कभी ७ से १० दिन के भीतर ही उतर जाता है।

इसके प्रारंभिक लक्षण अशांति, सिर-दर्द और आलस्य हैं। संपूर्ण शरीर और आमाशय में दर्द रहता है। बहुधा आरंभ में जाडा लगता है।

प्राय शुरू में प्रातःकाल ज्वर १०५ F डिग्री रहता है और संध्या को १०३ या १०४ F डिग्री। नाडी ८०-९० प्रति मिनट चलती है। बहुत बार यह होता है कि पहले एक-दो दिन पश्चात् ज्वर कुछ-कुछ जाता रहता है, और रोगी ८-१० दिन तक काम करता जाता है। पलँग पर नहीं लेटता।

रोग में प्रथम कुछ दिन पीछे ज्वर १०३ F डिग्री रहने लगता है। रोगी के सिर में दर्द होता है, जीभ पर सफ़ेद तह जम जाती है। भूख नहीं लगती, खाओ तो कब्ज़ हो जाती है, आमाशय तन जाता और दुखता है। या तो कब्ज़ हो जाता है या दस्त आने लगते हैं। रोगी देर तक सोता रहता है।

रोग के दूसरे सप्ताह में रोगी का ज्वर अधिक होता है। पिस्सू के काटे के समान लाल धब्बे पेट पर दिखाई देते हैं। होठ और जीभ गहरे भूरे रंग की पपडी से भर जाती है। ८-१० ऐसे रोगियों में से एकाध की आँत से रक्त निकलता है। कभी-कभी तो इतना कि दस्त को हल्का लाल रंग का कर देता है। और कभी कभी इतना रक्त निकलता है कि मृत्यु हो जाती है। रोगी कभी-कभी सरसाम की दशा में हो जाता है। बहुत-सी दशाओं में कोष्ठ-बद्ध हो जाता है।

तीसरे सप्ताह में ज्वर धीरे-धीरे घटने लगता और रोग आरंभ होने के २१वें दिन में स्वाभाविक गति पर आ जाता है, अथवा उतर जाता है। आँतों से रक्त बहने या उनमें छेद हो जाने का भय तीसरे सप्ताह में अधिक रहता है।

उसकी छूत

इस रोग की छूत रोगी के जूठे पानी, दूध तथा ख़ुराक से दूसरे पुरुष को लगती है। इस रोग का ख़ास प्रभाव अँतड़ियों पर होता है। इसलिये इस रोग का दस्त बहुत सावधानी से नष्ट करना चाहिए। उसमें इस रोग के अधिक जंतु होते हैं। इस रोग की छूत हवा द्वारा एक दूसरे पर नहीं लगती।

उत्पत्ति का कारण

इस रोग की उत्पत्ति एक ख़ास प्रकार के कृमि द्वारा होती है, जो रोगी के दस्त में पाए जाते हैं। यदि यह दस्त कुएँ, तालाव या खुली जगह में फेंक दिया जाय, तो उससे यह रोग दूसरे पुरुष को भी लग सकना संभव है। प्रायः हमारे देश में एक ही टट्टी में, बिना साफ़ किए, दूसरे व्यक्ति टट्टी चले जाते हैं, ऐसी दशा में यह भयानक रोग आसानी से लग जाता है, और बहुधा ऐसा होता देखा भी गया है।

यह रोग १५ से ३० वर्ष की आयुवाले व्यक्तियों को अधिक लगता है।

उपाय

इस रोग में औषध की बहुत कम ज़रूरत है। अधिकतर तो ठीक-ठीक सेवा-टहल और उचित भोजन ही लाभदायक है। रोगी को एक साफ़ हवादार कमरे में लिटाना चाहिए, और उसे प्रारंभ ही से पूरा विश्राम देना चाहिए। जब तक संपूर्ण नीरोग न हो जाय, हलने-चलने न दो। दस्त, पेशाब भी वहीं कराओ। दस्त वर्तन या बेडपेन में कराओ, और उस पर तत्काल 'कार्बोलिक-पौडर' या कोई जंतुनाशक दवा बुरक दो।

ख़ुराक में कोई सक़ील चीज़ न दो। बिलकुल नरम भोजन दो। दूध, साबूदाना, बार्ली, दलिया, दाल का जूस आदि। दूध के साथ थोड़ा सोडा या लाइम वाटर देने से अच्छा रहता है। दिन में १ बार तमाम शरीर तथा हाथ, पैर और मुख ३-४ बार गुनगुने पानी से धो डालो। इससे उसकी प्रकृति ठीक रहेगी तथा ज्वर नरम होगा।

यदि पेट में ज़्यादा दर्द हो, तो उस पर अलसी की पुलटिस बाँधो, या गर्म जल में थोड़ा तारपीन का तेल डालकर सेंक कर दो।

इस रोग में एकदम दस्त बंद करना ठीक नहीं। हाँ, यदि दस्त अधिक हो और रक्त आवे, तो योग्य चिकित्सक की सम्मति से दवाई दे।

गुनगुने पानी में कपड़ा भिगोकर शरीर को १५-२० मिनट तक पोछो, फिर उसे सूखे तौलिए से न रगड़ो, पंखा करके सुखाओ। यह उत्तम चिकित्सा है, क्योंकि इससे ज्वर उतरता है, और रोगी की तबियत सुधरती है। ऐसे स्नान से सर्दी लगने का भय न करो। यदि ज्वर ख़ूब तेज़ हो, तो यह स्नान दिन में दो-तीन बार करो।

यदि सिर में दर्द ज़्यादा हो, तो एक कपड़ा बर्फ़ के पानी में भिगोकर और निचोड़कर

रोगी के सिर पर लगाओ। इस कपड़े को ५-६ मिनट के अंतर से बारबार भिगोना या निचोड़ना उचित है।

यदि टट्टी में रक्त दिखाई दे, तो १०-१२ घंटे तक कुछ भी भोजन न दो। बर्फ़ को कूटकर पोटली बाँधकर पेट पर रक्खो।

रोगी के इस्तेमाल की प्रत्येक वस्तु पृथक् रक्खी जाय। जो लोग रोगी की सेवा में रहें, उन्हें 'पर्मेंगनेट ऑफ़् पुटास' के पानी से हाथ धोने चाहिए।

रोग दूर होने पर एक अँगरेज़ी दवा यूरोट्रोपिन १० ग्रेन मूत्र के कृमि नष्ट करने को देनी चाहिए।

मोतीझरा रोकने के उपाय

मोतीझरा के जंतु पेट में मुँह के ही मार्ग से घुसते हैं, जो प्राय. भोजन और जल के साथ चले जाते हैं। भारत में प्रायः खेतों में लोग मल त्याग किया करते हैं। बहुधा वे तरकारी के खेतों में भी बैठ जाते हैं। वहाँ से भी रोग लग जाता है।

गाँवों में प्राय· एक ही जोहड़ में गाय-भैंसें नहातीं, लोग कपड़ा धोते, मनुष्य नहाते तथा वही पानी पिया जाता है। यह भी ऐसे रोगों को फैलाने में सहायक है।

मक्खियाँ मोतीझरा ज्वर फैलाने में ख़ास सहायक हैं। इससे सदैव खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रक्खो।

हाल ही में इस रोग का एक नया इलाज चला है। मोतीझरा ज्वर का चेप एक हाइपोड्मिक पिचकारी से शरीर में प्रवेश कराते हैं, इससे २-३ वर्ष तक इस रोग से शरीर सुरक्षित रहता है।

प्रकरण २

इन्फ्ल्युएंज़ा और ज़ुकाम

इन्फ्ल्युएन्ज़ा इँगलैंड का रोग है। महायुद्ध के बाद भारत के २० लाख मनुष्य इसकी भेंट हुए थे। तब से यह प्रतिवर्ष होता है, और इसके लक्षण प्रथम साधारण ज़ुकाम-जैसे होते हैं, पर तत्काल ही बढ़ जाते हैं। प्रारंभ में नाक बंद हो जाती है, छींकें आती हैं, नेत्रों से पानी गिरता है, सिर में दर्द होता है, पीठ में पीड़ा होती है, सूखी खाँसी होती है और कुछ ज्वर भी आता है। ज्वर १०५F तक हो जाता है।

यह अति शीघ्र उड़कर लगनेवाला रोग है। दूसरे को खाँसते, छींकने, साँस लेते समय यह रोग लग जाता है।

रोगी को पूर्ण विश्राम करना चाहिए। टाँगों और पैरों का गर्म स्नान करना चाहिए, जो कि हम आगे ज़ुकाम के प्रकरण में यही बताएँगे। रोगी को जल खूब पीना चाहिए। पैर गर्म रखना, नरम और द्रव भोजन करना चाहिए।

नीचे लिखा अँगरेज़ी नुस्खा बहुत फायदा करता है—

सोल्यूशन ऑफ् ऐसीटेट ऑफ़् एमूनिया ६ ड्राम, सालिसिलेट ऑफ् सोडा २० ग्रेन, शर्बत १½ ड्राम, पानी शुद्ध ३ औंस, ⅓ भाग दिन में ३ बार देना चाहिए।

यदि दस्त में कब्ज़ियत हो, तो उसी दवा में ३ ड्राम सल्फेट ऑफ् मगनेशिया मिलाना। देशी दवाइयों में संजीवनी वटी अजवायन के अर्क में लेने से बहुत फायदा दिखाती है।

ज़ुकाम

जितना अधिक लोग इस रोग से पीड़ित रहते हैं, उतना और किसी रोग से नहीं।

यह ज़ुकाम एक प्रकार के कीड़े के द्वारा होता है। यह रोग भी उड़कर लगनेवाला है। यह भूल है कि ठंड लगने से ज़ुकाम होता है। बर्फ़ीले स्थानों में देर तक रहनेवालों को ज़ुकाम नहीं होता।

यह वास्तव में संसर्ग से होता है। एक आदमी को ज़ुकाम हुआ कि फिर सभी को हो गया।

इस रोग में प्रायः मृत्यु नहीं होती, परंतु कभी-कभी क्षय रोग या पीनस आदि रोग लग जाते हैं।

रोक-थाम

ज़ुकाम रोकने के ये उपाय हैं—

१—उचित भोजन और प्रतिदिन व्यायाम।

२—प्रतिदिन ठंडे पानी में स्नान करने का अभ्यास।
३—ज़ुकाम के रोगी से दूर रहना। उसकी किसी वस्तु को काम में न लाना।
४—दाँतों और मुख को शुद्ध रखना।

चिकित्सा

यदि ज़ुकाम शुरू होते ही उसकी ठीक-ठीक चिकित्सा हो जाय, तो वह बहुत आसानी से अच्छा हो जाता है। जब उसके पूर्व रूप जैसे छींक आना, नेत्रों से पानी बहना, नाक बंद होना आदि लक्षण देख पड़ें, तो तत्काल रोग को बढ़ने से रोकना चाहिए। सबसे उत्तम उपाय यह है कि ख़ूब तेज़ चलो, या और कोई परिश्रम का काम करो, जब पसीना ख़ूब निकल जाय, तो गर्म पानी से स्नान करो। इसके बाद शरीर पर थोड़ा ठंडा पानी डालो और तत्काल तौलिए से शरीर को सुखा लो।

यदि ज़ुकाम हुए दो-तीन दिन हो गए हों, तो गर्म पैर स्नान और गर्म टाँग स्नान करो। एक बर्तन में गरम पानी भरकर उसमें घुटनों तक पैर डुबो दो, और गरम पानी घुटनों पर से डालते भी जाओ। इसी अवस्था में यथासंभव २-३ प्याला तुलसी की चाय पिओ अथवा गरम पानी ही पी लो। इस प्रकार आपको ख़ूब पसीना आवेगा। तब सो जाओ।

प्रातःकाल उठते ही शरीर को गरम जल से स्पंज कर लो। नरम और ताज़ा भोजन खाओ। आवश्यकता हो, तो एक मृदु जुलाब भी ले लो या एक एनीमा ले लो।

गदूद और गला बैठ जाना

टेंटुए के सूज जाने से गला बैठ जाता है। गले के पिछली ओर जहाँ पर नाक और गले का जोड़ है, गदूद निकलते हैं। उनका आकार छोटे गोभी के फूल के समान होता है। इनका रंग लाल होता है। और आकृति मस्से के समान होती है। वे नाक के पिछली ओर लटकते हैं और उसे बंद कर देते हैं। इसका फल यह होता है कि मुँह से साँस लेना पड़ता है। यह बहुधा बच्चों को होता है।

जब मुख से साँस लिया जाता है, तब बहुत-सी धूल और कृमि शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। नाक से श्वास लेने पर ऐसा नहीं होता। जिन बच्चों के गदूद होते हैं, उनके बहुधा कान बहा करते हैं।

यदि देखो कि बालक की नाक बहती है, वह नाक खुजाता है, मुँह और नाक दुख रही है, धीरे-धीरे पढ़ता है, सोने के समय मुँह खुल जाता है, तब समझो कि उसके गदूद बढ़ गए हैं।

उसे मुँह खोलने को कहो। एक चम्मच के दस्ते से जीभ को दबाओ, और देखो कि गले की गाँठें तो नहीं बढ़ गई हैं। यदि वे स्वाभाविक रीति में होते हैं, तो उनका रंग साधारण गुलाबी, जैसा कि मुख के भीतर का होता है, रहता है, पर यदि वे बढ़े होते हैं, तो गहरे लाल या सफ़ेद चकत्तों से परिपूर्ण होते हैं। कभी-कभी उनमें पीला पीव भरा रहता है। ऐसी दशा में रोगी कुछ भी निगल नहीं सकता।

अब यह देखना चाहिए कि बालक की गर्दन और कानों के पीछे कुछ गाँठ तो नहीं हो गई हैं। यदि हों, तो उनको निकाल देना परम आवश्यक है।

वास्तव में इन गाँठों में और बढ़े हुए गदूद में विषैले कृमि होते हैं। वे रक्त द्वारा हृदय में पहुँचकर हृदय का रोग उत्पन्न कर देते हैं। तथा जोड़ों में पहुँचकर गठिया-रोग उत्पन्न कर देते है।

इस रोग के लिये—चाहे वह बालक के शरीर में हो, या बड़े आदमी के, एक ही उपाय है कि उसका चतुर डॉक्टर से आपरेशन करा दिया जाय, और अति शीघ्र इसकी व्यवस्था कर दे, देर करना बच्चे के लिये ख़तरनाक है।

प्रकरण ३

निमोनिया और प्लूरिसी

यह फेफड़ो का ज्वर है। जो फेफड़ो में अकस्मात् सर्दी लगने से हो जाता है। इसमें ज्वर शीघ्रता से चढ़ता है और सूखी खाँसी होती है। खाँसते समय छाती में पीड़ा होती है तथा श्वास का वेग बढ़ जाता है। रोगी या तो दाहनी ओर या बाईं ओर लेटता है, पर चित नहीं लेट सकता। मुँह लाल पड़ जाता है। विशेषकर दोनो गाल लाल हो जाते हैं और ज्वर की पपड़ी होठों पर पड़ जाती हैं। खखार जो निकलता है, उसमें रक्त के चिह्न होते हैं और वह अति लसदार एवं तंबाकू के रंग का होता है। ज्वर ७-८ या ६ दिन तक ख़ूब तेज़ रहता है और फिर बहुत-से पसीने के साथ अकस्मात् टूट जाता है। इसके बाद रोगी को आराम होने लगता है यदि कोई अकस्मात् की घटना न हो गई, तो यह ज्वर ३ सप्ताह में अच्छा हो जाता है। पर बहुत लोग इस काल में ही मर जाते हैं। वास्तव में यह सन्निपात की जाति का रोग है। बहुधा यह रोग फेफड़ो में क्षय-रोग के बीज छोड़ जाता है या फेफड़े सदा के लिये कमज़ोर हो जाते हैं। प्रति १० आदमियो में से ३-४ इस रोग में मरते हैं, ख़ासकर वे लोग, जो मदिरा पान के अभ्यासी हैं, इस रोग की चपेट में आ जाते हैं।

उपचार

(१) रोगी के पैरो को सावधानी से गर्म रक्खो।

(२) रोगी को ऐसे स्वच्छ कमरे में रक्खो जिसमे गर्द-गुबार, भीड़-भाड़ न हो। तथा प्रतिक्षण ताज़ी हवा साँस लेने को उसे मिलती रहे। क्योंकि यह फेफड़े का रोग है और ताज़ी हवा उसकी मुख्य वस्तु है।

(३) छाती पर जहाँ दर्द है 'एंटी फ्लोजेस्टाइन' की पट्टी चढ़ा दो। यह दवा किसी भी अँगरेज़ी औषधि-विक्रेता के यहाँ मिल जायगी। यह इस रोग की उत्कृष्ट दवा है। इसकी पट्टी चढ़ाने की विधि यह है—डब्बे को गर्म पानी में थोड़ी देर रक्खो, फिर स्वच्छ वस्त्र की जितनी बड़ी पट्टी बाँधनी हो, तैयार कर उस पर दवा चाकू से फैला दो और छाती पर दर्द के स्थान पर रखकर ऊपर रुई रखकर बाँध दो। ज़रूरत होने पर दोनो छातियो पर या पीठ पर भी इसी प्रकार बाँधा जा सकता है।

(४) गर्म पानी (सेर का आध सेर शेष) बार-बार रोगी को यथेष्ट दो।

(५) प्रतिदिन स्पंज करके उसके शरीर को शुद्ध रक्खो, और दस्तो की शुद्धि का ध्यान रक्खो।

(६) दशमूल का काढा छोटी पीपल के चूर्ण की भुरकी डालकर दिन में दो या तीन वार दो। यह अव्यर्थ महौषध है।

(७) आरोग्य होने पर केवल दूध ही पथ्य दो। इस रोग की चिकित्सा और फेफड़ों की परीक्षा किसी योग्य डॉक्टर से करानी उचित है। खासकर जब इसमें उपद्रव हो।

बच्चों की पसली चलना

यह भी निमोनिया ही है। इसका सर्वोत्तम उपचार यह है—

(१) उसारे रेवन—२ से ३ रत्ती तक बालक की अवस्था के अनुसार दूध या जल में घोलकर दिन में एक या दो वार दो। इससे एक वमन और एक दस्त हो जायगा। ५-६ दिन तक यह औषध देने से ६० प्रतिशत बच्चे आराम हो जाते हैं।

(२) बच्चे के हाथ-पैर गर्म रक्खो।

प्लूरिसी

फेफड़ों के चारो ओर एक पतली झिल्ली लिपटी हुई है। वह छाती की भीत की भीतरी ओर लगी हुई है। इसमें जब सूजन हो जाती है, तब उसे प्लूरिसी रोग कहते हैं। निमोनिया की प्रत्येक दशा में इस झिल्ली पर सूजन हो जाती है, और रोग शांत होने पर भी वह बनी रहती है।

कभी-कभी छाती पर चोट खाने से भी यह रोग हो जाता है। इस रोग का मुख्य लक्षण पसली की पीडा है। जिस ओर रोग होता है, उस ओर रोगी लेट नहीं सकता। कुछ काल बाद झिल्ली की तह में एक द्रव पदार्थ बन जाता है, तब पीडा मिट जाती है।

बहुधा इस रोग में ७ से १० दिन तक ज्वर रहता है। यदि रोगी को दोपहर बाद दो-तीन सप्ताह तक तथा संध्या-काल में बुरा लगे या गर्मी मालूम हो, तो स्पंज करना चाहिए।

इस रोगी के लिये भी स्वच्छ वायु की बडी आवश्यकता है। और इस रोगी को केवल द्रव पदार्थ खाने को देने चाहिए।

एक पट्टी तीन इंच चौडी छाती पर लगाओ, रोगी से श्वास बाहर निकलवाओ, और जब फेफडे खाली हो जायँ, तब छाती के सकुचित होने पर पट्टी कसकर लपेट दो। इससे पीडा घट जायगी। गर्म पानी से सेंकना भी उत्तम है। एक गर्म पानी की थैली एक कपड़े में, जो गर्म पानी में डुबोकर निचोडी हो, लपेटकर सेकने के बदले छाती पर लाकर रख दो। कभी-कभी रोगी को एरंडी के तेल का जुलाब दो। यदि गर्म सेक सहन न हो या अनुकूल न पडे, तो ठडा सेक करो।

इस रोगी को सदैव ही क्षय होने का भय है, इसलिये सुयोग्य चिकित्सक को दिखाओ।

प्रकरण ४

मलेरिया

मलेरिया अति साधारण रोग है, परंतु इससे प्रतिवर्ष कई हज़ार मनुष्यों की मृत्यु होती है। जिन रोगों का वर्णन हम कर आए हैं, उनमें मलेरिया सबसे अधिक सुगमता से रोका जानेवाला रोग है। क्योंकि यह निश्चय हो चुका है कि वह केवल उन मच्छरों द्वारा लगता है, जिन्होंने किसी मलेरिया के रोगी को काटा हो।

मलेरिया के कीटाणु मलेरिया के रोगी के रक्त में होते हैं। मच्छर जब किसी रोगी को काटते हैं, तब वे थोड़ा रक्त चूस लेते हैं, इसी के साथ रोग के कीटाणु भी उनके आमाशय में पहुँच जाते हैं। फिर जब वे मच्छर किसी अन्य मनुष्य को काटते हैं, तो वे रोग-जंतु उसके शरीर में पहुँचा देते हैं। इससे उसे शीघ्र जाड़ा देकर ज्वर चढ़ आता है।

जो मच्छर इस प्रकार मलेरिया के जंतुओं को मनुष्य में प्रवेश कराते हैं, वे एक मुख्य प्रकार के होते हैं। जिनकी पहचान उनके आकार और उनके खड़े होने के ढंग से की जा सकती है। चित्र में देखिए, साधारण मच्छरों और मलेरिया के मच्छरों में कितना अंतर है।

मच्छर

मच्छर क्यूलेक्स

यद्यपि मलेरिया के मच्छर भिन्न प्रकार के होते हैं, फिर भी जहाँ अन्य मच्छर होते हैं, वहीं ये भी होते हैं।

घरों में जो मच्छर पाए जाते हैं, उनकी दो जातियाँ हैं। एक को अँगरेज़ी में क्यूलेक्स कहते हैं, और दूसरी को एनाफेलीज। ये दूसरी जाति के मच्छर ही मलेरिया जंतु-वाही हैं।
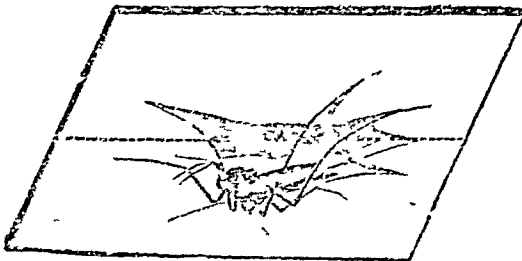
इन दोनो मच्छरों को इस भाँति पहचाना जा सकता है।

१—क्यूलेक्स मच्छर अपने अंडे किसी गढे में सटाकर देता है। यह अंडों का एक गुच्छा-सा रहता है। पर एनाफेलीज़ के अंडे बिखरे हुए रहते हैं।

मच्छर एनाफेलीज़

२—क्यूलेक्स का बच्चा पानी पर धड ऊपर और सिर नीचे किए तिरछा पडा रहता है, पर एनाफेलीज़ का बच्चा पानी की सतह के बराबर आड़ा पडा रहता है।

३—यदि ऐसे मच्छरों के पंख देखे जायँ, तो एनाफेलीज़ के पंखो पर काले-काले धब्बे दीख पडेंगे।
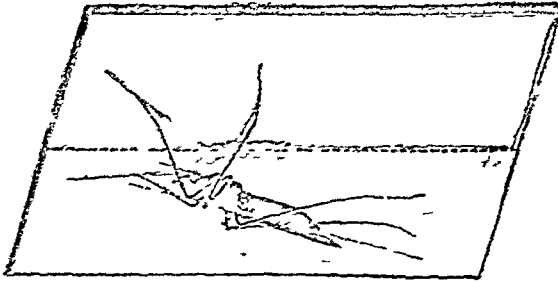
४—दोनो मच्छरों के बैठने का ढग भी पृथक् है। क्यूलेक्स की कमर झुकी रहती है। बैठने के समय शरीर के दोनो सिरे ज़मीन की तरफ रहते हैं। और टेढ़ी कमर ऊपर। एनाफेलीज़ का शरीर सीधा रहता है। बैठने के समय उसका मुँह ज़मीन की ओर और सिरा ऊपर की ओर रहता है।

५—एनाफेलीज़ का रंग स्लेट के रंग का सा होता है, तथा गर्दन के दोनो ओर एक-एक गहरी रेखा होती है। क्यूलेक्स कुछ भूरा होता है।

मलेरिया के कीटाणु

जब किसी आदमी को ऐसा मच्छर काटता है, तब उसके थूक के साथ कीटाणु रक्त मे पहुँच जाते हैं। शरीर मे ये कीटाणु पहुँचकर जब इनकी किसी रक्ताणु से भेट हो जाती है, तो कीटाणु उसमें घुस जाता है। कीटाणु पहले तो छोटे-छोटे तंतुओं की तरह होते हैं, पर रक्ताणु मे पहुँचकर धीरे-धीरे मोटे और गोल होने लगते है। यहाँ तक कि कुछ समय के बाद वे सारे रक्ताणु को खाकर उसके बराबर ही हो जाते हैं। पूरे तौर पर बढ़ चुकने के बाद वह कीटाणु धीरे-धीरे छोटे-छोटे खंडों में कटने लगता है। इस तरह प्रत्येक कीटाणु के बहुत से कीटाणु बन जाते हैं। जब बहुत-से टुकड़े हो जाते है, तो भीतरी दबाव के कारण रक्ताणु फट जाता है। बहुत-से कीटाणु-खंड उसमे से निकलकर इधर-उधर रक्त मे तैरने लगते है। कुछ समय के बाद इन खंडों के दो रूप देख पड़ने लगते है। कुछ तो गोल रहकर आकार में थोडा बढ़ जाते
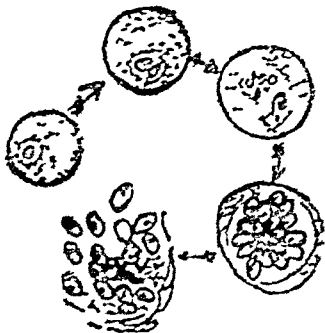
मलेरिया के कीटाणुओं की वृद्धि

हैं, और कुछ वैसे ही रहकर पतले-पतले तंतु निकालने लगते है। जो गोल रहते हैं, उनको मादा कह सकते है, और जो तंतु निकालते हैं, उनको नर। जिस प्रकार मनुष्य के वीर्य मे गोल सिर और लंबी दुम के वीर्याणु होते हैं, उसी प्रकार के वीर्याणु इन नर-कीटाणु-खंडों से निकलते हैं, वे ही देखने मे तंतु-जैसे जान पड़ते है।

थोड़े समय के बाद नर और मादा-खंडो का संयोग हो जाता है। वीर्याणु मादा-खंड मे प्रवेश कर जाते हैं, केवल दुम बाहर रह जाती है, जो कुछ समय बाद कटकर गिर जाती है।

अब तक कीटाणु मनुष्य-शरीर के भीतर थे, वे भीतर-ही-भीतर सब आश्चर्य-जनक परिवर्तन करते रहे थे, परंतु अब मनुष्य-शरीर इन शत्रुओं को अधिक आश्रय नहीं दे सकता। अगर ये इसी प्रकार रक्त मे रहें, तो कुछ समय बाद स्वय नष्ट हो जायँ।

मलेरिया कैसे रोका जाय?

मलेरिया का नाश करने के लिये केवल यह करना आवश्यक है कि सब मच्छरों का नाश कर डालो, और यथासंभव मच्छरो को उत्पन्न ही न होने दो। मच्छर केवल जल में उत्पन्न होते हैं। मादा अपने अडे तालाब के पानी मे, धान के खेत में, पोखरे में, बाल्टी में, घड़े मे, एक खाली टीन के पीपे में, एक खाली नारियल के छिलके में या पानी मे या पानी के बर्तन में देती है। ये अडे दो या तीन दिनों में रेंगनेवाले जंतुओं का आकार ले लेते हैं। तालाब और पोखरो के किनारे ये साफ दिखाई दिया करते है। दो हफ्तों में ये पूरे मच्छर बन जाते हैं।

मच्छरों को बढ़ने से रोकने के लिये तालाबों और पोखरो में नालियाँ बना देनी चाहिए। बहते जल मे मच्छर नहीं उत्पन्न होते। खाई और नालियाँ गहरी खोदनी चाहिए। किनारे पर घास-पात न होने चाहिए। वर्षा-ऋतु मे यद्यपि तालाबो और पोखरों का सब पानी नहीं बहाया जा सकता, फिर भी बहुत कुछ कम किया जा सकता है। यदि नालियाँ बनानी असंभव है, तो मछलियाँ या बत्तखें पाल लो। वे इन रेंगनेवाले कीडों को खा जायँगी, और मच्छरों की उत्पत्ति में रोक होगी।

तालाबो या गड्ढो मे जहाँ पानी एकत्र होता हो, यदि मिट्टी का तेल छिड़क दिया जाय, तो मच्छरों का नाश हो जाता है। यह तेल पानी पर तत्काल फैलकर उस पर एक पतली तह बना देता है, जिससे मच्छर वायु न पाकर मर जाते है। इस काम के लिये अधिक तेल खर्च करने की जरूरत नहीं है। एक बीस फीट लबे और २० फीट चौंडे गढे के लिये एक गिलास मिट्टी का तेल काफी है। यदि पानी प्रतिदिन या दूसरे दिन बरसता है, तो तेल हफ्ते मे दो बार छिडकना चाहिए।

मच्छर जिस स्थान पर उत्पन्न होते है, उससे अधिक दूर नहीं उड सकते। इस कारण आपके घर में मच्छर न रहने के लिये घर से २० फ़ीट दूरी पर जो गढे या तालाब

हों, उनमें मिट्टी का तेल छिड़कना चाहिए। इस बात का एहतियात रखना जरूरी है कि पानी पुराने टीन के बर्तनों, घड़ो, छतों की नालियाँ या कूड़े-कचरे में न एकत्र होने पावे।

मलेरिया से बचने की एक सुंदर रीति यह भी है कि नित्य मच्छरदानी में सोया जाय। मलेरिया के मच्छर दिन मे बहुत कम काटते है। ये बहुधा सूर्य अस्त होने पर काटा करते हैं। मच्छरदानी की जाली महीन होनी चाहिए। और उसे अच्छी रीति से लगाना चाहिए, जिससे मच्छर भीतर न घुसने पावें। बच्चो को भी मच्छरदानी में सुलाओ।

लक्षण

मलेरिया के साधारण लक्षण सभी जानते है। जाड़ा लगना और ज्वर चढ़ना। पसीना आना और सिर-पीड़ा। पहले जाड़ा पीठ के नीचे के भाग मे होता है। जाड़ा चढ़ने से पूर्व रोगी को निर्बलता-सी प्रतीत होती है। कभी-कभी जी मिचलाना और कै भी हो जाती है। बच्चो को कभी-कभी ऐंठनी भी होती है। ठंड लगने के पीछे ज्वर १०३ या १०४ डिग्री चढ़ जाता है। ज्वर दो या तीन घंटे चढ़ा रहता है, तब पसीना निकलने लगता है। और फिर ज्वर उतर जाता है। यह ज्वर प्रतिदिन आ सकता है। परंतु साधारणतया प्रत्येक दूसरे दिन चढ़ता है। या दो दिन छोड़कर चढ़ता है। कभी-कभी नियमानुसार भी नहीं चढ़ता। हफ्ते में और कभी-कभी महीने में दो बार चढ़ता है। मलेरिया कई प्रकार का होता है। मलेरिया के कोई-कोई रोगियो के लक्षण मोतीझरा ज्वर से मिलते-जुलते होते हैं। किसी-किसी रोगी को भयानक सिर-पीड़ा होती है। बालकों मे कभी दस्त और निर्बलता के लक्षण होते है।

धीरे-धीरे रोगी की सूरत में अंतर आने लगता है। चेहरा पीला या नीला, चमड़ा सूखा और ढीला-ढाला, उँगलियाँ सफेद और नाखून नीले हो जाते है। आँखों के चारो ओर नीला रंग छा जाता है। साफ पानी-जैसा बहुत-सा पेशाब होता है। शरीर का ताप ९८° से लेकर १०२° तक रहता है। यह दशा एक घंटे से लेकर दो घंटे तक रहती है। परंतु गर्म देशों में इसके भीतर ही दूसरी अवस्था शुरू होने लगती है।

दूसरी अवस्था मे बड़ा ताप मालूम होता है। जान पड़ता है, गरमी अंदर से शुरू होकर शरीर-भर में फैल रही है। शरीर का चमड़ा सूखा, लाल और गर्म हो जाता है। नाड़ी ज़रा हलकी, पर तेज़ हो जाती है। जो नाड़ियाँ दिखलाई पड़ती हैं (जैसे मस्तक के कोनों के पासवाली नाड़ियाँ), वे ज़ोर से चलती मालूम होती हैं। तिल्ली का भारीपन बढ़ता ही जाता है। मूत्र बहुत कम और गहरे रंग का आता है। प्यास बहुत मालूम होती है। रोगी को सोचने-समझने की शक्ति कम हो जाती है। यह अवस्था एक से तीन घंटे तक रहती है।

इसके बाद तीसरी अवस्था शुरू होती है। इसमें पसीना निकलता है। अक्सर ऐसा होता है कि इस अवस्था को पहुँचते-पहुँचते रोगी सो जाता है। जागने से तबीयत कुछ

हलकी जान पड़ती है। शरीर का ताप नार्मल (जितना साधारणतः रहता है, अर्थात ९८° के कुछ इधर-उधर), अथवा नार्मल से कुछ कम हो जाता है। तिल्ली के ऊपर का बोझ कम मालूम होने लगता है। मूत्र के साथ कोई गाढ़ा-गाढ़ा, ईंट के रंग का पदार्थ गिरता है।

नववयस्कों, वृद्धों और अस्वस्थ शरीरवालों को यह ज्वर अधिक सताता है। साधारण जूड़ी-बुखार के साथ अगर दस्त या खाँसी शुरू हो जाय, अथवा सरदी लग जाने के कारण फेफड़ों पर असर पहुँच जाय, तो रोगी की दशा और भी खराब हो जाती है। साधारणतः खाली मलेरिया से मृत्यु बहुत कम होती है। जब ज्वर-जनित त्रिदोष (Cachexia) के लक्षण शरीर में देख पड़ने लगते हैं, तब अवश्य ही अवस्था चिंता-जनक हो जाती है।

मलेरिया-ज्वर सारे संसार में फैला हुआ है। केवल उत्तरीय तथा दक्षिणीय ध्रुव-प्रदेश उससे बचे हैं। पिछले कई साल के निरंतर उद्योग के बाद अब इँगलैंड, उत्तरी फ्रांस, उत्तरी इटली, जर्मनी तथा संयुक्त-राज्य अमेरिका के पूर्वी प्रदेशों से यह रोग विदा हो गया है, किंतु कनाडा, मध्य-अमेरिका, मैक्सिको, दक्षिणी अमेरिका, मध्य-आफ्रिका, स्पेन, आस्ट्रेलिया, हिमालय की तराई, बंगाल, स्याम, बर्मा तथा चीन, ये देश अभी तक इस रोग के क्रीड़ा-क्षेत्र हैं।

हिमालय की तराई में तो यह रोग साल-भर बराबर रहता है; कभी जाता ही नहीं। जन्म से ही बच्चों के शरीर में व्याप्त रहता है। यही कारण है कि वहाँ के निवासियों की सूरत बहुधा बड़ी ही करुणा जनक होती है। उनके बड़े सिर (विशेषकर कान), चिपटी नाक, फूले हुए पेट, सूखे हाथ-पैर और फीका रंग देखते ही उन्हें पहचाना जा सकता है। तिल्ली तो प्राय सभी की बढ़ी रहती है। जलोदर, अंडवृद्धि और फीलपाँव रोग भी बहुतों को हो जाते हैं।

सन् १८७९ ई० में, सबसे पहले, क्लेब्स-नामक एक वैज्ञानिक ने यह संदेह प्रकट किया कि हो न हो, कोई जीवित प्राणी इस रोग की जड़ है। अलजीरिया (आफ्रिका)-देश के एक सैनिक डॉक्टर ए० लैवेरन — ने १८८० ई० में मनुष्य के रक्त में मलेरिया के रोगाणु देखे। उस समय सबने डॉक्टर साहब की बुद्धि में कुछ दोष बतलाकर इस बात को हँसी में उड़ा दिया। १८८५ ई० में मार्चियाफावा और सेली नाम के दो वैज्ञानिकों ने इस प्रश्न को फिर से छेड़ा। उन्होंने रोग के कीटाणुओं को रक्त में तैरते देखा। तब लोगों को कुछ-कुछ विश्वास होने लगा। इटली के कुछ डॉक्टर इस रहस्य का पता लगाने पर तुल गए। १८९४ ई० में, सब लोगों की सलाह से, यह तय हुआ कि मच्छरों के काटने से इसका बहुत कुछ संबंध है।

कर्नल रॉस हिंदोस्तान में एक सैनिक डॉक्टर थे। १८९५ ई० की बात है कि सिकंदराबाद में एक सैनिक मलेरिया-ज्वर से पीड़ित हुआ। कर्नल महाशय उसकी चिकित्सा में

हैरान थे। कोई उपाय नहीं सूझता था। एक दिन रोगी के कमरे से बाहर निकलते समय उन्होंने देखा, एक अँधेरे कोने में कुछ मच्छर बैठे हैं। उन्हें चट योरपियन विद्वानों का अनिश्चित मत स्मरण हो आया। उसी समय बड़े परिश्रम के साथ एक दर्जन ज़िंदा मच्छर उन्होंने पकड़े। उसके बाद एक बक्स में कुछ कबूतर बंद किए। बक्स में कुछ छेद करके बारीक कपड़े से उन्हें ढक दिया। उसके बाद वे मच्छर उसमें छोड़ दिए। कबूतरों के दाना-पानी का प्रबंध बराबर होता रहा। कई दिन के बाद देखा गया कि उन कबूतरों में से कोई भी नीरोग न था। जब उनके रक्त की परीक्षा की गई, तो उसमें मलेरिया के कीटाणु पाए गए।

कर्नल रॉस के एक और मित्र डॉक्टर मासन थे। रॉस ने अपने अन्वेषण का हाल मित्र को बतलाया। मासन को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कर्नल रॉस से कुछ वैसे ही मलेरिया-ग्रस्त मच्छर माँगे। उन्हें विश्वास तो था ही नहीं, दूर ढूँढने न जाकर पहलेपहल अपने पुत्र ही पर उनका प्रयोग किया। मच्छर काटने के तीसरे ही दिन उसे ज्वर आ गया, और कई हफ्ते बीमार रहकर एक दिन वह चल बसा। बीमारी की दशा में जब उसके रक्त की परीक्षा की गई, तो उसमें मलेरिया के कीटाणु निकले।

अब तो मासन को भी रॉस के कथन की सत्यता पर विश्वास हो गया। परंतु यह विश्वास उन्हें बड़ा महँगा पड़ा। इस प्रकार सन् १८९८ में इस भयंकर प्रयोग के फल ने डॉक्टर रॉस के मत का समर्थन किया। दोनो एकमत हो गए। फिर मासन की सहायता से, बहुत परिश्रम के बाद रॉस ने एक नया तत्त्व और खोज निकाला। उन्होंने देखा, यद्यपि बहुत-से मच्छर रोगी को काटते और रोग के कीटाणुओं को ग्रहण कर लेते हैं, परंतु उन सभी मच्छरों के काटने से नीरोग आदमी रोगी नहीं हो जाता। यह बात ऐसी थी कि उनके सिद्धांत में लोगों को संदेह होने लगता था। अंत को, चारो प्रयोग करने पर, यह मालूम हुआ कि एक विशेष जाति के मच्छर ही में यह शक्ति है कि वह कीटाणु ग्रहण करके उन्हें दूसरे मनुष्य के शरीर में पहुँचा दे।

१९०० ई० में लंदन के डॉक्टर सैंबन और डॉक्टर लॉ ने मलेरिया का अनुशीलन आरंभ किया। उन्होंने देखा, यदि मच्छर के काटने से ही यह रोग होता है, तो रोगी और नीरोग, दोनो को मच्छर के काटने से बचाने पर उनकी रक्षा जरूर होगी। इसी विश्वास पर ये दोनो इटालियन विद्वान् साइनर टर्जी के साथ इटली गए। इटली के कैंपैनिया-नामक प्रांत में उन दिनों बड़े ज़ोर का मलेरिया था। इन तीनो महाशयों ने दो इटालियन नौकरों की सहायता से वहाँ कुछ झोपड़ियाँ बनवाईं। झोपड़ियाँ ऐसी थीं कि उनमें प्रकाश तथा वायु तो ख़ूब आ-जा सकता था, परन्तु हरएक दरवाज़ा और खिड़की तार की बारीक जालियों से ढकी थी। इन लोगों ने यह नियम कर लिया था कि अँधेरा होते ही अपनी-अपनी झोपड़ी में जाकर सावधानी से दरवाज़ा बंद कर लिया जाय, और उजियाला होने तक हरगिज़ न खोला जाय। इस तरह इन लोगों ने मच्छर का काटना बिलकुल असंभव कर दिया। रात को विशेष सावधानी इसलिये की गई कि मच्छर अँधेरे में ही निकलते हैं।

तीसरी जुलाई से लेकर १६ ऑक्टोवर तक ये लोग वहीं रहे। आस-पास सैकड़ों मौतें रोज़ होती थीं, परंतु इन पाँचो आदमियों पर कोई असर नहीं हुआ।

प्रायः इसी समय प्रोफ़ेसर सेली ने भी रेल के कर्मचारियो के ऊपर एक प्रयोग किया। उन्होंने भिन्न-भिन्न स्थानो के ६२ मनुष्य प्रयोग के लिये चुने। २४ आदमियो की रक्षा ऊपर-लिखे उपाय से की गई, और ३८ अपने भाग्य के भरोसे छोड दिए गए। २४ सुरक्षित आदमियों मे से २० ज्वर से बिलकुल बचे रहे। शेप चार ज्वर-ग्रस्त हुए। पर जाँच करने पर प्रत्येक की थोडी-बहुत असावधानी पाई गई। उधर भाग्य के भरोसे छोड़े हुए ३८ आदमियो में से ३६ आदमी बीमार पडे।

चिकित्सा

मलेरिया के लिये कुनाइन सर्वोत्तम औषध है। यदि वारी से ज्वर चढ़ता हो, तो कुनाइन खाने की सर्वोत्तम रीति यह है कि जिस दिन ज्वर आनेवाला हो, उसके पूर्व सध्या-काल को एक ख़ुराक कोई विरेचन लेना चाहिए। एरंड का तेल ४। तोला या एपसम-साल्ट (२॥ तोला) लिया जा सकता है। यदि ज्वर दोपहर वाद २-३ बजे आनेवाला हो, तो कुनाइन की १ मात्रा ६ बजे प्रात काल १५ ग्रेन खा लेनी चाहिए। अर्थात् ज्वर चढ़ने के ६ घटे पूर्व। इस प्रकार दो सप्ताह तक कुनाइन खानी चाहिए। कभी-कभी एक ही वार कुनाइन खाने से मलेरिया आराम हो जाता है। परंतु इस भूल में कुनाइन खाना वद न करना चाहिए। वरना फिर उसका आक्रमण अवश्य ही हो जायगा। मलेरिया के कीटाणुओं को शरीर से दूर करने के लिये यह परमावश्यक है कि कई वार कुनाइन खाई जाय।

यदि ज्वर चढ़ने का कोई नियत समय नहीं है, तब यह करना चाहिए कि दोनो समय भोजन के वाद १०-१० ग्रेन कुनाइन खाओ। इस प्रकार एक सप्ताह तक खाने मे तथा और भी एक सप्ताह ५-५ ग्रेन खाने मे मलेरिया का भय जाता रहेगा।

बच्चों को जिनकी आयु १ से ३ वर्ष की है १ या दो ग्रेन कुनाइन दिन मे ५ वार देनी चाहिए। तीन से १० वर्ष की आयु तक २ या ३ ग्रेन कुनाइन दिन में ५ वार दो। ६ वर्ष के बच्चे को मलेरिया से सुरक्षित रखने के लिये २ ग्रेन कुनाइन प्रतिदिन दो। परतु स्मरण रहे कि कुनाइन नित्य लेने की आदत नही डालनी चाहिए।

कुनाइन सेवन करके दूध, चावल, सावूदाना का पथ्य लेना चाहिए।

प्रकरण ५

संग्रहणी और अतिसार

अतिसार

यह रोग बहुधा लोगों को कभी-कभी साधारण कारणों से भी हो जाया करता है। इसका मुख्य लक्षण पतले दस्त आना है। इस रोग में शरीर का रस, रक्त, जल, पसीना, मेद, मूत्र आदि मल के साथ मिलकर गुदा-द्वार से बाहर आ जाता है।

कारण

भारी और गरिष्ठ भोजन करना, अतिस्निग्ध, रूक्ष, ठंडे, बासी भोजन करना, सयोग-विरुद्ध तथा बिना प्रथम के भोजन पचे और भोजन करने से यह रोग हो जाता है। कभी-कभी भय, शोक से भी रोग होते देखा गया है। बहुधा मासाहारियो को इस रोग का ज्यादा भय रहता है। मक्खियाँ इस रोग के विप को गदी जगहो से लाती हैं। दूषित जल पीने से भी रोग उत्पन्न हो जाता है।

लक्षण

पतला और पीला दस्त बारबार पेट मे गुडगुड शब्द करके निकलता है। हृदय, नाभि और गुदा तथा उदर में सुई गडाने के समान दर्द, प्यास, गुदा में दर्द और कभी-कभी मूर्च्छा। आमातिसार में पेट में अधिक दर्द होकर कच्चा मल निकलता है। कभी-कभी रक्त-मिश्रित या श्लेष्म-मिश्रित भी निकलने लगता है।

उपचार

बारबार दस्त आने से यह तो स्पष्ट है कि जो दूषित द्रव्य जमा हो गया है, उसे बारंबार निकालने की चेष्टा आंते कर रही है। यदि दस्त थोडा-थोडा दर्द के साथ चिकने अश के साथ बारंबार होता है, तो उत्तम है। एक एनीमा ले डालो, जिससे सभी दूषित अश एक बार मे ही निकल जाय, और अतडियाँ शुद्ध हो जायँ। एक मात्रा एरंड-तेल पी लेना भी उत्तम है। जल के स्थान पर चावल का भिगोया पानी या सोडे का पानी या बर्फ़ का पानी पीना उत्तम है। आमाशय पर ३-४ घटे के अतर से मृदु सेक करना भी उत्तम है।

सब प्रकार के दस्तो में यह अत्यंत आवश्यक है कि रोगी चुपचाप बिस्तर मे लेटा रहे। जब तक दस्त बद न हो जायँ, उसे कुछ भी भोजन न लेना चाहिए। आवश्यकता होने पर चावलो का माँड या खीलो का पेय लेना चाहिए। जब तक दस्त बद न हो, एक फलालेन का कपडा उसके पेट पर लपेट देना चाहिए।

दस्त को तत्काल बंद करना ठीक नहीं। इस विषय में योग्य चिकित्सक की बिना सम्मति कुछ नहीं करना चाहिए। परंतु यदि तत्काल दस्त बंद करने की आवश्यकता हो, तो यह गोली देना चाहिए—

माजूफल का चूर्ण ५ रत्ती, अफीम ¼ रत्ती, गोंद का चूर्ण ५ रत्ती एकत्र करना, और प्रत्येक दस्त के बाद देना।

पेचिश

मरोड़ देकर आँव, लोहू और मल की गाँठों-सहित दुर्गंधित मल थोड़ा-थोड़ा बारंबार निकले, तो वह पेचिश है। उसका सर्वोत्तम नुसखा यह है—

काली मिर्च १ तोला, सोंठ १ तोला, काला नमक १ तोला, बड़ी हरड़ का छिलका १ तोला। नमक के सिवा तीनों वस्तुओं को पृथक्-पृथक् घृत में भून लो, फिर चारों को मिलाकर चूर्ण बना लो। प्रथम २॥ तोला एरंड तैल २ छटाक सौंफ़ के अर्क में पीकर जुलाब लो, ताकि अँतड़ियों में लिपटा हुआ दूषित चिकना विष निकल जाय। फिर यह औषध दिन में दो बार ६ माशा प्रत्येक बार १ पाव दही में खाओ। भोजन सिर्फ़ दही। अति शीघ्र आराम होगा।

संग्रहणी

यह असाध्य रोग है। हमेशा सुयोग्य चिकित्सक के हाथों इसकी चिकित्सा करानी चाहिए। इस रोग में कच्चा-पक्का मल एकदम ही निकल जाता है, और बहुत-से स्त्री-पुरुष इस रोग से मृत्यु के गाल में जाते हैं।

उपचार

१—मिठाई, अचार, मुरब्बे और सब किस्म के पकान्न त्याग दो।

२—पूर्ण आरोग्य होने तक चुपचाप बिस्तर पर पड़े रहो। पूर्ण विश्राम करो।

३—छाछ या दही एवं गो-दुग्ध इस रोग की महौषध है। यदि ठीक व्यवस्था रक्खी जाय, तो रोगी इनके द्वारा बिना ही औषध सेवन के आराम हो जाता है। परंतु यह रोग महादुर्निवार है। इसलिये बड़ी सावधानी से उसका प्रबंध करना चाहिए।

४—सब प्रकार का नशा त्याग देना चाहिए।

५—इस रोग में आँतों में सूजन हो जाती है, जो साधारण भोजन से भी छिल जाती है, और रोग अधिक बढ़ जाता है। संग्रहणी के रोगी के लिये भोजन करना ऐसा है, जैसे दुखती आँख में एक मुट्ठी रेत झोंक देना। इसलिये इस रोग में भोजन का सर्वथा त्याग करना ही उत्तम है। छाछ जो ली जाय, वह गौ की मीठी और ताज़ी होनी चाहिए। तथा धीरे-धीरे वह बढ़ाई जानी चाहिए। यदि ठीक व्यवस्था रही, तो १० से २० सेर तक छाछ प्रतिदिन पी जा सकती है। यह छाछ आँत को बल देनेवाली, खूब भूख को उतारनेवाली स्रोतों को खोलनेवाली तथा सब तरह सुखकारक है। दूसरे दर्जे पर दही है, यह भी मीठा और

ताज़ा एवं गौ का होना चाहिए। यह भी छाछ की भाँति १०-१५ सेर तक प्रतिदिन खाया जा सकता है।

दूध पर रहना जरा अधिक नाजुक, परंतु सर्वोत्तम है। इसका सेवन-विधान हम दुग्ध-चिकित्सा में वर्णन करेंगे।

६—इस रोग पर दाँतों का ख़ास प्रभाव पड़ता है। यदि दाँतों में कोई रोग हो, तो सुयोग्य दन्त-वैद्य से उसका उपचार सर्वप्रथम करा लेना चाहिए। वरना रोग दूर होना कठिन है। यह रोग मुख के द्वारा ही उत्पन्न होता है, इसलिये यदि मुख आपके वश में है, वह स्वच्छ है, और पथ्य एवं स्वच्छ भोजन और जल का आप व्यवहार करते हैं, तो इस रोग से आपको भय का कोई कारण नहीं।

इस रोग से सुरक्षित रहने के कुछ उपाय ये हैं—

१—साफ जल पियो, और गंदी टट्टी में—ख़ासकर जहाँ ऐसा रोगी टट्टी गया हो—मत टट्टी जाओ।

२—जब तक हाथ अच्छी तरह शुद्ध न कर लो, भोजन या पीने का जल हाथ से मत छुओ।

३—थालियाँ और बर्तन बिना भली भाँति साफ किए उनमें भोजन की सामग्री मत रक्खो।

४—मक्खियों से समस्त भोजन को स्वच्छ रक्खो। मक्खियों को नष्ट कर दो। एक-एक मक्खी लाखों रोग-जंतुओं को लिए फिरती है।

५—भोजन को सदैव ही अच्छी तरह पकाओ। सड़ी-गली, बासी साग-सब्ज़ी का लोभ मत करो, उसे फेंक दो। यदि खीरा, ककड़ी या फल बिना पकाए खाने हों, तो उन्हें भली भाँति धोकर पोंछ लो।

६—बाज़ार से तराशे हुए तरबूज़ या ख़रबूज़े न ख़रीदो, इनसे भयानक रोग फैलते हैं।

७—यदि घर में किसी को दस्त-कै हो जाय, तो उस रोगी का खान-पान, रहन-सहन पृथक कर दो। तथा [illegible] सख्ती से पालन करो।

ज्यों ही दस्त में [illegible] तत्काल विश्राम करो। भोजन त्याग दो और आवश्यकता हो, तो योग्य चिकित्सक से [illegible] लो।

प्रकरण ६

मंदाग्नि, बद्धकोष्ठ और बवासीर

उपर्युक्त तीनो रोग ऐसे है, जिनसे ससार में बहुत कम लोग बचे होगे। प्राय: लोग जीवन-भर उपर्युक्त रोगो को सहन करते रहते और अपनी आयु के कुछ समय पूर्व ही मर जाते हैं। यहाँ हम इन रोगो की कुछ विवेचना करना आवश्यक समझते है।

मदाग्नि

इसका मूल-कारण अजीर्ण है। जब मेदे मे दर्द या बेचैनी मालूम हो, छाती मे जलन हो, जीभ मैली और सूखी हो, खट्टी डकारें आवें, सिर मे दर्द हो, तो समझिए आपको अजीर्ण हुआ। उसे अपने प्राणों का शत्रु समझें, उपेक्षा न करें।

अजीर्ण के कारण अनेक हैं। पर सबमे प्रधान कारण भोजन अति शीघ्र खाना है। बिना पूर्व भोजन के पचे खाना या कुसमय खाना भी अजीर्ण का कारण है। जब भोजन ठीक रीति से चबाया न जाकर गुठली-की-गुठली गले से उतार लिया जाता है, तब उसे पचाने के लिये आमाशय को अत्यंत पाचक रस बनाना पड़ता है, परिश्रम भी अधिक करना पड़ता है, जिससे छाती में जलन और खट्टी डकारें आने लगती है। जो भोजन ठीक पका हुआ नहीं होता, उसके खाने से भी यही बात पैदा हो जाती है। निर्धन लोगों को अजीर्ण होने का कारण यह होता है कि उनका भोजन बहुत कड़ा होता है। फिर वे ठूँस-ठूँसकर बहुत-सा खा लेते है। तंबाकू और शराब की आदत जिन्हे होती है, उन्हें भी थोड़े ही कारणों से अजीर्ण हो जाता है।

बारंबार अजीर्ण होने से अग्नि मद हो जाती है। और मनुष्य का बल और इंद्रियों की शक्ति कम हो जाती है। इसके साथ ही धातुक्षीण का रोग हो जाता है, चूँकि धातु ठीक रीति से पुष्ट नहीं होती।

उपाय

यह बिलकुल व्यर्थ है, यदि मंदाग्नि के लिये औषध-सेवन की जाय। संभव है, ऐसी औषध मंदाग्नि को दूर कर दे, परंतु अल्प काल के लिये। इस प्राण-नाशक विपत्ति से पिंड छुड़ाने के उपाय ये हैं—

१—यदि आप चाय, शराब, भंग, तंबाकू या अन्य नशा सेवन करते है, तो उन्हे तत्काल छोड़ दीजिए।

२—भोजन करने और विश्राम करने एवं काम करने का समय नियत कीजिए।

३—सब प्रकार की मिठाइयाँ और भारी चीजें त्याग दीजिए। अचार और मिर्च-मसाले भी छोड दीजिए।

४—दालें बहुत कम खाइए। अधिकतर शाक-सब्जी, फल, नींबू, अदरख खाइए।

५—ताज़ा छाछ अवश्य भोजन के साथ लीजिए।

६—यदि आप सब कुछ खाना छोडकर केवल दूध पर कुछ दिन रह सकते हैं, तो यह बहुत उत्तम है।

७—भोजन में मोटे आटे की रोटी, बिना मॉड निकाला हुआ चावल।

यदि अजीर्ण मालूम पडे, छाती जले और खट्टी डकारें आवें, तो २४ घंटे तक लंघन करो। प्रातःकाल उठते ही एक प्याला अति गर्म पानी पियो। इसी प्रकार रात्रि को सोने के समय पियो। दूसरे दिन अति लघु आहार लो।

बद्धकोष्ठ

कब्ज़ की शिकायत प्रायः ६० फीसदी मनुष्यों को है। प्रायः लोग टट्टी साफ उतरने के लिये चाय, हुक्का और जुलाब की गोलियाँ खाया करते हैं। ऐसे लोगों की जीभ मैली, सिर भारी, मुँह में दुर्गंध और मेदे मे बेचैनी रहती है।

बद्धकोष्ठ का कारण नशीली चीज़ों का व्यवहार करना, समय पर दस्त की हाजत को रोकना या लगातार जुलाब की दवाइयाँ खाए जाना है। प्रायः स्त्रियाँ दस्त की हाजत को रोक लेती हैं और फिर जब मल आँतों में लौट जाता है, तब फिर दस्त की इच्छा भी नहीं रहती और घोर बद्धकोष्ठ हो जाता है।

उपचार

इसके दूर करने का मुख्य उपाय तो यह है कि वे कारण दूर कर दिए जायँ, जिनसे कब्ज़ हुआ है। प्रतिदिन व्यायाम करना चाहिए। बागीचे में खुदाई करना सबसे उत्तम है, या दो मील चलकर टट्टी जाया जाय। कब्ज़ को दूर करनेवाला एक व्यायाम हम लिखते हैं। चित लेट जाओ। कमर के नीचे कंबल तह करके या और कुछ कपडा रख लो। दोनो पैरों को सीधे ऊपर उठाओ और एक लंबी साँस खींचो। उसी हालत में कुछ देर पड़े रहो। जल्दी न करो। टाँगें घुटनो पर से मुडने न पावें। फिर धीरे-धीरे टाँगो को बिना मोड़े नीचे लाओ। एकदम न गिरने दो। यह क्रिया २०-३० बार प्रातःकाल करो, तब टट्टी जाओ। इससे आमाशय के पट्ठे पुष्ट होते हैं, और कब्ज़ दूर होता है।

प्रातःकाल नाक से बासी पानी पीना भी कब्ज़ को दूर करता है। जिन्हें कब्ज़ रहता हो, उन्हें प्रतिदिन खूब पानी पीना चाहिए। फलों का रस भी उनके लिये उत्तम है।

किसी-किसी कब्ज़ के रोगी का मल सफेद रंग का होता है। इसका अर्थ यह है कि कलेजे ने ठीक काम नहीं किया है, तब कब्ज़ हुआ है। ऐसी दशा मे २ माशा सौंफ कूटकर ज़रा सी मिश्री मिलाकर फंकी गर्म पानी से ले ले।

जुलाब की गोलियाँ खाने की आदत न डालो, नहीं तो उसके बिना काम ही न चलेगा। एनीमा प्रतिदिन ले सकते हो, पर प्रतिदिन लेना अच्छा नहीं। बद्धकोष्ठवालों को यह समझ लेना चाहिए कि उन्हें प्रतिदिन नियत समय पर टट्टी जाना चाहिए, चाहे उन्हें हाजत न हो।

बवासीर

बद्धकोष्ठ से बवासीर का घनिष्ठ संबंध है और यह प्रसिद्ध रोग है। और फीसदी ८० लोगों को यह किसी-न-किसी रूप में कष्ट देता है।

उपचार

अर्श-रोगी को नीचे-लिखी बातों का ध्यान रखना चाहिए—

१—कब्ज न होने दे। आवश्यकता हो, तो इसके लिये दूसरे-तीसरे दिन यह चूर्ण खाय—सौंफ़, सेंधा नमक, बडी हरड, सनाय सब बराबर। मात्रा ६ माशा गर्म पानी के साथ रात्रि को सोने के समय।

२—प्रतिदिन यथेष्ट छाछ का प्रयोग करे। ३—ज़मीकंद, बथुआ और मूली अधिक खाय। ४—गरिष्ठ चीज़ें, जैसे पिट्ठी की चीज़, रबडी, खोया आदि कम खाय। ५—प्रति सप्ताह दो बार एनीमा दो। ६—प्रतिदिन दस्त जाने के बाद गुदा को भली भाँति धोकर यह मरहम उँगली से अच्छी तरह लगा दो—

लेड एसीटेट (Lead Acetate) दो भाग। टेनिक एसिड (Tonnie Acid) एक भाग। बेलाडोना (Belladonna) १५वाँ भाग। (वेसलीन) यथेष्ट मिला लो।

ये दवाइयाँ इस्तेमाल करो।

बादी बवासीर के लिये—एक बडी मूली को खोखला करके उसमें गूगल भर दो। फिर उसी के छिलके से मुँह बंद करके धागा लपेटकर मिट्टी में गाड़ दो। पत्ते तोड दो। पानी देते रहो। जब दुबारा पत्ते निकल आवें, तब धोकर मूली और गूगल खरलकर मटर के समान गोली बना लो। साय-प्रात. १-१ गोली ठंडे जल से लो। निरंतर लेने से मस्से सूखकर नष्ट हो जायँगे।

खूनी बवासीर के लिये—निबौली १ तोला, गूगल १ तोला, गुड पुराना १ तोला। सबको कूटकर २२ गोली बनाओ। साय-प्रात १-१ गोली ठंडे पानी से लो, फौरन् आराम होगा।

यदि मस्से फूल गए है। और गुदा सूज गई हो, तो यह पुलटिस बाँधो—

भाँग २ तोला, हल्दी २ तोला, ख़सख़ास २ तोला, गूगल २ तोला।

½ पाव बकरी के दूध में उपर्युक्त दवा को कूट-छानकर भरकर पका लो और गर्म-गर्म बाँध दो।

प्रकरण ७

इस देश के छूत के रोग

चेचक

यह रोग अत्यंत संक्रामक है। जिस जगह इस रोग से बचने का प्रबंध नहीं किया जाता, वहाँ इसके फैलने पर ५० प्रतिशत रोगी मर जाते हैं। इस रोग में रोगी को अत्यंत कष्ट होता है। इससे शरीर और मुख सदैव के लिये कुरूप हो जाता है। संसार में जितने अंधे दीख पड़ते हैं, उनमें से अधिकांश इसी रोग की बदौलत हैं। यह रोग बालक, वृद्ध, ग़रीब-अमीर, दुर्बल-सबल किसी की भी परवा न कर जो कोई इसके चपेट में आ जाय, उसी को धर पटकता है।

चेचक का विष

चेचक का विष रक्त में, उसके दानों में, सूखे हुए दानों की पपड़ी में, श्वास में तथा पसीने में होता है। इन्हीं के द्वारा वह एक से दूसरे मनुष्य में फैलता है। यह रोग भयानक संक्रामक है। और उसका प्रभाव देर तक रहता है। रोगी के वस्त्रों में भी उसका विष रम जाता है, और वह दीर्घ काल तक जीवित रहता है। इसलिये रोगी के काम में आई हुई वस्तुओं, वस्त्रों, चारपाइयों तथा मकान को जंतु-नाशक दवाई के पानी से ख़ूब धोकर उनका उपयोग करना चाहिए।

लक्षण

इस रोग का विष लगभग १२ दिन तक शरीर में गुप्त रह सकता है। इस बीच में शरीर सुस्त रहता है। रोग के प्रारंभ में सर्दी लगकर ज्वर चढ़ता है और दाने फूटने से प्रथम १०४' तथा इससे भी ऊपर पहुँच जाता है। साथ ही बड़ी भारी बेचैनी हो जाती है। तमाम शरीर में और ख़ासकर पीठ और पेट में अधिक दर्द होता है। वमन होता है। कभी-कभी सन्निपात, अनिद्रा, बेहोशी अथवा ऐंठन हो जाती है। बहुधा गला आ जाता है और ज़ुकाम की शिकायत हो जाती है।

ज्वर चढ़ने पर दाने तीसरे दिन और कभी-कभी चौथे दिन दीख पड़ते हैं। ये दाने प्रथम कपाल और मुख पर दीख पड़ते हैं। इसके बाद ही एक-दो दिन में छाती, पेट तथा शरीर के दूसरे भागों में दीख पड़ते हैं। बहुधा दाने मुख पर अधिक दीख पड़ते हैं। ये दाने प्रारंभ में अति बारीक और लाल रंग के होते हैं, पीछे धीरे-धीरे ऊपर को उठते हैं, और बड़े होते जाते हैं। इस समय छूने से वे बहुत कड़े देख पड़ते हैं।

दूसरे या तीसरे दिन उनमें पानी भर जाता है। पाँचवें दिन उनके बीच में गढ़ा पड़ जाता और उसके आस-पास लाल चक्कर-सा मालूम देता है। इसके बाद उनमें मवाद होने लगता है, और दाने फफोले के समान प्रतीत होते हैं। एक-दो दिन में ये फफोले फूट जाते हैं। और उनके ऊपर खुरंड बँध जाता है, अथवा वे काले हो जाते हैं। फिर वे धीरे-धीरे सूखने लगते हैं। दाने के ऊपर का खुरंड ४-५ दिन में उतर पड़ता है, और उसके स्थान पर लाल चट्टा रह जाता है। यदि दाने का प्रभाव चमड़ी के नीचे की तह तक हो गया हो, तो यह दाग सदैव के लिये रह जाता है।

कभी-कभी आँख, मुख, गला, नाक तथा श्वास-नली में सूजन आ जाती है, तथा दाने निकल आते हैं। इसमें आँख में कभी-कभी फूला पड़ जाता है, और आँख की पुतली बाहर निकल पड़ती है। मुँह में थूक आता है, खुराक गले से उतर नहीं सकती, तथा सर्दी और खाँसी का ज़ोर बढ़ जाता है।

दाने निकलने के बाद ज्वर बिलकुल उतर जाता है, पर ज्यों ही उनमें मवाद पड़ने लगता है, फिर सर्दी लगकर ज्वर चढ़ आता है। नाड़ी की गति तेज़ हो जाती है। मुँह सूख जाता है। प्यास अधिक लगने लगती है। पर ज्यों-ज्यों दाने सूखने लगते हैं, ज्वर मंद पड़ने लगता है।

यदि दाने छोटे और छीदे होते हैं, तो ज्वर मंदा और अन्य उपद्रव भी थोड़े होते हैं, पर यदि दाने परस्पर जुड़े हों, तब ज्वर और अन्य चिह्न भी गभीर रूप धारण कर लेते हैं। आरोग्य होने पर बहुत-से लोग जन्म-भर के लिये कुरूप, अंधे-बहरे हो जाते हैं।

यह देखा गया है कि बच्चों और बूढ़ों पर इसका विशेष ज़ोर होता है, दाने ज़्यादा निकलने से, ज्वर तेज़ आने से, श्वास-नली एवं फेफड़ों पर वरम आने से तथा अशक्ति बढ़ जाने से बहुधा रोगी की ८ से १२ दिन के भीतर मृत्यु हो जाती है। युवा व्यक्ति बहुत कम मरते हैं, पर बहुधा सगर्भा स्त्रियों का गर्भपात हो जाता है। कभी-कभी वे मर भी जाती हैं। इस रोग में शरीर से अत्यंत दुर्गंध आती है।

इस रोग के आक्रमण से बचने का प्रसिद्ध उपाय टीका लगवाना है। यह इलाज शुरू में डॉ० एडवर्ड जेनर ने, सन् १७९८ में, आविष्कार किया था। इस आविष्कार से चेचक निकलने का भय जाता रहा है। जिस देश में चेचक का टीका लगाने की रीति प्रचलित है, उस देश में कोई ही इस रोग की चपेट में आता है। और यदि कोई चपेट में आ भी गया, तो उसका अति शीघ्र निराकरण हो जाता है।

टीका

टीका लगाने की रीति यह है कि मनुष्य के शरीर की चमड़ी को ऊपर से खुरचकर उस स्थान पर गाय के थनों में उत्पन्न शीतला के फफोलों का रस लगा देते हैं। गाय की चेचक के संबंध में कहा जाता है कि जब उसे यह रोग होता है, तो उसके थनों में होता है।

डॉक्टर एडवर्ड जेनर ने जब इस बात पर ध्यान किया कि जिन लोगों पर दूध काढ़ते समय हाथ में चेप लगने से गो-शीतला का असर हुआ, उन्हें फिर वह रोग हुआ ही नहीं। इससे बहुत लोग इस भयानक रोग के झपेटे में आने से बच गए। उन्होंने यह भी जाना कि गो-शीतला और मनुष्य को होनेवाली चेचक परस्पर विरोधी रोग हैं। इस पर उन्होंने यह निश्चय किया कि मनुष्यों को चेचक से सुरक्षित रखने के लिये उनके शरीर में गो-शीतला के रोग का प्रवेश कराना चाहिए। हाल ही में जो संशोधन इस संबंध में हुए हैं, उनके आधार पर टीका लगाए हुए मनुष्य का चेप ही अन्य पुरुष के शरीर में प्रवेश करा दिया जाता है।

वर्तमान में चेचक के टीके लगाने की जो रीति है, वह यह है कि मनुष्य की बाँह पर चमड़ी पर खरोंच करते हैं। फिर उस पर चेचक के टीके लगाए हुए मनुष्य के फफोलों से निकला हुआ रस ग्लेसरीन में मिलाकर लगा देते हैं। इसको प्रथम ही से तैयार रखते हैं। ग्लेसरीन मिलाने से उसमें ख़राबी नहीं पैदा होती।

कम-से-कम टीके के तीन चिह्न करने चाहिए। चार हों, तो और भी अच्छा है, क्योंकि एक या दो निशानों से शीतला का पूरा वेग शमन नहीं होता। इस शस्त्र-क्रिया में तकलीफ कुछ भी नहीं होती, और यदि ज़रा ध्यान से की जाय, तो किसी बात का अंदेशा उसमें नहीं होता। बच्चा यदि स्वस्थ है, तो उस पर कुछ भी हानिकर प्रभाव नहीं पड़ता। टीका लगाने के ३ दिन बाद उस स्थान पर फुंसियाँ निकली हुई मालूम देती हैं, जो बाद में लाल होती जाती हैं। इसके बाद ही इनके भीतर स्वच्छ रस मालूम पड़ने लगता है। इसके बाद इनकी आकृति फफोलों के समान हो जाती है, जो ८वें दिन परिपूर्ण दशा में पहुँचते हैं। इसके बाद यह रस पीब बन जाता है। इसके बाद इस पर खुरंड जम जाता है, और लगभग तीसरे सप्ताह के अंत तक वह सूखकर छुट जाता है, तथा टीके का चिह्न पड़ जाता है।

इस टीके के संबंध में खोज करने के लिये जो प्रमुख डॉक्टरों का रॉयल कमीशन नियुक्त हुआ था, उसने जाँच करके निश्चय-पूर्वक यह प्रकट किया है कि इस सादी क्रिया से शीतला से बहुत कुछ बचाव होता है। यदि शीतला निकलती भी है, तो उसका विष बहुत कम होता है। मृत्यु-घटनाएँ कम होती हैं, तथा रोगी को कष्ट भी बहुत कम होता है।

टीके की सँभाल

परंतु ध्यान में रखने योग्य बात तो यह है कि टीका लगवाने की यह क्रिया बहुत सावधानी से करानी चाहिए तथा जिस बाँह पर टीका लगाया जाय, उसकी हिफ़ाज़त भी बहुत सावधानी से करनी चाहिए। उसमें धूल, मैल न लगे, ऐसी कोई बात न हो, जिससे उसमें जलन या दर्द पैदा हो जाय। इसका सबसे सरल उपाय यह है कि उस स्थान को 'बोरिक टेड-गोज़' (विलायती दवा बेचनेवालों से मिलेगा) अथवा नरम खद्दर से लपेटकर ढक दो। और उस पट्टी को दिन में दो बार बदलते रहो। जब ८ दिन बीत जायँ, तब 'बोरिक' का मरहम लगाते रहो। और जब तक खुरंड न उतर जाय, इसे बंद न करो।

पहले लोगों की यह धारणा थी कि बचपन में टीका लगवाने से जन्म-भर के लिये चेचक का भय नहीं मिटता। वास्तव में यदि ठीक-ठीक रीति से टीका लगा हो, तो आठ वर्ष तक तो निश्चय तथा साधारणतया जन्म-भर के लिये शीतला निकलने का भय नहीं रहता। अगर बारह वर्ष की आयु में फिर एक बार टीका लगा दिया जाय, तो फिर चेचक का जन्म-भर भय नहीं रहता। इस संबंध मे रॉयल कमीशन ने इस प्रकार अपना मंतव्य दिया है—

(१) टीका लगाने के बाद ८-१० वर्ष तक चेचक निकलने का भय नहीं रहता।

(२) एक बार टीका लगाने पर जिस मुद्दत तक चेचक न निकलने का पूरा विश्वास है, यदि उसी बीच में फिर टीका लगा लिया जाय, तो यह बहुत उत्तम है।

बच्चों को ३ सप्ताह की आयु होने के बाद ३ महीने की आयु के भीतर-भीतर टीका लगवा देना चाहिए। यदि दुबारा इसकी आवश्यकता हो, तो १० या १२ वर्ष की आयु में लगवावे। इसके सिवा जब यह भय हो कि वह व्यक्ति ऐसे स्थान पर है, जहाँ शीतला का भय है, तब भी टीका लगवाना लाभदायक होगा। इस प्रकार बारंबार टीका लगवाने से कोई हानि की सभावना नहीं।

चेचक के रोगी की सँभाल

यदि किसी बच्चे या बड़े आदमी के चेचक निकल भी आवे, तो इस बात की सँभाल रखनी चाहिए—

(१) रोगी का कमरा खूब साफ, स्वच्छ, पवित्र, धूप आदि से सुगंधित रहे, तथा खिड़की आदि पर नीम की हरी डालियाँ लगा दी जायँ।

(२) कोई अपवित्र या मैला आदमी रोगी के पास न जाय।

(३) जूठे या गंदे हाथों से रोगी को न छुआ जाय।

(४) छालों से रस या पीब बहता हो, तो यह करे कि पट्टी के कपड़े को ठंडे पानी में, जिसमें २% अंश कार्बोलिक ऐसिड का मिला हो, भिगोकर रोगी के चेहरे और हाथों पर बराबर लगाते रहो। जब दाने सूखने लगें और पपड़ी पडने लगे, तो उन पर बार-बार वेसलीन लगाओ।

यदि देहात में उक्त उपचार न हो सके, तो सफेद कत्था बारीक पीसकर पीब-भरे दानों पर बुरकते रहो, या अरने उपलों की छनी हुई राख ही बुरको, या खाट पर बिछा दो। पर वह प्रतिदिन बदल दी जाय।

(५) बच्चों को कदापि दानों को मत खुजाने दो, वरना दानों में गड़े पड़ जायँगे।

(६) नेत्रों की सँभाल खास तौर पर रक्खो। बोरिक लोशन में कपडे का एक टुकडा भिगोकर थोडी-थोडी देर में पलकों को धो दिया करो। आँख के पोटे को धो और सुखाकर पलकों के किनारे थोडा-सा वेसलीन लगा दो। प्रति २ घंटे मे बोरिक लोशन की बूँदें आँखों में डालते रहो।

मुँह और कंठ वार'वार कुल्ला करके स्वच्छ रक्खो।

चेचक की चिकित्सा

(१) आरंभ में वनगोभी (भॉतल) १॥ माशा, काली मिर्च ५ दाने घोट-पीसकर १-२ तोला जल मे दिन में २-३ बार पिलाओ। यह मात्रा ३-४ वर्ष के बच्चे के लिये है। छोटे बड़े के लिये इसी हिसाब से घट-बढ़कर लेना चाहिए।

(२) यदि चेचक भली भाँति निकल आई हो, तो घिसा हुआ चंदन ३ माशा, हुल-हुल का रस ६ माशा, पानी २ तोला घोलकर थोड़ा-थोड़ा दिन-भर में २-३ बार पिलावे।

(३) यदि रोगी को दाह और बेचैनी बहुत हो, तो सफ़ेद चंदन, अड़ूसा, मोथा, गिलोय और मुनक्का सब बराबर-बराबर दो-दो तोला ले शकोरे में रात को १ पाव पानी में भिगो दो। सुबह मल छान मिश्री मिलाकर पिला दे।

(४) पीने के लिये पीपलकंठी का पानी तथा खाने को मूँग की दाल (धुली), परवल, लौकी, पालक आदि दे। सेंधानमक अति अल्प।

पीपल की सूखी छाल को जलाकर जब वह निर्धूम अंगार हो जाय, तब मिट्टी की कोरी हँडिया मे जल भरकर उसमें उन्हें बुझा दो। राख भी इसी मे डाल दो, फिर निथारकर वह पानी पिलाया जाय, यही पीपलकंठी का पानी है।

(५) नीचे-लिखी अँगरेज़ी दवा पसीना लाने के लिये इस रोग मे अत्युत्तम है—

कार्बोनेट ऑफ् एमोनियम ५ ग्रे०, बाई कार्बोनेट ऑफ़् पोटेशियम १५ ग्रे०, एसीटेट ऑफ़् एमोनिया (द्रव) २ ड्राम, सीरप ऑफ़् आरेंज ½ ड्राम, शुद्ध जल १½ औंस।

यह दवा प्रतिदिन प्रति ४-४ घंटे पर पिलानी। इसमें प्रति बार १५ ग्रेन साइट्रिकएसिड मिलाना।

(६) यदि ज्वर तेज हो और चमड़ी सूखी हो, तो गुनगुने पानी में परमेंगनेट ऑफ़् पोटाश मिलाकर उससे दिन में २-३ बार शरीर को स्पंज करना।

(७) दानों पर यूक-लिप्टिस आइल, कार्बोलिक आइल अथवा आइडोफार्म और वेसलीन का मरहम लगाना चाहिए।

(८) दस्त में कब्ज़ हो, तो जुलाब देना।

खसरा

यह अति साधारण रोग है। प्राय. असाध्य नही समझा जाता। पर जिस बालक को खसरा निकले, उसकी सार-सम्हार सावधानी से होना चाहिए। नहीं तो खसरे के बाद भयानक रोग हो जाने का भय है।

यह रोग अति शीघ्र फैलता है। यदि कोई बालक रोगी बालक को छुए, या उसके कमरे मे खेले, तो संभव है, १०-१२ दिन में उसे भी खसरा निकल आवे। इसका प्रथम लक्षण नाक में सर्दी, नाक बहना, आँखों की लाली तथा कुछ ज्वर है। रोग प्रारंभ होने के

३-४ दिन पश्चात् ख़सरे के दाने निकल आते हैं। जो प्रथम पिस्सू के काटे की भाँति मुख पर देख पड़ते हैं। फिर संपूर्ण शरीर में फैल जाते हैं। मुँह पर के दाने बड़े-बड़े हो जाते हैं। यदि इस रोग की सँभाल ठीक न हुई, तो कान और फेफड़ों मे भयानक रोग हो जाने का भय है।

उपचार

इसमें किसी दवा की ज़रूरत नहीं। रोग स्वयं ही दाना निकलने पर आराम हो जाता है। बालक को स्वच्छ कमरे में सुलाना, स्वच्छ वस्त्र रखना, पौष्टिक और लघु आहार देना आवश्यक है। उसे गर्म रखना चाहिए, क्योंकि उसे ठंड लगने का बड़ा भय रहता है। रोग के प्रारंभ ही में २ चम्मच कास्टर आइल दे देना अच्छा है। एक एनीमा भी दे दो, तो अच्छा है। नमक के पानी से फ़व्वारे की पिचकारी द्वारा नाक के भीतर धोना चाहिए। नमक के पानी के ग़रारे करो। यदि नाक और मुँह को स्वच्छ रक्खोगे, तो छाती और कान के भयानक रोगों से रोगी सुरक्षित रहेगा।

ख़सरे के समय नेत्रों की भी सावधानी रक्खो। कमरे में अँधेरा रक्खो। बोरिक लोशन से नेत्रों को कई बार धोओ। यदि मुहल्ले में यह रोग फैला हो, तो बच्चों को वहाँ मत जाने दो।

छोटी माता

यह साधारण रोग है, पर उड़कर लगनेवाला है। प्रथम कुछ दाने शरीर के धड़, खोपड़ी और कलाई पर निकलते दिखते हैं। थोड़ा ज्वर आता है। पर बच्चे प्राय खेलते रहते हैं। १ या डेढ़ दिन ज्वर आता है। ४-५ दिन में दानो में पानी भर जाता और ३-४ दिन में सूख जाता है। फिर एकाध दिन में खुरंड बँध जाता है। यदि बच्चे इस स्थल पर खुजा लेते हैं, तो पक जाने का भय है। इस रोग में खाँसी हो जाती है।

इस रोग में बच्चे को ख़ूब पानी पीने को दो, और प्रतिदिन एनीमा देकर आँतों को स्वच्छ रक्खो। जब दानो में पानी भर आवे, तो उन पर वेसलीन लगा दो। नेत्रों को साफ रक्खो।

प्रकरण ८

विदेशों से आए हुए छूत के रोग

टाइफस

कारण

यह ज्वर उन लोगों को होता है, जिन्हें पुष्टिकर आहार नहीं मिलता। और जो घनी आबादी में रहते हैं, तथा जिन्हें स्वास्थ्य के साधन प्राप्त नहीं। यह बात निश्चय रीति से मान ली गई है कि यह ज्वर जुओं और जमजुओं द्वारा फैलता है। खटमलों द्वारा भी इसका लग जाना संभव है। इस ज्वर के रोगी के मल-मूत्र आदि यदि जल या भोजन को दूषित कर दें, तो भी यह रोग फैल जाता है।

यह रोग वास्तव में ठंडे देशों का रोग है। ख़ासकर इँगलैंड, स्काटलैंड और आयर्लैंड में यह रोग अधिक होता है। भारतवर्ष में कभी-कभी यह रोग हो जाता है। इसकी ख़ासियत प्लेग-जैसी है। अर्थात् प्लेग की भाँति यह रोग भी देर तक रोगी के पास रहने से अन्य लोगों को लग जाता है। जिस प्रकार प्लेग-रोगी के श्वास और छूत से घर की वायु अशुद्ध हो जाती है, उसी प्रकार इस रोग से भी हो जाती है।

लक्षण

इस रोग के जंतु शरीर में दाख़िल हुए पीछे १२ दिन के बाद रोग के चिह्न प्रकट होते हैं। परंतु १२ दिनों के अंदर ही किसी-किसी रोगी को बदहज़मी अथवा ज़ुकाम-जैसे चिह्न दीखने लगते हैं।

इस रोग का ज्वर १४ दिन तक जारी रहता है, और आम तौर से यह १४ दिन का ज्वर कहाता है। प्रथम के २-३ दिन सर्दी देकर ज्वर चढ़ता है, और शरीर बिलकुल ढीला पड़ जाता है। रोग का इसके सिवा कुछ और उपद्रव नहीं नज़र पड़ता, इससे रोगी अपना काम किए जाता है। तीन दिन के बाद एकदम कमज़ोरी बढ़ जाती है, और ज्वर ख़ूब तेज़ हो जाता है। शरीर दुखने लगता है। अंग काँपने लगते हैं। आँखें लाल हो जाती हैं, और उनसे जल निकलता है। सिर में दर्द, चक्कर और भ्रम, तंद्रा, सन्निपात ये लक्षण प्रकट होते हैं। ज्वर १०० F. डिग्री या १०५ F अथवा १०६ F तक हो जाता है। शरीर का रंग काला हो जाता है, तथा रोगी जहाँ-का-तहाँ बेसुध पड़ा रहता है। प्राय. दस्त, पेशाब बंद हो जाता है। यदि कोई दुर्घटना न हो, तो ज्वर ४-६ दिन बाद प्रात काल को कम तथा शाम को १०३ F. डिग्री या १०४ F डिग्री तक बढ़ जाता है। १४ दिन बाद ज्वर उतरता है। तब अत्यंत पसीना आता है।

साधारण ज्वर में नाडी की गति १०० प्रति मिनट होती है। पर ज्यो-ज्यो ज्वर बढता है, नाडी की गति तीव्र होती जाती है। और वह १४० तक पहुँच जाता है। कभी-कभी नाडी अदृश्य हो जाती है।

इस रोगी को प्यास अधिक लगती है। मुँह और जीभ सूख जाती है, दाँत पर पपडी जम जाती है।

इस रोग मे कभी-कभी चौथे या पाँचवें दिन, सातवें या आठवें दिन पेट के बीच के अथवा ऊपर के भाग में दाने फूट आते है। बहुधा छाती, बाहु और जाँघ के ऊपर दाने निकल आते है। ये दाने छोटे, गोल, स्याह और बैठे हुए-से दीख पडते है। किसी-किसी रोगी के इतने बारीक होते है कि कठिनाई से दीख पडते है। एक बार निकलने पर यदि रोगी की दशा सुधरने लगे, तो भी इनकी आकृति में कोई परिवर्तन नही होता। कभी-कभी तो तमाम पीठ पर ये दाने निकल आते हैं।

इस रोग में २० फीसदी रोगी मरते हैं। बच्चो और युवा रोगियो को अधिक आराम होता है। परंतु बडी उम्र के रोगी ५०% मरते हैं। रोगी की मृत्यु १० से १२ दिन तक होती है। किसी रोगी की मृत्यु तीसरे सप्ताह में होती है। यह उनकी बात है, जिन्हें सन्निपात हो जाता है।

चिकित्सा

औषध इस रोग को आराम करने मे प्रधान सहायक नही। न नियत समय से पूर्व यह रोग दूर हो सकता है। इस रोगी को स्वच्छ और हवादार मकान में रखना चाहिए। रोगी को पूर्ण आराम देना चाहिए। खुराक हल्की और सुपाच्य देनी चाहिए। प्यास के लिये पका हुआ जल ठंडा करके और बर्फ आदि दिया जा सकता है। यह रोगी खाने को बहुत कम माँगता है, इसलिये दिन में तीन-चार बार उसे उसकी स्थिति के अनुकूल दूध, साबूदाना, दाल का पानी, खिचडी, फल आदि चिकित्सक की सम्मति से देना चाहिए। यदि कब्ज़ हो, तो एरंड तैल देना। मूत्र के लिये बारबार उससे कहना, तथा यदि पेशाब न उतरे, तो सलाई से पेशाब उतारना। नींद न आती हो, तो माथे पर ठंडे पानी में वस्त्र भिगोकर रखना। यथासंभव उसे शांत स्थान में रखना, तथा उससे किसी को बातचीत न करने देना। टाइफ़ाइड के अनुसार उसका औषधोपचार करना। इस रोग में दुर्बलता बहुत रहती है, इसलिये शक्ति-वर्द्धक दवा—रोग की मुख्य दवा के साथ—अवश्य देते रहना चाहिए। इलाज योग्य चिकित्सक का कराना चाहिए।

डेंग्यू

यह ज्वर कभी-कभी अमेरिका और वेस्ट इंडीज़ में हो जाता है। इस देश मे यह रोग सन् १८७२ में प्रथम बार आया था। यह छूत का रोग है, और एक मनुष्य से दूसरे में फैलता है।

यह रोग मच्छरो द्वारा फैलता है। मच्छर के काटने के ३ से ६ दिन के भीतर यह रोग बढ़ता है। बहुधा यह रोग एकदम आक्रमण करता है, प्रथम ठंड लगती है, फिर शरीर के भागों में तीक्ष्ण पीड़ा होती है। विशेषकर हाथ, पाँव और पीठ या सिर में। सिर मे नेत्रों के सामने और पीछे की ओर अति तीक्ष्ण पीड़ा होती है। नेत्रों से जल बहता है, नेत्र लाल हो जाते हैं। ज्वर F १०३ से १०५ F. डिग्री तक चढता है। भूख नहीं लगती। जी मचलाता है और वमन भी होता है। बच्चों को तो सन्निपात हो जाता है। और हाथ-पाँव ऐंठने लगते है। तीसरे दिन ज्वर बहुत-सा पसीना आकर उतर जाता है। कभी-कभी बहुत-सा मूत्र होता है। और कभी-कभी बहुत-से दस्त आते हैं। इसके बाद रोगी एक या दो दिन को अच्छा हो जाता है, फिर दर्द होने लगता है, और फिर ज्वर चढ़ आता है। हाथों, धड और टाँगो पर कुछ दाने निकल आते है, परंतु कभी-कभी। दूसरी बार जब ज्वर चढता है, तो केवल थोडी देर रहकर उतर जाता है।

उपचार

रोगी को रात-दिन मच्छरदानी मे रक्खो, जिससे उसे मच्छर न काटें। क्योंकि जो मच्छर उसे काटेंगे, वे अन्य मनुष्य को काटकर रोग के कीटाणु उस पुरुष में पहुँचा देंगे। रोगी को अत्यंत लघु भोजन दो। प्रारभ ही मे एक मात्रा एरंड-तैल देना अच्छा है। ठंडे पानी का कपडा सिर पर रखने से दर्द मिटेगा। रोगी को उबालकर ठंडा किया पानी पीने को दो। दर्द के स्थानों को सेको। संतरे का रस या नीबू की शिकंजबीन भी अच्छी है। पसीना लाने की सदा चेष्टा करनी चाहिए। ज्वर उतरने पर शक्ति-वर्द्धक दवाइयाँ देनी उचित हैं।

डिप्थीरिया या कठरोहिणी

यह बच्चो का अति असाध्य रोग है। यह रोग भी योरप का है। यह बडी छूतवाला रोग है। यह कृमि द्वारा होता है। ये कृमि गले और नाक में न केवल घाव उत्पन्न करते हैं, प्रत्युत एक प्रकार का विष भी पैदा करते है, जो हृदय के लिये अति हानिकर है।

यह रोग चम्मचों और प्यालो तथा जूठे खाद्य पदार्थों से एक दूसरे बच्चे को लगता है। प्रायः सीटी-बाँसुरी या और ऐसे खिलौनों से, जिनको बच्चे मुँह मे डालकर खेला करते है, यह रोग उत्पन्न होता है। बच्चे पेंसिल या उँगली प्रायः मुँह में डाल लिया करते हैं। इससे भी यह रोग हो जाता है।

ऐसा बालक जिसे यह रोग हो गया है, खाँसने के साथ लाखों कृमि उस कमरे मे फेंकता है। यदि कोई दूसरा बालक उस कमरे में हो, तो उसे यह रोग अवश्य लग जाता है।

लक्षण

इस रोग का प्रथम लक्षण गला दुखना है। यह रोग लगने के दो दिन से लेकर ७ दिन मे होता है। रोग के प्रारंभ में आलस्य, अरुचि, हलका ज्वर और कमज़ोरी होती है। फिर

गला दुखता और सूजन हो जाती है। थूक निगलना भी कठिन हो जाता है। कभी-कभी सूजन नाक और स्वर-नली की तरफ़ फैल जाती है, और तब नाक से पानी गिरने लगता है। गला बैठ जाता है, खाँसी आती है, कभी-कभी श्वास लेना भी कठिन हो जाता है।

यदि गला देखा जाय, तो भाग गहरा लाल नज़र पड़ता है, पर तीसरे दिन कब्बों के ऊपर आस-पास भूरे रंग का चमड़ा दिखाई देता है।

इस रोग में ज्वर मंद रहता है। फिर भी शरीर निढाल हो जाता है। स्वर-नली में सूजन आ जाती है, जिससे श्वास-नली से हवा का आना-जाना कठिन हो जाता है। कभी-कभी इस रोग में, गुर्दे में, शोथ हो जाता है, और पेशाब के साथ आल्ब्यूमेन और रक्त दीख पड़ता है।

उपचार

ज्यों ही पता लगे कि डिफ्थीरिया रोग हुआ, तो बिना विलंब एक प्रख्यात डॉक्टर को बुलाओ। देर मत करो। इस रोग को आराम करने की केवल एक ही अँगरेज़ी औषधि है, वह है डिफ्थीरिया एंटी-टोक्सिन। यह दवा घोड़े के रक्त में से ली जाती है। जितनी जल्द यह दवा उपयोग में आवे, उतना ही अच्छा है। यदि पहले ही दिन इसका उपयोग हो जाय, तो ९९ फ़ीसदी रोगी अच्छे हो जावेंगे। यदि ३-४ दिन बाद उपयोग में आवे, तो सौ में ७५ से ८५ तक आराम होंगे। यदि इस औषध का उपयोग न किया जायगा, तो आधे बच्चे जो रोगाक्रांत होंगे, मर जावेंगे।

यह औषध एक तरल पदार्थ है, और सुई (Hypodermic Needle) द्वारा चमड़ी के भीतर पहुँचाई जाती है। यह काम होशियार डॉक्टर से कराना चाहिए। यदि डॉक्टर न मिले, और अस्पताल में यह सुई तथा दवा मिल जाय, तो सावधानी से तुम स्वयं इस सुई को लगाकर बच्चे की जान बचा दो।

सुई को ५ मिनट तक पानी में उबालो। और वह शीशी जिसमें यह सुई है, गरम में कुछ मिनट रक्खो। तब उसका एक सिरा तोड़ो और सुई में औषध खींच लो। तब बाँह को कंधे से कुछ इंच नीचे के भाग को साबुन और पानी से ख़ूब धो डालो। फिर पोंछकर सुखा लो। तब वहाँ टिंचर आईडीन लगाओ, त्वचा की तह को ऊपर चुटकी से पकड़ो, और तब सुई को त्वचा की सतह की सीध पर रखकर सावधानी से एक इंच-भर घुसेड़ दो, इस प्रकार से कि वह केवल त्वचा और मांस के बीच में जाय। यदि १२ घंटे में लाभ न दीखे, तो फिर सुई दो। कभी-कभी तीन टीकों की भी आवश्यकता पड़ती है।

ज्यों ही यह पता चले कि बच्चे को यह रोग हुआ है, उसे पृथक् कमरे में रक्खो। और किसी बालक को उसमें न आने दो। रोगी के पास आने-जानेवालों को अपने वस्त्र और हाथ-पैर धोकर अन्य काम करना चाहिए। रोगी बालक को हिलने-डुलने न दो, वरना उसके विष से हृदय की गति बंद होकर मरने की आशंका है। उसे दिन में एक बार एनीमा दो।

पानी और फलों का रस जितना पिला सकते हो, पिलाओ। यद्यपि यह काम दुस्तर है। अनन्नास का रस इस रोग की अव्यर्थ औषधि है, जिसका विधान फलाहार-चिकित्सा के प्रकरण में हमने लिखा है।

गले की सूजन के लिये यह उपचार करो —

१—नाइट्रेट ऑफ़् सिलवर का द्रव (किसी अँगरेज़ी दवाख़ाने से बनवाकर) और ग्लेसरीन लगाओ।

२—रोगन गुल लगाओ।

३—गले पर बनफशे की पुल्टिस बाँधो।

४—फिटकरी के फूले को पानी में घोलकर गरारे कराओ।

इस रोग में बहुधा साँस रुककर मृत्यु होती है। ऐसी दशा में एक-मात्र उपाय यही है कि श्वास-नली में चतुर डॉक्टर से छेद करा दिया जाय।

यदि यह रोग फैल रहा हो, तो अपने बच्चों को नित्य ऐसा प्रयोग करो कि एक पेन्सिल के टुकड़े पर रुई लपेट उसे नमक के पानी में भिगोकर गले में लगा दो। यदि उसे एक बार पूर्वोक्त दवा की सुई लगवा दो, तो और भी उत्तम है।

पीला ज्वर

यह रोग 'वेस्टइंडीज़' के टापुओं का रोग है। और वहाँ से कभी-कभी जहाज़ द्वारा बंदर-गाहों के नगर में आ पहुँचता है। यह रोग टाइफाइड की भाँति मल-मूत्र द्वारा उडकर लगता है।

यह ज्वर अति भयानक है। प्रथम एक-दो दिन साधारण ज्वर आकर कम हो जाता है। पर पीछे एकदम ज़ोर कर आता है। इससे शरीर पीला पड जाता है, और भीतरी अंगों में लोहू जम जाता है। तेज़ ज्वर में अशक्ति और बेहोशी हो जाती है। किसी-किसी को वमन और दस्त में काला रंग का लोहू आता है। इस रोग में बहुधा ६ से ९ दिन तक रोगी मर जाता है।

उपचार

इस रोग का अभी तक कोई उत्तम प्रतीकार नहीं प्राप्त हुआ। यह रोग इस देश में बहुत कम देख पडता है। इसकी चिकित्सा वातोल्वण सन्निपात की भाँति होनी चाहिए। और एक क्षण भी नष्ट न करके योग्य चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।

अकाल ज्वर (रिलेप्सिंग-फीवर)

यह रोग भी एक प्रकार के कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है। यह ज्वर जिस घर में घुसता है, उसके सभी निवासी उसकी चपेट में आ जाते हैं। इस रोग की छूत शरीर और श्वास से निकलती है। जो कोई भी रोगी के पास देर तक रहता है, उसी को रोग लग जाता है। इस रोग के जंतु रोगी के रक्त में उत्पन्न होते हैं, और जब ज्वर चढ़ता है, तब उनकी वृद्धि हो जाती है।

यह रोग ख़राब खाना खाने से, गंदे और तंग स्थानों में रहने से अथवा अकाल फैलने के समय फैलता है। यह वास्तव में अकाल की बीमारी है। यह रोग १५ से २५ वर्ष की आयु में विशेष दीख पड़ता है।

लक्षण

यह रोग, लगने के ४-५ दिन बाद प्रकट होता है। प्रथम सर्दी देकर ज्वर चढ़ता है। किसी-किसी को कुछ समय तक दस्त में कब्ज़ हो जाता है। ज्वर के साथ सिर-दर्द, चक्कर तथा हाथ-पैर में हड़फूटन होती है। कभी-कभी एक से अधिक बार ज्वर चढ़ आता है। पसीना ख़ूब आता है। ज्वर जब तक रहता है, सिर-दर्द सख़्त रहता है। नींद नहीं आती। प्यास अधिक लगती है। नाड़ी धीमी चलती है। परंतु उसकी धड़कन बढ़ जाती है। कभी-कभी ज्वर उतरने के समय सन्निपात हो जाता है।

ज्वर का वेग प्रारंभ होने के ४-५ दिन तक बढ़ता जाता है। कभी-कभी १०६°, १०७°, १०८° तक हो जाता है। परंतु १०५° से ऊपर कदाचित् ही बढ़ता है। साधारणतया ५ या ७ दिन में ज्वर एकाएकी मंद हो जाता है। कभी-कभी अधिक समय भी लगता है। ज्वर जब उतरता है, तब कुछ घंटों तक ख़ूब पसीना छूटता है। ज्वर उतरने पर धीरे-धीरे शक्ति बढ़ जाती है, और रोगी अपना काम-धंधा करने लगता है।

परंतु बहुधा यह ज्वर ५-७ दिन बाद उछाल मारता है। कभी-कभी तीन उछाल मारता है। यह उछाल एकाएक होती है। और उसमे पूर्ववत् लक्षण होते है। यह उछाल का ज्वर २-३ दिन मे उतर जाता है। इससे शरीर अति निर्बल हो जाता है।

इस रोग में कलेजा बढ़ जाता है। और जब तक ज्वर रहता है, दस्त मे क़ब्ज़ रहता है। कभी-कभी दस्त में ख़ून भी आने लगता है। इस रोग में २०% रोगी मरते है।

उपचार

प्रारंभ में हल्का जुलाब देना चाहिए। फिर स्वेदन और मूत्रल दवा देनी चाहिए। यह रोग भूख मरने से होता है, इसलिये हल्की ख़ुराक देनी चाहिए।

ज्वर उतरने पर भी रोगी को बिस्तर में रखना कुछ दिन आवश्यक है। उत्तम तो यह है कि उसे ८-१० दिन तक या तो कुनाइन या सुदर्शन चूर्ण एक मात्रा नित्य दिया जाय।

काली खाँसी

यह बच्चों का रोग है, और एक प्रकार के जंतुओं से पैदा होती है। यह उड़कर लगने-वाला रोग है। इसके कीटाणु बलग़म मे होते है, और खाँसी के साथ दूसरे बालक के शरीर में पहुँचते हैं। यह रोग शरद्-ऋतु में ज़्यादा होता है।

लक्षण

शरीर में इसका विष पहुँचने के २ से ८ दिन में यह रोग प्रकट होता है। प्रथम साधारण खाँसी और हल्का ज्वर आता है, फिर नाक बहने लगती है, छींक आती है, और आँख में

लाली आ जाती है। सूखी खाँसी चलती है। इस प्रकार लगभग ८-१० दिन इसी प्रकार रहने पर ज्वर हल्का पडता है। और काली खाँसी का असली रूप प्रकट होता है। दर्द कम होता है, पर देर तक खाँसना पड़ता है। यह खाँसी घंटे में ४-५ बार उठ खड़ी होती है। रात में इसका विशेष वेग होता है। जब तक खाँसी चलती है, साँस रुक जाती है, और फेफडों में हवा नहीं जा पाती। इससे रक्त ठीक-ठीक शुद्ध नहीं हो सकता। और शरीर का रंग कलौस लिए हो जाता है। कभी-कभी बच्चा खाँसते-खाँसते बेहोश हो जाता है, खाँसी बंद होने पर हवा तेज़ स्वर के साथ फेफड़े में जाती है; और रोगी शीघ्र सचेत हो जाता है। बहुधा छाती में से चिकना बलगम निकलता है, तब ज़रा चैन पड़ता है। कभी-कभी उसके साथ उल्टी हो जाती या दस्त-पेशाब निकल जाता है। इस प्रकार ४-५ सप्ताह चलने पर रोग नर्म पड जाता है। फिर बलगम आसानी से छूटने लगता है।

छोटे बच्चों को जब यह खाँसी वेग से उठती है, तब कभी-कभी उनकी जीभ दाँतों में आ जाने से उसके नीचे के भाग में घाव हो जाता है। कभी-कभी नाक, आँख और कान में से खून निकलने लगता है। यह रोग जीवन में एक बार ही होता है।

उपचार

इस रोग का वेग शीत-ऋतु में ही होता है, इसलिये बच्चों को गर्म वस्त्र पहनाने का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए, और बिना वस्त्रों का पूरा बंदोबस्त किए उन्हें खुला फिरने नहीं देना चाहिए।

इस रोग का एक अच्छा उपाय यह है कि एक लोहे की कलछी को खूब लाल करके उसमें एक ड्राम कार्बोलिक एसिड डालना, और उसे रोगी बालक के बिस्तरे से थोड़े अंतर से रखकर उसमें से जो धुआँ निकले, उसे उसकी साँस के साथ जाने देना। इससे इस रोग के जंतुओं का नाश हो जाता है। यह क्रिया दिन में ८-१० बार करनी चाहिए।

'क्रोमो फ़ार्म' एक अँगरेज़ी दवा है, वह इस रोग में विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है। एक वर्ष के बच्चे को २ से ४ बूँद तक किसी शर्बत के साथ दिन में ३ बार देना चाहिए। अधिक आयु के बच्चे को इसी अनुमान से कुछ अधिक दवा देनी चाहिए। इस खाँसी का एक उम्दा नुस्खा यह है—

अनार से छिलके, काली मिरच, साम्हर नमक, बहेड़े का छिलका सब बराबर लेकर पान के रस में गोली बनाओ। यह गोली बड़े बच्चों को मुख में हर वक्त रखकर रस चूसना और छोटों को घोलकर पिलाना चाहिए।

प्रकरण ९

छूत की बीमारियों के रोकने के उपाय

यह बात अनुभव से प्रमाणित हुई है कि जिस शहर में छूत की बीमारी फैली हो, वहाँ शुरू में उसकी रोक-थाम हो जाय, तो बीमारी का फैलना रोका जा सकता है। परंतु यदि इन उपायों के करने से पहले ही रोग फैल जाय, तो फिर उसका रोकना बहुत ही मुश्किल है। इस काम के लिये प्रत्येक शहर और कस्बे में वहाँ की पंचायतों को इस प्रकार की कुछ सामग्री पहले ही से इकट्ठी कर रखनी चाहिए। रोग फूट निकलने के पीछे उसको रोकने के साधन ढूँढना, आग लगने पर कुँआ खोदने के समान है।

सबसे पहली चीज़ जो छूत की बीमारियों को फैलने से रोकती है, क्वारंटाइन है, यदि सरकार की तरफ से कहीं इसका बंदोबस्त न हो, तो गाँव की पंचायतों को इसका बंदोबस्त करना चाहिए। जहाँ ऐसे लोगों को कुछ समय तक रोक रक्खा जाय, जो ऐसी जगह से आए हों, जहाँ छूत की बीमारी फैल रही हो। वहाँ पर ऐसे आदमियों को निश्चित समय तक रोककर और सुयोग्य चिकित्सकों से यह तसल्ली करके कि इसमें रोग का कोई अंश नहीं है, आगे जाने देना चाहिए।

छोटी बस्ती के गाँव में नीचे-लिखी हुई व्यवस्था करनी चाहिए—

१—बीमारीवाले स्थान से आनेवाले लोगों को अच्छी तरह से देख लो कि उनमें रोग का कोई चिह्न तो नहीं है, यदि कुछ संदेह हो, तो उनको कुछ समय तक सबसे अलग रक्खो, और अगर वे रोगी हों, तो उनको नगर में न घुसने दो।

२—ऐसी जगह से आए हुए आदमियों के कपड़े-लत्ते और खान-पान की चीज़ें पृथक् रक्खो। अगर कोई संदेह की बात न हो, तो तीसरे दिन ही ऐसे व्यक्ति को गाँव में मिला लेना चाहिए।

३—जिस घर में यह रोग हो, उस घर को ख़ाली कर दो। रोगी को अस्पताल पहुँचाओ, और उस घर के रहनेवालों को गाँव से बाहर छप्पर बनाकर रक्खो।

४—यदि किसी मुहल्ले के अंदर रोग फैल गया हो, तो उस मुहल्ले के तमाम आदमियों को बस्ती से दूर छप्पर बनाकर रक्खो। उनमें से यदि किसी घर में रोग का आक्रमण न हो, तो उस घर में शहर के आदमियों का आना-जाना हो सकता है।

५—जिस घर में बहुत-से चूहे मर गए हों, उस घर को जल्दी ख़ाली करना चाहिए।

६—यदि किसी के शरीर में रोग के चिह्न देख पड़ें, तो रोगी को तत्काल अस्पताल में चला जाना चाहिए।

७—जिस वैद्य या डॉक्टर के पास कोई छूत का मरीज़ आ जाय, तो इसकी सूचना इस संबंध के अधिकारी को तत्काल देनी चाहिए।

छूत की बीमारी का अस्पताल

१—हरएक नगर और कस्बेवालों का यह फ़र्ज़ है कि वे जब यह देखें कि बस्ती में कोई छूत की बीमारी फैल रही है, तो उस बीमारी के लिये ख़ास अस्पताल स्थापित करें। और नगर के स्त्री-पुरुषों तथा डॉक्टरों व वैद्यों को उसमें ख़ास तौर से स्वयंसेवक के नाते भाग लेना चाहिए। इस अस्पताल मे रोगी की चिकित्सा, सेवा और आराम का बहुत अच्छा प्रबंध होना चाहिए। ज्यों ही कोई बीमार हो, तत्काल उसको अस्पताल पहुँचा देना चाहिए। और अस्पताल की तरफ से घरों को वैज्ञानिक रीति से शुद्ध करें, इससे रोग के फैलने की बहुत कुछ रोक-टोक हो सकती है।

२—यह बात तो बहुत ही स्पष्ट है कि हैज़ा, प्लेग और छूत की दूसरी बीमारियों का इलाज और उसका प्रबंध घर पर होना बहुत मुश्किल है। थोड़ी ही गफलत से रोग घर के और लोगो को भी प्राय लग जाता है, इसलिये ऐसे रोगी को ऐसे अस्पतालों मे रखना ही सबसे उत्तम है, जहाँ पर हर क़िस्म के सुबीते तैयार हो सकते हों। जिनको खानगी घरों में मिलना मुश्किल है, ऐसे अस्पतालो को बनाने और चलाने मे बहुत भारी ख़र्चा उठाना अवश्य पड़ता है, परतु इनसे जो लाभ होता है, उसके मुकाबिले यह ख़र्च कुछ नहीं। ऐसे अस्पताल बस्ती से कुछ फासले पर होने चाहिए। परंतु इतनी दूर भी न होने चाहिए कि जिससे मरीज़ को ले जाने में तकलीफ और देर हो। इन अस्पतालों में नीचे-लिखी बातो का ख़ास तौर से ख़याल रखना चाहिए—

१—हरएक रोगी के लिये कम-से-कम दो हज़ार घन फ़ीट जगह मिलनी चाहिए।

२—कमरे मे हवा की काफ़ी गुंजाइश होनी चाहिए। मकान और फ़र्श पक्का होना चाहिए। पानी निकलने के लिये पक्की मोरियाँ होनी चाहिए, और अस्पताल मे जल का यथेष्ट बंदोबस्त होना चाहिए।

३—अस्पताल के आस-पास सौ फ़ीट तक जगह रहनी चाहिए। दाइयों और नौकरो के रहने की जगह पचास फ़ीट दूर रहनी चाहिए। दवाख़ाना अस्पताल ही मे रहना चाहिए, जिससे कि तत्काल रोगी को दवा वगैरह दी जा सके।

४—दवाख़ानो का बंदोबस्त थोड़े ही फासले पर होना चाहिए। रोगी के कपड़े-लत्ते धोने का प्रबध अस्पताल ही के नज़दीक होना चाहिए। रसोई चालीस फ़ीट दूर रहनी चाहिए।

प्रकरण १०

त्वचा के रोग

त्वचा शरीर की एक खास चीज है, परंतु खेद है, इसकी सफाई का जितना ध्यान मनुष्य को रखना चाहिए, उतना नहीं रक्खा जाता। इसलिये बहुधा स्त्री-पुरुषों और बच्चों को त्वचा के रोग हुआ करते हैं। यद्यपि यह साधारण रोग हैं, परंतु शरीर को गंदा और बदसूरत करनेवाला है। चमड़ी को थोड़ा ही सँभालकर रखने से इससे बचा जा सकता है।

खुजली

यह रोग एक कीटाणु के चमड़ी में छेद करके भीतर घुस जाने से हो जाता है। यह रोग पहले उँगलियों की गाई या कलाई या नाभि से प्रारंभ होता है।

लक्षण

प्रथम खुजली होती है, फिर खुजाने के कारण छाले, फुड़ियाँ और लाल चकत्ते पड़ जाते हैं। घराने में एक पुरुष से दूसरे पुरुष को अति शीघ्र लग जाता है।

इस रोग के रोगी के बिछौने पर बैठने, साथ खाने, उसके वस्त्रों को काम में लाने, साथ सोने से यह रोग लग जाता है।

चिकित्सा

सर्व प्रथम खूब तेज़ गर्म पानी में या तो नीम के पत्ते पकाकर या उसमें पर्मेंग्नेट आफ़्-पुटाश डालकर अपने शरीर या रोगी के अवयवों को अच्छी तरह रगड़कर धो लो। यदि ज़ख्म पर खुरंड जम गए हैं, तो उसे खरखरे कपड़े से रगड़कर छुटा दो, और ज़ख्म को जब तक वह लाल न हो जाय रगड़ दो। मवाद या किनारों पर सफ़ेद चीज़ जमी मत रहने दो। यदि बड़े-बड़े फफोले पड़ गए हैं, और उनमें मवाद या पीब हो गया है, तो उन्हें क़ैंची से काट डालो, या सुई से तोड़ दो, पर कैंची या सुई इस काम में लाने से पूर्व उन्हें आग में लाल कर लो। और तब उस स्थान को गर्म पानी से उपर्युक्त विधि से साफ़ कर दो। इसके बाद नीचे-लिखे मलहमों में से कोई एक काम में लाओ—

१— तीन भाग गंधक आँवलासार और ७ भाग वेसलीन या नारियल का तेल मिलाकर मलहम बना लो। गंधक और तेल को भली भाँति मिला लो, फिर इसे अच्छी तरह धोए हुए स्थान पर प्रतिदिन दो बार मल दो।

२—खालिस सरसों का तेल आध पाव लेकर उसमें २ तोला मैनसिल पीसकर तथा ७ दाने भिलावे डालकर पकाओ, जब भिलावे जल जायँ, तब एक वर्तन में पानी भरकर ऊपर

से तेल का बर्तन उसमें छोड़ दो—पानी पर तेल तैर जायगा। उसे हाथ से उठाकर काम में लो।

उपर्युक्त दोनों चीज़ों में से किसी एक को लगाकर तीन दिन तक न स्नान करो, न कपड़े बदलो। प्रतिदिन दो बार दवा खूब मसलो। तीन दिन बाद गर्म पानी से साबुन से स्नान कर लो, सब साफ हो जायगा। परंतु इसके साथ ही दो काम और करने चाहिए—

१—प्रारंभ में ही एक अच्छा जुलाब ले लो।

२—शाहतरा, चिरायता प्रत्येक ६-६ माशा रात को भिगो दो, और प्रातःकाल मसल छानकर शहद मिलाकर १ सप्ताह तक पियो। घी खूब खाओ। मिर्च-मसाले छोड़ दो।

अलाइयाँ या मरोरियाँ

ये नोकदार फुंसियाँ गर्मी में बहुतायत से होती और बड़ी तकलीफ देती हैं। ये पसीना निकलने से होती हैं।

चिकित्सा

१—चमड़ी को गीले कपड़े या तौलिया भिगोकर पोंछो। और उस पर कोई भी पौडर जो बाज़ार में मिलता है, छिड़क दो। कुछ न मिले, तो मैदा ही मल दो।

२—आधे गिलास पानी में २ बड़े चम्मच पकाने के सोडा के घोलो। इसमें १५-२० बूँद कार्बोलिक एसिड डालकर उसमें कपड़ा भिगोकर मरोरियों को पोंछ दो, जलन और खाज बंद हो जायगी।

३—मुलतानी मिट्टी या चंदन का लेप करने से भी अलाइयाँ मर जाती हैं।

एग्ज़ीमा या छाजन

यह बड़ा दुष्ट रोग है। इससे त्वचा पर चकत्ते पड़ जाते हैं। लाली, खाज और एक प्रकार का रस उस स्थान से निकलता है, पीछे पपड़ी पड़ जाती है। यह रोग चेहरे, खोपड़ी या जोड़ों के पास त्वचा की तहों में होता है।

चिकित्सा

१—यह रोग बड़ी कठिनाई से दूर होता है। मांसाहार और शराब इसके लिये हानिकर है। खूब पानी पीना और फल खाना अति आवश्यक है। नीबू की शिकंजबीन पीने से लाभ होता है। दस्त साफ़ होना ज़रूरी है। यदि रोगी को कोष्ठबद्ध है, तो उसका आरोग्य होना कठिन है।

२—रोगी स्थानों में साबुन और पानी नहीं लगाना चाहिए। स्वच्छ नारियल का तेल वैसलीन को पिघलाकर चुपड़ने से पपड़ी नहीं पड़ती। खुजाना नहीं चाहिए। छोटे बच्चों के हाथों को कपड़े से लपेट दो कि वह खुजा न सकें।

३—एक बड़ा चम्मच भरकर पकाने का सोडा १ गिलास गर्म पानी में डालो। और

तब कपड़ा भिगो-भिगोकर रोगी स्थल को अच्छी तरह धोओ। इसके बाद उसे सुलाकर इस पर टालकम पौडर या कोई और पौडर छिड़क दो और पट्टी बॉध दो।

४—यदि जख्म गीला है और पपडी भी है, तो यह लेप लगाओ—जिंक आक्साइड २ छोटे चम्मच। इतना ही स्टार्च और आवश्यकतानुसार वेसलीन या नारियल का तेल मिलाकर तैयार कर लो।

५—रसकपूर ३ माशा, मुर्दे की हड्डी ३ माशा, नीलाथोथा १ माशा, सफ़ेद इलायची ३ माशा, वंशलोचन ३ माशा, सुपारी जली हुई ३ माशा (गली हुई), वेसलीन में मलहम बनाकर लेप कर लो।

६—यदि रोग बहुत पुराना है, तथा स्थान सूखा और काला है, तो आधा बडा चम्मच कोलटार का द्रव पदार्थ और दो चम्मच ज़िंक आक्साइड इनको मिलाकर रोगी भाग पर लगाओ।

दाद

यह रोग शरीर के किसी भी भाग में हो सकता है। यह रोग एक कृमि द्वारा होता है, जो फफूँदी के समान होता है। यही रोग दादवाले रोगी के स्पर्श या उसके वस्त्र पहनने से भी लग जाता है। बहुधा बच्चो के सिर में जो दाद होता है, वह बहुत शीघ्र अन्य बच्चो मे फैल जाता है।

इसका प्रारंभ एक लाल या भूरे रग के दाग़ से होता है। और सब दिशाओं मे फैल जाता है। कुछ समय बाद धब्बे का केंद्र त्वचा के स्वाभाविक रंग पर आ जाता है। जब यह होता है, तब रोग का आकार छल्ले के समान हो जाता है तथा उसमें बडी तेज़ खुजली होती है।

चिकित्सा

१—यदि रोग नया है, तो संध्या को यह लेप लगाओ—एक छोटा चम्मच भरकर रेसीरसेन, १० ग्रेन सेलेसेरिक एसिड दो बडे चम्मच या ८ ड्राम वेसलीन या नारियल का तेल प्रातःकाल पोंछकर तारपीन का तेल लगा दो।

२—पुराना रोग होने पर या असाध्य दशाओ मे आयोडिन का लेप प्रति तीसरे दिन दो या तीन बार लगाओ।

३—गधक, कत्था, नीलाथोथा, सुहागा चौकिया, चारो चीज़े बराबर नीबू के रस में पीसकर लेप कर दो। एक सप्ताह मे दाद आराम हो जायगा।

४—एग्ज़िमा रोग मे मुर्दे की हड्डीवाली जो दवा लिखी है, वह भी पुराने दाद के लिये अति लाभदायक है।

५—सिर का दाद प्राय बच्चो को होता है, इससे बाल सफ़ेद हो जाते और गिर भी पडते हैं। बडी पपडियॉ जम जाती हैं, कभी-कभी सारा सिर गजा हो जाता है, और बाल उड़ जाते है।

इसकी चिकित्सा के लिये सिर के वाल मूड लेने वहुत ज़रूरी है इसके वाद उपर्युक्त औषध सेवन की जा सकती है। पर यदि इससे लाभ न हो—और गजे की अलामतें हो गई हों, तो यह उपाय करे—

१—प्रथम जोक लगवाकर खून निकलवा दे।

२—नीम की छाल गो-मूत्र मे पीसकर लेप करे, और प्रतिदिन धो दे।

फोड़े और घाव

बच्चों को वहुधा घाव या फोड़े हो जाया करते है, जिनका कारण उनका मैलापन होता है। यदि उन्हें प्रतिदिन स्नान कराया जाय और उनके अगो को स्वच्छ रक्खा जाय, तो उन्हें यह रोग कभी न हो। साथ ही गदे रहने के कारण ही बच्चों के शरीर पर मच्छर और मक्खियाँ अपना विषैला प्रभाव छोड जाती हैं. जिससे उनके फोडे-फुंसी निकल आते है।

जो वच्चे गली की धूल या गर्द मे नंगे पैर घूमते है, उनके शरीर मे किसी-न-किसी प्रकार के फोडे फुंसी अवश्य निकल आने का अदेशा रहता है।

उपाय

१—यदि वालकों के खरोंच लग गई है, और या वह कुचल गया है, तो चोट लगे स्थान को धोकर स्वच्छ कर दो। फिर उस स्थान को सुखाकर थोडा-सा वोरिक एसिड का पौडर छिडको या उस पर टिंचर आइडिन लगा दो। यदि घाव से जल निकलता है, तो उस पर टिंचर आइडिन न लगाकर वोरिक एसिड का पौडर या आयोडाइन लगा दो।

२—यदि चमडी पर फुसियाँ निकल आई है, तो गधक पीसकर वेसलीन मे मिलाकर मलहम वना लो और उस पर लगा दो।

यदि फुंसियो का मुँह सफेद हो गया है, और उनमे पीव भर गया है, तो उन्हें सुई की नोक से तोडकर पीव निकाल दो। और तव एक फुरहरी रुई की वनाकर उन पर लगा दो, और स्वच्छ कपड़े की पट्टी वाँध दो।

यदि फोडा है, तो उसमे नश्तर दिलवा दो या तेज़ चाकू से स्वय खोल दो। परंतु इससे पूर्व चाकू को पानी मे अच्छी तरह उवाल अवश्य लो, और उपर्युक्त मलहम लगा दो। यदि रोगी को वार वार फोडे होते है, तो उसे एक अँगरेज़ी दवा "केलसियम-सलफाइड" दिन में ३ वार १/२ ग्रेन प्रति वार दो।

यदि घाव कच्चा, वडा और खुला हुआ है, तो उसके लिये सर्वोत्तम उपाय यह है कि एक चम्मच नमक १ प्याले पानी में घोलकर उसमें कपडा भिगोकर उसकी गद्दी घाव पर लगाओ, और उस पर तेलिया काग़ज़ रखकर पट्टी वाँध दो। प्रति ३ घटे मे यह पट्टी वदल दिया करो।

प्रकरण ११

कृमि-रोग

मनुष्य के शरीर में बहुत प्रकार के कृमि रहते हैं। इनमें कुछ साधारण हानि पहुँचाने-वाले होते हैं, उनका हम ज़िक्र इस प्रकरण मे करते हैं—

केचुआ

पेट के केचुए का शरीर लंबा और गोल होता है। तथा प्रत्येक छोर पर नुकीला होता है। ये ४-६ इंच लंबे होते हैं। यद्यपि वे छोटी आँत में रहते है, पर आमाशय मे प्रवेश कर सकते हैं। कभी-कभी वे गले तक चढ़ आते और वमन द्वारा भी निकलते हैं। यदि किसी वालक के श्वास-नल में वे चढ जाते हैं, तो श्वास-नल को वंद कर देते हैं। इससे वालक का दम घुटकर वह मर जाता है।

जव किसी वालक के पेट में केचुए हो जाते हैं, तव उसकी भूख मर जाती है। जी मिच-लाता है, पेट में पीडा होती है। नाक मलता है और दाँत कटकटाता है। खुर्दवीन से वालक के मल में ये छोटे कृमि दीख सकते हैं।

उपचार

छोटे वालक के लिये उत्तम उपाय यह है कि उसे दोपहर को एरंड का तेल पिला दो। और शाम को ½ ग्रेन संटोनीन (Santonin) थोडी चीनी या मिश्री मे मिलाकर दे दो। फिर दूसरे दिन प्रात काल ½ ग्रेन सेंटोनीन दे दो। और फिर दोपहर को ½ ग्रेन दे दो। इसके दो घंटे पश्चात् एरंड-तैल पिला दो। इन दो दिनो में उसे सिर्फ़ पतला भात वनाकर दो। इस ने दो ही दिन में तमाम कृमि नष्ट हो जायँगे।

यदि वालक के पेट में कृमि न भी मालूम हो, तो भी वर्ष में १ या दो वार सेंटोनीन दे देना उत्तम है। क्योंकि यदि अल्प मात्रा मे कृमि हुए भी, तो वे भोजन का सार तो चूस लेंगे, पर मालूम न देंगे। वच्चा पीला और दुर्वल रहेगा, पर ख़वरदार रहो कि सेंटोनीन विप है, और उसकी मात्रा मे सावधानी की जानी चाहिए। जव वालक को यह दवा दी जाती है, तव उसका पेशाव पीला आता है और पीला ही उसे दीखता भी है। इससे भय न खाना चाहिए।

केचुए रोके कैसे जा सकते है?

जैसा कि लोगों का विश्वास है, ये जंतु आँतों में नहीं उत्पन्न होते, वल्कि उनके अंडे भोजन और जल के साथ पेट में पहुँचते हैं। ये कृमि पेट में पलकर फिर असंख्य अडे देते हैं

और ये अडे मल के साथ बाहर निकलते है। फिर ये भूमि मे फैल जाते और नदियों, तालावा और बगीचो की हरियाली पर जम जाते है।

ये कृमि कुत्तो एव बिल्लियो की आँतो मे भी पाए जाते है। जब वह कुत्ता या बिल्ली वालक का हाथ चाटता है, तो कृमि के अडे बालक के हाथ मे लग जाते हैं। फिर यदि वह बालक अपना उँगलियाँ अपने मुख मे डाले या उसी हाथ से भोजन करे, तो इन कृमियो के अडे मुँह में चले जाते है। इसलिये कुत्ते, बिल्ला पालने के शौकीनों को ज़रा इस बात का ख़याल रखना चाहिए।

कद्दूदाना

यह श्वेत, गोलाकार, लबा, बारीक सूत के समान जंतु है। यह तिहाई इंच से आधे इच तक लबा और सीने के सूत के बराबर मोटा होता है। यदि साधारण सफ़ेद धागे को प्रायः आध इच के छोटे-छोटे टुकडो मे काटकर डाल दिया जाय, तो वे कद्दूदाने की भाँति दीखने लगेगे। ये छोटे कृमि बच्चो और युवको दोनो के शरीर में प्रवेश करते हैं। कभी-कभी वे सख्या मे कम अर्थात् १० या २० ही होते है और कभी-कभी अधिक भी हो जाते है। कभी इनकी सख्या हज़ारो तक पहुँच जाती है। वे 'आँत की भीतरी पत' में चिपक जाते है और रक्त को चूसते रहते है। वे केवल रक्त ही नहीं चूसते, बल्कि वहाँ एक घाव भी बना देते हैं, जिनमे रक्त रिसता रहता है। इस लगातार रक्त के रिसते रहने से और उस विष से जो कद्दूदानो से उत्पन्न होता है, मनुष्य निर्बल और पीला पड जाता है। शारीरिक शक्ति इतनी घट जाती है कि और रोग, ख़ासकर क्षय-रोग, सुगमता से लग जाता है। ऐसे बच्चे जिन्हें ये कृमि होते है, पीले पडे रहते हैं, और प्राय. छोटे ही रहते हैं। उनकी शारीरिक और मानसिक गति दोनो रुक जाती है। शारीरिक उन्नति में तो इतनी बाधा होती है कि १८ या २० वर्ष का युवक १०-१२ वर्ष का बालक जँचने लगता है। ऐसे बच्चे पढ़ भी नहीं सकते।

मुख्य लक्षण

त्वचा का पीला पड जाना। आलस्यता, आमाशय के भागो मे कभी-कभी पीडा और मानसिक सुस्ती, मिट्टी और चूना खाने का अभ्यास ये इस बात का प्रमाण है कि बालक के शरीर मे कद्दूदाने उत्पन्न हो गए है। यदि मल के थोडे-से हिस्से को डॉक्टर ख़ुर्दबीन से देखे, तो वह उन कृमियो को स्पष्ट देख सकता है।

पाँव के तलुए और अँगूठो के बीच खुजलाना इस बात का चिह्न है कि ये कीटाणु पैर की त्वचा द्वारा शरीर मे प्रवेश कर रहे है।

इनके फैलने की रीति और रोकने का उपाय

कद्दूदाने आँतों मे असंख्य अंडे देते हैं, जो मल के साथ पेट से बाहर निकलते हैं। जहाँ मल फैल जाता है, वहाँ ये फैल जाते हैं और दस दिन मे छोटे-छोटे कीडे बन जाते हैं। ये आँगन में, बगीचों मे, खेतो मे रेंगने लगते हैं। साग, तरकारी और पानी में भी हो सकते है,

और उसके द्वारा शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। बहुतों को नंगे पैर चलने के कारण ये कीटाणु शरीर में लग जाते हैं। ये सूक्ष्म कीटाणु मिट्टी से निकलकर पैर पर चढ़ जाते हैं। हाथों पर चढ़ जाते हैं, और चूतड़ों की नंगी त्वचा पर और अन्यत्र भी त्वचा में छेद करके भीतर घुस जाते हैं। वे त्वचा में छेद करके घुसते ही चले जाते हैं। जब तक कि आँतों तक नहीं पहुँच लेते। यहाँ वे आँतों के भीतरी परत में चुपके पड़े रहते और रक्त चूसा करते हैं।

इस रोग को रोकने के लिये पक्के पाखाने का उपयोग सर्वोपरि है। यदि सभी लोग ऐसा करें, तो मिट्टी का गंदा होना असंभव है। परंतु यदि मिट्टी ऐसे मल से गंदी बनी रहेगी, तो सुअर, कुत्ते, मुर्गी, मक्खी इस रोग की वृद्धि करते ही रहेंगे।

टट्टियों में ढकनेदार बाल्टियाँ होनी चाहिए और इनका मल-मूत्र धरती में गाड़ देना चाहिए। यदि पक्के पाखाने का प्रबंध न हो, तो अस्थायी पाखाने बनाने का यह उपाय सुंदर है—

एक लकड़ी की बड़ी-सी पेटी लो, जिसमें बड़ी दरारें न हों, जहाँ मक्खी घुस सके। उसमें आवश्यकतानुसार एक छेद कर लो। एक गढ़ा धरती में खोदकर उस पर इसे उलटी ढाँप दो। नीचे के किनारों पर मिट्टी चढ़ा दो। एक चपटा तख्ता और रक्खो कि जब आवश्यकता न हो, यह ढक दिया जाय। कुछ दिन बाद संदूक को वहाँ से हटा दो। गढे को मिट्टी से भर दो और दूसरे गढे को खोदकर काम चलाओ। यह सर्वसुलभ और सस्ता उपाय है।

कद्दूदाने मिट्टी में ६ सप्ताह से भी अधिक समय तक रह सकते हैं। इसलिये बागीचों और खेतों में नंगे पैर मत जाओ।

उपचार

प्रथम रोगी को एपसम साल्ट (Epsom Salt) संध्या को एक मात्रा दे दो। दूसरे दिन टट्टी होने पर आधी खुराक थैमोल (Thymol) की दे दो। २ घंटे बाद और आधी खुराक दे दो। इसके दो घंटे बाद फिर एपसम साल्ट दो। थैमोल की प्रत्येक खुराक पीने के पश्चात् आधे घंटे तक दाहनी करवट लेटे रहना चाहिए। जिस दिन से थैमोल दिया जाय, भोजन कुछ न किया जाय। यदि कुछ भी भोजन किया जायगा, तो थैमोल विष हो जायगा। जब अच्छी तरह दस्त हो चुके, तब थोड़ा जल या हल्की चाय पी सकते हो और कुछ नहीं। थैमोल (यह अँगरेज़ी दवा है) की खुराक को कूटकर उसे कैपशूल़ में डाल दो और दो घंटे के बाद लो। इसकी खुराक भिन्न-भिन्न आयु के लिये इस प्रकार है—

बालक के लिये १ से ५ वर्ष तक ७॥ ग्रेन एक खुराक।
" " ५ " १० " " १५ "
" " १० " १५ " " ३० "
" " १५ " २० " " ४५ "
२० से अधिक की आयुवाले को ६० ग्रेन।

चुनमुने

ये कीड़े महीन, सफ़ेद, साधारणतया आँत के निचले भाग में रहते हैं। इससे गुदा के मुख पर और उसके चारों ओर बहुत जलन और खाज मची रहती है, जिससे बालक अत्यंत परेशान हो जाता है। ये कीड़े मल द्वारा निकल आते हैं, और आँतों से निकलकर कपड़ों में भी आ जाते हैं। लड़कियों को जब होते हैं, तब योनि में घुस जाते हैं। वहाँ खुजली होती है और पानी-सा निकलता है। ये कीड़े बहुधा कमज़ोर और गंदे बच्चों के होते हैं।

उपचार

इन बारीक कीड़ों से बचने के लिये बच्चे के भोजन पर अधिक ध्यान देना चाहिए। भोजन स्वच्छ, पुष्टिकर और सुपाच्य हो, तथा वह नियत समय पर दिया जाय।

प्रथम थोड़ा एरंड-तेल पिलाओ, और तब एनीमा द्वारा गर्म जल ½ सेर थोड़ी कुनाइन (२० ग्रेन) घोलकर या २ चम्मच नमक घोलकर आँतों में चढ़ा दो। जितनी देर जल रुक सके, उत्तम है। यह क्रिया १ सप्ताह तक प्रतिदिन रात्रि के समय करो।

यदि खुजली हो, तो १ तोला मक्खन या वेसलीन में ५ बूँद कार्बोलिक एसिड डालकर गुदा पर मलहम की भाँति लगा दो।

यदि बालक गुदा के मुख को खुजलाता या मलता है, तो उसकी उँगलियों और नखों में कीड़ों के अंडे घुस आवेंगे। इसलिये ऐसे बालकों के हाथ बारंबार धोना और नखों को स्वच्छ रखना और काट भी देना चाहिए। चूतड़ प्रतिदिन नियमित रीति से धोए जाने उचित हैं। यदि ऐसा न किया जायगा, तो बालकों को बारंबार यह रोग होगा।

प्रकरण १२

फुटकर रोग

मुँह आ जाना

बच्चों के मुँह आ जाने का उपाय हम बाल-चिकित्सा में कह आए हैं।

बड़े आदमियों के मुँह आने के दो कारण होते हैं—

१—उनकी अँतड़ियाँ शुद्ध नहीं है, उन्हें कब्ज़ है।

२—उनका मुख, दाँत, जीभ शुद्ध नहीं है।

यदि उपर्युक्त कारण हो, तो उन्हें प्रथम दूर करना चाहिए।

कबाबचीनी १ तोला, शोरा क़लमी १ माशा पीसकर चूर्ण बना लो। और दिन में ३-४ बार बुरकी लगाकर नीचे मुँह कर पानी निकलने दो।

अथवा कत्था सफ़ेद, इलायची छोटी, शीतलचीनी, कपूर और रूमीमस्तगी सम भाग चूर्ण करके बुरकी दो।

हिचकी

१—जीभ को पकड़कर बाहर खींचो और एक-दो मिनट तक उसी तरह पकड़े रहो।

२—अति गर्म पानी एक प्याला पियो।

३—अदरख का रस और शहद बराबर मिलाकर बारंबार चाटो।

नकसीर

१—चौथी उँगली और अँगूठे से नाक दबाओ।

२—एक बड़ा बर्फ़ का टुकड़ा मुँह में रक्खो और एक टुकड़ा नाक पर लगाए रहो। एक टुकड़ा बर्फ़ का गर्दन के पीछे लगाए रहो।

३—नमक पानी में घोलकर नाक में डालो।

यदि इन उपचारों से लाभ न हो, तो स्वच्छ रुई के छोटी उँगली के पोरुए के बराबर छोटे-छोटे गुच्छे बनाओ, इनमें एक मज़बूत धागा ६-७ इंच लंबा बाँध दो। तब इन गुच्छों को ३ इंच तक नाक के भीतर घुसेड़ दो। और ३० मिनट तक रहने दो, तब डोरी खींचकर बाहर निकाल लो। यदि बारबार नकसीर आती है, तो यह दवा मुफीद है—

किशमिश १ तोला, धनिया १ तोला, मिश्री १ तोला रात को पानी में भिगो दो। और सुबह मल-छानकर पी जाओ। यह दवा २ सप्ताह तक जारी रक्खो।

अंडकोष उतर आना

बहुधा मूत्राशय के रोगों में अंडकोष की गोली नीचे उतर आती है। उससे भयानक वेदना होती है। इसका सरल उपचार यह है—खाने की तंबाकू का एक पत्ता ज़रा गीला करके आधी छटाक गुड़ में कूटकर गोली पर कसकर लँगोट से बाँध दो। गोली चढ़ जायगी।

पोस्त के डोडों का सेंक करके बेलाडोना का प्लास्टर बाँधना भी लाभदायक है।

जोड़ों का दर्द और गठिया

१—सब प्रकार की ठंड से बचो। गर्म और तर खान-पान करो।

२—योगराज गूगल (प्रसिद्ध दवा) और नारायण तैल की मालिश करो।

३—सतरे साठे ख़ूब खाओ। कब्ज़ मत होने दो।

मृगी या हिस्टीरिया

इस रोग में रोगी हठात् बेहोश होकर गिर पड़ता है। हँसता, भयभीत होता या बकता है। स्त्रियों को यह रोग ख़ासकर गर्भाशय की बाधा के कारण होता है।

ऐसे रोगी को सभी प्रकार के नशे या मानसिक चिंताएँ त्याग देनी चाहिए।

उपचार

१—यदि रोगी होश में न आवे, तो एक फलालैन का टुकड़ा या गुलूबंद ख़ूब तेज़ गर्म पानी में भिगोकर और जल्दी से ख़ूब निचोड़कर उस पर तारपीन का तेल छिड़क दो और गले के चारों ओर लपेट दो। थोड़ी देर में रोगी होश में आ जायगा।

२—ब्राह्मी बूटी प्रतिदिन १ माशा, ११ काली मिर्च मिलाकर ठंडाई की भाँति पीना चाहिए। नीबू की शिकंजबीन बहुत गुणकारी है। कब्ज़ कभी न होने देना चाहिए।

अन्य वस्तु निगल जाना

कभी-कभी बच्चे बटन, पैसा, इकन्नी, दुअन्नी आदि निगल जाते हैं। इससे अधिक भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि ये चीज़ें स्वयं ही शरीर से निकल जाती हैं, इसके लिये जुलाब न देना चाहिए। पर रोटी, दलिया, हलुआ आदि बहुत-सा भोजन करा देना चाहिए कि आँतों में ढेर होकर उसके साथ वह चीज़ भी निकल जाय।

शूल

कुपथ्य भोजन करने से कभी-कभी उत्कट शूल-रोग होता है। इसका सर्वोत्तम उपाय यह है कि तत्काल २-३ बार एनीमा दे डालो। और एक-दो दिन केवल दूध ही खाने को दो। शूल के लिये एक उपचार यह है—एक मिट्टी का दीवला आग में लाल करके उसमें १ तोला घृत डालकर १ माशा हींग भूनो, और १ पाव दूध में छोड़ दो। वही दूध रोगी को पीने दो।

अध्याय बाईसवाँ

स्वाभाविक चिकित्साएँ

प्रकरण १

सूर्य-ज्योति-चिकित्सा

अत्यंत प्राचीन काल से भिन्न-भिन्न देशों में सूर्य-पूजा का वर्णन मिलता है। सूर्य के प्रति संसार की प्राचीन जाति के विचार अत्यंत श्रद्धा-युक्त है। और भारत तथा अन्य देशों में भी सूर्य को लोग अब भी देवता समझते हैं। मिश्र, ग्रीक, रोम और योरप के प्राचीन देशों में सूर्य-पूजा होती रही है।

वर्तमान विज्ञानवेत्ताओं का मत है कि बृहस्पति, मंगल, बुध, शुक्र आदि सप्तग्रह और उनके उपग्रह सूर्य-मंडल के ही अंतर्गत हैं। ऋतु-परिवर्तन भी सूर्य द्वारा ही होता है, वनस्पति और प्राणी-जगत् की वृद्धि और जीवन-रक्षा भी सूर्य ही से होती है। वैज्ञानिकों का मत है कि सूर्य की किरणें क्षय, दाँत-रोग और अंधकार के रोगों को दूर करती हैं। दाँत की बीमारियाँ, ख़ासकर कीड़ों की बीमारियाँ हैं। और वे कीड़े जिनसे दाँतों की बीमारी होती है, अँधेरे में ख़ूब बढ़ते हैं। यह भी देखा गया है कि वह रक्त जिसमें रोग-जंतु हों, यदि सूर्य की किरणों में रख दिया जाय, तो उसके कीटाणु नहीं बढ़ सकते। पाइरिया जो दाँतों की प्रसिद्ध बीमारी है, सूर्य के ताप से बहुत कुछ ठीक की जा सकती है। यदि रोगी नित्य सूर्य की ओर मुख खोलकर कुछ देर बैठे, तो उसे उससे बहुत लाभ होगा।

सूर्य का रंग

सूर्य का रंग शुभ्र उज्ज्वल है। परंतु इसमें ७ रंगों का समावेश है। ये सातों रंग सूर्य के सात ग्रहों के अधिकृत रंग हैं। इनमें मंगल का लाल (Red), बुध का गहरा पीला (Orange), बृहस्पति का पीला (Yellow), शुक्र का उज्ज्वल नीला (Indigo), शनि का आसमानी (Blue , चंद्रमा का उज्ज्वल बैंजनी (Voilet)। पृथ्वी ही का नाम राहु है, इसका रंग हरा (Green) है।

ये सातों ग्रह अपनी-अपनी गति से सूर्य के चारों ओर भ्रमण करते हैं, और सूर्य के साथ ही अपनी प्रकाश-किरणें सर्वत्र फेंकते हैं। इन ग्रहों की रंगीन किरणें सूर्य की किरणों से

ओत-प्रोत होकर ब्रह्मांड पर भासित होती है, और इन्हीं के द्वारा वनस्पति, प्राणी और उद्भिज्ज-जगत् का उत्पादन होता है। ससार के भिन्न-भिन्न पदार्थों मे जहाँ-जहाँ जिस-जिस वस्तु का जो-जो रंग होता है, उस-उस वस्तु में उसी ग्रह का स्वभाव प्रासकर होता है। लोहा, ताँबा, राँगा, पारा आदि धातुओं में इन्हीं का रग है, मनुष्य-शरीर में भी सप्त रंगों का मिश्रण सप्त धातुओं मे है।

रंगों का शरीर पर प्रभाव

रंगो में जो रासायनिक पदार्थ है, वे सभी लगभग शरीर मे रहते हैं।

ये सभी तत्त्व प्रतिदिन के प्रकाश द्वारा मनुष्य को मिलते है। इनकी कमी या अधिकता ही मनुष्य को रोगी बनाती है। उन्हीं के सम रहने से शरीर मे जीवनी शक्ति का सचार रहता है। सूर्य की किरणो का प्रभाव रक्त और हृदय की गति पर सीधा पड़ता है। यह जीवनी शक्ति निरतर चुपचाप चराचर जगत् को सूर्य से मिलती रहती है। यदि आप एक पौदे को धूप और प्रकाश से बचाकर रक्खें, तो वह अवश्य सूख जायगा। यही दशा किसी भी प्राणी की हो सकती है। यदि १०-१२ दिन निरतर बादल रहे, तो मनुष्यो का चित्त उदास, शरीर निस्तेज और आलस्य-युक्त रहता है। जब जब हैज़ा या प्लेग की बीमारी फैलती हैं, ऐसे ही घरों और मुहल्लों से फैलती हैं, जहाँ सदा अंधकार रहता है।

शरीर मे नाभि-स्थल में मणिपुर-चक्र है, यह स्थान व्यान-नामक वायु का अधिष्ठान है। प्रश्वास द्वारा जब प्राणी सूर्य की किरणो को पाता है, तब इसी मणिपुर-चक्र में सूर्य की श्वेत रश्मि का सचय होता है। प्राणायाम द्वारा वह अधिकाधिक सींची और एकत्र की जाती है, फिर भिन्न-भिन्न अवयवों में वह विभक्त हो जाती है। और तब उसके रंग भी भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। और जिस-जिस अवयव का जो-जो रंग है, वही-वही उसे प्राप्त हो जाता है।

जब मनुष्य रोगी होता है, तब उसके नेत्र, नाख़ून, मल-मूत्र, त्वचा इनके रंग मे अवश्य अंतर पड जाता है। इसे ध्यान से देखने पर आप समझ सकते है कि किस रंग की अधिकता और किसकी कमी हो गई है। लाल रंग की कमी से सुस्ती, आलस्य, नींद, मंदाग्नि, कब्ज आदि की शिकायतें हो जाती हैं।

नीले रंग की कमी से क्रोध, चचलता, उत्तेजना आदि हो जाती है। आँखो में सुर्ख़ी के डोरे आ जाते है।

पीले रंग की कमी से मंदाग्नि, अरुचि, शरीर-दर्द, नींद न आना, जम्हाई आती है। दस्त का रग स्याही माइल होता है। मूत्र लाल, नख, त्वचा में ख़ुश्की रहती है।

आसमानी रंग की कमी से अतिसार, पित्तज्वर, पेशाब में जलन, हैज़ा, पाडु रोग आदि हो जाते हैं। मूत्र लाल आता है। पसीना आता है। दस्त पतला और कभी-कभी हरा रंग लिए आता है।

रंगों के रोग-नाशक गुण

आसमानी—ठंडा, शांतिप्रद और आकर्षक है। यदि शरीर या उसके किसी भाग में उष्णता बढ़ गई हो, तब इसका बड़ा प्रभाव होता है। ज्वर, दाह, रक्तपित्त, उन्माद, हिस्टीरिया आदि में यह रंग गुण करता है। मनुष्यों की भाँति पशुओं पर भी इसका वैसा ही प्रभाव पड़ता है। गर्मी में आसमानी बोतल का पानी दूध में यदि कुत्ते को पिलाया जाय, तो पागल होने का भय नहीं रहेगा। उन्माद या हिस्टीरिया के रोगी के मुख और सिर पर आसमानी प्रकाश डाला जाय, तो उसे बहुत लाभ होगा।

आसमानी बोतल का पानी हैजा, अतिसार, पेठन, वमन, टाइफाइड, चेचक आदि रोगों में दिया जाना चाहिए। हैज़े की प्रारंभिक अवस्था ही में यह पानी दिया जाना उचित है। आँव, दस्त में भी यह पानी लाभदायक है। दर्द, मरोड़ ४-५ बार ऐसा पानी पीने ही से नष्ट हो जायगा। निमोनिया में एरंड तेलवाली नीली शीशी का पानी लाभदायक है। प्लेग और त्रिदोष के लिये भी यह पानी उत्तम है। मलेरिया, पाडु और तिल्ली में भी यह जल गुणकारी है। बिच्छू, बर्र, मधुमक्खी के डंश पर आसमानी रंग के पानी की गद्दी जलन शांत करती है।

आसमानी रंग के प्रकाश से प्रलाप, वायु भड़कना आदि का शमन होता है। अनिद्र-रोग, वीर्य-स्राव, योनि-सूजन, गर्भवती के वमन, अत्यंत कमेच्छा, कामोन्माद, उपदंश, सिर के बालों का झड़ना, हाथ-पैरों का फटना, सिर-दर्द आदि नीले प्रकाश से दूर होंगे।

लाल—लाल रंग गर्म है। यह जीवन, बल और उत्तेजना प्रदान करता है। शरीर और चेहरे का फीकापन, कालापन, सुस्ती आदि दूर करता है। दुर्बल और फीके रंगवाले मनुष्यों को लाल रंग की बोतल का पानी देना चाहिए। या जिसके शरीर में सदा ही कुछ-न-कुछ कमज़ोरी बनी रहती हो, उसे भी लाल रंग का पानी दिया जा सकता है। धामवात, पक्षाघात (लक़वा) आदि के रोगियों को लाल रंग का पानी देना उत्तम है। शोथ के रोगियों को भी इस रंग का पानी दिया जा सकता है। जिनके मन में आलस्य, उदासी और पाडु-रोग की शिकायत हो, उन्हें भी लाल रंग का पानी लाभदायक है। चेचक निकलकर ठमक जाय या मोतीझरा ठीक-ठीक न निकले, तब-तब लाल रंग का पानी देना चाहिए। पर यह पानी एक या दो मात्रा ही देना, सिर्फ़ उस समय तक, जब तक कि दाने उभर न आवें। ऊरुस्तंभ, गर्भाशय के विकार, रजोधर्म की कमी आदि के लिये लाल रंग की बोतल का पानी काम में लाया जा सकता है।

शरीर में चर्बी बढ़ जाने पर यदि शरीर स्थूल हो जाय, तो लाल रंग का पानी बहुत गुणकारी होता है। अंड-वृद्धि रोग में भी यह उतना ही लाभदायक है।

पीला—ऊर्ध्व रक्तपित्त, रक्तातिसार पीले रंग के पानी से आराम होता है। कंठमाला और गलगंड-रोग पर भी यह पानी लाभ देगा। पीला प्रकाश भी ऐसे रोगी के लिये गुणकारी है। पुराने कब्ज को भी यह पानी नष्ट करता है। मधु-मेह और कानों की बीमारियों में भी फ़ायदेमंद है।

नारंगी—पुराने कब्ज़ में इस रंग के पानी का तत्काल प्रभाव पड़ता है। पर प्रतिदिन १ बार ही पीना चाहिए, अधिक नहीं। कुष्ठ और आतशक रोग में यह बहुत लाभ पहुँचाता है, पर १०-१२ मास तक उसका सेवन करना चाहिए, और सायं-प्रातः ही पीना चाहिए।

शीतज्वर, नज़ला, खट्टी डकार, फेफड़े की ख़राबियाँ, हिस्टीरिया, मलेरिया आदि रोग भी इससे दूर होते हैं।

उज्ज्वल नील—श्वास में बहुत लाभदायक है। आँतों की निर्बलता तथा क्षय की प्रारंभिक अवस्था में यह विशेष लाभकारी है। फेफड़े के और सभी रोगों के लिये यह महत्त्व-पूर्ण है। काली खाँसी और अजीर्ण एवं अम्लपित्त में लाभकारी है।

हरा—शांतिदाता और लगभग आसमानी रंग के अनुसार है। इसकी शक्ति नासूर को दूर करने में बड़ी अपूर्व है। दिमागी ख़राबी भी इससे दूर होती है। अनिद्र-रोग में भी गुण-कारी है। जुकाम, स्वर-भंग, विसर्प, उपदंश, नेत्र-रोग, मांसार्बुद में इससे बहुत लाभ होता है।

बैंजनी रंग—ठंडा, काबिज़ और शामक है, वमन को रोकता है। प्रमेह, ज्वर, सिर-दर्द में इसका जल बहुत गुण करता है।

ख़ास-ख़ास रंगों का ख़ास-ख़ास रोगों पर प्रभाव

आसामनी	नीला	पीला	हरा	लाल	नारंगी	बैंजनी
पित्तज्वर, दस्त, त्रिदोष, मतली, वमन, अम्लपित्त, रक्तार्श, पाँडु, उन्माद, गुर्दे की सूजन, चोट, पथरी, सुज़ाक, घाव, वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, मसूड़े और दाँतों के रोग, खाज, गर्भावस्था के रोग	वातज्वर, सिर-दर्द, मलेरिया, इन्फ्लुएन्ज़ा, काली खाँसी, अजीर्ण, क्षय, कास, जीर्ण ज्वर भंग, नेत्र-रोग, रोहे, अग्निदाह डंक	मंदाग्नि रक्तपित्त शून्यवात मधुमेह	बिगड़ा हुआ जुकाम, सिर-दर्द नज़ला फोड़ा-फुंसी घाव	नाड़ी शैथिल्य ऊर्ध्वांग-वात, चेचक की प्रारंभिक दशा	कफज्वर, उदर-शूल, मेद-रोग, खट्टी डकार, अम्लपित्त, अफारा, अर्श, श्वास, अपस्मार, वातव्याधि, पक्षा-घात, नष्टार्तव, कष्टार्तव, हिस्टीरिया, रक्तगुल्म	सर्व ज्वर क्षय

प्रयोग की विधि

यदि पानी को काम में लाना है, तो उसकी रीति यह है कि उसी रंग की बोतल को अच्छी भाँति धोकर साफ़ करो। और स्वच्छ जल भरकर दो घंटा धूप में रक्खो। यदि किसी रंग की बोतल न मिले, तो उस रंग का कपड़ा वस्त्र में लपेटकर काम में लाओ। इस बात का ध्यान रक्खो कि रंग बिलकुल शुद्ध हो मिश्रण न हो।

यदि शीशे द्वारा प्रकाश डालना हो, तो ऐसा प्रबंध करो कि एक खिड़की एक कमरे में रक्खो। उसमें ऐसी सुविधा कर दो कि इच्छानुसार काँच उसमें लगाए जा सकें। उस कमरे में और कहीं से प्रकाश आने का सुबीता न हो।

सूर्य के अभाव में यह प्रकाश बिजली की बत्तियों द्वारा भी डाला जा सकता है। होम्योपैथिक में काम में आनेवाली चीनी की साधारण गोलियाँ लेकर उन्हें बोतलों में भर धूप में रखकर प्रभावित किया जा सकता है।

मिश्रित लक्षणवाले रोगों में बुद्धिमानी से मिश्रित रंग भी बारी-बारी से दिए जा सकते हैं।

प्रकरण २

उपवास-चिकित्सा

हमने पिछले अध्यायों में बता दिया है कि शरीर की बनावट ही ऐसी है कि वह शक्ति-भर ऐसे द्रव्यों को जो शरीर के विरोधी विष हैं, स्वयं निकाल बाहर करता रहता है। साँस, थूक, पसीना, मल मूत्र, छींक, डकार आदि सब इसी मतलब को हल करते हैं। यदि किसी कारण शरीर यह क्रिया ठीक-ठीक न कर सके, तो वह रोगी हो जायगा।

वैज्ञानिकों का मत है कि जन्म से मृत्यु तक शरीर में एक प्रकार का विष बनता रहता है। उसका तत्काल नाश यदि शरीर न करे, तो शरीर का अनिष्ट हो जायगा। हम प्रथम कह आए हैं कि शरीर में असंख्य जीव-कोष है। ये पुराने प्रतिक्षण नष्ट होते और नए बनते रहते हैं। नष्ट हुए जीव कोष ही विष-रूप हो जाते हैं। और शरीर भिन्न-भिन्न मार्गों से उन्हें ही निकालता रहता है।

परिश्रम करने से ये जीव-कोष नष्ट होते और विश्राम से बनते हैं। तथा आहार से पोषित होते हैं, इसलिये आहार और विश्राम जीवन के लिये परमावश्यक हैं।

मनुष्य के शरीर में सबसे अधिक रोग उत्पन्न होने का कारण यही है कि वह प्रकृति के नियमों का बहुत उल्लंघन करता है। वह बहुत-से नशे के पदार्थ जैसे भंग, अफीम, शराब आदि खा लेता है, जिन्हें पशु कभी नहीं खा सकते। इसी प्रकार वह भोजन में भी बहुत कुछ सीमा से बाहर हो जाता है। वह बहुत अधिक अन्न खाता और उसके साथ मिर्च, मसाले, अचार, चटनी आदि ऐसी चीज़ें खा जाता है, जो शरीर में बहुत-सा विष पैदा कर देती हैं।

विद्वान् डॉक्टरों ने खोज करके इस बात की जाँच की है कि अधिक भोजन करना जल्दी मृत्यु को लाता है। साधारणतया जितना भोजन मनुष्य नित्य करते हैं, उतना वे पचा नहीं सकते और उसका बहुत-सा अंश कच्चा ही अँतड़ियों में चला जाता है। इससे जहाँ आमाशय और अँतड़ियों को बहुत अधिक काम करना पड़ता है, और वे कमज़ोर हो जाती हैं, वहाँ दूषित अंश शरीर में रह जाने के कारण रक्त और अन्य धातु भी ख़राब हो जाती हैं। यही अनेक रोगों के उत्पन्न होने का मूल-कारण है। एक विद्वान् का कथन है कि अकाल में भूखे रहकर इतने आदमी नहीं मरते, जितने ख़ूब ठूँसकर खाने से मरते हैं।

बहुत लोग यह समझते हैं कि यदि हम ख़ूब, ठूँस-ठूँसकर न खायँगे, तो हम कमज़ोर हो जायँगे। यह बड़ी भूल है, ऐसे लोगों को उत्तम भोजनों में भी स्वाद नहीं आता। और प्राय बिना भूख के ही वे खाया करते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि बहुत-से रोगों का मूल-कारण अधिक भोजन है। रोगी मनुष्य यदि कुछ नहीं खाता है, तो लोग अधिक खाने को विवश करते हैं। उनका कहना होता है कि यदि वे खायँगे नहीं, तो उनका शरीर कैसे चलेगा। लोग उन्हें ज़बर्दस्ती खिलाते हैं। और वही भोजन उनके लिये विष बन जाता है। भूखों मरने का यह अर्थ है कि उसका अस्थि-पिंजर ही रह जाय। यदि ऐसा हुए बिना वह मर जाय, तो वह भूखों तो कभी नहीं मरा।

रोगी होने पर जो औषधि शरीर में पहुँचाई जाती हैं, उनमें बहुत-से विष होते हैं। और वे अस्वाभाविक रीति से शरीर में अपना प्रभाव रखते हैं। डॉक्टर लोग जितना ज्ञान रोग की परीक्षा का रखते हैं, उतना वे उसकी चिकित्सा का नहीं रखते, और शायद इस योग्यता के लिये शताब्दियाँ चाहिए।

रोग का समूल नाश कर देने के लिये सबसे अधिक आवश्यकता शरीर के विषैले प्रभावों को विध्वंस करने की है। बड़े-से-बड़े विद्वान् अब इस बात पर विश्वास करते जाते हैं कि औषधि की बहुतायत निरर्थक है। प्रकृति की प्रधानता ही सच्चा स्वास्थ्य प्रदान कर सकती है। यह हम पीछे कह आए हैं कि शरीर स्वाभाविक रीति से ही अपने विपरीत विषों को शरीर से बाहर कर देता है। तब यदि चिकित्सक उस स्वाभाविक शक्ति को काम करने का अवसर दे, तो रोग स्वयं नष्ट हो जायगा। मनुष्य की जीवन-शक्ति स्वयं ही मनुष्य को नीरोग करेगी।

यदि हम ऐसी दवाई खायँ, जो रोग को जल्दी दबा दे, तो इसका मतलब यह है कि हमने शरीर की जीवनी शक्ति के साथ विरोध किया? एक बार स्वर्गीय सम्राट् एडवर्ड के निजी चिकित्सक सर फ्रेडरिक ट्रेवेस ने कहा था कि "यह हमारी बड़ी भूल है कि यदि रोगी को ज्वर, खाँसी या दस्तों की शिकायत हो, तो उसे हम तत्काल रोकने की चेष्टा करते हैं। और यदि स्वाभाविक भूख नहीं लगती, तो ज़बर्दस्ती भूख लगने का प्रबंध करते हैं।"

निश्चय ही असंख्य रोगों का मूल-कारण एक है। जर्मनी के प्रसिद्ध डॉ० लुइकूनी का भी यही मत है। 'रक्त' हमारे शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों को अपने अविरल संचालन से एक बनाए हुए है। यदि उसी एक मूल-कारण को लक्ष्य करके रोग दूर करने की चेष्टा की जाय, तो रोग आसानी से दूर हो जायगा। डॉ० ई० एच्० डेनी का कथन है कि "रोगी के पेट में भोजन न रहने दो, इससे रोगी नहीं, बल्कि रोग भूखों मर जायगा।" इसमें संदेह नहीं कि यह असाधारण महत्त्व की बात है।

हिंदू-धर्म-शास्त्रों में उपवासों का बहुत बड़ा महत्त्व है। अनगिनत पर्व, तिथि उपवास के लिये नियत है। यदि समस्त हिंदू-व्रतों को गिना जाय, तो उनकी संख्या साढ़े पाँच सौ तक पहुँच जायगी। अधिकांश व्रतों में अन्न न छूने और फलाहार पर ही निर्भर रहने का विधान है। वह भी अल्प और १ बार। यद्यपि आजकल व्रतों में बड़े-बड़े माल उड़ाए जाते हैं। स्त्रियाँ प्रायः अधिक उपवास करती हैं, और इससे उनके शरीर पर अच्छा ही प्रभाव पड़ता है।

मुगल बादशाह शाहजहाँ बहुत कम आहार खाते थे। बड़े-बड़े तपस्वी, दीर्घायु योगी अल्पाहार और उपवास से ही नीरोग रहते रहे हैं। पशु रोगी होने पर बिना आहार के कई दिन पड़े रहते हैं। साँप केंचुली बदलने के समय सप्ताहों निराहार रहता है। बहुत-से जंतु जाड़े-भर निराहार रहते हैं। बर्फीले प्रदेशों में बिच्छू ४ मास निराहार पड़े रहते हैं।

रोग और उपवास

सब प्रकार के ज्वरों में प्रारंभ में उपवास करना सबसे उत्तम है। आगे चलकर चिकित्सक की सम्मति से भोजन परिमित किया जा सकता है। आयुर्वेद में लिखा है—"आहारं पचति शिखि दोषानाहारवर्जित ।,, अर्थात् अग्नि आहार को पचाती है, पर जब आहार नहीं रहता, तो वह दोषों को पचाती है। योरप में उपवास ही से सब रोगों की चिकित्सा करने के अनेक अस्पताल खुले हैं। और उनमें आशातीत लाभ हुआ है। उपवास से मन पर भी काफ़ी प्रभाव होता है। धर्म-शास्त्रों का मत है कि उपवास से मन और आत्मा की शुद्धि होती है। जब कोई मनुष्य उपवास शुरू करता है, तो उसका शरीर दुर्बल होने लगता है, और अंतत वह हड्डियों की ठठरी रह जाता है। इसका कारण यही है कि शरीर का समस्त फालतू भाग शरीर के पोषण में खर्च होने लगता है। उपवास से मृत्यु का भय तभी होगा, जब कि शरीर के आवश्यक अंगों से शरीर का पोषण होने लगेगा। पर जब तक आवश्यक अंग नहीं खर्च होते, मनुष्य केवल दुबला होता है, और उससे कोई हर्ज नहीं होता। उपवास-काल तभी तक माना जाना चाहिए, जब तक कि शरीर का पोषण उसके फालतू पदार्थों पर होता रहे। प्रारंभ में उपवास करने पर भोजन के समय पर थोड़ा उद्वेग होता है, पर ज्यों ही शरीर का फालतू पदार्थ पचने लगता है, उद्वेग नष्ट हो जाता है। यह स्थिति २-३ दिन से अधिक नहीं ठहरती। भारी और मोटे आदमियों को उपवास से बढ़कर अन्य कोई उत्तम वस्तु नहीं। यदि ठीक विधि से उपवास किया जाय, तो शरीर की शक्ति कदापि नहीं कम होती।

ध्यान रखने की बात यह है कि उपवास से मस्तिष्क में कोई विकार नहीं उत्पन्न होता। क्योंकि मस्तिष्क का पोषण जिन पदार्थों से होता है, वे स्वयं मस्तिष्क ही में रहते हैं। हमेशा मस्तिष्क तभी अच्छा काम करेगा, जब पेट हलका रहेगा। मस्तिष्क से काम करनेवालों को सदा अल्पाहार करना चाहिए।

उपवास की रीति

उपवास के दिनों में केवल जल को छोड़कर अन्य कुछ पदार्थ नहीं लेना चाहिए। चाहे भी जिस ऋतु में उपवास किया जा सकता है। प्रारंभ के एक या दो दिन कष्ट से व्यतीत होंगे। घबराहट, आँखों में अँधेरा, सिर में चक्कर, क़ै आदि उपद्रव मालूम देते हैं और यह मालूम देता है, मानो शरीर एकदम ख़ाली हो गया है। और भी कई बातें मालूम देती हैं, पर दो-तीन दिन बाद ये सभी विकार आप ही शांत हो जाते हैं।

भूखों मरनेवालों के शव की परीक्षा करके देखा गया, तो पता लगा कि इस प्रकार उनके शरीर के पदार्थ घटे—चर्बी ९७ भाग, स्नायु ३० भाग, कलेजा ५६ भाग, तिल्ली ५३ भाग, ख़ून १७ भाग। ज्ञान-तंतु बिलकुल नष्ट नहीं हुए।

चौथे दिन ऐसा मालूम होता है, मानो ज्वर आकर उतरा हो। जीभ का स्वाद ख़राब हो जाता है। और वह कुछ मैली हो जाती है। परंतु इसके बाद कई उत्तम लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। यथा—श्वास अधिक सरलता से चलता है, फेफड़ा अपना काम ख़ूब करता है, शरीर में बल और सुख प्रतीत होने लगता है। यदि प्रारंभिक दो दिनों मे केवल गर्म पानी का डूस लिया जाय और पेट तथा पीठ को सेका जाय, तो बहुत अच्छा है। प्रारंभ के दो-तीन दिन धैर्य-पूर्वक निकालने चाहिए। और शरीर को विश्राम देना चाहिए।

कुछ लोगों को चौथे दिन दुर्गंधित पसीना आता है, कुछ का जीभ का स्वाद बिलकुल बिगड़ जाता है। किसी-किसी का मुँह खट्टा हो जाता है एवं उसमें पानी भर आता है, कभी जीभ पर छाले पड़ जाते हैं। बहुतों को अठवारों तक वमन होता है। परंतु इनसे तनिक भी न डरना चाहिए।

उपवास-काल में कभी-कभी नाड़ी तेज़ और कभी बहुत धीमी चलने लगती है। यदि नाड़ी की चाल एक मिनट में ६० से ६० वार तक हो, तो चिंता की बात नहीं। यदि शरीर बिलकुल सूखकर ठठरी रह जाय, तो हर्ज नहीं। हाँ, ख़ास-ख़ास हालतों में योग्य चिकित्सक की सम्मति लेनी चाहिए। पर ध्यान रहे, तब तक ही उपवास जारी रखना चाहिए, जब तक कि मनुष्य ख़ूब चल-फिर सके और मीलों तक का चक्कर लगा सके। शरीर में बल बराबर बना रहे। बल घटने लगे, तो चिकित्सक की सम्मति से उपवास त्याग दे।

ध्यान रहे कि भय के अधिक चिह्न उसी समय प्रकट होते हैं, जब कि उपवास अधिक लंबा हो जाता है। ख़तरों से बचने का सबसे उत्तम उपाय तो यह है कि वह प्रथम छोटे-छोटे उपवासों की आदत डाले। जब वह एक सप्ताह तक का उपवास कर ले, तो फिर वह आसानी से लंबा उपवास कर सकेगा।

अच्छे उपवास का परिणाम यह होगा कि उसका मन बहुत स्वच्छ और संतुष्ट रहेगा। घबराहट या बेचैनी न होगी। शरीर में जीवन-शक्ति बढ़ती ही रहेगी।

नींद और प्यास

उपवास में नींद बहुत कम आती है। यदि मनुष्य यथेष्ट जल पिए, तो नींद कुछ अधिक आवेगी। यदि आवश्यकता हो, तो गुनगुने पानी से स्नान भी किया जा सकता है। या स्पंज किया जा सकता है। नींद न आने का कारण रक्त-संचार की कमी है। यही कारण है कि कभी-कभी पैर बिलकुल ठंडे पड़ जाते हैं। और चेष्टा करने पर भी गर्म नहीं होते। ऐसी दशा में पैरों पर गर्म पानी-भरी बोतल रखना चाहिए। इससे नींद भी आवेगी। परंतु ध्यान रहे कि उपवास-काल में अधिक नींद की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि शारीरिक यंत्र

थकते नहीं। जो लोग ८-६ घटे सोते हैं, वे यदि उपवास-काल मे ३-४ घटे सोवें, तो काफी है।

जल उपवास-काल में यथेष्ट पीना चाहिए। इससे बहुत लाभ होगा। जिनका मुँह का स्वाद उपवास-काल में बिगड जाय, उन्हे और भी अधिक जल पीना उचित है। कभी-कभी जल मे नीबू का रस मिलाया जा सकता है। यदि पकाया हुआ जल पीना हो, तो भी वह ठडा करके ही पीना चाहिए।

एनीमा

उपवास-काल मे बीच-बीच मे सिर्फ़ गर्म पानी का एनीमा लेने से पेट, पेडू और आँतों की सफ़ाई होती है। इससे साँस अच्छा आता है और जीभ की रंगत अच्छी हो जाती है।

उपवास न करने योग्य

क्षय के रोगी तथा पूर्ण नीरोग युवक और युवती स्त्रियो को उपवास नहीं करना चाहिए। गर्भवती को भी उपवास न करना चाहिए। इसके सिवा अत्यत दुर्बल, मूर्च्छा-रोगी आदि भी उपवास न करें।

विशेष बात

उपवास मे प्राय: कृत्रिम दुर्बलता प्रतीत होती है, पर उसकी परवा न कर धीरे-धीरे टहलना आदि जारी रखना चाहिए। उससे शरीर की शक्ति जाग्रत् रहेगी। यदि परिश्रम न किया जायगा, तो शरीर दुर्बल अवश्य हो जायगा।

उपवास की समाप्ति

उपवास की समाप्ति पर सावधानी की आवश्यकता है। उपवास के बाद बहुत कुछ खाने की इच्छा होती है, पर ऐसा कदापि न करना चाहिए। उपवास के बाद शरीर अत्यंत नाज़ुक हो जाता है। लबे उपवास करनेवालों को ख़ास तौर पर इन बातों का ध्यान रखना चाहिए। उपवास छोडने पर प्रथम कुछ फलो का रस लेना चाहिए। यह रस थोडी चीनी मिलाकर थोडी-थोडी बार लेना चाहिए। एकदम से बहुत-सा रस न पीना चाहिए। दिन में ३-४ बार से अधिक रस न पीना चाहिए। २-३ दिन बाद ताज़ा गर्म दूध पीना चाहिए। फिर धीरे-धीरे उसकी मात्रा बढानी चाहिए। साथ ही खट्टे रस के फल खाने चाहिए। १ सप्ताह में धीरे-धीरे अपना साधारण भोजन करना चाहिए, पर कम मात्रा में। दूध थोडी-थोडी देर में बारंबार पीना चाहिए। इस रीति से बडी जल्दी वज़न बढ़ जाता है। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि यदि इन दिनो कब्ज़ रहे, तो एनीमा का उपयोग किया जाय। अगूर और संतरा का रस उपवास छोडने के लिये सबसे उत्तम वस्तु है। कुछ काल तक भोजन यथासभव कम खाया जाय।

उपवास के अनुभव

डॉक्टर बरनर मैकफेडेन जो अमेरिका के प्रख्यात डॉक्टर थे, लिखते है—

"मुझे पहले निमोनिया और कई छोटे-छोटे रोग थे। पर जब से मैंने उपवास के गुणों को जाना, तब से मैंने अन्य चिकित्साएँ त्याग दीं। गत १५ वर्षों से मैं उपवास द्वारा ही अपने शरीर को नीरोग रखता हूँ।

"शुरू में मैं ४ दिन उपवास करके एकाध मेव या कोई फल खा लेता था, फिर मैं १ सप्ताह तक बिना आहार रहने लगा। उपवास के पहले दिन मैं २॥ सेर तोल में घट गया, और दूसरे दिन २ सेर। यह मान घटता गया, और ७वें दिन मैं केवल ½ सेर घटा। मैं खूब व्यायाम करता था। और प्रतिदिन १० मील का चक्कर लगाता था। प्रारंभ में मुझे कुछ कमज़ोरी प्रतीत होती थी, पर १-२ मील चलने पर वह जाती रहती थी। कुछ देर तक कहीं बैठकर फिर उठने में भी मुझे कुछ दुर्बलता प्रतीत होती थी, पर मेरा मस्तिष्क प्रति-दिन स्वच्छ होता गया। उपवास के छठे और सातवें दिन बड़े आराम से व्यतीत हुए। चौथे दिन कुछ खाने की मेरी प्रबल इच्छा हुई। पर मैंने अपने को रोका, और व्यायाम करने लगा। मेरे शरीर में आश्चर्य-जनक बल आने लगा। और मैं प्रथम ५० पौंड और फिर ६०-७० और अंत में १०० पौंड का डंबल उठाने लगा।"

एक अमेरिकन महिला, जिन्हें लक़वा मार गया था, कहती हैं—

"मैंने ४० दिन का उपवास किया, और मुझे कुछ भी कठिनाई नहीं प्रतीत होती थी। जब कभी भूख लगती थी, मैं पानी पी लेती थी। उपवास-काल में मैं ६ ७ घंटे ऑफ़िस में काम करती थी, और प्राय. घूमने जाती थी। दिन-दिन मैं इतनी तेज़ चलने लगी, जितनी पहले कभी नहीं चलती थी।

"मेरे शरीर का मांस धीरे-धीरे कम होता जाता था, और मुझे सरदी-सी प्रतीत होती थी। पर मेरी विचार-शक्ति बहुत बढ़ गई थी, और बीस दिन बीत जाने पर भी मुझे भोजन की तनिक भी इच्छा और आवश्यकता न थी। पर कभी-कभी मेरी आँखें झपती थीं, और सिर में चक्कर आता था। मैं ७ बजे ही बिस्तर पर चली जाती थी।

"अट्ठाईसवें दिन मुझे लकवेवाले हाथ में बहुत कष्ट प्रतीत हुआ। वह बहुत अधिक सूख गया था, पर मैं उपवास करती गई। ३९वें दिन डॉक्टर ने कहा, अब तुम्हें उपवास की ज़रूरत नहीं, पर मैं और एक दिन भूखी रही। ४०वें दिन मैंने उपवास तोड़ा, और मैं नित्य अधिकाधिक कार्य करती रही। ४० दिनों में मैं २७ पौंड घटी।

"४१वें दिन मैंने आधा संतरा खाया, पर न तो मुझे उसे खाने की इच्छा थी, और न मुझे उसका कोई स्वाद ही प्रतीत हुआ। पर दूसरे दिन से मेरी क्षुधा जाग्रत् हो गई, और मैंने २-२ घंटे बाद आधा संतरा खाना प्रारंभ किया। ३ सप्ताह में मैं स्वेच्छानुसार सब कुछ खाने योग्य हो गई। अब मैं पूर्ण नीरोग हूँ और लक़वावाला मेरा हाथ अधिक बलवान् है।"

डॉक्टर हेनर ने एक बार ४० दिन का उपवास किया था। और प्रारंभ में १९ दिन तक

जल भी नहीं पिया था। इसी समय में उन्होंने एक दौड में बाज़ी जीती। अंत में वे पूर्ण हृष्ट-पुष्ट और नीरोग रहे।

अमेरिका के एक होटल के स्वामी ने ६० दिन का उपवास किया था। उस समय उसका वज़न ५ मन के लगभग था। उसका वज़न अतत १०० पौंड घट गया। वह बराबर १५ मील घूमा करता था।

महात्मा गाधी ने अनेक बार उपवासो का अनुभव किया है। पिछली बार उन्होंने २१ दिन का उपवास किया था, और उसका अनुभव उन्होने इस प्रकार लिखा था—

मुझे आरंभ मे ही मेरे दूसरे अधिक दिनो के उपवास के समय जो हानिकारक बात हुई थी, उसका प्रथम उल्लेख कर देना चाहिए। यह उपवास १९१४ मे दक्षिण-आफ्रिका मे किया था, और यह १४ दिन का उपवास था। उपवास खुलने के बाद दूसरे ही दिन यह जानकर कि उससे मेरी कुछ भी हानि न होगी, मैंने तीन मील तक चलने का बडा परिश्रम किया। दूसरे या तीसरे ही दिन टॉग की मास-हीन पिडलियों मे बडा दर्द होने लगा। उसका कारण न समझकर जैसे ही यह दर्द बंद हुआ कि मैने फिर चलना शुरू किया। इसी हालत में मैं दक्षिण-आफ्रिका छोडकर विलायत गया, और वहॉ मुझे डॉ० जीवराम मेहता ने देखा। उन्होने मुझे यह चेतावनी दी कि यदि तुम इसी प्रकार चलना कायम रक्खोगे, तो ज़िदगी-भर के लिये पगु बन जाओगे। तुम्हें कम-से-कम १५ दिन लेटे रहना चाहिए, और आराम लेना चाहिए, लेकिन यह चेतावनी बहुत देर के बाद मिली, और मेरी तदुरुस्ती बिगड गई। इसके पहले मेरा स्वास्थ्य बडा अच्छा था। मैं १० मील तक बिना थकावट के जा सकता था। उन दिनो मे २० मील चलना तो मेरे लिये कुछ बात न थी। अपने अज्ञान के कारण मैने अपने शरीर को जो अधिक श्रम पहुँचाया, उसी के कारण मुझे पसली के दर्द का रोग हुआ था। उसने मुझे बडी पीड़ा पहुँचाई, और मेरे स्वास्थ्य को जो पहले अच्छा था, बिगाड दिया। मेरे जीवन में मेरे ऊपर यह किसी बडे रोग का पहला ही आक्रमण था। इतना मूल्य देकर मुझे जो अनुभव हुआ, उससे मैंने यह सीखा कि उपवास के दिनो में शरीर को संपूर्ण आराम देना चाहिए, और उपवास के बाद भी उपवास के दिनो के प्रमाण में कुछ दिन आराम लेना अत्यत आवश्यक है। यदि इतने से सादे नियम का ही यथायोग्य पालन किया गया, तो फिर किसी दूसरे बुरे परिणाम की आशका रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। बेशक, मेरा यह विश्वास है कि नियमित तौर पर किए गए उपवास से शरीर को लाभ ही होता है। उपवास के दिनो मे शरीर में से बहुत कुछ अशुद्धियॉ निकल जाती हैं, गत वर्ष उपवास के दिनो मे और इस समय भी, पहले के उपवासो के नियम के विरुद्ध, मैं नमक और सोडा डाल कर पानी पीता था। उपवास के दिनो मे पानी के प्रति मुझे अरुचि हो गई थी। नमक और सोडा डालने ही से मैं कुछ पी सकता था। बहुत-सा पानी पीने से पेट साफ रहता है, और मुँह मे नमी रहती है। तीन छटॉक या पाव-भर पानी मे २ रत्ती नमक और उतना ही

सोडा डाला जाता था, और मैं ६-८ दफ़े में सवा सेर या डेढ़ सेर के क़रीब पानी पीता था। मैं हमेशा 'एनीमा' भी लेता था। करीब ३/४ पौंड पानी, उसमें १६ रत्ती नमक और उतना ही सोडा डालकर लेता होऊँगा, पानी गरम ही होता था। मुझे हमेशा बिस्तरे में ही कपड़ा गीला करके स्नान भी कराया जाता था। गत वर्ष के और इस वर्ष के उपवासों के दिनों में मुझे रात्रि में और कुछ दिन में भी काफी निद्रा मिली थी। आख़िरी उपवास के समय तो मैंने प्रथम तीन दिनों में क़रीब-क़रीब सुबह चार बजे से लेकर शाम के आठ बजे तक काम किया था, और उस समय जिसके कारण उपवास करने पड़े थे, उस पर बहस होती रही, और मैंने अपना पत्र-व्यवहार और संपादन कार्य भी किया। चौथे दिन सिर में बड़ा भारी दर्द शुरू हो गया, और श्रम असह्य हो उठा। चौथे दिन दोपहर को मैंने तमाम काम बंद कर दिया। दूसरे ही दिन से मुझे अच्छा मालूम होने लगा। थकावट दूर हो गई, और सिर का दर्द भी क़रीब-करीब बंद हो गया था। छठे दिन मैं और भी ताज़ा मालूम होने लगा था। और सातवें दिन तो मैं ऐसा ताज़ा और शक्तिमान मालूम होता था कि मैं उस दिन उपवास-संबंधी अपना लेख भी लिख सका था।

मुझे यह ख़याल नहीं कि मुझे उपवास के दिनों में भूख का दुःख मालूम हुआ हो। उपवास खोलने के समय मुझे कोई जल्दी न थी। मुझे जिस समय उपवास खोलना चाहिए था, उससे आध घंटा विलंब करके ही मैंने उपवास खोला था। उपवास के दिनों में कातने के संबंध में भी कोई कठिनाई नहीं मालूम हुई। मैं तकिया लगाकर रोजाना कोई आध घंटे से भी ज्यादा बैठ सकता था, और अपने मामूली वेग के साथ कात भी सकता था। रोज़ाना की तीन समय की आश्रम की प्रार्थना में जाना भी मुझे न छोड़ना पड़ा था। आख़िरी चार दिन तो मुझे खटिया में ले जाना पड़ा था। प्रयत्न करने पर मैं वहाँ बैठ भी सकता था, लेकिन मैंने उस समय अपनी शक्ति की रक्षा करना ही योग्य समझा। मुझे कुछ अधिक शारीरिक कष्ट भोगना पड़ा हो, यह ख़याल नहीं होता है। सिर्फ़ मुझे एक ही कष्ट की बात याद है। बार-बार जी मिचला जाता था, लेकिन अक्सर पानी के घूँट लेने पर आराम हो जाता था। नारंगी और अंगूर का रस, कुल तीन छटाँक के करीब, लेकर मैंने उपवास खोला था। मैंने नारंगी भी चूसी थी। दो घंटे बाद फिर मैंने यही किया, और उसमें १० अंगूर और मिला दिए थे। अंगूर उसके छिलके को निकालकर धीरे-धीरे चूस लिए गए थे। फिर कुछ देर के बाद 'एनीमा' लेने के बाद उस दिन मैंने बकरी का दूध उसमें एक छटाँक पानी मिलाकर पिया था, और उसके बाद नारंगी और अंगूर खाए थे। पानी और दूध मिलाकर औटा लिया गया था। शाम को मैंने उतना ही दूध पानी मिलाकर फिर लिया था, और उसके साथ फल भी खाए थे। दूसरे दिन दूध बढ़ाकर ६ छटाँक कर दिया था, और उसमें पानी तो हमेशा ही मिलाया जाता था। इस प्रकार हमेशा तीन-तीन छटाँक दूध बढ़ाता गया, यहाँ तक कि अब दूध डेढ़ सेर तक लेने लगा हूँ। पानी तो अब भी उसमें मिलाया जाता है, लेकिन अब

दूध की हरएक ख़ुराक में केवल आधी छटाँक पानी ही मिलाया जाता है। कोई डेढ़ दिन तक मैंने केवल ख़ालिस दूध ही पिया था, लेकिन उससे कुछ भारीपन मालूम होने लगा, और उसका कारण ख़ालिस दूध को ही समझकर दूध में पानी मिलाना फिर आरंभ किया है।

उपवास खोलने के बाद आज यह बारहवाँ दिन है, जब कि मैं यह लिख रहा हूँ। अब तक मैंने कोई भी वज़नदार ख़ुराक नहीं ली है। अब भी फल का कुछ हिस्सा तो उसके रस के रूप में ही लेता हूँ, और आख़िरी तीन दिनों में तो मैंने अनार, चीकू और अरंड-ककड़ी लेना भी शुरू किया है। अधिक-से-अधिक दूध जो मैंने अब तक लिया है, २ सेर के करीब है। साधारण तौर पर १॥ सेर दूध पीता हूँ, और कभी-कभी मैं उसके साथ थोड़ी-सी डबल रोटी या हलकी-सी चपाती भी खाता हूँ। लेकिन महीने-के-महीने मैं दूध और फल खाकर ही रहता हूँ, और अपने को हमेशा स्वस्थ हालत में रखता हूँ।

जेल से निकलने के बाद अधिक-से-अधिक १७२ पौंड तक मेरा वज़न पहुँच गया था। इन सात दिनों के उपवास में कोई ९ पौंड वजन कम हो गया था। अब मैंने खोया हुआ तमाम वज़न फिर प्राप्त कर लिया है, और अब मेरा वज़न १०२ पौंड से भी कुछ अधिक है। अब दो दिन से तो मैं सुबह-शाम नियमित कसरत भी कर रहा हूँ, और उसमें मुझे कुछ भी श्रम नहीं मालूम होता है। समान ज़मीन पर चलने में भी मुझे कोई कठिनाई नहीं मालूम होती है। लेकिन अब भी सीढ़ियाँ चढ़ने या उतरने में कुछ श्रम मालूम होता है। दस्त भी ठीक-ठीक साफ होते हैं, और रात को मैं जब चाहता हूँ, निद्रा ले सकता हूँ।

मेरी राय में तो उन २१ दिनों के उपवास के कारण या इन सात दिनों के आख़िरी उपवास के कारण मेरे शरीर को कुछ भी हानि नहीं पहुँची है। इन सात दिनों में वज़न का घट जाना कुछ भयप्रद और चिंता-जनक अवश्य था। लेकिन प्रारभ के साढ़े तीन दिनों में मैंने जो बड़ा श्रम किया था, वही उसका कारण था। थोड़ा और आराम कर लेने पर मैं अपनी मूल-शक्ति जिससे कि मैंने उपवास का प्रारभ किया था, फिर प्राप्त कर लूँगा, और शायद कच्छ में मैंने जो शक्ति और वज़न गँवाया था, वह भी विना कठिनाई के प्राप्त कर सकूँगा।

एक औसत दर्जे के आदमी की दृष्टि से और केवल शरीर की दृष्टि से मैं जो लोग किसी भी कारण से उपवास करना चाहें, उनके लिये कुछ नियम यहाँ लिखता हूँ—

१—उपवास के दिनों में पूर्ण विश्राम करना चाहिए।

२—नमक और सोडा डालकर या विना सोडा या नमक के ही ठंडा पानी जितना भी हो सके, थोड़ा-थोड़ा करके पियो (पानी खौलाकर ठंडा किया हुआ होना चाहिए)। नमक और सोडा से नहीं डरना चाहिए। क्योंकि बहुत-से प्रकार के पानी में स्वतंत्र नमक रहता है।

३—रोज़ाना गरम पानी के कपड़े से शरीर साफ करना चाहिए।

४—उपवास के दिनों में रोज़ाना नियमित रूप से 'एनीमा' लेना चाहिए। रोज़ाना जो मल निकलेगा, उसे देखकर तुम्हें बड़ा आश्चर्य होगा।

५—जितना भी हो सके खुली हवा में निद्रा लो।

६—सुवह धूप में वैठो। धूप और हवा में वैठना भी उतना ही शुद्धि का कारण है, जितना कि स्नान करना।

७—उपवास के सिवा और सब वातों का विचार करो।

८—किसी भी उद्देश्य से उपवास क्यों न किए गए, हों, लेकिन इन अमूल्य दिनों में अपने रचयिता का, उसके साथ के अपने संबंध का और उसकी दूसरी सृष्टि का ही विचार करना चाहिए। इससे तुम्हें ऐसी-ऐसी वातें मालूम होगी, जिनका तुम्हें ख़याल तक न होगा।

इस डॉक्टर मित्र से माफी माँगते हुए, लेकिन अपने अनुभवों का और अपने से दूसरे लोगों के अनुभवों का संपूर्ण ख़याल कराके मैं विना किसी हिचपिचाहट के यह कहूँगा कि यदि निम्न-लिखित शिकायतें हों, तो अवश्य ही उपवास किया जाय—

(१) कब्ज़ियत का होना, (२) शरीर पीला पड जाना, (३) वुख़ार का मालूम होना, (४) वदहज़मी का होना, (५) सिर मे दर्द होना, (६) वाय का दर्द होना, (७) जोडो में दर्द होना, (८) वेचैनी मालूम होना, (९) उदासीनपन का होना, (१०) अतिशय आनद का होना।

यदि इन अवसरों पर उपवास किए गए, तो डॉक्टर की या कोई दूसरी पेटेंट दवाइयाँ खाने की जरूरत न रहेगी।

जब भूख लगे, और खाने के लिये पूरी मिहनत की गई हो, तभी खाना चाहिए।

विचारणीय वातें

हम पीछे कह आए है कि मनुष्य आवश्यकता से वहुत अधिक भोजन कर लेता है। पाश्चात्य सभ्य देशों में प्रत्येक ३ घटे मे कुछ भोजन करने की रीति है। भारतवासी भी तीन वार अवश्य खाते हैं, पर प्राचीन काल में इतना अधिक भोजन नहीं किया जाता था। वे लोग वहुत कम कंद-मूल-फल खाते थे, और पूर्ण नीरोग और दीर्घजीवी होते थे। अब भी नागरिकों की अपेक्षा देहाती लोग कम भोजन करते है, और वे अधिक हृष्ट-पुष्ट रहते हैं। प्राय लोग समय पर भूख लगे, या नहीं, पर खा लेते हैं, यह सब पेट के साथ अत्याचार है। स्वास्थ्य और दीर्घजीवन के लिये प्रत्येक व्यक्ति को यह उचित है कि वह अल्पाहार करने की आदत डाले। यदि लोग केवल सध्या-समय एक वार ही भोजन करने की आदत डालें, तो यह भी अच्छा है। वच्चो को आरंभ ही मे कम-से-कम भोजन की आदत डालना चाहिए।

प्रात काल का जल-पान एक आदत है, जो आसानी से छोडी जा सकती है। और इससे वहुत-से पुराने रोग दूर हो सकते है। यह भ्रम ही है कि वारवार खाते रहने से शरीर नीरोग रहता है। परंतु भोजन का सयम जीवन और स्वास्थ्य की कुजी है, शरीर को कॉटे में रखने के लिये सीमित और स्वाभाविक भोजन करना ही चाहिए।

प्रकरण ३

दुग्ध-चिकित्सा

दूध मनुष्य का स्वाभाविक भोजन है, और उसमें जहाँ शरीर को सर्वथा पोषण करने की शक्ति है, वहाँ रोगो के बीज को निर्मूल करने की भी शक्ति है।

यदि तुम्हारा शरीर दुर्बल हो गया हो, अन्न पचता न हो, शरीर में शुद्ध रक्त न बनता हो, तो दूध ही तुम्हें आरोग्य प्रदान कर सकता है। बहुत लोग समझते हैं कि बड़ी आयु के लोग दूध पर सर्वथा नहीं रह सकते। यह भ्रम है। योरप में बल्गेरिया-निवासी अधिक दीर्घजीवी होते हैं। और इसका कारण यही है कि वे दूध का अधिक प्रयोग करते हैं। बहुत लोगो का ख़याल है कि दूध उन्हें मुआफिक नहीं होता। पेट में हवा पैदा करता है। पर उसका कारण वास्तव में कुछ और ही है। दूध में यूरिक एसिड बिलकुल नहीं होता। अतः यूरिक एसिडवाले लोगों के लिये दूध बहुत उत्तम वस्तु है। यदि दूध पेट में जाकर उलटी हो जाय, तो समझना चाहिए कि रोगी के शरीर में अम्ल की कमी हो गई है। पहले उसे पैदा करें, तब दूध सेवन करें।

दूध की चिकित्सा शुरू करनेवालो को इन बातो का ध्यान रखना चाहिए—

१—वे दूध के अतिरिक्त और कुछ भी न खायें। पूरा-पूरा विश्राम किया जाय। चित्त को प्रसन्न रक्खा जाय।

२—दूध-चिकित्सा प्रारंभ करने के पूर्व २-४ दिन उपवास करना आवश्यक है। उपवास-काल में ५-७ सेर पानी नित्य पीना चाहिए।

३—दूध की मात्रा रोगी के बलाबल पर निर्भर है। प्रारंभ में बहुत कम दूध लेना चाहिए। धीरे-धीरे यह दूध २०-२५ सेर तक नित्य पिया जा सकता है।

४—दूध गाय का लेना चाहिए। वह ताज़ा हो, और स्वच्छ पात्र में १-२ उफान उबाला जाय, फिर चौड़े मुँह की बोतल में भरकर रक्खा जाय। यदि गर्मी हो, तो बोतल को जल के पात्र मे रख दो, और ऊपर बारीक गीला वस्त्र ढक दो। यह दूध १-१ घंटे में १-१ छटाक से प्रारंभ करो। दूध चूसकर धीरे-धीरे पीना चाहिए या चम्मच से लेना चाहिए। मुँह में डालकर दूध को थोड़ी देर मुख मे रोको, और तब उसे उतारो। धीरे-धीरे दूध की मात्रा बढ़ने दो, यह दूध ४ बजे तक काम मे लाकर इसके बाद ६ बजे ताज़ा दूध लेना चाहिए। ८ बजे के बाद फिर दूध नहीं लेना चाहिए। दूध में मीठा नहीं मिलाना चाहिए।

५—एक सप्ताह तक दूध का परिमाण धीमे वेग से बढ़ाना चाहिए। अधिक-से-अधिक

२॥ सेर दूध प्रतिदिन पीना चाहिए । फिर परिमाण बढ़ाते जाना चाहिए। तीसरे सप्ताह ८ सेर दूध पिया जा सकता है । पर यह ध्यान रहे कि दूध पीने का समय बिलकुल नियमित रहना चाहिए।

६—चौथे सप्ताह शरीर में व्यायाम द्वारा दूध पचाने की शक्ति बढ़ानी चाहिए। और दूध का परिमाण १२ सेर तक ले आना चाहिए । यदि सबल शरीर हो, तो चौथे-पाँचवे सप्ताह १५ सेर तक दूध बढ़ जाता है।

७—ताज़ा दूध यदि तीन बार प्राप्त हो सके, तो अत्युत्तम है। यह प्रयोग २ से ४ मास तक किया जा सकता है। संग्रहणी, मंदाग्नि और पाडु-रोग की यह परीक्षित चिकित्सा है। प्रतिदिन १ से ४ पौंड तक वज़न बढ़ता है।

८—उपवास चिकित्सा के बाद यदि कुछ मास दूध पर रहा जाय, तो इसका परिणाम अत्यंत आश्चर्य-जनक होगा।

९—जिनके पेट में दूध वायु पैदा करे, गुड-गुड शब्द हो, उन्हें प्रातःकाल प्रथम थोड़े पानी में कागज़ी नीबू निचोड़कर पीना या दो संतरे खाना चाहिए। इसके १ घंटे बाद दूध पीना चाहिए। जिन्हें दूध पर अरुचि हो या उल्टी आती हो, वे भी यही करें ।

१०—यदि दूध की वृद्धि न हो, तो यह करना चाहिए कि १० बजे तक दूध पीकर १० से २ बजे तक छाछ (ताज़ा) पी जाय। इससे आशातीत लाभ होगा।

११—शुरू मे संध्या-समय यदि किसी का पेट खूब तना हुआ प्रतीत हो, तो भय न करना चाहिए। धीरे-धीरे यह शिकायत कम होती जायगी। यदि क़ब्ज़ मालूम हो, तो मात्रा कुछ बढ़ा देनी चाहिए। दो-चार दिन में ठीक हो जायगा। आवश्यकता होने पर एनीमा ले सकते हैं। यदि क़ब्ज़ निरंतर रहे, तो बीज-सहित काला मुनक्का कुछ खाया जा सकता है।

१२—यदि दस्त आने लगें, तो गर्म पानी का एनीमा दो और मात्रा बहुत कम कर दो। १ या दो सेब खाने को दो।

१३—(१) अत्यंत ठंडा दूध कभी न पियो। (२) वह शरीर की गर्मी के समान गर्म हो। (३) अधिक न उबाला जाय। (४) एकदम न पी जाओ। छोटे-छोटे घूँट करके पियो। जल को त्याग दो, और कुछ ख़ुराक मत लो। धीरज और संयम से काम लो।

प्रकरण ४

अन्य चिकित्सा

मिट्टी की चिकित्सा

मिट्टी को सब जानते है, इसलिये उसका विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। केवल अपना शरीर ही नहीं, परंतु इस समस्त स्थूल जगत् की उत्पत्ति पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँच तत्वों से है।

जहाँ तक तत्व उचित परिमाण में, शरीर की उचित स्थिति में व्याप्त है, वहा तक ही आरोग्यता रहती है। इनमें एक भी तत्व विकृत होने से वह तत्व रोगी हो जाता है। इसलिये उसकी शांति के लिये, उसको प्रकृत अवस्था मे लाने के लिये प्रकृति के अक्षय कोष में से मूल-तत्वो की सहायता लेना यह आरोग्य-रक्षा का उत्तम-से-उत्तम मार्ग और उत्तम-से-उत्तम पद्धति है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और विद्युत्-स्वरूप आकाश, पाँच तत्व रोग-निवारण के लिये इतने उपयोगी है कि जिनका विवेक-पूर्वक उपयोग किया जाय, तो किसी प्रकार के रोग को दूर करने के लिये कड़ुई, खट्टी बेस्वाद, विषमय और दुर्गंध-युक्त सडी-गली औषधियो को खाने की आफत न उठानी पडे। रोग-निवारण के लिये पाँचो तत्वो के उपयोग की आवश्यकता है, तो भी प्रत्येक वस्तु का जन्म पृथ्वी-तत्व मे से ही होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति के शरीर मे पृथ्वी तत्व अर्थात् मिट्टी का भाग ही विशेष परिमाण मे रमा हुआ है। इसलिये बहुत-से रोगों की उत्पत्ति पृथ्वी-तत्व मे विक्रिया होने से ही होती है। और इसी से उनका निवारण भी हो सकता है।

रोग-निवारण के कार्य मे पृथ्वी-तत्व जिस कदर उपयोगी है, प्रकृति ने उसे मिट्टी के स्वरूप मे अनंत परिमाण मे निर्माण कर रक्खा है। सर्वशक्तिमान परमात्मा आजकल के डॉक्टरो, वैद्यो और हकीमों-जैसा लोभी और स्वार्थी नहीं है। परंतु समस्त विश्व का चिर कल्याण हो, ऐसी मंगल कामना-युक्त है। जिससे जगत् का कल्याण हो, वैसी कोई भी वस्तु गुप्त न रखकर सारे संसार के सम्मुख उसने रख दी है। उसी प्रकार यह मिट्टी भी घर बैठे ही आसानी से मिल सकती है। परंतु हमारी बुद्धि इतनी मलिन हो गई है कि विज्ञापन-संसार के मन-मोहक, भाँति-भाँति के विज्ञापन देखकर, प्रकृति की इस अमूल्य वस्तु को भूले हुए हैं। और बाज़ारो मे से सुंदर रंगीन छपे हुए लेबिलवाली सुंदर शीशियो में भरी हुई विषैली अनेक प्रकार की पेटेंट औषधियाँ लाकर आशा और प्रेम से पान करके तन, मन, धन और जीवन को नष्ट करते हैं।

आजकल हम जहाँ दिन-प्रति-दिन नई-नई औषधियों के मोह में पड़ते जाते हैं, वहाँ योरप, अमेरिका आदि प्रदेशों में लोग जहाँ तक बन सकता है, वहाँ तक औषधियों को तिलांजलि देते जा रहे हैं, और प्रकृति की शरण मे आते हैं। और जो अनुभव प्राप्त होता है, उस पर ग्रंथ-पर-ग्रंथ लिखते चले जाते हैं। जिसके फल-स्वरूप आजकल वहाँ (Hydropathy) अथवा जल-चिकित्सा-पद्धति, सूर्य-स्नान (Sun Bath) या अग्नि की गरमी से रोगों को आराम करने की रीति आदि अनेक पद्धतियाँ प्रचलित होती जा रही हैं। कुल औषधियों की उत्पत्ति मिट्टी से ही होती है। और उससे भिन्न-भिन्न औषधियों में जो भिन्न गुण-धर्म होते हैं, वे सब मिट्टी में रमे हुए होते हैं। यह गुण हरएक स्थल की मिट्टी मे एक-से नहीं होते, प्रत्युत अलग-अलग स्थल की मिट्टी में न्यूनाधिक होते हैं। इसी कारण मिट्टी का रंग भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। काले, पीले, सफ़ेद, मैले इत्यादि भिन्न रंगों की मिट्टी होती है। और उसमें भिन्न-भिन्न तत्त्व, भिन्न-भिन्न परिमाण में, रमे हुए होते हैं। रंग के कारण उसके गुण भी भिन्न-भिन्न होते हैं। ये गुण अनंत हैं, हम उनमें से कुछ का उल्लेख करेंगे।

हैज़ा—यह बात मानी जा चुकी है कि हैज़ा दूषित जल पीने अथवा सड़ा-गला अन्न खाने से ही होता है। इसका कारण यह है कि इस रोग को उत्पन्न करनेवाले एक प्रकार के विषैले जंतु, जो 'कोमावेसीलस' (Commabacillus) कहलाते हैं, होते हैं। वे अस्वच्छ ख़ुराक या जल मे उत्पन्न होकर शरीर मे प्रवेश करते हैं। काली मिट्टी में इन जंतुओं को नष्ट करने की अद्भुत शक्ति है।

इस प्रकार मिट्टी में जंतुघ्न और विषहर गुण होने से यह जिस प्रकार हैज़े के रोग में लाभकारी है, उसी प्रकार सर्प-दंश के विष को नष्ट करने में बहुत ही लाभदायक है। इस लेख के संबंध में जर्मनी के एक प्रसिद्ध डॉक्टर ने कहा है कि एक ग्रामीण युवती लड़की अस्पताल में लाई गई थी। परंतु वहाँ पहुँचते-पहुँचते उसके पैर बहुत सूज गए थे, और वह इतनी बेसुध हो गई थी कि अब उसके लिये कोई उत्तम व्यवस्था होना बिलकुल असंभव हो गया था। वहाँ के डॉक्टर के शब्दों से निराश होकर उसका पिता लड़की को अपने घर ले आया। इस समय जब कि वह मरणासन्नावस्था में पड़ी थी, उसके पिता को एक उपचार सूझा, जिसमें उसके बुज़ुर्गों ने कभी एक कन्या को ऐसी ही अवस्था में बचाया था। उसी के अनुसार उसने अपने आँगन में एक गढ़ा खोदकर लड़की को नंगी करके उस गढ़े में लिटा दिया, और गर्दन को छोड़कर बाकी तमाम शरीर पर मिट्टी डाल दी। इस बात की ख़बर जब पुलिस को लगी, तो उसने आकर लड़की के पिता से लड़की को गढ़े से निकालने को कहा, पर लड़की के पिता ने इनकार कर दिया, और उसके साथ-साथ सारा गाँव हथियार बंद होकर सामने खड़ा हो गया। मामला बेढब देख कर पुलिस चुपचाप चली गई। चौबीस घंटे बाद जब उस लड़की को उस गढ़े से निकाला, तब वह बिलकुल अच्छी हो गई थी।

साँप का ज़हर उतारने का मिट्टी में कितना असर है। यह बात ऊपर के उदाहरण से अच्छी तरह जानी जा सकती है। अच्छी चिकित्सा न होने से सर्प-दंश से लाखों मनुष्य देश में प्रतिवर्ष मरते है। यदि इस उपाय की योजना की जाय, तो कितने प्राणों की रक्षा हो। किसी भी प्राणी को यदि साँप काट ले, तो ऊपर लिखी क्रिया करने की हम राय देते हैं। इस लड़की को २४ घंटे तक ज़मीन में दबा रखने का कारण यह था कि उसके शरीर मे, रग-रग में, विष व्याप गया था। परंतु तुरंत काटा हुआ रोगी एक-दो घंटे मे ही ठीक हो सकता है। सर्प-दंश के अतिरिक्त यदि किसी ने विष खा लिया हो अथवा बिजली गिरने से मुर्दे के समान हो गया हो, तो ऐसे प्रसगों पर गर्दन का भाग बाहर रखकर तमाम शरीर को मिट्टी में दाब देना चाहिए। चौबीस घंटे में रोगी तंदुरुस्त हो जायगा। हैज़ा और मोती-झरे के ज्वर के रोगियों के लिये भी यह अक्सीर उपाय है। परंतु यह ध्यान रहे कि जिस जमीन में रोगी को दबाया जाय, वह गरम या सूखी न हो, बल्कि गीली और ठंडी होनी चाहिए। ततैए, मधु-मक्खी आदि थोडे ज़हरवालों के डंक लगने पर तमाम शरीर को मिट्टी में दाबने की ज़रूरत नही, बल्कि जिस स्थान पर डंक लगा हो, उसी स्थान को ज़मीन में दबाना चाहिए। या उस पर गीली मिट्टी की पुल्टिस बाँधनी चाहिए।

सर्प दंश की तरह कुत्ते के काटने पर भी यह उपचार बहुत लाभदायक है। इसके लिये, यदि तुरत का काटा हुआ हो तो, दंशित भाग को ही मिट्टी में दबाना काफ़ी होगा। यदि काटे हुए ज्यादा देर हो गई हो, तो गर्दन का भाग छोडकर सारा शरीर मिट्टी मे दाब देना चाहिए।

कुत्ते के काटे ज़हर को नष्ट करने में इस प्रयोग की प्रामाणिकता के विषय में एक डॉक्टर लिखते हैं—

"The skill of Professor Paster is entirely uncertain and unreliable, but the skill of the great Master, Nature never fails us"

"कुत्ते के विषय में प्रोफ़ेसर पेस्टर का निकाला हुआ इलाज अनिश्चित और अविश्वास रखने योग्य है। परतु प्रकृति का यह इलाज (मिट्टी से बना) बिलकुल विश्वस्त और आशा-जनक है।" शरीर पर कुष्ठ के दाग, हरएक प्रकार के फोड़े, फुंसी, फफोले आदि चमड़ी के कुल रोगो के लिये गीली मिट्टी एक बहुत ही उत्तम प्राकृतिक दवा है। क्योंकि शरीर की मिट्टी सड जाने से ही उसमें कुष्ठ आदि रोग हो जाते हैं। और इसीलिये सडी मिट्टी पर नई मिट्टी पडने से घाव अच्छे हो जाते हैं। चमडी के रोग होने का मूल-कारण यह है कि रक्त में अनेक प्रकार के दुर्गंध-युक्त विषैले तत्त्व सचित हो जाते हैं। वे गीली मिट्टी के लेप से अच्छे हो जाते हैं। क्योंकि अदर के भागो में इकट्ठे हुए दोषो को बाहर निकालने में मिट्टी अद्भुत शक्ति रखती है।

मिट्टी में जिस प्रकार दुर्गंधनाशक विषहर और जंतुघ्न शक्ति है, उसी प्रकार कई तरह के रोगों को उत्पन्न करनेवाले विजातीय द्रव्यों को, जो शरीर में इकट्ठा होकर गरमी पैदा कर देते है, शांत करने का गुण भी इसमे है।

गरमी की सूजन, मस्तिष्क और नेत्रो का विकार, प्रदर और प्रमेह आदि रोगों में इसका उपयोग सफलता-पूर्वक किया जा सकता है।

इन कामो के लिये अधिकतर गेरू या ईंट-जैसी लाल मिट्टी काम मे लाई जाती है। इसके साथ ऐसे ही गुणोंवाली दूसरी वस्तुएँ भी मिलाकर दी जाती है।

यदि ध्यान से देखा जाय, तो पशुओ को मिट्टी की इस अपूर्व शक्ति का स्वाभाविक ही ज्ञान होता है। हाथी के जब कभी घाव हो जाता है, तब वह अपने थूक से मिट्टी को नरम करके उस पर लगाता है। संपूर्ण पशु-पक्षी मिट्टी से बहुत-से रोगो को आराम करते है।

गीली मिट्टी की पुल्टिस बाँधने से बहुत-से ऐसे रोग आराम हो जाते हैं, जिन्हें चीरने-फारने की जोखिम सहनी चाहिए। सब प्रकार के चमडी के रोग, हथियारो के घाव, बाण और गोली के घाव, जले हुए घाव, भयंकर सडे हुए फोडे, ज़हरी जानवरो के काटे भाग, सब प्रकार के रक्त-विकार, नासूर, फफोले, गाँठ, कोढ़, हड्डी का टूटना, बादी का दर्द आदि संपूर्ण दर्दों मे मिट्टी बहुमूल्य औषध साबित हुई है।

मिट्टी की पुल्टिस बनाने की रीति यह है कि खादी या चिकनी जैसी भी मिट्टी मिल सके, गीली करके घाव पर रोटी-सी बनाकर रख देना और गहरा घाव हो, तो घाव मे भर देना तथा साफ़ कपडे की पुल्टिस बाँध देना चाहिए। कुछ डॉक्टरों का मत है कि घाव और मिट्टी के बीच मे कपडा रख देना चाहिए पर हमें यह पसद नहीं। इसकी ज़रूरत भी नहीं। हाँ, मिट्टी स्वच्छ और गदगी से रहित होनी चाहिए। यह मिट्टी दिन में दो बार बदलनी चाहिए।

भारत मे बहुत-सी ऐसी दंतकथाएँ प्रचलित हैं कि शिव-पार्वती जमीन, राख या मिट्टी किसी को छुआकर रोगी का रोग दूर कर सकते थे। आजकल भी साधुओ की भभूत, धूनी की राख के द्वारा अनेक प्रकार के विष, सूजन और दर्द दूर किए जाते है। सिर्फ़ नाम मंत्रो का है, पर काम राख का है।

पेट, छाती, आँख, गला, गाल, कनपटी, मूत्राशय, जिगर और पीठ आदि भागो पर जहाँ दर्द और सूजन हो, वहाँ गीली मिट्टी (जो बह न जाय) बाँधकर ऊपर पट्टी बाँध देनी चाहिए। मिट्टी ठीक दर्द की जगह पर हो। यदि शरीर में गर्मी कम हो, तो ऊपर ऊन की पट्टी भी लपेटी जा सकती है।

पेड़ और पेट शरीर के सब रोगों का मूल आधार है। गर्मी की किसी भी प्रकार की बीमारी होने पर इन स्थानो पर मिट्टी की पुल्टिस बाँधने से लाभ होता है। रोग और रोगी की स्थिति देखकर २-४ घंटे तक मिट्टी रहने दी जा सकती है। मिट्टी यदि जल्दी गर्म हो जाय, तो बदली जा सकती है।

दाँत के दर्द के लिये बाहर दुखती जगह पर गाल या जबड़े पर मिट्टी की पट्टी बाँध देनी चाहिए। सिर के दर्द पर गर्दन और गले पर मिट्टी बाँधनी चाहिए।

गठिया और लकवे के रोगी को कुछ गर्म बालू में गर्दन तक दबा देने से बड़ा लाभ होता है।

साधारण चिकनी मिट्टी से शरीर को कई बार रगड़कर धोने से चमड़ी नरम, निर्मल और सुंदर एवं रोग-रहित हो जाती है। इस काम के लिये मुलतानी मिट्टी बहुत लाभदायक है। इसका उपयोग बढ़िया-से-बढ़िया साबुन से भी अधिक लाभदायक है। ख़ासकर स्त्रियों को तो सिर के बालों को इसी मिट्टी से सदा धोना चाहिए। चार पदार्थों से बाल कमज़ोर और सफ़ेद हो जाते हैं।

कल्कि-पुराण में लिखा है —

"मिट्टी से लिंग को दो बार, नाभि से ऊपर-नीचे तीन बार, शरीर को ६ बार, कमर को तीन बार, हाथों को ७ बार शुद्ध करना चाहिए।"

बारीक चलनी से छानी हुई मिट्टी ठंडे पानी में भिगोकर और उसे आटे की तरह गूँदकर मलहम-सा नरम बना लेना चाहिए। फिर यथावत् बाँधकर सेफ्टीपिन या डोरी से सिरा ठीक-ठीक बाँध देना चाहिए।

आँख और योनि पर बाँधते बार इस बात की बिलकुल परवा न करनी चाहिए कि मिट्टी अंग के भीतर जाकर हानि करेगी। पट्टी खोलने पर सूखी मिट्टी के कुछ कण किसी अंग या घाव में लगे रहें और छुटाने में तकलीफ हो, तो लगा रहने दो, कुछ हानि नहीं।

अध्याहार-चिकित्सा

कुछ रोग ऐसे हैं, जिनका मूल-कारण मन है, और इसीलिये प्रायः वैद्य, डॉक्टर उन्हें नहीं आराम कर सकते। इसके लिये पाश्चात्य विद्वान् मानसोपचार करने लगे हैं। अमेरिका में तो यह चिकित्सा का अंग मान लिया गया है। प्राचीन भारत में भी इसका प्रचार था।

ऐसे रोगियों को प्रायः प्रकट में कोई रोग नहीं प्रतीत होता, पर वे अपना जीवन भार-स्वरूप समझने लगते हैं। शरीर में बेचैनी बनी रहती है। एक प्रकार की चिंता सदा बनी रहती है, उससे सिर-दर्द, निद्रा-नाश, मंदाग्नि, अतिसार, नपुंसकता, क़ब्ज, हृद्रोग आदि भी उत्पन्न हो जाते हैं। ये रोग वर्षों चला करते हैं, और जब तक मूल-कारण ज्ञात न हो, आराम नहीं हो सकते। ऐसे रोगियों की अध्यात्म-चिकित्सा होनी चाहिए।

इस चिकित्सा का प्रथम काम तो यह है कि रोगी की बात ख़ूब ध्यान से सुने, जिससे उसे सांत्वना मिले।

कुछ ऐसी चिंताएँ हैं, जिनसे रोगी दूर नहीं हो सकता। जैसे किसी स्त्री से प्रेम हो, और विवाह न हो सके, नौकरी छूटने या व्यापार में हानि का भय हो, या किसी के मरने का

कारण शोक हो, इससे मन अशांत रहता है। यदि रोगी ने कोई गुप्त पाप किया हो, तो भी वह बहुत बेचैन रहेगा। ऐसी दशा में बुद्धिमानी और कौशल से उसके मन का गुप्त भेद जानकर उसे सांत्वना देना चाहिए।

प्राय हिस्टीरिया, अपतानक आदि रोगो के कारण मानसिक चिंताएँ हैं, उस मानसिक चिंता से यदि उसे मुक्त कर दिया गया, तो उसको उससे लाभ अवश्य होगा।

इस काम के लिये रोगी मे इच्छा-शक्ति का प्रादुर्भाव करना चाहिए। और उसके मन में जो आत्म-अविश्वास है, उसे धीरे-धीरे दूर करना चाहिए। रोगी को आराम देने के लिये मालिश, अंग-मर्दन, थपकी आदि का प्रयोग करना चाहिए, जिससे उसे खूब नींद आवे। और फिर उसे धीरे-धीरे आत्म-विश्वास और मनोबल का अभ्यास करावे। अध्यात्म-विषयक बातें करे, और जीवन-शक्ति की सूक्ष्म बातें धीरे-धीरे समझावे।

रोगी को छेड़ना-चिढाना या उससे दुखदाई बात की चर्चा करना न चाहिए। ऐसे रोगी आत्मघात का विचार किया करते हैं, और प्राय चमक उठते हैं। इसलिये उन्हें प्रसन्न रखना आवश्यक है।

यह विषय बहुत गहन और रूक्ष है, तथा बिना अच्छी तरह अध्ययन और अभ्यास के नहीं आता, इसलिये यहीं समाप्त करते हैं।

सहायक चिकित्सा (सेकने की विधि)—अनेक रीतियो से सेक करने से रोगी को बहुत लाभ होता है। सेकने के लिये मोटी फ़लालेन का टुकडा उत्तम है। कंबल का टुकडा भी ठीक है। हर हालत में सेकने का कपडा तीन फ़ीट लंबा-चौडा होना चाहिए। सेकने के लिये आधी बाल्टी उबलते पानी की ज़रूरत है। टीन की बाल्टी इस काम के लिये ठीक है। सेकने के लिये ३ टुकड़े कपडे के लेने चाहिए। एक को मेज़ या पलॅग पर फैलाओ। दूसरे दोनो टुकडो को तीन लपेटन मे तह करो, इस तरह तह किए गए कपडे के दोनो छोर पकडो, और उबलते पानी मे डुबो दो। जब .खूब भीग जाय, तो इसे ख़ूब निचोडो। इस भाँति कि दोनो छोरो को उलटी ओर से शीघ्रता पूर्वक मोडो, और बाल्टी के ऊपर खींचो। तब दोनो छोरो को फिर मोडो और प्रथम की भाँति खींचो। इस प्रकार कपडा निचुड जायगा, और हाथ भी न जलेगा। इस कपडे को तह किए हुए कपड़े मे लपेटकर रोगी अवयव पर सेको। त्वचा न जले, इसका ध्यान रक्खो। पानी जितना ही कपडे में रहेगा, उतना ही अधिक गर्म लगेगा।

रीढ के सेकने के लिये ६ या ८ इंच चौडा और इतना लंबा कपडा लेना चाहिए, जितना पूरी रीढ तक पहुँच सके। छाती, आमाशय, कलेजा व आँतो के लिये छोटे से भी काम चल जायगा। यदि सेकन गर्म हो तो १ सेकिंड के लिये उसे उठाओ, और तौलिए से स्थान पोछकर लगा दो। ठंडा होने पर फिर भिगोओ और निचोडो।

साधारणतया ३ या ४ मिनट मे सेकने का कपडा बदलना चाहिए। और १५ से २०

मिनट तक होना चाहिए। ज़रूरत होने पर ६० मिनट तक भी सेक किया जा सकता है, यदि हर सेकन के पीछे थोड़ी ठंडक पहुँचाई जाय, तो सेकने का अधिक गुण होगा। इसकी रीति यह है कि किसी पतले कपड़े जैसे रूमाल की दो तह करके उसे ठंडे पानी में भिगोकर निचोड़ो, और सेके हुए अवयव पर लगाओ। फिर शीघ्रता से उठाकर अंग को सुखा डालो, और तुरंत ही सेको।

पैर गर्म पानी में डालना—इस काम के लिये एक बेंदी लकड़ी की बाल्टी, टब या चिलमची का उपयोग किया जा सकता है। गर्म पानी में पैर रखने के समय पानी टखनों से कुछ ऊपर होना चाहिए। इसकी गर्मी प्रारंभ में १०४ डिगरी की होनी चाहिए।

पैर पानी में डुबोने पर और गर्म पानी सहता-सहता डालो। १०-१५ मिनट तक यह सेक होना चाहिए। जब तक पैर गर्म पानी में रहें, रोगी के माथे पर भीगा कपड़ा रक्खो और उसे बारबार बदलते रहो।

यदि १५-२० मिनट तक पानी को गर्म रक्खा जाय, तो इससे खूब पसीना आता है। यदि पसीना लाना आवश्यक हो, तो रोगी को कंबल उढ़ा देना चाहिए, और बीच-बीच में गर्म पानी पिलाते रहना चाहिए। सिर पर ठंडा कपड़ा रखना चाहिए।

इस क्रिया से सिर-दर्द, निद्रा-नाश, जननेंद्रिय के अवयवों की सूजन, पेड़ू की सूजन, ठंड और शीत, पैर की पीड़ा सब अच्छी हो जायँगी। यदि अत्यंत तेज़ सेक देना हो, तो पिसी हुई राई भी पानी में डाली जा सकती है।

डूश—इसका यंत्र बाज़ार से मोल मिलता है। एक टब में रोगी को बैठाकर या मेज़ पर लिटाकर डूश की नली ६ इंच योनि में घुसा दो और सदा नीचे और पीछे की ओर रक्खो। जल का पात्र ३ फुट के लगभग ऊँचा होना चाहिए। और वह १०० F. डिगरी का गर्म होना चाहिए।

पेड़ू की पीड़ा को मिटाने के लिये पानी ११० F से ११५ F तक लेना चाहिए। रजस्राव को जारी करने के लिये १०३ F का जल होना चाहिए।

एनीमा—एनीमा यंत्र भी डूश के समान होता है, उसकी नली में केवल अंतर होता है। इसके लिये १०० F की उष्णता का जल २-२॥ सेर के लगभग होना चाहिए। और नली में थोड़ा वैसलीन लगाकर रोगी को बाईं करवट लिटाकर नली धीरे-धीरे गुदा में प्रवेश कर दो। इसे ऊपर और पीछे की ओर दबाए रहो और दो तीन इंच भीतर जाने दो। पानी को कुछ देर आँतों में रहने दो। तेज़ ज्वर, निमोनिया और मोतीझरे में ७० F का जल लेना काफ़ी है।

अध्याय तेईसवाँ

यौवन-रक्षा

प्रकरण १

यौवन-आगम

१४ वर्ष की आयु होने पर लड़का और १३ वर्ष की आयु होने पर लड़की यौवन में प्रवेश करती है। इस आयु में उनके शरीर में परिवर्तन आरंभ हो जाते हैं, और कन्या की आयु में १६ वर्ष की आयु तक, और लड़के में २५ वर्ष की आयु तक ये परिवर्तन जारी रहते हैं, इसके बाद आयु परिपक्व हो जाती है।

यौवन-काल के परिवर्तन—इस आयु में लड़के-लड़की की बग़ल और पेड़ू पर बाल जमने लगते हैं। कंठ-स्वर बदल जाता है। बालकों की लिंगेंद्रिय बढ़ जाती है। और अंड-कोष में वीर्य उत्पन्न होने लगता है। यद्यपि उनमें इन बातों का प्रादुर्भाव होता है, पर अभी पूर्णावस्था में बहुत देर होती है। कन्याओं के स्तन बढ़ने लगते हैं, और उन्हें रजोदर्शन भी होने लगता है।

उनका मानसिक प्रभाव—इस अवस्था में प्राय लड़के-लड़कियाँ तनिक भी संसर्ग दोष से काम-संबंधी चिंतन करने लगते हैं। इस प्रकार की बातों में उन्हें चाव मालूम होता है। वे प्रकट या गुप्त ऐसी बातें सुनना या ऐसी पुस्तकें पढ़ना पसंद करते हैं। यदि तनिक भी अवसर मिला, तो कुटेव सीख जाते हैं।

गुप्तेंद्रिय-संबंधी सावधानी—बच्चों को छोटी आयु से नंगा रखने या उनकी जननेंद्रियों को साफ़ न रखने से उन स्थानों में मैल जमकर खुजली चलने लगती है। और प्राय बच्चे उस स्थान को मसलने या खुजाने लगते हैं। धीरे-धीरे उन्हें इंद्रिय स्पर्श का चस्का लग जाता है। गोद में लेने या पीठ पर लेने से भी रगड़ लगती है। ऐसे बालक बहुत करके बड़े होने पर कुटेव सीख जाते हैं।

दैनिक चर्या का ख़ास प्रबंध—इस आयु में सावधानी से बालकों की दैनिक चर्या का प्रबंध करना चाहिए। उन्हें ख़ूब शारीरिक और मानसिक परिश्रम में लगाए रखना चाहिए। जितना ही अधिक वे शारीरिक और मानसिक परिश्रम करेंगे, उतना ही उनकी शक्तियों का विकास होगा। उनके विचार शुद्ध और चिंतनाधार सात्त्विक बनाने को ऐसी सभा-

सोसाइटियो और ऐसी पुस्तकों का अध्ययन कराया जाय, जो इस विषय पर सरलता से प्रकाश डालती हो।

बालक के स्वभाव पर माता-पिता की वयस का प्रभाव

प्रो० रेडफ़ील्ड ने अभी-अभी एक अत्यंत चित्ताकर्षक भेद ज़ाहिर किया है, जिसका यह भाव है कि जिन बालको के माता पिता बडी वयस के होते है, उनकी दिमागी शक्तियाँ जवान माता-पिता के बालको से अधिक उन्नत होती है। संसार के महापुरुषो मे से अधिक वही है, जो पक्की उमर के माता-पिता से उत्पन्न हुए हैं। आपने कुछ अंक भी एकत्रित किए है, जिनके अध्ययन से पता चलता है कि पचास साल से अधिक उमर के माता-पिता के बालकों में महापुरुषों की औसत-संख्या सामान्य रूप से सबसे अधिक है। छोटी उमर के माता-पिता के लडके प्राय कठोर, दुष्ट और विषय-वासनाओं के दास होते है। आजकल ६० प्रति सैकडा अभ्यस्त अपराधी नौजवान माता-पिता से उत्पन्न होते है। यह आवश्यक नहीं कि नौजवान माता-पिता के सभी बालक ऐसे ही हो। हाँ, यह ज़रूर है कि वयस्क माता-पिता के बालको की प्रवृत्ति अपराध की ओर कम ही हुआ करती है। नौजवान माता-पिता से बालक जवानों का जोश, बेपरवाही, अनधिकार चेष्टा और वासनाओं की एक अच्छी संख्या विरसा मे लेता है, और यही इसके स्वभाव बनाने मे अधिक भाग लेते हैं। इसी कारण ऐसे बालको का वीर, अपराधी अथवा सफल सिपाही बनने की ओर अधिक झुकाव होता है। इसके विरुद्ध वयस्क माता-पिता से बालक का शांति, बुद्धिमत्ता, मितव्ययता और उत्तम स्वभाव का विरसा मिलता है।

इन्हीं प्रोफ़ेसर साहब ने अपने अंको के आधार पर एक नक़्शा तैयार किया है, जिससे पता चलता है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के पुरुष कितनी-कितनी वयस के माता-पिता के यहाँ उत्पन्न हुए। नेपोलियन ग्राट (अमेरिकन प्रधान), सिकदर आज़म, रूज़वैल्ट और फ़्रेडिक दी ग्रेट ३१ साल से कम वयस के पिताओ के यहाँ पैदा हुए। चित्रकार, लेखक और सूक्ष्म विद्याओ के आचार्य प्राय ३१ से ४० साल के माता-पिता के बालक होते है। गेटे, स्पिलर, शेक्सपियर, रैफल, एवार्ड, मैकाले, गोल्डस्मिथ इत्यादि इसी भाग में शामिल किए जा सकते है। ४१ से ५० वर्ष की वयस के बीच प्राय. देश के नेता पैदा होते है। यथा—बिस्माक, क्रामवेल, ग्लेडस्टोन और कीटो इसी वयस के माता-पिता के यहाँ पैदा हुए।

स्कूली शिक्षा

आप अपने प्राणो से प्यारे गुलाब के फूल के समान सुदर और कोमल बच्चो का प्रात-काल उठते ही जल्दी से ठडा, बासी खिला, और कपड़े पहनाकर स्कूल भेज देने में बडी तत्परता दिखाते है। पर आप यदि कभी उस स्कूल मे जाकर देखें, तो आपको दीखेगा कि वहाँ के एक मनहूस-से कमरे में सील-भरी धरती पर लकडी की बेचें पडी है, और आपका बच्चा अपने साथियो के साथ, नीची गर्दन किए, मैली पुस्तक पर दृष्टि गाड़े अपने दुबले-पतले

पैर हिला रहा है। सामने साक्षात् यम-स्वरूप मास्टर साहब मैले वस्त्र पहने लपलपाता बेत लिए गर्ज-गर्जकर उनके हृदयों को हिला रहे हैं। बच्चे बेचारे उन भाडे के टट्टू मास्टर साहब के बेत के भय से बिलकुल अरुचि-पूर्ण हृदय से सूखे चने के टिक्कड की तरह पाठ को गले से उतार रहे हैं।

ये अभागे बच्चे जब स्याही से कपडे और बस्ते को मैला करके शाम को फीके और उदास मुख लिए घर आते हैं, और दोपहर की रक्खी हुई बासी रोटी खाते हैं, तब तो इनके प्रति करुणा की इतिश्री हो जाती है। परंतु जब वे अपने मस्तिष्क में अगले दिन के पाठ याद करने की चिंताओं से उतने ही लदे देखे जाते हैं, जितना कि कोई कर्ज़दार दरिद्र, जिसे उऋण होने की कोई आशा ही नहीं, तब उनकी भयकर स्थिति पर विचार उत्पन्न होता है, पर ऐसा विचार लाखो-करोडो माता-पिताओ में से किसी एक को भी नही होता। बहुधा तो ऐसा होता है कि बच्चे को ज्यो ही ज़रा हँसते, खेलते या ऊधम मचाते देखा कि बस या तो उसके स्वय ही कान मल दिए जाते है, और या मास्टर के भयंकर नाम की उन्हें स्मृति दिलाई जाती है। हर हालत में मास्टर का नाम उनके लिये एक भेडिए के नाम से कम नहीं।

क्या ऐसे निर्दय और विवेक-हीन माता-पिताओं से मैं पूछ सकता हूँ कि उनका यह प्यार कितने मूल्य का है?

आप जब किसी बकरी के या बंदर अथवा गाय के छोटे-से बच्चे को मनोहर ढंग से उछल-कूद करते देखते हैं, तब कितनी प्रसन्नता मन में अनुभव करते है। परतु अपने बच्चे को सदा रोनी सूरत बनाए, किताबों में झुके बैठाए रखना ही आपको प्रिय मालूम होता है।

क्या वास्तव मे पुस्तक और स्कूल ऐसे महत्त्व की चीज़ें हैं, जिन पर भोले-भाले बच्चो की प्रसन्नता, आनद और स्वास्थ्य निछावर किया जा सकता है? क्या आपको इस तरह उदास, दुर्बल और चिंता-ग्रस्त बच्चों को देखकर करुणा नही होती?

अगर जवान होने पर आपका पुत्र बहुत पढ़-लिख गया, परतु तदुरुस्ती खो दी, तब क्या सभव है कि वह अपने जीवन में सुखी हो सकेगा? आज चारो तरफ़ लाखों युवक, जो इन गुलाम स्कूलों की टकसाल के बिलकुल खोटे सिक्के हैं, जो बिना बट्टा दिए चल ही नहीं सकते, हमारे सामने हैं। हम इन्हें देखकर कहते हैं कि इन पढ़-पत्थरो को तैयार करके हमने कौम को, नस्ल को मिट्टी में मिला दिया।

क्या आप अब से हज़ारो वर्ष पूर्व के गुरुकुलों की पवित्र स्मृति को मन मे धारण करेंगे? जहाँ राजकुमार और दरिद्र-पुत्र एक आसन पर, एक ही गुरु के सम्मुख बैठकर, स्वच्छंद वायु में, वृक्ष के नीचे, परम गहन आत्म-तत्त्व का मनन करते थे। जहाँ कृष्ण-जैसे जगन्मान्य पुरुषोत्तम से दरिद्र सुदामा ने मैत्री लाभ की थी, जहाँ जैमिनि और पाणिनि का निर्माण हुआ? जहाँ शुकदेवजी और अष्टावक्र-जैसे महाज्ञानियो का निर्माण हुआ, जिन गुरुकुलो के

स्तंभ-रूप व्यास, वशिष्ठ और कपिल-जैसे महातपोनिष्ठ, महाप्राण पुरुष थे, जिन्होंने जगत् से परे भी कुछ जान लिया था, जो सदैव अगोचर द्रव्यों को देखते थे, जिनके लिये कुछ भी दुर्लभ न था।

वे भारत के बच्चे, जो इन गुरुजनों के चरणों में बैठकर अपना भविष्य निर्माण करते थे, आज १५), २०) के वेतनभोगी, अपढ़, अनाड़ी, क्रूर और तन-मन से मैले मास्टरों के बेंत के भय से अक्षराभ्यास करते हैं ! हाय भारत की तक़दीर !!

संसार-भर के स्कूलों में जाकर देखिए कि वहाँ बच्चों को कैसी सुंदर रीति से, कैसे मनोरंजन ढंग से, कैसे प्रेम, आदर और सरलता से पढ़ाया जाता है कि सुनकर हैरानी होती है। बच्चों का घर में जी नहीं लगता, वे दौड़कर स्कूल जाते और बहुत खुश रहते हैं। अध्यापक को वे मन से प्यार करते हैं। वे बच्चे अपने खिलते हुए मस्तिष्क से शीघ्र ही संसार के सिर पर राज्य करते हैं।

मानव-समाज का उत्कर्ष और विकास न केवल धन, बल और योग्यता की घुड़दौड़ में बाज़ी मारने का है, प्रत्युत उसे मौलिकता और आत्मावलंबी बनना भी आवश्यक है। और यह तभी हो सकता है कि उसका शरीर पूर्ण स्वस्थ और आत्मा पूर्ण शिक्षित हो।

नागरिक जीवन की सम्हाल

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि देहातों की अपेक्षा कस्बों और नगरों में युवक लड़के-लड़कियाँ अधिक बिगड़ते हैं। नगरों में भी पुराने निवासियों पर वहाँ की चमक-दमक का उतना आकर्षक प्रभाव नहीं पड़ता, जितना कि किसी देहाती पर—एकाएक नगर में आ जाने पर।

गाँव के सीधे-सादे लड़के अपने गाँव के छोटे स्कूल की पढ़ाई समाप्त करके जब निकट के कस्बे के टाउन स्कूल में आते हैं, तो उन्हें वहाँ कुछ चमत्कार-सा दीखता है। अच्छी इमारत, मेज़-कुर्सी, ठीक तराश के कपड़े और चटपटे शहरी साथी और चाय-पानी। वे प्रथम कुछ संकोच में रहते हैं, फिर सबमें मिल जाते हैं। शहर के कुछ लुच्चे लड़के अपना उल्लू साधते, कुछ ठगने या उनसे अप्राकृत व्यभिचार करने के लिये उनसे मीठी-मीठी बातें बनाकर दोस्ती जताते, उनके लिये कुछ ख़र्च करते, और उन्हें फाँसकर अपने रंग में रँग देते हैं। पतन का मार्ग इतना सरल है कि एक बार आदमी उस पर पड़कर फिर रुक नहीं सकता, चला ही जाता है। ये लड़के शीघ्र ही उनमें मिल जाते और दुर्गुणों में फँस जाते हैं। क्योंकि ये प्राय भोले होते हैं, इन्हें कुछ तजुर्बा भी नहीं होता। माता-पिता की तरफ़ से सावधान भी नहीं किए जाते, और कोई हितैषी सम्हाल भी नहीं रखता। बोर्डिंग में रहनेवाले लड़के परस्पर प्रीति करने लगते स्पर्शास्पर्श बढ़ाते, एक शय्या पर सोते, परस्पर छेड़ते और अंत में अप्राकृत दुर्व्यसनों में फँस जाते हैं।

एकाएक किसी ऐसे लड़के के चेहरे की चमक मारी जाय, आवाज़ खरखरी और भारी हो जाय, उसमें भीरुता और एकांतप्रियता आ जाय, स्फूर्ति और आनंदमय मस्ती नेत्रों में न रहे, प्रातःकाल देर से उठने लगे, पाख़ाने में देर तक बैठा रहे, स्नान और शुद्ध रहने में लापरवाह हो जाय, पढ़ने मे और क्लास में फिसड्डी हो जाय, तो समझ लीजिए, वह दुर्व्य-सनों में फँस गया है।

कॉलेज में जाकर विद्यार्थियों के जीवन में रस पड जाता है। कॉलेज के कोर्स की किताबों में जब टेनीसन और शेक्सपियर के प्रेम-प्याले वे स्वाद ले-लेकर पीते हैं, होटल के स्वच्छ कमरे में, गुदगुदे फूल के समान पलँग पर पडे हुए भरी जवानी की उम्र में जब वे उक्त काव्यों और कथाओ की संगमर्मर के समान श्वेत या गुलाब के समान कोमल और चाँदनी के समान स्वच्छ प्रेम-पुतलियों की मन-ही-मन में तस्वीर बनाते हैं, नीली आँखों को अँधेरे में घूरते, सुनहरी बालों से स्वप्न में खेलते, कल्पनाओ के राज्य में कोर्टशिप करते हैं, तब वे अपने संयम और मन की पवित्रता को नहीं बनाए रह सकते। धीरे-धीरे कुछ उनके अंतरंग मित्र बन जाते हैं। ये लोग वे होते हैं, जो साल-दो साल प्रथम उस स्वप्न-रस को चख चुके है। कॉलेज में आने-जानेवाली मजूरिन, नौकरनी आदि पर आँख लडाने की झूठ-मूठ गप्पें लडाते और उपहास करते हैं। फिर रास्ते चलती स्त्रियों, पार्कों में घूमनेवाली मिसों, लेडियों की आलोचना का नंबर आता है—उसके बाद नाटक, थिएटर, बाइस्कोप के प्रसंग आते हैं, जहाँ अनेकों निर्लज्ज दृश्य खुल्लमखुल्ला देखने और खुश होने को मिलते हैं। बस, चरित्र और मानसिक बल बहुत दुर्बल हो जाता है।

नाटक, थिएटर, बाइस्कोप और गंदे उपन्यास तथा दूसरी फ़ोश पुस्तकें नागरिक जीवन का सबसे अधिक ख़तरनाक रूप हैं। छोटे दर्जे के लोग और कच्ची उम्र के स्त्री-पुरुषो पर इनका बहुत प्रभाव पड़ता है, व्यर्थ उनकी काम-वासना भड़क उठती है। प्रत्येक माता-पिता और अभिभावक को उचित है कि वह अपने घर की बहू-बेटियों और बच्चो को इन गंदे मनोरंजनो से बचावे। कोई भी तमाशा, थिएटर पहले स्वयं देख ले, और सबको दिखाने योग्य हो, तब दिखावे। पुस्तक प्रथम स्वयं बाँच ले, और तब स्त्री-बच्चों को बाँचने को दे। सच्चा मनोरंजन गायन, चित्रकला, जंगल, बग़ीचा, नदी-किनारे भ्रमण या बाल-बच्चो में हास्य-विलास है। प्रत्येक गृहस्थ को ऐसे मनोरंजन समय-समय पर करते रहने चाहिए कि, जिससे स्त्री-बच्चो का जी घर से ऊब न जाय, और वे मनोरंजन के लिये गंदे उपन्यास या थिएटर आदि देखने की रुचि न चला सकें।

छोटे बच्चो को बिगाड़नेवाले घर के नौकर होते हैं। इनका पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। कहार, धीमर, घाटी, कोचवान, माली आदि देख-भालकर बाल-बच्चेदार और अच्छे आदमी रखने चाहिए। ये लोग पैसा चुराने से अपनी शिक्षा शुरू करते हैं। बच्चों से पैसा चुरवा-चुरवाकर मिठाई का लालच देते हैं—पीछे, उन्हें तरह-तरह से फुसलाकर उनमें हिल-मिल

जाते हैं। बहुधा उन्हें अपनी कोठरियों में ले जाते हैं, और उन्हें कुत्सित चेष्टा सिखाते हैं, और उनसे अप्राकृत व्यवहार करते हैं। ये बालक फिर सदा इन नौकरों से डरते, और इनके अधीन रहने लगते हैं। मालिकों को इन पर कड़ी दृष्टि रखनी चाहिए।

इसी श्रेणी की घर में आने-जानेवाली स्त्रियाँ कुमारी तथा बहू-बेटियों की दूती बनकर बदमाशों का संदेश देती और फुसलाती हैं। और अंत में भगा ले जाती हैं। इन स्त्रियों को कभी जवान बहू-बेटियों से एकांत में बात नहीं करने देना चाहिए। और इनके चरित्र की पूरी-पूरी परताल रखना चाहिए।

कन्याएँ स्वभाव से ही पक्षी की तरह चपल और प्रसन्न रहनेवाली होती हैं। स्वच्छ नेत्रों से हर किसी की तरफ़ बिना संकोच देखने लगना पवित्र कौमार्य का एक लक्षण है। एकाएक कन्या सकुचीली, भयभीत तथा गंभीर हो जाय, तो अवश्य उसके कारणों की खोज करनी चाहिए। हमजोलियों का भी अभिभावकों को पूरा ध्यान रखना चाहिए, और गाने-बजाने आदि में कभी उन्हें मर्यादा से अधिक स्वातंत्र्य नहीं देना चाहिए।

बहुत बड़े-बड़े नगरों में, जहाँ छोटी-छोटी जगहों में बहुत-से स्त्री-पुरुष एकत्र रहते हैं, सबसे अधिक अनुचित घटनाएँ हुआ करती हैं। प्राय कुछ लंपट लोग यदि किसी घर में कोई सुंदर स्त्री को देखते हैं, तो बड़ी आव-भगत से उस घर में आते जाते, मित्रता बढ़ाते, त्योहारों पर उपहार भेजते, और बच्चों से बहुत ही घरौआ जताते हैं। फिर ये लोग मर्दों को भोजन का निमंत्रण देते हैं, स्वयं निमंत्रण स्वीकार करते हैं, धीरे-धीरे स्त्रियों का आना-जाना जारी करते और अवसर पाकर अपना काम बनाते हैं। इन अनावश्यक मित्रों से खूब सावधान रहना चाहिए। ये नीच प्राय कुमारी कन्याओं पर भी कुदृष्टि रखते हैं। इनका ईमान-धर्म कुछ नहीं। ये स्त्रियों को सुनाने के इरादे से ज़ोर-ज़ोर से हास्य-विलास करने, स्त्रियों को दिखाने के लिये बच्चों को छाती लगाते हैं। एकाएक वे उन स्त्रियों से ऐसे रिश्ते निकाल लेते हैं, जिनसे वे किसी कर्म में पाप नहीं समझते। बहुधा वे मित्र को भाई बनाते हैं, सिर्फ़ इसलिये कि उनकी स्त्रियों को भाभी कहकर पुकार सकें। ये लोग मित्र के रोगी होने पर बारबार घर में आते, देर तक बैठे रहते, और उस अवसर को स्त्री से घनिष्ठता बढ़ाने का गनीमत अवसर समझते हैं। ऐसे कमीन मित्रों से सदा बचते रहो। और उचित तो यह है कि जब तक बच्चे या कोई बूढ़ी घर की स्त्री साथ न हो, जवान स्त्री को लेकर कदापि परदेश में ऐसी पिचपिच जगह में मत रहो।

शहरों में बहुत दुराचारी पुरुष रसोई करने या नौकरी करने को जवान स्त्रियों को ढूँढते रहते हैं। बहुत-सी बदमाश आवारा स्त्रियाँ भीख माँगने, नौकरी करने या कुछ बेचने के बहाने इसी तलाश में घूमती रहती हैं। कुछ दुष्ट मकानवाले अपने घर में किसी विधवा को बसा लेते हैं—उसे पैसा उधार देकर ऋणी बनाते हैं, पीछे दबाकर धर्म बिगाड़ते—और अंत में स्वयं दलाल बनकर व्यभिचारियों को लाते और कमाई करते हैं।

पास-पड़ोस के संबंध में भी इसी प्रकार की बातें बराबर होती रहती हैं। ख़ासकर पड़ोस की विधवा और कन्याओं पर बड़े शहरों में हमेशा पड़ोसी युवकों की और उनके पास आनेवाली मित्र-मंडली की कुदृष्टि रहती है। प्रत्येक गृहस्थ को इन सब बातों की यथावत् सँभाल रखनी निहायत ज़रूरी है।

संतानों की धार्मिक शिक्षा और सात्विक जीवन का प्रबंध

केवल ११ वर्ष की अवस्था में धर्म के नाम पर सिर कटानेवाले और दीवार में जीते चुने जानेवाले बालकों का जब मैं ध्यान करता हूँ, तब यह विचार होता है कि क्या ऐसी पवित्र, दृढ़ और सात्विक शिक्षा सार्वजनिक रूप से मनुष्य-समाज के लिये संभव भी है? किसलिये महासमर्थ राम पिता के इतने आज्ञाकारी और मर्यादा-भीरु हुए, किसलिये ध्रुव और प्रह्लाद ने, शुक और सनत्कुमारों ने वह पवित्र सम्मान प्राप्त किया, जो सिद्ध तपस्वियों तक को दुर्लभ था। केवल धार्मिक शिक्षा और सात्विक जीवन की सद् व्यवस्था ही उन्हें इतना दिव्य बना सकी थी।

आज हम स्कूल के किराए के टट्टू मास्टरों के ऊपर अपने सुकुमार बच्चों की शिक्षा का भार सौंपकर निश्चित हो जाते हैं। और वे लोग उसे बेत और गालियों की सहायता से यथा-समय सब कुछ सिखा देते हैं। प्राय कुचेष्टाएँ स्कूल से ही सीखी जाती हैं। कैसे खेद की बात है कि पिता अपने बच्चों को परीक्षा में पास होने के लिये तो इतनी कड़ाई का बंदोबस्त करते हैं, परंतु उनमें सद्गुणों और उच्चता के भाव उत्पन्न होने की तरफ कुछ भी ध्यान नहीं देते।

सत्य भाषण, बड़ों का सत्कार, नम्रता, दया, लज्जा, प्रेम और सुशीलता का बीज बच्चों में स्वभाव से ही होता है। यदि उन्हें भय दिखाकर साधारण बातों पर झूठ बोलने को लाचार किया न जाय, उनसे निकम्मी ठठोलियाँ न की जायँ, उन्हें शासन में किंतु प्रेम-पूर्वक रक्खा जाय, उन्हें रोगियों की सेवा, अनाथों से प्रेम, दरिद्रों की सहायता की ओर प्रवृत्त कराया जाय, तो प्रत्येक बालक एक महान् पुरुष बन सकता है।

परंतु इसके स्थान पर होता यह है कि माता-पिता ख़ूब दिल्लगी से पुत्र से 'काली-गोरी बहू की' और कन्याओं से 'काने, कुबड़े दूल्हे' की बात अवश्य करते हैं। पिता के मित्रगण बहुधा पिता की मूँछें उखाड़ने, डंडे मारने, गाली देने की शिक्षा देते हैं।

इन सबका क्या परिणाम होता है—इस पर वे कभी विचार नहीं करते। बहुधा नंगे लड़के लड़कियों में मिलकर खेलते हैं—और अनेकों कुचेष्टाएँ अपनी शिश्नेंद्रियों के द्वारा करते हैं। मूर्ख मा-बाप देख भी लेते हैं, तो हँस देते हैं।

बच्चों के वस्त्र भी अनावश्यक चटकीले और ऐसे बनाए जाते हैं कि उनके मन में व्यर्थ का घमंड और बनावट का भाव पैदा हो जाता है—वे ग़रीब बच्चों से अपने को उच्च समझने और उन्हें चिढ़ाते हैं। ग़रीब बच्चे उनसे जलते और ईर्ष्या करते हैं। कभी उन्हें प्रेम और सहानुभूति से रहने की शिक्षा ही नहीं दी जाती।

सदाचार

मानव-समाज की सबसे बहुमूल्य वस्तु आचार है। लोग यह कहते हैं कि संसार में विद्या सबसे श्रेष्ठ है, विद्या के सम्मुख संसार की समस्त संपदाएँ और शक्तियाँ झुक जाती हैं। परंतु मैं कहता हूँ कि आचार एक ऐसी वस्तु है, जिसके सम्मुख विद्या का मस्तक झुक जाता है। प्रारंभ में लोग धन, शक्ति या विद्या द्वारा सम्मान पाते हैं—परंतु यदि वे आचारवान् नहीं निकलते हैं, तो शीघ्र उनका पतन होता है, और उनकी शक्ति, विद्या और धन किसी तरह उन्हें सम्मानित नहीं कर सकता। संसार का सबसे अधिक नीच दुराचारी रोम का बादशाह नीरो था, जब रोम महानगरी जल रही थी, तब यह मजे से बाँसुरी बजा रहा था। इसने अपनी माता, पुत्री और बहन तक से भी व्यभिचार किया। लाखों मनुष्यों को सिंह आदि जंतुओं से फड़वा डालना इसका नित्य का मनोरंजन था। तिस पर भी यह पिशाच उस समय का समस्त रोम-भर में सबसे श्रेष्ठ विद्वान् और तत्त्ववेत्ता था! रावण के विषय में प्रत्येक हिंदू जानता है—यह व्यक्ति महात्मा पुलस्त्य ऋषि का नाती और कुबेर का संबंधी था। उच्च श्रेणी के ब्राह्मण-वंश में था। राजनीति और वेदों का धुरंधर पंडित था। इसने वेदों पर अलौकिक भाष्य किया है। भगवान् राम ने आग्रह-पूर्वक लक्ष्मण को इसके पास मृत्यु-काल में नीति-शिक्षा प्राप्त करने भेजा था। इसके परिवार में विभीषण-जैसे धर्मात्मा और सुलोचना-जैसी पतिव्रता स्त्रियाँ थीं। इसकी सामर्थ्य और वैभव की तो कोई हद ही न थी। फिर भी यह आदमी घोर दुराचारी था, लंपटता के कारण वह श्रेष्ठ कुल का होने पर भी राक्षस कहलाया, और बंधु-बांधवों के सहित मारा गया।

भगवान् राम एक सच्चे आचारवान् पुरुष थे, उन्होंने कठिन-से-कठिन समय पर भी अपना बड़प्पन प्रकट किया था। कृष्ण को भी मैं परम श्रेष्ठ आचारवान् समझता हूँ। जो पुरुष घन-घोर युद्धस्थल में घोड़ों को मल-दलकर पानी पिलाने की हिम्मत रखता है, जो विकट युद्ध-प्रसंग के अवसर पर गीता का परमतत्त्व कहने की योग्यता और धैर्य रखता है, जिसके हृदय में भगिनी-प्रेम की महाप्रतिष्ठा है—जो पाप और अनाचार के विध्वंस करने के लिये प्रभास और कुरुक्षेत्र के मैदानों का सूत्राधार बन सकता है, वह कभी इंद्रिय का गुलाम नहीं हो सकता।

शंकर, बुद्ध और दयानंद वास्तव में कुछ अलौकिक विद्वान् न थे। यह संभव है कि उस काल में उनसे अधिक श्रेष्ठ विद्वान् संसार में हों। स्वयं शंकराचार्य के गुरु श्रीमत्पादगोविंदाचार्य की उतनी पूजा नहीं हुई, जितनी उनकी। इसका मुख्य कारण सिर्फ इन महापुरुषों का आचार ही था। आचार के ही बल पर उन्होंने वह सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त की। लोकमान्य तिलक बी० ए०, एल्-एल्० बी० थे, और महात्मा गांधी बैरिस्टर हैं। परंतु इन देव-तुल्य व्यक्तियों की पूजा इनकी विद्या के कारण नहीं हो रही है। इनका उत्कट चरित्र-बल ही उनकी इस पूजा का कारण है। मनुष्य को चाहिए कि वह हर तरह अपने सदाचार की रक्षा करे। शास्त्रकार कहते हैं—"आचार प्रथमो धर्म।" आचार सबसे मुख्य धर्म है।

भगवान् मनु ने आचार-सबंधी कुछ सुंदर उपदेश दिए हैं, जो प्रत्येक मनुष्य को मनन करने योग्य हैं।

मनुष्यों को सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि जिसका सेवन राग-द्वेष-रहित विद्वान् लोग नित्य करें—और जिसका अंत करण अनुमोदन करे, वही धर्म करणीय है। इस ससार में अतिकामात्मता अच्छी नहीं है, और अति निष्काम होना भी ठीक नहीं है। सच्चा ज्ञान-योग और कर्म-योग यह सब कामना ही से सिद्ध होता है। काम सकल्प का मूल है, और सकल्प से पुण्य-कार्य होते हैं। यम-धर्म-व्रत सब संकल्प से ही होते हैं। निष्काम की कोई क्रिया नहीं है। वेद, स्मृति, सदाचार और अपनी अंत करण की स्वीकृति यह चार प्रकार धर्म के हैं। जो अर्थ और काम में आसक्त है, उनके लिये धर्म ज्ञान कहा गया है। विद्वान् पुरुष को चाहिए कि विषयो में जाती हुई इद्रियो को दौड़ते हुए घोडे के समान रोककर संयम से रक्खे। इद्रियों के प्रसंग से अनेको दोषो का प्रकटीकरण होता है। उन्हें दबा रखने ही से सिद्धि प्राप्त होती है। काम की तृप्ति भोगों से कदापि नहीं होती। घी डालने से तो अग्नि सदा बढ़ती ही है। इसलिये इद्रियों को वश में करके और मन का सयम करके सब अर्थों की उत्तम प्राप्ति करे। सुनकर, छूकर, खाकर, सूँघकर जो मनुष्य न प्रसन्न हो, न ग्लानि करे, वही सच्चा जितेंद्रिय है।

सयम

महात्मा गांधी का कथन है कि—

भारतवर्ष में प्रजोत्पत्ति कमती होने से ठीक है। कमती करने का एक ही इलाज मुझे मान्य है—सयम। पाश्चात्य शास्त्रियो के कृत्रिम इलाज राक्षसी और हानिकर है। विवाहित स्त्री-पुरुष भी स्वादेंद्रिय को मारकर सरलता से ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते है।

उपर्युक्त वाक्यों में कितनी विशुद्ध और दृढ़ सामाजिकता भरी हुई है, एव वे किसी भी समाज के लिये कितना ऊँचे दर्जे का आदर्शवाद हैं, यह बात गंभीरता-पूर्वक विचारणीय है। सब दशाओं में सब स्त्री-पुरुषो का चरित्र निगरानी में नहीं रक्खा जा सकता। केवल सयम का विधान ही ऐसा है, जिससे मनुष्य अपने आपका रक्षक और स्वामी बन सकता और आत्मरक्षा का गौरव प्राप्त कर सकता है।

मनु का कथन है कि—

> इद्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
> सयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥

जैसे होशियार सारथी मज़बूती से लगाम पकड़कर घोड़ों को वश मे रखता है, वैसे ही मन और आत्मा को खोटे कामो में खींचनेवाले विषयो मे विचरती हुई इद्रियो के निग्रह में विद्वान् सदा यत्न से रहे।

> यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा।
> स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगत फलम्॥

जो मनुष्य वाणी और मन से शुद्ध और सुरक्षित रहता है, वह सब ज्ञानों के फलों को प्राप्त होता है।

ब्रह्मचर्य-पूर्वक यम और नियमों का पालन करना, स्वाध्याय और आत्मचिंतन करना ही संयम है।

ब्रह्मचर्य शारीरिक यत्न, मानसिक अध्यवसाय, नैतिक न्यायपरता—इन तीनो के समवाय से सपन्न होता है। शास्त्रकार कहते है—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्। संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः। विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्॥

स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, सकल्प, अध्यवसाय और क्रियानिर्वृत्ति ये आठ प्रकार के मैथुन है, इनसे बचने का नाम ब्रह्मचर्य है।

स्मरण—विषय की पुनः-पुनः चिंता करना। पूर्वकृत दुष्कार्यो को फिर-फिर याद करना, प्रेम-पात्र पर आसक्त हो उसके दर्शन, चुंबन, आलिंगन या उपयोग के लिये व्यस्त रहना, या इसी प्रकार की विषय-चिंता मे निमग्न रहना, एक प्रकार का मैथुन है। इससे रक्त से वीर्य को पृथक् होने में मदद मिलती है। शरीर में सनसनी और उष्णता उत्पन्न होकर मन में अस्थिरता और मलीनता उत्पन्न हो जाती है। ऐसी चिंता करते-करते स्त्री-पुरुष अंत में विषय-वासना में फँस जाते है।

बुराइयो का बारबार स्मरण करना ही अधःपतन का चिह्न है। जिन्हें इस प्रकार के विचारो की लडी बँध जाती है, वे उसमें ऐसे जकड जाते है कि किसी तरह उनका उनसे छुटकारा ही नहीं होता। ऐसे लोग बहुधा रीति-नीति, शिष्टाचार, लज्जा, भलमसाहत और समाज-भय से भी उच्छृंखल होते देखे गए हैं। इनमे कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो अपने आपको समझते है, पर उनके लिये उस निर्बलता से निकलना असाध्य हो जाता है।

वेद बारबार कहते है "तन्मे मनः शिवसकल्पमस्तु"। वेदो मे बराबर 'मन शुद्ध संकल्पवाला हो' लिखा है। कुचिंताओं के उत्पन्न होते ही उसको रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि यह कुछ काल के लिये मन मे रह जायगी, तो वह मस्तिष्क में अमिट रूप से वास करने लगेगी। आरभ मे कुचिताओ को कुचल देना उतना ही सरल है, जितना उनका अभ्यास हो जाने पर उनका दूर करना कठिन है।

कीर्तन—शास्त्रकार कहते है—'यन्मनसा ध्यायति, तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति, तत्कर्मणा करोति।" अर्थात् मन मे जो विचार किया जाता है, वह मुख से कहा जाता है, जो मुख से कहा जाता है, वही हाथो से किया भी जाता है। जब मन मे बुरी चिंताएँ पूरा ज़ोर पकड लेती है, तो फिर उसी ढग की बातचीत इष्ट-मित्रो से करने की इच्छा होती है—और फिर उसी एक मज़मून की बातचीत प्रायः हुआ करती है। इस प्रकार की

बातचीत भी शरीर में एक प्रकार की उष्णता उत्पन्न करके वीर्य-स्राव करती है। इसलिये यह मैथुन का दूसरा अंग है।

जिसके मन में बुरी भावनाएँ बस जाती है, वह प्रथम उस गंदे और लज्जा-योग्य विषय की चर्चा अपने कुछ चुने हुए मित्रो से करता है। धीरे-धीरे उसका यह स्वभाव हो जाता है, और ऐसी बाते अधिक खुल्लमखुल्ला सबसे कहने का उसे साहस हो जाता है। तब जहाँ इस प्रकार की चर्चा चल रही हो, वहाँ वह बडे उत्साह से शरीक होता है, बिना प्रसंग भी मित्रों पर फबतियाँ उडाकर ऐसी ही गप चलाता है। प्रतिदिन ऐसी मंडलियो में शरीक होता है। धीरे-धीरे अश्लील गज़लें गुनगुनाना, पराई बहू-बेटियो को देखकर उनके प्रति अवाच्य शब्दो का प्रयोग करना, मेले-तमाशो मे, तीर्थ-यात्राओं में जाकर स्त्रियो की भीड मे उनका अंग स्पर्श करना, आवाज़ कसना, नग्न नहाती स्त्रियों को देखना, और फिर इस विषय में अपनी कार्य-कुशलता की चंडाल-चौकडी में डींग हाँकना इत्यादि दुराचरण उत्पन्न होने लगते हैं। इन लोगो की यह दशा हो जाती है कि—

यथा हि मलिनैर्वस्त्रैर्यत्र तत्रोपविश्यते। एवं चलितवृत्तस्तु वृत्तशेषं न रक्षति।

जैसे मैले वस्त्रोंवाला मनुष्य बिना किसी तरह के संकोच के गदी जगहों में बैठ जाता है, वैसे ही मैले विचारोवाला मनुष्य ऐसा चलितवृत्त हो जाता है कि अवसर-कुअवसर वह अपने गदे भावों को बिना सकोच झटपट ही प्रकट कर देता है। यह एक तरह का मानसिक कुष्ठ है, जो छिप ही नहीं सकता।

शुद्ध सात्त्विक भोजन करने का भी मन पर बहुत प्रभाव पडता है। जो लोग मास, मदिरा, प्याज़, लहसुन, मिर्च-मसाले, खटाई, चाय-पानी, अलाय-बलाय अधिक खाते रहते हैं, उनके मन सदा गदे विचारो से परिपूर्ण रहते है। शुद्ध सात्त्विक आहार से मनुष्य को मानसिक स्थिरता प्राप्त होती है। शुभ कल्पना का उदय होता है। एक कहावत है कि "जैसा खाय अन्न, वैसा होय मन।" अँगरेज़ी में भी एक कहावत है कि "मनुष्य जो कुछ खाता है, उसी पदार्थ के गुण से शरीर बनता है।" वैद्यक-शास्त्र कहता है कि आहार तीन प्रकार के हैं—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। गेहूँ, चावल, घृत, दूध, दही, शाक और फल सात्त्विक भोजन है। अंडा, मछली, प्याज, मिर्च, खार, ज्यादा मिठाई, मसाला उर्द, मसूर ये रजोगुण-वर्धक हैं। मास, मदिरा-लहसुन ये तमोगुण-वर्धक हैं। सतोगुणी पदार्थों के सेवन करनेवाले का मन शात और वीर्य स्थिर रहता है। रजोगुण के पदार्थ सेवन करने से मन चचल, उत्तेजित और वीर्य अच्छा रहता है। तमोगुण के पदार्थ सेवन से हिंसा, निर्दयता, निष्ठुरता तथा लंपटता से युक्त और वीर्य स्खलनशील रहता है।

उपनिषद् मे अन्न के माहात्म्य में एक सुंदर कथानक लिखा गया है—महर्षि उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को उपदेश दिया कि मन अन्नमय है। श्वेतकेतु को अन्न और मन से कोई लगाव नहीं मालूम दिया। उसने इस पर शका की। महर्षि ने पुत्र को १५ दिन आहार

नहीं करने की आज्ञा दी। श्वेतकेतु १५ दिन तक पिता के आज्ञानुसार निराहार रहकर १६वें दिन पिता के पास गए। उद्दालक ने पूछा—तुम्हें ऋक्, यजु, साम कण्ठस्थ हैं? जरा सुनाओ तो। श्वेतकेतु ने कहा, मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है। इसके बाद पिता की आज्ञा से उन्होंने भोजन किया, और उनकी बुद्धि यथावत हो गई।

ईश्वर पर अगाध भक्ति रखना, उसका चिंतवन करना बड़ा पवित्र और पुण्य कार्य है। जो मनुष्य सदा अपना मन इधर लगाते रहते हैं, उन्हें कभी कुचिंताएँ नहीं व्यापतीं। पवित्रता देवता का गुण है, जो मनुष्य मन, वचन, कर्म से पवित्र हैं, वे भी देवता ही हैं।

मन का स्वभाव ही कुछ-न-कुछ उलट-पुलट करने का है, इसलिये यह उत्तम है कि किसी कुचिंता को मस्तिष्क से हटाने के लिये कोई दूसरी उत्तम विषय की चिंता को मस्तक में जगह दी जाय। मस्तक कभी विचारों से ख़ाली नहीं रह सकता। हठ और आग्रह-पूर्वक बुरी वासनाओं को दूर करके सद् वासनाएँ मस्तक में भरी जायँ। यह बहुत ही उत्तम बात है।

कहावत है कि "ख़ाली बैठना शैतान का काम है।" बात बिलकुल सच है। जो पुरुष सदा आत्मचिंतन और सद्भावनाओं का चिंतन किया करते हैं, कुचिंताएँ उनके पास नहीं फटकती हैं। यदि कदाचित् किसी पुरुष के मन में किसी ढंग के बुरे विचार उत्पन्न हो भी जायँ, तो उचित है कि तत्काल वह उठकर कहीं चला जाय, या किसी काम में लग जाय। बहुत लोग ऐसे समयों पर निर्जन वास करना पसंद करते हैं, परंतु जब तक मन में प्रौढ़ता न हो, निर्जन वास नहीं करना चाहिए। जिन मनुष्यों का मस्तक इतना निर्बल है कि बारबार उन्हें कुचिंताएँ घेरती हैं, उन्हें चाहिए कि वे सदा मनुष्यों, मित्रों और परिजनों से घिरे रहें, और किसी काम में लग जायँ।

कभी-कभी कुचिंताओं के कारण मनुष्यों को बहुत कष्ट में पड़ना पड़ता है। कुचिंताओं के वशीभूत होकर जो लोग बुरे कर्मों में फँसकर कष्ट पाते हैं, उन्हें उन विपत्तियों की घटना को लिखकर अपने बैठने के कमरे में टाँग लेना चाहिए, जिससे उन पर दृष्टि पड़ती रहे, और उस समय के कष्ट और अपमान की याद आती रहे। जैसे कोई मनुष्य वेश्यागामी है, या गुप्त व्यभिचार में उसका मन लगा है, वह उसे स्वयं बुरा समझता है, पर जब भूत सिर पर चढ़ता है, तो वह किसी तरह मन को नहीं रोक सकता। ऐसे पुरुषों का कहीं-न-कहीं अपमान हो ही जाया करता है। ऐसे ही किसी अपमान की तारीख़-मात्र ही लिखकर दीवार पर टाँग देनी चाहिए, जिससे उस दिन की उसे याद बनी रहे। और भविष्य में सावधानी की चेतावनी देती रहे। एक डायरी में भी अपनी ऐसी मूर्खता-पूर्ण कुचेष्टाओं का विवरण लिखते रहना चाहिए, और जब वैसी दुर्भावनाओं और दुश्चिंताओं का तार बँधे, तो उन्हें पढ़ जाना चाहिए।

इस पतनशील छूत के रोग से बचने के यही उपाय है कि जहाँ इस प्रकार की चर्चा

चले, वहाँ कभी न जाना। किसी मंडली में कोई यदि इस प्रकार की चर्चा चलावे, तो उसे तत्काल ही रोक देना। उस स्थान से फ़ौरन् चल देना, उन मित्रों को ही त्याग देना। पवित्र और गंभीर विचार-पूर्ण ग्रंथों का अनुशीलन करना। जितेंद्रिय पुरुषों का सहवास करना। सदा निर्भीकता से सत्य भाषण करना। नित्य अपनी दिनचर्या लिखना। अपनी भूल और मूर्खताओं पर सदा पश्चात्ताप करना और भविष्य में दुष्कार्यों के न करने की ईश्वर से प्रार्थना करना। अपने पाप को कभी न छिपाना। छोटों को सदा उपदेश देना, और बड़ों से सदा उपदेश सुनना।

केलि—अर्थात् स्त्रियों के साथ हँसी-मज़ाक करना, आँख-मिचौनी खेलना, खेल के बहाने अंग स्पर्श करना। इन सब बातों से इंद्रियों में उत्तेजना भड़क उठती है। कामवासना बढ़ जाती है। और वीर्य अपने स्थान से च्युत हो जाता है।

जब कुचिंताओं से मनुष्य की नीति बिगड़ जाती है, और लपटता के आचरणों से आँखों का शील नष्ट हो जाता है, तो मनुष्य को स्त्रियों के पास बैठने, उनसे तरह-तरह की विषय-वासना की बात करने का भी चाव और साहस हो जाता है। धीरे-धीरे वे इतने स्त्रियों के अधीन हो जाते हैं कि स्त्रियों की उचित-अनुचित सभी आज्ञाओं को अंधों की तरह स्वीकार करने लगते हैं। फ्रांस के राजा १५वें लुई ने एक तुच्छ स्त्री के कहने से हज़ारों अयोग्य मनुष्यों को उच्च पद दिया, और हज़ारों को मरवा डाला। बादशाही और नवाबी ज़माने में भी स्त्रियों का ऐसा ही प्रभाव रहा। यह तो स्वाभाविक ही है। स्त्रियाँ भावावेश में ही अच्छे-बुरे कार्य करती हैं—विचार से बहुत कम काम ले सकती हैं—और पुरुष जब उनके अंधे गुलाम हो जाते हैं, तो इसका परिणाम सदा निकम्मा ही होता है।

प्रेक्षण—सकाम दृष्टि से स्त्री को देखना। सृष्टि की सब सुंदरताएँ मन को आकर्षित करती हैं। सुंदरता और शृंगार मनुष्य-समाज में तो है ही। पशु और वनस्पति-जगत् में भी है—घर की मा, बहन, पुत्रियाँ भी शृंगार करती हैं, परंतु शृंगार करना या शृंगार देखना ये दोनों यदि कामवृत्ति के आधार पर हों, तो वह मैथुन में शरीक हैं। सौंदर्य और शृंगार में पवित्र स्नेह और चाव की दृष्टि होना सहृदयता का चिह्न है। परंतु अपवित्र काम, इंद्रिय-लालसा का उदय होना सर्वथा कुत्सित है। प्रथम दृष्टि आनंद और तृप्ति उत्पन्न करती है, दूसरी विषय-वासना और ज्वलंत तृष्णा। जैसे सरस रसोई बाल या मक्खी पड़ने या कुत्ते-कौवे के स्पर्श करने से रूप-रंग में वैसी ही रहने पर दूषित हो जाती है, वैसे ही सहृदयता-सौंदर्य निरीक्षण और सौंदर्य भी विषय-वासना के कारण दूषित हो जाता है।

इससे बचने का उपाय सबसे प्रथम तो यह है कि घर की और अपने शरीर की भी सब चटकीली सजावट नष्ट कर देना। सादा, किंतु सुंदर वेश और गृहविन्यास रखना। विलास-सामग्री का त्याग करना। अंतःकरण में शुद्ध भावनाएँ रखना। प्राकृतिक सौंदर्य में रुचि बढ़ाना, और सिनेमा, मेले, बाज़ार आदि की सैर करने की अपेक्षा जंगल, वन, नदी आदि

की सैर करना —प्राकृत सौंदर्य निरीक्षण करना। उसे परखना—समझना—घर में वैसे ही चित्र रखना।

बहुत लोगों का ख़याल है कि बिना विलास के आराम नहीं मिल सकता। परंतु विलास और आराम भिन्न-भिन्न वस्तु हैं। स्नान करना, स्वच्छ वस्त्र पहनना, घर में आराम की सब वस्तुओं का संग्रह करना बुरा नहीं, बल्कि ज़रूरी है।

गुह्यभाषण—स्त्रियों से संकेत द्वारा एकांत में मिलना या मिलने की इच्छा प्रकट करना, मिलने पर काम-वासना-संबंधी अभिसंधि प्रकट करना, इस प्रकरण के अंतर्गत हैं। एक तो लोक-निंदा और लोकापमान की मात्रा ही इस विषय में इतनी ज़बरदस्त है कि हर तरह से यह नीच मार्ग त्याग देना चाहिए। प्रत्येक आत्माभिमानी को इन बातों से घृणा करना और इस प्रवृत्ति से दूर रहना चाहिए।

बहुधा ऐसा होता है कि सफलता के पूरे साधन नहीं मिलते हैं, और घटनाओं को लेकर भयानक कांड हो जाते हैं। ख़ून-ख़राबी, हत्या तक की नौबत पहुँचती है। यह न भी हो, तो सीधी-सादी, शांत, पवित्र पराई स्त्री या कन्या के मन में लालसा की यह आग भड़काकर उन्हें अपने पति और परिवार से अविश्वासिनी और झूठी बनाना कितने पाप और निष्ठुरता का कार्य है।

संकल्प।—चाहे जो हो, परंतु अमुक स्त्री से तो व्यभिचार करूँगा ही—यह धारणा ही संकल्प है। पूर्वोक्त पाँचों वृत्तियाँ जब भीतर-ही-भीतर ज़ोर पकड़ती हैं, उनका निरोध नहीं होता है, तब यहाँ तक दशा पहुँचती है। यह वह दशा है, जहाँ आदमी अंधेपन की दशा को पहुँच जाता है। चोरी और ख़ून, नदी-नाले लाँघना, अपनी जान हथेली पर रखना, सब उसके लिये नगण्य वस्तु हो जाते हैं। हज़ारों बोतलों का नशा चढ़ जाता है। यही वह अवस्था थी, जब तुलसीदासजी ने चढ़ती नदी मुर्दे द्वारा पार की थी। सर्प के द्वारा महल पर चढ़े थे।

यह ऐसी भयानक स्थिति है, जहाँ संकल्प पूर्ण होना, और निष्फल हो जाना, दोनों ही बातें भयानक हैं। पूर्ण होने पर तो पतन और पाप का भरपूर कुंड है—और निष्फल होने में क्रोध, प्रतिहिंसा और उसके राक्षसी परिणाम।

परंतु जिनके भीतरी अंतस्तल में सच्ची मनुष्य की आत्मा सोई हुई होती है, वह तुलसीदास ही की तरह इस अवसर पर केवल मलामत की एक ही ठोकर से जाग उठती है। कहा जाता है कि विष की दवाई विष ही है। इस सिद्धांत के आधार पर संकल्प से ही संकल्प को नाश करना चाहिए। 'तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु' यह बात इस अवसर पर विचारनी चाहिए। भीष्मपितामह-जैसे दृढ़ पुरुषों के महान् जीवनों का अनुशीलन और अनुगमन करना चाहिए।

अध्यवसाय—संकल्प के अनुसार चेष्टा करना। जिसमें ज्ञान, शील, लज्जा आदि गुणों को फाँसी लग जाती है, और मनुष्य राक्षस होकर उचित-अनुचित सब कृत्य करता है।

अपनी सती-साध्वी स्त्रियों के आभूषण और प्राण तक पुरुष इस अवसर पर लेते हैं। स्त्रियाँ अपने पति तक की छाती में छुरा खोंस देती हैं। अपने पेट के बच्चे का गला घोटकर मार डालती हैं। पाप के पथ का यह चौपड़ बाजार है। यह व्यभिचार के पाप का छलकता यौवन है। यहाँ रीति, नीति, आचार-विचार, विवेक, बुद्धि कुछ नहीं। मृत्यु एक खेल है, और जीवन एक तुच्छ वस्तु है।

किसी घोरतर कठिन आघात या प्रतिज्ञा में बिना पड़े मनुष्य यहाँ से लौट नहीं सकता। शूर-वीरों के उन्नत जीवन का यहाँ अंत होते देखा गया है।

क्रिया निवृत्ति—मैथुन, प्राकृत या अप्राकृत किसी ढंग से वीर्यपात करना ही क्रिया-निवृत्ति है। निवृत्ति के बाद बहुधा मनुष्य को होश आता है। पर समय तो बीत चुकता है। "फिर पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गईं खेत।" फिर भी एक बात है—सुधार तो प्रतिक्षण हो सकता है, भीष्मपितामह यह कहते हैं—

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।
आमृत्योः श्रियमन्विच्छेत् नैना मन्येत सुदुर्लभाम्॥

पहले की हुई असफलता और बुराइयों के कारण अपनी आत्मा का कभी अपमान न करे। मृत्यु तक सिद्धि को ढूँढे, और उसे कभी दुर्लभ न समझे।

अब यम और नियमों के पालन करने की बात कहते हैं। यम पाँच प्रकार के हैं—

तत्राहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।
(योग० साधनपाद सू० ३०)

१—अहिंसा—मन, वचन, कर्म से किसी प्राणी को व्यर्थ न सताना।

२—सत्य—जिस बात को जैसा जाना है, उसे वैसा ही मानना, कहना और करना।

३—अस्तेय—पराई वस्तु, स्त्री आदि पर स्वार्थ-पूर्ण और अन्याय-दृष्टि न डालना।

४—ब्रह्मचर्य—पीछे विस्तृत वर्णन हो चुका है।

५—अपरिग्रह—पराई कृपा के आसरे न होना, स्वावलंबी बनना। ये पाँच प्रकार के यम हैं। निम्न-लिखित पाँच प्रकार के नियम होते हैं—

शौचसन्तोपतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः
(योग० साधन पाद सू० ३२)

१—शौच—शरीर को जल और उज्ज्वल वस्त्रों से, मन को सत्य से और आत्मा को आत्म-चिंतन से पवित्र रखना।

२—संतोष—हेतु में ईर्षा रखना, फल में संतुष्ट रहना। अर्थात् परिश्रम और उद्योग में सबसे आगे बढ़ने के हौसले रखना, किंतु कार्य के बिगड़ने-सुधरने पर हर्ष विषाद न मानना।

३—तप—कष्ट सहकर भी धर्म और नीति का मार्ग न छोड़ना।

४—स्वाध्याय—सदा सच्छास्त्रों को पढ़ते-पढ़ाते और सुनते-सुनाते रहना।

५—ईश्वरप्रणिधान—ईश्वर मे अटल भक्ति रखना, और सदा उसका चिंतन रखना। ये पॉच प्रकार के नियम योगशास्त्रो में कहे गए है—

इस विषय मे मनु महाराज एक गंभीर बात कहते है। उनका वचन है—

यमान् सेवेत सतत न नियमान् केवलान् बुध.।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्।
(मनु० अ० ४। २०४)

इस श्लोक का अभिप्राय यह है कि बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह निरतर यमो का सेवन करे, केवल नियमो का ही सेवन न करे, क्योंकि यमो का पालन न करने और केवल नियमो का पालन करने से मनुष्य का पतन हो जायगा।

विना अहिसा कोई मनुष्य शुद्ध पवित्र नही हो सकता, जिसके मन से हिंसा, वैर, द्वेष दूर हो गए है, वही शुद्ध कहाता है, और जिसके मन मे गॉठ पडी होती है, वैर-भाव बना रहता है, उसे लोग मन का मैला कहते है। और जो सरल वृत्ति का होता है, उसे मन का साफ कहा जाता है। इस प्रकार अहिसा, यम और शौच (शुद्धि) नियम दोनो का पालन करना ही उत्तम है। सतोप भी विना सत्य के स्थिर नहीं रह सकता। जो पुरुष सच्चे है, वे ही सतोपी होते है। इसी प्रकार अस्तेय के विना तप, ब्रह्मचर्य के विना स्वाध्याय और अपरिग्रह के विना ईश्वरप्रणिधान व्यर्थ है, तथा न निभने योग्य है।

इसलिये मनुष्यो को यम-नियम का सतत पालन करके यथावत् सयम से जीवन व्यतीत करना चाहिए।

अध्याय चौबीसवाँ

व्यभिचार

प्रकरण १

स्वाभाविक स्त्री-प्रसंग

यूनान के प्रख्यात तत्त्ववेत्ता अरस्तू से एक बार उनके शिष्य जगद्विजयी सिकंदर ने पूछा कि जीवन में कितनी बार स्त्री-प्रसंग करना चाहिए। उन्होंने उत्तर दिया—"एक बार।" फिर कहा गया कि इतने पर भी यदि न रहा जाय? जवाब दिया—"अच्छा, दो बार।" प्र०—"फिर भी सन्तोष न हो तो?" उत्तर—"खैर, साल में एक बार कर ले।" प्र०—"इतने पर भी जी न माने तो?" उत्तर—"महीने में एक बार कर ले, पर जल्दी मृत्यु होगी।" फिर कहा गया कि "इतने पर भी रहना कठिन हो तो?" "तो कफन का सब सामान तैयार रक्खे, और फिर इच्छानुसार करे, कुछ पता नहीं कब मृत्यु आ जाय।"

प्रसिद्ध बलिष्ठ रुस्तम ने ब्याह करके केवल एक बार स्त्री-प्रसंग किया और फिर व्रती बने रहे। उसी गर्भ से पुत्र हुआ, जब पुत्र बड़ा हुआ तो उनकी स्त्री से न रहा गया, पुत्र से बोली कि अपने अब्बा से कहो, हमारा अकेले जी नहीं लगता। हमारे साथ खेलने को एक भैया मँगा दो। रुस्तम ने यह सुनकर स्त्री से कहा—मेरी एक टाँग तो टूट गई, क्या तुम दोनो टाँगें तोड़कर मुझे लूला बनाना चाहती हो? स्त्री बहुत लज्जित हुई। ऋषि दयानंद ने वैदिक रीत्यनुसार २४, ३२, ४८ वर्ष का ब्रह्मचर्य धारण करने की सलाह दी है—और विवाह पीछे ऋतुगामी होने की। उनका कहना है कि इन नियमों पर चलने से दीर्घायु होती है। उनका तो स्पष्ट कथन यह है कि जो जितने दिन का ब्रह्मचर्य पालन करेगा, उससे चौगुनी उसकी आयु होगी। प्रसिद्ध हकीम जालीनूस ६ मास में एक बार स्त्री-प्रसंग की आज्ञा देते हैं। वेद में लिखा है—हे ऐश्वर्यवान् वीर्य-युक्त पुरुष! तू इस सौभाग्यवती वधू को उत्तम पुत्र-युक्त कर। इसमें १० पुत्रों को पैदा कर, और हे स्त्री! तू भी अधिक कामना मत कर, दश पुत्र और ग्यारहवाँ पति, इतने ही पर सन्तोष कर।

एक अमेरिकन डॉक्टर का कहना है कि जिस मैथुन के पीछे सच्चा आनंद आवे, शरीर में बल और फुर्ती पैदा हो, काम करने में रुचि हो, तो समझिए कि प्राकृत संभोग हुआ है।

प्रकरण २

व्यभिचार का शरीर पर प्रभाव

स्पष्ट प्रभाव—जननेंद्रिय को आघात पहुँचकर उसके आकार और शक्ति में ह्रास हो जाता है। अंडकोष ढीले पड जाते और नीचे लटक जाते हैं। लिंगेंद्रिय की जड़ पतली पड जाती है। और नसों में पानी भरकर वे नीली पड जाती हैं। एकाध नस टूट जाने से इंद्रिय टेढ़ी पड जाती है। इंद्रिय का छिद्र चौड़ा हो जाता है। उत्तेजना कम हो जाती है। और स्त्री को छूते ही या कुछ देर में विना स्खलित हुए वह जाती रहती है—अथवा होती ही नहीं है। धीरे-धीरे पुरुष नपुंसक हो जाता है। ये परिणाम इसी क्रम से होते हैं, जिस क्रम से लिखे गए है।

अप्रकट प्रभाव—पट्ठों की निर्बलता, रक्त-वमन, मृगी, पागलपन, अधरंग, मूर्च्छा, आँखों की निर्बलता, प्रमेह, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, कमर का दर्द, हृदय की धड़कन, श्वास, दर्दगुर्दा, दर्दजिगर, मंदाग्नि, आलस्य, चित्त की भ्रांति, सिर-दर्द, ज़ुकाम, नजला, संधिवात आदि।

आमाशय पर प्रभाव—कब्ज़ सदा बना रहता है। कभी-कभी आँव मिले दस्त आते हैं। भूख कम हो जाती है, जी मचलाता है। इस प्रकार की क़ब्ज़ में कुछ वैद्य लोग विना समझे जुलाब दे देते हैं, जिसका बुरा परिणाम होता है।

मूत्राशय पर प्रभाव—मूत्राशय को मसाना कहते है। यह एक थैली है, जिसमें पेशाब भरा रहता है। वह इतना निर्बल हो जाता है कि बार-बार पेशाब आता है, रुकावट कुछ भी नहीं होती। ज़रा ठंडा मौसम होने से पेशाब सफ़ेद और ज़ोर से आने लगता है। लिंग के अग्रभाग में सदा सुरसुरी तथा चिपचिपाहट बनी रहती है, क्योंकि वीर्य-स्राव निरंतर होता रहता है।

रीढ की हड्डी—के नीचे के भाग में और कमर में दर्द बना रहता है। टाँगों की निर्बलता। प्रायः निचले भाग में अर्द्धांगवायु सदा कुपित रहता है।

मस्तिष्क पर प्रभाव—निर्बलता, विचारों में भ्रांति और कर्तव्य-ज्ञान तथा साहस की कमी। चित्त की अस्थिरता, मन वश में नहीं रहता। देखने-सुनने की शक्ति कम हो जाती है। स्वर टूटा-फूटा, भद्दा, कानों में सायँ-सायँ आवाज़ होना। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना। मानसिक दुर्बलता इतनी हो जाती है कि बहुधा दुष्ट कामनाओं से छुटकारा पाकर आत्मघात कर लेता है।

सामूहिक प्रभाव—पांडु, उदररोग, सड़ी डकारें, हृद्रोग, हाथ पैरों के तलुओं पर पसेव, दाँत-जीभ पर मैल जमना, शरीर सदा गीला रहना, बाल झड़ जाना, खाल सिकुड़ जाना, झुर्री पड़ जाना, आँखें भीतर धँस जाना, अंत में सप्त धातुक्षय होकर जीर्णज्वर और क्षय से प्राणनाश।

पुराणों और महाभारत में इस दुष्परिणाम के अनेक उदाहरण हैं। रोहिणी में अत्यंत आसक्त होने से चन्द्रमा को क्षयरोग हुआ था। चित्रवीर्य, विचित्रवीर्य केवल अधिक व्यभिचार के ही कारण जवानी में बिना संतान मर गए। रघुवंश में भी एक राजा की मृत्यु अति स्त्री-सेवन से क्षय होने के कारण लिखी है।

एक प्रसिद्ध विद्वान् डॉक्टर ने क्षय के एक हज़ार रोगियों की जाँच की, और नीचे लिखे प्रामाणिक कारण मिले—

अत्यंत स्त्री-प्रसंग	१८६
हस्त मैथुन	१२३
स्वप्न-दोष या वीर्य-विकार	२००
अन्य कारण	शेष

२२८ पागलों की जाँच हुई, उनमें २४ आदमी हस्त मैथुन के कारण पागल हुए। वास्टर के पागलख़ाने में १६६ पागलों में ४२ हस्त-मैथुनवाले थे। अमेरिका के एक बड़े धनाढ्य का लड़का पागल हो गया—कारण हस्त-मैथुन था। एक पादरी का लड़का, जो स्कूल में हस्त-मैथुन करता था, पागल हो गया। डॉक्टर पाइनल ने एक उत्तम चित्रकार का हाल लिखा है, जिसने अपनी सारी कुशलता हस्तक्रिया के कारण खो दी थी, और अंत में पागल होकर मर गया।

यहाँ मैं अपने एक ख़ास सहपाठी का उल्लेख करता हूँ। हमारी श्रेणी में सर्व-श्रेष्ठ और सुंदर बलिष्ट बालक था। हस्त-मैथुन का अभ्यासी हो गया। थोड़े ही दिन में उसकी सारी निपुणता और स्फूर्ति जाती रही। धीरे-धीरे उसे मृगी का दौरा होने लगा, स्कूल छोड़ना पड़ा, और शरीर सूखकर काँटा-जैसा हो गया। रंग पीला हल्दी के समान हो गया। बहुधा खड़ा-खड़ा गिर पड़ता था। फिर भी उसकी यह आदत कम न हुई--जोर ही पकड़ती गई। अंत में रोग का ऐसा वेग हुआ कि दिन में दस-दस बार दौरा होने लगा। शरीर काला पड़ गया। चेष्टा घृणित हो गई। मक्खियाँ उसे सदा घेरे रहती थीं। उसके शरीर में सदा सड़ी दुर्गंध आती थी। भोजन करते ही वमन हो जाता था। बैठे-बैठे धोती में पेशाब निकल जाता था। किसी बालक या स्त्री को देखते ही काम-चेष्टा जाग्रत् होती और तत्काल मृगी का दौरा हो जाता। ४ वर्ष उसे इस नरक-यंत्रणा में हमने बराबर देखा। एक दिन वह उन्माद में घर से कहीं निकल गया।

डॉक्टर इलवर्ट एक ऐसी ही लड़की का हाल लिखते हैं, जो बकरियाँ चराया करती

थी। स्वतंत्रता के कारण वह दो वर्ष तक खूब अप्राकृत क्रिया करती रही, इससे उसको कामवासना बहुत प्रबल हो गई। ज़रा से कारण से भी उसकी वासना प्रचंड हो जाती और वह विवश हो जाती थी। उसका अर्धांग छाती और सिर बहुत निर्बल हो गए थे। अंत में यहाँ तक नौबत पहुँची कि पुरुष को देखने-मात्र से वह स्खलित हो जाती। वह अस्पताल लाई गई, पर अब उसके लिये कुछ नहीं हो सकता था। वह फिर घर भेज दी गई और वहाँ जाकर मर गई।

कुछ व्यभिचारी इतने दुर्बल हो जाते हैं कि एक ही बार के भोग करने से वे मर जाते है। डॉक्टर एदराल ने एक ऐसे ही मनुष्य का वर्णन किया है, जिसे एक वेश्या के घर में भोग करने के पीछे तुरत मूर्च्छा आ गई थी, और वह उसी दशा में अस्पताल पहुँचाया गया था। एक और डॉक्टर ने एक भयंकर व्यभिचारी का वर्णन किया कि जो दिन-रात इसी काम में रहता था। एक दिन वह वेश्या के घर मे सारे दिन रहा, इससे वह मूर्च्छित हो गया, और अस्पताल मे आकर तीसरे दिन मर गया।

फ्रांस का प्रसिद्ध बादशाह पंद्रहवाँ लुई, जो बड़ा भारी लपट, व्यभिचारी था और जिसने अपने शरीर को नष्ट कर डाला था, एक १९ वर्ष की सुंदर कन्या के ऊपर इतना आतुर हुआ कि छल-बल से उसे पकड़वा मँगाया। उसके चेचक निकली थी, पर उसने उसी अवस्था में उससे संभोग किया, इस कारण उसके भी चेचक निकल आई, और उसकी जो दुर्दशा हुई, वह लेखनी से बाहर है। अंतकाल मे उसके शरीर मे इतनी दुर्गंध फैली कि जिस कमरे में वह रहता था, उसके आस-पास की कोठरियों में रहनेवाले उसके नौकर वहाँ से निकल भागे। सब लोगों को नाक दबाकर भागते देख उसे बहुत दुःख और अपने पाप पर बहुत पछतावा हुआ। और कुछ दिन में सड-गलकर मर गया।

हमारे पास एक ऐसा रोगी आया था, जिसकी आधी से अधिक मूत्रेंद्रिय गल गई थी, और उसमें आर-पार छेद हो गए थे। जब वह पेशाब करता था, उन छिद्रों मे फुआरे की तरह निकलता था, और निरंतर पीब-मवाद निकलता रहता था। पेशाब करती बार वह कष्ट से बेहोश हो जाता था। अंडकोश की जड़ें गल गई थी, और उसमें कीड़े पड गए थे। किसी डॉक्टर ने उसका खतना किया था, जो पक जाने पर उसकी यह दशा हुई थी। यह रोग उसने लड़कों से व्यभिचार करके प्राप्त किया था।

हस्त-मैथुन करनेवाले के लक्षण ये हैं—रंग पीला और निस्तेज, दुबला और निर्बल, कायर, डरपोकपन इसका आवश्यक लक्षण है। यह दूसरे पुरुष के साथ आँख नहीं मिला सकता। लजीला और एकांत-प्रिय हो जाता है। कोई बालक यदि अच्छी स्मरण-शक्ति रखता हो, और फिर उसकी स्मरण-शक्ति कम हो जाय, तो जान लो, वह हस्त-मैथुन करने लगा है।

एक रोगी के मूत्र की परीक्षा की गई, मालूम हुआ कि वह पथरी-रोग से पीडित है।

जाँच करने से पता लगा कि उसने १६ साल की आयु से लेकर १९ वर्ष की आयु तक हस्त-मैथुन किया।

व्यभिचार का आत्मा पर प्रभाव—शास्त्र में लिखा है—"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।" ब्रह्मचर्य और तप से देवता अमर हुए। ब्रह्मचर्य और तप से ऋषियों ने इंद्र की संपदा और दुर्धर्ष मोक्ष को प्राप्त किया। आत्मतत्त्व का जो इतना बढ़ा-चढ़ा गंभीर ज्ञान भारतवर्ष के दर्शन-शास्त्र में है, उसकी प्राप्ति ब्रह्मचर्य और तप से ही हुई थी। आचार्यों का मत है कि यह आत्मा बलहीन पुरुष को प्राप्त नहीं होती। मनुस्मृति और योगशास्त्र भी आत्मदर्शन के लिये इंद्रिय और मन के निग्रह को ही एक-मात्र साधन बताते हैं। पुराणों में अनेक ऐसी घटनाओं का वर्णन है कि देवता, इंद्र और दूसरे लोगों ने यदि किसी तपस्वी को सिद्धि-भ्रष्ट करना चाहा, तो उसे स्त्रियों का लालच देकर व्यभिचार में फँसाया। उग्र तपस्वी विश्वामित्र, पवित्रात्मा शुकदेव, शृंगी, आत्मवेत्ता नारद और परमर्षि पाराशर इसी प्रकार के प्रलोभनों के शिकार हुए। कठिन ब्रह्मचर्य से पितामह भीष्म ने वज्रदेह और दिव्य वाणी पाई। लक्ष्मण, हनुमान् आदि के चरित्र भी व्यभिचार से सुरक्षित रहने के कारण ही इतने महत्त्व को पहुँचे।

यह आत्मा क्या वस्तु है, आत्मतत्त्व क्या है, इस बात को जाननेवाले भारत से उठ गए। जिस तत्त्व में साम्राज्य का आनंद मनुष्यों ने पाया, जिसके बदले में संसार की कोई संपदा नहीं स्वीकार की गई, वह आत्मदर्शन अब एक असाध्य बात हो गई है।

व्यभिचार को आत्महनन कहना चाहिए। पाप आत्मा को मलिन करता है, और व्यभिचार सबसे बड़ा पाप है। भय, चिंता, क्रोध, मोह और नीच विचार व्यभिचार के साथ आते हैं। मस्तिष्क में पृथक्-पृथक् स्थान हैं, जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के आनंद ग्रहण किए जाते हैं। विषयानंद जहाँ ग्रहण होता है, वह स्थान सबसे पीछे और सबसे निकृष्ट है।

प्राचीन विधान-शास्त्रों में व्यभिचारी को डाकू और ख़ूनी की सज़ाओं से भी अधिक सज़ा का विधान है, क्योंकि डाकू और ख़ूनी लोग सुधर सकते हैं, उनके सुधरने की आशा है। प्रायः देखा भी गया है कि डाकू और ख़ूनी सुधरकर राज्यों के निर्माणकर्ता बने हैं, पर कोई व्यभिचारी सुधर ही नहीं सकता, वह किसी योग्य रहता ही नहीं। कभी किसी व्यभिचारी ने सुधरकर कोई बड़ा काम नहीं किया। व्यभिचारी सदा अंत में दुःखदायी मृत्यु पाते हैं। भीरुता और हिंसा, अपवित्रता और नास्तिकता व्यभिचार के अवश्यंभावी परिणाम हैं, जो आत्मा पर अवश्य होते हैं। आत्मबल मनुष्य का निज बल है, शेष समस्त बल पशुबल है। यही कारण है कि आज मनुष्य-समाज आचार-विचार और स्वभाव में पशु के समान और योग्यता में उससे भी हीन हो गया है।

व्यभिचार का सामाजिक संगठन पर प्रभाव—जिन्होंने १५वें लुई के समय का फ़्रांस का कुत्सित इतिहास पढ़ा है, और जो उस भीषण लाल क्रांति के विषय में जानते हैं,

जो निरंतर ९० वर्षों तक फ्रांस मे ऐसे थर्रा देनेवाले रूप मे हुई थी कि जैसी कहीं ससार में न थी, तब लोग समझ जायँगे कि व्यभिचार का समाज-सगठन और राष्ट्र पर कैसा वेढब प्रभाव पडता है। इतिहासकार लिखता है—

"उस समय घूस और व्यभिचार की परा काष्ठा हो गई थी। यदि यह कहें कि फ्रांस देश से पातिव्रत धर्म का देशनिकाला हो गया था, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। पद्रहवाँ लुई अत्यंत स्त्री-लंपट राजा था। बुढ़ापे में तो वह अपनी वेश्या के इतना वशीभूत हो गया था कि उसी के इशारे पर राज्य होता था। उमराव लोगों की विलासिनी स्त्रियाँ पहले मध्यम दर्जे के युवा पुरुषों से संबंध रखती और फिर उनसे खटपट होती, तो उन्हें जन्म-भर की कालकोठरी या मृत्यु-दड दिलवा देती थीं।"

स्पार्टा का प्रसिद्ध ऋषि लाइकरगस इस व्यभिचार के भयानक प्रभाव को अच्छी तरह समझ गया था। यह वह समय था, जब सारा स्पार्टा और यूनान ऐयाशी में शराबोर था। उद्योग-धंधे कुछ न थे, झूठ, छल, घूस और व्यभिचार सर्वत्र थे। इस पुरुष ने सामाजिक जीवन को उलटने के लिये सबसे अधिक ज़ोर व्यभिचार की प्रवृत्ति रोकने में किया। इसने कानून बनाए कि विवाह कोई युवक-युवती स्वतंत्रता-पूर्वक न करने पावेगा, वलिक गवर्नमेंट इस बात का निर्णय करेगी, और रूप, स्वास्थ्य और बल मे जो स्त्री पुरुष समान होंगे, उन्हें ही परस्पर विवाह करने की आज्ञा दी जायगी। उसका मत था कि विवाह करना व्यक्तिगत सबंध नही है, सामाजिक सबंध है, और सतान माता-पिता की संपत्ति नही है, गवर्नमेंट की सपत्ति है। उसने यह भी नियम बनाया था कि कोई विवाहित स्त्री-पुरुष स्वच्छंदता-पूर्वक एकत्र नहीं सो सकते थे। उसने ऐसा प्रबंध किया था कि सब पुरुष एकत्र होकर बाहरी स्थान में सोवें। और स्त्रियाँ भीतरी स्थान मे केवल ऋतु-काल में एकत्र हों। विधवा स्त्रियों के लिये क़ानून बनाए थे कि वे चाहें तो वैध रीति से दूसरे पुरुष के वीर्य-दान की आज्ञा प्राप्त कर सकती हैं। इन सबका यह प्रभाव हुआ कि स्पार्टा में बडे-बडे कद्दावर मनुष्य पैदा हुए, और स्पार्टा के योद्धाओं ने तीन-तीन सौ सिपाहियों के द्वारा दस-दस हज़ार शत्रुओं को विजय किया। एक बार एक स्पार्टा के सिपाही स एक परदेशी ने पूछा—"तुम्हारे स्पार्टा में व्यभिचारी को क्या सजा दी जाती है?" उसने जवाब दिया—"मित्र! हमारे देश मे व्यभिचारी होते ही नही।"

अजनबी ने पूछा—"फिर भी यदि कोई व्यभिचार कर बैठे?" सिपाही ने कहा—"तब उसका वह बैल छीन लिया जाता है, जिसका सिर इस पहाडी पर और पूँछ उस पहाडी पर हो।"

आगतुक ने कहा—"भला यह कैसे सभव हो सकता है? इतना बडा बैल तो हो ही नहीं सकता।"

सिपाही ने कहा—"तब स्पार्टा में भी व्यभिचारी नहीं हो सकता।

बाबर और हुमायूँ, जिन्होंने मुगल साम्राज्य की नींव स्थापित की थी, जैसे पुरुष थे, वैसे अंतिम मुगल बादशाह न थे, और उनके दर्बारी अमीर और नवाब तो सर्वथा पतित थे। हुमायूँ के पास चित्तौड की रानी ने राखी भेजी थी, और उसने बहुत बड़ी जोखिम उठाकर भी उसकी आन रक्खी थी। परंतु ज्यों-ज्यों साम्राज्य विशाल और आतंकमय होता गया, त्यों-त्यों राजपरिवार में व्यभिचार की प्रवृत्ति बढ़ती गई। अंत में सिराजुद्दौला, जहाँगीर, मुहम्मदशाह रँगीले ऐसे प्रचण्ड व्यभिचारी उत्पन्न हुए, और इसी कारण साम्राज्य नष्ट हुआ।

प्राचीन युग मे साम्राज्यों के नाश का कारण व्यभिचार की प्रवृत्ति है। रावण का भयंकर नाश एक साधारण बात नहीं है। उसका वह ज़बर्दस्त प्रताप और अखंड तेज ही नहीं नष्ट हुआ, उसका प्रकाड पाडित्य और उच्च वंश का नाम भी सदा के लिये डूब गया। महाभारत भी ऐसी ही घटनाओं का उद्गम है। सारे ससार के राज्यों पर व्यभिचार का बहुत ही नाशकारी प्रभाव पडा है।

यह तो हुई साम्राज्य और राजपरिवारों के नाश की बात। अब सर्व साधारण पर इसका क्या प्रभाव होता है, इस बात पर भी विचार करना चाहिए। मै बता चुका हूँ कि मनुष्य में आत्मबल ही श्रेष्ठ है, और उसी के कारण मनुष्य अपने से बहुत अधिक शरीर-बल रखनेवाले पशुओं का स्वामी है। यह आत्मबल व्यभिचार से किस प्रकार नष्ट होता है, यह बात पिछले अध्याय में कही गई है। उसका प्रभाव समाज पर इतना पडा है कि सारे समाज की रुचि, इच्छा, हौसले, जीवन और कार्य-क्रम गिर गए और छोटे हो गए हैं।

मुगलों के ज़माने तक हिंदुओं में इतना आत्मत्याग था कि लोग जूझ मर सकते थे। औरंगज़ेब के समय में हकीकतराय और गुरु गोविंदसिंह के लडकों ने एक उच्च त्याग और साहस का आदर्श रक्खा था। क्या आज भी वह सब संभव है?

जो लोग वेद-उपनिषद् बाँचते थे, दर्शनशास्त्रों के गभीर विषयों पर महत्त्व-पूर्ण शास्त्रार्थ करते और गवेषणा-पूर्ण आविष्कार करते थे, जो आत्मा को अमर और शरीर को अनित्य समझते थे, ससार जिनकी दृष्टि में सराय थी, भोग जिनकी दृष्टि में स्वप्न थे, और माया जिन्हें छूती न थी, जो सपत्ति-विपत्ति में एक रस थे, जिन्हें मृत्यु से भय न था, जिनकी स्त्रियाँ हँसते-हँसते धधकती चिताओं पर चढकर राख हो जाती थीं, जिन पुरुषों ने प्रायश्चित्त के लिये व्रत करके प्राण विसर्जन किए, भूत-दया, त्याग, वैराग्य, परोपकार और बलिदान जिनके जीवन के उद्देश्य थे, समाधि, प्राणायाम का अभ्यास करके एकातवास के पवित्र जीवन में जिनके दिन व्यतीत होते थे, उनकी आज यह दशा हो गई। वे पुराणों में घृणित व्यभिचार की कथाओं को पढ़ने लगे। देवताओं के पाप-चरित्र बाँचते-बाँचते स्वयं भी वैसे ही हो गए। वह उच्च जीवन, वह त्याग, योग, वैराग्य सब मिट गया। स्त्रियों को बाँधकर दासी बनाया गया, उनके पतिव्रत धर्म का वह तेजस्वी स्वरूप भी खो गया। बाल-विवाहों

की धूम हुई, और सत्यानाश का बीज बुआ। बाल-विधवाओं की खेप बढ़ी। घर-घर मे हाहाकार के नारे बुलंद हुए। ठंडी साँसे हिंदुओं को पाताल मे डुबाने ले चली। बहू-बेटियाँ कुल की नाक कटाने लगीं। जवान बेटे निर्लज्ज, कुलकलंकी हुए। जवान लोग मरने-सड़ने लगे। बुढ़ापे की मिट्टी ख्वार हुई। धर्म-कर्म, जीवन-सुख, लोक-परलोक सब चुल्लू-जल मे डूब गया ! ! !

कहा जाता है, जब रोमनगर धायँ-धायँ जल रहा था, तब नैरो बादशाह वंशी बजा रहा था। मनुष्य मे इतनी निष्ठुरता व्यभिचार की प्रवृत्ति ही उत्पन्न कर सकती है। धर्म-समाज और आचार मे नित्य के जीवन के साथ-साथ, शिक्षा और उपदेश के प्रेम और रीतियो के साथ जब बचपन से स्त्री-पुरुषो को व्यभिचार से हेल-मेल कराया गया, तब यह संभव न था कि मनुष्य चरित्रवान् बनते, और स्वस्थ तथा दीर्घायु होते। अब से तीन-चार पीढ़ी प्रथम के पुरुषों के शरीर में और आजकल के लोगों के शरीर में जो अंतर है, वह देखने से भविष्य की नस्ल के विषय मे मन में भीषण शंका खड़ी होती है। दो पीढ़ी पहले हरएक मनुष्य लंबा, चौड़ा, दीर्घायु, बलिष्ठ, मिताहारी और सशक्त था, हरएक के ४, ६, १२ पुत्र थे। वे सब लक्कड़ के समान ठोस, बल वान्, पट्ठे और सिंह के समान पराक्रमी थे। ब्राह्मण तेजस्वी, संतोषी, सच्चे और समाज को अपने नैतिक प्रभाव मे भयभीत और अधीन करनेवाले थे। क्षत्रिय क्षण-भर मे तलवारो की छाया मे लाल होली खेलकर जूझ मरनेवाले थे। वैश्यो की पवित्र-श्रद्धा, दानशीलता आदर्श थी, और शूद्र शील और शक्ति के स्तंभ थे। स्त्रियो में पवित्र और अद्भुत शक्ति थी, उनके नेत्रो में बिजली के समान मोहक, किंतु भयंकर चमक थी। वे आन पर, मान पर, समय पर, साहस-पूर्वक सती, सीता, पद्मिनी की तरह उत्सर्ग और दृढ़ता के जीवन का उदाहरण दे सकती थीं। स्त्री और पुरुषों के लिये मृत्यु आज्ञाकारी नौकर के समान थी, मृत्यु उन्हें छूती न थी। छूती थी तो वे उससे डरते न थे। यह निर्भयता, यह शांति प्रत्येक नर-नारी और बच्चो मे भी थी। यह समय था, जब मनुष्यों का संगठन राष्ट्र और समाज को, नीति और धर्म की रीढ़ की हड्डी थी। वह सब आज काफूर हो गया। रोग, शोक, भय और हाय, यह हमारा नित्य का धंधा हो गया। जवान अधमरे हो गए। बच्चे तड़पकर मर गए। बूढ़े होना ही बंद हो गया। वीरता को हैज़ा हो गया। सौंदर्य ने संखिया खा लिया। लोग जीते है, पर किस तरह ? जैसे खटमल जीते है। पैदा होते हैं—जैसे बरसात मे अनेक जंतु हो जाते है। खाते-पीते है, मानो रेत और भुस खा रहे है। मरते है, जैसे कुत्ता मरता है। रोते हैं, जैसे गीदड़ रोता है। व्यर्थ, शून्य, अशुभ ! निकृष्ट, लक्ष्यहीन, निराश, अशक्तजीवन, रहन, खान-पान और अस्तित्व है। यह व्यभिचार है, जिसे मनुष्यो के इस पतन के लिये जिम्मेवार ठहराया जा सकता है, ठीक उसी तरह, जैसे शैतान को आदम के पतन के लिये।

प्रकरण 3

व्यभिचार-जन्य महारोग

जो मनुष्य व्यभिचार जन्य महारोगों में फँस गए हैं, उनके दुर्भाग्य पर मैं हाय करता हूँ। क्योंकि वे इस जन्म में कभी उनसे मुक्त नहीं हो सकते, और उनके वंश में भी इन रोगों का पीढ़ियों तक असर बना रहेगा। संसार के जितने महारोग हैं, प्रायः सबकी कुछ-न-कुछ चिकित्सा-विधान हैं। असाध्य होने पर भी बहुत रोग दूर हो जाते हैं, पर व्यभिचार-जन्य रोगों की यह खूबी है कि वे स्वभाव से ही असाध्य हैं—किसी तरह किसी उपाय से ये रोग नहीं दूर हो सकते।

प्रमेह, आतशक (गर्मी), सुज़ाक, उन्माद, नपुंसकता और कोढ़ तथा क्षय इन रोगों की गणना व्यभिचार-जन्य महारोगों में है। ये रोग समस्त संसार में सभ्यता के समान ही बहुतायत से फैले हुए हैं, और वंश-परंपरा तक चलते रहे हैं। जो स्त्री-पुरुष बाहर से नीरोग दीख पड़ते हैं, उनमें भी गुप्तरूप से ये रोग वर्तमान रहते हैं। मनुष्य को पशु से भी अधिक बुरी स्थिति में लानेवाले, शारीरिक, मानसिक आरोग्यता और शक्तियों का संहार एवं पुरुषत्व का नाश करनेवाले ये रोग पुरुष को सब तरह लाचार और भाग्यहीन बना देते हैं।

ये रोग इतने संक्रामक होते हैं कि पास बैठने, चुंबन करने, जूठा अन्न-पान खाने-पीने, एक साथ सोने आदि से दूसरे लोगों को भी लग जाते हैं। बहुधा छोटे बच्चों को मा-बाप और नौकरों की साधारण असावधानी से ही ये रोग लग जाते हैं। बहुत ही संताप का विषय है कि सर्व साधारण को यह ज्ञान बिलकुल नहीं है कि वे अपने गुप्तांग को किस तरह सुरक्षित और स्वच्छ रक्खें, अंगों के धर्म को जानें, उनके सदुपयोग के महत्त्व को समझें, दुरुपयोग के भयंकर परिणामों को पहचानें और लज्जा का विचार न कर संतानों, शिष्यों, युवकों और स्त्रियों को समुचित रीति से उसका ज्ञान करा दें।

उचित तो यह है कि राज्य या समाज की तरफ़ से ऐसे कानून बन जाने चाहिए कि जिन मनुष्यों को व्यभिचार-जन्य रोगों की छूत है, वे विवाह न करने पावें, और संतान न उत्पन्न करने पावें। जिन युवाओं ने अनैसर्गिक रीति से अथवा अन्य कारणों से अपनी पुरुषत्व की-शक्ति खो दी है, उन्हें चाहिए कि वे स्त्रियों के सामने जाकर लज्जित, अपमानित और दुखी होने की अपेक्षा स्त्री-संबंधी अपनी लोलुपता को ही छोड़ दें। जो लोग अशक्त तथा घृणित रोगों में फँसे रहने पर भी केवल औषधों के भरोसे कन्याओं का जीवन नष्ट कर देते हैं, उन्हें उचित

है कि वे संतोष से अपने अनुतापमय जीवन को व्यतीत करें। शोक की बात तो यह है कि मनुष्य-जाति को वीर्य-पात में जितनी स्वतंत्रता है, उतनी किसी दूसरी बात में नहीं है।

१ प्रमेह—यह अधिक व्यभिचार का साधारण, किंतु अवश्यभावी रोग है। इसमें कष्ट विशेष नहीं होता, किंतु शरीर के भीतरी यन्त्रों और जीवन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। फीसदी ९९ मनुष्य इस रोग से पीड़ित हैं, जिनमे स्त्री भी है और पुरुष भी। अब प्रमेह के संक्षेप से प्रकारों का वर्णन करते हैं।

२. मूत्र-ग्रंथि प्रदाह—मूत्रकोष (मसाना) में प्रदाह होने पर ज्वर, वमन करने की इच्छा, अल्प मूत्र, कभी लाल, कभी गँदला, कभी रक्त या मवाद से युक्त होता है। मूत्र-त्याग के समय बहुत जलन और दर्द होता है। मेरुदंड (रीढ़ की हड्डी) और कमर में दर्द होता है, और अंडकोष लाल हो जाते हैं। कभी-कभी पेशाब बिलकुल बंद हो जाता है। मनुष्य का स्वभाव चिड़चिड़ा और बकवादी हो जाता है। रोग बढ़ जाने पर रोगी को बकते-बकते क्रोध में मूर्च्छा भी आ जाती है। कभी-कभी तो रोगी उसी मूर्च्छा में मर भी जाता है।

३. मूत्राघात—मूत्राशय में मूत्र भरा रहने पर भी मूत्र-नली में से नहीं निकलता है। पेट का नीचे का भाग फूल जाता है। मूत्र मे कुछ ज़हरीले पदार्थ मिले रहते हैं, वे जब मूत्र नहीं उतरता, तो रक्त मे मिल जाते हैं। इससे हाथ-पैरो में सन्नाटा, बेहोशी, तंद्रा आदि लक्षण हो जाते हैं। यह रोग बहुधा मूत्र की हाजत होने पर स्त्री-प्रसंग करने से भी हो जाता है। कभी-कभी गुर्दे जो मूत्र बनाने के यन्त्र है, उनमें सूजन आने या उनके निर्बल पड़ जाने से भी मूत्र बंद हो जाता है। ऐसी अवस्था में सलाई चढ़ाने पर भी मूत्र नहीं उतरता।

४. मूत्रकृच्छ्र—घोर कष्ट देनेवाला रोग है। बारबार मूत्र त्याग की प्रवृत्ति होती है, किंतु बड़े कष्ट से बूँद बूँद मूत्र निकलता है, और छुरी से काटने के समान उसमे वेदना होती है।

५. बेख़बरी में मूत्र त्याग—मूत्र धारण की शक्ति संपूर्ण अथवा अधिकांश मे नष्ट हो जाती है। मूत्र-त्याग की इच्छा होते ही मूत्र रोकना कठिन हो जाता है। उसी समय बूँद-बूँद मूत्र टपकने लगता है और दर्द कुछ नहीं होता। पर मूत्राशय मे बहुत-सा मूत्र संचित होने पर भी बूँद बूँद ही निकलता रहता है।

६ शुक्रस्राव—इस रोग का मुख्य कारण हस्त-मैथुन है। इस रोग में धारणा-शक्ति बिलकुल ही नहीं रहती। स्त्रियों के दर्शन-स्पर्शन से, मल-मूत्र त्याग के समय ज़रा ज़ोर लगाने से ही वीर्य-स्राव हो जाया करता है। इस रोग के बढ़ जाने पर ये लक्षण हो जाते हैं—मन में बेचैनी, सलज्जभाव, स्मृति की हानि, निरुत्साह, शारीरिक दुर्बलता, अग्निमांद्य, कोष्ठबद्ध, पेट फूलना, छाती की धड़कन, सिर-दर्द, एकाएक खड़े होने पर अंधकार दिखाई देना, मुख-मंडल की विवर्णता, आँखों का कोटर में घुस जाना, अतिशय मैथुनेच्छा, परंतु लिंगोत्थान होते ही वीर्य-स्खलन, आँखों के किनारे के काले दाग़, स्वप्न-

दोष । इस रोग की अंतिम अवस्था में नपुंसकता, पक्षाघात और क्षय-रोग भी हो जाते हैं।

७ बहुमूत्र—इस रोग की प्रथमावस्था में चमड़ा सूखा और खरखरा, अत्यंत प्यास, अत्यंत भूख, दाँत, जीभ, लिंग आदि में मैल जम जाना, शरीर की क्षीणता, श्वास-प्रश्वास से दुर्गंध आना, जीभ फटी हुई और ललाई लिए हुई, धीरे-धीरे अग्निमांद्य । शरीर जीर्ण-शीर्ण, पैर के तलुओं में बिवाई फटना, शर्करार्बुद (अदीठ नाम का एक भयंकर फोड़ा, जो पीठ में होता और मौत का वारंट है), पुरुष की कामेच्छा प्रबल और स्त्रियों की जरायु में खुजली की सरसराहट से सहवास की इच्छा ।

इस रोग का रोगी दिन-रात में ४ से २० सेर तक वज़न का पेशाब करता है । आगे बढ़कर इस रोगी के मूत्र में शक्कर आने लगती है, यह रोग की असाध्य अवस्था है । ऐसे मूत्र पर चींटियाँ या मक्खियाँ बैठने लगती हैं। बढ़ते-बढ़ते पेशाब शहद के समान गाढ़ा आने लगता है, और रोगी घुल-घुलकर मर जाता है ।

८ स्वप्नदोष—विषय-संबंधी बातों की सदा चिंतना करने से एक प्रकार की उष्णता शरीर के भीतरी अंगों में उत्पन्न होती है, उससे वीर्य समस्त शरीर में से ले-लेकर वीर्यवाहिनी नसों में आ जाता है, वही स्वप्नावस्था में निकल जाता है । प्रथम तो विषय-संबंधी स्वप्न दीखते हैं, फिर बिना ही स्वप्न दीखे धातु-स्राव हो जाता है । मुख मलिन, आलस्य, अंग में दर्द, हाथ-पैरों में हड़कन, भूख और निद्रा-नाश इस रोग में होते हैं । कब्ज़ ज़रूर बना रहता है । अपानवायु बिगड़ जाता है ।

सब प्रकार के प्रमेहों में शरीर ढीला और मन निरुत्साह रहता है ।

९. शीघ्रपतन—इस रोगी का वीर्य पुष्ट रहता है, और स्वप्न-दोष आदि भी नहीं होता, परंतु वीर्यवाहिनी नालियाँ इतनी ढीली हो जाती हैं कि स्त्री के स्पर्श करते ही शीघ्र स्खलित हो जाता है, यह रोग बहुत लज्जित करनेवाला है ।

१० सुजाक—यह एक अतिशय त्रासदायक रोग है । जिन्होंने इस रोग के रोगी को करुण-स्वर में रोते-तड़फते और चीखते देखा है, वे इस दारुण कष्ट को समझ सकते हैं । यह रोग अधिकांश में दूषित-योनि स्त्री से पुरुष को और दूषित पुरुष से स्त्री को लगता है । पर स्त्रियों का मूत्र-मार्ग पुरुषों की अपेक्षा क्षुद्र होने के कारण स्त्रियों को उतना कष्ट नहीं होता है । इस रोग का विष शरीर में घुसने पर पहले ३-४ दिन तक मूत्र-नली में सुरसुराहट और कभी-कभी चमक उठती है । सहवास के प्राय ७ दिन के भीतर ही यह रोग देख पड़ता है । धीरे-धीरे पेशाब करती बार या पेशाब के बाद दर्द होने लगता है । पेशाब की नली का मुख नरम और लाल हो जाता है । ज्वाला बढ़ती जाती है, और कुछ सफेद स्राव होने लगता है । इसके बाद बहुत-सा हरा, सफ़ेद, लाल रंग मिला पीब निकलने लगता है । पेशाब करते समय छुरी से चीरकर नमक लगाने के समान कष्ट होता है । रात्रि को बारंबार अस्वा-

भाविक लिंगोद्रेक और मूत्र करने की इच्छा होती है, इससे नींद टूट जाती है, पर मूत्र साफ़ उतरता नहीं है। यन्त्रणा से रोगी अस्थिर रहता है। लिंग-मुंड लाल और फूला हुआ अंड-कोप और दोनो पट्टो मे दाह, सर्वदा पीव रक्तादि का स्राव, कभी-कभी पीव के सूख जाने पर मूत्र-नली का मुँह बंद हो जाने से मूत्रावरोध, या दो धार से मूत्र निकलना। दो सप्ताह बीत जाने पर रोग पुराना पड जाता और उसकी वेदना कम हो जाती है। इस रोग में मूत्र-नली के निचले सिरे पर (लिंग-मुड के पास) भीतर की तरफ ज़ख्म होता है। कभी-कभी इस रोग में मूत्र बंद हो जाने पर अनाडीपने से सलाई चढ़ाने से मूत्राशय फट जाता और मूत्राशय मे ज़ख्म हो जाता है, जिसका कोई इलाज ही नहीं है। बहुधा अंडकोप इस रोग में छिटक जाते हैं, और यह वेदना उपर्युक्त वेदना से अत्यधिक भयंकर और असह्य हो जाती है। रोगी का उठना-बैठना, सोना-लेटना किसी तरह पल-भर को भी चैन से नहीं होता। यह रोग सबसे अधिक सक्रामक है। अँगरेज़ी में इसे गिनोरिया कहते हैं।

११. आतशक (गर्मी, उपदंश, सिफिलिस)—यह रोग भी बहुत सक्रामक है। सहवास के बाद १० दिन के भीतर-भीतर यह रोग प्रकट होता है।

आतशक-रोग-ग्रसित स्त्री के साथ रमण करने से पुरुष की जननेंद्रिय के उपचर्म की त्वचा फटकर उसमें योनि के भीतर कोमल त्वचा मे से रस का विष प्रवेश करता है। कोई-कोई कहते हैं कि त्वचा के न फटने पर भी पुरुष की जननेंद्रिय मे इस विष के लगने और सूक्ष्म शिराओं द्वारा शोषित होने पर यह रोग उत्पन्न हो सकता है। तदनंतर कई दिन के बाद उस स्थान में एक फुंसी निकल आती है। क्रम से यह फुंसी बढती है। इसका मूल-भाग लाल और अग्र भाग अति कोमल होता है। उसमे पतली पीव भरी होती है। फिर जब उसके ऊपर की त्वचा फट जाती है, तब वह क्षत (घाव) हो जाता है। यह क्षत तीन-चार दिन में ही बहुत बढ़ जाता है। क्षत स्थान से त्वचा किंचित् ऊँचा या त्वचा की समान आयतनवाला और चारो तरफ लाल चक्र-सा होता है। पश्चात् क्षत का जितना आयतन बढता जाता है, बगल का लाल वेष्टन भी उतना ही ऊँचा और दृढ होता जाता है। व्रण की वृद्धि के अनुसार ही उसमें नीचे से सूक्ष्म-सूक्ष्म अंकुर उत्पन्न होते है और उनमें से क्लेद निकलता है। इसी को True Syphilis (प्राकृत उपदंश) या Hard
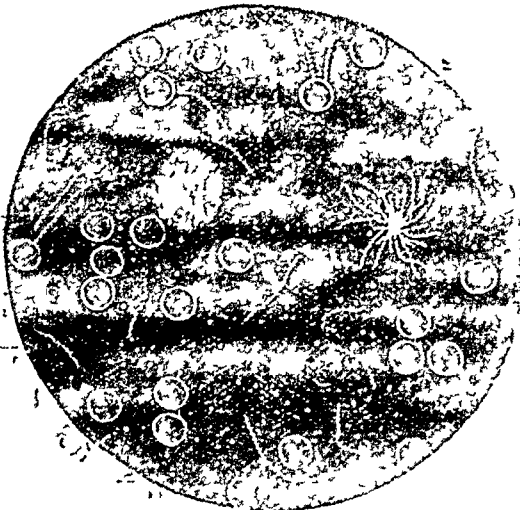
आतशक के कीटाणु

Chancre (हार्ड शंकर) अर्थात् कठिन क्षत कहते हैं। यह क्षत प्रथम एक-दो दिन तक तो नरम रहता है, किन्तु उसके बाद कठिन हो जाता है। Hard Chancre साधारणत स्पर्श में कठिन, अल्प स्राव-युक्त और संख्या में एक होता है। इस प्रकार के फिरंग रोगवाले पुरुष के साथ प्रसंग करने से स्त्री की योनि के ओष्ठों के भीतर यह रोग प्रकट होता है। प्रथम ही क्षत दीखने पर त्वचा के ऊपर को उठ जाने पर तत्काल चिकित्सा करने से रोग वृद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता, किंतु प्राय. ऐसा नहीं होता। इसलिये व्रण के उत्पन्न होने के कई दिन बाद वंक्षण की संधि में एक या दो अथवा अधिक ग्रंथि उत्पन्न होती है। ये आकार में सुपारी के समान और अत्यंत कठिन होती हैं। इनको प्रचलित भाषा में बद, गिलटी या बागी कहते हैं। यह गिलटी सहज में नहीं पकती और पहली अवस्था में उसमें कुछ अधिक पीड़ा भी नहीं मालूम पड़ती। क्रम से थोड़ी-थोड़ी पीड़ा होती है। उसके ऊपर की त्वचा कुछ कठिन होती एवं दस-पन्द्रह दिन में और किसी-किसी रोगी के एक महीने तक में पकती है। वृद्धचिकित्सा में जो-जो औषध कही है, उनका प्रयोग करने से बद तो आराम हो जाती है, किन्तु उपदंश रोग का विष नष्ट नहीं होता।
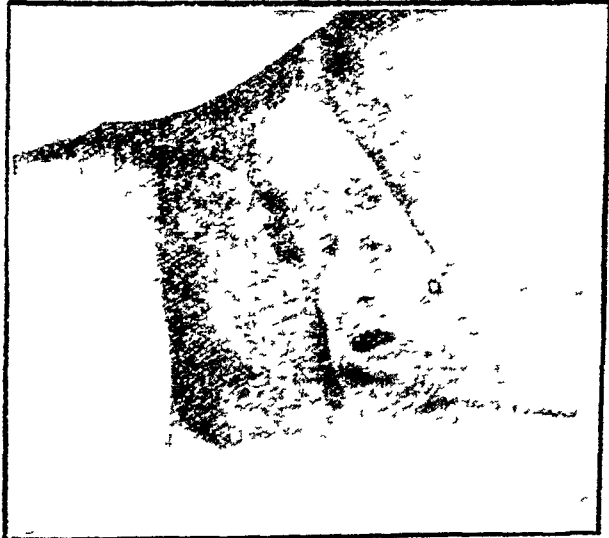
रोग की प्रथम अवस्था

द्वितीय अवस्था —आरंभिक क्षत उत्पन्न होने के दो-तीन व चार महीने के बाद रोग की प्रथम अवस्था का प्रबल प्रकोप ह्रास होकर द्वितीय अवस्था में परिवर्तन होता है। पर दुर्बल मनुष्यों के कुछ दिनों के बाद

रोग की प्रथम अवस्था

और बलवान् मनुष्यों के बहुत दिनों के बाद अवस्था में परिवर्तन होता है। बलवान् मनुष्य को रोग की वेदना कम मालूम पड़ती है। किंतु दुर्बल मनुष्य को अनेक प्रकार की घोर पीड़ाएँ भोगनी पड़ती हैं। उनमें ज्वर भी एक साधारण पीड़ा है, किंतु वह सब में उत्पन्न नहीं होता। शरीर के अवस्था-भेद से या रोग की प्रबलता के तारतम्य से किसी के ही ज्वर प्रबल रूप धारण करता है, प्राय मृदु रूप से ही प्रकट होता और कुछ ज्यादा दिनों तक रहता है। इस समय शरीर में एक प्रकार की फुसियाँ उत्पन्न होती हैं, इनको अँगरेज़ी में इरप्सन कहते हैं। इन फुसियों के उभरने के साथ ही ज्वर कम हो जाता है, किंतु रोगी को सिर-पीड़ा का अत्यंत दुःख भोगना पड़ता है, और यह सिर की पीड़ा फिर नियमित समय पर प्रतिदिन हुआ करती है, और फिरंग रोग के विविध उपद्रव देखने में आते हैं। पीठ में पीड़ा और संधि-स्थानों में सूजन होती है। कहीं-कहीं ज्वरादि लक्षणों के प्रकाशित न होने पर भी फुसियाँ निकल आती हैं। ये फुंसियाँ भिन्न-भिन्न आकारों में देखी जाती हैं। फिरंग रोग की इस दूसरी अवस्था में शिरोरोग, बालों का गिरना (गंज) और त्वचा में कुष्ठ-रोग के लक्षण प्रकट होते हैं। यहाँ तक कि फिरंग-रोग का अंतिम परिणाम—कुष्ठ, मूर्च्छा, आक्षेप और विविध प्रकार की उत्कट वात-व्याधियों का उत्पन्न होना होता है। रोग के अत्यंत प्रबल होने पर स्नायु-शूल, क्षय और हृदय-रोग तक उत्पन्न हो सकता है। फिरंग-रोग के व्रणों को साफ न रखने से पीब निकलकर समीपवर्ती स्थानों में लग जाने से वहाँ भी वैसे ही क्षत पैदा हो जाते हैं। स्त्रियों के फिरंग-रोग होने पर लज्जा-वश वे उसको किसी से प्रकट नहीं करतीं, इस कारण योनि के ऊपरी भाग और उसके दोनों ओष्ठ सूज जाते हैं और उनमें से दुर्गंध और एक प्रकार का रस निकलता है। इस प्रकार प्राय डेढ़ वर्ष पर्यंत यह अवस्था रहती है। इसके बाद रोगिणी को विशेष कष्ट का अनुभव नहीं करना पड़ता। कहीं-कहीं डेढ़ वर्ष के बाद भी यह अवस्था देखने में आती है। हाथ की हथेली

रोग की द्वितीय अवस्था

और पैरों के तलुओं में फुंसियाँ या चकत्ते से प्रकट होते हैं। द्वितीय अवस्था प्रायः डेढ़ से दो वर्ष तक रहती है।

रोग की द्वितीय अवस्था
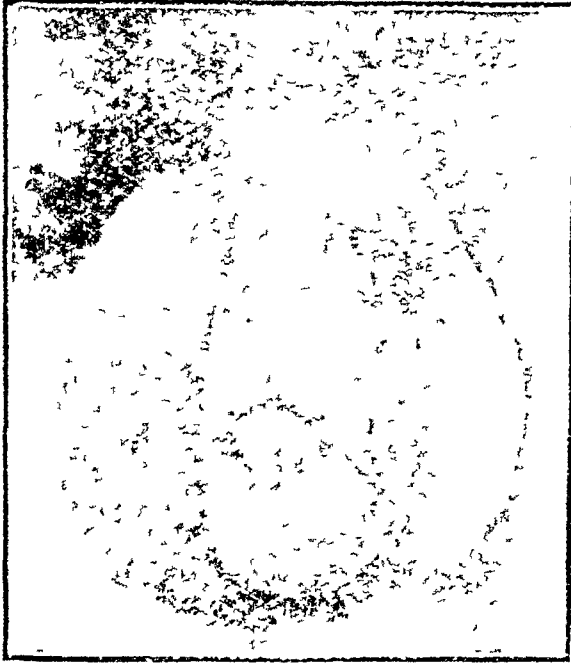
तृतीय अवस्था—उपदंश-रोग की तीसरी अवस्था अत्यंत कष्ट-जनक और सांघातिक है। इस कारण इस अवस्था में त्वचा में, त्वचा के नीचे अस्थि-समीपस्थ मांसादि, मस्तिष्क, शोणितवाहिनी शिरा और कितने ही आभ्यंतरिक यंत्रादि आक्रांत हो जाते हैं। यकृत अधिकता से व्यथित होता है। शरीर की कोमल त्वचा मलिन हो जाती है। कोमल त्वचा और त्वचा के नीचे चत हो जाते हैं और विस्फोटक उत्पन्न होते हैं। त्वचा फटकर पीब बहती है। रोग के अधिक बढ़ जाने के कारण प्राय रोगी का तालु फट जाता है। उसके नासिका-रंध्र और श्वास-प्रश्वास के मार्ग रुक जाते हैं। इसके बाद रोग जितना पुराना होता जाता है, रोगी की अवस्था भी उतनी ही शोचनीय होती जाती है। रोग पुराना होने पर मस्तिष्क, फुप्फुस, यकृत, अन्नवहा नाड़ी, धमनी, मत्र-ग्रंथि, हृदय-पिंड प्रभृति यंत्र आक्रांत होते हैं। मस्तिष्क के आक्रांत हो जाने पर रोगी एक साथ प्रलाप या असंबद्ध भाषण आदि करता है। प्रलापादि होने से पहले रोगी के सिर में पीड़ा, स्मरण-शक्ति का नाश, स्वभाव में विलक्षणता, पक्षाघात प्रभृति लक्षण प्रकट होते हैं। सिर-दर्द, सिर का घूमना या स्वभाव में विलक्षणता

रोग की तृतीय अवस्था

उपस्थित होने पर रोगी मृगी रोग या पक्षाघात के द्वारा पीड़ित होता है। अवस्था विशेष में पक्षाघात के लक्षण प्रकट होते हैं। फुफ्फुस के आक्रान्त होने पर पसलियों में पीड़ा, खाँसी और दमादि रोग समय-समय पर प्रकाशित हुआ करते हैं। किन्तु यह अवस्था कभी-कभी देखने में आती है।

आतशक रोगी की संतान की गुदा सड़ गई है
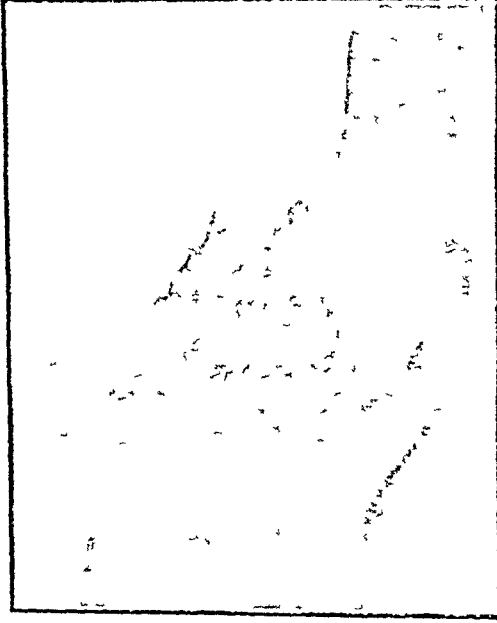
इस प्रकार फिरंग रोग की ये तीन अवस्थाएँ कही हैं। इसकी प्रथम अवस्था में उत्तम विधि से चिकित्सा करने पर रोगी सहज में ही आरोग्य हो सकता है। द्वितीय अवस्था में कुछ अधिक दिनों तक चिकित्सा करने से रोगी आरोग्य हो सकता है, किन्तु तृतीय अवस्था में आरोग्य होना ज़रा कठिन है। कभी-कभी प्रथम और दूसरी अवस्था में सामान्य चिकित्सा के द्वारा रोग दूर हुआ जान पड़ता है, किन्तु वह वास्तव में दूर नहीं होता, कुछ दब जाता है, फिर बार-बार पैदा हो जाता है। अतएव इस रोग की बहुत दिनों तक यथाविधि और यथानियमों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

पैत्रिक प्रभाव—स्वामी (पति) या स्त्री के उपदंश-रोग से ग्रसित होने पर यदि गर्भ-संचार हो, तो बहुत जगह गर्भिणी का पाँचवे, छठे महीने में या पूर्ण गर्भावस्था में गर्भ पतित हो जाता है अथवा मृत संतान उत्पन्न होती है। यदि जीवित संतान उत्पन्न हुई, तो एक या डेढ़ मास में ही उसका

तृतीयावस्था मे जीभ सड़ गई है

शरीर कृश हो जाता है। उसके नासा-रंध्रों मे तरह-तरह की पीडाएँ देखने में आती हैं। कहीं-कहीं कफ मिली हुई पीव नासिका से निकला करती है। श्वास का अवरोध और सर्दी के लक्षण जान पडते हैं। बालक धीरे-धीरे मुरझाने लगता है। फिर इस अवस्था मे शीघ्र ही बालक की कमर के नीचे गुदा के चारो तरफ और पाँवों मे लाल रंग के फोडे दीख पडते एवं नाड, गला और दूसरे संधि-स्थानो मे दाग होते हैं। ये फोडे सब गोल और सूखी त्वचा से ढके हुए होते है। बालक के मुँह के भीतर या बाहर प्राय चत होते रहते है। बालक क्रम से मलिन-सा दीख पडता है। उसके ओष्ठ और नासिका फट जाती हैं। शरीर की त्वचा वृद्धो के समान संकुचित हो जाती है। दाँतो में विकृति पैदा हो जाती है। बालक प्रायः सर्दी से घिरे हुए के समान फायँ-फायँ शब्द करता है। उस समय यथाविधि चिकित्सा न करने से बहुतेरे बालक मृत्यु को प्राप्त हो जाते है। यदि बच जाते है, तो उनकी अस्थि और शरीर के भीतरी यंत्रों में नाना प्रकार के विकार पैदा हो जाते और बडे कष्ट से कुछ दिनो तक जीते रहते है।

सर्वांग मे विष फूट निकला

उपदंश-रोग का परिणाम—उपदंश बडा ही भयानक और दुस्तर रोग है। अन्यान्य रोग उत्पन्न होकर समय पर विविध औषधों और पथ्य द्वारा दूर हो जाते है, और उनके विकार भी भली भाँति निर्मूल हो जाते है। किंतु फिरंग व सिफलिस का विष एक बार शरीर में प्रवेश कर जाने और रस-रक्तादि धातुओं के व्याप्त हो जाने पर सहज में दूर नहीं हो सकता। परंतु स्थायी हो जाने पर संतान-संतति के शरीर में प्रविष्ट हो जाता और वंश-परंपरा से उन्नति करता है। अतएव कितने ही पुरुषो के शरीर में इसके विष का निश्चय करना कठिन हो जाता है। एक बार शरीर में इसका विष प्रविष्ट होने और उसकी चिकित्सा न करने पर बारबार इसके आक्रमण की आशंका रहती है। लोगो का जीवन एक प्रकार से अति दुःखमय हो जाता है और वे सदा ही तरह-तरह की उत्कट व्या-

धियों को भोगा करते है। यह इतना भयंकर और घृणित रोग है कि इसके भयानक परिणाम के स्मरण करते ही शरीर कंपायमान हो जाता है। क्षणिक सुख का परिणाम कितना दुःखमय होता है, भुक्तभोगी लोग इस बात को विशेष रूप से जानते है। इस रोग के प्रभाव से मनुष्य की मनुष्यता नष्ट हो जाती है। मनुष्य पशुत्व या जड़त्व को प्राप्त हो जाता और आजीवन अनेक दुःखों का सहचर बन जाता है। प्राय सभी प्रकार के भयानक रोगों की उत्पत्ति इस फिरंग के द्वारा हो सकती है। प्रथम अवस्था मे रोग सामान्य होने पर भी वह क्रमश अत्यंत कठिन और यन्त्रणाजनक हो जाता है। फिरंग-विष एक शरीर से दूसरे शरीर मे प्रवेश होने पर उत्पन्न हो सकता है। फिरंगाक्रांत मनुष्य का रस, विस्फोटकादि से स्रवित हुआ रस अथवा उसके व्रण का रस शरीर मे प्रवेश होने पर भी यह रोग उत्पन्न हो सकता है, जिसका इसी प्रकार भयंकर परिणाम होता है। उस पाप-कर्म के लिये मनुष्यों की क्यों प्रवृत्ति होती है? क्यो लोग अमृत को छोड़ विष-पान करते है? क्यो पतंगवत् बनकर इच्छा-पूर्वक अपने को इस अग्नि मे स्वाहा करते है? केवल क्षणिक सुख के लिये कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं और कैसी दुर्दशा भोगनी पड़ती है। इस बात को जान-बूझकर भी उस पर क्यों नहीं ध्यान दिया जाता? क्या वास्तव मे ही विधाता ने इंद्रिय-जनित क्षणिक सुख और काम-प्रवृत्ति के चरितार्थ करने के लिये ही मनुष्य-जाति और शुक्र-धातु का सृजन किया है? जो लोग लज्जा और गुरुजनो के भय से रोग को छिपाए रखते हैं, वे धीरे-धीरे उसको और भी भयंकर बना लेते है, और फिर उसका बहुत ही बुरा फल उनको आजीवन भोगना पड़ता है। बहुत लोग रोग को गुरुजनो से छिपाकर सुचिकित्सको द्वारा उत्तम चिकित्सा न कराकर, अनाड़ी, मूर्ख और धूर्त लोगों की बताई हुई या दी हुई औषध के द्वारा स्वास्थ्य का और भी अधिक सत्यानाश कर लेते है। बहुतेरे मनुष्य इस रोग के पथ्य

पिता के अपराध का दंड पुत्र इस भयानक रीति से भोग रहा है

और हिताहित-जनक पदार्थों को न जानकर ऊट-पटाँग पदार्थों का सेवन कर रोग बढ़ा लेते हैं।

नपुसकता—पुरुषों तथा स्त्रियों की गुप्तेंद्रिय और उसके अगले भाग में रबड की तरह सिकुड़ने-बढ़ने की शक्तिवाले अनेक थोथे (सछिद्र) रेशे, अर्थात् ततु और असंख्य ज्ञान-ततु होते हैं। ये रेशे और ज्ञान-ततु परस्पर अच्छी तरह गुथे हुए होते हैं। मनुष्य की नीरोग अवस्था में विषय-वासना की उत्तेजना के समय अथवा ऐसे और अवसरो के समय जब ये रेशे और ज्ञान-तंतु जाग्रत् होते हैं, तब रुधिर उनमें प्रविष्ट होकर अपनी शक्ति के अनुसार उनको भर देता और फुलाकर कडा कर देता है। इस समय उसमें असाधारण गर्मी भी पैदा होती है। परतु जब किसी प्रकार की उत्तेजना अथवा उस प्रकार की इच्छा नहीं होती, तब ये रेशे और ज्ञान-ततु ढीले और पिचके हुए-से रहते है।

ये रेशे और ज्ञान-तंतु जब अपने जाग्रत् होने का काम करते बंद हो जायँ, अर्थात् विषयेंद्रिय की अप्रवृत्ति हो जाय अथवा इन रेशो और स्नायुओं के साथ विषयेंद्रिय की बिजली का सबंध टूट जाय और जननेंद्रिय का योग्य काम करना अपूर्ण रह जाय, तो उस अवस्था को नपुंसकता कहते हैं। यह रोग दो प्रकार का है—सबीज और निर्बीज। कुछ लोग जन्म से ही नपुंसक होते है वे निर्बीज होते हैं। बादशाही ज़माने मे ज़नाने महल मे खोजा बनाने के लिये कुछ लोगों को बचपन से ही नपुंसक बनाया जाता था।

यह बडा बेढंगा और लज्जित करनेवाला रोग है। जननेंद्रिय की पूरी-पूरी शक्ति न खिली हो अथवा प्रारंभिक यौवन में अधिक मैथुन और अयोग्य मैथुन तथा स्त्रियो मे बैठे रहने की आदत से तथा वैसे ही और-और कारणों से मनुष्य नपुंसक हो जाता है। नपुसकता के प्रारंभ मे शीघ्र-शीघ्र धातु-स्राव, फिर जननेंद्रिय को वश मे रखनेवाले ज्ञान ततुओ के थक जाने से शीघ्र-शीघ्र साधारण उत्तेजना और अत में उत्तेजना का समूल नाश।

शर्करार्बुद—जिसे अँगरेजी मे कारबकल कहते है—यह बहुमूत्र या मधुमेही के रोगी को बहुधा हो जाता है। जिस रोगी को यह फोडा होता है, उसके बचने की कोई आशा नही रहती। गर्दन या गर्दन के नीचे या कमर मे यह फोडा होता है। इसका आकार बत्तख के अडे के समान होता है। कभी-कभी यह फोडा सतरे के समान भी बडा होता है। साधारण फोडो की तरह इस फोडे मे एक मुँह नही होता है। इस पर कितनी ही और इसके छोटे-छोटे कितने ही मुँह होते हैं। इन सब मुँह से पतले फेन-जैसा मवाद निकलता रहता है। पहले अल्प स्थान मे हो पीछे क्रमश बढता है। यह फोडा पहले लाल और पीछे काला हो जाता है। एक सप्ताह के बाद फोडे का स्थान और उसके नीचे दूर तक का मास सड जाता है। ज्वर, माथे मे ज्वाला, अरुचि, दुर्बलता, निद्रा-नाश, फोडे मे ज्वाला और महा दुर्गंध-युक्त पीब निकलता है। इस रोग से दो-तीन मास मे रोगी मर जाता है।

गठिया (सन्धिवात)—यह रोग बहुधा सुजाक और आतशक के पीछे उत्पन्न होता और आजन्म बना रहता है। आतशक में पारा खाने से और सुज़ाक में चंदन का तेल

खाने से हड्डियों के जोड़ो मे उसका असर बैठ जाता है। शरीर के संधिस्थल या गाँठों में यह रोग होता है। कभी-कभी दो-चार गाँठ और कभी-कभी सभी गाँठ आक्रांत होती हैं। रोग के आरंभ मे ज्वर आता और गाँठ खूब फूली हुई लाल और दाह-युक्त मालूम होती है। उपरात हिलने से गाँठो का दर्द बढता है। शरीर गर्म, दुर्गंध-युक्त पसीना, कप, कब्जी, सिर-दर्द, प्रलाप, प्यास, हृदय में दर्द, जीभ का रंग पीला, पेशाब कभी लाल कभी सफ़ेद।

दर्द गुर्दा—गुर्दे मूत्र बनाने के यंत्र हैं। ये पीठ के निचले भाग मे दोनो ओर महागिरी-चीज के आकार के हैं। इनमे सुज़ाक के ज़हर के कारण मूत्र मे यूरिक ऐसिड बढ जाने से सूजन हो जाती है, और ये ठीक-ठीक पेशाब नहीं बना सकते, इस कारण मूत्र बंद हो जाता है, और उसके कारण रोगी बहुत कष्ट पाता, मूर्च्छित हो जाता और कभी-कभी ४० घंटों मे मर भी जाता है।

भगंदर—गुदा से दो अंगुल बाद के स्थान में नासूर की तरह एक घाव हो जाता है। पहले वह स्थान सूजा हुआ-सा मालूम देता है, फिर पककर फैल जाता है। उसमें बहुत छोटा सुई के मुख समान छिद्र होता है, उसमें लाल रंग का फेनदार पीब निकलता है। कभी-कभी घाव बड़ा हो जाता है, तो उसी रास्ते वीर्य-मूत्र-मल भी निकलने लगता है। बहुधा यह रोग उपदंश (आतशक) के कारण उत्पन्न होता है। यह रोग बहुत कम आराम होता है। अंतिम अवस्था में उसमें कीडे पड जाते है, और उसमे से अपानवायु भी निकलने लगता है। अंत मे रोगी की मृत्यु होती है।

कुष्ठ—यह पाप रोग है। इसके अन्य भी कारण हैं, पर व्यभिचार से इसकी उत्पत्ति के तीन निकटस्थ संबंध है। १—खाया हुआ भोजन न पचने पर स्त्री-संगम करते रहना, २—उपदंश या पारद विकृति (उपदंश जल्दी आराम होने के लिये लोग पारा सेवन करते हैं। वह पारा ठीक-ठीक शुद्ध न होने से अनेक उत्कट रोग पैदा करता है), हड्डी मे जलन, संधि में दर्द, सर्व शरीर मे घाव, हाथ-पैर के तलुवों से चमडा उखड जाना, मुख-नाक मे घाव, तालुए मे भीतर जख्म, दाँतो का गिर जाना, नाक बैठ जाना, पक्षाघात, अंडकोशों मे सूजन और कठोरता, पीछे सर्वांग मे सडाव और गलितकुष्ठ !! ३—ऐसे रोगी स्त्री-पुरुष का सहवास।

कुष्ठ रोग उत्पन्न ही उस समय होता है, जब रसधातु मे विकार घुस बैठता है। प्रारंभ मे अंग की विवर्णता, रूक्षता, स्पर्श-शक्ति का नाश, रोमांच, अधिक पसीना, उसके बाद खून गाढा होकर जम जाता है, इस कारण सर्वांग में खुजली और जगह-जगह पीब का संचय। उसके बाद शरीर का खरखरा होना, मुँह सूखना, फुंसी उत्पन्न होना, शरीर मे सर्वत्र सुई गाडने के समान दर्द होना। और घावों का फैलना, उसके बाद हाथ की उँगलियाँ गलकर बह जाना, चलने की शक्ति का नाश, अंग टेढा हो जाना और घावो का रूप बिगड जाना। अंत में नासा भंग, नेत्र लाल, स्वर भंग, घावो में कृमि और मृत्यु।

स्त्रियों के विशेष रोग

पीछे लिखे गए महारोगो के सिवा स्त्रियों को ख़ास तौर से ये रोग अधिक होते हैं—

प्रदर—अधिक सहवास का साधारण परिणाम। यह रोग प्रमेह के प्रकार का है। इसके दो प्रकार है—एक श्वेत दूसरा रक्त। बदन में दर्द, योनि-द्वार से स्राव, कच्चा रस-युक्त चिपकता हुआ पीला रंग या मांस के धोवन के समान स्राव अथवा पीला, नीला, काला, लाल, गरम स्राव-दाह और दर्द के साथ अथवा झागदार, शहद, घी या हरताल के रंग के समान दुर्गंधित। यह रोग पुराना होने पर हृदय और यकृत की क्रियाएँ निर्बल पड जाती है, और रोगिणी दुर्बल होती जाती है। अंतिम अवस्था में सर्वांग ज्वर बना रहता है।

बाधक रोग—यह रोग अति मैथुन और विषम मैथुन से तथा प्रदर रोग के कारण उत्पन्न होता है। पेट, कमर में चीरने के माफिक दर्द, नाभि के नीचे, दोनो स्तनो मे दर्द, कभी-कभी दो मास तक स्राव, दुर्बलता, सिर-दर्द, आलस्य, अग्निमांद्य, वमन, देह की स्थूलता, योनि मे शूलवत् दर्द।

हरितपीडा—यह रोग गाजर, मूली या अन्य कठोर वस्तु से अनैसर्गिक रीति से योनि को घर्षण करने से होता है। इस रोग मे रक्त के लाल कणों का भाग घट जाता है। इसलिये देह का चमडा मिट्टी के समान सफेद, पीला या पाडु हो जाता है। मासिक नियत समय पर नहीं होता। शरीर का ताप घट जाता है। सदा सर्दी मालूम होती रहती है। आँखों की पलकों में सूजन और उनके के चारो ओर स्याह दाग। छाती की धडकन, नाडी क्षीण, होठ सफेद और सूखे हुए। अजीर्ण, कोष्ठबद्ध स्वभाव में चिडचिडापन आदि।

हिस्टीरिया—यह जरायुज मूर्च्छा का प्रकार है। स्नायु-समूह की खासकर जरायु के स्नायु-समूह की उग्रता की वजह से यह रोग उत्पन्न होता है। रोग उत्पन्न होने से पहले छाती में दर्द, शारीरिक और मानसिक ग्लानि, प्रकाश और लज्जानाश हो जाता है। देखने मे रोग मृगी-जैसा दीखता है, पर इसमे न रोगी के मुख मे झाग आते है, और न आँख का तारा बडा होता है। किसी को अकारण हँसी, रोदन, चिल्लाना, अपने ऊपर या घरवालो पर वृथा दोष लगाना, कभी-कभी अपने को वृथा अपराधी समझकर दूसरे से क्षमा-प्रार्थना करना आदि विचित्र भाँति लक्षण भी दिखाई देते है। किसी-किसी के पेट के नीचे से एक गोला ऊपर उठता मालूम पडता है, तथा शरीर के किसी स्थान मे दर्द मालूम होता है। हस्त में सफेद रोशनी देखने और ऊँची आवाज़ सुनने से चमक उठती और पुरुष-संग की अत्यंत इच्छा रहती है। यह रोग प्राय बडे घरों मे उन स्त्रियों मे देखा जाता है, जो सुंदर और कम उम्र हैं—या तो वे विधवा हो गई है और कामेच्छा प्रबल होने पर उन्हें पुरुष नहीं मिलते है या उनके पुरुष निर्बल या नपुंसक हैं। प्रसग से उनकी लालसा प्रबल तो हो जाती है, तृप्ति नहीं होती।

जरायु-प्रदाह—कृत्रिम उपायों से गर्भ न रहने देने का उपाय करने से या गर्भ गिरा देने से अथवा बहुत दिनो तक हरितपीडा भोगने से जरायु वेदना-युक्त कठिन और बडा हो जाता है। इस रोग मे पेट भारी जान पडना, बाधक वेदना, स्तन और कमर मे वेदना, मूत्रस्थली और मल-द्वार मे वेग, हिस्टीरिया आदि इस रोग के प्रधान लक्षण है।

जरायु अर्बुद—जरायु-गह्वर में तरह-तरह के दाने निकल आते हैं। इनका आकार मटर या अरहर के दाने से लेकर २० सेर तक होता देखा गया है। यह संख्या में ४० तक हो सकते हैं। किसी-किसी से पीव-रक्त निकलता और कोई सूखा रहता है। कभी-कभी श्वेतप्रदर भी रहता है। इस रोग का कारण दूषित पुरुष से संग आदि है। इसका परिणाम वन्ध्यापन है।

जरायु की स्थानच्युति—उलट-पुलट आसन से मैथुन करना, उछल-कूद आदि अमर्यादा के कार्य करने से जरायु कभी-कभी अपने स्थान से टल जाता है। इसे 'धरन डिगना' भी कहते हैं। यह दो तरह से टलती है—१—स्थान-भ्रष्ट होकर वस्ति के कोटर के भीतर ही रहे। २—योनि के बाहर निकल आवे। दोनों अवस्थाओं में जरायु या तो सामने खिसक जाता या उतर जाता है, या पीछे खिसक जाता या उतर जाता है, पेडू में दर्द होता है। पेशाब में दर्द, श्वेतप्रदर, या तो अधिक रक्त-स्राव या बिलकुल मासिक धर्म बंद। इस रोग से बाधक और वन्ध्याभाव उत्पन्न हो जाते हैं।

डिम्बकोष-प्रदाह—ऋतुकाल में पुरुष-संग करने से रजोरोध होकर यह रोग उत्पन्न होता है। वेश्याओं और व्यभिचारिणी स्त्रियों को ही यह रोग अधिक होता है। पुट्ठे के कुछ ऊपर और पेट के खूब भीतर वेदना और चमक। दाबने या हिलाने से दर्द बढ़ता है। ज्वर, वमन, सगमेच्छा इस रोग के लक्षण हैं। पुराना होने पर कभी-कभी पीव भी आने लगता है।

योनि-प्रदाह—सुज़ाक के रोगी पुरुष के संगम करने से, अत्यंत मैथुन से, बलात्कार से, प्रसवकाल के बाद तत्काल ही मैथुन में तथा और कारणों से यह रोग होता है। योनि लाल, गर्म, फूली हुई और वेदना युक्त हो जाती है, और पेशाब करते वक्त योनि में खुजली चलती है। कभी-कभी पीव भी निकलने लगता है। रोग पुराना होने पर योनि के भीतर श्लेष्मवहा झिल्ली में नीली, लाल फुंसियाँ हो जाती हैं। योनि ढीली हो जाती है।

कामोन्माद—निरंतर प्रसंग करते रहने के पीछे पुरुष के मर जाने या किसी अन्य कारण-वश स्त्री को एकाएक पुरुष की प्राप्ति न होने पर उसे कामोन्माद होता है। ऐसी स्त्री की योनि के भीतर छोटे क्रिमि जैसे कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। उनकी सरसराहट से स्त्री की जननेंद्रिय में तीव्र और विह्वल करनेवाली उत्तेजना हो जाती है। ऐसी स्त्री असमय हास्य, गीत, शृंगार और किसी भी पुरुष को देखकर निर्लज्ज चेष्टा करती है। घर से बाहर भागती है। ऋतुकाल के बाद रोग का वेग बढ़ जाता है।

वंध्यात्व—वंध्या होने के तीन कारण हैं—१—उपर्युक्त किन्हीं रोगों के कारण। स्त्री के जरायु, डिम्बकोष या योनि में कोई व्याघात उत्पन्न हो जाय। २—अतिशय व्यभिचार के कारण जननेंद्रिय में बीज ग्रहण करने की शक्ति नष्ट हो जाने से वीर्य वमन हो जाया करे। ३—प्रकृति से ही वंध्या हो।

प्रकरण ४

इन महारोगों की चिकित्सा

यद्यपि ये महारोग चाहे भी जितने साधारण श्रेणी के हों, परम दुस्साध्य हैं, फिर भी पाठकों के लाभार्थ हम यहाँ उन रोगों की चिकित्सा के संबंध में संक्षेप में कुछ वर्णन करते हैं।

प्रमेह-चिकित्सा

सब प्रकार के प्रमेह-रोगियों की अधोवायु बिगड़ जाती है। इसलिये प्राय सभी प्रमेहियों को मंदाग्नि और दस्त की कब्ज़ी बनी रहती है। कुछ वैद्य, डॉक्टर लोग इस बात पर विचार न करके उन्हें तत्काल वीर्य-वर्द्धक या पौष्टिक औषध दे देते हैं। यह अत्यंत हानिकर है। क्योंकि प्रत्येक पौष्टिक वस्तु चिकनी, लहसदार और गरिष्ठ होती है—और उसका पचाना बहुत मुश्किल है—जो इन औषधों को पचा नहीं सकते हैं, उन्हें और अनेक रोग हो जाते हैं। इसलिये यह उचित है कि इस बात का ध्यान रक्खे कि रोगी को कब्ज़ न होने पावे, अजीर्ण न होवे। अरुचि न होवे, रोगी को यदि प्रथम से ही कब्ज़ी हो, तो कभी भूलकर भी तेज़ जुलाब न दे। धीरे-धीरे तर और नर्म ख़ुराक और औषध देकर मल को मुलैयन करे। और मल को साफ होने दे। इसके बाद वीर्य का रेचन या शोधन करे।

त्रिफला १॥ तोला, हल्दी ६ माशा। रात्रि को एक मिट्टी के बर्तन में भिगो दी जाय, प्रातःकाल मल छानकर और दो तोला शहद मिलाकर पी जाय, तो २१ दिन में वीर्य की शुद्धि होती है। वीर्य का रेचन भी होता है। इसके बाद दो सप्ताह यह चूर्ण देना चाहिए—

इलायची दाना, शिलाजीत, पीपल, पाषाणभेद सब बराबर चूर्ण करो। ६ माशा चूर्ण चावल भिगोए पानी के साथ देना चाहिए।

यह दवा दो सप्ताह देने पर फिर यह दवा देनी चाहिए—

कृष्ण धतूरे के बीज ४ तो०, कटेहली के बीज ११ तो०, विदारीकंद २ तो०, मूसली सफ़ेद २ तो०, मूसली स्याह २ तो०, पोस्त दाने २ तो०, चव्य २ तो०, असगंध २ तो०, खरेटी के बीज २ तो०, मखाना २ तो०, तबाखीर २ तो०, दारचीनी २ तो०, इलायची २ तो०, लौंग २ तो०, समुद्रसोख २ तो०, पीपल २ तो०, जायफल २ तो०, जावित्री २ तो०, धनिया २ तो०, कायफल २ तो०, ख़ुरासानी अजवाइन २ तो०, सत-गिलोय २ तो०, तालमखाना २ तो०, गोखरू २ तो०, तिल २ तो०, सिंघाड़ा २ तो०, कंकोल २ तो०, सबसे चौथाई मोचरस और सबसे चौगुनी सेमल की जड़ लेकर पीसे,

फिर सबको १३ सेर दूध मे मावा पकावे। इसमे २४ तो० घी, २४ तो० शहद, २२ तो० मिश्री मिला देवे, २ तोले की मात्रा दूध के साथ रात्रि को खाय।

यदि शीघ्रपतन की शिकायत हो, तो यह दवा सेवन करनी चाहिए—

कुलीजन, शतावर, तालमखाना, मूसली स्याह मुसली सफ़ेद, सत गिलोय, असगध नागोरी, गोद सहजना, मोचरस, समुद्रसोख, रूमीमस्तगी, वहमन सफेद, शकाकुल, सालम मिश्री, इलायची दाना सफेद, सब एक-एक तो० लेकर चूर्ण करके सबके बराबर सफेद शक्कर मिलाकर डेढ पाव बढ़िया शहद मिलाकर पाक-जैसा बना ले, मात्रा छ-छः माशा, दोनो समय खाय, गाय का धारोष्ण दूध ऊपर से पीवे। शीघ्रपतन पर सिद्ध प्रयोग है।

धातु-वर्द्धक प्रयोग

इन प्रयोगों से वे लोग लाभ उठा सकते है, जिन्होने अधिक स्त्री-प्रसंग द्वारा अधिक वीर्य क्षय किया है, और जिनके शरीर और अग मे कुछ सुस्ती और कमज़ोरी बनी रहती है। ऐसे लोगों को ब्रह्मचर्यव्रत-पूर्वक कुछ दिन इन प्रयोगो में से किसी एक का सेवन करना चाहिए।

१—विदारीकंद का चूर्ण करके उसी के रस मे २१ बार भावना (रस में भिगोकर छाया मे सुखाओ) दो। इस चूर्ण की मात्रा १ तोला है। १ तोला घी और २ तोला शहद में मिलाकर प्रात काल चाटना। ऊपर यथारुचि गर्म दूध पीना।

२—गोखरू, तालमखाने, सतावर, कौंच के बीच, खरेटी, गगेरन सब बराबर लेकर कपडछन चूर्ण करे। मात्रा ६ माशे रात्रि को फकी लेकर ऊपर गर्म दूध पीवे, अत्युत्तम है।

३—सोठ ४ मा०, अकरकरा २ मा०, सेमल का गोद ४ मा०, लोबान ८ मा०, मैदा लकडी २ मा०, तिल काले २॥ तो०, पीपल छोटी २८ मा०, सबके बराबर मिश्री। कपडछन चूर्णकर १ तो० रात को फाँककर ऊपर से गर्म दूध पीवे।

नपुसक

ऐसे रोगी केवल नीचे लिखी हालतों मे ही अच्छे हो सकते है—

१—जो जन्म से नपुंसक न हो, और जिनके अवयव की बनावट में कुदरती दोष न हो।

२—किसी आपरेशन मे कोई नस न कट गई हो।

३—जो कुचेष्टाओं का चिर अभ्यासी हो, और इस कारण जिसके अवयव सर्वथा निस्तेज हो गए हो।

यदि लिगेंद्रिय की नसो मे पानी भर आया हो, तो इन पोटलियो का सेक गुणकारी होगा—

हाथीदाँत का चूरा १ तो०, मछली के दाँतो का चूरा १ तो०, लौंग ८ मा०, जायफल गुजराती २ नग, नरगिस की जड १ नग, अफीम १ मा० सबको पीसकर दो पोटली

बनावे और आध पाव भेड़ या भैंस का दूध पकावे, जब उसमें भाप उठने लगे, तो पोटलियों को भाप पर रख पेडू, जाँघ और गुप्तेंद्रिय को सेंके, ऊपर बँगला पान बाँधे, पानी न लगने दे।

हस्त-मैथुन आदि से गुप्तेंद्रिय टेढ़ी पड़ गई हो, तो उसकी यह दवा करे—

अफीम २ मा०, जायफल ५ मा०, अकरकरा ५ मा०, प्याज-नर्गिस १ तो०, सफेद कनेर की जड़ का छिलका १॥ तो० सबको दो प्रहर तक शराब में घोटकर इंद्रिय पर लगावे। दो सप्ताह में टेढ़ापन आराम होगा।

इसके बाद यह दवा खानी चाहिए—

सिंघाड़ा, समुद्रसोख, शखपुष्पी, गोखरू, मालकाँगनी, इमली का चीआ, सालम मिश्री, तालमखाना, मोचरस, मूसली स्याह, मूसली सफेद, सेमल की मुसली, कौंच के बीज, गाजर के बीज, भोफली, बहमन सुर्ख़, बहमन सफेद, तोदरी सुर्ख़ तथा सफ़ेद, मस्तगी, शकाकुल, कुलीजन, जायफल, लौंग, जावित्री, अकरकरा, केशर, दारचीनी, शिलाजीत, वंगभस्म, मूँगा-भस्म, फौलाद-भस्म सब बराबर, सबके बराबर मिश्री मिला ४ माशे प्रातःकाल खाय, तो वीर्य की कमी, पतलापन, स्मरण-शक्ति का नाश, मूत्रकृच्छ्र, धातुपात, स्वप्न-दोष, इंद्रियों की निर्बलता, इंद्रिय में बाँकपन, जड़ का पतला होना इत्यादि-इत्यादि दोषों में पूर्ण लाभदायक है।

सूजाक

इस रोग का सबीज नाश किसी तरह नहीं होता। अभी तक ऐसी कोई औषध शोधी नहीं गई है। पाश्चात्य डॉक्टर लोग इसके लिये बहुत जाँच पड़ताल कर रहे हैं। नीचे लिखा नुस्ख़ा बहुत उत्तम है—

वंशलोचन १ तो०, माजूफल १ तो०, कत्था सफेद १ तो०, बारीक चूर्ण कर २ तोला शुद्ध चंदन के तेल में ३६ गोली बनावे। प्रत्येक ३ घंटे में एक गोली मिश्री के शर्बत के साथ खाय। दूध-चावल का भोजन करे, तो अत्यंत पुराना सूजाक भी अवश्य आराम होगा।

आतशक

इस रोगवाले को प्रथम सात दिन तक मल फुलाने की दवा पीकर जुलाब लेना, फिर खाने-पीने की दवा लेना।

मल फुलाने की दवा—उन्नाव ५ दाने, शहतरा ५ माशे, चिरायता ६ माशे, गावज़ुबाँ ५ माशे, सौंफ़ की जड़ ६ माशे, मकोय खुश्क ४ माशे, कासिनी की जड़ ६ माशे रात को पाव-भर पानी में भिगो दे, सुबह को पकाकर जब आधा पानी रहे, दो तोले गुलकंद डालकर छानकर पीवे। अथवा,

गावज़ुबाँ ६ माशे, मुनक्का नौ दाने, गुलाब के फूल ५ माशे, मुलहठी ५ माशे, सौंफ की जड़ ६ माशे, अफतीमून ३ माशे, बेद अंजीर की जड़ की छाल ६ माशे तीन पाव पानी में रात को भिगो दो। सुबह को पकाकर जब आधा पानी रहे, गुलकंद दो तोले डाल-

कर मलकर छानकर पीवे। मूँग की खिचडी खाय, सात दिन यह दवा पीवे, फिर कत्था सफेद, काला दाना, जमालगोटा शुद्ध ७ माशे, सबको खूब खरल करे, जमालगोटा जितना खरल होगा, उतने ही दस्त अधिक होंगे और वमन भी न होगी। खरल करके मटर के समान गोलियाँ बनावे, पाँच या सात गोली ठंडे पानी के साथ खिलावे, जब एक दस्त हो जाय, गर्मी मालूम हो, तो एक कटोरा खाँड का शर्बत पिलावे, जो दस्त कम आवें, तो सील गर्म पानी पिलावे, फिर गावजुबाँ १ तोला आधा पाव पानी मे रात को भिगो दे, सुबह को १ लुआब निकालकर मिश्री डालकर पिलावे, इसी प्रकार तीन या चार जुलाब दे, फिर खाने-पिलाने की दवा करे।

दवा खाने की—लौंग, रसकपूर, मिर्च स्याह, अजवाइन देसी, अजवाइन खुरासानी सब दो-दो माशे। लौंग और रसकपूर को लोहे की कडाही मे दस तोले बकरी का दूध डालकर घोटे, जब कुछ नरम-सा रहे, तब सब दवा पीस छानकर डाल दे, फिर सबको घोटकर दो माशे की गोली बनावे। प्रातःकाल एक गोली गाय के दही मे खिलावे पाँच दिन तक। खाने को दूध-दही, भात दे। जो मुँह आवे, तो राल टपकावे। जब खूब राल निकल जाय, तब कचनार, चमेली, झडबेरी इनकी छाल को पानी में पकाकर कुल्ले करे, आराम हो।

जिसके बदन पर आतशक के चकत्ते पड गए हो, उसको इसबगोल ६ तोले सुरमे के समान पीस-छानकर उसमे से तीन तोला अच्छा-अच्छा रख ले शेष फेंक दे, उसमे शहद मिलाकर तीन गोली बनावे। प्रथम रोगी को तीन दिन खिचडी खिलावे, चौथे दिन एक गोली गरम पानी के साथ दे। वह गोली पच जाय, तो अच्छा है और लौटकर बाहर आवे, तो गरम पानी से धोकर फिर निगला दे, जो दूसरी बार भी न पचे, तो उसी गोली को धोकर ४ टुकडे करे, और एक टुकडा गरम पानी से निगला दे, और फिर भी थोडी-थोडी देर मे गरम पानी पिलाता रहे, जब तक गर्म पानी पीवेगा, तब तक दस्त आते रहेंगे। आठ-सात दस्त आने के बाद दोपहर को ठंडे पानी से हाथ-पॉव धोकर खिचडी खाय। अगले दिन गोली न खाय, किन्तु खिचडी ही खाय, फिर तीसरे दिन एक गोली के तीन टुकड़े करके गरम पानी के साथ निगल जाय। इसी प्रकार एक दिन बीच मे छोडकर तीसरी गोली भी खा ले, इस जुलाब से उदर का सब मवाद निकल जायगा। इसके उपरात एक तोला अमलतास एक कोरे मिट्टी के प्याले में शाम को आध पाव पानी में भिगो दे, सुबह को नितरा पानी पी ले। ऐसे ही ४० दिन मे ४० तोले अमलतास का पानी पीवे। खाने को गेहूँ की रोटी, मूँग की दाल, पाव-भर घी नित्य खाय, उपदंश का सपूर्ण विकार जाय, शरीर शुद्ध हो।

जिसे आतशक से कुष्ट हो गया हो, पाँच भिलावो में पाँच माशे पारा भर दे, फिर तीनो अजवाइन, मिर्च स्याह पाँच-पाँच माशे, गुड २० माशे खूब कूटकर वह भिलावे, जिनमें पारा भरा है, अलग-अलग इस गुड मिली दवा मे लपेटकर दो शरावों में संपुट कर चूल्हे के नीचे

४० दिन गड़ा रक्खे, फिर निकालकर गोली दो-दो माशे की बनावे। नित्य ४० दिन तक खावे, नमक, लाल मिर्च और गर्म चीज़ न खाय।

आतशक के लिये मरहम—जो रात-दिन में दाने और ज़ख़्मों को खो देता है—चोबचीनी की गर्द आधा दिरम, तूतिया धुला हुआ बीस दिरम। मुर्ग़े के अण्डे को भूभल में दाबकर उसकी ज़रदी में सब दवा मिलाकर मरहम बनाकर लगावे, चोबचीनी की गर्द न मिले, तो पारे को कपड़े में लपेटकर जलावे, उसकी ख़ाक आधा मिसक़ाल डाले।

मरहम आतशक के ज़ख़्मों तथा नासूर को दूर करे। रसौत एक दाम, पारा, गूगल आधा-आधा दाम, थोड़ा पानी डालकर काँसे के बर्तन में नीम की लकड़ी के सिरे पर पैसा जमाकर उसमें ख़ूब घोटकर लगावे।

यदि किसी के बदन में स्याह या सुर्ख़ धब्बे पड़ जायँ, या तमाम बदन नीला हो गया हो, तो पहले तीन दिन मूँग की खिचड़ी खिलाकर यह जुलाब देवे— काला दाना नौ माशे अधभुना करके बारीक पीसे, उसकी बराबर कच्ची खाँड मिलाकर तीन पुड़िया बनावे। १ पुड़िया सुबह को गर्म पानी के साथ खाय, प्यास लगे तो भी गर्म ही पानी पीवे। शाम को खिचड़ी और आम का अचार खिलावे, और जो किसी के मुँह के अंदर वार-पार सुराख़ पड़ गया हो, या आधा कौआ गल गया हो, तो यह जुलाब दे—पिस्ता, बादाम, चिलगोज़ा, गोला पुराना, किशमिश पुरानी, जमाल गोटा शुद्ध इन सबको बराबर लेकर पानी में पीस जंगली बेर के बराबर गोलियाँ बनाकर पहले तीन दिन अरहर की खिचड़ी खिलावे, फिर दो गोली मलाई में लपेटकर खिलावे, ऊपर से गर्म पानी पिलावे।

जो इस बीमारीवाले को किसी ने शिंगरफ़ बहुत खिलाया हो और उससे तमाम बदन बिगड़ गया हो, तो पहले यह दवा दे। कुटकी १ तोला, आम की बिजली २ तोला, जमाल गोटा शुद्ध ३ तोला, खयारेंन २ तोले, मिश्री ३ तोले सबको बारीक पीस-छान-कर इन दवाओं को १२ पहर पुराने गुड़ में कूटकर, जंगली बेर के बराबर गोलियाँ बनावे। १ गोली नित्य खिलावे। ऊपर से ताज़ा पानी पीवे, दस्त या वमन हो, तो अच्छा है। जो इससे आराम न हो, तो पहले ३ दिन यह दवा पिलावे, और खिचड़ी खिलावे—सौंफ़ १ तोला, मुनक़्क़ा १२ दाने, ख़तमी १ तोला, मकोय १ तोला, खुबाज़ी १ तोला, गुलक़न्द २ तोला शाम को पानी में भिगो दें, सुबह को पकाकर पिलावे। तीन दिन तक यह जुलाब दे—गुलाब के फूल २ तोले, ख़तमी १ तोला, गारीक़ून ६ माशे, निसोत सफ़ेद ६ माशे, एरंड के बीज ३ तोला, एलुआ स्याह १ तोला, सोंठ ६ माशे, कद्दू की मींग २ तोले, सक़मूनया ६ माशे, आँवला ६ तोले, सनाय २ तोले, बिसफाइज़ १ तोला, बड़ी हरड़ १ तोला इन सबको पीस छानकर पानी से जंगली बेर के बराबर गोलियाँ बनावे। १ गोली खिलावे, दो पहर बाद मूँग का पानी दे, और शाम को मूँग की खिचड़ी। इसी तरह तीन जुलाब दे। इन दवाओं से आराम हो, तो अच्छा है, नहीं तो यह अर्क़ पिलावे—आतशक के सबब शरीर में

ख़ून का फ़साद हो गया हो, उसको दूर करेगा। सौंफ़ हरी, बडी हरड, छोटी हरड़, सनाय, वायविडंग शाहतरा, सर्दफोका, सोक का ज़ीरा, मकोय, चिरायता, ब्रह्मदडी, नकछिकनी पाव-पाव-भर। सुपारी पुरानी, ऑवला, वक़ायन के फल, नीम की निबौली, जामन की गुठली, कीकड की फली, मुंडी, कचनार की छाल आध-आध सेर, अमलतास की छाल, मेंहदी के पत्ते पाव-पाव-भर। लाल चदन पाव भर, झाऊ के पत्ते पाव भर इन सबको कूटकर दरिया के पानी में १२ पहर भीगा रक्खे। फिर अर्क निकाल ले, नित्य सुबह को पाँच तोले अर्क में एक तोला शहद मिलाकर पीवे ४० दिन पर्यंत, बदन बिगडे तीन साल न हुए हो, तो अच्छा होगा।

जो किसी स्त्री को आतशक होकर जाती रही हो, और उसको तभी गर्भ रह गया हो, और फिर वही रोग ज़ोर पकडे, तो कठिनता से जायगा। उसको यह दवा दे—मुरदासग १ तोला, गेरुवर्म १ ताला, भुने चने २ तोले, इन तीनो को ख़ूब बारीक पीसकर गुड़ १२ वर्ष का पुराना मिलाकर छोटे बेर के बराबर गोलियाँ बनावे, और एक गोली मलाई में लपेटकर खिलावे। जो १ गोली नित्य खाने से गर्मी मालूम हो, तो आधी गोली खावे। पाँच-सात रोज में कुछ आराम न हो, तो फिर यह दवा हुक़्क़े में पिलावे—कवी के पत्ते १० तोला, शिगरफ ३ माशे, फिटकरी सफ़ेद ६ तोले, इनको पीसकर तीन तीन माशे की गोली बनावे, १ गोली चिलम में रखकर हुक़्क़ा ताजा करके पिलावे, और फिर नेचा भिगो ले, पानी दूर न करे, इसी तरह सात दिन हुक़्क़ा पिलावे। खाना जो चाहे, सो खाय, इस दवा से रोग जाता रहेगा। जब बच्चा पैदा हो, तो फिर जुलाब देकर दवा खिलावे। जो बच्चा पेट से रोग-युक्त निकला हो, तो वह भी इस दवा का दूध पीने से अच्छा हो जायगा। जो अच्छा न हो, तो बच्चे को यह दवा दे—कटाई के फूल २ माशे, वायविडग २ माशे, किशमिश ३ माशे तीनो को पीसकर आध सेर पानी में पकावे। जब दो तोले बाक़ी रहे, तो रखकर १ रत्ती-भर लेकर दूध में पिलावे, और उसकी मा को वही दवा दे, ईश्वर चाहे, तो अच्छा हो जायगा।

स्त्रियों के रोग

केले के पके फल का गूदा, गाय का घी, मिश्री तीनो बराबर एकत्रकर ख़ूब मथे। यह मिला हुआ पदार्थ १ पाव, दारचीनी १॥ तोला, लोध १ तोला, धाय के फूल ४ माशा, बड़ी इलायची ४ माशा, सोठ १ तोला, माजूफल ३ माशा इन सब दवाइयो को कपडछन करके उसमें मिला ले। मात्रा २ तोला। श्वेतप्रदर का अमीराना और सिद्ध नुस्ख़ा है।

अडूसे के पत्ते का रस २ तोला मिश्री मिलाकर पीने से रक्तप्रदर आराम होता है।

गूलर (कच्चे) का रस १ तोला, लाख का भिगोया पानी १ तोला मिलाकर पीने से रक्तप्रदर और हरित्पीडा में लाभ होता है।

चूहे की मुसेगन २ रत्ती, पीपल ४ रत्ती भेड के १ पाव दूध के साथ पीने से यदि रक्त के साथ गाँठें भी आती होंगी, तो बद होंगी।

लाल कमल की जड़, लाल कपास की जड़, कनेर की जड़, ज़िमीक़ंद, मौलसिरी की जड़ की छाल, अजरवर, ज़ीरा सफ़ेद, चंदन सफ़ेद सब पदार्थ ६-६ माशा चावलों के पानी के साथ पीसकर पीने से रक्तप्रदर, हरित्पीटा-बाधक में बहुत लाभ होता है।

पुष्यानुग चूर्ण—पाठा, जामुन की गुठली, आम की गुठली, पाथर चूर, रसौत, मोच-रस, पद्मकेसर, अतीस, मोथा, बेलगिरी, लोध, गेरू, कायफल, मिरच, सोठ, पीपल, मुनक्का, लाल चंदन, स्योनाक की छाल, इद्रजौ, अनतमूल, धाय के फूल, मुलहठी, अर्जुन की छाल सब बराबर कपड़छन चूर्ण करे। मात्रा ६ माशा शहद में चाटे। यह सब प्रकार के प्रदर रोगों का प्रसिद्ध नुस्ख़ा है।

हिस्टीरिया—रोग प्रकट होते ही चिकित्सा करनी चाहिए। नहीं तो थोड़े दिन हो जाने से यह रोग प्राय: असाध्य हो जाता है।

होश में लाने के उपाय—

(क) आँख और मुँह पर ठंडे पानी के छींटे देना।

(ख) मैनसिल, रसौत, कबूतर की बीट शहद में मिलाकर आँख में आँजना।

(ग) एमोनिया गैस—(पान में खाने का चूना और नौसादर बराबर मिलाकर) एक कसी हुई डाटवाली शीशी में रखना, वही शीशी डाट खोलकर रोगी के नाक के पास लगा देना।

(घ) किसी तरह होश न हो, तो ख़ूब तेज़ गर्म पानी में कंबल का एक टुकड़ा, फ़लालैन या ऊनी गुलूबंद भिगोकर उस पर थोड़ा तारपीन का तेल छिड़ककर गले में लपेट देना। होश में आने पर लपेटे रखना। थोड़ा-थोड़ा गर्म पानी उस पर टपकाते रहना, इससे रोगी शीघ्र होश में आ जाता है।

चिकित्सा—कस्तूरी भैरव २ रत्ती, सजीवनी वटी २ रत्ती और उत्तम लोहभस्म १ रत्ती, अभ्रकभस्म १ रत्ती, ब्राह्मी चूर्ण ४ रत्ती शहद में चटाना। यह हिस्टीरिया की अव्यर्थ महौषध है।

कस्तूरी भैरव—शुद्ध शिगरफ़, कस्तूरी, शुद्ध विष (मीठा तेलिया), सुहागे का खीला, जावित्री, जायफल, मिरच काली, पीपल छोटी, प्रत्येक बराबर अदरक के रस में खरल करे। सूखने पर ब्राह्मी के रस में खरल करे।

संजीवनी वटी—वायविडंग, सोठ, पीपल, बड़ी हरड, आँवला, बहेड़ा, बच, गिलोय, शुद्ध विष बराबर लेकर चूर्ण करे और गोमूत्र में गोली बनावे।

रोगिणी को प्रसन्न और संतुष्ट रखना। सात्त्विक और हलका भोजन देना। पुरुष-संग से सर्वथा बचाना।

जरायु-दाह—ज़हरमोहरा ख़ताई २ रत्ती, मूँगे की जड़ ४ रत्ती शहद में चाटकर ऊपर १० तोला अर्क़ मकोय और १० तोला अर्क़ गावज़ुबाँ मिलाकर पीवे।

जरायु-अर्बुद—शीघ्र किसी अच्छे डॉक्टर से चिकित्सा करानी।

जरायु की स्थानच्युति—रोगिणी को तकिए के सहारे अधलेटी सुलाकर उसकी जाँघें उसकी छाती की ओर उठाकर उँगली द्वारा हल्का दवाव देकर हथेली से जरायु को धीरे-धीरे ऊपर उठावे अथवा दाई से ठीक करावे। ठीक होने पर पसारी लगाना अच्छा है। 'पसारी' एक यंत्र होता है, जो बडे-बडे अँगरेज़ी दवाख़ानों में विकता है।

डिवकोष-योनिप्रदाह—जरायुदाह के समान चिकित्सा करनी। ठंडे जल से पिचकारी द्वारा योनि-प्रदेश को नित्य धोना।

कामोन्माद—प्रलाप और निर्लज्जता के साथ प्रबल संगमेच्छा में ४ से ६ रत्ती तक कपूर पान में रखकर खिलाना।

ऋतुकाल के बाद जोर होने पर ज़हरमोहरा ख़ताई, कपूर, कहरवा प्रत्येक एक-एक रत्ती शहद में चटाकर ऊपर केले या नारियल का रस पिलाना। हर सूरत में हल्का और पुष्टिकर आहार देना।

वंध्यात्व—अनाचार के कारण जो स्त्री वध्या हो गई हो, उसकी चिकित्सा हो सकती है।

ऐसी स्त्री को ६ मास या एक वर्ष पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिए और उस काल मे फल-घृत का सेवन करना चाहिए, जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—

फल-घृत—घी गाय का स्वच्छ ४ सेर, शतावर का रस १६ सेर, मजीठ, मुलहठी, कूठ, त्रिफला, खरेटी, मेदा, असगंध, अजमोद, हलदी, हींग, कुटकी, नीलोफर, कमल, मुनक्का, चदन लाल, चदन सफेद, प्रत्येक दो-दो तोला मिलाकर मंदाग्नि से पकावे। जब घी-मात्र रह जाय, तब मिश्री मिलाकर प्रातःकाल १ तोला खाय। यह घृत कम-से-कम ६ मास अवश्य सेवन करना चाहिए, इससे सब प्रकार के योनि-दोष दूर हो जाते हैं।

इसके बाद ऋतु-स्नान के अवसर पर निम्न-लिखित व्यवस्था करे—

१ तोला घुडवच टुकड़े करके कर्क के सूर्य में सायंकाल को थोड़े पानी में भिगो दे। प्रातःकाल उसकी तीन गोलियाँ बनावे, और मक्खन में लपेट ले। चौथे दिन स्त्री ऋतु-स्नान कर चुके, तब वहाँ से उठे नहीं। बालो से पानी टपक रहा हो, ऐसे समय में स्थिर चित्त हो तीनो गोलियो को उदय होते हुए सूर्य को नमस्कार करके निगल जाय। दिन-भर वमन होगी। इससे गर्भाशय की स्थिति और शुद्धि होगी। केवल दूध-भात—थोडा घी डालकर खाय और स्नान से ६,८,१०,१२,१४,१६ रात्रि में गमन करे। अवश्य गर्भ रहेगा, और पुत्र होगा। ऋतुकाल मे तीन दिन तक यह उपचार और करना चाहिए—एक तोला विधारा और दो तोला पीपल (पारस पीपल) की डाढ़ी काढ़ा करके पीवे।

फुटकर उपचार

१. भगंदर—पकने से प्रथम ही इसकी चिकित्सा करना चाहिए। नहीं तो नितांत कष्ट-साध्य हो जाता है। अपक्वावस्था में रक्त निकालना ही इसकी सबसे बडी चिकित्सा है। फुंसी

को बैठाने के लिये बड का पत्ता या पानी के भीतर की ईंट का चूर्ण, सोंठ, गिलोय और पुनर्नवा (विषखपरा) पीसकर लेप करे। जौ, गेहूँ और मूँग एकत्र पकाकर बाँधे। धतूरे की जड़ और सेंधा नमक पीस और गर्म करके बाँधे। बैठने की जब आशा न रहे, तो तत्काल किसी डॉक्टर से चिरवा दे, अथवा पकाकर पीव निकालने का प्रबंध करे। पकाने के लिये बिनौले, तिल, सरसों, अलसी इनकी पुलटिस बनाकर बाँधना। पकने पर यदि फूटे नहीं, तो करंज, भिलावा, दंती की जड, कनेर की जड और कबूतर या कौवे की बीट पीसकर लेप करना। ज़ख़्म धोने के लिये परवल का पत्ता, नीम का पत्ता या बड की छाल का काढा काम में लाना चाहिए। पीछे उपदंश-प्रकरण में लिखा कोई मरहम बनाकर घाव पर लगावे।

यदि नासूर हो जाय, तो सुपारी पुरानी, मैनफल बराबर सेहुँड या आक के दूध में पीसकर बत्ती बनाकर नासूर में प्रवेश करना। नासूर का मुँह चौडा न हो, तो चिरवा-कर चौडा करा लेना। अथवा भेड की ऊन जलाकर ज़ख़्म मे भरना।

सब तरह का कफ-जनक और भारी पदार्थ, सब तरह का मिष्टान्न, दिन में सोना, रात में जागना, स्नान, व्यायाम, मैथुन का त्याग करना।

२ बद—बद को काटकर पीव निकालना ही उत्तम है। गाँठ पकाने और फोडने के जो ऊपर प्रयोग लिखे हैं, यहाँ भी काम में लाने चाहिए। उसारेरेवन, कुंदुरू, गूगल तीनो चीज़ें बराबर लेकर घी में घोटकर मरहम बनावे। यह मरहम या तो गाँठ को बैठा देता या अत्यंत शीघ्र उसे पका देता है।

बद में जोंक लगवाना बहुत ही उत्तम है। नौसादर और शोरा चार-चार आने-भर एक छटाँक पानी में घोले, उसमें कपड़ा भिगोकर रखने से वह जल्दी बैठ जाती है। बद में दर्द ज्यादा होने पर भेड के दूध मे गेहूँ पीसकर लेप करना चाहिए।

३ संधिवात (गठिया)—संखिया १ तोला, अकरकरा गुजराती १ तोला, लौंग १ तोला, पान बँगला १००, सबको ख़ूब घोटकर ज्वार बराबर गोली बनावे। वात-व्याधि के लिये तीरे बाहदफ़ दवा है, हुक्म उठाती हैं। मूँग की दाल नहीं खाना चाहिए, घी-दूध ख़ूब खाना। एक-एक गोली सुबह-शाम पानी के साथ लेना।

तेल मालिश करना ज़रूरी हो, तो यह तेल बनावे— धतूरे के पत्ते दो तोला, कुचला २ तोला, मालकागनी २ तोला, मीठा तेलिया दो तोला, मीठा तेल २० तोला। सबको पकावे, जब दवाइयाँ जल जायँ, तब उतार-छानकर काम मे लावे। आज़माई हुई चीज़ है। पर यह रोग पीछे पुराना हो गया हो, तो उत्तम यही है कि किसी अच्छे चिकित्सक से सहायता प्राप्त करे।

४. पारद-विकृति—पारा शरीर मे फूट निकलने की सबसे उत्कृष्ट औषध गंधक सेवन करना है। शुद्ध गंधक १ माशा मलाई या मक्खन के साथ १ वर्ष तक सेवन करना, ब्रह्मचर्य से रहना और मिर्च-मसाले का भोजन त्यागना।

५ कुष्ठ—प्रख्यात भयंकर रोग है, पर ईश्वर की कृपा से इस दुष्ट रोग की महासिद्ध औषध मिल गई है, और ससार के विद्वानों का कहना है कि अब यह रोग संसार में बहुत कम हो जायगा। यह अपूर्व औषध चौलमोगरा का तेल है, जो किसी भी अँगरेज़ी दवा वेचनेवाले के यहाँ सस्ता हो मिल जाता है। इसकी १० से ३० बूँद तक दिन में तीन-चार वार दूध या मिश्री के साथ खानी चाहिए।

६ दर्द गुर्दा - गुर्दे पर जोक लगवाकर ख़ून निकलवा देना चाहिए। खाने का एक उम्दा नुस्ख़ा नीचे लिखा जाता है -जवाखार, भट्टी नमक, सुहागा, नौसादर, मिर्च स्याह, नमक सेंधा, नमक सफेद, हीरा हींग, शोरा कलमी बराबर कूट-छानकर सिर्का तुंद विलायता में लऊक बना ले। ख़ुराक ३ माशे तक।

शीतकाल मे सेवन-योग्य पाक

भारतवर्ष मे बहुत प्राचीन काल से शीतकाल में विविध पुष्टिकारी पाकों के सेवन करने का रिवाज है। ये पाक सभी सद्गृहस्थ—बूढ़े, जवान और अमीर-गरीब—सेवन करते हैं। अमीर लोग हजारो रुपए के अबर, मोती, कस्तूरी, चंद्रोदय डालते हैं। गरीब वेचारे मूँग, गुड के लड्डुओ पर ही औकात बसर करते है। हमारे मत से प्रत्येक पुरुष को शीतकाल मे बल-वीर्य की वृद्धि और शरीर की पुष्टि के लिये ऐसे पाक और अन्य पुष्टिकारी वस्तुओं का सेवन करना चाहिए।

भारतवर्ष चारो तरफ समुद्र से घिरा है। जहाँ समुद्र नही है, वहाँ पर्वत-माला है। भूमध्य रेखा से २३ अंश ऊपर जो कर्क रेखा है, वह झाँसी-विध्याचल के लगभग है। विध्याचल के नीचे का भाग उष्ण कटिबध मे है, ऊपर का समशीतोष्ण कटिबंध मे। अरब के बादेसमूम को इधर अरब समुद्र की प्रशांत लहरें रोक रही हैं, उधर चीन और सायबेरिया के बर्फ़ीले तूफ़ान को ५ मील ऊँचा हिमालय पर्वत रोक रहा है।

आषाढ़ से आश्विन तक प्रायः पूर्वी वायु बगाल की खाडी के मानसून को लाता है, और कार्त्तिक से आषाढ़ तक पश्चिम-दक्षिण वायु चलता है, जो अत्यंत नैरोग्य, ज़ख्मो को भरने-वाला और फलो को पकानेवाला है।

ज्योतिष-शास्त्र के मत से उत्तरायण और दक्षिणायन ये दो अयन होते है। दक्षिणायन मे चंद्रमा पृथ्वी को अमृत दान देता है, और उत्तरायण मे सूर्य पृथ्वी के मनुष्यों और वनस्पतियो के रस का शोषण करता है। भारतवर्ष गर्म देश है, जैसा कि ऊपर बताया गया है। इसलिये ग्रीष्म-ऋतु मे उस पर सूर्य की सीधी किरणें पडती है, और यही कारण है कि ग्रीष्म ऋतु में मनुष्यों का बल क्षीण हो जाता है, और वे ठीक-ठीक भोजन भी नहीं कर सकते। परिपाक-क्रिया भी कमज़ोर पड़ जाती है। इसलिये ग्रीष्म के बाद जब शरद्-ऋतु आती है, और चंद्रमा अमृत वर्षा करता है, तब वनस्पतियो में नया रस आता है, और मनुष्यो में नवीन पराक्रम की वृद्धि होती है। पाचन-शक्ति भी बढ़

जाती है। इसलिये इस अवसर पर उत्तमोत्तम पुष्टिकर आहार-विहार से ग्रीष्म-ऋतु में जो शरीर-रस सूख गया है, उसकी वृद्धि करना तथा आरोग्य-रक्षा के लिये पाक-मोदक और अन्य पुष्टिकर दवा खाने की चाल चली आती है। शरीर के क्षय को रोकना, उसमें धातुओं की कमी न होने देना, उसे आरोग्य तथा दीर्घायु रखने का सर्वोत्तम उपाय है। इसलिये हम इस स्थान पर पाठकों के लाभार्थ कुछ उत्तम पाकों के नुस्खे लिखते हैं—

१ कस्तूरी-पाक—कस्तूरी १ तोला, शिलाजीत ८ तोला, केसर ८ तोला, जायफल १ तोला, जावित्री १ तोला, सोंठ १ तोला, काली मिर्च १ तोला, अकरकरा १ तोला, मोती ६ माशे, अंबर ६ माशे, माणिक ७ माशे, अकीक ७ माशे, संगेयशब ४ माशे, याकूत सफ़ेद ७॥ माशे, वर्क सोना ५० नग, वर्क़ चाँदी २ तोला। सबको उत्तम रीति से खरल करके चौगुने शहद में मिलावे। ख़ुराक ४ रत्ती दूध में। यह चीज़ अमीरों के काम की अत्यंत उत्तम है। हृदय-मस्तक और पुट्ठों पर इसका ख़ास प्रभाव पड़ता है। एक महीने सेवन से चेहरा सुर्ख़ हो जाता है।

२. मदनमोदक—स्काकुल मिश्री ६ माशे, बहमन सफ़ेद १ तोला, नागौरी असगंध १ माशे, दक्खिणी मूसली १ तोला, तालमखाना ६ माशे, कौंच के बीज १ तोला, सफ़ेद इलायची ६ माशे, बड़ी इलायची ६ माशे, जायफल गुजराती ३ माशे, जावित्री ३ माशे, शतावर ६ माशे, रूमीमस्तगी १ माशे, अकरकरा २ माशे, भुने हुए काले तिल ५ माशे, तज ३ माशे, घी ५ तोला, बादाम की गिरी १० तोला, चिलगोज़ा की मींगी १ तोला, पिस्ता २ तोला, छुहारा ३ तोला, मिश्री ४० तोला सब मेवा कूट घी में नरम आँच से भूने। मेवाओं के सिवा औषधों का चूर्ण करे। फिर मिश्री की चासनी करके सब मिलावे। दोनों समय २ तोला की मात्रा खाय, १ पाव दूध ऊपर पीवे। ४० दिन सेवन करने से अत्यंत पुष्टि और वीर्य-वृद्धि करता है।

३. मुसली-पाक—मुसली सफ़ेद १ सेर को आटे की मानिंद पीसकर ८ सेर दूध में पकावे, जब खोया बन जाय, तो १ सेर घी में उसे भूने। फिर चार सेर चीनी की चासनी करके उसमें मावा डाल दे, और ये दवा चूर्ण करके डाले। सोंठ, मिरच स्याह, पीपल, इलायची, दारचीनी, पत्रज, हाऊबेर, सौंफ, शतावर, ज़ीरा, अजवाइन चित्रक, गजपीपल, पीपलामूल, आँवला, गोखरु, धनिया, असगंध, मोथा, हरड, समुद्रसोख, खरेटी, कौंच के बीज, मुलहठी, सेमल का गोंद, सिंघाडा, कमलगट्टा, वंशलोचन, नेत्रवाला, ककोल, अकरकरा, कपूर प्रत्येक १ तोला। गोला, बादाम, पिस्ता, चिरौंजी यथेष्ट डाले। १ तोला चंद्रोदय मकरध्वज और २ तोला कृष्णाभ्रकभस्म डाले, तो अत्युत्तम हो। इससे बदहज़मी, प्रमेह, बवासीर, दमा, खाँसी, फोडा, क्षय, वीर्य का पतलापन, नेत्रों की दुर्बलता, स्वप्न-दोष आदि सर्व दोष दूर होते हैं।

अब एक वीर्य-बल-वर्द्धक अद्वितीय पाक का वर्णन करते हैं—

४. हरी शतावर का ८ सेर रस निकाले, इसमें १ सेर गो-घृत पकावे, जब घृत-मात्र

रह जाय, तब छान ले। इस घृत को स्वच्छ कड़ाही में चढ़ाकर १ सेर खोवा और १ सेर सूजी को डालकर मंदाग्नि से भूने, फिर अनारदानों का रस ७ सेर निकाले, उसमें २ सेर खाँड डालकर चासनी करे। जब सिद्ध हो जाय, तो ठंडी करके उसमें उपर्युक्त खोवा और सूजी को डाल दे, और खूब घोटे। जब एकाकार हो जाय, तब यह चूर्ण मिलावे—जायफल, जावित्री, त्रिकुटा, लौंग, दालचीनी, पत्रज एक-एक तोला, सालममिश्री, मुसली, शतावर दो-दो तोला, इलायची गुजराती ३ तोला, केशर ४ माशा, कस्तूरी १ माशा, अंबर १ माशा, भीमसेनी कपूर १ माशा, बादाम, गोला, पिस्ता चार-चार तोला, वंगभस्म, प्रवालभस्म, स्वर्णभस्म, अभ्रकभस्म तीन-तीन माशे सबको मिलाकर चाँदी के कलई किए थाल में बर्फी जमा दे। ऊपर से सोने के वर्क़ लगावे, मात्रा २ से ४ तोला तक।

५ गाजर-पाक—गाजर १० सेर लेकर पानी में ढाक की राख मिलाकर उबाले। फिर छीलकर डंठल निकालकर लंबे-लंबे टुकड़े कर ले, फिर १ सेर घृत में मंदी-मंदी आग से भूने, जब तक गीलापन रहे, भूननी चाहिए। पीछे ३ सेर खाँड की चासनी में डुबो दे। इलायची ४ तोला, बादाम १० तोला, पिस्ते १० तोला पीसकर डाल दे। चासनी में केशर भी दूध में घोलकर डाल दे। यह गाजर का पाक गजाओं के योग्य अत्यंत स्वप्न-दोष, दाह, प्रमेह, रक्त-पित्त, प्यास, प्रदर आदि रोगों को नाश करनेवाला है।

अध्याय पच्चीसवाँ

स्त्रियों का स्वास्थ्य और व्यायाम

प्रकरण १

स्त्रियों की स्वास्थ्य-हानि

वर्तमान काल में पुरुषों के स्वास्थ्य की अपेक्षा स्त्रियों के स्वास्थ्य की अधिक दुर्दशा है। दूसरे देशों की स्त्रियों के स्वास्थ्य को देखते हुए यहाँ की स्त्रियाँ बड़ी ही हीन अवस्था में प्रतीत होती है। जो नीचे लिखे लक्षणों से प्रत्यक्ष दीख रहा है—

१—स्त्रियाँ कद में बहुत छोटी रह गई हैं।

२—शरीर की मोटाई डील-डौल कम होकर अस्थिपंजरावशिष्ट रह गई है।

३—सौंदर्य प्राय नष्ट हो गया है, चेहरा सूखा हुआ, हड्डियाँ निकली हुई, दाँत उगले हुए, चेहरे की चमक दमक, जलाल अब कहीं-कही ही देखने में आता है। जो पहले प्राय सर्वत्र सुलभ और चिरस्थायी था।

४—पुष्ट, पूरे आकार का दीर्घजीवी बालक पैदा करने की शक्ति कम हो गई है, यहाँ तक कि गर्भ धारण करने तक की शक्ति हीन होती जा रही है। वंध्यात्व बढ़ रहा है।

५—प्रदर, रजोविकार और दूसरे स्त्री-रोग, क्षय, हिस्टीरिया, सग्रहणी स्त्रियों में बहुत होते हैं, विशेषकर प्रदर और क्षय ने तो स्त्री-समूह को घेर रक्खा है।

६—रजोविकार बढ़ रहे है, बहुत थोड़ी उम्र में ही रज आने लगना और चालीस वर्ष पूरे होते-न-होते बंद हो जाना।

७—उम्र कम हो रही है, काम करने की शक्ति घट रही है।

८—स्तनों में दूध कम हो रहा है, इसलिये पैदा हुए बालक बडे कष्ट में है। बाहर के दूध से जो पाले जाते है, उनको नाना भाँति के उदर-विकार होकर अल्पकाल में ही वे दुनिया से चल बसते हैं। पुष्ट बालक बाहर के दूध को भी पचा सकते हैं, लेकिन यहाँ तो कमबख्ती के मारे बालक हीन शरीरावस्था को लेकर पैदा होते हैं, और जब माता के स्तनो से दूध नहीं मिलता, तो बाहर के दूध से वे रोगी होकर जल्दी ही काल-कवल बन जाते है।

९—बहादुरी, आत्मसम्मान, गौरव, उदारता, खानदानी प्रतिष्ठा, धार्मिक पवित्र भाव नष्ट

हो रहे हैं, पातिव्रत धर्म का गौरव कम हो रहा है। सतीत्व गौरव नष्ट हो गया है, बुजदिली, भीरुपन, नीचता, अपवित्रता और व्यभिचार यहीं की शोभा बन रहे हैं।

इनके कारण नीचे लिखे हैं—

१—बाल-विवाह।

२—उत्तम भोजन का न मिलना। इसी के अंतर्गत भूखों और दरिद्रता।

३—पतियों, घरवालों और समाज का दुर्व्यवहार।

४—वर्तमान सभ्यता और वर्तमान शिक्षा। तथा उत्तम शिक्षा का अभाव।

५—कुसंग।

६—सामाजिक कुरीतियाँ।

७—धन की बाहुल्यता, विलास-वासना, बड़प्पन की सनक।

अब हम प्रत्येक कारण को विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे—

१ बाल-विवाह—हिंदू-परिवार में कन्या पैदा होना और मनहूसियत का घर में घुसना एक ही बात समझी जाती है। कन्याएँ पराए घर का दरिद्र समझी जाती हैं, और जितना शीघ्र हो, उनसे अपने ऊपर का भार उतारने को हिंदू पिता सदा ही उत्सुक रहता है। मध्यकालीन के हिंदू-धर्मशास्त्रों, रूढ़ियों और प्रचलित रीतियों तथा उनकी परिस्थितियों ने हिंदू-समाज में स्त्रियों का स्थान बहुत ही निकृष्ट बना दिया है, और वे सर्वत्र ही नीच, अपवित्र, मूर्ख और नगण्य समझी जाती हैं। घर-भर की सेवा करना और जीवन-भर आधीन बनी रहना, उनका प्रशंसनीय शील समझा जाता है। यही कारण है, बाल-विवाह हिंदू-समाज में घर पकड़ गया है और फल-स्वरूप ३ करोड़ विधवाएँ देश में भरी पड़ी हैं।

२ उत्तम भोजन का न मिलना—उपर्युक्त कारण भी इसमें बहुत कुछ हैं, विशेष यह है कि लड़कियाँ बचपन में माता-पिता के घर भाइयों और पिता की जूठन खाने की अभ्यस्त रहती हैं, ससुराल में उन्हें पति की जूठन मिलती है, पुरुषों की अनियमित भोजन-पद्धति से प्रायः उन्हें सदैव ही ठंढा, बासी और अरुचिकर भोजन मिलता है, वे यह समझती भी हैं कि उत्तम भोजन खाने का अधिकार तो पुरुषों को ही है।

३ पतियों, घरवालों और समाज का दुर्व्यवहार—बहू को गाली देना या पीट बैठना प्रत्येक घर में सास और पति के लिये प्रायः आश्चर्य का विषय नहीं। थोड़े क़सूर या भूल पर ही वे पिट जाती हैं। पुरुषों की शेख़ी ही इस बात की है कि हम ठोक-पीटकर स्त्री को ठीक रखते हैं। तुलसीदास भी इन्हें ताड़न के अधिकारी बना गए हैं।

४ वर्तमान सभ्यता और शिक्षा—जो स्त्रियाँ भाग्य-वश पूर्वोक्त श्रेणी से अलग हैं, अर्थात् उच्चवंश और घरानों की हैं, उनके स्वास्थ्य का नाश किया है वर्तमान सभ्यता और शिक्षा ने। अस्वाभाविक रीति से अनावश्यक विषयों को पढ़ने, उनके विषयों से जीवन का सम्मिश्रण करने से उनके मानसिक और शारीरिक विकास का रुख़ ही बदल जाता है। वे

चिड़चिड़ी, घमंडी और नज़ाकत की पुतली बन जाती हैं। चश्मा आँख पर चढ़ जाता है, उन्हें न तो पूरी स्वाधीनता ही है कि स्वास्थ्य की रक्षा कर सकें और न इतना साहस कि वे घर के सब काम करके स्वस्थ रहें। फलतः वे अस्वस्थ रहती हैं।

५ कुसंग—सहेलियों और कुरुचि-उत्पादक पुस्तकों का कुसंग ही उनके लिये घातक है। और उन्हें विविध अस्वास्थ्यकर रास्तों पर ले जाता है।

६ सामाजिक कुरीतियाँ—जैसे गमी में १ वर्ष तक रोती रहो, मैली रहो, बासी खाओ, यह करो, वह करो आदि-आदि।

७ धन की बाहुल्यता—जिससे विलास और आलस्य उत्पन्न होकर शरीर नाना भाँति के रोगों का घर बन जाता है।

स्त्रियाँ देश की भावी संतानों की जननी हैं, और भावी संतान ही देश की आशा हैं। इसलिये यह अत्यंत आवश्यक है कि स्त्रियों के स्वास्थ्य-रक्षा की ओर पुरुषों की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया जाय। उनका रहन-सहन और आचार सबमें स्वास्थ्य का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। प्रायः बड़े घरों में स्त्रियाँ कुछ भी काम नहीं करतीं। और उनके रोग का मूल कारण यही है, वे घर के बंद जेलखानों में ही घूमते-घूमते जीवन व्यतीत करती हैं। अब समय आ गया है कि स्त्रियों को भी पुरुषों ही की भाँति व्यायाम करना चाहिए।

डंबल की कसरतें

स्त्रियों को डंबल की कसरतें करने के लिये ४ पौंड के स्प्रिंगदार डंबल लेने चाहिए। अभ्यास इस प्रकार करना चाहिए—

१

१—सीधी खड़ी रहो। दोनों एड़ियाँ मिली रहें। पर पैर के अँगूठों में ६-७ इंच का अंतर रहे। शरीर तना रहे। दोनों कुहनी

बगल से लगाओ। डंबल्स को खड़े पकड़कर कुहनियाँ सीध में सामने की ओर रख दो। और डबल को डमरू की भाँति हिलाओ। ध्यान रहे कि सिर्फ कलाई ही हिलने पावे। प्रारंभ में कम-से-कम दस बार हरकत दो।

२—अब दोनों हाथ सीध में फैला दो। बदन सीधा रहे। डंबल्स खड़े पकड़े रहो। आड़े न हों, अब उन्हें १० बार डमरू की भाँति हिलाओ। धीरे-धीरे और बल-पूर्वक।

२

३—अब हाथों को कंधों की समरेखा में ऊपर ले जाओ, और पूर्ववत् १० बार हिलाओ। पैरों को फैला दो।

३

४ – अब तने हुए हाथों को धीरे-धीरे धरती पर झुकाओ। जितना झुक सको, उतना झुको। पर घुटने न मुड़ने पावें।

४
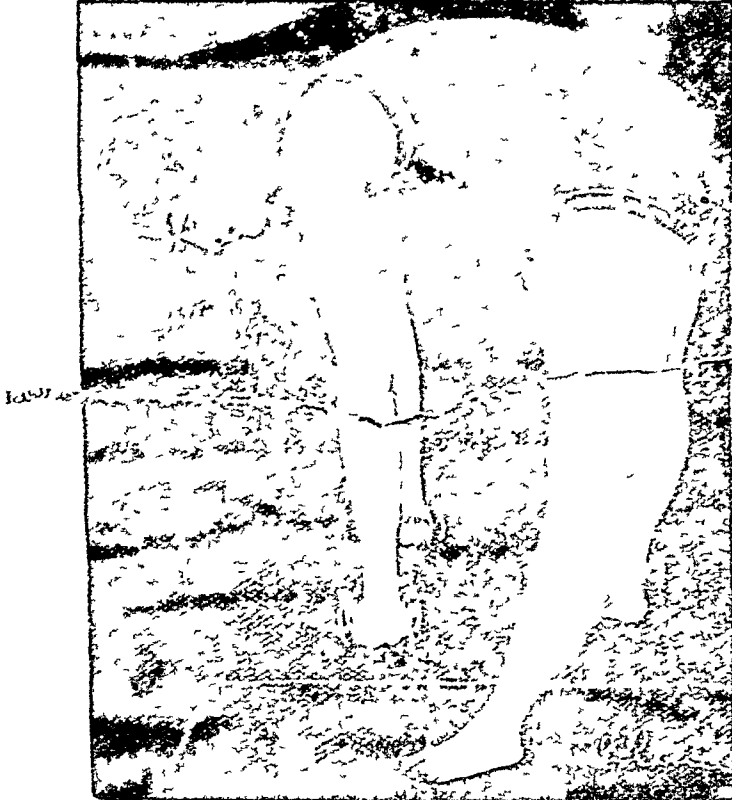
४—इसके बाद कुछ विश्राम लो। तब दोनों डंबल कुहनी मोड़कर कंधों पर ले जाओ। कुहनियाँ सम रेखा में हों।

५
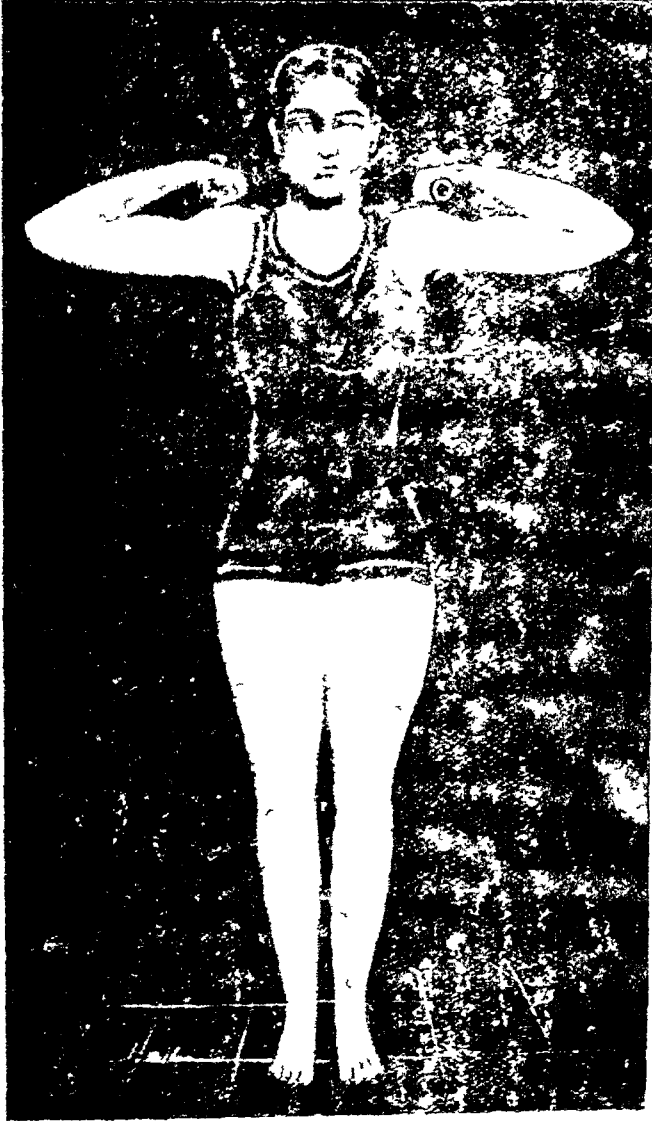
६—अब अपने दाहने हाथ को कंधे की सीध में फैलाओ। कंधों पर पूरा ज़ोर दो। फिर उसे कंधे पर लाकर दूसरे हाथ से वही क्रिया करो।

इन कसरतों से कंधे, भुजदण्ड, छाती, गर्दन और कलाइयाँ पुष्ट और सुडौल बनेंगी।

६

७—अपना दाहना पैर लगभग २॥-३ फुट के फासले पर आगे की ओर रक्खो। पिछला पाँव बिलकुल सीधा रहे, और अगले पैर का घुटना कुछ झुक जाय। दोनों हाथों को सीधे सिर से ऊपर ले जाओ। कुछ समय स्थिर खड़ी रहो।

७
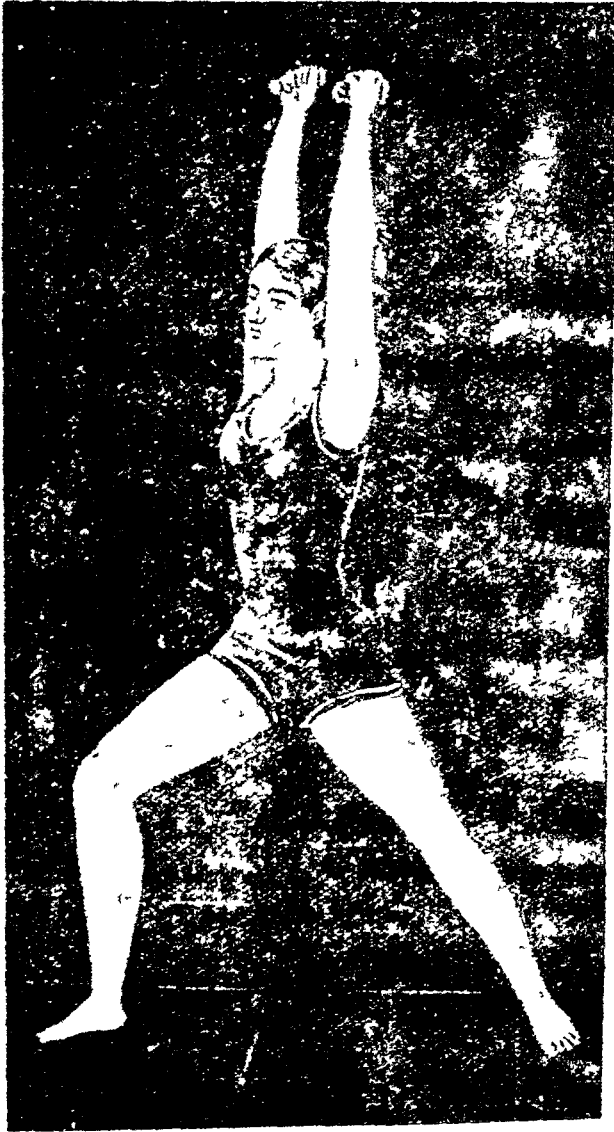
८—सीधी खड़ी रहो। दाहना पैर दाहनी ओर को सीधा फैलाओ। पर पिछली टाँग मुड़े नहीं। अगली कुछ झुका दो।

अब दोनों हाथों को सामने ले लाकर जरा ऊँचाई पर डम्बल्स को मिला दो।

प्रत्येक क्रिया ८-१० बार करो। इससे कमर, पट्ठे, जाँघ और धड़ सुगठित होगा। रक्त का प्रवाह ठीक रहेगा।

८

६—ज़मीन पर चित लेट जाओ। पैरों तथा हाथों को ज़मीन पर लगा दो। दोनों पैरों को पास पास सटाकर रक्खो और हाथों को सीधे ज़मीन पर नितम्बों के पास रक्खो। फिर दोनों पैरों को एक साथ सटे हुए धीरे-धीरे उठाओ। यहाँ तक कि कंधे और सिर को छोड़ तमाम शरीर धरती से उठ जाय। कुछ देर इसी भाँति रुके रहो। फिर धीरे-धीरे असली हालत में आ जाओ। अब ज़ोर की साँस भरकर सिर और हाथों को उठाओ, और झुकते हुए पैरों के अँगूठे पकड़ लो, फिर पैरों को जितना संभव हो, सीधा तानो, और तब घुटनों से सिर को लगाने की चेष्टा करो।
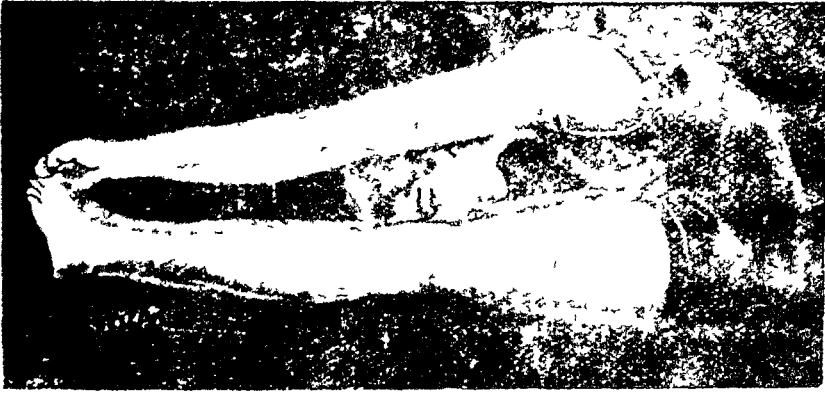
६

यह व्यायाम गर्भवती स्त्री न करें। इससे पीठ, पेट और पाँवों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। यकृत और प्लीहा की शुद्धि भी होती है। अग्नि दीप्त होती है। इस अभ्यास में पेट को खूब भीतर खींचना चाहिए। कन्याएँ इस व्यायाम को खूब कर सकती हैं। यह सिर-दर्द का उत्तम प्रतिकार है। इसका अभ्यास थोड़ा-थोड़ा करना चाहिए।

१०—सीधी खड़ी हो जाओ। शरीर सीधा रहे। अब इस भाँति झुको कि सीना सीधा रहे। घुटने भी न मुड़े। सारा भार उदर और रीढ़ की हड्डी पर पड़े। धीरे-धीरे हाथ पैरों के पास जमीन पर टेक दो। सिर दोनों हाथों के बीच में रहे और नाक घुटनों मे छू जाय। धीरे-धीरे अभ्यास से ऐसा हो जायगा। इस क्रिया में प्राणायाम करना आवश्यक है।

१०

११—अब बायाँ पाँव पीछे की ओर जितना सभव हो, फैलाओ और उसका केवल पंजा ही धरती पर टेके रक्खो।

११
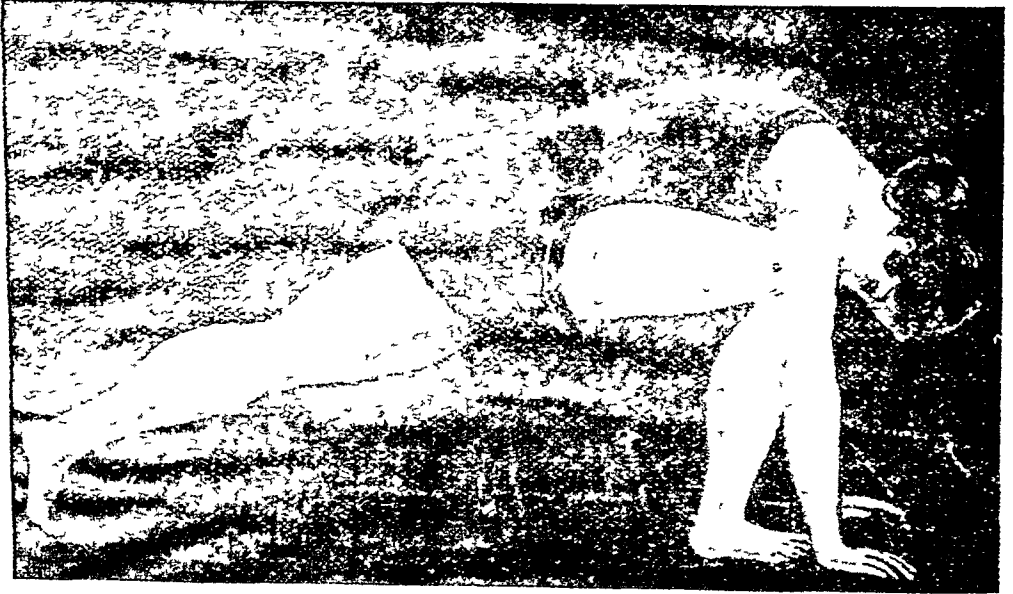
१२—जब एक पैर जम जाय, तब दूसरा भी फैला दो, हाथ इस समय सीधे बिना मुड़े हों। पैर दोनों पंजों पर सतर रहें। सिर नीचे झुका हुआ रहे। हाथों का फासला छाती की चौड़ाई के बराबर हो।

१३—अब कंधों और कुहनी पर पूरा बल देकर धीरे-धीरे झुको। यथासंभव पेट या छाती को धरती से न छुआना चाहिए।

२२

२३

१४—अब धीरे-धीरे ऊपर को हाथों के बल पर उठो, और सिर को यथासंभव ऊपर उठा दो। यह क्रिया गर्भवती स्त्री न करे। इससे सीना और पेट बनेगा। इस क्रिया में शुरू से अंत तक एक ही श्वास लेना चाहिए। प्रारंभ में दुर्बल स्त्रियाँ बीच में इच्छानुसार साँस ले सकती हैं।

२९

इसके सिवा पुरुषोचित व्यायाम भी जो स्त्रियों के लिये अनुकूल प्रतीत हो, स्त्रियाँ कर सकती हैं। गर्भावस्था में भ्रमण और साधारण घर के काम-काज करना उनके लिये उत्तम है। एवं चक्की पीसना, पानी खींचना और दूध चलाना स्त्रियों के लिये उत्कृष्ट व्यायाम है।

१५

इसी अवस्था में गहरी साँस लो।

१६

इसी भाँति गहरी श्वास लो—और जोर से फेंको

१७ –इस प्रकार बैठकर पैर के अँगूठे को ज़ोर से खींचो और ख़ूब गहरा श्वास लो। सीना ख़ूब तान लो, गर्दन सीधी रक्खो, फिर एकाएक ज़ोर से श्वास फेंक दो। यह अभ्यास सूर्य के सम्मुख बैठकर करना चाहिए इससे उदर, छाती की दुर्बलता तथा बवासीर का रोग दूर होता है।

१७

पुरुष भी इसी भाँति व्यायाम कर सकते है। उन्हें व्यायामो के लाभो पर ध्यान देना चाहिए।

१८

दोनों हथेलियों पर शरीर का भार तोल लो

व्यायाम से लाभ

व्यायाम करने से शरीर सुडौल और स्थिर होता है। अंग थक जाने से फालतू कामचेष्टा नष्ट हो जाती है। नींद अच्छी आती है। मन स्थिर रहता है। भुक्त आहार का ठीक-ठीक परिपाचन होता है। आलस्य दूर होता है। बल और उत्साह की वृद्धि होती है। परिश्रम, थकान, प्यास, गर्मी, सर्दी आदि सहने की शक्ति उत्पन्न होती है। इन्द्रियाँ वशीभूत हो जाती हैं। व्यायाम करनेवालों को कभी कठिनाइयों में घबराना नहीं पड़ता। वृद्धावस्था उनके पास नहीं फटकती। जो पुरुष अवस्था, रूप और गुणों से हीन भी हैं, उन्हें भी व्यायाम सुंदर बना देता है। व्यायाम करनेवाले यदि कभी कच्चा-पक्का या उल्टा-सीधा भी भोजन कर लेते हैं, तो उसे भी पचा जाते हैं। उन्हें कभी अजीर्ण, दस्त या कब्ज़ की शिकायत नहीं रहती। गहरी नींद आती है, स्वप्न पास नहीं फटकते। बग्घी, मोटरों में चढ़नेवाले, सदैव
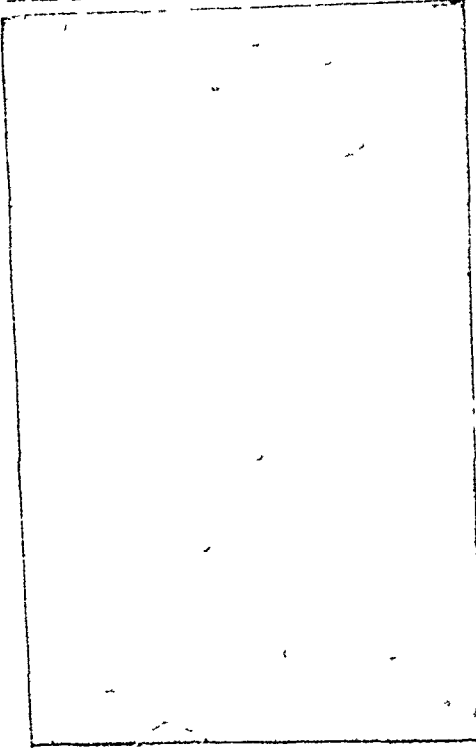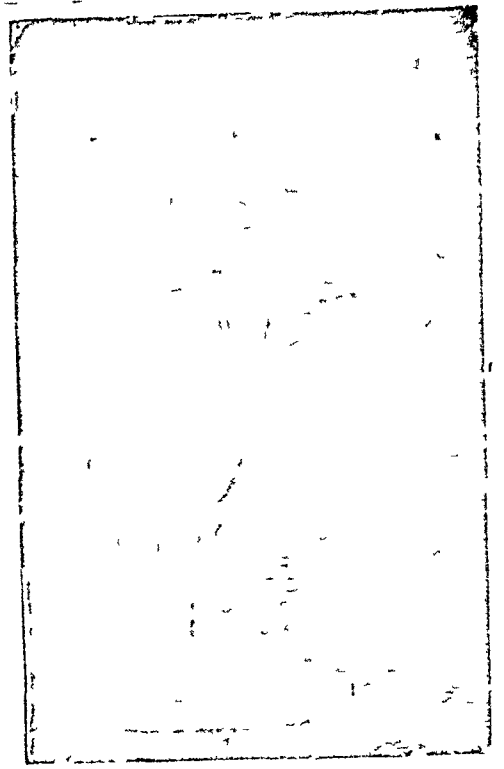
व्यायाम-से सुगठित पुरुष-शरीर व्यायाम से सुगठित स्त्री-शरीर

घृत, मीठा आदि तर माल उड़ानेवाले अमीर मोटे और मेदस्वी होकर बेडौल हो जाते हैं। दिमाग़ी मेहनत करनेवाले वकील, बैरिस्टर, जज, ग्रंथ-निर्माता, अख़बारों के संपादक आदि मंदाग्नि, क्षय और निद्रा-नाश में फँसकर दुनिया से जल्दी ही चल बसते हैं। व्यायाम से मन की चंचलता नष्ट होकर और शरीर थककर व्यभिचार की फालतू इच्छा नष्ट होती है, और व्यायाम के अभ्यासी मनुष्य के अंग-प्रत्यंग इतने दृढ़ हो जाते हैं कि उसे एक बार के ही विषय-भोग से इतनी तृप्ति हो जाती है कि फिर उसे बहुत समय तक उस प्रकार की अभिलाषा नहीं होती।

व्यायाम की मात्रा—आधा बल रखकर व्यायाम करना चाहिए। जब श्वास ज़ोर-ज़ोर से आने लगे, शरीर थक जाय, और मस्तक पर पसीना आ जाय, तभी व्यायाम बंद कर देना उचित है।

अधिक व्यायाम से हानि—अत्यधिक व्यायाम करने से श्वास, कास, क्षय, प्यास, अरुचि, रक्त-पित्त, भ्रम, ज्वरादि रोग पैदा हो जाते हैं, और शरीर सूख जाता है। इसलिये बलार्द्ध से आगे व्यायाम कदापि नहीं करना।
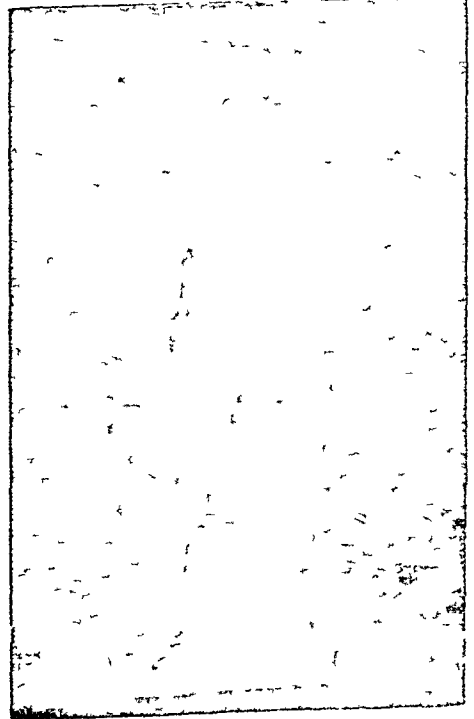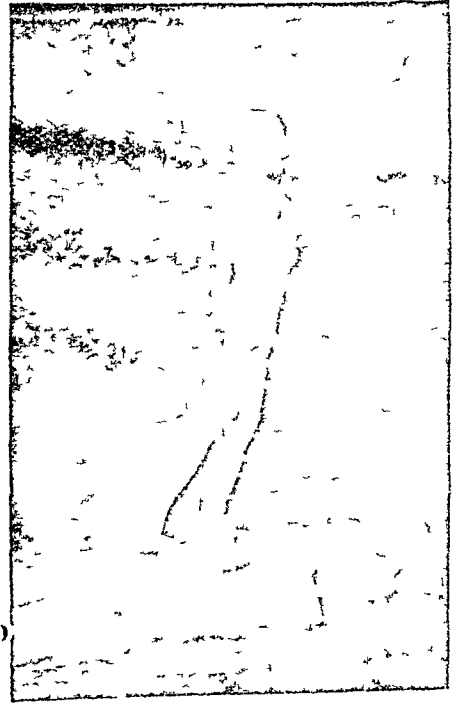
व्यायाम से सुगठित शरीर

व्यायाम-निषेध—ऊपर कहे हुए रोगों में और भोजन करने के पीछे एवं रात्रि में व्यायाम नहीं करना चाहिए।
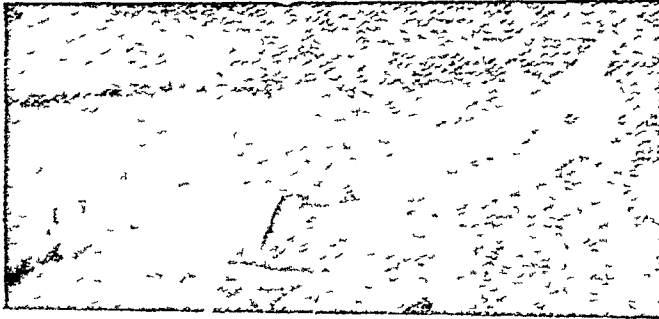
व्यायाम का प्रारंभ—व्यायाम का प्रारंभ धीरे-धीरे करना चाहिए। पहले दो-चार हफ्ते वे थकेंगे, हर वक्त हाथ-पैरों और पसलियों में दर्द रहेगा, परंतु दो या एक सप्ताह बराबर अभ्यास करने से फिर न थकाव होगा, न पसलियाँ या हाथ-पैर दुखेंगे। व्यायाम करने के पाँच-सात मिनिट बाद ही शरीर ऐसा हो जायगा, मानो कोई परिश्रम का काम ही नहीं किया है। फिर कोई बड़े परिश्रम का काम करने पर कभी भारी थकान भी न चढ़ेगी।

धीरे-धीरे पैर उठाओ

विख्यात प्रोफ़ेसर राममूर्ति ने व्यायाम-संबंधी कुछ महत्त्व-पूर्ण उपदेश लिखे हैं, जो इस प्रकार हैं—

एक पैर सीधा उठा दो

१—व्यायाम का अभ्यास धीरे-धीरे करना, एकदम बहुत अभ्यास नहीं करना चाहिए।

२—जो व्यायाम किया जाय, वह बहुत धीरे-धीरे अंगों पर पूरा-पूरा ज़ोर डालकर करना चाहिए। जल्दी और झटके के साथ व्यायाम करने से कोई लाभ नहीं होता।

३—व्यायाम को प्राणायाम के साथ मिलाकर करना चाहिए। इस प्रकार से श्वास को बाहर निकालो (श्वास नाक से ही छोड़ना और भरना चाहिए) और बाहर रोको, फिर धीरे-धीरे ख़ूब श्वास रोको। छाती-फेफड़े में श्वास भरकर तब व्यायाम करो। धीरे-धीरे एक क्रिया करो, और उसको एक ही श्वास में पूरी करने की कोशिश करो। यदि श्वास टूट जाय, तो कोई हर्ज नहीं। फिर भर लेना चाहिए, और धीरे-धीरे क्रिया करनी
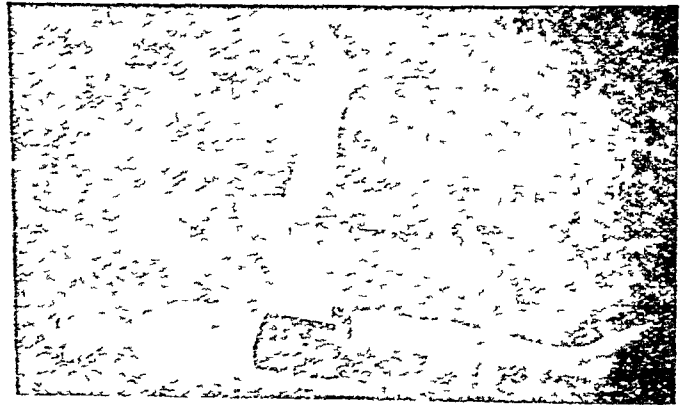
चाहिए। क्रिया समाप्त होने पर श्वास छोड़ देना चाहिए, और फिर भर लेना चाहिए। और फिर क्रिया करनी चाहिए। इस प्रकार व्यायाम करने से सीना चौड़ा होता है, फेफड़े, दिल, पसलियाँ मज़बूत होती है। दम बढ़ता है। जल्दी थकान नहीं आती, और बल बढ़ता है। यथार्थ मे बल वायु ही में है। वायु को वश में करने से ही मनुष्य बलवान् हो सकता है। प्राणायाम के साथ मिलाकर व्यायाम करने से धीरे-धीरे वायु वश में होने लगती है।
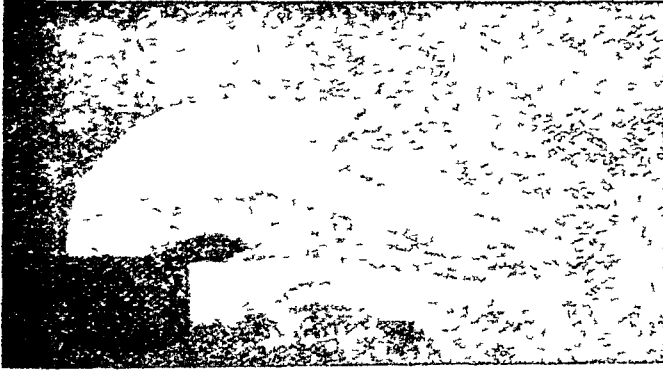
कमर झुकाओ और पैरों को तान दो

४—व्यायाम करते समय अपना मन सब ओर से हटाकर व्यायाम में ही लगाना चाहिए। और यह धारणा मन में रखनी चाहिए कि हम इस क्रिया से बराबर बलवान् हो रहे है। और भीमसेन व हनुमान के समान बलवान् हो जायँगे। इन पुरुषों के चित्र भी सामने रखना उत्तम है।

५—व्यायाम करने के पीछे धीरे-धीरे टहलकर पाँच-सात मिनिट सुस्ताना चाहिए। उसके पीछे ठंढाई पीनी चाहिए। ठंढाई—बादाम १०, धनिया १ माशा, काली मिरच ५ दाने, इलायची छोटी दो। ये सब शाम को थोडे जल में भिगोकर रख देनी चाहिए। व्यायाम के पीछे ठंडाई तैयार करनी चाहिए। बादाम के छिलके उतारकर और सब चीज़ो को एक साथ सिल पत्थर से बारीक पीसकर थोडे-से पानी में घोलकर छान लेना चाहिए। छानने का वस्त्र झिनझिना होना चाहिए। फिर थोडी मिश्री मिलाकर पी लेना चाहिए। इस ठंडाई से कसरत के पीछे होनेवाली खुश्की दूर होकर तरावट आ जाती है। मौसम ठंडा हो, तो थोडी सोंठ मिला लेना और ज़रा गुनगुना करके पी जाना चाहिए। धीरे-धीरे दो-दो बादाम बढ़ाने चाहिए, और एक सेर तक बढ़ा देना चाहिए, उसी हिसाब से अन्य चीज़ें भी बढ़ा देनी चाहिए।

कंधे के बल लौट जाओ

६—व्यायाम करनेवालों को मांस नहीं खाना चाहिए। इससे सुस्ती, क्रूरता तथा अनेक अवगुणों की वृद्धि होती है।

तेल-मालिश—बहुधा पहलवानों को कहते सुना है कि "सौ लडंत और एक मलंत"। तेल-मालिश करने से शरीर की कांति, पुष्टि और दृढ़ता बढ़ती और बल-वीर्य की अत्यधिक वृद्धि होती है। रोम-कूप खुल जाते हैं। उनके रास्ते तेल भीतर घुस जाता है। सुश्रुत में लिखा है—

जलसिक्तस्यावर्द्धन्ते यथा मूलेऽकुरास्तरो। ; तथा धातुविवृद्धिस्तु स्नेहसिक्तस्य जायते।

"जैसे वृक्ष की जड में जल देने से डाली, पत्ते और अंकुर बढ़ते हैं, उसी प्रकार तैल मर्दन करने से शरीर के धातु बढ़ते हैं।"

तैल मालिश सारे शरीर में अच्छी तरह करनी चाहिए। विशेषकर सिर में, हाथों में, छाती, पसली, रीढ़ की हड्डी और त्रिकस्थान में। पैरो मे और पैर के तलुओं में खूब मालिश की जाय। सिर में तैल मालिश करने से दिमाग़ पुष्ट होता है। और पैरों मे तैल मालिश करने से नेत्रों में ज्योति बढ़ती है। छाती और पसलियो में मालिश करने से सीना, फेफड़ा और दिल मज़बूत होते हैं। पृष्ठ-वंश और त्रिक में मालिश करने से बुढ़ापा जल्दी नहीं आता।

मालिश करने को तिल या सरसों का तेल ही अच्छा है। तिल का तेल सर्वोत्तम है। परंतु शतावरी का तैल मालिश करने से बहुत पुष्टि और कांति की वृद्धि होती है। शतावरी तैल का नुसख़ा यह है—

शतावर, खरेटी की जड, गगेरन, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, एरंड की जड, असगंध, गोखरू, बेल की जड, कांस की जड़, पियावासा ये ११ औषध ६-६ तोला जौकुट करे। इन्हें २ सेर पानी में पकावे। जब तीन पाव पानी रहे, तब उतारकर छान ले। इसमें १ सेर तिल का तैल, १ सेर गाय का दूध, १ सेर शतावर का रस, १ सेर पानी सब मिलाकर एक कढ़ाई में भरे। इसमें नीचे लिखी औषधों की लुगदी पानी से पीसकर मिला दे।

शतावर, देवदारु, जटामासी, तगर, सफ़ेद चंदन, सौंफ, खरेटी की जड़, कूट, इलायची छोटी, कमल, वाराही कंद, मुलहठी, असगंध प्रत्येक एक-एक तोला। इन सबको मंदाग्नि से पकावे। जब तैल-मात्र बच रहे, उतारकर छान ले। यही शतावर तैल है। बहुत ही उत्तम है।

अध्याय छब्बीसवाँ

सौंदर्य-विज्ञान

प्रकरण १

सौंदर्य की व्याख्या

अंग-प्रत्यंग का पूर्ण विकास सुंदरता का एक व्यापक लक्षण माना जा सकता है। जो अंग जितना पुष्ट, दुर्बल, लंबा, मोटा, पतला, भारी, हलका, सख्त या मुलायम होना चाहिए, उससे न तो रत्ती-भर कम हो और न रत्ती-भर अधिक। ऐसा शरीर सुंदर कहलावेगा। स्त्री-सौंदर्य के लिये भारतीय भावना इस प्रकार है—

सर्वांग सुंदरी स्त्री

१—बाल काले, चमकीले मुलायम, लंबे और घुँघराले हों।

२—गर्दन किंचित् लंबी, मांसल और सुराहीदार हो।

३—वक्षस्थल मांसल, उभरा हुआ और कसा हो।

४—कमर और पेट पतला हो।

५—नितंब भारी हो।

६—रानें मांसल और क्रमश: पतली हों।

७—पिंडलियाँ छोटी और पैर भी छोटे हों।

यह हुई बाह्य आकृति।

१—स्त्री का कंठ-स्वर लचीला और मधुर हो।

२—दृष्टि काली और कटाक्ष-युक्त हो।

३—होंठ कुछ पतले, संपुटित और लाल तथा मंदहास्य-युक्त हो।

४—गति स्थिर-मंद हो।

५—वर्ण सुनहरी झलक लिए हुए गौर हो।

पुरुष के शरीर की भावना इस प्रकार है—

१—चौड़ा माथा, घुँघराले काले बाल, घनी मूँछें।
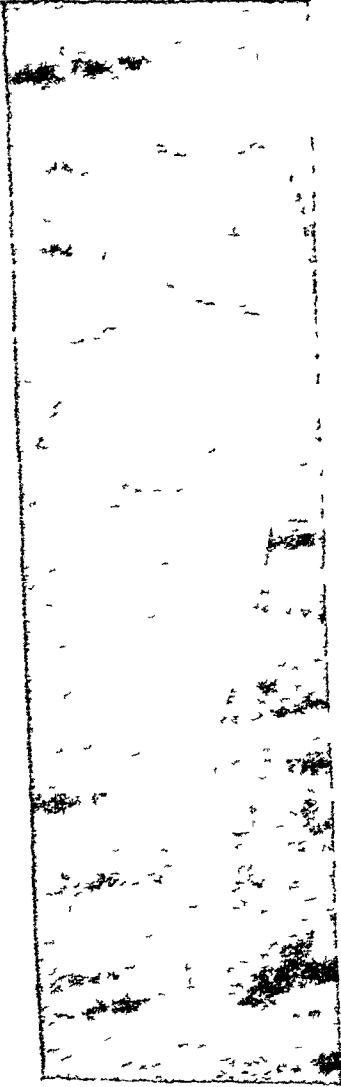
२—खूब चौड़ा, ठोस लोम-युक्त वक्षस्थल।

३—लंबी सुदृढ़ भुजाएँ।

४—पेट और कमर पतली और चुस्त।

५—जाँघें और पिंडलियाँ गठीली।

इसके साथ ही—

१—गहरी स्निग्ध दृष्टि।

२—गंभीर स्वर-घोष।

३—उज्ज्वल गौर वर्ण।

४—चुस्त पोशाक।

स्वास्थ्य का सौंदर्य पर प्रभाव

यह बात भी हम ग्रंथ के प्रारंभ ही में बता चुके हैं कि सौंदर्य और स्वास्थ्य में परस्पर कितनी समता है। जब तक ठीक-ठीक स्वास्थ्य नहीं है, तब तक आपके शरीर का प्रत्येक अंग ठीक-ठीक समतोल नहीं हो सकता, न रक्त का प्रवाह ही ठीक हो सकता है। एक बड़े विद्वान् का कथन है कि सौंदर्य वास्तव में स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन और उत्तम स्वभाव का परिणाम है। वास्तव में कुरूपता रोग ही है। और सुंदरता स्वास्थ्य ही है। जो आहार हम खाते और जिसे हमारी जठराग्नि ठीक-ठीक पचाती है, उससे स्वास्थ्य का बहुत गहरा संबंध है। स्वास्थ्य और सौंदर्य में प्राकृतिक समता है, सौंदर्य को स्थिर रखना संयम के अधीन है।

सुंदरी, किंतु उदर, वक्ष और कंधे दोष पूर्ण

भारतवर्ष में स्त्रियों का सौंदर्य भयंकर रीति से नष्ट हो गया है, इसका कारण उनका स्वास्थ्य नाश है। वे बहुत छोटी आयु में ब्याह दी जाती हैं, और पर्दे में कड़ाई से रक्खी जाती हैं। वे अवैज्ञानिक रीति से जल्दी-जल्दी प्रसव करती हैं और उपेक्षा से खराब भोजन पाती हैं। उन्हें न उत्तम भोजन, न स्वच्छ वायु, न सच्चा आनंद प्राप्त होता है, और इसका फल यह होता है कि २० वर्ष होते ही वे वृद्धा होने लगती हैं।

यकृत और आमाशय, ये दो शरीर के यंत्र ऐसे हैं, जिनका सौंदर्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है। आपने आहार अथवा शरीर-यंत्र के प्रकरण में इन दोनों यंत्रों को देखा और इनका

विवरण पढ़ा है, वास्तव में रक्त का खूब शुद्ध होना और उसका यथेच्छ गति से शरीर में भ्रमण करना ही सौंदर्य का मूल-मंत्र है। यदि पुष्कल शुद्ध रक्त ठीक-ठीक नाड़ियों में बह रहा है, तो आपकी त्वचा लचीली, रंगदार, चमकीली और कोमल रहेगी।

खूब चौड़ा, ठोस, वक्षस्थल

आमाशय भोजन को पचाता है। आपके लिये आवश्यक है कि आप ऐसा भोजन करें, जो आसानी से पच जाय। उसमें ऐसी कोई वस्तु न हो, जिससे आमाशय के कार्य में बाधा पड़े। यकृत का कार्य शुद्ध रक्त बनाने का है। यदि पचे हुए आहार का शुद्ध रस बनेगा, तभी

शुद्ध रक्त बनना संभव है। चेहरे और नाक के अग्र भाग पर जो बहुधा काले-काले दाग़ पड़ जाते हैं, यह यकृत का दोष है।

स्वभाव और मानसिक भावों का सौंदर्य पर प्रभाव

कदाचित् आप यह जानते होंगे कि कभी-कभी कोई स्त्री या पुरुष विशेष सुंदर प्रतीत होने लगता है। उसके चेहरे पर कभी-कभी ऐसा माधुर्य और तेज झलकने लगता है कि देखने-वाला मोहित हो जाता है। हृदय में जब प्रेम की निर्दोष भावनाएँ उठती हैं, तब नेत्रों और चेहरे पर एक ख़ास चमक पैदा हो जाती है। वासना के उदय होने पर, लज्जा अनुभव करने पर, त्याग या उदारता के ख़ास-ख़ास अवसरों पर मुख पर जो भाव लक्षित होते हैं, उन्हें देखकर अनायास ही यह जाना जा सकता है कि मानसिक भावों का सौंदर्य पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है।

लंबी, सुडौल भुजाएँ

इसके विरुद्ध क्रोध में अस्वाभाविक रूप से चेहरा लाल हो जाता है, तथा सैकड़ों झुर्रियाँ हठात् पड़कर मुखाकृति भयानक और कुरूप हो जाती है। भय से भी चेहरा पीला पड़ जाता है, तथा आँखें निर्जीव काँच के समान चमकने लगती हैं। शोक, उद्वेग और चिंता से भी विविध प्रकार की लकीरें मस्तक और मुख के भिन्न-भिन्न अवयवों पर पड़ जाती हैं।

यदि ये सब अच्छे या बुरे भाव निरंतर चेहरे पर रहें, तो मुखाकृति पर उसकी स्थायी छाया पड़ जाती है। बहुत-से लोगों का मुख जो बचपन में सुंदर था, अति भयानक और घिनौना हो जाता है। आपने सुना होगा कि अमुक महात्मा तपस्वी के तेज और दृष्टि के वश में होकर चराचर मोहित हो जाते थे, हिंसक वन्य पशु भी उनके पैर चाटते थे। यह सब उनकी उस मोहक दृष्टि का फल है, जो उनके स्वच्छ
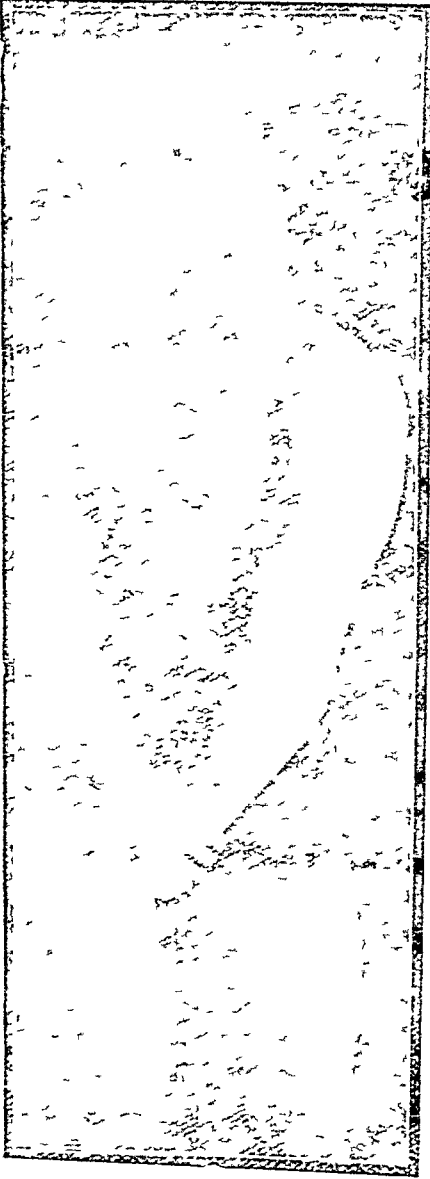
मानसिक भावों के कारण पैदा हुई है। अच्छे और बुरे विचारों की धारा मानसिक केंद्रों से प्रताड़ित होकर रक्त के प्रवाह के साथ चमड़ी की सतह तक विद्युत्-धारा के समान आती और अपना प्रभाव वहाँ छोड़ जाती है। यदि यह धारा निरंतर आती-जाती रहे, तो उसका प्रभाव भी स्थायी रह जाता है। यदि कोई मनुष्य दया और प्रेम की धारा का निरंतर अभ्यास
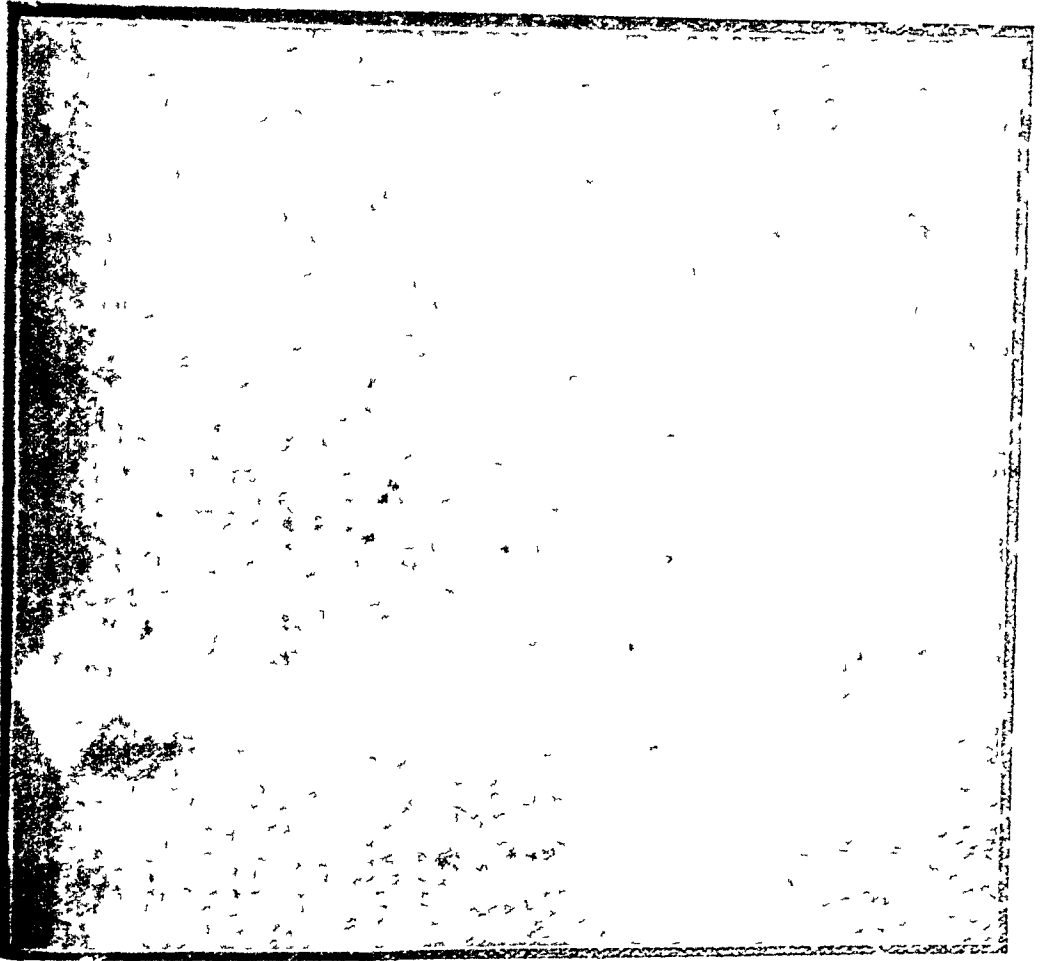
सुगठित बाहु और वक्ष

करे, तो वह चाहे भी कैसा ही कुरूप हो, उसमें मोहित करने की शक्ति आ जाती है। महात्मा गांधी के समान कुरूप और मोहनेवाले व्यक्ति संसार में बहुत कम जन्मे हैं।

इसके विरुद्ध अनेक सुंदर व्यक्ति केवल मानसिक दुर्भावनाओं के कारण ही अपनी मोहक-शक्ति को खो बैठे। ऐसे बहुत-से अपराधी हैं, जो बहुत सुंदर रहे, परंतु उनके सौंदर्य की उपमा सर्प के सौंदर्य से दी जा सकती है। उन्हें असमय ही में फाँसी आदि का प्राण-दंड

मिला, और उन्हें बहुधा उनकी प्रेमिकाओं ने ही विश्वासघात करके पकड़वाया। इससे स्प
है कि वे प्रेमिकाएँ उनसे भय या लाभवश कृत्रिम प्रेम करती थीं।

उदर
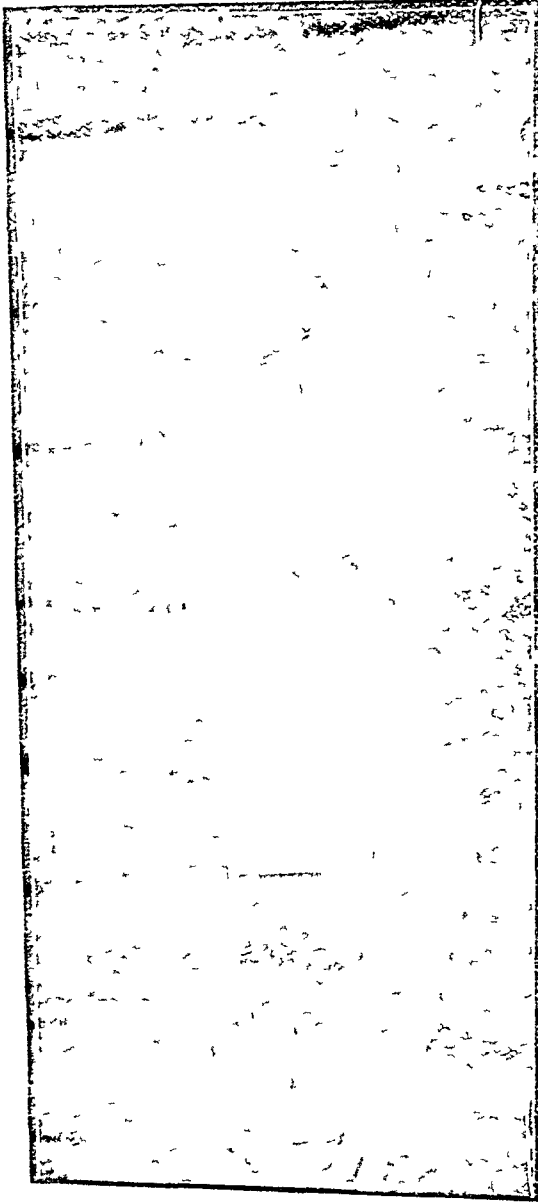
भुवन-मोहन श्रीकृष्ण महार
कितने सुंदर थे, यह बात जान
का वास्तव में कोई उपाय न
है। परंतु यह बात तो है ही
उनका रंग गोरा नहीं था, जै
कि आजकल सौंदर्य के लि
अनिवार्य समझा जाता है। फि
भी उन-जैसा मोहनेवाला नर
उत्पन्न ही नहीं हुआ। इसका कार

एक सुंदरी अपराधी स्त्री

हम यह समझते हैं कि श्रीकृष्ण
का रूप चाहे भी जो कुछ रहा हो,
उनका मन बहुत सुंदर, प्रेम और
दया से परिपूर्ण था। जिस कारण
वे अपने जीवन-भर भयानक
विपत्तियों और कठिनाइयों से युद्ध
करते रहने पर भी सदैव आनदकंद
बने रहे।

इस बात की आप परवा न कीजिए कि आपकी आयु क्या है, मुखाकृति क्या है,

और आपका रंग गोरा है या काला । इन प्रकृति की बातों में आप दख़ल नहीं दे सकते । परंतु इतना होने पर भी आप सुंदर बनना चाहते हैं, तो आप प्रेम, दया, आनंद और सत्य को सदा मन में रखिए, इनकी धाराओं को सोते-जागते निरंतर रक्त के प्रवाह के साथ शरीर में घूमने दीजिए, आप निस्संदेह सुंदर बन जायँगे ।

सुगठित बाहु, वक्ष और उदर

यह बात वास्तव में सच है कि सुंदरता निरंतर सुंदर विचारों के अभ्यास से बढ़ाई जा सकती है । मन एक अजित और अज्ञेय वस्तु है, और उसका शरीर पर असाधारण प्रभाव है । मन का हमारे जीवन पर प्रभाव पड़ना एक रहस्य-पूर्ण भेद है । मन पीड़ा उत्पन्न कर सकता है, और उसका निवारण भी कर सकता है । मन रोगोत्पादन भी कर सकता है,

और रोग को दूर भी कर सकता है। यदि मन में दुःख या चिंता हो, तो स्वास्थ्य और सौंदर्य दोनों ही नष्ट हो जायेंगे। आप हज़ारों विधवाओं को देखिए, जो पवित्र ब्रह्मचारिणी रहने पर भी अल्पायु, निस्तेज और कुरूप हो जाती हैं। परंतु सधवा स्त्रियाँ असंयम करने पर भी उनकी अपेक्षा सुंदर बनी रहती हैं, यह सब मानसिक भावना का प्रभाव है।
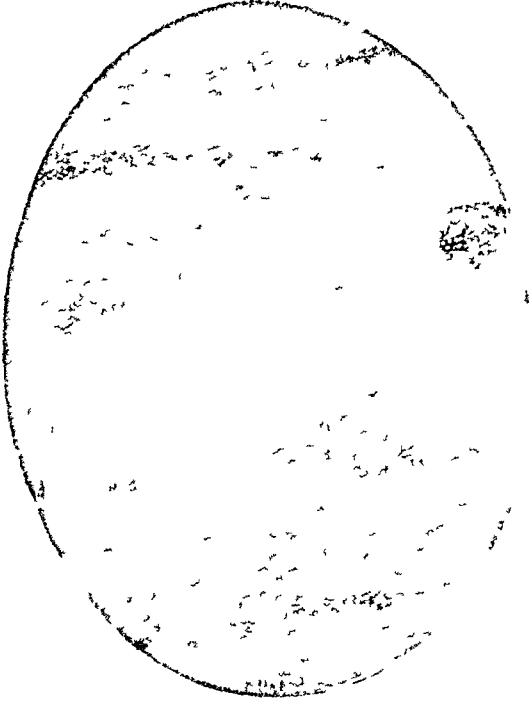
गर्दन और कंधे
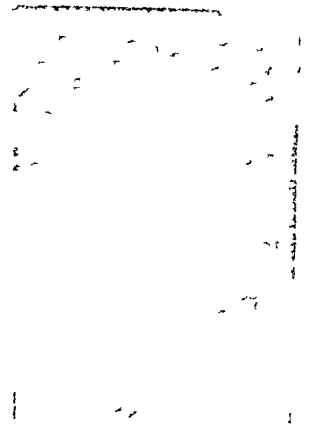
जर्मन महिला के नेत्र
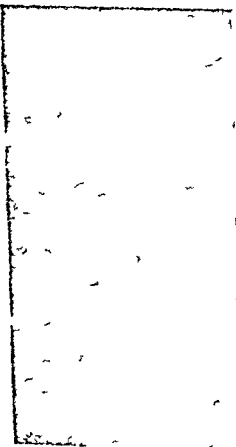
जर्मन कुमारी के नेत्र

दुश्चिंता से मस्तक और गालों पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। बाल सफेद हो जाते और झड़ने लगते हैं। कमर झुक जाती है, रंग फीका पड़ जाता है।

चेहरे पर जो मानसिक भावों के कारण परिवर्तन होता है, उसे बालक और पशु भी पहचान जाते हैं। यदि हम यह कहें कि संसार में ऐसा एक भी मूढ़ पुरुष नहीं, जो मनुष्य के चेहरे पर आए हुए मानसिक भावों से प्रभावित न हुआ हो, तो अत्युक्ति नहीं।

मानसिक भावों का प्रभाव बचपन से ही चेहरे पर अंकित होने लगता है। हम ऐसे बहुत व्यक्तियों को जानते हैं, जो बचपन में सुंदर थे, परंतु यौवन आते-आते वे अति कुरूप हो गए। ऐसे व्यक्तियों में स्त्रियों की संख्या अधिक है, उनमें बहुतों

ने मानसिक वेदनाओं से गहरे घाव खाए हैं। बहुत-से बच्चे जो बचपन से ज़िद्दी, चिड़चिड़े और बात बात पर मुँह बनाने के अभ्यासी होते हैं, शीघ्र ही कुरूप बन जाते हैं। बुद्धिमान् माता-पिताओं को चाहिए कि बच्चों को सदैव हँसमुख बनाए रक्खें। जर्मन-देश की स्त्रियों की आँखों का सौंदर्य संसार-भर में प्रसिद्ध है। वहाँ इस बात का रिवाज है कि कोई बालक

चर्बी-रहित उदर
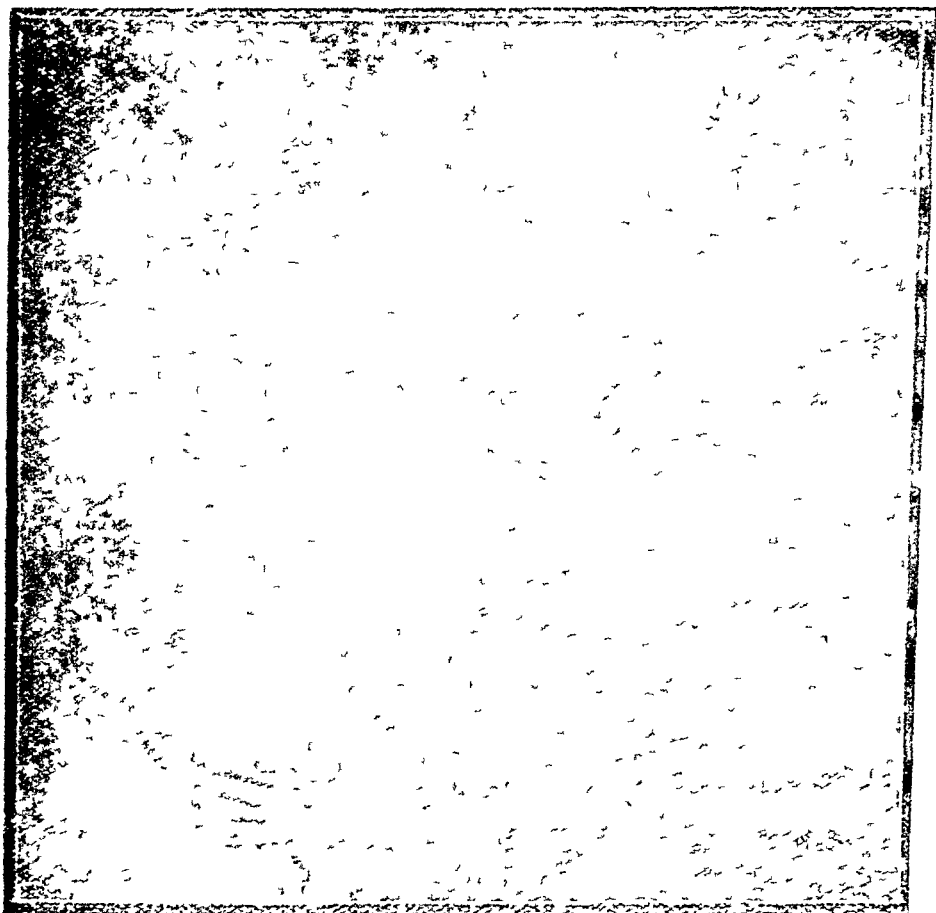
ख़ासकर बालिका रोने न पावे। उसके आँसू न निकलने पावें। यदि कभी आँसू आ भी गए, तो उन्हें सावधानी से पोंछ लिया जाता है। इसके विरुद्ध भारत में बच्चों के नेत्रों को माता सर्दी लग जाने के भय से साफ़ ही नहीं करती। वे मैल-भरी आँखों से फिरते रहते हैं, और घंटों रोते और आँखों को मलते रहते हैं। लड़कियाँ तो ख़ास तौर पर मन-माना रोने को छोड़ दी जाती हैं। अथवा उन्हें डरा-धमकाकर चुप कराया जाता है। फलतः

आँसू के बाद ही भय का भाव उनके मन में उदय होता है। आज इसका यह परिणाम है कि भारतीय स्त्रियो के नेत्रों का प्रसिद्ध कटाक्ष जो यहाँ के जल-वायु के सर्वदा अनुकूल है,
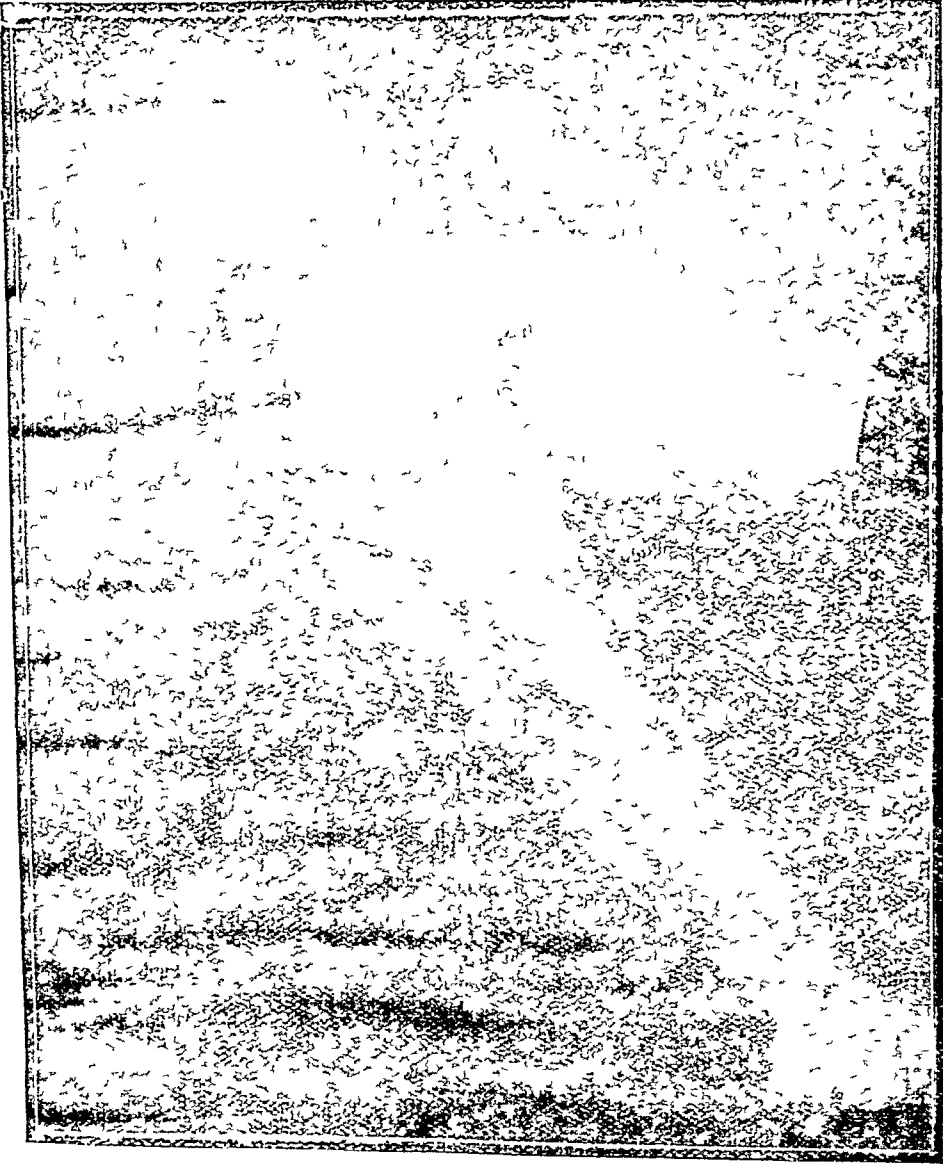
स्वस्थ शरीर और मस्तिष्क का विकास

और प्राचीन कवियो ने जिस पर बड़ी-बडी उत्प्रेक्षाएँ की हैं, नष्ट हो गया है। असख्य सुंदरी स्त्रियो की दृष्टि भेड के समान शून्य और कटाक्ष-हीन होती है।

उपर्युक्त मानसिक विचार ही आगे चलकर जब स्थायी हो जाते हैं, तब वे स्वभाव

बन जाते हैं। वे पुरुष कितने अभागे और दयनीय हैं, जो सदा क्रोध और चिंताओं द्वारा अपना ही उपहास करते हैं। क्या आपने ऐसे पुरुष नहीं देखे, जिनकी दृष्टि में उदासी और शोक भरा हुआ है, और जिनके प्रश्वास के साथ निराशा की धारा निकलती है, ये लोग जगत् के सौंदर्य से वंचित हैं। इनके हृदय में दुःख और निराशा जमकर बैठ गई है। परंतु दुःख और निराशा के भाव मन में रखने से उनसे पिंड नहीं छूट सकता, प्रत्युत वे गाँठ बँध जाते हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह सदा आशावादी रहे, और कठिन-से-कठिन समय में भी साहसी और प्रफुल्ल रहे,
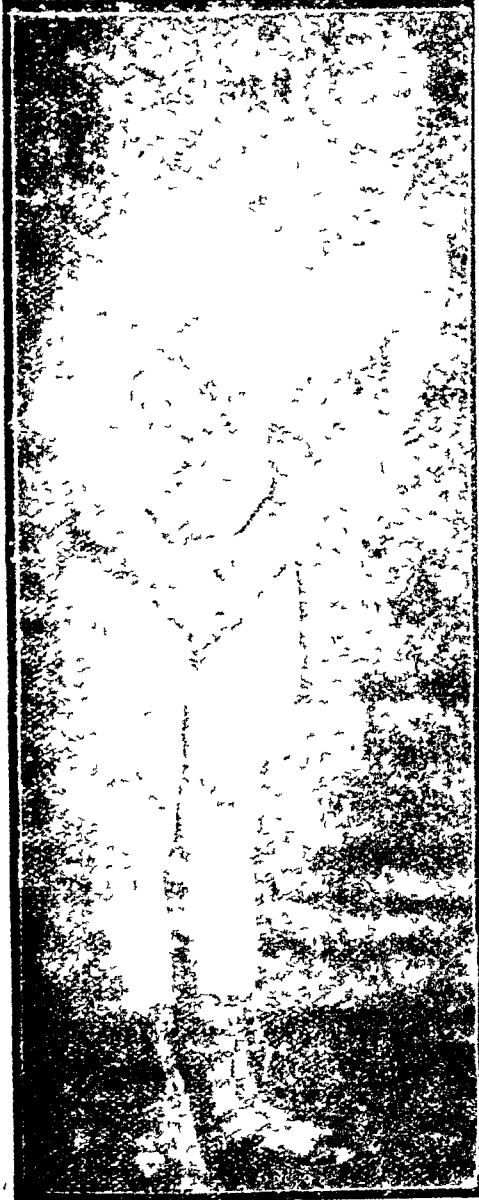
जंघाएँ और पिंडलियाँ
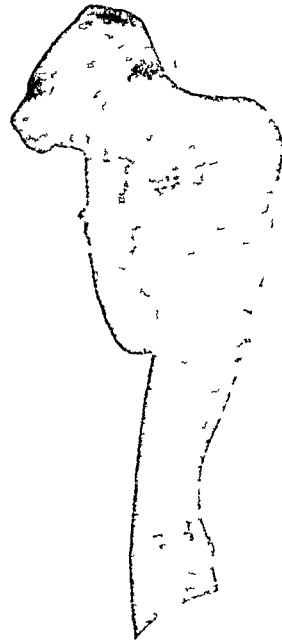
शोक-पूर्ण उदास मुख

निराशा, दुश्चिंता और विकलता को लात मारता रहे, पास भी न फटकने दे। उन्हें जीवन का शत्रु, सौंदर्य का शत्रु और स्वास्थ्य का शत्रु समझे। ये ही तो तीनों वस्तुएँ, जीवन, सौंदर्य और स्वास्थ्य, संसार की सबसे बड़ी न्यामतें हैं। यदि कोई इनकी परवा न

कर इनके शत्रुओं अर्थात् निराशा, दुश्चिंता और विकलता को हृदय में रक्खे, तो वह पुरुष महामूर्ख है। वह जान-बूझकर ही आत्महनन करता है।
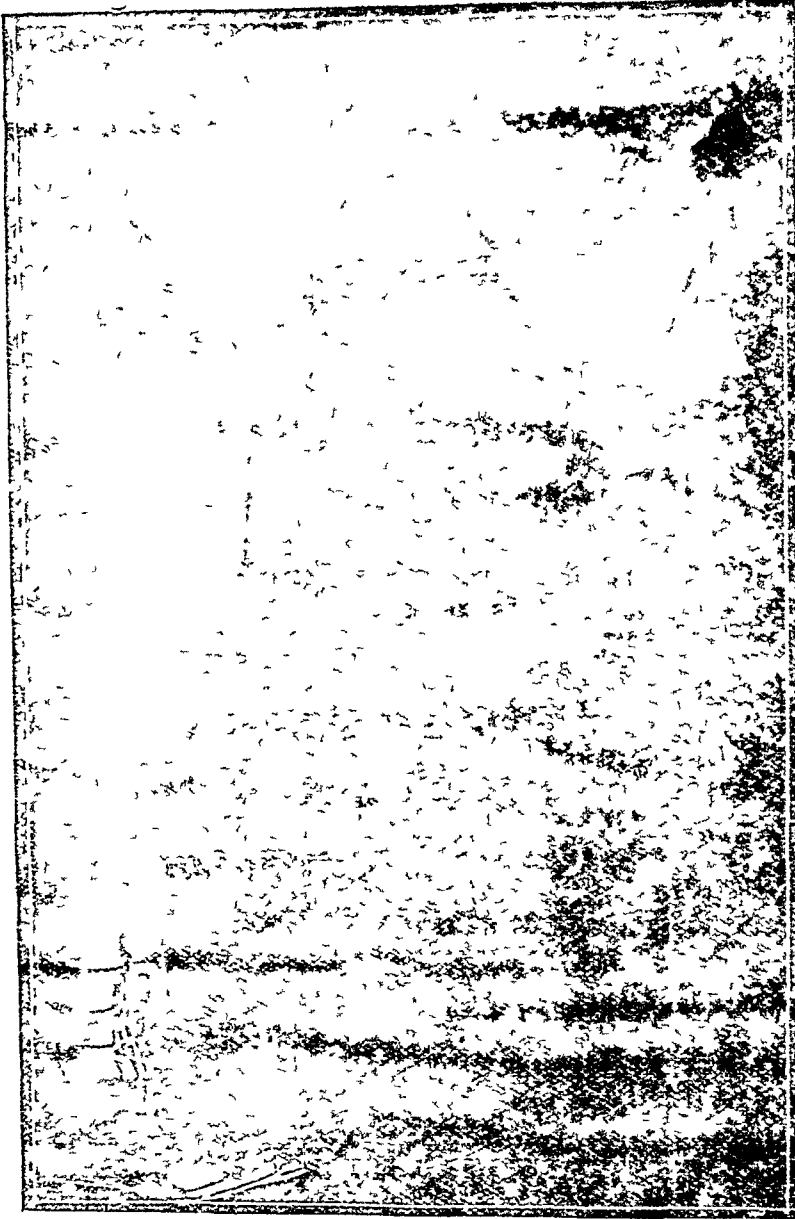
उदर, जंघा और पिंडलियाँ

उदासी, चिड़चिड़ापन, छल, प्रपंच, विश्वासघात, कामात्मता, ईर्षा-द्वेष आदि के भाव यदि स्वभाव में मिल जायँ, तो वह स्त्री या पुरुष निश्चय ही कुरूप हो जायगा।

सौंदर्य-नाश के कारण रीति-रस्म

उच्च और नीच जाति के गृहस्थों में कुछ ऐसी रीति-रस्म प्रचलित हैं, जिनसे स्त्रियों का सौंदर्य बिलकुल नष्ट हो जाता है। सबसे बुरी बात तो बड़े घरों में गमी-संबंधी है। यदि
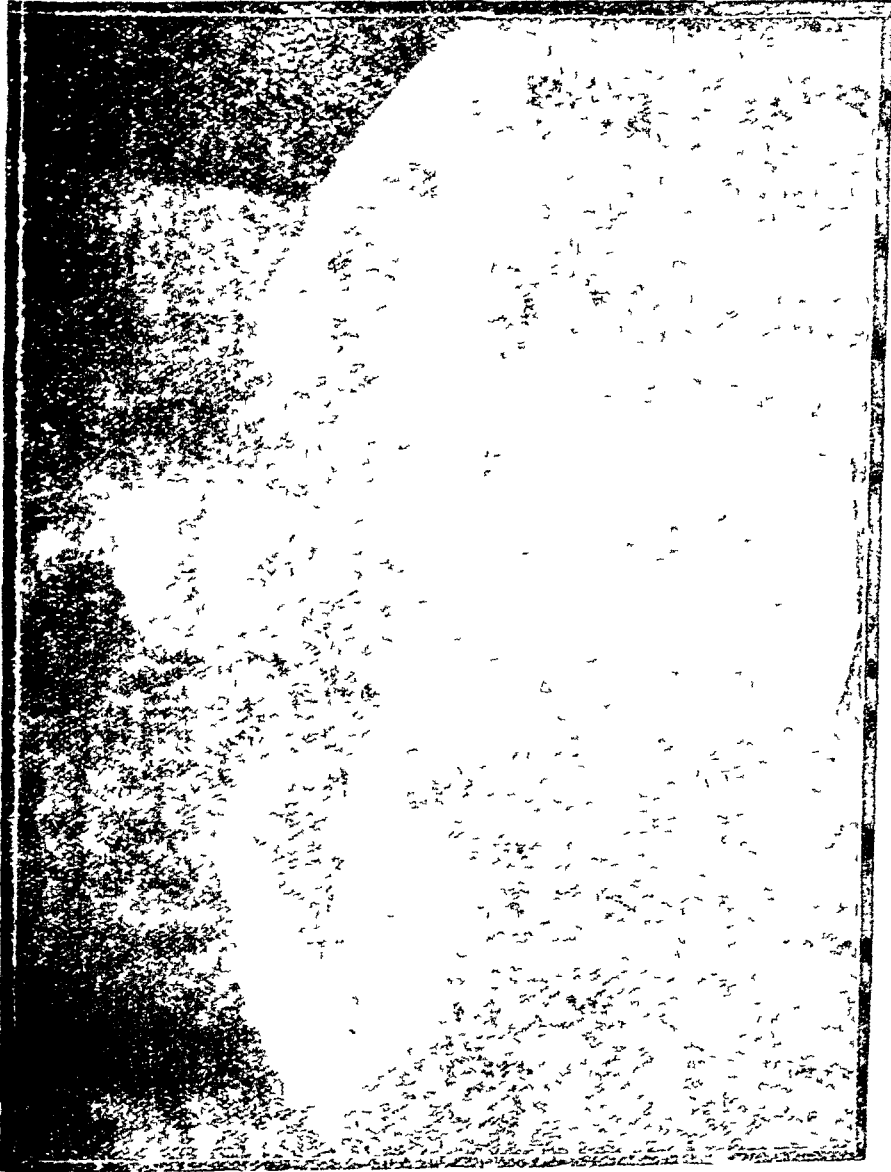
पुष्प-वक्षस्थल, धड़ और भुजदंड

घर में किसी की मृत्यु हो जाय, तो स्त्रियों को महीनों ज़ोर-ज़ोर से रोना पड़ता है, और वर्षों तक मलिन वस्त्र पहनना पड़ता है। मलिनता और शोक दोनों ही वस्तुएँ सुंदरता की शत्रु हैं।

बाल-विवाह की रीति दूसरे दर्जे पर स्त्रियों के सौंदर्य का नाश कर डालती है, इस कुरीति से न केवल उनके स्वास्थ्य का नाश होता है, प्रत्युत उनकी आत्मा का भी हनन हो जाता

वक्षस्थल, धड़ और भुजा

है। वे शीघ्र ही बच्चे की माताएँ बन जाती हैं, और जब उन्हें जवान होना चाहिए, तब वृद्धा हो जाती हैं। पर्दे की घृणास्पद प्रथा उन्हें सर्वथा नष्ट कर देती है।

स्त्रियाँ शोक-पूर्ण वातावरण में मैले और तंग मकानों में सिर्फ़ बंद ही नहीं रहतीं, वे

परस्पर लड़ती, खराब और बासी खाना खाती, और अवैज्ञानिक, अस्वास्थ्यकर वस्त्र पहनती हैं। भारी-भारी गहने शरीर पर लादे हुए जिनके कारण शरीर पर मैल की तह जम जाती है, देखकर किसे घृणा न होगी। सिर के बालो को धोने की बारी महीने, २० दिन में एक बार आती है, वह भी बहुत भद्दे और अपूर्ण ढंग से। उनमें गंदी और दुर्गंधित चिकनाई डालकर पुराने और चीकट-भरे डोरों से खूब कसकर गूँथना सौभाग्य का चिह्न समझा जाता है। बहुत-सी स्त्रियाँ दाँतों में मिस्सी लगाती, बहुतेरी पान खाती हैं। गुजरात में स्त्रियाँ मजीठ आदि से दाँतों को रँग लेती हैं। ये सब रीति-रस्म अत्यंत कुरुचि-मूलक और निकृष्ट हैं, और इनसे स्वास्थ्य का नाश हो जाता है। गाँव की स्त्रियाँ चाँदी और काँसे के भारी-भारी गहने पहनकर खूब संतुष्ट होती हैं। मारवाड़ में पैरों के भारी-भारी गहने देखकर आश्चर्य और खेद होता है। पीतल या हड्डी के अथवा नारियल के बड़े-बड़े चूड़ों से तमाम बाँह का भरा रहना अतिशय कुत्सित और बीभत्स है। चीनी स्त्रियों के पैर लोहे के जूते में किस भाँति टूट जाते हैं। इसके सिवा योरपियन लेडियाँ जो तंग जूते पहनती हैं, उनका भी पैर की बनावट पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

आदतें और रोग

गंदा रहना और हमेशा मुँह फुलाए रहने की आदत सुंदरता को बिलकुल नष्ट कर देती है। बहुत-सी स्त्रियाँ और पुरुष तंबाकू खाते हैं, इससे उनके दाँतों का सौंदर्य सदा के लिये चला जाता है। बहुत लोग भाँति-भाँति की कुचेष्टाओं की आदत डाल लेते हैं, और इससे भी उनका सौंदर्य छिन्न-भिन्न हो जाता है। कुछ लोग और स्त्रियाँ भी मटक-मटककर चलती हैं, इसके सिवा उठने-बैठने, हँसने आदि में बुरी आदतें पैदा कर लेती हैं। इससे उनकी सुंदरता में बड़ी बाधा पड़ जाती है।

यकृत की खराबी और आमाशय के रोग सौंदर्य को नष्ट कर डालते हैं यह तो हमने लिख ही दिया है। इनके सिवा अन्य कृमि और रक्त-विकार से भी सौंदर्य नष्ट हो जाता है। उपदंश, कुष्ठ, सूजाक आदि के रोग सौंदर्य को नष्ट कर देते हैं।

प्रकरण २

सौंदर्य के लिये आवश्यक बातें

सौदर्य-वृद्धि के लिये सबसे प्रधान आवश्यकता दूर देशस्थ स्त्री-पुरुषों के रक्त-सम्मेलन की है। अत्यंत प्राचीन काल मे काले अनार्य और गौर वर्ण आर्यों के सम्मेलन से अति रूपवान् नस्ल उत्पन्न होने लगी थी। इधर सैकडो वर्षों से भारत जाति-पाँति के बंधनो का शिकार हो रहा है, और इस कारण प्रत्येक जाति के रक्त-सम्मिश्रण की कमी के कारण उसका सौन्दर्य नष्ट हो रहा है।

यदि बगाली कन्याएँ पजाबी युवको को ब्याहें, तो वे ऐसी प्रतिभाशाली, सुंदर और मेधावी सताने उत्पन्न कर सकती है, जिनकी कल्पना भी नही की जा सकती। यदि काश्मीर और उत्तर-प्रदेश के पहाडी प्रदेशो की कन्याएँ दक्षिण के मेधावी कृष्णवर्ण युवको का ब्याहने दी जायें, तो एक ऐसे मनोहर सलोने रग का प्रादुर्भाव हो जाय कि जिसे देखकर आश्चर्य हो। आफ्रिका की हवशी स्त्रियों से जिन योरपियन पुरुषों ने विवाह-सबध किए, उनकी सतान बहुत सुंदर हुई।

सौंदर्य-वृद्धि में बौद्धिक उन्नति भी परम सहायक है। शिक्षा, सलीका और शिष्टाचार भी सौदर्य को परिमार्जित करता है। विद्या के प्रकाश से ही सद्विचारो का मन में उदय होता है, और उससे जो वदनच्छाया बनती है, उसका रूप पर बहुत कुछ प्रभाव पडता है।

इन दो प्राकृत बातों के सिवा सौदर्य की दृष्टि से शरीर में सम विभाग होना अति आवश्यक है। एक ओर का गाल चपटा और दूसरी ओर का गाल नही होना चाहिए। एक छाती छोटी, और दूसरी बडी नही होनी चाहिए। एक आँख छोटी और दूसरी बड़ी नही होनी चाहिए। यही बात प्रत्येक इन्द्रिय के विषय में भी समझ लेनी योग्य है। सम विभाग के सिवा अगो का सुडौलपन भी बडे महत्त्व की चीज़ है, कुबडा या बौना व्यक्ति कितना भद्दा प्रतीत होता है।

चौथी बात सौंदर्य के लिये बाँकपन है। तनिक तिरछापन शरीर के सौदर्य को बढ़ाता है। बिलकुल गोल तो कोई भी अग अच्छा नही लगता, आँख, माथा, कान, नाक, मुँह आदि चाहे भी जिस अंग को ले लीजिए।

उज्ज्वल गौरवर्ण सौदर्य के लिये सर्वोत्तम समझना चाहिए। काले रग में रंगों का सूक्ष्म उतार-चढ़ाव नहीं प्रतीत होता। गौरवर्ण में गालों की सुर्खी की झलक का मानसिक भावो के साथ कम-विशेष होना उसके सौदर्य में सजीवता पैदा करता है।

कोमलता सौंदर्य का अंतिम चिह्न है। दृष्टि, वाणी, गति, अंग-विक्षेप तथा शरीर के अवयवों में कोमलता का होना सौंदर्य-वृद्धि का कारण है। लावण्य या प्रभा वास्तव में पूर्व-कथित मुखच्छाया पर निर्भर होती है। लावण्य से सौंदर्य को जीवित और प्रकाशमान करता है।

वदनच्छाया—आपने प्राचीन चित्रों में महापुरुषों के मुख-मंडल के चारो ओर एक प्रकार का उज्ज्वल प्रकाश देखा होगा। यह वदनच्छाया या ओज के नाम से प्रसिद्ध है। यह वदनच्छाया जीवन से मृत्यु तक प्रत्येक मनुष्य के मुख-मंडल के चारों ओर बनी रहती है, और जैसा कुछ मानसिक भाव हृदय से उठकर मुख पर आता है, उसी के अनुसार उसका रंग बदलता रहता है। इस वदनच्छाया के मुख्य रंग तीन हैं, एक उज्ज्वल आलोकमय श्वेत, जो पूर्ण पवित्र महापुरुषों के मुख-मंडल से निकलता है यह सतोगुण का रंग है, दूसरा लाल जो रजोगुण से संबंध रखता है, योद्धा और वीर पुरुष के मुख-मंडल के चारों ओर रहता है। तीसरा काला रंग का है, जो तमोगुण का द्योतक है, और पापियों के मुख-मंडल पर व्याप्त रहता है। इन तीनो रंगों के फिर अनेक मिश्रण हृद्गत भावों के परस्पर मिल जाने से बन जाते हैं। गुलाबी, नीला, बैंजनी, धूमिल और हरे-पीले आदि सब रंग मिश्रित होते हैं। इन रंगों की झलक चेहरे पर पड़कर उस पर अपना प्रभाव प्रकट करती है। यों कहा जा सकता है कि मुख-मंडल इस वदनच्छाया के वाष्पीय रंग में सदैव डूबा हुआ रहता है, और हम मुख को उसी प्रकार देख सकते हैं, जैसे कॉच के ग्लोब से दीप प्रकाश की रेखा को देख सकते हैं।

यह वदनच्छाया बिना गंभीर अभ्यास के साधारण नेत्रों से नहीं देखी जाती। फोटो के यंत्र तक भी उस प्रकाश को ग्रहण नहीं कर सकते। फोटो के यंत्र से यदि कोई सुंदर चित्र लिया भी जाय, तो वह केवल प्रकाश के स्थूल आलोक के ठीक-ठीक होने से—यदि छाया ठीक-ठीक अंकित हुई, तो सुंदर प्रतीत होता है। परंतु बहुत-से मुख जो प्रत्यक्ष में वदनच्छाया के कारण अति माधुर्य-पूर्ण प्रतीत होते हैं, फ़ोटो में उतने सुंदर नहीं उतरते। इसका कारण यही है कि फ़ोटो के प्लेट उस अति गुप्त वदनच्छाया के आलोक को नहीं ग्रहण कर सकते। परंतु सिद्ध मुनि जो इस का यथेष्ट अभ्यास कर लेते हैं, इस वदनच्छाया को प्रत्यक्ष देखते हैं, वे उसी को देखकर यह भी जान लेते हैं कि इस मनुष्य के मन में कैसे विचार उत्पन्न हो रहे हैं। क्योंकि विचारों के परिवर्तन के साथ ही वदनच्छाया का रंग भी बदलने लगता है।

जिस पुरुष के मानसिक विचार शुद्ध हैं, वह यदि कुरूप भी हो, तो सुंदर प्रतीत होगा। इसके विरुद्ध यदि सुंदर पुरुष बुरे विचारों को मन में रखता होगा, तो वह निकट जाने पर शीघ्र ही कुछ बदसूरत दीखने लगेगा। यह इसी मुखच्छाया का परिणाम है।

प्रकरण ३

केश-सौंदर्य

सारे सिर पर १ लाख से १॥ लाख तक कुल बाल होते हैं, और एक इंच स्क्वायर में १ हज़ार होते हैं। साधारणतः बालों की लंबाई, यदि वे न काटे जायँ तो, २० इंच से १ गज़ तक होती है, पर बढ़ाए जाने पर ७ फुट तक और कभी-कभी इससे भी अधिक देखे गए हैं। सिर के बालों का व्यास १/५०० से १/३०० इंच तक होता है।

नरम, लंबे, घने और चिकने बाल होना स्वास्थ्य का चिह्न है। स्वस्थ स्त्री-पुरुषों ही के सिर पर ऐसे सुंदर और मज़बूत बाल रहते हैं। यद्यपि आजकल बालों को छाँटकर छोटा करने का रिवाज सभी जातियों में हो गया है, यहाँ तक कि विलायत में तो स्त्रियाँ भी बाल कटाने लगी हैं। फिर भी बालों का शृंगार और उनका मोह संसार के सभी स्त्री-पुरुषों को है।

भारतीय जनों के केश घने-काले होते हैं। ये केश उष्णता को चूसते और मस्तिष्क को उससे बचाते हैं। केश की बनावट हम पीछे एक अध्याय में विस्तार से बयान कर आए हैं। बालों में विद्युत्-धारा भी है, और ज्ञान-तंतुओं पर उनके द्वारा बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है, स्नेह और प्रेम की भावना से बालों पर हाथ फेरने से ज्ञान-केंद्र में बड़ी स्थिरता आती है। और गंभीर विचार करने के समय बालों पर हाथ फेरने से स्मृति का विकास होता है।

जिन स्त्री या पुरुषों के बाल नरम, सुंदर, मज़बूत और चमकीले न हों, तो उन्हें उत्तम स्वभाव का न समझना चाहिए। ईश्वर ने जिन्हें उत्तम केश दिए हैं, उन्हें उचित है कि वे उन्हें ख़ूब सँभालकर यत्न से रक्खें।

बाल धोने की रीति

कम-से-कम प्रति सप्ताह केशों को धोना स्त्रियों और प्रति दूसरे दिन पुरुषों के लिये आवश्यक है। देहातों और कस्बों में पुरानी रीति के अनुसार दही और मुलतानी मिट्टी, बेसन या आँवले से बाल धोए जाते हैं। यह मिट्टी या दही आदि बहुधा बालों में रह जाता है। अच्छी तरह बालों में से उसे निकाला नहीं जाता। इससे केश मैले और दुर्गंधित हो जाते हैं। इसके सिवा मुलतानी मिट्टी की तह यदि बालों की जड़ में जम गई, तो उससे और भी हानि होती है। इन चीज़ों से मस्तक में तरावट रहती है, और केशों में बल भी आता है। इसलिये बीच-बीच में एकाध बार ख़ासकर गर्मी की ऋतु में इन चीज़ों को बालों में लगाया जा सकता है। पर यह अत्यंत आवश्यक है कि उन्हें ख़ूब अच्छी तरह काफ़ी जल से धो लिया जाय।

आँवला केशों को काले और चिकने करने में बहुत गुण रखता है। मस्तिष्क को भी तरावट देता है। आँवले का चूर्ण करके रात को पानी में भिगो देना चाहिए, और फिर स्नान के समय सरसों के तेल में उसे पीसकर वालों पर ख़ूब मलना चाहिए। इससे वाल मजबूत, लंबे, चिकने और काले होते हैं।

आजकल स्त्री और पुरुष बहुतायत से वालों को धोने में साबुन का इस्तेमाल करते हैं। परंतु घटिया साबुन चमड़ी और बालों के लिये कितना हानिकारक होता है। यह बात बहुत कम आदमी विचारते हैं। घटिया साबुनों में गंदी और रोग-जंतुओं से परिपूर्ण चर्बी और चूना आदि चमड़ी को दूषित करनेवाली चीज़ें रहती हैं।

सिर धोने के लिये सदैव ही नरम प्रकार का उत्कृष्ट श्रेणी का साबुन लेना चाहिए। सिर और शरीर के धोने के लिये पीयर का ग्लेसरीन साबुन सबसे उत्तम है। देशी साबुनों में गोदरेज का साबुन भी उत्तम है।

साबुन लगाकर धीरे-धीरे हलके हाथ से वालों में झाग पैदा करना चाहिए, और थोड़ा-थोड़ा गुनगुना पानी डालते जाना चाहिए। जब सब मैल घुलकर बाहर आ जाय, तब अधिक पानी डालना चाहिए। पर जब तक सब मैल और साबुन का अंश न निकल जाय ठंडा पानी नहीं डालना चाहिए। सिर में दो बार साबुन लगाना उचित है। इसके बाद बहुत सावधानी से साबुन का संपूर्ण अंश सिर से अलग कर देना चाहिए। इसके बाद ठंडे जल से फिर वालों को धोना चाहिए। वाल निहायत साफ़, नरम, चमकीले और गहरे होकर एक-एक खिल जायँगे।

विलायती साफ़ किया हुआ सुहागा, जो अँगरेज़ी दवा बेचनेवालों के यहाँ बोरिक एसिड के नाम से मिलता है, वालों को धोने के लिये अति उत्तम है। इसकी एक पुड़िया थोड़े गुनगुने पानी में घोल लो, और उससे वालों को धो डालो। बाद में ख़ूब मलकर साफ़ जल से ख़ूब वालों को धोओ। वाल बिल्कुल साफ और एक-एक खिलकर अलग-अलग हो जायँगे।

'शंपू' नाम से एक और चीज़ की पुड़िया विलायती आती है, जो पैकेट के रूप में ।) या ।≈) की बिकती है। इसमें उत्तम कोटि के साबुन की जाति का चूर्ण होता है, इसमें से थोड़ा सा पानी में घोलकर ख़ूब झाग पैदा करो, और बाद में बालों में लगाकर धो डालो। इसका प्रयोग मास में एक बार यानी प्रत्येक चौथी बार करना काफ़ी है।

कंघी या ब्रुश करना

यह बहुत आवश्यक बात है कि जब तक वाल बिल्कुल न सूख जायँ, उनमें कंघी या ब्रुश नहीं करना चाहिए। नरम सूखे तौलिए से बहुत हल्के हाथों से वालों को झाड़ते हुए जल्दी-जल्दी रगड़ना चाहिए, जिससे उनका पानी ख़ुश्क हो जाय। आग के सामने या धूप में बैठकर वाल सुखाना ठीक नहीं। एक बिजली का यंत्र २०), ६०) रु० कीमत का भी

इसी मतलब के लिये मिलता है, उससे बाल बहुत जल्द सूखते हैं। सिर के एक-एक भाग के बालों को सावधानी से सुखाना चाहिए।

जो लकड़ी या सींग की देशी कंघियाँ हमारे घरों में स्त्रियाँ काम में लाती हैं, उनमें अनेक दोष होते हैं। कारीगर लोग हाथीदाँत या जालों की कारीगरी तो उन पर बड़ी बारीकी से करते हैं, और उनकी कीमतें भी ३-४ रु० तक हो जाती हैं। पर जिस बात की आवश्यकता कंघी में होनी चाहिए, वह उनमें नहीं है। कंघी के दाँत जड़ तक छीदे रहने चाहिए, जिससे उनमें बाल उलझें नहीं, और मैल जमे नहीं। दूसरे वे नोकीले न होकर गोल होने चाहिए कि बालों को तोड़ें नहीं। विलायती कंघियों में ये दोष नहीं होते। इसलिये वे कंघियाँ अधिक आसानी से बालों को बा सकती हैं। ब्रुश का रिवाज अधिक पढ़े-लिखे लोगों में है, वह भी बहुत कम। अस्तु। कंघी या ब्रुश खूब साफ रखना परमावश्यक है। बहुधा स्त्रियाँ कंघी या ब्रुश करने का उद्देश्य यह समझती हैं कि बाल सीधे हो जाते हैं, किंतु कंघी करने का असली उद्देश्य तो बालों की कसरत है, जिससे बाल बढ़ते और सुंदर होते हैं। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को दिन में कई बार कंघी या ब्रुश करना चाहिए। यदि यह संभव न हो, तो दिन में दो बार तो अवश्य ही करना चाहिए।

कंघी करने में इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि उसकी रगड़ चमड़ी पर न पड़े। उससे सिर्फ़ बालों को सुलझा दिया जाय। फिर ब्रुश से चमड़ी की सतह को धीरे-धीरे रगड़ा जाय और बालों को हलके हाथ से झटका दिया जाय। इस प्रकार ब्रुश और कंघी के द्वारा बाल और उनकी जड़ों को स्वच्छ और मल-रहित बनाया जाना चाहिए। इस बात की सावधानी से जाँच करनी चाहिए कि सिर पर बालों की जड़ में चीकट या मैल की तह तो नहीं जम गई है। यदि ऐसा हो, तो ब्रुश का प्रयोग और भी सावधानी से करना चाहिए। कंघी करने में कम-से-कम १० मिनट का समय लगाना चाहिए। जो स्त्रियाँ अपने बालों को सुंदर और मज़बूत बनाना चाहती हैं, उन्हें उचित है कि वे प्रातःकाल उठकर सबसे प्रथम अपने बालों को ५ मिनट तक कंघी करें।

कंघी और ब्रुश को खूब सावधानी से साफ रखना बहुत जरूरी है। प्रतिवार कंघी या ब्रुश को काम में लाने के बाद गर्म पानी में बहुत अच्छी तरह धोकर सुखा लेना चाहिए। उसमें मैल से रोग-जंतुओं के उत्पन्न हो जाने का बहुत भय रहता है। इसलिये ब्रुश या कंघी को पहले साबुन या सोडा से धो लो, पीछे गर्म पानी से उसे साफ कर डालो।

बढ़िया ब्रुश धोने के लिये सोहागे का पूर्वोक्त चूर्ण पानी में घोलकर काम में लाना चाहिए। ब्रुश न बहुत सख़्त हो, न बिल्कुल नरम। कंघी या ब्रुश प्रत्येक बार बाल ठीक करने के समय कम-से-कम ४० बार फेरना चाहिए। यह काम जल्दी-जल्दी करना चाहिए।

तेल

यदि स्नान से पूर्व तेल मलकर बालों को ठीक-ठीक पुष्टि पहुँचाई जा सके, जैसा कि

हम ऊपर लिख चुके है, तो केश धोने के बाद बालों में फिर तेल देने की आवश्यकता नहीं। बालों में तेल लगाने से कपड़े चिकने हो जाते है, कीमती साड़ियाँ ख़राब हो जाती है। इससे बचने के लिये पारसी स्त्रियाँ बालो पर रूमाल बाँध लेती है, पर इससे बालों का सौंदर्य छिप जाता है। योरप में जो चीजें बाल धोने के बाद प्रयोग मे लाई जाती है, वे चिकनाई-रहित होती हैं। उनमे केवल सुगंध होती है। परतु भारत में तेल का प्रयोग अधिक किया जाता है। यहाँ की जल-वायु के लिये वह आवश्यक भी है।

सिर में सबसे अधिक गुण देनेवाला तेल रोग़न बादाम है। यदि शुद्ध बादाम का तेल आपको सदा मिल सकता है, तो आप समझिए, इससे उत्तम वस्तु आपके लिये दूसरी हो ही नहीं सकती। यह तेल न केवल बालो का पुष्टिदाता है, किंतु मस्तिष्क और नेत्रों में बल देता है। कद्दू और काहू का तेल भी ऐसा ही गुणकारी है। पर इस बात की सावधानी रखना चाहिए कि बाज़ारो मे जो इन नामो से तेल मिलते है, बहुधा नकली होते है।

केश तेल या हेअर आइल के नाम से जो घटिया-बढ़िया हजारो क़िस्म के सुगधित तेल बाज़ार में आपको मिलते हैं, आप समझ लीजिए कि उनमें अधिकांश ज़हर के समान हानि-कारक है। उनको पतला और पारदर्शी बनाने के लिये उनमे शुद्ध किया हुआ निर्गंध मिट्टी का तेल डाला जाता है, जो इसी काम के लिये बाज़ार में बहुत बिकता है, और ह्वाइट आइल के नाम से मशहूर है। ये तेल बालो की जडो को नष्ट करते, गज उत्पन्न करते और नेत्रों तथा मस्तिष्क को ख़राब करते है। आँवला आइल, ब्राह्मी आँवला आइल के नाम से भी जो तेल बाज़ार में मिलते हैं, वे प्राय नकली होते हैं, और उन पर विश्वास नहीं किया जाता। इसलिये हम यहाँ पर सिर में लगाने योग्य तेलो के ३-४ उम्दा नुसख़े देते हैं, जिन्हें घर में तैयार करके आप अपने काम में ला सकते हैं।

तेल बनाने की विधि

सबसे प्रथम यह आवश्यक है कि सरसों, तिल या नारियल के तेलो की दुर्गंध दूर की जाय, इसलिये प्रथम इसी की विधि लिखते है—

(१) १ सेर सरसों का तेल लीजिए। उसमें १ तोला हलका गधक का तेजाब डालिए। (१ तोला Strong Sulphuric Acide में ८ तोला पानी मिलाने से वह हलका गंधक का तेजाब बन जाता है।) इसको ख़ूब हिलाइए। सरसो के तेल की सारी गंध नष्ट हो जायगी, और वह सफेद हो जायगा। अब इसमें थोडा 'सोडियम कार्बोनेट सोल्यूशन' डाल दीजिए, जिससे तेजाब का असर जाता रहे। इसके बाद ८-१० बार शुद्ध पानी से उसे धो डालिए। इस प्रकार सरसो का तेल शुद्ध हो जाता है।

(२) तिल का १ सेर तेल लेकर १ छटाँक 'कास्टिक सोडा' डालकर गर्म कीजिए, तो वह पतला और निर्गंध हो जायगा। इसके बाद उसे पानी में ८-१० बार धोकर शुद्ध कर लेना चाहिए।

(३) तिल या नारियल का १ सेर तेल लेकर २ तोला नख्री (यह दवा पंसारी से मिलेगी) खूब बारीक पीसकर प्रथम १ छटाँक तेल के साथ कलछी में खूब पकाकर तेल में डाल दीजिए, फिर उस बर्तन का मुख बंद करके ४ दिन तक रख छोड़िए। नित्य २-३ बार हिलाइए। ४ दिन बाद छान डालिए तेल शुद्ध-पतला और निर्गंध हो जायगा।

(४) नारियल का १ सेर तेल लीजिए। उसमें २ छटाँक सोडा (साधारण) २ सेर पानी में घोलकर मिला दीजिए, और आग पर पकाइए। जब आधा पानी जल जाय, ठंडा कर लीजिए और हाथ से खूब मथिए। मक्खन के समान हो जायगा। ४ दिन इसी भाँति रहने दीजिए, फिर तेल से चौगुना पानी डालकर मथिए, सब सोडा पानी में घुल जायगा। अब मक्खन के समान तेल को आग पर पकाइए। और जब पानी का अंश जल जाय, तब उतारकर उसमें २॥ तोला हलका गंधक का तेज़ाब डाल दीजिए। २ दिन तक रख दीजिए। बीच-बीच में हिला दिया कीजिए। सब तेल फटकर तेज़ाब और गोंद नीचे बैठ जायगा, तेल को निथार लीजिए। और एक बार फिर पका लीजिए जिससे तेज़ाब का शेष अंश भी उड़ जाय।

इस प्रकार तेलों को शुद्ध करके अब उन्हें नीचे लिखी रीति से जैसा पसंद हो, तैयार कर लीजिए।

१—भाँगरे का रस ४ सेर, शुद्ध तिल का तेल १ सेर, मजीठ ५ तोला, लोध ५ तोला, चंदन सफेद, खरेटी, हल्दी, गेरू, दारु हल्दी, मेहँदी, मुलहठी, नागकेशर, प्रत्येक ५-५ तोला सबको बकरी के दूध में भंग की तरह पीसकर लुगदी बना ले।

इसके बाद तेल, भाँगरे का रस और १ सेर दूध बकरी का तथा यह लुगदी सबको आग पर चढ़ाकर मंदाग्नि से पकाइए। जब देखिए कि पानी का अंश जल गया, तब थोड़ी लुगदी लेकर उँगली से बत्ती बनाइए, जब बत्ती बनने लगे, उतारकर वैसा ही रख दीजिए। ३ दिन बाद छानकर काम में लाइए। आवश्यकता हो,तो ब्लाटिंग पेपर से छानना चाहिए। यह तेल बाल काले करता है, और मस्तिष्क की तरावट के लिये उत्कृष्ट है। यह तेल सिर-दर्द की भी उत्कृष्ट औषध है।

२—मेहँदी ऽ॥, लाल चंदन ऽ-, गुलाब के फूल ऽ-, त्रिफला ऽ=, सबको जौकुट करके ४ सेर पानी में पकाइए। जब १ सेर पानी रह जाय, तो उतारकर मल छान लीजिए। १ सेर यह काढ़ा, ऽ॥ सेर आँवले का रस, ऽ॥ सेर भाँगरे का रस, १ सेर तिल का तेल मिलाकर पकाइए। जब पक जाय, तो उतारकर छान लीजिए। इसके बाद ऽ= कद्दू का तेल, १ तोला कपूर मिलाकर दो दिन कार्क बंद करके रख दीजिए। यह तेल बालों के लिये सब प्रकार लाभकारी है।

३—तिल का शुद्ध तेल १ सेर, आँवले का गूदा ऽ।, हरे आँवले का रस ४ सेर, सबको

मिलाकर पकाइए। रस जल जाने पर उतारकर छान लीजिए। यह आँवले का असली तेल है, इससे दृष्टि, केश और मस्तिष्क दृढ़ होते हैं।

उपर्युक्त नुस्ख़े देशी तेलों के हैं। विलायती सुगंध डालकर जो तेल बनाए जाते हैं, उनके भी कुछ ऐसे नुस्ख़े नीचे दिए जाते हैं, जो हानि नहीं करते। ये अँगरेज़ी सुगंध सब अँगरेज़ी दवा बेचनेवालों के यहाँ मिलेगी।

१—शुद्ध नारियल का तेल १ सेर, हिकोनरगिस २ तोला, हिको मुश्क १ तोला, जसमिन १ तोला, सबको मिला लीजिए।

२—चमेली का तेल १ बोतल, आइल बर्गामेट २॥ तोला, आइल सिटरन १ तोला, आइल नेरोली ६ माशा, एसेंस बेनीला २० बूँद, एसेंस रोज़मरी २० बूँद, हिलाकर मिला लीजिए। इन तेलों में रंग यदि देना हो, तो लाल, हरा, पीला, जैसा भी चाहें, रंग दे सकते हैं। ये सब रंग बाज़ार में अँगरेज़ी दवा बेचनेवालों के यहाँ मिलते हैं।

केश बाँधना

भारत में भिन्न-भिन्न रीति से केश बाँधे जाते हैं। विलायत में भी केश-विन्यास की सैकड़ों विधि हैं।

केशों की सुंदरता की रक्षा के लिये यह आवश्यक है कि उन्हें ख़ूब कसकर न बाँधा जाय। दूसरे उन्हें इस ढंग से भी न बाँधा जाय कि वे नित्य न खोले और कंघी किए जा सकें।

केशों की जड़ में अधिक समय तक हवा लगनी आवश्यक है। रात्रि के समय केश या तो बिलकुल खोल देने चाहिए, और या अगल-बगल ज़ुल्फ़ें छोड़ देनी चाहिए। जूड़ा कदापि न बाँध रखना चाहिए, क्योंकि सिर के जिस भाग पर जूड़ा बाँधा जाता है, वह स्थान प्रेम के वाहक ज्ञान-तंतुओं का केंद्र है। उस पर जूड़े के कारण दबाव पड़ने से दुःस्वप्न आते हैं। इसलिये जूड़ा कदापि नहीं रखना चाहिए।

बालों का गिरना

पुराने बालों का गिरना और नयों का उगना, यह निरंतर होता ही रहता है। परंतु यदि बाल झड़ते चले जायँ और नए न उगें, तो यह रोग समझना चाहिए। बालों के झड़ने का कारण आप बालों की बनावट पर ग़ौर करने से समझ सकते हैं। यह रोग वास्तव में रक्त की कमी से होता है। चर्म-रोग, क्षय, जीर्णज्वर आदि से भी यह रोग हो जाता है। मद्य, तंबाकू, जागरण आदि से भी यह रोग अधिक फैलता है। परंतु कभी-कभी स्थानिक कारणों से भी बाल झड़ने लगते हैं, जैसे बालों की जड़ों में फियास या मैल जम जाना आदि।

यदि किसी शारीरिक रोग के कारण बाल झड़ने लगे हों, तो प्रथम उसका उपाय करना चाहिए। यदि स्थानीय कारण हो, तो बालों की सफ़ाई का बंदोबस्त करना चाहिए।

यथा—(१) चमडी स्वच्छ रक्खी जाय। (२) प्रतिदिन वारंवार कंघी करना। (३) मुर्दे वालो को निकाल देना। स्मरण रखना चाहिए कि मुर्दा वाल यदि वना रहने दिया जाय, तो वह और वालों की जडो का भी खाला कर देगा। बहुत लोग जिनके वाल कमज़ोर होते है, वाल उखडने के भय से ज़ोर से कंघी नहीं करते, यह उनकी भूल है। उन्हें उचित है कि खींच-खींचकर मुर्दार और कमज़ोर वाल को वाहर निकाल डालना चाहिए। इसके सिवा नीचे-लिखी रीति से वालों का व्यायाम करना चाहिए।

१—उँगलियो को खोपडी मे जमाकर सपूर्ण सिर पर जल्दी-जल्दी घुमाओ। २—वालो की लटे उँगलियो मे लपेटकर खीचो। ३—समस्त वालो को मुट्ठी में भरकर खींचो। ४—वालो की जडों में उँगलियों की कैंची लगाकर धीरे-धीरे ऊपर तक लाओ। ५—ब्रुश को सिर पर अच्छी तरह रगडो। यह वाल वढाने का एक वढ़िया नुस्ख़ा है—

जौ छिले हुए ८ तोला आँवला २ तोला ३ पाव पानी में काढा करे। १ पाव शेष रहने पर १० तोला वनफसे का तेल, तिल के पत्ते, वर्ग खतमी वर्ग कद्दू प्रत्येक ३-३ तोला पकावे। रात को तेल लगाकर सुबह नीवू डालकर गुनगुने पानी से धोवे। वड़ी-वड़ी पगडियाँ वॉधना या भारी-भारी टोपियॉ पहनना भी वालो को कमज़ोर करता है। जो स्त्रियॉ वच्चो के सिर पर भारी-भारी टोपे लादे रहती है, उन्हें इस वात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि सिर जितना खुला रहेगा वालों को पुष्टि मिलेगी।

वालों को उड़ने से रोकने के लिये एक अँगरेजी लोशन का नुस्ख़ा जो फ़ायदेमद है यहाँ लिखते है। इसे सप्ताह में एक या दो वार आवश्यकतानुसार लगाया जा सकता है—

टिंचर ऑफ़् कैंथरायडोज़ ½ औंस। ग्लेसरीन ४ औंस ट्रिपल एक्ट्रेक्ट ऑफ़् रोज़ ½ औंस सोल्यूशन ऑफ़् एमोनिया ½ औंस वैरम आधा पाइंट सवको मिलाकर छान लेवे।

वाल झड जाने के वाद यदि साफ खोपडी निकल आवे, तो उसके लिये यह अँगरेज़ी मरहम वहुत मुफीद है—

१०%आओलेट ऑफ् मरकरी ½ औंस इचथियोल १ ड्राम लेनोलिन ½ औंस मिलाकर कडे ब्रुश से सुवह-शाम मले।

१—देशी औषध मे ताज़ा प्याज़ वीच से काटकर खोपडी मे मलवाना, यहाँ तक कि त्वचा लाल हो जाय। पीछे शहद लेप कर देना। १ घटे वाद गुनगुने पानी से धोना चाहिए।

२—वारवार वालो पर उस्तरा फिरवावे।

३—उपदंश के कारण वहुधा वाल झड जाया करते है। उसके लिये यह नुस्ख़ा वहुत उत्तम है। इससे वाल स्याह निकलते है—

करज, चित्रक, चमेली के पत्ते, कनेर की जड सवको चौगुने पानी मे काढा करे। जव चौथाई पानी रह जाय, तो उस पानी में चौथाई तेल मिलाकर पका ले। पानी जल जाने पर छानकर मालिश करे।

४—यह नुसखा मूँछ और भौंह के बालों के उड़ने में मुफ़ीद है। समुद्रफेन, राख कसूम बारीक करके जैतून के तेल के साथ हल करे, और लगावे।

५—यह लेप बाल उत्पन्न करने में बहुत गुणकारी है—हाथी-दाँत की राख और रसौत मिलाकर बकरी के दूध मे पीसकर लेप करना चाहिए।

इस रोग मे साबुन न लगाया जाना चाहिए। यदि लगाया जाय, तो ग्लेसरीन लगाया जाय, और यदि फियास जमा हो गई है, तो उसे ख़ूब यत्न से उतार दिया जाय। यदि एक चम्मच नमक पानी में मिलाकर उससे सिर धोया जाय, तो फियास जाता रहता है।

बालों का सफ़ेद होना

असमय में बालो का सफ़ेद हो जाना दो कारणों से होता है। एक—शोक, दूसरे रोग से। शोक और चिंताओं के तो मूल कारण दूर करने ही पर उनका प्रतिकार हो सकता है। पर इसमें संदेह नहीं कि असमय मे जो बाल सफ़ेद हो जाते है, वे उपाय से काले किए जा सकते है।

चार सेर पके हुए भारी-भारी भिलावे लेकर सरौते से उनकी टोपी काटकर पुरानी ईंट के चूर्ण में मिलाकर ख़ूब रगड़ो। जब तमाम चिकनई उसमें आ जाय, तो गर्म पानी से धोकर १६ सेर पानी मे पकाओ। ४ सेर पानी शेष रहे, तो उतारकर छान लो। यदि थोड़ी भी चिकनई हो, तो ब्लाटिंग पेपर से चिकनई उतार लो और तब १६ सेर भैंस का दूध मिला-कर उसका मावा पकाओ। मावा होने पर १ सेर घी डालकर भून लो। इसके बाद चीनी, खोपरा (कसा हुआ), तिल, मेवा डालकर ४-४ तोले के लड्डू बना ले। नीचे-लिखी दवा भी कपड़छनकर मिला दे। त्रिकुटा, त्रिफला, भीमसेनी कपूर, बालछड़, निसोत, कत्था, सफ़ेद चंदन, अकरकरा, पीपल, लवंग, सफ़ेद मूसली, काली मूसली, ककोल, अजवायन, जावित्री, समुद्रशोष, लोहभस्म, वंगभस्म, अभ्रकभस्म प्रत्येक १-१ तोला।

यह पाक १ सप्ताह रखकर खाना चाहिए। और मावा ख़ूब कसकर भून लेना चाहिए, जिससे जल्द ख़राब न हो।

काबुली हरड़ ५ तोला, मड्डर-भस्म १० तोला, गारीकून ५। तोला, सोंठ, लवंग, दार-चीनी, पीपल प्रत्येक नौ माशा। सबको कूट-पीस कपड़छन करे और ७० तोला शहद में मिलाकर माजून बनावे। प्रात काल १ तोला खावे। एक वर्ष खाने से बाल क़तई काले हो जायँगे।

ख़िज़ाब

नीचे-लिखा ख़िज़ाब का अँगरेज़ी नुस्खा है। यह दो शीशियों मे तैयार होता है।

पैरोगेलिक एसिड ३० ग्रेन। सोडा सल्फेट १० ग्रेन। रेक्टीफाइटस्प्रिट ७ ड्राम। पानी २ औंस। यह हुआ नं० १ अरजन टाइनेट्राम १ ड्राम।

इसको ४ ड्राम पानी में घोलो। फिर थोड़ा-थोड़ा लिक्वर एमोनिया मिलाते जाओ,

जब बिल्कुल घुल जाय, तब २ औंस पानी मिलाकर रख लो। यह हुआ नं० २। लगाने की विधि यह है कि बालों को गर्म पानी से धोकर भली भाँति साफ करो, और फिर अच्छी तरह सुखा लो। इसके बाद शीशी नं० १ की दवा सफ़ेद ब्रुश से सिर्फ़ बालों पर सावधानी से लगाओ। फिर काले ब्रुश से नं० २ की दवा लगाओ। चमड़ी पर दवा न लगने पाए, वरना काला दाग पड़ जायगा। देशी ख़िज़ाब का एक उत्तम नुस्ख़ा यहाँ लिखा जाता है—

पाव-भर माजूफल इस तरह भून लिए जायँ कि न कच्चे रहें और न जलने पावें। ताम्र-चूर्ण ६ तोला आठ माशा, कसीस ६ माशा, काली हरड़ ३ तोला ४ माशा, तूतिया ६ माशा नौसादर १ तोला आठ माशा सबको कूटकर रात को आँवलों के पानी में भिगोवे। प्रातःकाल घोटकर गोली बना ले। जब ज़रूरत हो, लोहे की कड़ाही में घिसकर लगावे। बाल ख़ूब स्याह हो जायँगे।

पोस्त रुमाक, जोजंदम, सासफ़रास, गुलनार, मस्तगी, तबासीर, प्रत्येक १०-१० तोला, वर्ग वस्मा, वर्ग मेंहँदी, पोस्त हलैला ज़र्द, बुरादा लोहा, कबूतर की बीट, मुनक़्क़ा प्रत्येक २० तोला, वर्ग आस, वर्ग जामुन, वर्ग शहतरा प्रत्येक ३० तोला सबको कूट-छानकर १० सेर पानी में पकाया जाय। २ सेर बाक़ी रखकर छान ले। उसमें ३ पाव तिल का तेल मिलावे और ८ दिन तक गेहूँ के ढेर में दबा दो, फिर धूप में रक्खो। तीन-चार दिन बाद पकाओ। छानकर तेल निथार लो। गर्म पानी में नीबू निचोड़कर सिर धोना चाहिए। जब ख़ूब सूख जाय, यह तेल लगाया जाय। क़ुदरती स्याही आवेगी। अजीबह, नज़ला, ज़ुकाम, ख़ारिश सब नष्ट होगा। तेल की वस्तु, दिन में सोना, आग तापना, बालों में साबुन लगाना निषिद्ध है।

बालों का घूँघरवाले बनाना

इस काम के लिये एक विलायती यन्त्र आता है, जिसे Hair curler कहते हैं। इससे बाल घूँघरवाले बन जाते हैं। हाथ से भी बालों को नरम करके छल्लेदार या घूँघरवाले बनाया जा सकता है। यह सब अभ्यास और परिश्रम की बातें हैं। ललाट पर सुंदर लटें लटकाने से कभी-कभी सौंदर्य बहुत बढ़ जाता है। माँग-पट्टी निकालने या बालों को जैसा-का तैसा बनाए रखने के लिये कुछ चीज़ें बालों में लगाई जाती हैं। जिनमें से एक चीज़ का नुस्ख़ा हम यहाँ देते हैं—

सुहागा (विलायती पिसा हुआ) २ औंस, गोंद बबूल साफ़ १ औंस, गरम पानी १० छ० सबको मिला दो। ठंढा होने पर १॥ औंस स्प्रिट कपूर मिलाओ। इसे स्पंज या उँगलियों से लगाया जा सकता है।

प्रकरण ४

मुख-सौंदर्य

मुख में अनेक अंगों का समावेश है जिनमें से प्रत्येक का ज़िक्र इस प्रकरण में किया जायगा। समष्टि रूप मे सुंदर मुख के लिये सबसे अधिक आवश्यक बात है सुडौलपन। इसका अर्थ यह है कि मुख दोनो तरफ़ से एक समान हो। परंतु ख़ूब ध्यान से देखने पर बहुत कम मुखों पर यह सुडौलपन पाया जाता है। प्रायः नेत्र छोटे बडे होते हैं, या दोनो नेत्रों की दृष्टियो मे कुछ-न-कुछ अंतर रहता है। अथवा नाक ठीक बीचोबीच में नहीं होती। या मुख के एक ओर का भाग दूसरी ओर की अपेक्षा भारी होता है। या एक गाल दूसरे की अपेक्षा बडा होता है। ये दोष अति सूक्ष्म होते है, और बहुत कम लोग इन्हें पहचान सकते हैं। ये दोष प्रायः जन्म से होते हैं। परंतु बहुत-सी ऐसी आदतें भी हैं, जो इन दोषो को पैदा कर देती हैं—जैसे एक गाल में देर तक पान दबाकर चबाते रहना, एक ही भाग से भोजन करना, लिखने, सीने-पिरोने के समय टेढ़ा मुँह कर लेना, बोलते हुए, गाते हुए, या चलते हुए मुख से ख़ास प्रकार की भाव-भंगी प्रकट करना।

सुडौल, सुंदर मुख

सुडौल आकृति के मुख के चार समान भाग किए जा सकते हैं। १—सिर। २—माथा। ३—नाक। ४—ठोड़ी। एक आँख की जितनी लंबाई होगी, उतना ही दोनो नेत्रो में अंतर होना चाहिए, और एक नेत्र की लंबाई से दुगना अंतर कान और आँख के बीच में होना चाहिए। सुंदर सिर के घेरे का माप मनुष्य की लंबाई का तीसरा भाग होना चाहिए। स्त्रियो की औसत लंबाई प्राय' ५ फ़ुट ३ इंच होती है, इस वास्ते सिर की गोलाई २१ इंच होनी चाहिए। सिर की चौड़ाई लगभग ६ इंच होती है। एक कान से दूसरे कान तक की लंबाई सिर के ऊपर से १२ इंच और माथे के ऊपर से ११ इंच होती है।

कुल चेहरा ठोढ़ी से माथे तक सब शरीर का १०वाँ भाग होना चाहिए। मुख की आकृति अंडाकार होनी चाहिए। बिलकुल गोल नहीं।

नेत्र

नेत्रों का सौंदर्य उनके रंग, चमक, आकृति और भाव-सूचक चांचल्य पर निर्भर है। नेत्रों का सफ़ेद भाग बिलकुल सफेद होना चाहिए। इस भाग में पीलापन होना पित्त की वृद्धि और यकृत की खराबी का परिचायक है। नीलापन या मैलापन ज्वर, मद्यपान और दुराचार से हो जाता है। इन कारणों को यत्न-पूर्वक दूर करने ही से नेत्रों को फिर से स्वच्छ बनाया जा सकता है।

सुंदर नेत्र
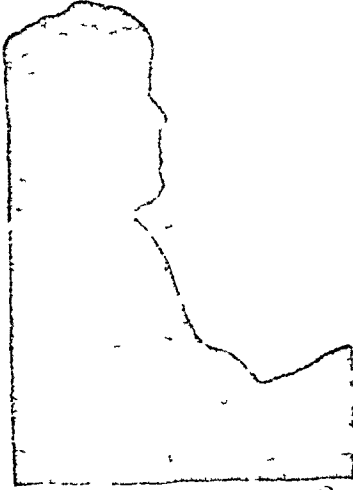
नेत्रों के प्रांत भाग में जो लाल डोरे होते हैं, उनका रंग विशुद्ध गुलाबी होना चाहिए। नेत्रों में चमक उत्पन्न होना, और उनका पूर्ण विकसित होना, उनमें सजीवता लाता है। नेत्रो पर जितना अधिक प्रकाश का प्रभाव होगा, उतनी ही नेत्रों में चमक अधिक आवेगी। हृदय के आनंद, तुष्टि और उत्साह से नेत्रो का ख़ूब विस्तार होता है, और वे अधिक चमकते हैं। भीतर धँसी हुई आँखों की अपेक्षा उभरी हुई आँखें अधिक चमकती हैं। नेत्रो की ऊपर की भी सफ़ेदी यदि चमकने लगे, तो नेत्र कुरूप और भयानक दीखने लगते हैं। सुंदर नेत्र की लंबाई एक कान से दूसरे कान तक जितना अंतर होता है, उसका सातवाँ भाग होना चाहिए।

नेत्रो की सुंदरता को नष्ट करनेवाले रोगो में नेत्रो से पानी जाना सबसे बुरा है। इसका सर्वोत्तम उपाय यह है कि बोरिक एसिड १५ रत्ती ४ छ० पानी में मिलाकर बारबार उससे नेत्र धोए जायँ। यदि प्रातःकाल पलक चिपक जायँ, तो जिंक सल्फेट २० ग्रेन, जल १० आउंस मिलाकर रख लिया जाय, और रात को आँखों में डाला जाय।

प्रति सप्ताह २ बार रसौत को आँखों मे डालने से नेत्रों का दूषित जल निकल जाता है, और आँखें निर्मल हो जाती हैं। त्रिफले के पानी से नेत्रों को नित्य धोने मे भी आँखें शुद्ध रहती है। शुद्ध शहद भी नेत्रो मे आँजने से नेत्र साफ़ हो जाते हैं।

नेत्रो को सुंदर और नीरोग रखने का एक उत्तम सुर्मा हम यहाँ लिखते हैं—

काला सुर्मा २ तोला, अनविंध मोती ३ माशा, ममीरा ४ माशा, चमेली की कली ४ माशा, मूँगे की शाख़ १ तोला सबको प्रथम नीबू के रस में, फिर तुलसी के रस में और पीछे नीम के पत्तो के रस में घोटकर सुखा ले। बाद में ३ माशा भीमसेनी कपूर और १ माशा पेपरमेंट मिलाकर कसकर डाट बंद कर रख ले। नेत्रो के नीचे लिखे व्यायाम भी नेत्रो को सुंदर करते हैं—

१—उँगलियों से धीरे-धीरे नेत्रों को दबाओ। फिर ख़ूब ज़ोर से आँखें बंद कर लो। फिर खोल दो। २—ऊपर को सीधी ओर दृष्टि तिरछी करके ले जाओ। जितना संभव हो सके, फिर धीरे-धीरे नीचे को दृष्टि डालो। ३—इसी भाँति बाईं ओर करो। ४—सामने ख़ूब दूर पर बिलकुल सीध में टकटकी लगाकर देखो। ५—इसके बाद एक प्याले में पानी भरकर उसमें आँखें डुबोकर खोल दो। इस काम के लिये काँच का एक ख़ास प्रकार का प्याला भी मिलता है।

इन नियमों का पालन करने से नेत्र सुंदर रक्खे जा सकते हैं—

नेत्रों के भिन्न-भिन्न भाव

उपेक्षा इच्छा लालसा कामना उद्दीपन

१—गर्द-गुबार, धुआँ, अति ठंडी और गर्म वायु, आग, लू और धूप से आँखों को बचाओ। २—बहुत सफ़ेद और चमकीली चीज़ों को न देखो। ३—सूर्य की ओर न देखो। ४—चंद्रमा को स्थिर दृष्टि से देखने का अभ्यास करो। ५—यथासंभव रात को मत पढ़ो। ६—लेटकर या तिरछे होकर न पढ़ो। ७—संध्या-समय में कोई बारीक काम मत करो। ८—[illegible]मा नजदीक से मत देखो। ९—बहुमैथुन, मद्य और अन्य नशों से बचो। १०—औंधे मुँह न सोया करो। ११—नाक के बाल न कटवाओ। १२—कुछ गिर जाने पर आँखों को मलो नहीं, सिर्फ़ पानी के छींटे देकर उस चीज़ को निकाल दो। १३—तेल, खटाई, अचार, लाल मिर्च, गर्म मसाले कम खाओ। १४—दीपक या लैंप सामने मत रक्खो। १५—नेत्रों [illegible] सदा ताज़ा पानी से बहुत अच्छी तरह धोओ। १६—बिना अच्छी तरह परीक्षा कर[illegible] न लगाओ।

पलक

पलक के बाल यदि मुड़े हुए हों, या छोटे हों, तो उन्हें सावधानी से काटते रहो। काटने से पलकों के बाल बढ़ जाएँगे, पलकों के लंबे बाल सुंदर प्रतीत होते हैं।

यदि बच्चों के पलकों के बाल छोटे हों, तो उन्हें २ वर्ष तक कतरते रहो। इससे बाल बढ़ जायँगे। बच्चों को आँखें न मलने दो।

भौंह

भौंह धनुपाकार और अलग-अलग होनी चाहिए, यदि वे सीधी होती हैं, तो चेहरे पर परेशानी और मूर्खता प्रकट होती रहती है। घनी और पतली भौंहें सुंदर होती हैं। परस्पर मिली हुई भौंहें मनुष्य को निर्दयी और क्रोधी सिद्ध करती हैं।

यदि भौंहें यथेष्ट काली और अर्धचंद्राकार न हों, तो पेंसिल में स्याही लगाकर उन्हें रँग दिया जाता है। रोज़ गरी का तेल लगाने से बाल उग आते हैं। भौंहों पर सदा नाक से कान की ओर को ब्रुश करने से भौंहें सुंदर बनती हैं।

यदि पलकें और भौंहें काली न हों, तो गोलार्ड वाटर से धोकर निम्न-लिखित औषध लगावें—गंधक १ भाग, चर्बी ४ भाग, ग्लेसरीन २ भाग।

यदि आप शीशा सामने रखकर स्थिर स्नेह-भरी दृष्टि से देखने रहने का अभ्यास करें, और उसी भाँति आप देखा करें, तो आपकी दृष्टि में सम्मोहक-शक्ति उत्पन्न हो सकती है।

नाक

नाक यदि भद्दी हो, तो चेहरा चाहे भी जितना सुंदर हो, मुख कुरूप प्रतीत होगा। नाक की बनावट बहुत नरम हड्डी से है, इसलिये चेष्टा करने से नाक आसानी से सुडौल की जा सकती है। इस काम के लिये एक यंत्र अँगरेज़ी दवा बेचनेवालों के यहाँ मिलता है। इसे सोने के समय गर्म जल से नाक को अच्छी तरह धोकर और ज़रा सा ग्लेसरीन लगाकर लगा लिया जाय, और प्रातःकाल उतारकर धोकर रख लिया जाय, तो ३ मास में नाक की आकृति इच्छानुसार सुडौल हो जाती है। ख़ासकर छोटे बच्चों की आकृति शीघ्र बदल जाती है। सौंदर्य-नाशक नाक वह है, जो आँखों के पास से नीचे बैठी हुई हो, और जिसके नथुने बहुत फूले हुए हों। हमारे देश में स्त्रियाँ नकेल, कीलें, बुलाक या नथ आदि नाक में पहनकर नाक के स्वाभाविक सौंदर्य को नष्ट कर देती हैं। हमारी सम्मति में बच्चियों के नाक छेदने की प्रथा नष्ट कर देनी चाहिए, नाक में उँगली दिए रहने की गंदी आदत भी छोड़ देनी चाहिए।

कान

सुंदर कान वे हैं, जिनके सिरे न बहुत लंबे हों, न छोटे। न मुख के बहुत समीप हों, न पीछे। न बाहर को निकले हुए हों, गोलाई उचित हो। कान के सौंदर्य की अधिक परवा इसलिये नहीं की जाती है कि उनका अधिकांश भाग केशों में ढक जाता है। जो कान बाहर को निकले हों, उन पर एक फ़ीता बाँधने से (परिणाम लिखते हैं) बदल सकती है, पर यह सफलता बाल्य-काल में ही अधिक होती है।

खेद है कि हमारे देश में कानों को बुरी तरह बींध-बींधकर ख़राब कर दिया जाता है। नीचे की लौ में तो कभी-कभी इतने बड़े छिद्र कर दिए जाते हैं कि उनमें उँगली चली जाती है, और कान में ऐसे भारी-भारी गहने पहने जाते हैं कि उनके भार से कान झुककर लटक जाते हैं।

कान में नित्य कड़ुआ तेल डालना चाहिए, और स्नान के समय सावधानी से तौलिए से कानों को साफ़ करना चाहिए। यदि गहने पहने भी जायँ, तो बहुत हलके एकाध। यद्यपि कानों का बींधा जाना वैज्ञानिक आधार पर है, पर वैज्ञानिक रीति से नस को बींधने का ज्ञान बहुत कम लोगों को होता है। अधिक छिद्र करने तो सर्वथा निकृष्ट और निंदनीय है।

ओष्ठ

ओष्ठों का सबसे बड़ा सौंदर्य उनकी मधुर मुस्कान है। तनिक फैल जाने से ही ओष्ठ मुस्किराने लगते है। जिनके ओष्ठों में दोनो ओर प्राकृत लंबी लकीर होती है, वे सदा मुस्किराते प्रतीत होते हैं। वदनच्छाया की उज्ज्वलता बहुत कुछ ओष्ठों पर निर्भर है। ख़ूब खिलखिलाकर हँसना कभी-कभी तो बहुत सुंदर प्रतीत होता है, और कभी बहुत ही भद्दा। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को उचित है कि वह एकात में शीशे के सम्मुख बैठकर भिन्न-भिन्न रीतियो से हँसने का अभ्यास करे, और देखे कि किस भाँति हँसने से उसका मुख और भाव-भंगी सुंदर प्रतीत होती है। चिडचिड़े मिज़ाज के स्त्री-पुरुष तथा दुराचारी एव नशे पीने के अभ्यासी लोगो के स्नायु तथा गाल का मांस सख़्त और मोटा हो जाता है कि वे सरलता से हँस नहीं सकने। जब वे हँसते हैं, कुटिल हास्य हँसते हैं। इससे वे हँसते हुए भी सुंदर नहीं प्रतीत होते।

दया और करुणा के भाव होठों को मधुर और कोमल बना देते हैं। प्रेम के आवेश में ओष्ठ कुछ फूल जाते हैं। शोक से होठ सिकुड जाते हैं, तथा क्रोध से वे टेढे और विकट हो जाते हैं। गायन-कला का अच्छी तरह अभ्यास होने पर मूर्च्छना का अभ्यास करने से होठो में एक मोहक प्रकपन उत्पन्न हो जाता है।

अत्यंत पतले ओष्ट दुष्टता के चिह्न हैं, और अत्यंत लाल होठ उत्कट लालसा के द्योतक है। नीचे के ओष्ट से ऊपर का भारी और ख़मदार होना चाहिए।

चूसने से ओष्ट कुछ मोटे हो जाते है। मोटे ओष्ठों को पतला करने के लिये चाँदी का एक ख़ोल बनवाकर रात्रि के समय काम में लाया जा सकता है। माजूफल का चूर्ण मलने से भी ओष्ठ कुछ पतले हो जाते हैं।

ओष्ठ का फीकापन रक्त की कमी और निकृष्ट स्वास्थ्य का द्योतक है। ओष्ठ को लाल रँगने की बहुत-सी विधियाँ हैं। बाज़ार में होठों की सुर्ख़ी नाम से एक चीज़ बिकती भी है। पान खाकर भी ओठो की लाली बढ़ाई जाती है। पर अधिक कृत्रिम रीतियों का उपयोग करने से ओष्ठों की कोमलता मारी जाती है। ओठों को सदैव सुर्ख़ और सुदर बनाए रखने के लिये तो सबसे बढ़कर चीज़ प्रेम-पूर्ण प्रसन्नता के भाव मन में रखना ही है। मिस्सी लगाना या पान खाना यदि होठो की सुंदरता के लिये हो, तो ध्यान रखना चाहिए कि उसका रंग बाहर न आने पावे। भीतर ही रहे। बाहर केवल पुष्ट रेखा के समान ही दीख पड़े।

कास्टिक सोडा या सिरका एवं शराब से भी कुछ काल के लिये होठों पर लाली आ जाती है।

यहाँ हम होठ रँगने का एक अँगरेज़ी नुस्खा लिखते हैं—

कोकोबटर १ ड्राम पैराफ़ाइन १ ड्राम वेसलीन (सफ़ेद) ½ आउंस ऑटो ऑफ़ रोज २ बूँद इओज़ीन ½ ग्रेन सबको मिला ले।

नीचे लिखा नुस्खा होठों को नरम रखता है, तथा फटने से रोकता है—

नारियल का तेल ४ तोला एरंडी का तेल २ तोला सफ़ेद मोम २॥ तोला जैतून का तेल १ तोला टिंचर बिजविन आवश्यकतानुसार मिलाकर शीशी में भरकर रक्खे।

ओष्ठों को फटने का एक घरेलू नुस्खा यह है कि चुपड़ी हुई रोटी का घी मला जाय।

दाँत

दाँतो के विषय में पीछे कई स्थलों पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि दाँतो की चिकित्सा यदि प्रारंभ ही से न की जाय, तो फिर उनका सुंदर और स्वच्छ रहना दुर्लभ है।

जो बालक सदा उँगली मुँह में डाले रहते हैं, उनके नीचे के दाँत बाहर को निकल आते हैं, और जो अपनी जीभ सदा ऊपर के दाँतों पर लगाते रहते हैं, उनकी ऊपर की बत्तीसी बाहर को निकल आती है।

दाँतों को बचपन ही से स्वच्छ रखने की आदत बच्चों को डाल देनी चाहिए। मांस, मैदा की वस्तुएँ, पान, तंबाकू, शराब, सोडा, बरफ़ आदि चीज़ें दाँतो को ख़राब कर देती हैं। फल-मूल और सादा भोजन तथा ताज़ा पानी दाँतो को स्वच्छ चमकीले तथा मज़बूत रखता है।

दाँतों की सफाई सब आयु के स्त्री-पुरुषों को सदैव अति सावधानी से करनी चाहिए। इस काम के लिये बहुत-से ब्रुश और मंजन तथा दंत-क्रीम बिकते हैं। बंगाल केमिकल की बनाई क्रीम और मंजन सस्ते तथा साधारणतया उत्तम हैं। नीम की दाँतन इस काम के लिये बहुत अच्छी है। एक ही ब्रुश या दाँतन अनेक आदमियों को नहीं इस्तेमाल करनी चाहिए। भोजन के बाद ख़ूब सावधानी से कुल्ला करना चाहिए और अन्न के टुकड़ों को ख़ूब होशियारी से दाँतों में से निकाल डालना चाहिए। ये टुकड़े यदि दाँतों में रह जाते हैं, तो सड़कर एक प्रकार का तेज़ाब बनाते हैं, जिससे दाँत भी सड़ने लगते हैं, और मुख से दुर्गंध आती रहती है।

कीड़ा

यदि दाँत में कीड़ा लग गया हो, तो दाँत के डॉक्टर को उसे अच्छी तरह दिखाकर यदि संभव हो, तो उसमें चाँदी भरवा लो, नहीं तो उसे निकलवा डालो। यदि मांस-पेशी सड़ गई है, और पीब निकलती है, तो उस दाँत को भी निकलवा देना चाहिए। इसके बाद सदा कीटाणु-नाशक मंजनों से दाँत साफ़ करते रहना चाहिए।

दंत-मैल

दाँतों में जो पीले रंग का मैल जम जाता है, वह पुराना होने पर दाँत के समान ही कड़ा हो जाता है। यह मसूढ़ों से दाँतों को पृथक् कर देता है, और इससे दाँत कमज़ोर हो जाते हैं। दाँतो के डॉक्टर मशीन से इसे साफ कर देते हैं। प्रतिवर्ष एक वार इसे अवश्य साफ़ करा डाला जाय।

कुल्ला करने का एक अँगरेज़ी नुस्ख़ा हम लिखते हैं, जो आसानी से बनाया जा सकता है, जो उत्तम दंत-क्रिमि-नाशक है, तथा मुख को सुगंधित करता है।

टिंचर युकलिप्टस १ ड्राम यूडी क्लोन १ आउंस पेपरमेंट का तेल २० बूँद सत अजवाइन ४ रत्ती वैनज़िक एसिड २ माशा।

सवको मिलाकर ३ छटाक पानी में मिला दो। अब हम कुछ मंजनों के देशी और अँगरेज़ी नुस्ख़े भी लिखे देते हैं—

१—कत्था १ तोला, मस्तगी १ तोला, अकरकरा १ तोला, सोंठ १ तोला, ज़ीरा सफ़ेद भुना हुआ १ तोला, नीला थोथा (पका हुआ) ३ माशा, कसीस १ तोला, धनिया १ तोला, सेंधा नमक १ तोला, कपूर १ तोला, सेलखड़ी १ तोला, सुपारी की राख़ १ तोला, इलायची दाना बड़ा १ तोला, फिटकरी खील १ तोला, सफ़ेद सुर्मा फुका हुआ १ तोला वारीक पीसकर मंजन करने से दाँतो का हिलना, रक्त जाना, दुर्गंध सब नष्ट होगी।

२—यह अँगरेज़ी मंजन है—

बाई कार्वोनेट ऑफ़् सोडा १ आउंस, चाक (पिसा हुआ) १ आउंस, अरिस-रूट २ आउंस, कैस्टाइल साबुन २ आउंस नित्य काम में लाने योग्य है।

मुख-दुर्गंध

इसका असली कारण पेट की ख़रावी है। पान-सुपारी, इलायची से वह दूर नहीं हो सकती, उसके लिये पाचन-शक्ति को ठीक रखने की आवश्यकता है।

कंठ-स्वर

कंठ-स्वर भी सौंदर्य का एक अंग है। योरपियन लेडियाँ, बड़ी सावधानी और कृत्रिमता से मधुर स्वर बनाकर बोला करती है। कृत्रिमता बुरी बात तो है, पर भद्दे स्वर से अप्रिय शब्द उच्चारण करने से अच्छी है। मधुर भाषा, मधुर वाणी, मधुर कंठ-स्वर और मधुर विषय सब मिलकर ही वाणी का सौंदर्य होता है। सम्हलकर, सावधानी से, सुंदर मुख-मुद्रा बनाकर धीरे-धीरे बोलने का अभ्यास करने से आपके कंठ स्वर में सौंदर्य उत्पन्न हो जायगा।

बच्चो को जन्मते ही ब्राह्मी, शहद, घृत की घुट्टी देने से उनका कंठ-स्वर अतिशय सतेज और मधुर हो जाता है। ब्राह्मी का सदैव सेवन करने से कंठ-स्वर सुंदर रहता है। गायन का धीमे स्वर से देर तक अभ्यास करने से कंठ-स्वर लचीला और मधुर हो जाता है।

कुलींजन, मिश्री और काली मिर्च खाने से कंठ-स्वर उत्तम हो जाता है।

ठोडी

सुंदर ठोढ़ी वह है, जो नाक और नीचे के ओष्ठ के निचले भाग के बराबर चौड़ी हो, अर्थात् ठोडी की लंबाई मुख की लंबाई की ⅕ होनी चाहिए। ठोढ़ी के नीचे चर्बी बढ़ जाने से वह स्थान फूल जाता है, इससे ठोढ़ी बुरी मालूम देती है। इसके वास्ते एक फ़ीता पहना जाता है, जो विलायती दवा बेचनेवालों के यहाँ मिलता है। ठोढ़ी में इसी रीति से सुदर गढ़ा भी किया जा सकता है।

गाल

शरीर-भर में गाल का रग सबसे अधिक साफ़, गहरा और चमकदार होना चाहिए। यदि ऐसा न हो, तो समझिए स्वास्थ्य में अंतर है। गालों पर ऐसा रंग लाने के लिये विलायत में स्त्रियाँ मुख पर पहले सफ़ेद और फिर गुलाबी रंग का पाउडर लगाती हैं।

संपूर्ण मुख पर जो लाली छा जाती है, वह सौंदर्य का चिह्न नहीं, रोग का चिह्न है। यदि आप चाहते है कि आपके गाल सदैव भरे हुए, कोमल, चमकदार और गुलाबी बने रहें, तो आपको तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए। एक सदाचार, दूसरे सुपाच्य और सादा भोजन करना, तीसरे सदैव ताज़ा वायु में रहना।

प्रतिदिन ख़ूब ठडे पानी से गालों को धोकर तौलिए से ख़ूब रगड़ना चाहिए। कील, झाईं, झुर्री, दाग़, चेचक आदि गालों के सौंदर्य को नष्ट कर देते हैं।

अब हम मुख की सुंदरता बढ़ाने के कुछ प्रयोग और उपाय लिखते हैं—

१—साधारण दूध की मलाई ठंडी करके रात को सोने के समय मुख पर ख़ूब मसली जाय। ग्रीष्म-ऋतु में ख़ासकर धूप में घूमकर आने पर मलाई मल लेने से चेहरे पर स्याही और ख़ुश्की नहीं आती।

मलाई को गर्दन और मुख पर उँगली के पोरुओं के सहारे धीरे-धीरे गोल-गोल दायरे बनाते हुए मलना चाहिए। और कुछ देर ठहरकर गुनगुने पानी से मुख धो डालना चाहिए।

२—बहुत-से फल और तरकारियाँ भी ऐसी हैं, जो चेहरे पर ताज़ा काटकर रगड़ने से चेहरे को नमकीन, चमकीला, गोरा और साफ़ बनाती तथा कम ख़र्च वाला नगीन हैं। खीरा काटकर छोटे-छोटे टुकडे कर लीजिए, और ½ सेर पानी में उबाल लीजिए। इसमें एक चम्मच बोरिक ऐसिड डालकर उससे मुख को धोइए, मुख का रग साफ और चमकदार हो जायगा। झाईं और मुहासों को भी इससे बहुत लाभ होता है।

खीरे को कूटकर उसका रस निकालिए, उसके बराबर ही उसमें अलकारल मिलाइए और सबके बराबर स्पर मेसेटी मिलाइए। यह एक मलाई के समान बन जायगा। रंगत को खोलने के लिये अद्वितीय है।

प्रातःकाल मुख धोने के बाद नीबू का रस और ग्लेसरीन मिलाकर मुख पर लगाइए, और

धीरे-धीरे मलिए, इससे चमड़ा स्वच्छ और कोमल होगा। कुछ देर बाद गर्म पानी से धो डालिए। टमाटर या अंगूर ताज़ा लेकर यदि काटकर मुख पर मलिएगा, तो धूप के कारण उत्पन्न हुई स्याही तत्काल नष्ट हो जायगी, और चेहरा गोरा और गाल लाल हो जायँगे। इन चीज़ों को रगड़कर ख़ूब मसलिए, तब धोइए।

पकी हुई रसभरी में ज़रा-सा जौ व मसूर का आटा मिलाकर यदि नित्य मुख पर उबटन किया जाय, तो स्वाभाविक काला रंग भी निखरकर सुंदर प्रतीत होने लगता है।

संतरा और उसका छिलका भी इस काम के लिये लाभदायक है।

३—जौ, चना, मसूर का आटा और गेहूँ की निशास्ता भी चमड़ी को लचकदार और मख़मली बनाता है। यहाँ हम उबटन का एक उम्दा नुस्ख़ा लिखते हैं—

४—मजीठ, लाल चंदन, मसूर का आटा, लोध, पीली सरसों, नरकचूर, समुद्रफेन, सेंधा नमक, कलमली के ताज़े बीज, कुलींजन, तुलसी के पत्ते, जामुन की गुठली, आम की बिजली, ईसबगोल, कतीरा, निशास्ता सब बराबर और सबके बराबर जौ का आटा सबको बारीक चूर्णकर रख ले। इसे दूध में घोलकर शरीर पर उबटन करे, पीछे चमेली के तेल से धीरे-धीरे बत्तियाँ उतारे, और तब गर्म पानी से स्नान करके १ घंटा विश्राम करे। इसके बाद लघु आहार खाय, तो शरीर और मुख स्वर्ण की भाँति दमकने लगेगा।

५—स्त्री के मुख की शुद्धि का एक मूल्यवान् नुसख़ा यहाँ हम लिखते हैं—

एक खोपरा (गोला) लेकर उसमें छेद करिए, उसमें एक तोला ८ माशे केशर और १ तोला ८ माशे जावित्री पानी में पीसकर भर दीजिए। इसके बाद उसका मुख उसी टुकड़े से बंद कर दीजिए। फिर उसे ८ सेर दूध में मंदाग्नि से पकाइए। जब दूध सूख जाय, तो दवा को नारियल से निकालकर चने के समान गोलियाँ बनाइए। इसे पान में रखकर प्रातःकाल खाना चाहिए।

६—यदि सिर्फ़ कुलींजन को पानी में पीसकर शरीर या मुख पर लेप कर लिया जाय, और फिर चावल के आटे का उबटन किया जाय, तो कुछ दिन निरतर करते रहने से त्वचा की रंगत बहुत साफ़ हो जायगी।

७—कलमी शोरा, हरताल प्रत्येक साढ़े तीन-तीन माशा, सबके ३ भाग करिए। एक भाग पानी में घोलकर मुख पर लेप करके १ घंटा धूप में बैठिए, पीछे गर्म जल से मुख धो डालिए। ३ दिन में झाईं दूर होगी।

८—बोरिक ऐसिड और चंदन सफ़ेद मिलाकर मुख पर लेप करने से छीप (श्वेत दाग़) नष्ट होते हैं।

९—चेचक के दाग़ दूर करने का उत्तम नुसख़ा यह है—

बाकला, चना, मटर का आटा, हुस्न यूसुफ, मग़ज़ बादाम कद्दू आ, तुख़्म ख़यारेन, तुख़्म तुरब, तुख़्म ज़रज़ेसर, क़िश्तवलख़, ज़नीख़ ज़र्द, कुँदरू, अंजरुत, निर्वसी, कजुरक। सब बरा-

बर चूर्णकर गुलाब-जल में रात को लेप किया जाय। प्रातःकाल भैंस के ताज़े दूध से मुँह धोया जाय। पन्द्रह-बीस दिन में मुँहासे तथा एक या दो मास में चेचक के दाग दूर हो जायँगे। यदि चेचक के दाग़ अधिक हों, तो उपर्युक्त औषध में एक माशा जुंदवदस्तर और मिला लिया जाय, तथा शहद में लेप किया जाय। प्रातःकाल ठंडे जल से धोया जाय। १ मास में चेचक के दाग दूर हो जायँगे।

१०—झुर्रियाँ पड़ जाने का भी एक नुस्खा यहाँ लिखते हैं—

तरमस, तुख्म मूली नरकचूर, हब्बुलबान, किश्त शीरीं, तुख्म कलमली, मजीठ, मस्तगी, नकछिकनी प्रत्येक १-२ तोला कपड़छनकर ३ छटाक मगरमच्छ की चर्बी में पिघलाकर मलिए, और चेहरे पर लेप करिए। १ घंटे बाद चने के बेसन से ख़ूब ज़ोर से उबटन करिए, रात को रोगन बादाम लगाइए। १ महीने में झुर्रियाँ दूर हो जायँगी।

११—ताज़ा दूध से यदि मुख, गर्दन और हाथ नित्य धोए जायँ, तो ये अंग पुष्ट, मांसल और अति सुंदर एवं कोमल बन जाते हैं। मक्खन निकाला हुआ दूध भी यदि स्नान या मुख धोने के काम में लाया जाय, तो उससे भी बहुत लाभ होता है।

मुख का खुरदरापन—यदि मुख खुरदरा है, तो उस दोष को दूर करने के लिये ऐसा करना चाहिए कि पहले गर्म पानी और साबुन से धोना चाहिए। फिर क्रीम लगाना और तब साबर के टुकड़े से रगड़ना चाहिए। इसके बाद साबुन का इस्तेमाल फिर नहीं करना चाहिए।

लहसन—यह दाग नीला या लाल जन्म ही से होता और बहुत भद्दा प्रतीत होता है। कभी तो यह त्वचा से उभरा हुआ होता है और कभी मिला हुआ। इसका इलाज बिजली के द्वारा किया जाता है। जो बड़े-बड़े अस्पतालों में होता है।

मस्से—मस्सों के घरू इलाज भी हैं, पर उत्तम है किसी डॉक्टर से कटवा दिया जाय। कष्ट नहीं होगा। डॉक्टर ईथल क्लोराइड लगाकर चमड़ी को अचेत करके तब नश्तर से काट देते हैं।

कील मुँहासे—ऊपर हम कई उबटन आदि लिख चुके हैं। उनके सिवा आहार का परिवर्तन चिकित्सक की सम्मति से करें। मुँह धोकर हमेशा खुरदरे तौलिए से पोंछा करें। इसका एक अँगरेज़ी नुस्खा भी यहाँ लिखते हैं, जो बहुत उत्तम है—

रेज़ोरसिन ४ भाग, ग्लेसरिन १ भाग, आरेंज फ्लावर वाटर २० भाग, अलकाहल ८० भाग मिलाकर प्रतिदिन लगाइए। रात्रि को यह क्रीम लगाई जाय। वैंज़िक आइंटमैंट २ भाग, सलफर प्रेसी पीटेट २ भाग, सिलीशस अर्थ ४ भाग मिलाइए। साधारणतया मुख को सुंदर बनाने के लिये इन बातों का ख़याल रखना आवश्यक है—

१—सदैव प्रसन्न, प्रेममय और दया-भाव से परिपूर्ण रहिए। २—सदैव ख़ूब प्रातःकाल उठो, और जल्दी सो जाओ। ३—सदैव शीतल जल से मुख धोओ। ख़ास-ख़ास अवस्थाओं में गुनगुने जल को काम में लीजिए। ४—स्नान में सदैव उत्तम और नरम साबुन का प्रयोग कीजिए।

प्रकरण ५

वक्षस्थल और धड़

वक्षस्थल का सौंदर्य स्त्री और पुरुष दोनों ही के लिये स्वास्थ्य और सौंदर्य का सूचक है।

पूर्ण स्वस्थ वक्षस्थल और धड़

वक्षस्थल की सुंदरता पुरुष और स्त्रियों में भिन्न-भिन्न आकृति में मानी गई है। पुरुषों का वक्षस्थल वह सुंदर है, जिसमें बीच में घने, किंतु मुलायम बाल हों, कसी हुई मछलियाँ उभरी हों और वक्षस्थल खूब चौड़ा और साफ हो। स्त्रियों का वक्षस्थल खूब गोरा, चिकना, निर्लोम और मांसल होना चाहिए। स्तनों का उभार और गठन स्त्री-वक्ष की सर्वोपरि शोभा है। इसके सिवा वह उत्तम स्वास्थ्य का भी लक्षण है। जिस स्त्री या पुरुष का वक्षस्थल उपर्युक्त गुणों से संयुक्त होगा, वह दीर्घजीवी होगा।

यौवन के प्रारंभ में यदि चेष्टा की जाय, तो वक्षस्थल खूब कसा हुआ और सुंदर बन सकता है। क्योंकि उस समय रक्त का उभार होता है तथा पसलियाँ लचकदार होती हैं। छाती को बढ़ाने का यही सर्वोत्तम समय है।

...को पुष्ट और उभरा हुआ बनाने के लिये प्राणायाम ही सर्वोत्तम है। प्राणा-...यायाम मांस-पेशियों को घन और पुष्ट बनाता है।

...भारदार स्तन होने के लिये यह आवश्यक है कि वे खूब मांसल और जड़ ...। नीच जातियों की स्त्रियों के स्तन नुकीले केले के आकार के होते हैं। परंतु ...ल और उन्नत होने चाहिए।

...स्त्रियों को इसके लिये चोली-जैसे वस्त्र पहनने चाहिए। भारतवर्ष में चोलियाँ ... में पहनी जाती हैं, पर उनकी बनावट प्रायः वैज्ञानिक नहीं होती। या तो वे ...कुर्ता हैं कि जिनमें तमाम वक्षस्थल कसा रहता है, जिससे पसलियाँ सिकुड़ जाती ... स्तन ढीले और लटके ही रहते हैं। चोली ऐसी होनी चाहिए, जो ठीक स्तन के ...जिसकी बनावट के अनुरूप हो। दूसरे, वह यथासंभव महीन वस्त्र की होनी चाहिए। ...इसलिये रेशमी वस्त्र ही हर तरह उत्तम है। उसका रंग सदैव सफ़ेद रहना चाहिए।

चोली इस प्रकार गठकर स्तनों पर बैठ जाय कि जिससे सीना तो न कसे, पर स्तनों का सर्वांग एक-सी रीति से कस जाय। न तो स्तन भिचें न भीतर तनिक भी लटके रहें। साथ ही साँस में ज़रा भी कष्ट न हो।

चोलियाँ नित्य दो बार बदली जानी चाहिए। और रात को बिलकुल निकालकर कोई ढीला कुरता-जैसा वस्त्र पहनना चाहिए। चोली खोलकर धरती पर चित लेटकर १०-१५ मिनट ज़ोर-ज़ोर से साँस लेनी चाहिए। इसी प्रकार प्रातःकाल चोली पहनने से प्रथम भी करना चाहिए। चोली पहनने से प्रथम और पश्चात् गुनगुने पानी से स्तनों को धीरे-धीरे धोना और फिर उन्हें भली भाँति सुखा लेना चाहिए।

ढलके हुए, मोटे और भद्दे स्तन सुंदर नहीं कहे जा सकते। अमीर स्त्रियों के स्तन शीघ्र ढलक जाते हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें न खुली वायु मिलती है और न व्यायाम। यह बात ख़ास तौर से ध्यान में रखनी योग्य है कि छातियों पर स्वास्थ्य का सबसे प्रथम प्रभाव पड़ता है।

शोक है कि बाल-विवाह द्वारा हज़ारों युवक-युवतियों के यौवन का विकास ही नष्ट कर दिया जाता है। ऐसे लोगों को कभी जवानी आती ही नहीं। बचपन के बाद बुढ़ापा ही उन्हें आ दबाता है। उन लोगों पर यह शेर चरितार्थ होता है—

तिफ्ली गई, अलामते-पीरी अयाँ हुई,
हम मुतज़िर ही रह गए। अहदे-शबाब के।

बहुत लोगों का ख़याल है कि बच्चा हो जाने पर, बच्चे के दूध पीने से स्तन अवश्य ही लटक जाते हैं, पर यह ख़याल बिलकुल ग़लत है। यदि ठीक रीति से बालक को दूध पिलाया जाय, पिलाने के बाद स्तन की ठीक सम्हाल रक्खी जाय और प्रसूति-काल में स्वास्थ्य बहुत सावधानी से पूर्ण नीरोग कर लिया जाय, तो फिर बच्चा होने या उसे दूध पिलाने के कारण स्तन कभी नहीं ढलक सकते। बच्चों को लेटकर दूध न पिलाना चाहिए। और न स्तन खींचकर बच्चे के मुख तक पहुँचाओ। बल्कि साव[illegible] को बैठाकर और छाती से लगाकर प्यार से दूध पिलाने और उसके बाद धोकर [illegible] पहनने से स्तन और भी कठोर और उन्नत हो जाते हैं।
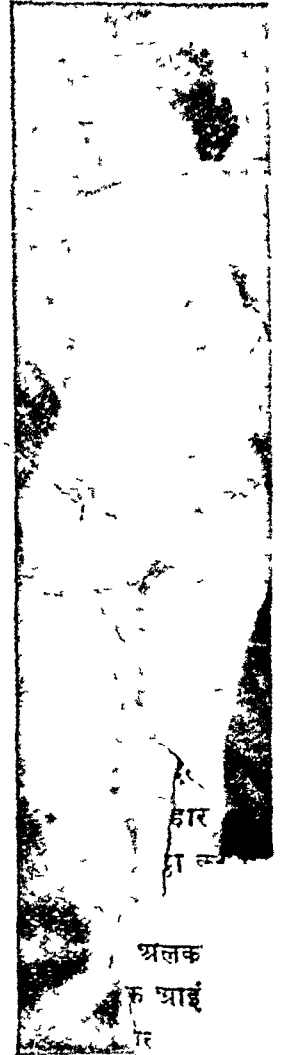
हार
अलक
क आई
परिपूर्ण

गाने का अभ्यास रखना, या कुएँ से डोल खींचना, चक्की पीसना, नाव खेना, ज़ोर-ज़ोर से साँस लेना। इन सब बातों से स्तन पुष्ट और उन्नत होते हैं।

अब हम यहाँ ऐसी औषध भी कुछ लिखते हैं, जिनसे स्तन कठोर हो जाते हैं—

अनार की छाल, अनार के पत्ते, अनार के फूल और फल। प्रत्येक १-१ सेर लेकर ४ सेर सिरका और १ सेर गुलाब-जल में भिगो दो। दो दिन बाद पकाइए। जब तिहाई जल रह जाय, तब छान ले। इसमें ४ सेर सरसो का तेल मिलाकर पकावे। तेल शेष रहने पर उसे छानकर रक्खे और नित्य स्तनो पर मलकर महीन मलमल की पट्टी बाँध दे। मास में फ़र्क़ पड़ेगा। इस प्रयोग से स्तन स्याह हो जाते है। वह साबुन से ठीक हो जायँगे।

नीचे लिखे लेप का नित्य इस्तेमाल करने से स्तन कठोर रहते हैं—

गुलरोग़न में फिटकरी घिसकर प्रति सप्ताह एक रात लेप लगा लिया करे।

स्तनों का उभार

बहुत-सी लड़कियों की छातियाँ यौवन आने पर भी ठीक-ठीक नहीं उभरतीं। ऐसी स्त्रियाँ सतान उत्पादन के योग्य नहो होतीं। पूरी आयु होने पर भी कुछ स्त्रियों की छातियाँ उठती ही नहीं। सौंदर्य की दृष्टि से भी यह भद्दा है। इसलिये हम स्तनो के उभार के भी कुछ उपाय यहाँ लिखते हैं—

स्तनों को ख़ूब मलो। यहाँ तक कि लाल हो जायँ। फिर उन पर भैंस के बासी दूध का झाग मले और सूखने दे। सूखने पर मल-मलकर उतार दे। इस प्रकार दिन में दो बार करे।

बहुत-सी कन्याओं को कौमारावस्था में कुसंग-दोष से स्तन मर्दन कराने का अभ्यास हो जाता है और अल्पायु में ही उनके स्तन बढ़ जाते हैं। ऐसी कन्याओं पर आचार का भी लोगो को संदेह हो जाता है। अभिभावकों को इस बात की सावधानी रखनी चाहिए।

लड़को को भी कुसग से ऐसी ही आदत पड़ जाती है। ऐसी दशा में उनकी छातियाँ अप्राकृतिक रीति से उभर आती है।

कधे और गर्दन को सुंदर बनाए रखने के लिये इन बातो का ख़याल रखना चाहिए—

१—जब बैठो, सीधे बैठो।

२—चलने में सीधे चलो। कमर या सिर झुकाकर न चलो।

३—कड़े बिस्तर पर केवल एक तकिया रखकर सोओ, और चलते समय हाथों को पीछे झुकाकर चलो।

४—सीधे खड़े होकर शरीर को सीधा और दृढ़ रखकर गर्दन को पीछे की ओर मोड़ो, फिर आगे की ओर लाओ। इसी प्रकार दाएँ-बाएँ २०-२५ बार करो। नीचे की ओर लाते समय श्वास भीतर की ओर भरो।

कमर और पेट

पतली, लचीली और मज़बूत कमर स्त्री और पुरुषों की प्रशंसा के योग्य है। कविगणों की अत्युक्ति-पूर्ण पतली कमर की हमें व्याख्या नहीं करनी, परंतु स्त्री का कटि-सौंदर्य वक्ष और नितंब के बीच मे एक प्रभाशाली प्रभाव रखता है। विलायत में १२॥ और १० इंच तक के व्यासवाली कमर रखनेवाली युवतियाँ सुनी गई हैं, पर इतनी पतली कमर होना न सौंदर्य का चिह्न है, और न स्वास्थ्य का।

जो स्त्रियाँ अस्वाभाविक रीति से कमर को तंग करने की चेष्टाएँ करती है, वे अपनी आयु, स्वास्थ्य और जनन-शक्ति तक को नष्ट कर देती है। विलायत मे पहले कमर पतली करने की बहुत-सी अप्राकृत रीतियाँ प्रचलित थीं, जो अब नष्ट हो गई है, और व्यायाम और आरोग्य-संबंधी व्यवस्थाएँ ही अधिक पसद की जाती है। फिर भी इस प्रकार के कार्सेट अब भी वहाँ बहुत प्रचलित हैं, जो कमर को पतली तथा छाती को उभरी हुई दिखाते है। अकेले अमेरिका ही में १ वर्ष में ६ करोड़ के लगभग कार्सेट की बिक्री हो जाती हैं। इन कार्सेटों को अल्प वय की युवतियाँ पहनने लगती है, तो तब पेट की गहराई मे उनको साँस लेना कठिन हो जाता और रक्त-प्रवाह बंद हो जाता है। इसका उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है, क्योकि आमाशय और यकृत के कार्यो मे अतर आ जाता है। अँतड़ियाँ नीचे की ओर दब जाती हैं, और कूल्हे तथा मूत्राशयों पर दबाव पड़ता तथा गर्भाशय भिच जाता है। श्वास-यन्त्र भी ठीक-ठीक काम नहीं कर सकते।

जैसे बहुत पतली कमर और चुपका हुआ पेट अच्छा नही होता, वैसे ही मोटी, थलथल कमर और ढोल-सा पेट भी बेहूदी चीज़ है। बड़े-बड़े सेठ लोग और सेठानियो को आप देखें, तो आपको उन पर तरस आवेगा कि मनो चर्बी बेचारो की कमर और पेट पर चढ़ी रहती है।

पड़े-पड़े गरिष्ठ और चिकने पदार्थ खाने तथा परिश्रम न करने से चर्बी बढ़ जाती है। चर्बी की तह पेट के चारो तरफ़ जम जाती है और कमर तथा पेट बेतरह फूल जाता है। भारतवर्ष की स्त्रियाँ मुटापे को सुख और सौभाग्य एव अमीरी का चिह्न समझती हैं। परंतु विलायत में—सुंदरता के पीछे जहाँ स्त्रियाँ सचमुच जान देती हैं—इस बात का बड़ा ख़याल रक्खा जाता है कि बदन का कोई भी अंग काँटे से अधिक बढ़कर बेडौल न होने पावे।

समविभक्त शरीर

सिनेमा के तमाशों को देखकर लाखो आदमी अपना मनोरंजन करते हैं, पर यह बहुत कम लोग जानते है कि उसमें अभिनय करनेवाली सुंदरियो को सुंदर बनने के लिये अपनी जान जोखिम उठानी पड़ती है। एक अख़बार ने इसका मनोरंजक विवरण छापा है। उन्होंने मिस मारगो-रट का एक बयान छापा था, जिसमें वे कहती हैं कि कुछ समय हुआ, एक जर्मन सिनेमा एक्ट्रेस स्वावरी वर्न की मृत्यु की सूचना मिली थी। मृत्यु के समय उसकी आयु २१ वर्ष की

थी। संरक्षकों ने उसे एक्ट्रेस बनने को इँगलैंड भेजा था। उसकी मृत्यु का कारण यह था कि वह दुबली-पतली बनी रहने के लिये पेट-भर भोजन नहीं खा पाती थी। जब वह हाई-वुड में आई, वह उस समय एक स्वस्थ तथा बलिष्ठ लड़की थी। परंतु फ़िल्म बनानेवालों ने कह दिया कि यह लड़की बहुत मोटी है। यद्यपि वह मोटी न थी, किंतु उसका शरीर सुडौल

प्रख्यात सिनेमा-नटी—कुमारी लक्ष्मी

और भरा हुआ था, जैसा कि युवावस्था मे होता है। परंतु चलती तस्वीर लेनेवाले केमरे में चित्र ज़रा मोटा हो जाता है। और ऐसा मालूम होता है कि पात्र १५ पौंड वज़नी है। इसलिये इस जर्मन-सुंदरी को कई मशीनो और बिजली के यंत्रों में होकर गुज़रना पड़ा।

उसका भोजन भी न्यून कर दिया गया। पर फिर भी वह नापास रही। तब उसे दुबारा कई दिन उपवास और रात्रि-जागरण करना पड़ा। यह दो वर्ष पूर्व की बात है, आज वह मर चुकी और दुःखी एक्ट्रेसों की श्रेणी में एक नंबर और बढ़ा दिया। जो भूखी रहकर अपना जीवन मशीनों की भेंट करती हैं।

यही महाशया फिर लिखती हैं कि एक बार मैं एक बनती हुई फ़िल्म को देख रही थी, जो लड़की नायिका का काम कर रही थी, देखा, वह बड़ी नाज़ुक-बदन है। एक पार्ट ८ दफ़े दुहराया गया। नवीं बार मिस आर्थर ज़मीन पर गिरकर बेहोश हो गई। जब उसे होश में लाकर बात की गई, तो कहा, मैं कई मास से कम खाती हूँ और मुझमें शक्ति नहीं रही है।

वियना की एक प्रसिद्ध एक्ट्रेस मैरटिया की मृत्यु भी हाल में इसी तरह हुई कि कम भोजन खाते-खाते उसकी हालत इतनी गिर गई कि वह साधारण रोग से जीवन्मुक्त न हो सकी। एक और एक्ट्रेस २४ वर्ष की आयु में क्षय से मर गई, क्योंकि वह नाज़ुक-बदन बना चाहती थी।

वास्तव में मोटापा शरीर के लिये जेलखाना है। चलने-फिरने, श्वास लेने में भी उन्हें कष्ट होता है। ऐसे लोगों की रस-रक्त-वाहिनी तथा अन्य नाड़ियाँ ऐसी तेज़ हो जाती हैं कि जीवन-शक्ति का ठीक प्रवाह नहीं रहता। जठराग्नि मंद हो जाती है। वायु शुद्ध रीति से शरीर में पहुँच नहीं पाता। बहुधा कोई नस फट जाती और इतना रक्त निकल जाता है कि वे मर जाते हैं। साधारणतया मोटे आदमी अल्पजीवी होते हैं। ऐसे लोगों को अर्धांगवात, जड़ता, हृदय की धड़कन, अतिसार, श्वास, मूर्च्छा आदि रोग हो जाते हैं। क्षुधा और तृषा पर इनका अधिकार नहीं होता। पुरुषों की मैथुन-शक्ति नष्ट हो जाती है और स्त्रियों को मैथुन का आनंद ही नहीं आता। वे गर्भ भी धारण नहीं कर सकतीं।

ऐसे व्यक्तियों को इस प्रकार के उपाय काम में लाने चाहिए—

१—स्नान के अध्याय में जिन वाष्प-स्नानों का ज़िक्र है, उन्हें काम में लावे।

२—जल-चिकित्सा और मिट्टी की चिकित्सा करे।

३—फल, छिलकेदार दालें, कच्चे शाक और अधपकी चीज़ें, उबली हुई तरकारियाँ खाय। घी, दूध, दही, मेवे, मक्खन, अंडा, मांस आदि न खाय।

४—ख़ूब तैरें, या दौड़ लगावें, या कुश्ती लड़ें, या और कोई व्यायाम करे, जो संभव हो।

५—स्त्रियाँ भी व्यायाम करें, जैसा कि व्यायाम के अध्याय में बताया गया है। घर के धंधे किया करें। दूध बिलोना, पानी खींचना, चक्की पीसना, मूसल से कूटना उत्कृष्ट व्यायाम है।

६—स्मरण रहे कि मोटापा अधिक आहार का फल है। इसलिये भोजन की मात्रा घटा दी जाय।

७—तख़्त पर या ज़मीन पर सोवें।

८—दिन में सोना, आलस में पड़े रहना, या मिठाइयाँ खाना बिलकुल छोड़ दो।

९—शहद और पानी मिलाकर पियो, अथवा शिलाजीत का १ वर्ष सेवन करो। अथवा चंद्रप्रभा गुटी खाओ।

मोटापा कम करने का यह उत्तम नुस्ख़ा है—

१०—सोंठ, मिरच, पीपल, भाँग, चाभ, चीता, काला नमक, खारी नमक, सोमराजी, सेंधा नमक, काला नमक प्रत्येक बराबर। सबके बराबर लोहभस्म मिलाकर ४ रत्ती मात्रा शहद में छः महीने तक खाय।

११—कपड़े से बदन को ख़ूब कसकर अच्छी तरह लपेट लेना चाहिए, जिससे सब बदन कसकर बिलकुल पैकेट के समान हो जाय। फिर दूसरे आदमी से लुढ़कवाना चाहिए। इसके बाद बफारा लेकर जब ख़ूब पसीना आ जाय, तब एकदम ठंडे पानी के टब में बैठ जाना चाहिए। और जब तक सारा शरीर ठंडा न हो जाय, बैठे रहना चाहिए। पीछे उठकर थोड़ा फल खाकर सो जाना चाहिए।

कृशता

जैसे थलथल मोटा होना बुरा है, वैसे ही एकदम दुबला-पतला होना भी सौंदर्य-नाशक है। जिस पुरुष या स्त्री की हड्डियाँ या नसें उभरी रहती हैं, उसके बराबर दुर्भागी और कौन है।

कोई-कोई व्यक्ति क्रोध और शोक या चिंता के मारे दुबले हो जाते हैं। पर कोई-कोई जन्म से ही ऐसे होते हैं। जो जन्म से ऐसे होते है, उनके लिये कोई उपाय कारगर होना कठिन है।

ऐसे व्यक्तियों को ये काम करने चाहिए—

१—ऊपर मोटे आदमियों को जो काम बताए गए हैं, उनसे विपरीत खान-पान, रहन-सहन करना। ख़ूब फल, मेवा, मलाई, दूध, घी, मक्खन खाना। सोना, आराम करना और जिनसे शरीर में चर्बी बढ़े, वही करना चाहिए। ख़ूब हँसी-ख़ुशी रहना, क्रोध, शोक, चिंता से दूर रहना चाहिए।

२—असगंधा कृशता की उत्कृष्ट महौषध है। यहाँ हम असगंधा का एक नुस्ख़ा लिखते हैं, उसका सेवन करना बहुत जल्द मोटा करता है।

असगंध ५ सेर, बबूल की छाल २॥ सेर, अनार की छाल २॥ सेर, बेर की जड़ २॥ सेर, आँवला ५ सेर, अडूसे की छाल १ सेर, मोचरस १ सेर, देवदारु १ सेर, दशमूल ५ सेर, सबको १॥ मन पानी में पकाना। २० सेर रहे, तो छानकर उसमें २० सेर पुराना गुड़, ४ सेर कुटी हुई सुपारी, धतूरे की जड़, लौंग, पद्माख, ख़स, लाल चंदन, अजवाइन, सोया, इलायची बड़ी, दारचीनी, जायफल, मोथा, सोंठ, मेथी, चंदन, प्रत्येक १०-१० तोला, और धाय के फूल ५ सेर डालकर मुख बंद कर एक महीने रख छोड़ना। इसके बाद भभके में अर्क़

खींचकर दिन में दो बार भोजन के बाद काम में लाना। मोटा करने और पुरुषार्थ उत्पन्न करने के लिये अनोखी चीज़ है।

२—बादाम रोगन की शरीर पर नित्य मालिश करना भी अत्युत्तम है।

गर्दन और कंधे

गर्दन और कंधों के जोड़ की ख़ूबी यह है कि यह निगाह में न जँचे कि गर्दन कहाँ से समाप्त होती है, और कंधे कहाँ प्रारंभ होते हैं। यदि गर्दन बीच मे ख़मदार, ऊपर-नीचे तनिक मोटी हो, तो उसमें गहना पहनना उसकी सुंदरता को छिपाना है। पर गर्दन लंबी और कुछ अधिक पतली हो, तो मोतियों की एक लड़ पहनने से उसका यह दोष छिप जाता है। यदि गर्दन का ख़म ठीक न हो, तो गुलूबंद पहनना चाहिए। पर ध्यान में रखने की बात तो यह है कि गर्दन का भावों के आधार पर संचालन भी ग्रीवा के सौंदर्य को बहुत कुछ बढ़ा देता है। मुख और हाथों की भाव-भंगी के साथ गर्दन की भाव-भगी एक जीवित सौंदर्य की सृष्टि करती है। यदि हँसली की हड्डियाँ उभरी-सी हो, तो तनिक लटकता हुआ जड़ाऊ हार उस दोष को छिपा लेता है।

सुंदरी स्त्री का दोष-पूर्ण कंधा

प्रकरण ६

हाथ और बाहु

पुरुषो के प्रलब बाहु और आजानु बाहु की बडी प्रशसा है। लंबी भुजाएँ पुरुषो की अच्छी प्रतीत होती हैं। परंतु स्त्री की बाहु कोमल, मासल, गौरवर्ण और चर्म के रंग के कोमल रोम-युत होनी चाहिए।
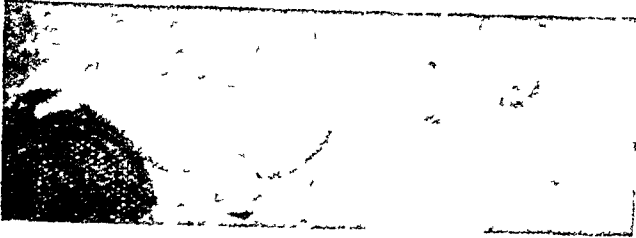
सुडौल हाथ और बाहु

भारतवर्ष में स्त्रियाँ पर्दे के कारण बहुधा बाहुओं को ढाँपे रहती हैं। इसके सिवा वे बहुत-से गहने और चूडे आदि पहने रहती है। इससे उनकी भुजा का सौंदर्य बहुत कुछ नष्ट हो जाता है। स्मरण रखने योग्य बात यह है कि मुख के बाद में हस्त-सौंदर्य पर फौरन् ही दृष्टि जाती है। सभ्य स्त्रियाँ प्राय. कुहनी तक बाँह खुली रखती हैं, और बहुत सुबुक गहने पहनती हैं। परंतु हाथो को कोमल, बाल-रहित, उज्ज्वल वर्ण-युत और गोल तथा गावदुम बनाए रखने के लिये उनके ख़ास व्यायाम की आवश्यकता है। कसरत के ऐसे काम जिनमें बल की आवश्यकता पड़ती है, हाथ को पुरुषोचित और कठोर कर देते है। परतु हाथ के स्नायुओं की ठीक-ठीक कसरत तो बाहुओ को नाच और भिन्न-भिन्न प्रकार से बल देने तथा संचालन करने से होती है।

पतली और इकसार बाँह निर्बलता और रोगी होने का चिह्न है। कलाइयाँ पतली हो, पर उनमें हड्डी न उभरी होनी चाहिए।

भुजाओं की मालिश

भुजाओं को सुदर और कोमल बनाने के लिये आवश्यक है कि उन पर गुलाब का अर्क़ और ग्लेसरीन मिलाकर १५ मिनट मालिश की जाय। इसके बाद उन पर ठडी मलाई लगाकर १५ मिनट छोड दिया जाय। पीछे साफ़, गीले तौलिए से पोछकर साधारण पौडर छिडककर भली भाँति लगा दिया जाय। ताजा छाछ या दही की मलाई की मालिश से भी भुजाएँ निखरती एवं सुंदर बनती हैं।

पुरुषो की उत्तम भुजाएँ वे हैं, जिनमें मछलियाँ उभरती हों। जो गठीली, मज़बूत और ठीक उनके वक्षस्थल के अनुरूप हो। इसके लिये पुरुषों को डंबल की कसरतें करनी

चाहिए। घरू कार्यों में पापड़ बेलना, मूसल का काम तथा दूध चलाना बाहुओं को सुघड़ बनाता है। हाथ का हारमोनियम भुजाओं में यथेष्ट सौंदर्य पैदा करता है।

मुट्ठी भराने और चपी कराने से भी भुजाएँ बहुत सुघड़ हो जाती हैं।

हाथों का सौंदर्य उनके नख और उँगलियों की सुड़ौलता पर निर्भर है। जो पुरुष बुद्धिमान् होते हैं, उनके हाथ सदैव सुंदर होते हैं। सुंदर हाथ वह है, जो गुदगुदा और पतला हो। उँगलियाँ नाख़ून की ओर गावदुम होनी चाहिए।

बहुधा स्त्रियाँ उँगलियों में भारी-भारी बहुत-से छल्ले अँगूठियाँ पहने रहती हैं। तथा काम-काज भी ऐसी लापरवाही से करती हैं, और सफाई का इतना कम ध्यान रखती हैं कि बहुधा उनके हाथ घृणास्पद, मैले, फटे हुए, कठोर दीख पड़ते हैं।

यह अत्यावश्यक है कि सदैव हाथों को कम-से-कम दिन में दो बार साबुन और गर्म पानी से अवश्य धोना चाहिए। साबुन हमेशा बढ़िया होना चाहिए। गर्म पानी से हाथ धोकर पीछे ठंडे पानी से धोओ, और इसके बाद मलाई या क्रेसक्रीम मल दो।

यदि हाथ फट गए हों, तो उन पर नीबू का रस और ग्लेसरीन सम भाग मिलाकर मल देना चाहिए।

कौन स्त्री या पुरुष नहीं चाहता कि उसके हाथ कमल से कोमल और सुंदर न हों, कौन स्त्री या पुरुष नहीं चाहता कि उसकी भुजाएँ गोल, सुडौल और आकर्षक न हों। मिलते ही आजकल जो हाथ मिलाने का रिवाज है, वह वैज्ञानिक है। यह हाथ ही है कि जो बदन-भर में छुरछुरी पैदा कर देता है। जब यह अपने मित्र या प्रेमी के मुलायम और सुंदर हाथ से मिलता है।

कुछ साधारण क्रियाओं से, जो हम नीचे लिखते हैं, हम अपने हाथों को आश्चर्य-जनक स्वास्थ्य और सुंदरता प्रदान कर सकते हैं।

सबसे पहली बात यह है कि हाथों में ख़ून का संचालन एक तौर से होना चाहिए। इसके लिये रोज़ बारी-बारी से एक हाथ के पृष्ठ को दूसरे हाथ की हथेली से हलका-हलका मलें।
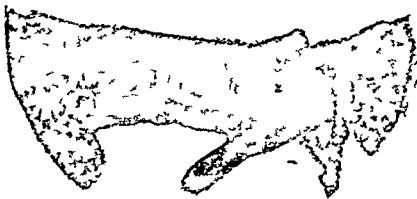
चित्र न० १

(१) चित्र देखने से ऐसा मालूम होता है कि हाथ उँगलियों से मला जाता है, परंतु ग़ौर से देखने से यह मालूम होगा कि ऐसा नहीं है, हाथ को हथेली से मल रहे हैं, और हथेली से ही मलना चाहिए, इससे ख़ून का हथेली में संचालन ठीक होता है, और पट्ठे दृढ़ और चुस्त होते हैं।

(२) दूसरी क्रिया करने के लिये तर्जनी और अँगूठे के बीच में दूसरे हाथ की उँगली

के सिरे को हलके से पकड़ लो, और फिर शेष उँगलियों को दृढ़ रखकर पहले पोरवे को आगे-पीछे झुकाओ, इस प्रकार हरएक पोरवे और फिर समूची उँगलियों को करो, सब उँगलियों व अँगूठों को इस प्रकार करने से एक तो जो उँगलियाँ बहुत चटखा करती हैं, वह ठीक हो जाती हैं। दूसरे उँगलियाँ मुड़ने-तुड़ने से चुस्त व मुलायम हो जाती हैं।
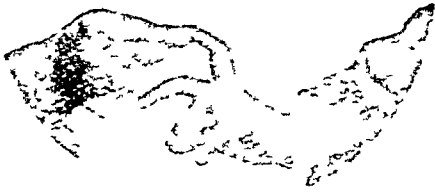
चित्र नं० २

(३) अलग-अलग हरेक उँगली पर इस प्रकार क्रिया करने के बाद सब उँगलियों के सिरों को पकड़ लीजिए।
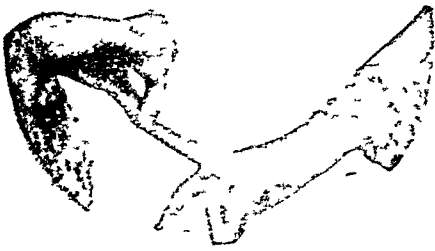
चित्र नं० ३

चित्र नं० ४

फिर बिना कलाई पर ज़ोर डाले हथेली की तरफ़ उँगलियों को झुका दीजिए।

इस तरह १०-५ बार करने से तमाम उँगलियों के पट्ठे दृढ़ होंगे। कलाई को इस क्रिया में बिल्कुल न मुड़ने देना चाहिए।

(४) उँगली को बीच में से दूसरे हाथ की तर्जनी व अँगूठे से पकड़ लीजिए और फिर जैसे बोतल का काग खोलते वक्त कागकश को घुमाते हैं, वैसे तर्जनी और अँगूठे को उँगली के चारों तरफ़ घुमाइए, जिससे पट्ठों पर हलका-हलका ज़ोर पड़े। इससे उँगली गोल और सुडौल होंगी।

(५) उँगलियों-संबंधिनी इन क्रियाओं के बाद अब हथेली (करतल) की ओर ध्यान दीजिए। अँगूठे से हथेली को उस जगह से जहाँ उँगलियाँ आरंभ होती हैं, खूब दबाइए तथा अँगूठे को गोलाकार फिराइए। इस जगह बहुत-से लोगों के आटने पड़ जाते हैं, वे इस क्रिया से न पड़ेंगे। हड्डी ज़्यादा ऊपर को न उभरेगी, और हथेली मुलायम रहेगी।
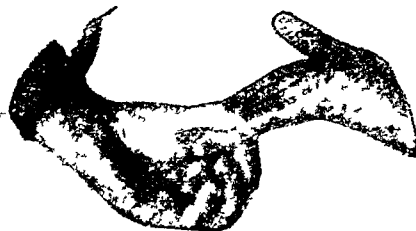
चित्र नं० ५

(६) दोनो हाथों को मिलाइए, और जैसे पहलवान किया करते हैं, पहले हथेलियों को आपस में मिलाकर हाथ को धीरे-धीरे सरकाते हुए उलटी तरफ ले जाइए, फिर उधर से मलते हुए इधर ले आइए, इस प्रकार दोनो हाथों को आपस में बारी-बारी से ऊपर नीचे से मलिए।

(७) फिर पंजों को एक दूसरे मे मिलाकर ज़रा ज़ोर से दबाइए, इससे हाथ सुडौल होंगे।

चित्र नं० ६

(८) अब कलाई की कसरत कीजिए। एक हाथ से दूसरे हाथ की कलाई को बिना मोड़े पीछे को जहाँ तक मोड सकते हैं, मोडिए। फिर उस हाथ को जिससे मोड रहे हैं, दूसरे हाथ से नीचे की तरफ मोडिए। इससे कलाई दृढ़, स्वस्थ व सुंदर होगी।

(९) कलाई की एक और कसरत है। कोनियों को पसलियों के पास लगाकर हाथों को सामने को सीधा मोड लीजिए। फिर मुट्ठियों को ज़ोर से बंद करके कलाइयों को अंदर और बाहर को जितना मोड सकते हैं मोडिए।

चित्र नं० ७

चित्र नं० ८

(१०) हाथ में जो कलम पकडने से कंपन होता है, उसको हटाने का एक उत्तम उपाय यह है कि मुट्ठी बद करके कलाई को अदर को मोडकर और फिर बाहर को फेककर एकदम हाथ को पूरा खोल दिया जाय।

(११) उँगली व कलाई के अतिरिक्त भुजाओं की कई कसरतें हैं। मुगदर से भुजाओं की कई कसरतें होती हैं, खाली हाथ भी कुछ हो सकता है। हाथो को ख़ूब आगे-पीछे को ज़ोर-जोर से दाएँ-बाएँ को फेकना, धीरे-धीरे फैलाना और धीरे-धीरे सिकोडना, कोनी के पास से जल्दी-जल्दी खोलना व मोडना।

(१२) एक हाथ से भुजाओ व कलाई को हलके-हलके चारो तरफ वैसे ही मलना या तैल लगाकर मलना भुजाओ को सुंदर, गोल व सुदृढ़ बनाता है।

उपर्युक्त ये छोटी-सी प्रक्रियाएँ होती है, जो यदि १०-१५ मिनट की जायँ, तो हमारे हाथ व भुजाओं को कोमल, सुदृढ़, सुंदर व सुडौल बनावे, जिससे भुजा में सौंदर्य के अतिरिक्त बल उत्पन्न होगा। ख़ून की दौर ठीक होने से पट्ठों में मज़बूती आवेगी, और हमारी

'करतलकरपृष्ठे' और 'बाहोर्मे बलमस्तु' वाली प्रार्थना पुरुषार्थ-सहित होकर सफल होगी—रोगों से और बदनुमाई से हमारे हाथ बचेंगे और भुजाओं में वह बल होगा, जो शिष्टों की रक्षा व दुष्टों का दमन करने के लिये अत्यावश्यक है।

नाख़ून

अंडाकार, स्वच्छ, गुलाबी रंग के नाख़ून सुंदर होते हैं। उन पर किसी प्रकार की कोई लकीर नहीं रहनी चाहिए। नाख़ूनों को सप्ताह में दो बार काटते रहना चाहिए। दाँतों या और किसी मोथे औज़ार से काटना या कुतरना ठीक नहीं। नखों को चमकदार बनाने का एक अँगरेज़ी नुस्खा हम लिखते हैं—

गंधक का हल्का तेज़ाब १ ड्राम। टिंकचर मिर ½ ड्राम। पानी १ छ०। सबको मिला लो। नाख़ूनों को साबुन से धोकर इस दवा में भिगो दो। यदि नाख़ून फट जाय, तो मेथी का लुआब और मोम मिलाकर लेप करे। पीला या सफ़ेद होना रोग के कारण होता है, उस रोग को दूर करे। नाख़ूनों का उखड़ना, फूलना, काला पड़ जाना तथा खाज आदि भी भिन्न-भिन्न रोगों के कारण होते हैं। उन रोगों की चिकित्सा करे और जुलाब ले। यदि नखों के तले रक्त भर जाय, तो हल्दी सिरके में पीसकर लेप करे।

प्रकरण ७

पैर

साधारणतया पुरुष का पैर ९ से ११ इंच तक और स्त्री का ५ से ९ इंच तक लंबा होता है। सुंदर पैर वह है जिसकी उँगलियाँ सुडोल, कोमल और मिली हुई सीधी हों, तथा समचा पैर मांसल और गठीला हो।

यद्यपि छोटे पैर पसंद किए जाते हैं, परंतु चीन की भाँति छोटे बनाने की धुन में पैरों का सत्यानाश ही न कर डालना चाहिए। ऊँची एडी और तंग पंजों के बूट भी पैरों की बनावट को बिगाडते हैं। पैर पर समूचे शरीर का वज़न रहता है, और उसकी बनावट कुछ धनुपाकार है। बीच का कोमल तलुआ ऊपर उठा रहता है, तथा सारा भार पंजों और एडी पर पडता है। जो जूते ठीक इसी सिद्धांत पर बनाए जाते हैं, वे ही पैर को आराम देते हैं, और पैरों के सौंदर्य को भी नहीं ख़राब करते।

सुंदर पैर

सुंदर कूल्हे, पिंडलियाँ और जाँघ

गहने

गहने हमेशा ही सुंदरता के लिये पहने जाते हैं। पर पैरों में गहने पहनने से क्या लाभ होता है, हम यह नहीं समझ सके, बल्कि गहनों से पैर गंदे, काले, सख़्त और कुरूप हो जाते हैं।

पैरों को सुंदर करना

आप यदि ध्यान से देखेंगे, तो आपको पता लगेगा कि ८० फीसदी स्त्री-पुरुष सीधे पैर पर ज़्यादा ज़ोर देकर चलते हैं, यह वास्तव में आदत है। इससे जहाँ चाल में लँगडापन आ जाता है, वहाँ पैरों की बनावट में भी फ़र्क़ हो जाता है। पैरों को सुंदर करने के
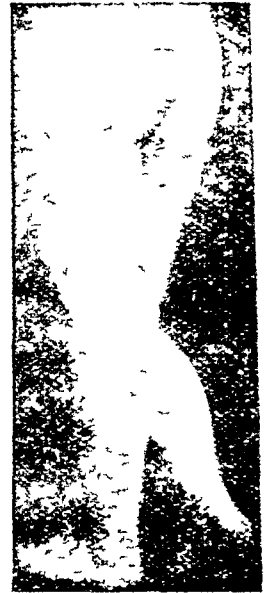
लिये चाल को समतोल बनाइए, और कुछ दूर पंजों के बल सारे शरीर का भार डालकर चला कीजिए। साथ ही जल्दी-जल्दी पैरों से धरती पर आघात करते हुए कुछ दूर चलिए। पैरों में लचीलापन पैदा करने के लिये उचक-उचककर भी चलिए। उछलकर पंजों के बल चलने से भी पैरों में सुंदरता आती है। विविध रीति से नाचना भी पैरों को सुंदर बनाता है। योरपियन सुंदरियों ने नाच द्वारा ही पग-सौंदर्य में अति उन्नति की है।

पैरों का फटना

यदि गीले पैर तत्काल ही न पोंछे जायँ, या आग पर बैठकर न सुखाए जायँ, तो वे पैर फट जायँगे। यदि पाँव थोड़े ही फटने आरंभ हुए हैं, तो यह उत्तम है कि पैरों को गर्म पानी

कूल्हे और टाँगे

सुंदर जाँघ और टाँगे तथा पैर

से धोकर उन पर सूखा नमक रगड़े, और फिर कपड़े से पोंछ डाले, पर यदि अधिक बढ़ गए हो, तो मोम और जैतून का तेल बराबर गर्मकर मिला लो, और बिवाइयों में भर दो। कुछ दिन के इस्तेमाल से ठीक हो जायँगे। अथवा मोम में यूकलिप्टस तेल मिलाकर उसे ही भरो। ऑटन को नरम करने के लिये 'सेली सलिक कोडियन'-नामक अँगरेज़ी मिश्रण बहुत लाभकारी है, जो प्रायः सभी अँगरेज़ी दवा बेचनेवालों के यहाँ मिलता है।

पैर में पसीना

जिन लोगों के पैर में बहुत अधिक पसीना आवे, उन्हें ऐसा करना चाहिए कि पहले पैर [illegible] गर्म पानी में फिर एकदम ठंडे पानी में डालो। इसके बाद बाहर निकालकर सुखा लो, और परस्पर खूब रगड़ो, जिससे गर्मी पैदा हो जाय। यदि पैर बहुत ही नाजुक हो गए हों, तो उन पर थोड़ी भुनी फिटकरी मली जा सकती है। ऐसे व्यक्तियों को जूता हलका और देशी पहनना चाहिए तथा मोज़ों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।

कूल्हे और टाँगें

[illegible] टाँग

रोगी टाँग

[illegible] स्त्रियों के [illegible] पुरुषों की अपेक्षा बड़े होते हैं। इसका कारण गर्भाशय है। [illegible] स्त्रियों की आकृति सुंदर प्रतीत होती है। जिन स्त्रियों के कूल्हे भारी होते हैं, [illegible] अधिक [illegible] है। यह [illegible] का सौंदर्य है।

[illegible] कि टाँगों का सौंदर्य बहुत अंश में चाल पर निर्भर है। या तो [illegible] रहता है, परन्तु [illegible] या लँगड़ाकर चलने से टाँगों की आकृति [illegible] हो जाती है। [illegible] स्त्रियों को चलने-फिरने के बहुत ही कम अव-[illegible] इससे भी उनकी टाँगों का बिगड़ना आरम्भ हो जाता है।

पोशाक भी चाल को बहुत दूषित करती है। भारी भारी घाँघरे, चिम्टवाँ जूते, पैरों के भारी-भारी गहने आदि चाल मे अंतर उत्पन्न कर देते हैं। यदि चाल धीमी चली जाय, तो कूल्हों की लचक उसमें स्पष्ट हो जाती है।

टाँगों का टेढ़ापन

बचपन की गड़बड़ी से प्रायः टाँगें टेढ़ी हो जाती हैं। या तो वे बिल्कुल भिच जाती या फट जाती हैं। इस दोष को दूर करने के लिये अमेरिका का बना हुआ एक यंत्र मिलता है, जिसे टाँगों से बाँधा जाता है।

प्रकरण ८

चमडी की रंगत

चमडी की बनावट के विषय में पिछले अध्याय में बहुत कुछ बताया जा चुका है। यह भी हम बता चुके है कि शरीर की रंगत ऊपरी त्वचा पर होती है। चमडी उज्ज्वल, स्वच्छ, कोमल, लचीली और चिकनी होनी चाहिए। रंग का अतर चमडी में बहुधा देश-काल के अनुसार पड जाता है। गर्मी और धूप से चमडी काली और रूखी पड जाती है। मैली रहने और रोम-कूपों को शुद्ध न करने से चमडी खुरखुरी और फोडे-फुंसी-युक्त हो जाती है। चमडी की ठीक-ठीक रक्षा करने से वह सुंदर रहती है। यह आवश्यक नही कि गोरी चमडी ही सुंदर होती है। यदि ठीक-ठीक हिफ़ाज़त की जाय, तो श्यामली रग की चमडी भी बहुत सुंदर प्रतीत होती है।

बच्चे के जन्म लेने के बाद चमडी कोमल, नीरोग और सुंदर होती है। यदि उसी समय से उसकी रक्षा की जाय, तो चमडी उज्ज्वल और सुंदर रह सकती है। यह समझना भूल है कि चमडे की रंगत को बदलना असंभव है। रंगत तो बचपन मे सभी की बहुत सुंदर होती है। आवश्यकता उसकी रक्षा करने की है। यदि आपकी चेष्टा और अभिलाषा बराबर चमडी के सौंदर्य की वृद्धि की ओर रहे, तो आप निश्चय ही अपने वश की चमडी की रंगत बदल सकते हैं।

भोजन का रंगत पर प्रभाव

सबसे प्रथम आपको यह जानना चाहिए कि भोजन का चमडी पर बडा सुंदर प्रभाव पडता है। फलों का सेवन करने से, उनका रस पीने से, चेहरे की लाली बढ़ती है। ख़ासकर अंगूर, संतरा और सेब गालों को चमकदार और सुंदर लाल रग प्रदान करते हैं। ये फल यकृत और गुर्दों को उनके काम में बहुत सहायता करते हैं। इस कारण इनका प्रभाव रक्त की रंगत पर उत्तम पडता है।

गर्म पानी १-२ बार दिन-भर में, ख़ासकर भोजन से कुछ पूर्व पीने से चेहरे की रंगत सुंदर करने में बहुत सहायता देगा। इससे भी यकृत और पाचन-यंत्र को बहुत मदद मिलती है।

नारंगी, रसभरी, सेव, अंगूर, केला, किशमिश, मुनक्का ये फल भीतरी अवयवों को दृढ करते हैं। गालों पर गहरी रंगत लाते है। हरी तरकारियाँ जैसे पालक, तुरई, भिंडी, परवल, केला, कुल्फा, बथुआ आदि ख़ूब पेशाब लाते हैं। इससे समस्त शरीर का रंग खुलता है।

साथ ही दुर्गंधित पसीना नहीं आता । आलू, अरवी कम खानी चाहिए । ख़ासकर जब कि वे ताज़ी उबाली हुई न हों ।

सब प्रकार के नशे, शराब, चरस, कहवा, काफी, चाय, खटाई, मिर्च, अचार, चटनी, सिरका, अमचूर, गरम मसाले, ये सब चमडी की रंगत को ख़राब करते हैं । अधिक खाने से नाक के पास और गालों पर एक काला दाग पड जाता है ।

मैदा की बनी चीज़ें, मिठाइयाँ, पकान्न और पिट्टी की बनी चीज़ें, पकौडी, चाट आदि चीज़ें रक्त की गति को मंद तथा पाचन-यंत्र को कमज़ोर कर देती हैं । इससे सारे शरीर की रंगत फीकी हो जाती है । चमड़ी ढीली हो जाती है । चेहरा निस्तेज और झुर्रीवाला हो जाता है ।

सुंदर चेहरे की रंगत के लिये इन बातों का नियम करो—

१—प्रातःकाल सेव, संतरा, पपीता और अंगूर खाओ ।

२—मध्याह्न को मोटे आटे की ताज़ी रोटी, चावल, दही, छाछ, हरी तरकारियाँ, ताज़ा नीबू और थोडी दालें खाओ ।

३—तीसरे पहर को अंगूर, अनार, गन्ना, संतरा, नारियल, रसभरी, फ़ालसे खाओ । आडू, आम, अमरूद, खीरे, ककडी, ख़रबूज़ा, तरबूज़ थोड़ी मात्रा में समय और ऋतु का ख़याल करके खाओ । यही बात अन्य फलों के विषय में भी सोचो ।

४—मैदे की चीज़ें, मिठाइयाँ, अचार, मुरब्बे, चटनी, चाय और नशे की चीज़ें मत काम में लो ।

५—शाम को सोने से ३ घंटा प्रथम हलका आहार करो । पूरी, साग, हलुवा, पेठा इस समय ले सकते हो । इस समय के भोजन में दूध का सेवन करो ।

६—प्रातःकाल सूर्योदय से प्रथम और संध्या को भी सूर्यास्त के समय भोजन से पूर्व टहलो ।

७—रात को सोने के समय कोई फ़्रेसक्रीम, या साधारण मलाई मुख, गर्दन, बाहें और हाथों पर मलो । मलने से पूर्व गुनगुने जल से यह अंग भली भाँति धो लो । इसके बाद सुविधा हो, तो स्नान करो । यदि बारहो महीने रात्रि को सोने के समय स्नान किया जायगा, तो इससे बढ़कर चमड़ी और रंगत को उत्तम बनानेवाला दूसरा कोई प्रयोग नहीं ।

८—सदैव शरीर को धूप, धूल, गर्द, ठंडी हवा और आग की तपन से बचाओ ।

बाहरी चीज़ें

घटिया और कड़े साबुन, खारी और गंदे जल का स्नान, रद्दी बिस्तरा, अशुद्ध कपड़े ये सब चमड़ी की रंगत और मुलायमियत को कम कर देते हैं । आमाशय, यकृत, गुर्दे आदि यंत्रों में चाहे भी जिस कारण से जो खराबी पैदा हो जाती है, वह चमड़ी की रंगत को ख़राब कर देती है ।

हम पीछे बता आए है कि चमडी की बाहरी पर्त के नीचे एक तरल पदार्थ होता है, वहीं रस और रुधिर-वाहिनी नालियाँ भी होती हैं। उसी का रंगीन रक्त बाहरी चमडी से चमकता है। यह बाहरी पर्त गालो, रानो और कॉख में सबसे अधिक पतला होता है। हथेली और तलुओ पर सबसे मोटा होता है। जब, चाहे भी जिस कारण से, उस पर्त में गर्द-गुबार, मैल और कोई दूषित पदार्थ जम जाता है, तभी उसमें यह दोष आ जाता है, और शरीर अपनी चमक-दमक खो देता है।

पाडुरोग में यद्यपि यह पर्त साफ होती है, परतु रक्त की कमी के कारण चमडी फीकी-रूखी और निर्जीव-सो हो जाती है।

चेहरे की आकृति चाहे भी जैसी अच्छी क्यों न हो, यदि खाल फीकी, फोडे-फुंसी युक्त दाग-धब्बे-सहित और झुर्रियाँ पडी हुई है, तो चेहरे का सौंदर्य बहुत कुछ ख़राब प्रतीत होता है।

ताज़ा खुली वायु का प्रभाव रक्त के भ्रमण पर काफी पडता है। यदि स्त्रियाँ और बच्चे अल्पायु से प्रात.काल की ताजा वायु मे भ्रमण करने का अभ्याम डाल लें, तो उनके चेहरे सुंदर और लाल हो जायँ। जो स्त्रियाँ बहुधा रात को बद कमरो में मुँह ढाँपकर सोती हैं, उनके रंग फीके पड जाते है, और उनकी चमडी पर झुर्रियाँ हो जाती है। खुली हवादार जगह में सोना और कम-से-कम कपड़ो को सोने के समय काम में लाना चाहिए। यदि संभव हो, तो सर्दियों में धूप और गर्मियों में खुली छत पर बिलकुल नंगा कुछ समय चुपचाप पड़ा रहना चाहिए।

प्रतिदिन स्वच्छ, ताज़ा पानी में स्नान करना भी चमडी को अत्यंत शुद्ध रखता है। स्वच्छ और निखरे हुए रंग का रहस्य यह है कि रोम-कूपों का कार्य होता रहे। साधारणतया यदि शरीर में से अच्छा पसीना निकलने दिया जाय, तो लगभग ¾ सेर पसीना निकलता है, जो कि सैकडो रोगोत्पादक जतुओ और विषों को शरीर से बाहर ले जाता है। पसीना निकलने के तीन हो उत्तम साधन है—स्नान, वायु-सेवन और व्यायाम।

चेहरे की बाह्य शुद्धि

सारे शरीर मे चेहरा ही सदा नंगा रहता है। इसे हम किसी भी भाँति नहीं ढाँप सकते। इसलिये बहुत-सा गर्द-गुबार और कीटाणु चेहरे पर एकत्रित हो जाते हैं। यह गर्द-गुबार आँख, मुख और कान के आस-पास अधिक जमा हो जाती है। इसलिये कम-से-कम एक बार अच्छे साबुन से मुख को सावधानी से धोना और साबुन तथा धूल-मिट्टी को अच्छी तरह मुख पर से दूर करना अत्यंत आवश्यक है। पोंछने के लिये तौलिया बहुत नरम होनी चाहिए, और समान दबाव से मुँह पोछना चाहिए। फिर भली भाँति सूख जाने पर रेशमी रूमाल से धीरे-धीरे चेहरे को रगड़ने से गालों और माथे पर चमक आती है। यदि यह क्रिया दिन में दो-तीन बार की जाय, तो चेहरा और ललाट स्वच्छ, चमकदार और रंगीन हो जायँगे।

बफारा

भाफ के द्वारा सारे शरीर का पसीना निकालना सप्ताह में एक बार आवश्यक है। ख़ासकर सर्दी के दिनों में। बड़े-बड़े शहरों में इसके लिये हम्माम बने हुए है। पर साधारण-तया यह काम एक देगची और आराम-कुर्सी से किया जा सकता है। देगची को एक स्प्रिट लैंप पर रक्खो। उसमें १॥ सेर के लगभग पानी भर दो। देगची आधी ख़ाली रहनी चाहिए। उसे आराम-कुर्सी के नीचे रखकर ऊपर नगे होकर लेट जाओ और चारो तरफ से कंबल ढाँप लो। थोड़ा देर में सारे शरीर से ख़ूब पसीना आवेगा, और इससे चमड़ी के सभी रोम-कूप खुल जायँगे।

साबुन का प्रयोग

साबुन मैल को अवश्य साफ करता है, पर चमड़ी को चिकना और नरम बनानेवाले साबुन बहुत कम हैं। साबुन ऐसी चीज़ों से बनता है, जिससे चमड़ी रूखी हो जाती है। यदि असावधानी से घटिया साबुन नित्य इस्तेमाल किया जाय, तो चमड़ी के नीचे जो चर्बी की तह है, सूख जाती है। इसलिये साबुन के प्रयोग में यह ध्यान रक्खे।

१—साबुन नित्य न काम में लाया जाय। केवल सप्ताह में एक या दो बार सब शरीर पर लगाया जाय, हाथ अलबत्ता नित्य धोए जा सकते है।

२—साबुन जो काम में लिया जाय, नरम और बढ़िया हो, और उसे काम में लाने पर क्रीम या चमेली का तेल हल्का-हल्का चमड़ी पर लगा लिया जाय।

३—साबुन से स्नान करने के बाद पानी में एक नीबू निचोड़कर स्नान किया जाय, तो अच्छा है।

विलायती साबुन में बहुधा गंदी चर्बियाँ और ऐसी चीज़ें पड़ती हैं, जिन्हें हम अशुद्ध समझते हैं। देशी साबुन ही काम में लाना उत्तम है।

धूप का प्रभाव

धूप चमड़ी को काला कर देती है। परंतु तभी जब अधिक धूप का सेवन किया जाय। शीत-ऋतु में चमड़ी की रंगत को निखारने के लिये धूप बहुत उत्तम वस्तु है। परतु वह अधिक कभी न इस्तेमाल करनी चाहिए।

हार्दिक भावों का प्रभाव

क्रोध, शोक, दुःख, भय के कारण रक्त के प्रवाह में अंतर आकर चमड़ी का और ख़ास-कर चेहरे का रग बदल जाता है। ईर्ष्या द्वेष, शोक और झूठ का भी असर मुख की भाव-भगी पर पड़ता है। यदि ये भाव अधिक अंश में शरीर में आते-जाते रहें, तो चमड़ी पर झुर्रियाँ पड़ जायँगी और सौंदर्य भी नष्ट हो जायगा।

शरीर-यंत्रों का त्वचा पर प्रभाव

१—आमाशय की ख़राबी, जो भारी, गरिष्ठ भोजन अधिक करने, अंधाधुंध बिना

चबाए खाना निगलने, पहला भोजन बिना पचे फिर भोजन करने आदि से पैदा होती है।

२—यकृत (जिगर) का काम सुस्त होने से, जो मिर्च-मसाले, अचार, चटनी, सिरका, शराब, चरस आदि के सेवन से होता है।

३—फेफड़ों की तंगी और कमज़ोरी से, जो तंग मकान में सोने, ख़राब हवा में साँस लेने आदि से होता है।

४ स्नान न करने, पसीने की कमी और चमड़ी को अशुद्ध रखने से। क्रोध, शोक, भय, रंज करने, दिन में सोने, चिंता करने आदि मानसिक विकारों से तथा बहुत मैथुन या विषम आहार करने से।

अब हम यहाँ रंगत उज्ज्वल करने तथा चमड़ी को सुंदर करने के उपाय लिखते हैं—

१—यदि रक्त की कमी के कारण चमड़ी की रंगत फीकी हो, तो किसी वैद्य से उत्तम लोह-भस्म लेकर उसी की सम्मति से इस्तेमाल करनी चाहिए। ऐसी अवस्था में हम एक प्रयोग लिखते हैं—

नवायस मंडूर ४ रत्ती दिन में दो बार गिलोय के स्वरस के साथ सायं प्रातः शहद में मिलाकर चाटे। केवल दूध-फल अधिक खाय।

एक विलायती दवा पशुओं के रक्त के लाल कणों को सुखाकर बनाई जाती है। जिसे हेमोग्लोबिन (Hemoeglobin) कहते हैं। यह रक्त को बहुत शीघ्र लाल बनाती है।

२—यदि रक्त में किसी प्रकार का विकार हो गया है, तो शुद्ध आँवलासार गंधक जो किसी भी वैद्य के यहाँ मिल सकता है, २ रत्ती १ माशा गुड़ में लपेटकर खाना चाहिए। १ सप्ताह खाकर फिर १ सप्ताह छोड़ देना और तब फिर एक सप्ताह सेवन करना चाहिए। इससे चाहे भी जैसा रक्त-विकार हो, दूर हो जायगा।

३—यदि स्वस्थ शरीर हो, तो २ तोला चना दूध में भिगोकर नित्य प्रातःकाल खाना चाहिए। अंगूर खूब खाना चाहिए। व्यायाम, हास्य, विनोद, गाना आदि करना चाहिए।

४—केलेमन (तैयार) १ आउंस, हैज़लीन १ आउंस अर्क गुलाब १ छटाक मिलाकर मुँह पर मलने से चेहरे पर अस्थायी चमक और लाली आवेगी।

ग्लेसरीन ६ भाग, निशास्ता १ भाग, सोडा कारबोनेट दो भाग वाले पाउडर १ भाग। सबको मिलाकर मुँह पर मले। पीछे से पानी से धो दे।

५—यदि धूप में घूमकर आना हुआ हो, तो उसकी स्याही को दूर करने के लिये खीरा, अंगूर, संतरा का छिलका या मलाई मुँह, गर्दन, हाथ आदि पर मलो।

६—प्रतिदिन ३-४ नीबू का रस एक टब पानी में निचोड़कर उसमें स्नान के समय १५ मिनट बैठो।

भैंस के दूध का ताज़ा झाग भी मलने से चमड़ी को नरम बनाता है।

अध्याय सत्ताईसवाँ

दीर्घ जीवन

प्रकरण १

क्या आयु बढ़ सकती है ?

साधारणतया यह प्रश्न उठता है कि क्या आयु बढ सकती है ? इस प्रश्न का उत्तर भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न रीति से दिया है। प्राचीन दर्शनकार एवं तत्त्ववेत्ताओं का विचार है कि जाति, आयु और भोग ये तीन चीजें पूर्व जन्म के संस्कार से मनुष्य को प्राप्त होती हैं। वेदादि धर्म-ग्रथो में लिखा है कि मनुष्य की आयु १०० वर्ष निर्धारित है। इससे अधिक मनुष्य की आयु नहीं बढ सकती। बहुत-से लोगो का कहना है कि आयु एक ज़जीर के समान है, जिसकी कडियाँ गिनी-गिनाई हैं, उनमें रत्ती-भर भी कमी या ज्यादती नहीं हो सकती। जब जिसकी मृत्यु आती है, फिर वह एक क्षण भी नहीं जी सकता। बरसते हुए तोप के गोलो में भी वह बाल-बाल बच जाता है, जिसकी आयु शेष होती है, भयानक महामारी भी उसका कुछ नहीं कर सकती। परंतु जब घडी आ जाती है, तो फिर कोई उपचार करने से भी प्राण नहीं बच सकता।

इस सिद्धात के विपक्ष में हमारा कहना यह है कि तब फिर इतनी सावधानी प्रत्येक बात में किसलिये की जाती है। क्यो नहीं मनुष्य छत पर से या पहाड पर से कूद पडता, यदि मृत्यु न होगी, तो न मरेगा। फिर क्यो मनुष्य रोगी होने पर इलाज-मालजे कराते हैं और सिह, सर्प आदि पशुओ से सावधान रहते हैं।

वास्तव मे हमारा विश्वास है कि युक्ति से आयु अवश्य बढाई जा सकती है। ब्रह्मचर्य, व्यायाम, सादा भोजन, मनोशक्ति और रसायन-प्रयोग आयु बढाने के साधन हैं। प्राचीन काल में बहुत-से दीर्घजीवी पुरुषो के जीवन-वृत्तांत हमें मिलते हैं। महाभारत के सभी पात्र दीर्घ-जीवी थे। भीष्म ने अपने सामने पाँच पीढियो का नाश देखा था। कृष्ण, अर्जुन आदि भी काफ़ी आयु के थे। अनेक ऋषि-मुनियो की हजारों वर्ष की आयु का विवरण मिलता है। इस समय भी ससार में दीर्घजीवी पुरुषों की कमी नहीं।

थाम्सपार-नामक सज्जन १४९ वर्ष की उम्र मे स्वर्गवासी हुए; और इनका शव लंदन के वेस्ट मिनिस्टर अबे में गाडा गया। मृत्यु से पूर्व एक सिविल सर्जन ने इनके शरीर की

परीक्षा करके इनका स्वास्थ्य बड़ा अच्छा बतलाया था, और इनके १०-२० वर्ष और भी जी सकने की आशा दिलाई थी। यह महाशय जीवन-भर अत्यंत सादगी से रहे, किंतु दुर्भाग्य-वश इन्हें एक वर्ष-भर के लिये राजमहल में रहना पड़ा; और जीवन-भर शाकाहारी रहते हुए भी वहाँ जाकर इन्हें मद्य-मांस का सेवन करना पड़ा। अंत में इसी राजसी ठाट ने उनका अंत भी कर दिया। हेनरी फोर्ड के मतानुसार दीर्घायु होने के लिये चाय, चुरुट, काफ़ी, तंबाकू, मद्य-मांस का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए। प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिसन के परदादा इसी सादगी की बदौलत १०२ वर्ष जिए, और उनके पुत्र अर्थात् एडिसन के दादा १०५ वर्ष। एडिसन के पिता सात भाई थे। इनमें से चार अस्सी-अस्सी वर्ष की उम्र में मरे, और तीन ने सौ-सौ वर्ष की अवस्था पाई। अब स्वतः एडिसन भी इसी सादगी की बदौलत ८७ वर्ष की अवस्था में मरे हैं। हेनरी फोर्ड एवं एडिसन की ही तरह प्रसिद्ध वनस्पति-शास्त्रज्ञ लूथर बरबैंक भी दीर्घायु के लिये चाय, काफ़ी और धूम्रपान के कट्टर शत्रु हो रहे हैं। इनके मतानुसार मनुष्य सादगी से १२५ वर्ष अच्छी तरह जी सकता है।

लंदन की प्रसिद्ध रास इंस्टीट्यूट के उत्पादक सर रेनाल्ड रास का कहना है कि आज से अस्सी वर्ष प्रथम लंदन में मनुष्य की आयु-मर्यादा ३४ वर्ष सात महीने थी, और स्त्रियों की ३८ वर्ष ४ महीने। किंतु अब यहाँ की आयु का औसत ५३ वर्ष ६ महीने है और स्त्रियों का ५२ वर्ष। अर्थात् इन अस्सी वर्षों में मनुष्य की आयु विविध आविष्कारों के कारण बीस वर्ष बढ़ गई है। इस पर पास्टर इंस्टीट्यूट के एक शास्त्रज्ञ कहते हैं कि विविध रोग-नाशक उपायों की योजना से सौ वर्ष बाद हम अच्छी तरह डेढ़ सौ वर्ष आयु पा सकेंगे। एक अमेरिकन डॉक्टर तो अमर होने की आशा बाँध रहे हैं, क्योंकि जब हाथी सौ वर्ष जी सकता है, तो घोड़ा बीस या पचीस वर्ष में ही क्यों मर जाता है? इस प्रश्न के हल हो जाने पर मनुष्य भी १५० वर्ष जी सकता है। क्योंकि जहाँ आजकल स्वास्थ्य के लिये सरकार को केवल १८०००० पौंड अर्थात् प्रति मनुष्य एक पेनी के हिसाब खर्च करना पड़ता है, वहाँ यदि वह कम-से-कम छः पेंस खर्च करने लगे, जो कि कोई बहुत बड़ी रकम नहीं है, तो अवश्य जनता की आयु-मर्यादा बढ़ सकती है।

आयर्लैंड में एक आदमी ने अपनी १२५ वर्ष की जयंती मनाई है। वह ख़ूब मज़बूत और तंदुरुस्त है। वह फौज में नौकरी कर चुका है, और प्रत्येक शुक्रवार को आध मील पैदल चलकर अपनी पेंशन ले जाता है।

आयर्लैंड में दीर्घजीवी पुरुष बहुत पैदा होते हैं। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि वहाँ सौ वर्ष या इससे अधिक आयु के जितने व्यक्ति हुए, उनमें स्त्रियाँ अधिक थीं। काउंटेस ऑफ़् डस्मांटड की मृत्यु १४५ वर्ष की आयु में हुई थी। कर्नल हीविसलो की आयु उससे भी एक वर्ष अधिक थी। एक दूसरी स्त्री मिसेस एकलेस्टन की आयु मृत्यु-समय १४३ वर्ष की थी। कहा जाता है कि ब्रिटिश-राज्य में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक दीर्घजीवी हैं।

उनमें भी उच्च घरानो के लॉर्ड और पादरी लोग ही अधिक जीते है। पर १०० वर्ष तक पहुँचनेवालों में १० मे ६ स्त्रियाँ है। टर्की मे एक पुरुष १५४ वर्ष का है। वह म्युनिसिपल्ट कौंसिल में नौकर है, उसने ५ विवाह किए। अंतिम विवाह उसने १४७ वर्ष की आयु में ३० वर्ष की स्त्री से किया। दीर्घ जीवन के चाहे जितने आध्यात्मिक गभीर कारण हो, परंतु निश्चित और पवित्र जीवन भी उसका एक स्वाभाविक कारण अवश्य है। यह बात उपर्युक्त घटनाओं से साबित होती है।

अविवाहित अधिक मरते हैं ?

योरपियन देशो में अविवाहित रहने का आजकल इतना अधिक रिवाज बढ़ गया है कि अविवाहित स्त्री-पुरुषो की संख्या अधिक हो गई है और धन की सख्या घटती जा रही है। इसलिये किसी-किसी देश ने तो अपने यहाँ अविवाहितो पर टैक्स (कर) लगा दिया तथा विवाह करनेवालो को पुरस्कार आदि देने का नियम किया है। किसी-किसी देश में विवाह कानूनन् अनिवार्य कर दिया गया है।

स्त्री पुरुष की सहचरी है। उसके विना पुरुष का काम नहीं चल सकता। जो लोग इस प्राकृतिक नियम का उल्लघन करते हैं, उन्हें प्रकृति भी दड दिए विना नही रहती।

हाल में अमेरिका के न्यूयार्क नगर की प्रसिद्ध आयुवर्द्धक सस्था के डाइरेक्टर डॉक्टर यूगेन एल्० फिस्क ने घोषणा की है कि तीस वर्ष के ऊपर की अवस्था में विवाहितों की अपेक्षा अविवाहित व्यक्तियो को दूनी मृत्यु होती है। कर्नेल युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर एफ्० विलकास्स ने अनुसंधान कर यह बताया है कि ३० से ३६ वर्ष की अवस्था में विवाहित पुरुष जहाँ ५१ मरते हैं, वहाँ अविवाहितो का औसत १२६ होता है। ४० से ४६ वर्ष के अविवाहित व्यक्तियो की मृत्यु-संख्या इसो भाँति दूनी से कुछ अधिक ही है, अर्थात् विवाहित जहाँ ६५ मरते हैं, वहाँ अविवाहित १६५ मरते हैं। पक्की उम्र में भी अर्थात् ७० मे ७६ तक विवाहित ही अधिक जीवित रहते हैं।

डॉक्टर फिस्क ने दोनो सख्याओं की तुलना करते हुए बताया है कि प्राय अविवाहित वे ही व्यक्ति होते है, जो वैवाहिक बाज़ार में निकम्मे या बेकार सिद्ध होते है, ऐसे बेकार प्रमाणित होने के तीन ही कारण हो सकते हैं, अर्थात् शारीरिक, मानसिक अथवा आर्थिक अयोग्यता, इसीलिये वे जल्दी मरते हैं।

आगे डॉक्टर साहब दूसरा कारण यह बताते हैं कि अविवाहितों के मरने का कारण यह भी है कि उनके स्वास्थ्य की देख-भाल करनेवाली उनकी पत्नी नहीं होती।

उक्त डॉक्टर महाशय कहते हैं कि विवाहित व्यक्ति, जिनकी देख-भाल पूर्ण रूप से की जाती है, उनकी अपेक्षा यदि अविवाहित दूनी संख्या में मरते है, तो आश्चर्य क्या है? फिर अधिकाश अविवाहितो का होटलों और उपहार-गृहो पर जीवन व्यतीत होता है। इन स्थानों के भोजन की तुलना घर के बनाए भोजन से कभी नहीं की जा सकती, फिर केवल

उपयुक्त भोजनों का ही अभाव नहीं है, जिससे अविवाहितों की अधिक मृत्यु होती है, बल्कि उन्हें एक प्रकार से जीवन की इच्छा नहीं रहती, इसलिये वे बहुत साधारण दुःख पड़ने पर ही मर जाते हैं।

पिता होने के आवश्यक भाव को बिना दिमाग में खलल पहुँचाए कोई भी व्यक्ति नहीं दबा सकता, क्योंकि दिमाग़ को स्वस्थ रखने के लिये कुछ प्रतिबंध और दायित्व की आवश्यकता है। जिन लोगों पर कुछ भी दायित्व नहीं होता, उनका मस्तिष्क उदासीन अथवा उत्साह-रहित हो जाता है और कभी-कभी वे इसी कारण पर मर मिटते हैं कि उन्हें जीवन में कोई आनंद नहीं मिलता।

पुरुषों के बाद स्त्रियों के संबंध में डॉक्टर फ़िस्क कहते हैं कि अविवाहिता स्त्रियाँ ४५ वर्ष की अवस्था तक विवाहित स्त्रियों की अपेक्षा अधिक जीवित रहती हैं, परंतु इसके बाद विवाहित स्त्रियों की मृत्यु-संख्या कम हो जाती है। परंतु यह कभी भी अधिक नहीं है।

इँगलैंड में एक बड़े भारी साहित्य-रथी हैं। उनका नाम है मि० फ्रेडरिक हेरीसन। उनका ९०वाँ वर्ष पूर्ण हुआ है। वह अभी तक ख़ूब हृष्ट-पुष्ट एवं स्वस्थ हैं। उन्होंने दीर्घ जीवन के महत्त्व-पूर्ण ५ नियम बताए हैं। वे इस प्रकार हैं—

१—सब प्रकार के नशे का सर्वथा त्याग। २—सदा थोड़ी भूख रखकर भोजन करना। ३—प्रतिदिन कम-से-कम २ घंटे भ्रमण। ४—प्रतिदिन ८ घंटे अवश्य सोना। ५—जो कुछ प्राप्त हो, उसी में संतुष्ट रहना।

उपर्युक्त नियम अत्यंत सरल और हर किसी से बन सकने योग्य हैं।

लंडन के प्रसिद्ध डॉ० रंडस M. D., L. R. C. P., M. R. C. S., L. M. लिखते हैं—

'यह बात लोग नहीं जानते कि पेशों का आयु पर भारी प्रभाव पड़ता है। दीर्घायु के लिये साफ हवा, नियमित व्यायाम और निश्चितता की बहुत आवश्यकता है। जिन लोगों के धंधे ऐसे हैं कि उन्हें ख़ूब खुली हवा और प्रकाश में रहना पड़ता है, और जो शारीरिक परिश्रम भी ख़ूब कर सकते हैं, तथा सोचने-विचारने का दिमाग़ी काम जिन्हें नहीं करना पड़ता, वे दीर्घायु होते हैं। हमने नीचे लिखे परीक्षण किए हैं—

१०० पादरियों	में	४२	ने	७०	वर्ष की	आयु	पाई।
,, किसानों	,,	४०	,,	,,	,,	,,	,,
,, व्यापारियों	,,	३५	,,	,,	,,	,,	,,
,, सैनिकों	,,	३३	,,	,,	,,	,,	,,
,, वकीलों	,,	२९	,,	,,	,,	,,	,,
,, चित्रकारों	,,	२८	,,	,,	,,	,,	,,
,, अध्यापकों	,,	२७	,,	,,	,,	,,	,,
,, चिकित्सकों	,,	२४	,,	,,	,,	,,	,,

इसी सूची के प्रथम ४ वर्गों के मनुष्यो को खुली हवा में घूमने फिरने तथा व्यायाम का सुभीता रहता है, पादरी लोग प्राय निश्चित और शात रहते हैं।

अंतिम चार पेशेवालो का काम बैठा रहने तथा अधिक दिमागी काम करने का है, जिससे वे सदा चिंतित रहते है। चिकित्सको को सर्वाधिक चिता और विचार-मग्न रहना पडता है एवं बहुत कम अवकाश पाते हैं।

उपर्युक्त प्रमाण से मैं यह सिद्ध करना चाहता हूँ कि दीर्घायु के लिये खुली हवा, नियमित व्यायाम तथा कम-से कम चिता होना परमावश्यक है। दीर्घायु के इच्छुको को यह बात ध्यान मे अवश्य रखनी चाहिए।

एक अँगरेज़ संपादक जो अति दीर्घजीवी होकर मरे थे, अपने अनुभव के नियम इस प्रकार लिखते हैं--

१—प्रतिदिन कम-से-कम ८ घटे सोया करो।

२ —सावधान रहो कि तुम्हारे सोने की खिडकियाँ सदैव खुली रहें, ताकि ताज़ी वायु आ सके।

३—प्रतिदिन ऐसे जल में स्नान करो, जिसकी उष्णता शरीर की उष्णता के समान हो। और स्नान के बाद जब तक शरीर सूख न जाय, ख़ूब मला करो।

४—मांसाहार कम करो, और ध्यान रक्खो कि वह ख़ूब गला हुआ हो।

कुछ अमेरिकन वैज्ञानिको ने ये नियम बनाए हैं—

१—वे कमरे जिनमें तुम रहते हो, खुले रक्खो।

२—अधिक भोजन न करो।

३ —गहरी श्वास लिया करो।

४—मसालेदार भोजन और मांस मत खाओ।

५—भोजन ख़ूब धीरे-धीरे और चबाकर खाओ।

६—प्रतिदिन टट्टी जाओ।

७—बैठते, खड़े होते और-चलते समय सीधे रहो।

८—दाँत, मसूढ़े और जीभ को प्रतिदिन दातन से साफ करो।

९—विष और रोग-जंतुओं को शरीर में न प्रवेश करने दो।

१०—अधिक परिश्रम न करो, थकने पर आराम करो।

११—७-८ घंटे सोओ।

१२—क्रोध और चिता से दूर रहो।

प्रकरण २

दीर्घायु होने की रीतियाँ

दीर्घायु होने के लिये प्राचीन ऋषियों ने रसायन-विधान का वर्णन किया है। रसायन-विधान दो प्रकार का है—एक कुटी प्रावेगिक और दूसरा वातातविक। एक निर्वात स्थान में बैठकर सब प्रकार के आहार-विहार को संयमित करके औषधि का सेवन करे। और दूसरी रीति यह है कि ठंड, धूप, हवा और आहार-विहारों का विशेष परहेज़ रक्खे। बिना काम-धंधा, रोज़गार करते रहते हुए भी साधारण औषधियों के समान रसायन का सेवन करे।

एकांत रहकर औषधि-सेवन करने की रीति को "कुटी प्रावेगिक विधि" कहते हैं। और उससे इच्छानुसार फल की प्राप्ति होती है। इसलिये इसे मुख्य विधि कहते हैं। अर्थात् इस रीति से जिसे इस औषध का सेवन करना है, वह जहाँ सामने से हवा न आती हो, उस स्थान पर वायु-रहित मकान में रहकर औषध का सेवन करे। जब तक औषधि का सेवन करता रहे, तब तक कभी भूलकर भी मकान से बाहर न निकले, जब तक उस मकान में रहना हो, उतने समय के लिये पहले से ही सब सामग्री इकट्ठी करके रख लेनी चाहिए। यह मकान उत्तर दिशा की ओर दरवाजेवाला, और जिसके अंदर चारों ओर किले की तरह चारदिवारी हो, वह बहुत उत्तम है। उसमें धूप-धुआँ भी न आवे, ऐसा प्रबंध होना चाहिए। इस मकान में प्रवेश करने के बाद उसमें हवा आदि न आवे, न उसमें दूसरे पुरुषों का आना-जाना हो, इसलिये उसके दरवाजे, खिडकी आदि बंद रखने चाहिए। परंतु मकान को इस प्रकार बंद रखने से उसकी हवा न ख़राब हो, इसलिये अशुद्ध हवा बाहर निकलकर शुद्ध हवा आ सके, ऐसी जालियाँ लगा देनी चाहिए। मकान में प्रवेश करने से पहले उसे लीप-पोतकर स्वच्छ कर लेना चाहिए। और अपनी सहायता के लिये अच्छे अनुभवी वैद्य को, जो सब प्रकार की औषधों को अच्छी तरह जानता हो, रखना चाहिए।

जिसका अंतःकरण शुद्ध हो, जो अपनी इंद्रियों को वश में रख सकता हो। ब्रह्मचर्य धर्म के पथ को जो यथार्थ समझता हो। साधारण उपद्रव से घबरा न जाय, जो धैर्य रख सके। जिसमें दया-दान, धर्म वास कर रहे हों, प्राण रहते-रहते जो झूठ न बोले। गुरु, शास्त्र, वैद्य, औषधों और देवों में जिसकी श्रद्धा हो। वाणी में मिठास हो, नेत्रों में विश्व-व्यापी प्रेम का मिठास हो और समय पर सोने उठनेवाला हो। उन्हीं मनुष्यों को इन रसायनों से संपूर्ण फल मिलता है। और जो इन गुणों से रहित मनुष्य सेवन करे, तो प्राण-नाश होता है। इसलिये योग्य अधिकारी ही इसका सेवन आरंभ करें। शरीर में,

अँतड़ियो में इकट्ठा हुआ और चिपटा हुआ सूखा मल नरम करने के लिये पहले तीन दिन तक वैद्य की सलाह से घी, तेल या चर्बी का सेवन करे। उसके बाद तीन दिन तक शरीर से काफी पसीना निकल आवे, इसके लिय बफारा ले, सेक करे या पट्टी बाँधे। इस प्रकार की क्रिया करने से सूखे और चिपके हुए मल आसानी से बाहर निकलने योग्य नरम हो जाते है। इतना ही नहीं, बल्कि मल को बाहर फेंकनेवाले मलाशय-मूत्राशय आदि अवयवों की नाली और चमड़ी के छिद्रो मे भी प्रबलता प्राप्त होती है। इस प्रकार क्रिया करने से जब मल आसानी से बाहर निकल जाने योग्य नरम हो जाय, तब उसे बाहर निकालने के लिये नीचे लिखी विधि करे—

हरड, आँवला, सेंधा नमक, सोंठ, तज, हल्दी, छोटी पीपल, वायविडंग। इन आठो चीज़ों को बारीक कपड़छन करके एक तोला चूर्ण पुराने गुड मे मिलाकर थोडे गर्म पानी के साथ पीने से दस्त खूब खुलकर हो जाता और इकट्ठा हुआ मल सब बाहर निकल जाता है। जब तक अच्छी तरह से कुल मल निकल न जाय, तब तक ५-७ दिन तक इस प्रकार जुलाब लेना चाहिए, इस बीच में खुराक सिर्फ दूध-चावल हो।

इस प्रकार क्रिया करने पर भी अँतडियों में कहीं थोडा-बहुत मल चिपटा रह जाय, तो उसकी शुद्धि के लिये एकाध उपवास कर लेना चाहिए।

उपवास करने से जठराग्नि प्रबल होती है, और सूखा, सड़ा मल जल जाता है, जिससे कई प्रकार के रोग शात हो जाते हैं। इसके सिवा जो उपवास सहन न कर सकें, उन्हें बहुत ही हल्का भोजन ले लेना चाहिए। साठी चावल या अन्य बढ़िया चावल लेकर उनमें चौदह गुना पानी डालकर उबाले। जब चावल पकते-पकते पानी में घुल जायँ, तब उसे ठंडा करके भोजन की तरह लेना चाहिए, यह बहुत ही हल्का आहार है।

जब तक अँतड़ियो में से मल बिल्कुल न निकल जाय, तब तक ४-५ दिन तक इसी प्रकार क्रिया करते रहना चाहिए। बाद में हवा से सुरक्षित मकान के निचले भाग में प्रवेश करे और रसायन का सेवन शुरू करे। अजीर्ण न हो, इतने ही अनुमान से रसायन दवा प्रात काल और सायकाल लेकर ऊपर से गाय का धारोष्ण या उबाला हुआ दूध पीवे। इसके सिवा दूसरी और कोई वस्तु न खाय। जल तो बिल्कुल नही पीना चाहिए, छूना भी नहीं चाहिए। किसी प्रकार का व्यायाम, काम-काज या विचारना आदि कुछ न करके सिर्फ़ निश्चेष्ट भाव से लेटे रहना चाहिए। इस प्रकार ६ महीने तक इस औषध के सेवन करने से रोग-मात्र दूर हो जाते हैं। वृद्धावस्था में सफ़ेद बाल, हिलते दाँत, सिकुडी हुई चमडी, इन्द्रियों की क्षीणता आदि नष्ट होकर नवयौवनता प्राप्त होती है।

दीर्घ आयु किस प्रकार हो? इस विषय पर आजकल के विद्वानों में बहुत मतभेद चल रहे है। बहुतो का कहना है कि अधिक काम-काज करने से शरीर के अवयवो को धमक पहुँचने से जीवन-डोरी टूट जाती है। इसलिये दीर्घ जीवन की इच्छा करनेवालो को परिश्रम

से बहुत दूर रहना चाहिए । कोई यह कहते हैं कि पौष्टिक ख़ूराक खाने से दीर्घायु होती है । और कोई यह कहते हैं कि साधुवृत्ति रखने से, जो वनस्पति का आहार करते हैं, और सदा धर्म से रहकर ईश्वर का ध्यान किया करते हैं, वही अधिक-से-अधिक जीवित रह सकते हैं । भारत के ऋषि-मुनि और योरप के प्लेटो-सोलन, सोक्रेटीस आदि तत्त्वदर्शी उसी प्रकार का जीवन व्यतीत करते थे, और इसी से वे दीर्घायु हुए ।

बीसवीं शताब्दी मे सादगी की बात करना अपराध है । लोग हर तरह कष्ट सहकर भी कालर, टाई, पतलून और कपडो पर कपडे पहनते है । नाना प्रकार के असाधारण भोजन करना और तकल्लुफ़ मे सराबोर रहना अपनी शान समझते है । परंतु एक समय था कि मनुष्य ने अत्यंत सादगी का जीवन व्यतीत करते हुए सैकडों, हज़ारो वर्ष तक अपनी आयु बढ़ा ली थी । उनके पर्वत के समान शरीर, खरबुद्धि और सिंह के पराक्रम थे । गहन विषयो पर उन्होने अमर विवेचनाएँ प्रकट की है ।

अब हम आयुर्वेद के प्रामाणिक और सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ सुश्रुत के कुछ प्रयोग रसायन-विधि पर पाठको के लाभार्थ यहाँ लिखते है —

"ठडा जल, दूध, शहद, घी इन चारो के पृथक्-पृथक् एक-एक करके चार प्रयोग हैं । दो-दो मिलाकर छ: हैं । तीन-तीन मिलाकर ४ हैं । चारो का मिलाकर एक है । इस तरह सब मिलाकर १५ प्रयोग है । एकवाले जैसे (१) जल, (२) दूध, (३) शहद, (४) घी । दोवाले (१) जल-दूध, (२) जल-शहद, (३) जल-घी, (४) दूध-घी, (५) दूध-शहद, (६) शहद-घी । तीनवाले (१) जल, दूध, शहद, (२) जल, दूध, घी, (३) जल, शहद, घी, (४) दूध, शहद, घी । चारवाला (१) जल, दूध, घी, शहद । इन १५ प्रयोगो मे से किसी भी एक को अपने शरीर के मान प्रकृति के और दोषों के अनुकूल प्रारंभ करे, तो आयु की स्थिति होगी ।" (अ० २७)

"वायबिडंग की मींगी का चूर्ण करके उसमे उतनी ही मुलहठी मिलाकर बल के अनुसार ठडे पानी के साथ १ मास तक सेवन करे या बिडंग, तंडुल और मुलहठी शहद मे मिलाकर भिलावे के काढे में या शहद और दाख के काढे के साथ अथवा गिलोय के काडे के साथ अथवा शहद और आँवले के काढ़े के साथ पीवे । यह पाँच रीति से पाँच प्रयोग है, जो भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगों के लिये हैं । औषधि पच जाने पर विना नमक डाला हुआ मूँग और आँवले का जूस जिसमे थोड़ा-सा घी पडा हो, बहुत-सा घी डाले हुए चावलो के साथ खाय । ये प्रयोग १ मास में बवासीर को जड़ से नष्ट करते है । रोग-कीटाणुओं को मारते है । बुद्धि और मेधा को उत्पन्न करते है । १ मास के प्रयोग से १०० वर्ष की आयु बढ़ती है ।"

(अ० २९)

"वायविडग की मीगी १२ सेर साफ करके भात की तरह ख़ूब उबाली जाय । फिर पानी निकाल उसकी पिट्ठी पीस ली जाय । इसके बाद पानी एक लोहे के मज़बूत कलशे मे भरकर

और शहद भर दे। उसे वर्षा-ऋतु में ४ मास राख के ढेर में गडा रहने दे। वर्षा जब व्यतीत हो जाय और शरद्-ऋतु का प्रारंभ हो, तो निकालकर रोगी का शरीर शुद्ध करके प्रातःकाल सेवन करावे। औषध पच जाने पर बिना नमक का मूँग और आँवले का यूष थोडा घृत डालकर बहुत-सा घृत पडे हुए भात का पथ्य दे। राख ही बिछाकर उस पर लेटा रहे। ऐसा करने से उसके सारे शरीर से कीडे निकलेंगे। तब अगु तेल लगाकर बाँस के पत्तो से उन कीडो को हटा दे। दूसरे मास में चींटी-जैसे कीडे और तीसरे मे जूँ-जैसे कीटे निकलेंगे। उन्हें भी उसी भाँति दूर कर दे। चौथे मास में दाँत, नख, रोम गलकर गिर जायँगे। पाँचवें महीने में शुभ लक्षण दिखाई देंगे। तब वह सूर्य के समान दिव्य देह प्राप्त करेगा। कान और नेत्रो की शक्ति बहुत बढ़ जायगी। शुद्ध सतोगुण का उदय होगा। हाथी के समान बली और घोडे के समान शीघ्रगामी हो जायगा। और युवा होकर ८०० वर्ष की आयु तक जीवित रहेगा।"

"इसके शरीर पर मालिश करने को अगु तैल, उत्सादन के लिये अजकर्ण का क्वाथ, स्नान के लिये खस पडा हुआ कुएँ का जल, चंदन का लेप और भल्लातक प्रयोग में कहे अनुसार आहार-विहार करे।

ऐसा ही प्रयोग काश्मरी का भी है। परतु इसमें राख पर लेटना या उक्त भोजन की आवश्यकता नहीं। केवल खीर का भोजन करना पडता है। गुण पूर्ववत् ही हैं। रक्त-पित्त से उत्पन्न विकारो मे यह प्रयोग बहुत गुणकारक है।" (सु० अ० २७)

"वाराहीकंद की जड का पाँच सेर चूर्ण लेकर मात्रा के अनुसार शहद मिलाकर दूध के साथ खाय। जब औषध पच जाय, तब दूध, घी भात खाय। इसके १ मास सेवन करने से १०० वर्ष की आयु होती है और कभी धातु क्षय नहीं होती। यह दवा साय-प्रात. दोनो समय खानी चाहिए।" (सु० अ० २७)

"जो मनुष्य अपने नेत्रो की ज्योति और शक्ति को बढ़ाना चाहता है, उसको उचित है कि त्रिजैसार और अरनी की जड के काढे मे ३ पाव उर्द पका ले। पकते हुए उनमें चित्रक का कल्क १ तोला और आँवले का रस १ छ० डाल दो। जब तैयार हो जाय, तो ठंडा करके शहद और घी मिलाकर बल के अनुसार सेवन करे। नमक न खाय। जब औषध पच जाय, तो बिना नमक के मूँग और आँवले के यूष के साथ बहुत-सा घी डालकर भात खाय या दूध-भात खाय। यह दवा तीन महीने सेवन करने से नेत्र गरुड के समान दूरदर्शी हो जाते हैं। और शरीर अत्यत बलवान् हो जाता है।" (सु० अ० २७)

"जो मनुष्य अपनी मेधा (गभीर बुद्धि) और आयु को बढ़ाना चाहते हैं, वे सफ़ेद बावची के बीजो को धूप में सुखाकर बारीक पीस लें। और गुड में मिलाकर चिकने घडे में भरकर सात रात्रि तक धान के ढेर में गाड रक्खें। इसके सेवन की विधि यह है कि वमन-विरेचन से शरीर की शुद्धि करके सूर्योदय से प्रथम इसकी मात्रा बल के अनुसार सेवन कर ऊपर से गर्म पानी पीना चाहिए। भल्लातक-विधान में कही रीति से निर्वात स्थान पर रहे।

और औषधि के पच जाने पर शीतल जल से स्नान करे, और शाली चावल अथवा साठी चावल का भात दूध के साथ मिश्री मिलाकर खाय। इस तरह ६ महीने के प्रयोग से वर्ण, बल, कांति, मेधा उदय होती है। सुनी हुई बात कभी नहीं भूलती। १०० वर्ष की आयु हो जाती है।" (सु० अ० २८)

"कुष्ठ, पांडु तथा उदर-रोग में यही दवा २-२ तोला श्यामा गाय के मूत्र में मिलाकर सूर्योदय के समय पीना चाहिए। तीसरे पहर अलोने आँवले के यूष के साथ घी डालकर भात का पथ्य दे। १ मास के सेवन से रोगी की स्मृति और आयु की पूर्ण वृद्धि होती है।"

(सु० अ० २८)

"ब्राह्मी का रस २ सेर, घी १ सेर, वायविडंग की मींगी १६ तोला, निसौत और वच ८-८ तोला, त्रिफला ४० तोला, सबकी लुगदी पीसकर पकावे। सिद्ध होने पर शरीर शुद्ध करके सेवन करे। पचने पर दूध, घी और भात का पथ्य ले। इससे वमन, विरेचन और पसीने द्वारा कीड़े निकल पड़ते हैं। और आयु, बुद्धि, यौवन सबकी वृद्धि होती है। इस औषध से कोढ़, विषमज्वर, मृगी, उन्माद, विष, भूत-ग्रह आदि रोग दूर होते हैं।"

(सु० अ० २७)

"जौ को कूटकर दलिया बनावे और पीपल तथा शहद मिलाकर खाय, तो बुद्धि का पूर्ण विकास हो। शहद, आँवला और स्वर्ण-भस्म का सेवन करने से जीर्ण रोगी भी युवा हो।"

(सु० अ० २६)

अब हम यहाँ सुश्रुत का सोमप्रयोग लिखते हैं, जो बहुत प्रसिद्ध है और जिसकी सर्वत्र भारी चर्चा है तथा जो अद्भुत और आश्चर्यजनक है।

"जो मनुष्य सोम-पान की इच्छा करे, वह ऐसा मकान बनवावे, जिसमें एक के भीतर दूसरा ऐसे ३ कमरे हों। जहाँ वायु और धूप से पूर्ण रक्षा होती हो। उसमें सब आवश्यक सामग्री और सेवकों को नियुक्त करे। और वमन-विरेचन से शुद्ध होकर धर्म-कृत्य, हवन आदि करके सोमकंद को सोने की सलाई से चीरे। और उसके रस को सोने के पात्र में भर ले। यह रस १ पाव-भर बिना ही स्वाद लिए पी जाय। फिर आचमन करके यम-नियम का पालन कर मौन साधकर प्रियजनों के साथ बैठे। शरीर को हवा न लगने दे। उसी औषध में चित्त लगाकर बैठ जाय और टहले, पर सोवे नहीं। सायंकाल में भोजन करे। और कुश या बेत की बुनी शय्या पर काले मृग का चर्म बिछाकर सोवे। प्यास लगे, तो थोड़ा-थोड़ा ठंडा पानी पीवे। प्रातःकाल उठकर मंगल पाठकर पूर्व की ओर मुख करके बैठ जाय। जब सोम रस पच जाता है, तब उल्टी होती है। उसमें रुधिर और कीड़े निकलते हैं। तब संध्या को गर्म करके ठंडा किया हुआ दूध पिलावे। तीसरे दिन दस्त आने प्रारंभ होंगे। उनमें भी कीड़े निकलेंगे। इससे सारा शरीर शुद्ध हो जाता है। सायंकाल में स्नानकर दुग्ध पान करे। और रेशमी वस्त्र बिछाकर

शय्या पर शयन करावे। चौथे दिन सारे शरीर में सूजन उत्पन्न हो जायगी। और सारे शरीर से कीड़े झड़ने लगेंगे। उस दिन से शय्या पर रेत बिछाकर सोवे। शाम को फिर दूध ही पिलावे। इसी भाँति पाँचवें-छठे दिन भी करे। ७वें दिन उसका मांस और चमड़ी फूट निकलेगी और गल जायगी। अस्थिपंजर-मात्र रहेगा। उसी दिन उसके शरीर पर तिल, मुलहठी और चंदन दूध में पीसकर लेप करे। दूध ही खिलावे। आठवें दिन दूध से शरीर धोकर चंदन लगाकर दूध ही पिलावे। और शरीर शुद्ध करके रेशमी वस्त्र की शय्या पर सुलावे। तब मांस आने लगता है। चमड़ी हट जाती है। दाँत, नख, रोम सब गिर पड़ते हैं। नवें दिन से अणु तेल लगाकर सोम की छाल के क्वाथ से शरीर को धोवे। दसवें दिन भी ऐसा ही करे, उसकी त्वचा कुछ कठोर हो जायगी। तेरहवें दिन से १६वें दिन तक सोम की छाल के क्वाथ से स्नान कराता रहे। १७वें और १८वें दिन दाँत निकलेंगे। वे नोकीले, चिकने और हीरे के समान कांतिवाले, समान, स्थिर और कठोर होंगे। उस दिन से २५वें दिन तक पुराने शाली चावल, दूध, यवागू आदि का सेवन करे। इसके बाद शाली चावलों का भात दूध के संग खाता रहे, फिर नाख़ून भी निकल आवेंगे, जो मूँगे, बीरबहूटी और सूर्य के समान लाल, चिकने और उत्तम होंगे। इसके बाद केश भी उग आवेंगे। तथा नील कमल, अलसी के फूल और वैदूर्य के समान चमड़ी भी उग आवेगी। १ महीने बाद बालों को मुँडवाकर ख़स, चंदन और काले तिल का तेल सिर पर लेपन करे। और पानी से छुड़ा ले। ७ दिन बाद भौंरे के समान काले, घुँघरवाले, चिकने बाल उत्पन्न होंगे। इसके तीसरे दिन तीसरे खंड से निकलकर दूसरे में आवे और थोड़ी देर बाद फिर वहीं चला जाय। और बला तेल की मालिश करावे। और जौ की पिट्ठी का उबटना करावे। राल के वृक्ष की छाल के काढ़े से स्नान करे। फिर ख़स डालकर कुएँ के पानी से नहाय, चंदन लगावे। आँवले का रस मिलाकर मूँग की दाल का जूस सेवन करे। दूध और मुलहठी डालकर काले तिल से अवचारन करे। इस तरह १० दिन करके फिर तीसरे घेरे में आवे, थोड़ी देर धूप और हवा में भी जाय। और फिर भीतर घुस जाय। दर्पण में अपना मुख न देखे। फिर दस दिन तक क्रोधादि न करे।"

"जो बुद्धिमान् सोम को सेवन करता है, वह १० हज़ार वर्ष की नवीन आयु प्राप्त करता है। अग्नि, जल, विष, शस्त्र, अस्त्र उसकी आयु को नाश नहीं कर सकते। उसके शरीर में सैकड़ों मदमाते हाथियों का बल हो जाता है। वह मनुष्य सर्वत्र जा आ सकता है। वह रूप में कामदेव और कांति में चंद्रमा के समान हो जाता है। सांगोपांग वेदों को जानता है। उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं, वह देवता के समान रहता है।"

"सब प्रकार के सोम में पंद्रह पत्ते रहते हैं। वे शुक्ल पक्ष में गिर जाया करते हैं। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से नित्य चंद्रमा की कला के साथ एक-एक पत्ता उगता है। और पूर्ण-

मासी तक पूरे पद्रह पत्ते हो जाते हैं। फिर कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से चंद्रमा की कला के साथ एक-एक पत्ता क्षीण होने लगता है। और अमावस्या को केवल लता ही रह जाती है। इसीलिये इसका नाम सोमलता पड़ा है, क्योंकि सोम चद्रमा को कहते हैं।

सोम कई जाति का होता है। अंशुमान-नामक सोम में घी के समान सुगंध आती है। रजतप्रभ कद की आकृति का होता है। मुंजवान में केले के आकार का कंद और लह-सन के समान पत्ते होते है। चंद्रमा-नामक सोम स्वर्ण के समान चमकीला और जल में उत्पन्न होता है। गरुड़त और श्वेताक्ष ये दोनो पाडु वर्ण होते है। और साँप की केंचुली की भाँति वृक्ष के अग्र भाग पर लटके रहते है। और उसमें रग-बिरगे मडल भी होते हैं। संपूर्ण प्रकार के सोम मे पद्रह पत्ते होते है। इनमें दूध, कद और लता होती है। परंतु पत्तो की आकृति अलग-अलग होती है।"

"यह सोम हिमालय, आबू, सह्याद्रि महेंद्राचल, मलयागिरि, श्रीपर्वत, देवगिरि, देवसह, पारिपात्र, विंध्याचल, सुंद तालाब मे, व्यास नदी के उत्तर के पर्वतो में तथा उस स्थान पर जहाँ पजाब को पाँचो नदी सिधु मे गिरती हैं, वहाँ चंद्रमा-नामक सोम उत्पन्न होता है। और उन्हीं के पास अंशुमान और मुजवान सोम भी होता है। काश्मीर के उत्तर में मानसरोवर झील है, वहाँ गायत्री, त्रिष्टुभ, पांक्त, जागत और शाकर तथा अन्य प्रकार के सोम भी उत्पन्न होते है।"

(सु० अ० ३०)

सुश्रुताचार्य सोम के सिवा और भी वनस्पतियों का वर्णन करते हैं, जिनमें जरा-मृत्यु को दूर करने की शक्ति है। ये औषध इस प्रकार है—

"१—अजगरी—जो पीले (कपिल) रंग के चित्र-विचित्र चक्रो से युक्त साँप की आभा के समान पाँच पत्तेवाली होती है, और पाँच हाथ लबी होती है।

२—श्वेतकापोती—बिना पत्तेवाली, स्वर्ण के समान पीली, जड में दो अंगुल मोटी, सर्प के समान आकारवाली जिसका सिरा लाल होता है। छत्रा-अतिछत्रा की भी आकृति ऐसी ही होती है। पर यह कद है।

३—गोनसी—इसमें दो पत्ते होते है, जो ज में ही होते हैं। इसमें लाल-काले गोले होते हैं। लंबाई दो हाथ और आकृति गौ की नाक के समान होती है।

४—कृष्णकापोती—जिसमें से दूध निकलता है। उस पर छोटे-छोटे रोएँ होते हैं। वह कोमल होती है।

५—वाराही—इसमें एक पत्ता होता है, जिसकी आकृति काले साँप के समान होती है। यह कद है, और सुर्मे के समान इसकी काँति है।

६—कन्या—इसमें चमकदार मोरपख की-जैसी चमकवाले १२ पत्ते होते हैं। यह कद है, जिसमें दूध निकलता है।

७—करेणु - यह हाथी के समान आकृति में होता है। इसमें दूध बहुत होता है। नाक और हाथी-कर्ण के समान दो पत्ते इसमें होते हैं।

८—अजा—यह कंद बकरी के थन के समान होता है। इसमें दूध बहुत होता है। यह क्षुप जाति का वृक्ष हैं। यह दवा शंख के समान सफ़ेद होती है।

९—चक्रका—इसका रंग सफ़ेद तथा चित्र-विचित्र फूलों से युक्त होता है। यह क्षुप है।

१०—आदित्यपर्णी—इसकी जड़ होती है और ५ पत्ते निकलते है, जो सूर्य की किरणों के समान लाल और कोमल होते है। इसका मुख सदा सूर्य की ओर घूमा रहता है।

११—ब्रह्मसुवर्चला—इसमें स्वर्ण के समान चमक होती है। यह जल के किनारे-किनारे चारो ओर फैलती है। इसमें दूध भी होता है। यह नील कमल के समान होती है।

१२—श्रावणी-महाश्रावणी—यह वृक्ष मुट्ठी बाँधे हुए हाथ के समान लंबा क्षुप जाति का तथा दो अंगुल लंबा होता है। इसमें नील कमल के समान फूल आते और सुरमे के रंग के फल लगते है। यह महाश्रावणी स्वर्ण के समान पीली दूधवाली श्रावणी है।

१३—गोलोमी-अजलोमी—ये गौ और बकरे के समान बालो से युक्त कंद होते हैं।

१४—महावेगवती—इसके पत्ते हंस के पैरों की आकृति के कटे हुए होते हैं। और जड़ से ही निकलते हैं। यह सब तरह शंखपुष्पी के समान होती है। यह बड़े वेग से बढ़ती है, और इसमें साँप की केंचली के समान चमक होती है। वर्षा के समान होने पर उगती है।"

इनके उत्पत्ति-स्थान

"जल के बीच तथा किनारे पर ब्रह्मसुवर्चला होती है। आदित्यवर्णी वसंत-ऋतु में होती है। अजगरी सदैव होती है। गोनसी वर्षा के अंत में होती है। ये सब वनस्पति सिंधुनद और देवसुंद (?) के उत्तरी प्रांत में प्रायः मिलती हैं। करेणु, छत्रा, अतिछत्रा, कन्या, गोलोमी और महाश्रावणी काश्मीर के उत्तर मानसरोवर के निकट होती है। कौशिकी नदी के पार संजयंती (?) के पूर्व १२ कोस का एक मैदान है। उसमें असंख्य सर्पों की बाँबी हैं, उन्हीं बाँबियों के ऊपर श्वेतकापोती होती है। मलयागिरि और रामेश्वर सेतुबंध के पास सेतु के किनारे पर वेगवती होती है। सोम (हिमालय?) और अर्बुद (आबू)-गिरि पर ढूँढने से मिल जाती है। जिन शृंगों के नीचे बादल रहे आते हैं।

इन औषधियों में जो भी प्राप्त हो, उनके रस का सेवन प्रथम उपवास करके और शरीर को शुद्ध करके कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन करे, और सोम-विधान में जिन-जिन रीतियों और उपचारों का वर्णन है, वे सभी करे। प्रथम ही से सब साधन एकत्र कर ले, तो सोम के ही समान फल प्राप्त हो सकता है।"

"अविश्वासी, आलसी, दरिद्री, प्रमादी, लापरवाही, व्यसनी, जिसे कोई नशे आदि की लत हो, पापी, संशयात्मा इन औषधों का सेवन न करें।"

"वे औषध जिनमें दूध हो, ८ तोले दूध पीवे। जिनमें दूध न हो, जड़ हो, उनकी जड़ के उँगली बराबर तीन टुकड़े करके खाय। श्वेतकापोती को जड़-पत्तों-सहित खाय। गोनसी, अजगरी, कृष्णकापोती इनके मुट्ठी-भर टुकड़े दूध में पकाकर छान ले, तब खाय। ब्रह्म-सुवर्चला का सेवन ७ दिन तक करे।"

"जो कोई इन औषधों का सेवन करेगा, वह महामेधावी, तरुण, सिंह के समान बली और अति सुंदर हो जायगा। उसकी आयु भी सैकड़ों वर्ष बढ़ जायगी, और उसे आकाश-गमन-विद्या भी सिद्ध होगी।" (सु० अ० ३०)

सोम तथा अन्य रसायन-प्रयोग भी ऐसे हैं, जिन पर लोगों को बहुत कम विश्वास हो सकता है। इसमें संदेह नहीं कि इनके गुणों का वर्णन अत्युक्ति-पूर्ण है, पर इन महौषधों का प्रभाव साधारण या व्यर्थ नहीं। यदि कोई साहसी, धनी पुरुष रोग और वृद्धावस्था को दूर करने के लिये रसायन-प्रयोग कराना चाहें, तो वे हमसे पत्र-व्यवहार करें।— (ग्रंथकार)

अध्याय अट्ठाईसवाँ

गृह-निर्माण-कला

प्रकरण १

विचारने योग्य बातें

जमाना आनेवाला है कि पिछले अंधकार के समय के सब नगर और गाँव उजाड़ दिए जायँगे। और उनकी जगह नए नगर, ग्राम स्वास्थ्य और वैज्ञानिक नियमों के आधार पर बनाए जायँगे। जिनमें बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष और पशुओं तक के लिये आनंद, विहार, शिक्षा और स्वास्थ्य के साधन उपस्थित होंगे।

वर्तमान नगर, कस्बे और गाँव सभी रोगों के घर बने हुए हैं। गलियाँ अँधेरी, गंदी और गीली। मकान अँधेरे, तंग और मक्खी, मच्छर, खटमल, पिस्सू और चूहों से परिपूर्ण। कपड़े-लत्ते गंदे और मैले। खाने, पीने, सोने, रहने का ढंग वाहियात। ऐसी दशा में यदि हैज़ा, प्लेग, महामारी सदैव के लिये भारतवर्ष में बस जायँ, तो क्या आश्चर्य है।

नागरिकता के ख़तरे

ज्यों-ज्यों बड़े-बड़े नगर बस रहे हैं, त्यों-त्यों वे मनुष्यों के स्वास्थ्य, पवित्रता और जीवन के लिये ख़तरनाक हो रहे हैं। बंबई, कलकत्ता आदि बड़े नगरों में रहनेवाले ग़रीब-अमीर प्रत्येक का जीवन और सदाचार ख़तरे में रहता है। बड़े-बड़े अमीर व्यापारी लोग जिनके द्वार पर सदैव ४-५ मोटरें खड़ी रहती हैं, व्यवसाय-चिंता के मारे न ठीक-ठीक भोजन कर पाते हैं, न अच्छी तरह सो पाते हैं। प्राय उन्हें बवासीर, मंदाग्नि, अम्लपित्त, श्वास, अनिद्रा और हृद्रोग हो जाते हैं। बड़े-बड़े नगरों के श्रीमंतों में बहुत कम लोग ६० वर्ष की आयु तक पहुँचते हैं। उनके मस्तिष्क और शरीर के ज्ञान-तंतु रात-दिन प्रतिक्षण कार्य करते रहते हैं। बंबई में प्राय. मंदाग्नि और संग्रहणी देखी जाती है। अवश्य वहाँ का दूषित जल-वायु इस का कारण है, परंतु व्यवसाय-चिंता कहीं अधिक कारण है, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं।

यह रही अमीरों की बात, अब ग़रीबों की बात सुनिए। ग़रीब लोग बड़े नगरों में स्वच्छ वायु, प्रकाश और पुष्टिकर अन्न तो पा ही नहीं सकते। ख़ासकर बंबई में तो निश्चय नहीं पा सकते। उन लोगों को या तो अमीर की चाकरी में सदैव उनके निकट रहना पड़ता है, और या उनकी ऐसी नौकरी होती है कि वे अमीर मुहल्लों से दूर रह ही नहीं सकते। जैसे तार

और पोस्ट के चपरासी, जिन्हें दिन-भर में ८-१० बार ६-६, ७-७ ऊँची मंज़िलों में ऐसी मुस्तैदी से तार-चिट्ठी बाँटनी पडती हैं कि यदि कुछ मिनटों की देरी हो जाय, तो भी रिपोर्ट होने का भय रहता है। लाचार वे अपनी तुच्छ तनख़्वाह के अनुसार ही अमीरों के महलों के पीछे नीचे सडे-गन्दे स्थानों में गुज़र करते हैं। सडी-गन्दी तरकारी और सड़े अन्न खाते हैं। बंबई मे हमने आँखों से देखा है कि पूर्वी जिलों के कहार आदि जो वहाँ २०), २५) की नौकरी की लालसा मे बर्तन माँजने आदि का काम करते हैं, २०-२५ आदमी मिलकर १०)-१५) की एक कोठरी किराए को ले लेते हैं। यह कोठरी इतनी छोटी होती है कि उसमें १० आदमी बराबर-बराबर भी नही सो सकते। निदान कुछ आदमी सोते रहते हैं, कुछ प्रतीक्षा में बाहर बैठे हुक्का पीते रहते हैं। आधा समय होने पर वे उन्हें जगाकर स्वयं सो जाते हैं।

स्त्रियाँ ग़रीब और अमीर, जो पर्दे में रहती हैं, सब भारी दुर्दशा में हैं। उन्हें धूप और स्वच्छ वायु स्वप्न में भी नहीं मिलती। बेचारी दुर्गंधित, अँधेरी कोठरी मे सडती-मरती रहती हैं। स्त्रियों का यह निराश जन्म कैदी जीवन अत्यंत करुण और त्रासदायक है।

पुराने घिचपिच शहरों की तरह इस नवीन सुंदर शहर की बस्ती भी बहुत घिचपिच और अस्वास्थ्यकर है। स्वच्छ वायु और प्रकाश वहाँ के मकानो में प्राय. नही पहुँचता। इस नगर की बहुत-सी गलियाँ २ से ५ फुट तक चौडी हैं। जिनके दोनो तरफ़ ४-५ मंज़िल मकान खडे हैं, तिस पर भी इन गलियों में दोनों तरफ के मकानवाले कूडा कचरा फेंकते रहते हैं। सड़ा अन्न का पानी भी यहाँ फेंका जाता है। फिर कैसे इन नारकीय घरों में बच्चे तंदुरुस्त रह सकते है?

प्राय अन्य सभी बडे-बडे नगरों की दशा भी बंबई के समान है। तमाम भारत में जो बच्चों की करुण मृत्यु होती है, उनका मुख्य कारण गरीबी, अज्ञानता, अंधविश्वास, कूडा कर्कट, अयोग्य ख़ुराक, उत्तम सहायता का अभाव तथा ज़रूरी वस्तुओं की कमी आदि है।

बंबई में जो प्रदर्शिनी हुई थी, वह कलकत्ता, दिल्ली आदि नगरों में भी हुई। और चिल्ड्रेन्स वेलफ़ेअर कमेटी बराबर बच्चों की मृत्यु के कारणों को खोजने और दूर करने का प्रयत्न कर रही है। परंतु मैं समझता हूँ कि बच्चों की मृत्यु का एक भारी कारण और है, जिस पर पूरा-पूरा गौर नहीं किया गया है, वह है कच्ची उम्र और कच्चे वीर्य के निस्तेज दुर्बल, रोगी स्त्री-पुरुषों का स्वच्छंदता से संतान उत्पन्न करना। समाज और कानून दोनो ही को कडाई से इस महत्त्व-पूर्ण विषय पर अपना ध्यान आकर्षित करना चाहिए।

वायु

साधारणतया हम समझते हैं कि अन्न और जल हमारा मुख्य भोजन है। परंतु वास्तव में हमारा मुख्य भोजन वायु है। हम अनेक पुरुषों को देखते हैं कि वे अन्न-जल की शुद्धता का बड़ा ध्यान रखते हैं, परंतु वायु की शुद्धता का न उन्हें ध्यान होता है न ज्ञान। हम

प्रतिदिन अधिक-से-अधिक १॥ सेर अन्न और तीन-चार सेर जल खा-पी जाते हैं, परंतु वायु २०-२५ सेर खाए विना हमारी गुज़र नहीं हो सकती।

हमारे घरों में प्रायः खिड़की और रोशनदान नहीं होते। सर्दी के दिनों में एक-एक कोठरी में प्रायः ४-६ मनुष्य पास-पास सोते हैं। तिस पर भी वे मुँह पर रज़ाई डाल लेते हैं। इस गंदी, घृणित हवा में साँस लेने का उन्हें ज़रा भी मलाल नहीं। देहातों में जहाँ घर इक-मंज़िले रहते और खुलासा होते हैं, मोरी-नाबदान और कूड़े-कर्कट की ऐसी अवस्था रहती है कि गाँवों की आब-हवा शहरों से भी गई-बीती बनी रहती है, और शहरों ही की तरह गाँवों में भी हैज़ा-प्लेग और मलेरिया से महामारी फैला करती है। खेद है कि गाँवों की सफ़ाई की तरफ सरकार का ज़रा भी ध्यान नहीं गया है।

विलायत में ऐसी एक संस्था है, जो नगरों की वायु के परमाणुओं की परीक्षा किया करती है। वहाँ के कोचडेल नगर मे, जहाँ सबसे अधिक गंदी वायु है, १ वर्ष के भीतर एक वर्ग मील की वायु में २२४०० मन कोयले के परमाणु भरे हुए पाए गए थे। ये साँस के साथ जब मनुष्य के पेट और फेफड़ों में जायँगे, तब उसे किस तरह तंदुरस्त बने रहने देंगे? इसी प्रकार मैंचेस्टर में, जहाँ सर्वाधिक कारखाने हैं, जाँच करने से पता लगा है कि प्रत्येक मनुष्य वहाँ फ़ी घंटे २० अरब (?) कोयले के परमाणु हवा के साथ पी जाता है। बंबई के परेल मुहल्ले की सड़क, ज़मीन सदैव काली बनी रहती है। कारण मिल का धुआँ है। क्या वहाँ के मनुष्यों पर इसका असर न होता होगा? खेद है कि ग़रीब मज़ूरों का स्वास्थ्य इस क़दर ख़तरे में डालकर पूँजीपति अपने अगाध पेट के लिये सोना इकट्ठा कर रहे हैं।

बच्चों की मृत्यु

पिछले दिनों बंबई में बच्चों की प्रदर्शिनी हुई थी। उसमें मोटे-मोटे अक्षरों मे स्थान-स्थान पर यह छापकर काग़ज़ चिपका दिए गए थे कि (Bombay, the death city of children) बंबई बच्चों का मृत्यु-नगर है। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष कुल २० लाख बच्चे मर जाते हैं, जिनमें सिर्फ बंबई में १२ हज़ार बच्चे मरते हैं। बंबई का सुंदर शहर दुनिया-भर में बच्चों का मृत्यु-नगर प्रसिद्ध है।

सन् १९१८ में जीवित उत्पन्न हुए बच्चों की जो संख्या प्रकट हुई थी, वह इस प्रकार है—

बंबई इलाक़ा प्रति १००० में २६६ ९३, बंबई शहर ५९०·२०, करॉची २८० ००, पूना ज़िला ३३४ १८, अहमदनगर ३२२ १७, सोलापुर ३७७ २६, अहमदाबाद २८७ ०९।

सन् १९१९ में बंबई शहर के बच्चों की मृत्यु-संख्या प्रति हज़ार ६५२ ८४ थी। पृथ्वी में किसी नगर मे इतने बच्चे नहीं मरते। प्रति १० बच्चों में १ बच्चा मरता है। ऐसी भयंकर मृत्यु संख्या मेरी समझ में संसार की कोई जाति चुपचाप बैठकर नहीं देख सकती। जो अभागे बालक मृत्यु पाते हैं, वे निस्संदेह दुख से छूट जाते है, परंतु यह मृत्यु-संख्या अति

हृदय-द्रावक है। इनके सिवा जो बच्चे ज़िंदा बच जाते हैं, उनमें बहुत-से बचपन ही से अंधे, लँगड़े, लूले, दुबले-पतले होते हैं। जिनके जीवन-सुख-प्राप्ति के योग्य एकाध अंग प्रायः भग होते हैं। ऐसे हज़ारों अपाहिजों की भीड़ बड़े-बड़े नगरों की सड़कों और पटरियों पर देखने को मिलती है। ऐसे मनुष्यों से क्या हम एक मज़बूत, स्वतंत्र, स्वावलंबी, सुखी और संपन्न प्रजा के उत्पन्न होने की आशा कर सकते हैं ? वास्तव में सुख और उन्नति का मुख्य साधन आरोग्यता है।

बंबई-जैसे दर्शनीय नगर में बच्चों की इतनी अधिक मृत्यु होने का कारण क्या है ? सबसे बड़ा कारण मकानों की कमी है। जिन घरों में ये बच्चे जन्म लेते हैं, वे तंग, अँधेरे, मंज़िल-दर-मंज़िल, शुद्ध वायु से हीन। उनमें कुछ तो ऐसे हैं, जहाँ कोई अपने पशु भी बाँधना न चाहे।

बंबई नगर में सन् १९१९ में जीवित जन्मे हुए कुल बच्चों की संख्या २१७३२ थी, जिनमें १४४५२ बच्चे उन लोगों के थे, जिनका खाना-पीना, सोना सब एक ही कोठरी में होता है। अर्थात् जो सिर्फ एक ही कोठरी में सदा गुज़र करते हैं। इनमें से ११०८१ बच्चों की प्रथम वर्ष में मृत्यु हो गई ! हिसाब से ज्ञात हुआ कि एक कोठरी में निर्वाह करनेवालों के बच्चों की मृत्यु-संख्या फ़ी सैकड़ा ७६.७२, दो कोठरियों में रहनेवालों की ७२.४ और ४ अथवा इससे अधिक कमरेवालों के बच्चों की मृत्यु-संख्या २२.८ है।

बच्चों की मृत्यु के मूल-कारण

(१) बाल-विवाह। (२) वृद्ध-विवाह। (३) दरिद्रता। (४) उपेक्षा। (५) बुरे सामाजिक रीति-रस्म। (६) स्वास्थ्य-संबंधी रहन-सहन का उल्लंघन। (७) अस्वास्थ्यकर मकान। (८) छोटी अवस्था का गर्भ धारण। (९) अपढ़ और गंदी दाइयाँ। (१०) समय से पूर्व प्रसव। (११) संतान-निग्रह का अभाव। (१२) शिशुपालन की अयोग्यता। (१३) शुद्ध दूध का न मिलना। (१४) अच्छे जल की कमी। (१५) अंधविश्वास आदि आदि।

नवजात बच्चों की मृत्यु का कारण

१—पर्दा, जिसके कारण गर्भवती स्त्रियाँ स्वच्छ वायु में घूम-फिर नहीं सकतीं। २—दाइयाँ जो अपढ़, गंदी और लापरवाह होती हैं। ३—प्रसूता की सुश्रूषा का अभाव, जो घर की स्त्रियाँ कलह, अज्ञान और आलस्य-वश नहीं करतीं। ४—प्रसव के बाद बच्चे की रक्षा और पोषण एवं घर का सब भार माता पर आ पड़ता है। घर की और स्त्रियाँ बेफ़िक्र हो जाती हैं। ५—मूर्खता, जिससे रोगी होने पर गंडे तावीज़ों के उपचार कराए जाते हैं। ६—बच्चे नज़र से बचाने को गंदे और छिपाकर रक्खे जाते हैं। ७—समय से पूर्व ही उन्हें अन्न दे दिया जाता है। ८—बच्चों का उचित प्रबंध नहीं होता। ९—दाँत निकलने के समय सँभाल नहीं होती।

लोगों का अज्ञान

साधारणतया लोगो को स्वास्थ्य-संबंधी ज्ञान बहुत ही कम है। नगरों मे प्रायः वे लोग अधिक होते हैं, जो आजीविका के लिये अपने निजू निवासों को छोडकर आ बसते हैं। उनका ध्येय रुपया कमाना और बचाना होता है। वे प्रायः पेट काटकर रुपए जोडा करते हैं। उनकी आय भी बहुत कम होती है। वे किसी तरह जीवन-संग्राम में बढे चले जायँ, यही बहुत है। इसलिये ये लोग किसी भी हालत में स्वास्थ्य के नियमों का पालन नहीं कर सकते।

प्रायः लोगों को काम से छुट्टियाँ ठीक उस समय नही मिलतीं, जब कि उन्हें शौच, भोजन, विश्राम आदि की स्वाभाविक आवश्यकता होती है। वे अपनी नौकरी के सुभीते के अनुसार ही आदतें डाल लेते है।

यह बात सभी जानते है कि कोई भी मिल-मज़दूर देर तक स्वस्थ नही रह सकता। रुई और ऊन की मिलो में काम करनेवालों को प्रायः क्षय हो जाया करता है, क्योंकि उनके साँस के साथ ऊन या रुई की गर्द फेफडो में जाती है तथा शुद्ध वायु बहुत कम मिलती है। कस्बों में लोग स्वच्छता का ज़रा भी विचार नहीं करते। यद्यपि बडे-बडे शहरों की अपेक्षा वे आसानी से ऐसा कर सकते हैं।

उनके घरो में देखिए। जूठन, छिलके, फूस, कूडा-कर्कट, पानी आदि इधर-उधर बिखरा मिलेगा। खाद्य पदार्थ जहाँ-तहाँ उवडे पड़े मिलेंगे। उन पर मक्खियाँ भिनभिनाती पाई जायँगी। कीडे-मकोडे, चूहे उन पर रेंगते, मल-मूत्र त्यागते मिलेंगे। मोरियों और टट्टियो की दुर्गंध से सारा घर सडता हुआ मालूम देगा। बच्चे चाहे जिस स्थान पर पेशाब कर देंगे। उनके टट्टी फिरने का भी कुछ ठिकाना नही, चाहे भी जहाँ फिर दे। वह घंटो वैसे ही पडी भी रहती है। सफ़ाई का यह हाल है कि बहुधा चुटकी-भर मिट्टी और थोडा सा पानी डालकर एक चिथडे से उस विष्ठा को वहीं लीप-सा दिया जाता है। सोने के कमरे के प्रायः सभी दर्वाज़े रात को बंद कर दिए जाते हैं। राजपूताने के शहरो में तो पेशाब का बर्तन सिरहाने रखने का रिवाज है। सोनेवाले रात-भर उसमे पेशाब करते रहते हैं। और प्रातःकाल सडक पर फेंक देते है। आप सोच सकते है कि बंद मकान में पेशाब से भरे बर्तन को लेकर सोना कितना भयंकर है।

घर में चाहे जहाँ थूक देने, या नाक पोंछ देने की बात तो बुरी समझी ही नहीं जाती। तंबाकू-पान खानेवालों की दीवारें तो अत्यंत घिनौने ढंग से रँगी रहती हैं।

जो धनी लोग किराए के लिये मकान बनाते है, उन्हें स्वास्थ्य की ज़रा भी परवा नहीं रहती। वे तो अधिक-से-अधिक किराया वसूल करना चाहते हैं। जिनके अच्छे मकान भी है, वे स्वच्छ वायु और प्रकाश की ज़रा भी परवा नही करते। प्रायः वायु के झरोखो में कपडे ठूँस दिए जाते है।

भोजन के सबंध में और भी बेढब बातें हैं। एक तो वे समय पर उत्तम ताज़ा भोजन करने के अभ्यासी नहो। दूसरे, प्रायः मिठाइयो के बड़े शौकीन होते हैं, जो बहुधा गंदी, बासी और कीटाणु-युक्त होती हैं। व बहुधा अधिक खा ली जाती है। दावतों आदि में तो अस्वाभाविक भोजनो की पूरी भरमार रहती है।

पीने के पानी की मटकी महीनो नहीं बदली जाती, और पानी छानना जरूरी ही नही समझा जाता। छानने का कपडा न बदला जाता है, न धोया जाता है।

यह हुई घरो की दशा। अब घर के बाहर की गली कूचो को देखिए। जहाँ एक क्षण-भर के लिये निकलना भी असह्य हो जाता है। गाँवो के गदे मकान, बेहूदी गलियाँ, द्वार पर घूरे और कूडा-कर्कट क्या ये साधारण बातें है? यही कारण है कि भारतवर्ष में मृत्यु नंगा नाच नाच रही है।

पाख़ाने

शहरों और कस्बों में पाख़ानों की दशा बहुत ही ख़राब होती है। दिल्ली-जैसे शहरों में प्राय दहलीज में पाख़ाने होते हैं। वे अत्यत गदे और अँधेरे होते है। सफ़ाई का उनमें कोई बंदोबस्त ही नहीं होता। लाहौर में छतों पर अत्यंत गदे और बेहूदे पाख़ाने हैं। कस्बों में प्राय कच्चे पाख़ाने होते हैं, और उनकी मोरियो में हमेशा कीडे चलते-फिरते रहते हैं! बहुत-से कस्बो मे पाखानो के साथ चहबच्चे लगे होते हैं, जहाँ गंदा पानी जमा होता रहता है। इसे भंगी लापरवाही से साफ करता है। प्राय मल-मूत्र और सडे हुए अन्न आदि का पानी सडक पर फैला देता है, दिल्ली में भगिनें बहुधा मैला नालियों में बहा दिया करती हैं। इस मैले पानी को ढोने की गाडियाँ बडी गदो, टूटी और अपूर्ण होती हैं। उनमें से पानी टपक जाया करता है।

पाख़ानो की बदबू प्राय घर-भर में भरी रहती है। उनमे शौच के लिये कुछ समय तक बैठना फाँसी पर चढने के समान है। प्राय. टट्टियो में बाल्टियों की व्यवस्था नहीं होती। इसलिये उनमें से मल फैल-फैलकर बहुत दुर्गंध फैलाता है। भगियो को बहुत कम महीना दिया जाता है, और वे वैसा ही काम भी करते हैं। ये भंगी मुहल्लो के मालिक होते हैं, आप इन्हें बदल नहीं सकते। न इन पर म्युनिसिपैलिटी की सत्ता होती है। प्राय वे नाग़ा कर जाते हैं, वक्त बे वक्त आते हैं और टोकरे भर-भरकर मैला यों ही दोपहर तक गली के किसी स्थान पर एकत्रित रखते हैं।

सडकें और गलियाँ

सडको की सफ़ाई की ज़िम्मेदारी पुलिस और म्युनिसिपैलिटी पर है। पर देखा जाता है कि म्युनिसिपैलिटियाँ बडे-बडे नगरो की ख़ास-ख़ास सडकों को छोडकर प्रायः सफ़ाई के विषय में उदासीन रहती हैं। कस्बो में तो लोग चाहे जहाँ पेशाब करते हैं। यदि आप ख़ूब सुबह दिल्ली शहर की गलियों में चक्कर लगावें, तो आप जगह-जगह मल-मूत्र

बिखरा पावेंगे। बड़े-बड़े शहरों में स्थान स्थान पर पेशाब-घर नने है। पर उनको लोग बहुत कम परवा करते हैं। फिर वे इतने गंदे रहते हैं कि कोई भी भला आदमी वहाँ जाते घृणा करेगा। प्रायः सडकें और गलियाँ विना मरम्मत पडी रहती हैं, और उनमे स्थान-स्थान पर खड्डे पड जाते हैं। बरसात में तो इनकी दशा और भी वाहियात हो जाती है। रँगरेज़ और छीपे लोग सड़े हुए रंगों के पानी को और चावलों के माँड को यों ही सडक पर फेंक देते है, जिन पर बड़ी मक्खियाँ भिनभिनाया करती हैं। हलवाई लोग भी नालियों और सडको पर विना रोक-टोक मैले बर्तन कडाही, दूध-दही की जलन आदि डालते रहते हैं। गलियों में लोग विना संकोच घरों में से कूडा-कर्कट फेंकते रहते हैं।

पशु

घरों में काफी स्थान न होने पर भी लोग गाय, भैंस, घोडी घरों में रखते हैं। उन्हें उन्हीं तंग घरों में या सडक पर बाँध देते हैं। इसी प्रकार ठेला, गाडी, इक्का-ताँगा जहाँ चाहे खडा कर देते हैं। गोबर, लीद, मूत्र की ठीक सफाई नही कर सकते। और खूब मच्छर पैदा होते हैं। म्युनिसिपैलिटियाँ इन बातो पर कुछ विशेष ध्यान नहीं देतीं।

खोंचेवाले

फल और खोंचे बेचनेवाले सडकों की पटरियों पर रास्ता रोके दिन-भर बैठे रहते हैं। वे सडे-गले फलों को, जूठे पत्तों को और गंदी चीज़ें इधर-उधर यों ही फेंक दिया करते है, जो प्राय दिन-भर पडी सड़ा करती हैं।

नालियाँ

क़स्बों और नगरों में भी प्राय पानी निकालने को नालियाँ बनाई जाती हैं। परतु ये बिलकुल आधुनिक वैज्ञानिक नही होतीं। जब नल नहीं लगे थे, तब सभव है कि इनका ठीक उपयोग होता हो, जो बरसात के पानी को निकालने का हो सकता है। पर आजकल न वे ठीक-ठीक पानी को निकाल सकती हैं और न साफ़ ही रहती हैं। उनमें प्रायः सदा ही गदा पानी, कूडा-कर्कट रुकते-रुकते धीरे-धीरे बहा करता है। वे प्राय बेमरम्मत भी पडी रहती है, और उनका पानी धरती में भरता रहता है।

वाटरवर्क्स

लोगो में आम तौर पर यह विश्वास है कि नलों का पानी स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। लोग कुओ को अभी भी पसंद करते हैं। हम इसका कारण यह समझते हैं कि यद्यपि नलों में स्वच्छ पानी आने देने की व्यवस्था है, पर नलो की खराबी से लोगो को दूषित जल मिलता है। नलों की बहुधा मरम्मत नहीं होती। उनका लोहा गल जाता है, और लोहा घुलकर पानी में मिलकर आने लगता है। कुओ के विषय में हम बहुत कुछ लिख गए हैं। हम देखते हैं कि लोग कुओं की स्वच्छता का बहुत कम उपयोग करते हैं।

खाद्य पदार्थ

चाहे भी जिस कस्बे या शहर मे जाइए, खाद्य पदार्थों की कमी और उनका दूषित होना एक-सा पाया जायगा। लोग दरिद्रता के कारण सस्ती चीज़ें लेते है। दूकानदार ख़राब चीज़ें मिलाकर दर सस्ता करके वस्तु को बेचते है। सडे-गले अन्नों की बिक्री की कोई भी रोक नहीं होती। न सडी-गली मिठाइयाँ और फलो की बिक्री का जुर्म समझा जाता है। हलवाई स्वच्छता का प्राय. बिलकुल ख़याल नही करते वे तग और अँधेरी जगहों मे मिठाइयाँ बनाते हैं, और अत्यत भद्दे ढंग से उन्हे दिन-भर खुली रखकर बेचते हैं, जिन पर हज़ारों मक्खियाँ भिनभिनाती और खाती तथा मल-त्याग करती रहती है। दूध, खोआ, घी उत्तम और शुद्ध हो, इसकी ज़रा भी परवा नहीं की जाती, बल्कि वे गदा, सडा और सस्ता घी, गुड मिली ख़राब खाँड और दही, आटा तथा मैदा काम मे लाते हैं।

तरकारियाँ प्राय रात की बासी और सडी-गली ली जाती हैं। वे सडी मिठाइयों को भी फेंकते नहीं, सस्ती करके बेच देते हैं। दूध, दही, घी तो शुद्ध मिलना संभव ही नहीं है। दूध में गंदा पानी मिलाकर बेचना तो मानो साधारण-सी बात है। ये चीज़ें प्राय. ताज़ी भी नही होती। उनमें मक्खी-मच्छर, घास-फूस पडकर सड जाते है।

जब से वनस्पति घी का प्रचार हुआ है, तब से घी एक घृणास्पद वस्तु बन गया है। गाँव तक के लोग यह घी दूध मे मिलाकर चालाकी करते है। बाज़ार में प्राय धोखा देकर यही घी बेचा जाता है। टाटा कंपनी का कोकोजम भी गरीबों के घर में घर कर गया है।

मलाई और कुल्फी की बर्फ़ का रिवाज भी बहुत बढ़ गया है। पर इसके लिये बडे गंदे और मैले बर्तन काम में लाए जाते है। और प्राय· बर्फ़ खाने से हैजा होने का भय रहता है। सोडा लेमन और शर्बता का प्रचार जब से बढ़ा है, छूत के रोगो की भरमार हो रही है। रेस्टोरेंट आदि की सफ़ाई का ध्यान किसी को है ही नहीं।

धुआँ

सस्तेपन के ख़याल से लोग घरों में और हलवाई भी अब स्टीम कोल जलाते है। परंतु उनके धुएँ का कुछ प्रबध ही नही है। ये कोयले प्राय. अँगीठी में जलाए जाते है। यह धुआँ प्रात काल और संध्याकाल में बहुत ही हानिकर प्रभाव उत्पन्न करता है।

खाद-कूडा

क़स्बों, गाँवो और शहरों में भी खाद, कूडा, मैला नगर के बिल्कुल निकट कही भराव में डाला जाता रहता है। वह सडा करता और रोगो का मूल-कारण बनता है। देहातो और क़स्बो में तो इसकी ओर किसी का ध्यान भी नही जाता।

तंग गली और मकान

म्युनिसिपैलिटी के नियम के अनुसार मकानों और गलियों में काफ़ी प्रकाश, धूप

और हवा का आवागमन होना चाहिए। पर चाहे भी जिस शहर, नगर, कस्बे में आप जाएँ, तंग गली और अँधेरे मकानों की भरमार पावेंगे।

नए मकानों और गलियों का भी जो निर्माण होता है, उसमें भी बाहरी सुंदरता का भले ही ध्यान रक्खा जाय, पर हवा और प्रकाश का सीधा आवागमन प्रायः नहीं होता है। कस्बों और नगरों की गलियाँ धीरे-धीरे तंग होती जाती हैं। क्योंकि लोग जब-जब नए मकान बनवाते हैं, आगे को बढ़ते आते हैं। आम रास्तों की चौड़ाई की ओर बहुत कम आदमियों का ध्यान है।

सफ़ाई की आवश्यकता

साधारणतया प्रत्येक आदमी को रोज़ के इस्तेमाल के लिये ६ गेलन पानी अवश्य चाहिए। यह कम-से-कम पानी है, जो शरीर की सब आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। जहाँ नल नहीं है और कुओं से पानी लिया जाता है, वहाँ लोग कुछ किफ़ायत कर लेते हैं। परन्तु प्रायः नलों के द्वारा इतना पानी नगर के मनुष्यों को नहीं मिलता। खासकर गर्मी के दिनों में तो पानी का प्रवाह बहुत कम हो जाता है। जिनके घर में ½ इंच का नल है, उन्हें दिन में ४०-५० मटकी पानी मिल जाता है। परन्तु ऐसे घरों में प्रायः ८-१० आदमी रहते हैं।

म्युनिसिपैलिटियों का कर्तव्य

१ खाद्य पदार्थों की देख-रेख—म्युनिसिपैलिटी का यह प्रथम कर्तव्य होना चाहिए कि वह दूषित और खराब कोई चीज़ न बिकने दे। केवल वे ही चीज़ें बिक सकें, जो निश्चित नियमों के अनुकूल हों। उसे वस्तुओं के बनानेवालों और बेचनेवालों पर अपना पूरा अंकुश रखना चाहिए। जो लोग ग्राहकों को मिलावटी चीज़ें बेचें, उन्हें कानूनन् सज़ा दी जाय। खास-खास वस्तु बेचने के लिये लाइसेंस हों।

तैयार की हुई चीज़ मिठाई, पूड़ी आदि सफ़ाई से बनाई जायँ, उनमें आटा, मावा, मैदा, घी आदि शुद्ध और उचित लगाया जाय, तथा उन्हें बेचने के लिये ऐसे बर्तनों में रक्खा जाय, जो उन्हें दूषित न करें और उन पर मक्खी-मच्छर आदि कीटाणु न बैठें। इन पर बराबर मुआइने होते रहें। उन्हें वस्तुओं को सुरक्षित रखने तथा स्वच्छता से बनाने के सस्ते और सुविधा-पूर्ण ढंग बताए और उनके लाभ उन्हें समझाए जायँ।

फल और साग-भाजी बेचनेवालों पर भी ऐसी ही देख-रेख रहनी चाहिए। सड़ी-गली चीज़ें बेचनेवालों का चालान किया जाय। दूध की देख-भाल कड़ाई से प्रतिदिन हो। बल्कि दूध बेचने के लाइसेंस दिए जायँ। उनके निर्ख नियत हों, और दूध की जाँच बिना हुए वह न बिकने पावे। यह खुले बर्तनों में रखकर न बेचा जाय।

घृत किसी भी मिलावट का असली के नाम पर बेचना जुर्म समझा जाय। मलाई की बर्फ़वालों की भी काफ़ी देख-भाल की जाय। बर्फ़ बच्चे बहुतायत से खाते और रोगी पड़ते हैं। सोडावाटर आदि की बोतलें जिस इन्स्पेक्टर में हों, उसकी जाँच की जाय। सभी खाद्य

पदार्थ बेचनेवालों को लाइसेंस दिया जाय। उसकी फीस कुछ न हो, पर उनका नाम रजिस्टर्ड हो, और उन पर कमेटी का कंट्रोल हो।

होटल, ढाबे, रेस्टोरेंट और जल-पान के घर एवं खोंचेवालों में छूत, सफ़ाई आदि के नियमों का पालन कड़ाई से कराया जाय। घटिया रोटी आदि को दूकानों पर भी देखा जाय कि गरीब लोगों को सस्ते मूल्य में ख़राब, रोग-पूर्ण वस्तु तो नहीं दी जा रही है।

२ जल का प्रबंध—यद्यपि जो जल म्युनिसिपैलिटियाँ नलों के द्वारा सप्लाई करती हैं, शुद्ध किया जाता है, तथापि विशेषज्ञों द्वारा उसकी जाँच होते रहना बहुत आवश्यक है कि वह पीने के ठीक योग्य है भी या नहीं। साथ ही नलों की मरम्मत और तबादला भी उचित समय पर होना आवश्यक है।

नगर के तालाब और कुएँ भी जिनके जल का जनता उपयोग करती है, सावधानी से साफ़ कराए जाया करें। नदियों में नगर के निकट पानी छन्नों में छनकर आया करे। रँगरेज़ों, छीपों, धोबियों को नदी, तालाब और कुओं पर स्वेच्छा से कपड़े धोने आदि का प्रतिरोध किया जाना चाहिए। तथा ऐसे स्थानों को गंदा करनेवालों को दंड दिया जाना चाहिए। नलों का पानी नगर में प्रत्येक समय मिल सकना चाहिए। और उस पर मीटर लगा रहना चाहिए।

३. सफ़ाई की उन्नति—सफाई के प्रबंध आधुनिक वैज्ञानिक ढंग पर किए जाने चाहिए। और इसके लिये नगरवासियों को अधिक-से-अधिक सहयोग देना चाहिए। यदि मोरियाँ ही बनाई जायँ, तो वे गहरी न हों, ढालू हों। पाख़ानों में फ्लेश सिस्टम होना चाहिए। मोरियाँ और पाख़ाने ख़ास तौर पर साफ़ रखने की व्यवस्था हो। घरेलू भंगी हटा दिए जायँ और म्युनिसिपैलिटियों के भंगी नौकर रक्खे जायँ। इनका मासिक घरवालों को अधिक देना चाहिए।

सड़कों की सफाई का प्रबंध भी ढील से नहीं होना चाहिए। सड़क पर पेशाब करने और गंदगी फैलानेवालों का फ़ौरन् चालान किया जाना चाहिए।

बच्चों को जो लोग जहाँ-तहाँ बैठाकर पाख़ाने फिराते हैं, उन पर सख़्त नियम होना चाहिए। मक्खियों और मच्छरों के नाश के उपाय और उनसे उत्पन्न होनेवाले दोष लोगों पर प्रकट करने चाहिए। यह काम सेनिटरी इन्सपेक्टरों और जमादारों ही पर न छोड़ना चाहिए, प्रत्युत मुहल्ले-मुहल्ले में ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों की नियुक्ति की जानी चाहिए, जो इन बातों का ध्यान रक्खें और गली-कूचों की सफाई का प्रबंध देखते रहें।

सरकारी टट्टियाँ और पेशाब-घर ख़ूब साफ़ होने चाहिए। यह न समझना चाहिए कि ये गरीबों के लिये हैं। इनकी तादाद भी काफी होनी चाहिए।

रँगरेज़, छीपे, धोबी, ख़ोंचेवाले आदि ऐसे व्यवसायी, जो सड़कों पर गंदगी फेंकते हैं, उनके मकानों के सामने सरकारी पीपे या ढोल रक्खे जाने चाहिए। और उन्हें ख़ास तौर

में साफ कराने की व्यवस्था कमेटी को करनी चाहिए। इसके लिये उन पर व्यावसायिक कर (Professional Tax) लगा देना चाहिए। सड़कें नियमित समय पर दोनो समय साफ़ होनी चाहिए। और लोगो को सूचित कर दिया जाय कि वे यदि सड़क की सफाई करने के बाद अपने घरों या दूकानों की झाड़-बुहार करें, तो कूड़ा-कचरा सड़क पर न फेंकें। वे उन्हें ख़ास तौर पर रक्खे हुए पीपों में डालें।

यदि सड़कें साधारण हैं, तो उन पर दोनो समय छिड़काव होना चाहिए, जिससे धूल न उड़े। उनकी मरम्मत तो निरंतर होनी ही चाहिए। सड़कों पर गाड़ी, घोड़ा, इक्का आदि को चाहे जहाँ खड़ा कर देना या रास्ता रोककर दूकानदारों या ख़ोंचेवालों का बैठ जाना भी कड़ाई से रोकना चाहिए।

मोटरों के द्वारा सड़कें ज्यादा ख़राब होती हैं, और अधिक धूल उड़ती है, इसलिये मोटरों पर ख़ास टैक्स लगाया जाना चाहिए, और उसकी आय का उपयोग सड़कों पर पानी छिड़कने में होना चाहिए। गलियों की सफ़ाई का ध्यान और भी अधिक करना चाहिए। और नए मकानों को बनाने की आज्ञा देते समय यथासंभव गलियाँ चौड़ी कराने का बंदोबस्त सोचना चाहिए।

नए बननेवाले मकानों के नक़्शों पर कमेटी भली भाँति विचार करके ही उन्हे बनाने की इजाजत दे। वे ख़ूब हवादार, प्रकाशवाले और स्वच्छ होने चाहिए। इस बात का उनमे पूरा प्रबंध होना चाहिए कि उनमें खटमल, मक्खी, मच्छर, चूहे, कनखजूरे, सर्प आदि न उत्पन्न होने पावें। पाख़ानों, रसोईघरों और ग़ुसलख़ानों को ख़ूब प्रशस्त हवादार और उत्तम बनवाने की ओर मालिकों की रुचि बढ़ानी चाहिए। ख़ासकर किराए के लिये जो मकान बनाए जायँ, उनमें इस बात का प्रबंध रहना चाहिए कि कितने आदमियों के बीच एक पख़ाना, ग़ुसलख़ाना या रसोईघर हो, और कितने कमरेवाले मकानो में कितने आदमी रहें।

प्रचार--व्याख्यानों, पोस्टरों, हैंडबिलों, प्रदर्शन और पुस्तिकाओं के द्वारा जनता को स्वास्थ्य-संबंधी शिक्षा दी जाय। और उन्हें सार्वजनिक सफाई के लिये बाध्य किया जाय।

गवर्नमेंट क्या कर रही है

नगरों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिये सरकार ने इन दिनों कुछ कार्य किया है, वह इस प्रकार है—

१—नवीन सैनिटरी अफ़सरों की नियुक्ति।

२—रोगों के कारणों की जाँच की ओर ध्यान।

३—कोढ़, हैज़ा, प्लेग, पीतज्वर, मलेरिया आदि के कारणों को खोजने और नष्ट करने का प्रयत्न।

४—शहरों की सफ़ाई के लिये असाधारण रकम की स्वीकृति, जिसका ब्यौरा यह है—

संयुक्तप्रांत	२७५००००)
मद्रास	२७०००००)

बंबई	२७०००००)
बंगाल	२००००००)
पंजाब	१४५००००)
बर्मा	१०५००००)
मध्यप्रदेश	१०५००००)
बिहार और उड़ीसा	१००००००)
आसाम	३०००००)
सीमाप्रांत	२०००००)
दिल्लीप्रांत	५०००००)
मैसूर (बंगलौर के लिये)	४०००००)
(इंदौर रेज़ीडेंसी बाज़ार)	२०००००)
बिलूचिस्तान (क्वेटा के लिये)	५००००)
कुर्ग (मर्कारा के लिये)	२५०००)

कुल योग १६१०५०००)

५—इसके अतिरिक्त ४५ लाख रु० वार्षिक की रकम इस मद में ख़र्च करना सोचा गया है, जिसमें ६ लाख रु० की रक़म संयुक्तप्रांत को दी गई है।

इसमें से ५ लाख रु० तथा ख़ास तौर पर १० लाख रु० और अन्वेषण के कार्य में लगाए जायँगे।

१६११ से स्वास्थ्य-रक्षा का नवीन विभाग बना है, जिसमें सरकार ५ करोड़ के लगभग रक़म ख़र्च कर चुकी है। इस विभाग में डिपुटी सेनीटरी कमिश्नर २६, प्रथम श्रेणी के हेल्थ ऑफ़िसर ६०, द्वितीय श्रेणी के हेल्थ ऑफ़िसर ६२ हैं।

यह नवीन व्यवस्था सन् १६१२ से अमल में लाई जा रही है।

सरकार को क्या करना चाहिए

पाँच कार्य ऐसे हैं, जो अभी सरकार को और भी ध्यान से करने चाहिए—

१—सड़कों और गलियों की सफ़ाई। २—मकानों के पनालों और नालियों का संबंध शहर के बाहर जानेवाले बड़े नाले से करना, और ये नाले ज़मीन के अंदर होकर जाना। ३—तंग गलियों को चौड़ा करना। गंदे और छोटे मकानों को गिराना, नयों को वैज्ञानिक रीति से बनाना। ४— स्वच्छ जल-प्राप्ति का प्रबंध। ५—खाद्य पदार्थों में दूषित वस्तुओं की मिलावट रोकना, और शुद्ध रूप में सस्ते और उत्तम खाद्य मिलने का प्रबंध। जंगलों की सफ़ाई।

प्रकरण २

ख़ास बातें

मकान बनवाने में ५ ख़ास बातें हैं, जिनका वर्णन यहाँ हम करेंगे। १—रुख़, २—भूमि का चुनाव, ३—आवश्यक अंग, ४—ग्राम्य या नगर का मकान, ५—सजावट।
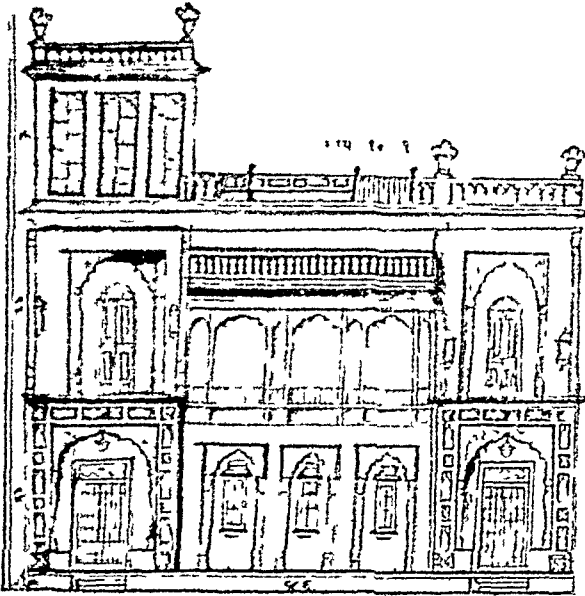
हिंदुस्तानी ढंग की दुमंजिली आरोग्य हवेली का बाहरी मुख

मकान के लिये सबसे अच्छा रुख़ पूर्व और उत्तर है। यदि दोनो दिशाएँ सामने हों, तो क्या कहना है। पर यदि मकान कोण में रुख़ देकर बनाया जाय, तो भी वह निर्दोष बन जाता है। सबसे बुरे मकान तो वे हैं, जिनका मुख दक्षिण को है। ऐसे मकानों को लोग अशुभ तो कहते ही हैं, साथ ही वहाँ ग्रीष्म-ऋतु में लगभग दिन-भर सीधी धूप बनी रहती है।

मकान ऐसी पृथ्वी में बनाना चाहिए जिसमें नमी न हो, और जो नशेब में न हो, जो नदी-तालाब आदि के सोतों से मुक्त हो। नमीवाले मकानो में स्वभावत. कई प्रकार के कीटाणु स्वयं ही उत्पन्न हो जाते हैं। जिस स्थान पर इधर-उधर की नालियाँ विना पक्के पुश्ते की हों, वह भी प्राय. नम और मकान बनाने के अयोग्य रहता है।

पहाड़ों की जल-वायु के उत्तम होने का कारण यही है कि वहाँ पथरीली ज़मीन होने के कारण नमी नहीं होती। यदि किसी कारण-वश नम ज़मीन पर ही मकान बनाना पड़े, तो उसे कंकरीट आदि कुटवाकर प्रथम ही से ऐसा बनवा लेना चाहिए कि उसमें नमी न रह जाय। प्रायः ज़मीन में नमी रहने के दो कारण होते हैं। एक जल उथला होने

मे, दूसरे वर्षा का जल भली भाँति न वहने से। जो स्थान पथरीले और ऊँचे होते है, वहाँ दोनो ही सुभीते होते हैं। पृथ्वी का जल भी नीचा होता और वर्षा का जल तुरंत ही वह जाता है। रेतीले स्थान भी नम नहीं होते। रेत पर से वर्षा का जल भली भाँति वह जाता है। सूर्य की किरणें रेत पर खूब समाती हैं। चिकनी मिट्टी में जल वहुत प्रवेश करता है, इसलिये ऐसे स्थान प्राय: नम ही रहते हैं।

पहली मंजिल का मानचित्र

नीचे स्थान सदैव ही नम होते हैं, क्योकि वहाँ वर्षा का जल भरता ही रहता है, वह पानी ऊँचा भी होता है, इसलिये ऐसे स्थानो पर मकान नही वनाना चाहिए।
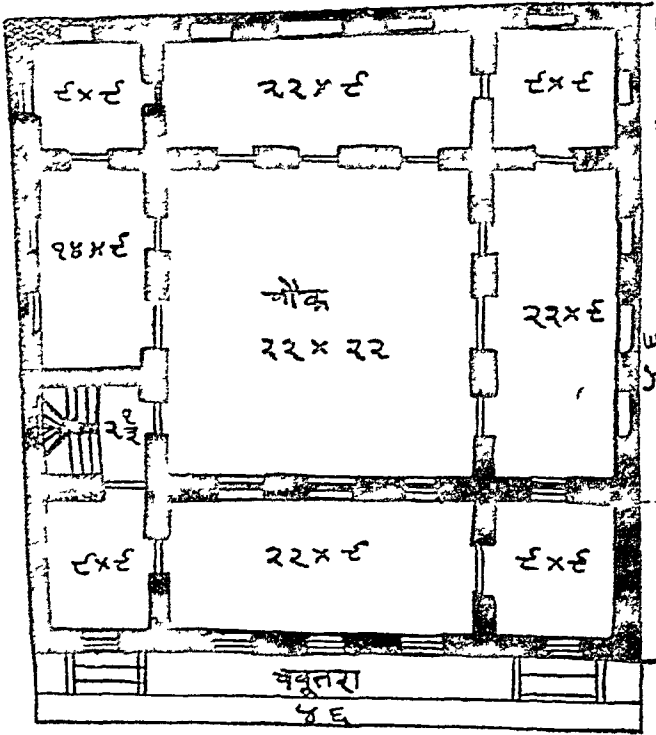
वहुधा शहरो में मकान वनाने के लिये स्वास्थ्य की अपेक्षा अन्य वातो का वहुत ध्यान रक्खा जाता है। कोई तो पडोस देखते हैं, और कोई विरादरी और व्यापार के सुभीते देखते हैं। प्राय. इन्हीं कारणों से गंदे और वाहियात स्थानो पर भी ज़मीन की काफी क़ीमतें होती हैं।

पृथ्वी के वे टुकडे जो गढ़ो को भरकर तैयार किए जाते हैं, मकान वनाने के योग्य नहीं होते, क्योंकि प्राय. उन्हें कूडा-कर्कट आदि से भरा जाता है। इसमें पृथ्वी और वर्षा की नमी के कारण वहुत-से रोग-जंतु और भयंकर रोगो के कारण जमा रहते है। यदि ऐसे स्थानो मे कुछ वनवाना हो, तो उचित है कि वर्ष-दो वर्ष इन स्थानो को वोया जाय। और फिर जव मकान वनाया जाय, तव फ़र्श वहुत पक्का और कुर्सी ऊँची रक्खी जाय। वायु, प्रकाश और इधर-उधर की सारी वातों का भी विचार रखना चाहिए।

मकान वनाने की यह पद्धति है कि एक के वाद दूसरा, दूसरे के वाद तीसरा, तीसरे के वाद चौथा वनाना वाहियात है। यदि चारो ओर नहीं तो आगे-पीछे मकान में अवश्य ही स्थान छोडना चाहिए। छतें कम से-कम ६ फ़ुट और अधिक-से-अधिक १५ फुट रहनी चाहिए। उठने-वैठने, खाने-पीने और सोने के कमरे पूर्व-उत्तर या उत्तर-पूर्व सुहाने होने

चाहिए, जिससे प्रातःकाल का सूर्य भली भाँति आ सके। ये मकान खूब ठंडे रहते हैं। नहाने-धोने और कपड़े धोने-सुखाने के कमरे पश्चिम-दक्षिण मुहाने होने चाहिए, जिससे उन्हें काफी धूप मिल सके। रोगियों के लिये पूर्व-दक्षिण मुहाना कमरा अच्छा है। दक्षिण-पश्चिम मुहाने कमरे सदा गर्म रहने चाहिए।

कच्ची दीवारें नमी को बहुत जल्द पकड़ती हैं, और अधिक बर्सात का मुकाबला नहीं कर सकतीं। बर्सात के बाद जब सूर्य की तेज़ धूप निकलती है, तो प्रायः गिर जाती है। नमी के कारण कीड़े, मकोड़े, बिच्छू, साँप, कानखजूरे उनमें उत्पन्न हो जाते हैं। यदि विवश दीवारें कच्ची ही बनानी हों, तो भी बाहरी दीवारें पक्की ही बनवानी चाहिए। ध्यान रहे कि बर्सात में १२ इंच तक दीवारें नम हो जाती हैं, इसलिये बाहरी दीवारें १८ इंच से कम न बनवानी चाहिए। छत का सबसे बड़ा दोष नमी को चूसना है। सबसे अच्छी छत तो लकड़ी की होती है। यदि नमी न हो, तो कच्चा फ़र्श भी बुरा नहीं। पर नमी हो, तो फर्श अवश्य पक्का होना ही चाहिए।
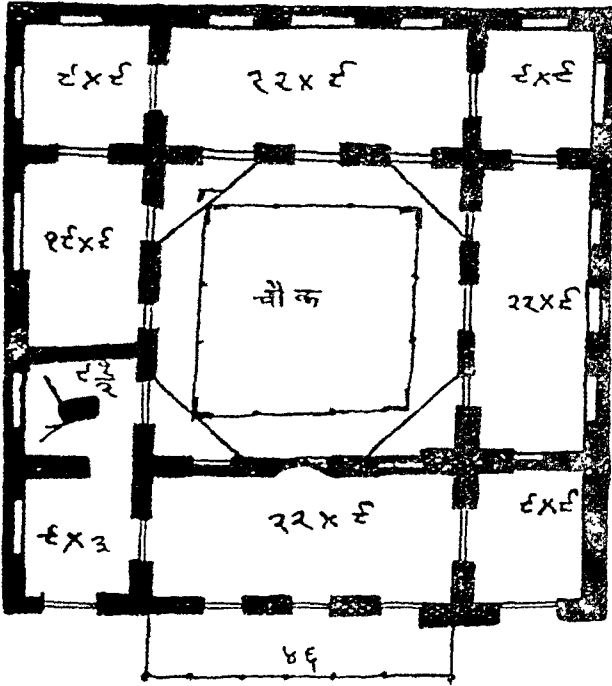
दूसरी मंजिल का मानचित्र

मकान की सफाई सफ़ेदी पुताई, यदि साधारण है, तो वर्ष में तीन बार होनी चाहिए, नहीं तो वर्ष में १ बार। स्नान करने, भोजन बनाने-खाने के कमरों और पाख़ानों में तो खास तौर पर अवश्य ही तीन बार सफ़ेदी होनी चाहिए। सोने और बैठने के कमरे दो बार सफेद किए जा सकते हैं। जिन कमरों में पानी पड़ता है, वे पत्थर, सीमेंट या टाइल्स के बने होने चाहिए। टाइल्स पर सर्दी-गर्मी, नमी किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ता, पर वे महँगी अवश्य होती हैं। यदि उनका फर्श हो, तो फिर कहना ही क्या है।

कमरे कम-से-कम ६ या १२ फुट ऊँचे रहने चाहिए। पेशाब-घर फ़िनाइल डालकर बराबर साफ़ होते रहना चाहिए। बच्चों को नियत स्थान और नियत समय पर ही मल मूत्र त्यागने की आदत डालनी चाहिए।

बंबई के एक कारख़ाने ने हिंदोस्तानी ढंग की एक टट्टी बनाई है, यह बहुत अच्छी चाल की है, एक लोटा जल ही से सारा मैला बहकर बाल्टी तक पहुँच जाता और पाख़ाने का स्थान बहुत साफ़ रहता है।

यदि यह असंभव हो कि टट्टियाँ तत्काल न साफ़ की जा सकें, तो फिर मैले पर राख
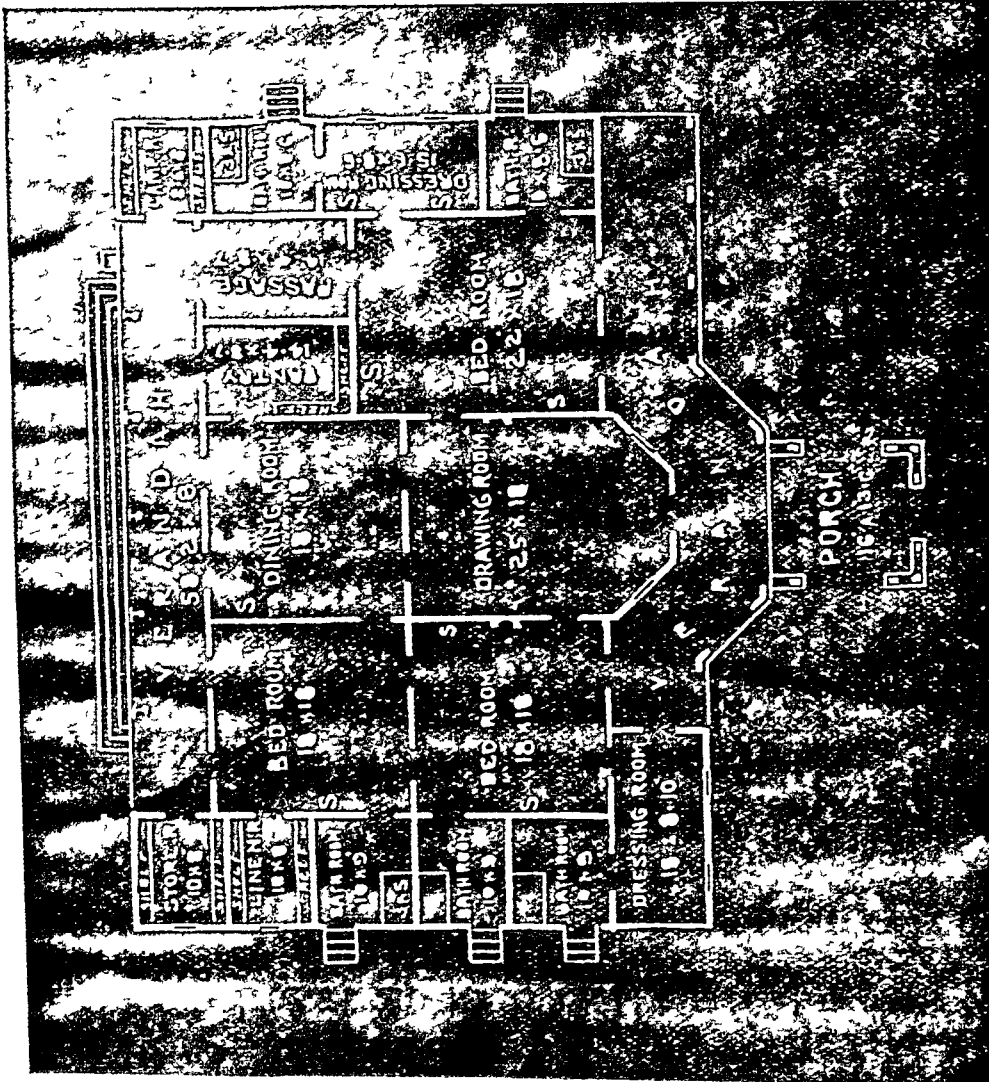
अँगरेज़ी ढंग का उत्तम बँगले का मानचित्र पहली मंज़िल

या मिट्टी डाल देना चाहिए। ख़ासकर गर्मी की ऋतु में, वरना मक्खियाँ यहीं अंडे देंगी। इनके अंडे देने का समय वैशाख है। लोगों का यह भ्रम है कि वे जौ की बालियों में से निकलती हैं, पर वे खेतों में जो मल त्याग किया जाता है, वहाँ पैदा होती हैं।

पशुओं के लिये पृथक् खुलासा मकान होने चाहिए। वे खूब खुले और हवादार होने ज़रूरी हैं। यदि रहने के घर के साथ ही पशुओं का भी रहना ज़रूरी हो, तो ऐसे स्थान पर
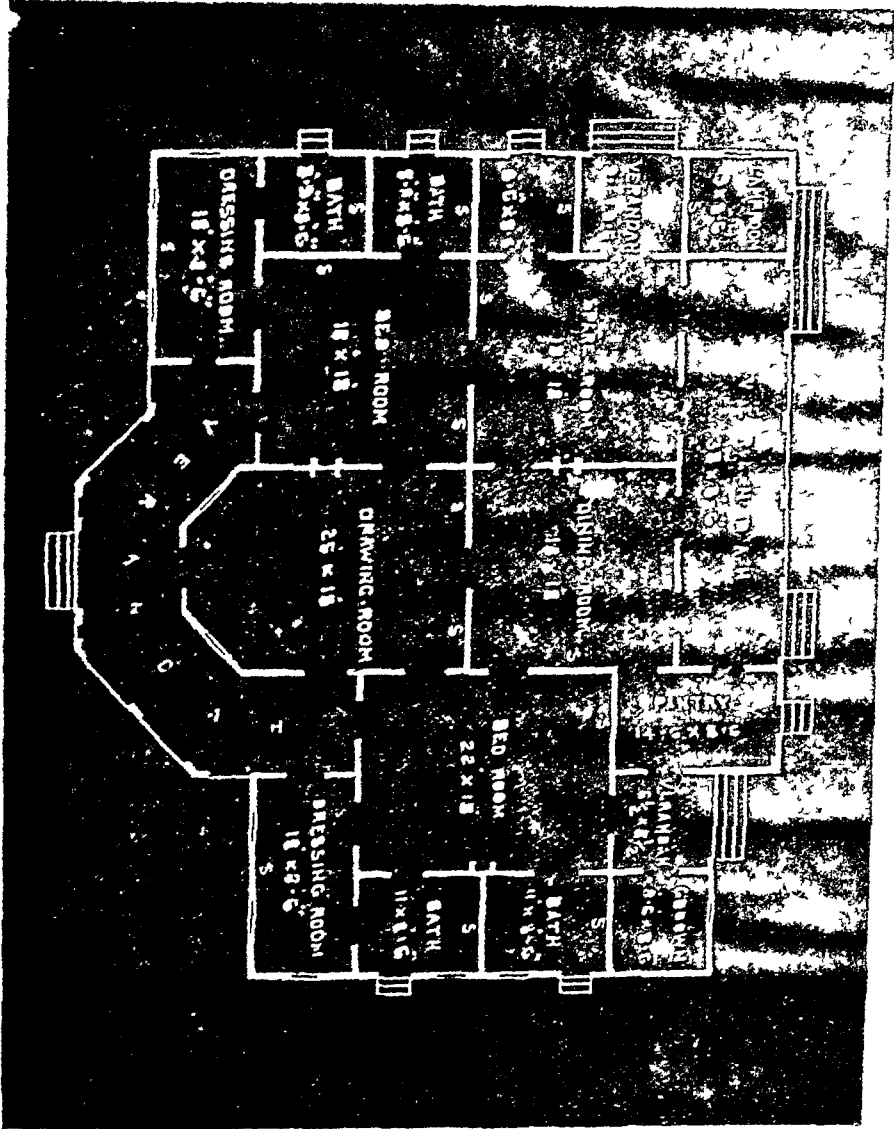
दूसरी मंज़िल का मानचित्र

रखना चाहिए कि वहाँ की हवा घर में न आवे। उनके मकानों का फ़र्श पक्का हो, और उन पर रेत डाल दिया जाय।

सजावट

मकान की सजावट के संबंध में लोगों की भिन्न-भिन्न रुचि है। पर यह बात आवश्यक है कि जो भी सामान तस्वीरें, पर्दे, फरनीचर आदि हो, वह यथासंभव कम और अत्यंत उत्तम श्रेणी
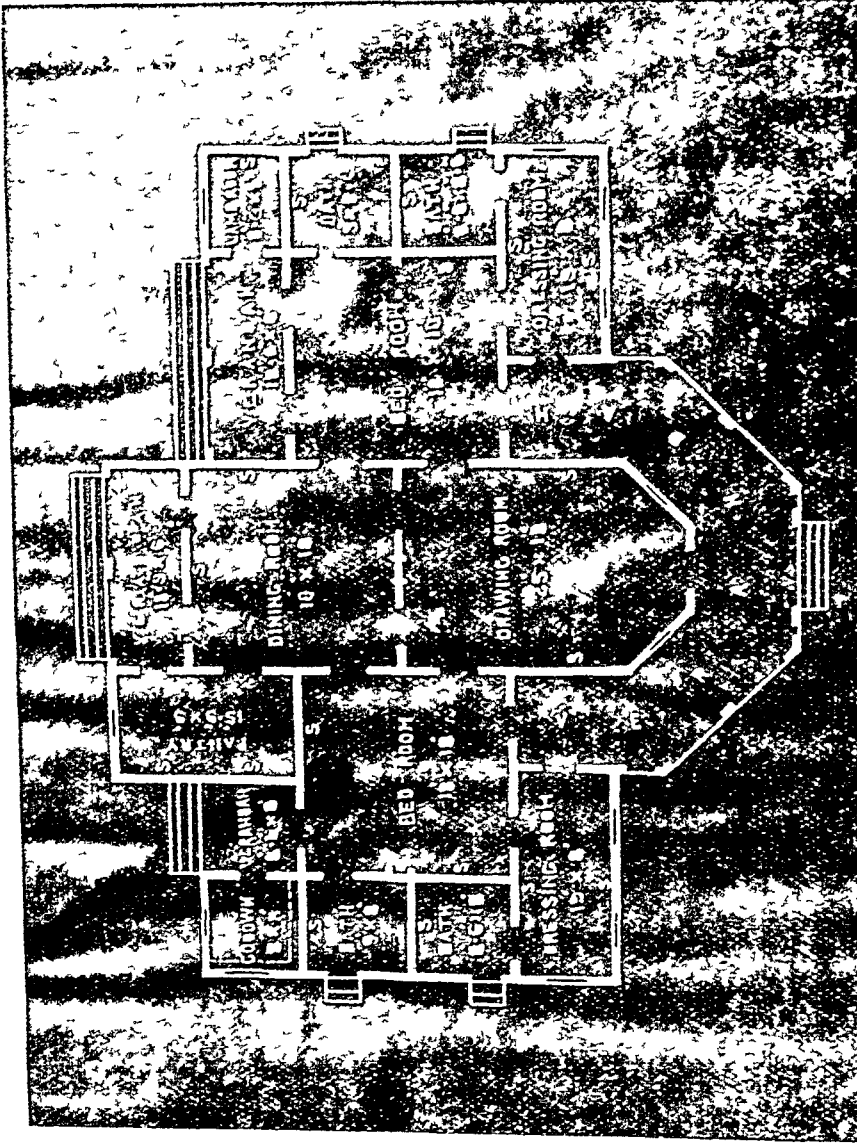
छोटे परिवार के योग्य एकमंजिला कोठी का मानचित्र

का हो। तस्वीरें कुरुचि उत्पन्न करनेवाली या घटिया न हों। वे बहुधा जंगलों और झरनों के दृश्यों की होनी चाहिए। या मनुष्य-स्वभाव के चित्रण की होनी चाहिए। हास्य-विनोद-संबंधी कुछ चित्र भी रक्खे जा सकते हैं। अपने और मित्रों के फोटो भी संग्रह होने अच्छे हैं।
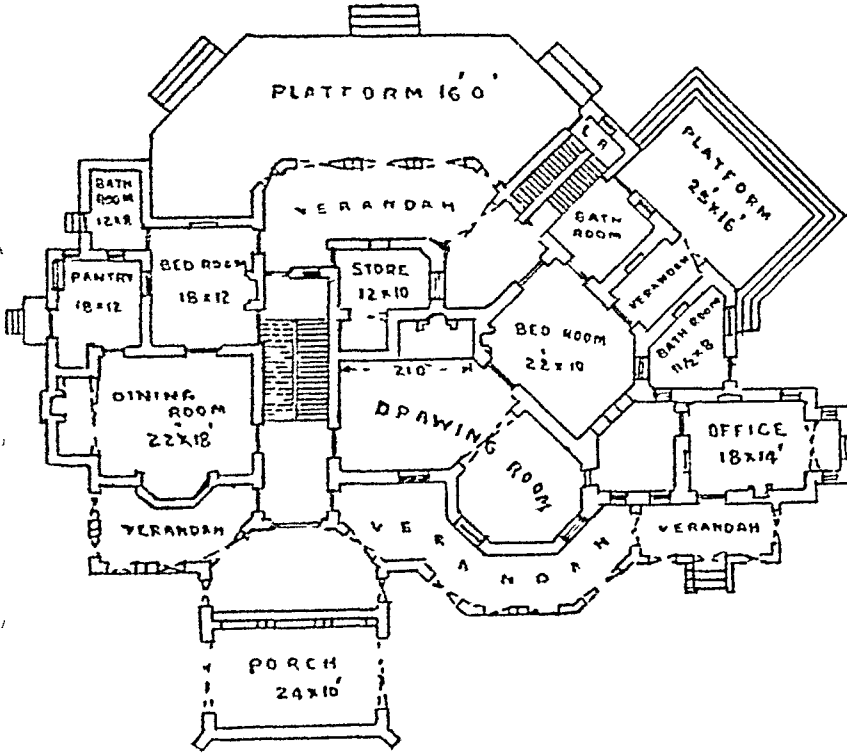
बगीचे मे बनाने योग्य कोठी का मानचित्र
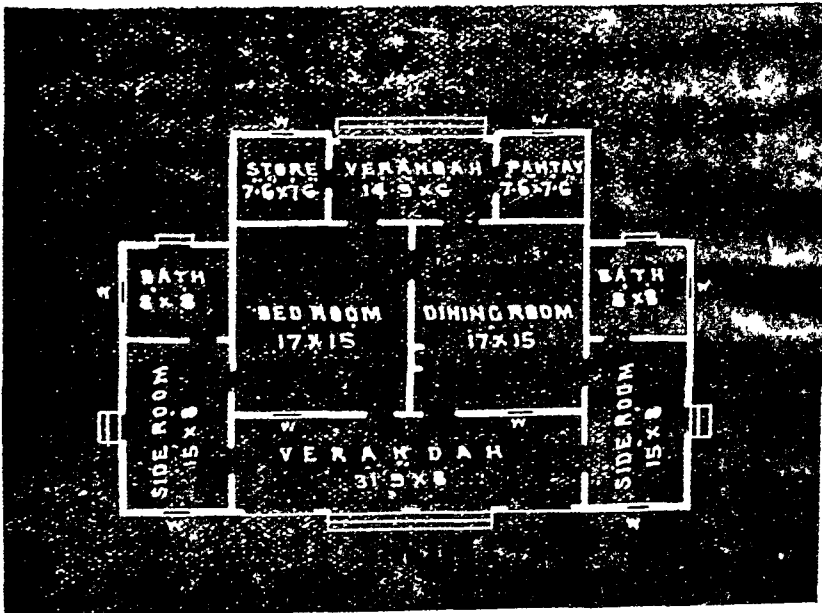
एक सादा छोटे बँगले का मानचित्र

फ़र्नीचर चमकदार पालिश किया हुआ हो। उसे साल में दो बार पालिश कराना चाहिए। वह गंदा और मैला न हो। टूटा-फूटा भी न हो। बरांडे में बेत की कुर्सियाँ, मूँढ़े आदि बहुत अच्छे होते हैं। सरकंडो के मूँढ़े भी बुरे नहीं। सीतलपाटी बहुत उत्तम
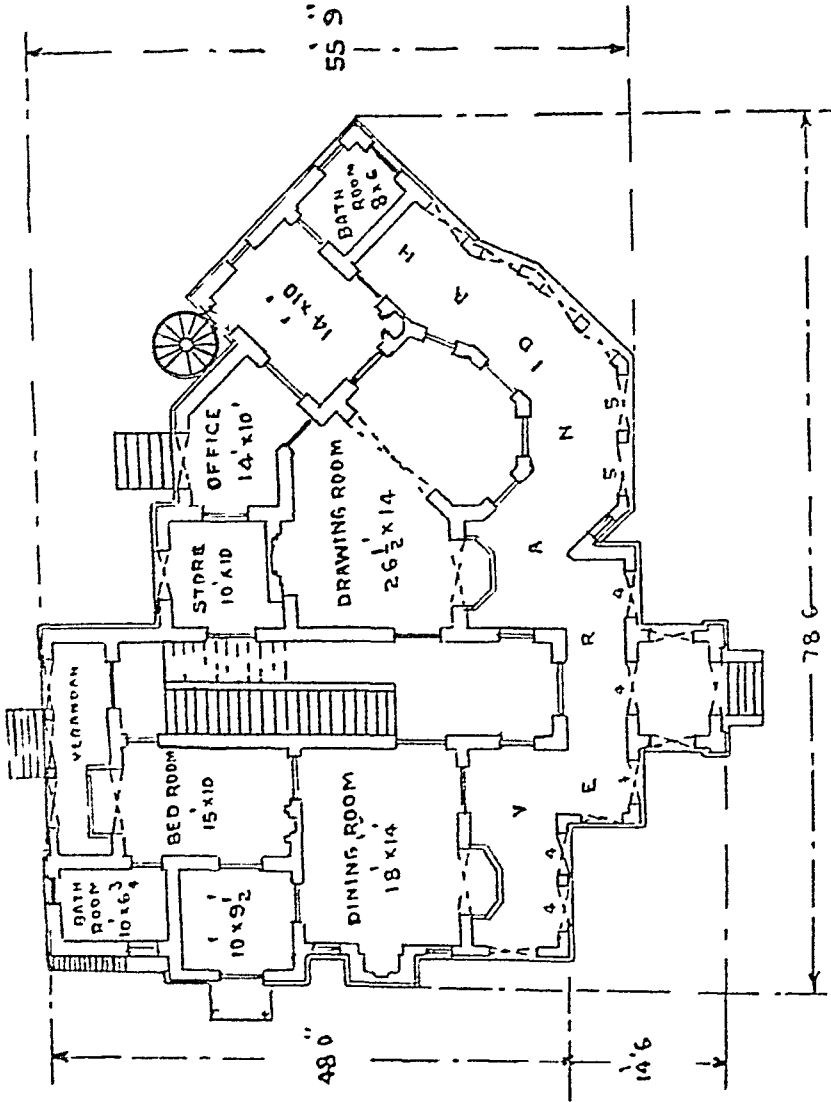
शहर के किनारे खुलासा जगह में बनाने योग्य कोठी का मानचित्र

फ़र्श है। दरी-कालीन उन्हीं मकानों में बिछाने चाहिए, जहाँ का फर्श ठीक न हो। यदि फ़र्श उत्तम है, तो कुछ न बिछाना ही सर्वोत्तम है। इससे धूल-गर्द नहीं जमती।

खिलौने और फ़ालतू चीज़ें आले दिवालों में भरे रखना ठीक नहीं है। यदि हो, तो बहुत कम और बढ़िया। और वे बराबर सावधानी से साफ़ होती रहनी चाहिए। पर्दे ऐसे हों, जो

धूल और धूप की चमक को रोके, पर हवा को बराबर आने दें। कोई चीज़ मैली और बे-तरतीब या बेमरम्मत न होनी चाहिए।
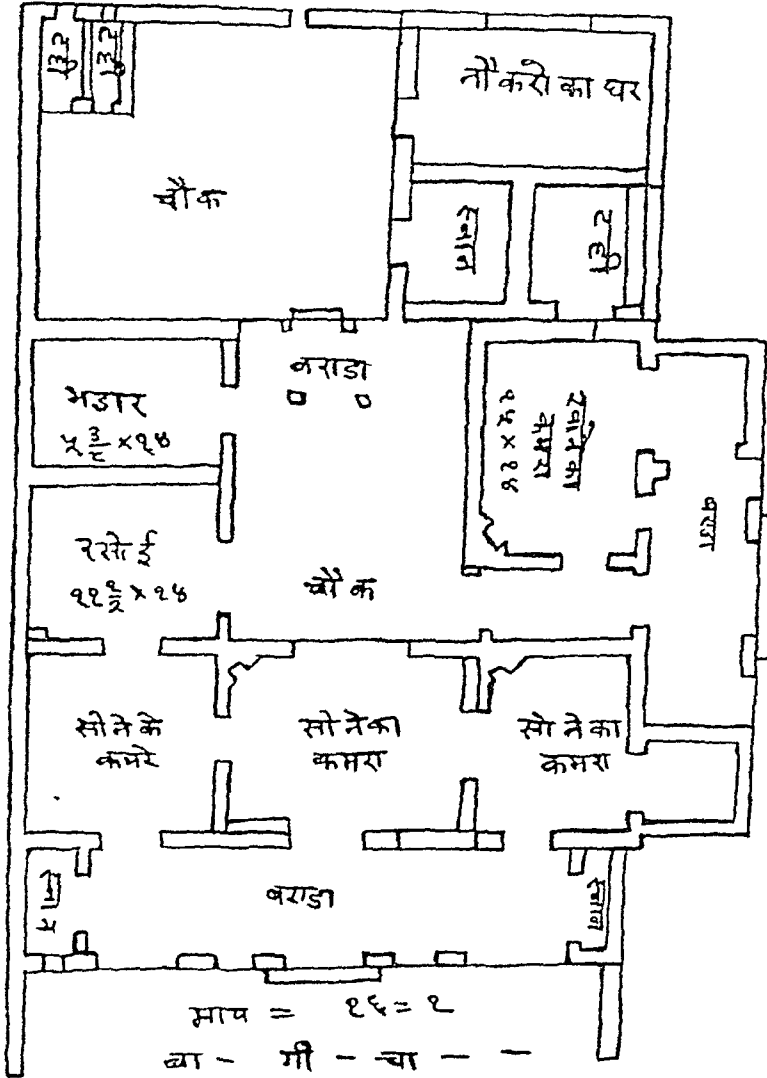
देहात में बनाने योग्य एकमंज़िल घर का मानचित्र

पलँग लोहे के हों, तो अच्छा है। इनमें खटमल घर नहीं करते, पर निवाड़ और मूँज के भी बुरे नहीं, इन्हें सदा धूप दिखाते रहना चाहिए। पलँग की चादरें और तकियों की खोलियाँ सप्ताह में दो बार बदलनी चाहिए। कंबल या रज़ाई ओढ़ने के नीचे भी एक चादर

लगाना आवश्यक है। यह सबसे उत्तम बात है। रात्रि को बारहो महीने स्नान करके सोया जाय। हमारी सम्मति है कि ग्रीष्म और वर्षा में प्रातःकाल और रात्रि को और शीत-

हिंदुस्तानियों के लिये अनुकूल अँगरेज़ी ढंग की कोठी का मानचित्र
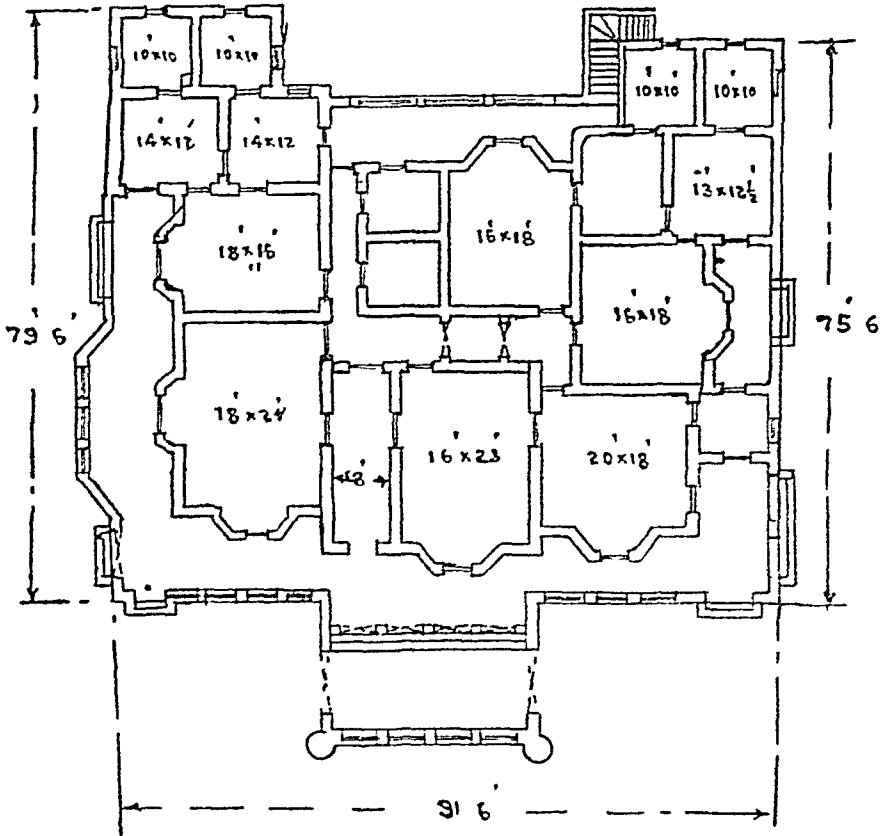
काल में केवल रात्रि को शयन के समय स्नान किया जाना चाहिए। और सोने के कपड़े सर्वथा पृथक् सफ़ेद और साफ़ होने चाहिए।

अध्याय उनतीसवाँ

उपयोगी विद्याएँ

प्रकरण १

हस्तरेखा-विद्या

हाथ की बनावट

१—जिनके हाथ छोटे, मोटे और भद्दे हों, और उनके अँगूठे तर्जनी उँगली के मूल तक न पहुँच सकें, तथा बहुत कम रेखाएँ जिनमें हों, वे लोग प्राय. मूर्ख, क्रोधी और आलसी होते हैं। वे बहुधा दु खी और दरिद्र रहते हैं।

२—जिनके हाथ की बनावट गोल हो, वे बुद्धिमान् और बात के सच्चे एवं विश्वसनीय होते हैं। वे सदाचारी और शांतिप्रिय भी होते हैं। ऐसे लोग हाकिम, वकील और चिकित्सक होते हैं।

३—जिनके हाथ टेढ़े और कुडौल हों, जिनके हाथ कलाई के पास तंग और उँगली के पास चौडे हों, वे उद्योगी, साहसी और उत्साही होते हैं। पर प्रायः असंतोषी और अस्थिर होते हैं।

४—लंबा और नोकीला हाथ जिसकी उँगलियाँ पतली और लंबी हों, दार्शनिक लोगों का होता है। ऐसे लोग धर्मात्मा और विचित्र होते हैं।

५—सूँड के आकार का हाथ जिनका होता है, वे विचारहीन, स्वार्थी और धुन में आकर काम करनेवाले होते हैं। वे तुनुकमिज़ाज और फ़िज़ूलख़र्ची भी होते हैं, ये लोग प्राय सौंदर्योपासक होते हैं।

६—सुडौल और सुंदर हाथवाले लोग प्राय. भाग्यहीन होते हैं। वे कल्पना बहुत करते हैं, पर वास्तव में कोई काम करने की उनमें योग्यता नहीं होती।

७—जिसका हाथ कठोर हो, और उँगलियाँ पूर्णतया न तनें, वह कठोर और हठी होता है। पर जिसका हाथ लचीला और उँगलियाँ नरम हों, वह संयमी और धैर्यवान् होता है।

हथेली—बड़ी हथेलीवाला मनुष्य अभिमानी होता है। चौड़ी हथेलीवाला मनुष्य ग्राम्य जीवन का प्रेमी होता है। सकरी और पतली हथेली शारीरिक और मानसिक दुर्बलता की द्योतक है। खोखली हथेली रोगी और अल्पायु होने का चिह्न है।

अँगूठा—यदि अँगूठे की नाख़ूनवाली पोर चौड़ी और लंबी है, तो वह आदमी धुन का पक्का है। यदि उसकी दूसरी पोर चौड़ी है, तो समझिए कि उसकी तर्कना-शक्ति बड़ी है। जिसकी तीसरी पोर बड़ी है, वह प्रेमी है।

शिक्षित और बुद्धिमान् माता-पिता की संतान का अँगूठा लंबा और सुडौल होता है। छोटा अँगूठेवाला भावुक होता है। जिसका अँगूठा पीछे की ओर नहीं मुड़ सकता, उसकी इच्छा ख़ूब लंबी-चौड़ी होती है। पर उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। मुद्गर की आकृति के अँगूठेवाला क्रूर और झगड़ालू होता है।

उँगलियाँ—लंबी उँगली उत्साह की सूचक हैं। यदि उनके जोड़ की गाँठें उभरी हुई दीखें, तो जानना चाहिए कि मनुष्य समय का पाबंद और स्वच्छता-प्रिय है। यदि उँगलियाँ नोकीली हैं, तो मनुष्य मंसूबे बाँधा करता है। यदि चौकोर हैं, तो वह जो कहता है, वह कर भी दिखाता है।

छोटी उँगलीवाला आदमी कमअक़्ल होता है। यदि उँगलियाँ भिन्न-भिन्न आकृति की हों, तो जानना चाहिए कि मनुष्य चरित्र-हीन है।

तर्जनी—यदि यह उँगली नोकीली और लंबी हो, तो मनुष्य न्यायी और बुद्धिमान् होगा। चौड़ी और चौकोर होने से तर्कवादी। गावदुम होने से विलासी और परिश्रमी। यदि यह उँगली छोटी हो, तो वह मनुष्य उत्तरदायित्व-शून्य होगा। यदि टेढ़ी हो, तो चापलूस और दग़ाबाज़ होगा।

मध्यमा—यदि यह उँगली बहुत अधिक लंबी है, तो वह भय और संदेह का शिकार बना रहता है। यदि सीधी, पतली और अन्य उँगलियों से कुछ ही बड़ी हुई, तो दूरदर्शी, विवेकी, आज्ञाकारी और शिल्पी होता है।

अनामिका—यदि लंबी और सीधी है, तो मनुष्य धनी, सफल और साहसी होगा, और लोग उसके वश में रहेंगे। अधिक लंबी होने से मनुष्य जुआरी और अस्थिर होता है, नोकीली होने से साहित्य, संगीत और कला का ज्ञाता होता है। और उसका झुकाव कनिष्ठिका की ओर होने से मनुष्य लेखक और वक्ता होता है। यदि झुकाव मध्यमा की ओर है, तो मनुष्य स्वार्थी, उदास और आत्मप्रशंसक होता है।

कनिष्ठिका—यदि इसकी मूल अन्य उँगलियों के मूल में न हुई, तो वह सुअवसरों को खो देगा, यदि मूल अन्य उँगलियों की मूल की सीध में हो और उँगली लंबी, सीधी और नोकीली हो, तो समझिए मनुष्य ख़ुशमिज़ाज है। यदि वह अनामिका के बराबर हुई, तो मनुष्य भारी व्यापारी होगा।

ख़ास बात—यदि सब उँगलियों को बराबर करने से बीच में झिरी रहे, तो मनुष्य इंद्रिय-लोलुप और दयालु समझना चाहिए, यदि झिरी न दीखे, तो ख़र्चीला है।

नाख़ून—यदि नाख़ून लंबा और पतला हो, तो मनुष्य नाज़ुक-मिज़ाज और कमज़ोर

होगा। यदि बीच में मुड़ा, उभरा हुआ हो, तो क्षय या छाती की बीमारी से ग्रस्त होगा। यदि कड़ा हो, और आसानी से टूट जाय, तो वह गठिया या वातरोग से ग्रस्त रहेगा।

यदि नाख़ून लंबा होगा, तो वह कमर के ऊपर की बीमारी से मरेगा। यदि छोटा है, तो कमर के नीचे की बीमारी से मरेगा। यदि नाख़ून लंबा-चौड़ा, साफ़ है, तो मनुष्य बुद्धिमान् और चतुर है, दबदबेवाला है, प्राय. पत्र-संपादन करता है। यदि नाख़ून छोटा और मैला है, तो आदमी दगाबाज़ और झूठा है। यदि नाख़ून पतला है, तो धूर्त और गोल हो, तो लंपट है। लंबा और नोकीला नाख़ून घमंडी आदमी का होता है। चौकोर नाख़ून व्यापारियों का होता है।

उँगलियों के मूल—तर्जनी के मूल में हथेली पर यदि ख़ूब उभार हो, तो मनुष्य यशस्वी होता है। उसे गृहस्थी का सुख मिलता है। उच्च अभिलाषाएँ पूर्ण करता है, वह घमंडी और नाम पाने का इच्छुक होता है। यदि ऊँचाई कम है, तो आलसी, आत्माभिमान-रहित और बुरी आदतों का गुलाम होता है।

मध्यमा के मूल का उभारवाला मनुष्य बलिष्ठ, डरपोक और एकांत-प्रिय होता और अविवाहित रहना पसंद करता है। ऐसे लोग संगीत के शौकीन भी होते हैं। यदि ऊँचाई सामान्य हो, तो वह अध्यात्मवादी और दूरदर्शी होगा। यदि ऊँचाई न हो, तो तुच्छ, संकीर्ण और भाग्य-हीन होगा। बहुधा वह आत्मघात की इच्छा करेगा।

अनामिका का मूल उन्नत होने पर मनुष्य साहित्य और कला में निपुण, प्रतिभाशाली, दया, क्षमा आदि गुणों से पूर्ण होगा।

अधिक ऊँचाई होने से फ़ज़ूल ख़र्च और अधिक धन प्राप्त करने का अभिलाषी होगा। अपनी शान-शौकत दिखाना पसंद करेगा। यदि उस स्थान की ऊँचाई कुछ न हो, तो मनुष्य निरुत्साही, आलसी और पराए आसरे है।

कनिष्ठिका का मूल यदि ऊँचा हो, तो मनुष्य बुद्धिमान् और मानसिक कार्यों में लगनेवाला होगा। उसकी वाणी और लेखनी ज़बरदस्त होगी। अधिक ऊँचाई होने से मूर्ख या चोर होगा और कम होने से शक्ति-हीन और आलसी।

हथेली के उभार—कनी उँगली तथा तर्जनी के मूल के पीछे हथेली यदि उभार पर हो, तो मनुष्य में नैतिक बल, साहस, धीरज और बुरी प्रकृतियों को दमन करने की शक्ति ख़ूब अधिक होगी। वह आदमी ईश्वर-भक्त होगा। यदि यह स्थान अधिक ऊँचा हो, तो धर्म-प्रवृत्ति ख़ूब अधिक समझना चाहिए। और वह शहीद होने को तैयार रहेगा। यदि ये स्थल नीचे हों, तो मनुष्य जल्दबाज़ होगा। यदि तर्जनी के मूल के पीछे का स्थान अच्छा उभारदार हो, तो मनुष्य संयमी और नियमित होना चाहिए। अधिक उभार हो और उस पर आड़ी-खड़ी रेखाएँ हों, तो निर्दयी, क्रोधी और झगड़ालू होगा। यदि ऊँचाई का अभाव हो, तो डरपोक और ख़ुशामदी होगा।

अँगूठे के मूल के नीचे का स्थान ख़ूब उभारदार हो, तो मनुष्य प्रेमी, गभीर, सहानुभूति और संगीत तथा सौंदर्य का उपासक होगा। बहुत अधिक ऊँचा होने से भोग-विलास में लिप्त रहेगा। ऊँचाई न होने से स्वार्थी, असफल और मनुष्यत्व से हीन होगा।

ये चिह्न यदि संयुक्त हों, तो फल भी उसी प्रकार होगा।

रेखाएँ

आयु-रेखा—यह रेखा तर्जनी-मूल के नीचे से प्रारंभ होकर हथेली के बीच होती हुई अँगूठे के नीचे तक जाती है। यदि यह रेखा लंबी, सीधी, साफ और गुलाबी हो, तो समझना चाहिए कि मनुष्य दीर्घजीवी है। यदि काली, पीली, कटी-फटी हो, तो अल्पजीवी समझना चाहिए। यदि रेखा बाएँ हाथ में टूटी हुई और दहने में साफ़ हो, तो जानना कि वह भारी रोगों से दुःख पावेगा, पर मरेगा नहीं। यदि दोनो हाथ की रेखा खंडित हों, और खंडित रेखा का अंतिम छोर अनामिका-मूल की ओर मुड़ा हो, तो जानना चाहिए कि रेखा टूटने के स्थान में जो अवस्था का अनुमान हो, उतनी ही आयु में मृत्यु होगी। रेखा को पूरे १०० भागों में विभक्त करना चाहिए। यदि रेखा साँकल की कड़ियों के समान हो या बहुत-सी बारीक-बारीक रेखाओं से बनी हो, तो जानना चाहिए कि मनुष्य रोगी और दुर्बल रहेगा। यदि कुछ दूर ऐसी और कुछ दूर साफ़ हो, तो उसी हिसाब से रोगी और फिर नीरोग जानना चाहिए। यदि यह रेखा लंबी तो है, पर पतली है, तो वह जन्म भर रोगी रहेगा। आयु की एक दूसरी रेखा कनिष्ठ उँगली के मूल के नीचे से उठकर आयु-रेखा के समानांतर जाती है। यदि यह रेखा साफ़ और अखंडित है, तो वह प्रधान आयु-रेखा की कमी को पूर्ण करती है। यह रेखा जिन स्त्रियों के हाथ में पूर्ण होती है, वे कभी विधवा नहीं होतीं। घर में उनका प्राधान्य भी ख़ूब होता है। यदि आयु-रेखा बिलकुल अँगूठे के मूल में हो, तो उस स्त्री के संतान नहीं होगी। यदि आयु-रेखा पर तिल या चक्र हो, तो आदमी अंधा होगा। यदि आयु-रेखा के अंतिम छोर पर बहुत-सी रेखाएँ फूटें, तो वह वात-व्याधि में दुःखी रहेगा। यदि अँगूठे के मूल से नीचे आयु-रेखा में से शाखाएँ निकलकर अँगूठे की मूल की ओर बढ़ें, तो समझना चाहिए कि उसी आयु में मनुष्य का भाग्योदय होगा। यदि आयु-रेखा से एक सीधी रेखा तर्जनी-मूल में जाय, तो मनुष्य उच्च पद प्राप्त करेगा। यदि मध्यमा तक रेखा जाय, तो भाग्य-बल से धन मिलेगा। यदि अनामिका तक जाय, तो पदवी और मान मिलेगा। यदि कनिष्ठिका-मूल के नीचे तक जाय, तो देश-देशांतरों में कीर्ति प्राप्त होगी। ये रेखाएँ ठीक संयोग होने पर बन जाती हैं।

यदि अँगूठे की जड़ से बहुत-सी छोटी-छोटी रेखाएँ निकलकर आयु-रेखा को काटें, तो मनुष्य का स्वभाव चिड़चिड़ा और कुटुंब के लिये दुःखदायी होगा। यदि अंगुष्ठ-मूल के नीचे से लंबी रेखाएँ निकलकर आयु-रेखा को काटें, तो मनुष्य धन की चिंता से रोगी रहेगा।

यदि आयु-रेखा अँगूठे के मूल के उभार पर आ जाय, तो मनुष्य या तो उच्च से पद

गिरेगा या ऊपर से गिरकर मरेगा। यदि कनिष्ठ उँगली के मूल से निकली रेखा आयु-रेखा को काटे, तो सिर में ऐसी गहरी चोट लगेगी कि आयु-भर चिह्न बना रहेगा।

यदि आयु-रेखा का अंतिम छोर दो भागों में विभक्त हो, तो मनुष्य अधिकांश आयु विदेश में व्यतीत करेगा। जिस मनुष्य की आयु-रेखा अँगूठे को घेरती हुई जाय, वह दुर्बल-चित्त मनुष्य होगा, और जन्म-भूमि के निकट ही उसकी मृत्यु होगी। यदि यह रेखा एक छोर से दूसरे छोर तक सीधी गई हो, तो जानना चाहिए कि मनुष्य परिश्रमी, कंजूस और कामकाजी है, मतलब सिद्ध करने में उस्ताद है। यदि यह रेखा हथेली के मध्यभाग की ओर झुकी हुई हो, तो जानना चाहिए कि मनुष्य कवि और कल्पना-जगत् का प्राणी है। यदि यह रेखा बाएँ में हो, और दाहने में बिलकुल सीधी हो, तो उस पर सोहबत का भारी असर पड़ेगा। यदि उसके अंतिम छोर दो भागों में विभक्त हो जायँ, तो वह मनुष्य तर्क और कल्पना में तेज़ होगा। यदि उद्गम स्थान में वह आयु-रेखा से मिली हो और कनिष्ठा उँगली बहुत लंबी हो, तो मनुष्य कूटनीतिज्ञ होगा। यदि दोनो रेखाएँ पृथक्-पृथक् हों और उँगलियाँ चौड़ी हों, तो वह धूर्त और झूठा होगा। छोटी, सीधी और गहरी बुद्धि-रेखा यह प्रमाणित करती है कि मनुष्य केवल एक विषय को जिसमें उसकी जीविका है, पूर्ण रूप से समझने में योग्य है। यदि उसकी शाखा कनिष्ठ-मूल में जाय, तो मनुष्य लेखक और वक्ता होगा। अनामिका के मूल में जाने से वह कुछ कला सीखकर धन कमाना चाहेगा। मध्यमा के मूल में जाने से कृषि-वाणिज्य सीखेगा। तर्जनी के मूल में जाने से अधिकार की इच्छा करेगा। यदि यह रेखा ज़ंजीर की भाँति मूल में बुद्धि-रेखा से मिली हो, तो उसका विकास धीरे-धीरे होगा। सर्पाकार हो, तो विचार ढिलमिल होगा। यदि बुद्धि-रेखा और आयु-रेखा पृथक्-पृथक् हों, तथा तर्जनी लंबी हो और उसके मूल के नीचे का स्थान उभरा हो, तो वह साहसी और निर्भीक होगा। वह उत्तम वकील या बैरिस्टर होगा। यदि रेखा मध्यमा के मूल में खंडित हो, तो मनुष्य के सिर पर चोट पहुँचेगी। यदि दोनो हाथों में यही हो, तो चोट से उसकी मृत्यु होगी। यदि बाएँ हाथ की रेखा भग्न हो, तो शिरोरोग बना ही रहेगा। यदि बुद्धि-रेखा खंडित हो और टूटी रेखा नीचे हथेली की जड़ तक चली आई हो, तो मनुष्य बहुत क्रोधी होगा। यदि टूटी रेखा कलाई तक चली आवे, तो मनुष्य अवश्य आत्मघात करेगा। यदि इस रेखा में लाल रंग की गाँठ हो, तो वह मनुष्य ख़ूनी हो सकता है। यदि किसी के हाथ में दो बुद्धि-रेखाएँ हों, तो वह ख़ूब मानसिक परिश्रम कर सकता है। यदि ऐसी रेखा स्त्री के हाथ में हो, तो वह पैत्रिक संपत्ति की अधिकारिणी होती है। यदि यह रेखा तर्जनी-मूल से निकलकर अंगुष्ठ-मूल के नीचे तक जाय, तो मनुष्य सद्गुणी होगा। यदि कनिष्ठिका-मूल के नीचे जाय, तो मनुष्य स्वार्थी होगा। यदि कनिष्ठिका-मूल में जाय, तो हाज़िर-जवाब होगा। यदि रेखा हथेली के मूल में गई हो, और वहाँ तारा का चिह्न हो, तो जानिए कि मनुष्य जल

में डूबकर मरेगा। जिसकी आयु-रेखा अँगूठे की ओर न मुड़कर हथेली की ओर झुकती है, वह बलिष्ठ, साहसी और चतुर होता है। और उसकी मृत्यु विदेश में होती है। आयु-रेखा से जो शाखाएँ ऊपर को जायँ, वे शुभ और नीचे को जायँ वे अशुभ हैं। यदि बाएँ हाथ की रेखा साफ़ और दाहने की दूषित हो, तो समझना चाहिए कि मनुष्य लापरवाही से स्वास्थ्य नाश कर रहा है। यदि इसके विपरीत लक्षण हों, तो समझिए कि मनुष्य स्वास्थ्य सुधारने की चेष्टा कर रहा है।

बुद्धि-रेखा--आयु-रेखा के मूल से निकलकर हथेली को पार करती हुई जो रेखा हाथ के मूल तक जाती है, वह बुद्धि-रेखा है। इससे मनुष्य के जीवन की ख़ास-ख़ास घटनाओं का ज्ञान होता है। इस रेखा के ७० सम भाग कल्पना करने चाहिए। और जहाँ ऊर्ध्व रेखा से वह कटे, वहाँ आधी समझना चाहिए। अर्थात् वहाँ तक की घटनाएँ ३५ वर्ष मे हो चुकीं। यदि यह रेखा गहरी और लंबी हो, और कनिष्ठा के मूल के नीचे तक हथेली मे चली आई हो, तो समझना चाहिए कि मनुष्य की बुद्धि का पूर्ण विकास होगा। ऐसा आदमी ज्ञानी और ईमानदार होगा।

हृदय-रेखा—कनिष्ठा के मूल के नीचे से जो रेखा उठकर तर्जनी की ओर गई है, वह हृदय-रेखा है। यदि रेखा सीधी और अखंडित होकर तर्जनी-मूल में गई हो, तो मनुष्य विश्वासी, शांत और नम्र है। और उच्च प्रेम-भावना से संयुक्त है। वह सदाचारी और प्रतिष्ठित भी है। यदि तर्जनी-मूल मे रेखा दो भागो में फट जाय, तो मनुष्य मित्रों का सच्चा हितैषी और सहायक है। यदि यह रेखा टूटती-फूटती है, तो उसकी प्रीति क्षण-भंगुर है। उसके ब्याह में भी अड़चन आती है। यदि मध्यमा के नीचे रेखा टूटती है, तो मनुष्य प्रेम में प्राण खोता है। यदि कनिष्ठा-मूल में टूटती है, तो प्रेम में पागल होता है। यदि रेखा लंबी और मोटी हो, मध्यमा के मूल में समाप्त हुई हो, तो मनुष्य इंद्रिय-लोलुप है। जिसे प्यार करता है, उसे सब कुछ दे देता है। यदि रेखा बुद्धि-रेखा पर जा पड़े, तो उसे विवाह-सुख नहीं मिलेगा। संभवत. उसकी पत्नी की असमय में मृत्यु होगी। यदि उसी स्थान मे वह बुद्धि और आयु-रेखा से मिले, तो उसकी अचानक मृत्यु होगी। यदि बुद्धि और हृदय-रेखा के बीच बहुत कम अंतर हो, तो मनुष्य द्वेषी और संकीर्ण विचार का होगा। यदि रेखा तर्जनी तक गई हो और उसकी एक शाखा मध्यमा तक गई हो, तो मनुष्य अत्यंत विषयी होता है। जो उसी में तेज, बल, धन नष्ट करता है।

यदि यह रेखा हो ही नहीं, तो मनुष्य हठी और नास्तिक होगा। यदि यह रेखा बुद्धि-रेखा से मिलकर हथेली के आर-पार गई हो, तो उस मनुष्य का स्वभाव विचित्र होगा। यदि रेखा में जौ हों, तो प्रकृति-विरुद्ध व्यभिचार करेगा।

भाग्य-रेखा—इसके चार उद्गम स्थान हैं। यदि हथेली की जड से निकलकर मध्यमा-मूल तक सीधी जाय, तो जानिए मनुष्य को बड़े लोगों का आश्रय प्राप्त होगा। उन्हीं

के सहारे वह धनी और मानी होगा। यदि रेखा कलाई से उठकर सीधी मध्यमा-मूल तक जाय, तो वह मनुष्य राजा या राजा के समान भाग्यवान् होगा। यदि यह रेखा आयु-रेखा से निकलकर मध्यमा-मूल तक जाय, तो वह अपनी योग्यता के बल से अपना भाग्य निर्माण करेगा। यदि रेखा हथेली के मध्य भाग से उठकर गहरी और सीधी मध्यमा-मूल तक गई हो, तो उसका अंतिम आधा जीवन अच्छा जाता है। यदि रेखा सीधी हो, और उसमें से शाखाएँ फूटकर इधर-उधर गई हों, तो मनुष्य ग़रीब से अमीर बनता है। यदि रेखा बुद्धि-रेखा तक जाकर रुक जाय, तो मनुष्य कोई ऐसी मूर्खता करेगा कि उसका भाग्य सदा के लिये अस्त हो जायगा। ऐसे लोग दिवालिए होते हैं। यदि रेखा टेढ़ी और टूटी-फूटी है, तो वह जीवन-भर धन-कष्ट में रहेगा। यदि रेखा छोटी, टेढ़ी और छोटी-छोटी रेखाओं से कटी हो, तो वह सदा दरिद्र रहेगा। यदि रेखा तर्जनी-मूल में जाय, तो मनुष्य को राज-सम्मान प्राप्त होगा। यदि अनामिका-मूल में जाय, तो साहित्य या कला से बहुत-सा धन प्राप्त करेगा। यदि कनिष्ठिका-मूल में जाय, तो वाणिज्य में धन प्राप्त करेगा। यदि दो भाग्य-रेखा हो, तो उसे भारी धन मिलेगा। यदि भाग्य-रेखा के दोनो ओर छोटी-छोटी खड़ी रेखाएँ हों, तो उसे मित्रों से बहुत सहायता मिलेगी। यदि भाग्य-रेखा बुद्धि-रेखा से निकली हो, तो भाग्योदय ३५वें वर्ष में होगा। यदि हृदय-रेखा से निकली हो, तो ५५वें वर्ष में होगा। यदि रेखा कहीं टूट जाय और वहाँ से दूसरी रेखा चले, तो समझना चाहिए कि उस आयु में उसके भाग्य में कोई महत्त्व-पूर्ण परिवर्तन होगा।

स्वास्थ्य-रेखा—यह रेखा कलाई से निकलकर कनिष्ठिका-मूल तक गई है। यदि यह सीधी, लंबी, अखंड और गुलाबी हो, तो मनुष्य का स्वास्थ्य उत्तम रहेगा। यदि रेखा टेढ़ी, टूटी और सर्पाकार हो, तो मनुष्य को पेट की बीमारियाँ रहेंगी। यदि स्वास्थ्य-रेखा बुद्धि-रेखा और आयु-रेखा के मिलने से त्रिभुज बनता हो, तो मनुष्य अनुभवी और ब्रह्मज्ञानी होगा।

यदि रेखा के छोर पर जौ की आकृति हो, तो मनुष्य वृद्धावस्था में रोगी होगा। यदि इसे कोई रेखा तीर की आकृति की काटे, तो शस्त्र-चिकित्सा करानी होगी। यदि आयु-रेखा से स्वास्थ्य-रेखा मिले, तो उसी आयु में उसकी मृत्यु होगी। यदि यह रेखा है ही नहीं, तो मनुष्य स्वस्थ रहेगा।

ब्याह-रेखा—कनिष्ठा की जड़ में जितनी गहरी, आड़ी रेखाएँ हों, वे ब्याह-सूचक हैं। छोटी और अस्पष्ट रेखाएँ ठहरौनी या सगाई की सूचक हैं। यदि ब्याह-रेखा हृदय-रेखा पर आ पड़े और हृदय-रेखा की एक शाखा बुद्धि-रेखा पर तर्जनी-मूल में आ गिरे, तो पुरुष रँडुआ और स्त्री विधवा होगी। यह ध्यान देने की बात है कि भाग्य-रेखा जहाँ टूटी दीखे, उसी स्थान के अनुसार आयु में वह विधवा या रँडुआ होगा।

यदि यह रेखा टूटी हो, तो मनुष्य की अचानक मृत्यु होगी। यदि छोर पर दो भागों में विभक्त हो, तो विवाह के बाद मनुष्य का स्वास्थ्य ख़राब रहेगा। यदि दोनो भाग हृदय-रेखा

तक आए हों, तो पति-पत्नी का सबंध कुछ काल तक रहेगा। यदि जौ की आकृति का चिह्न हो, तो विवाह दुःख-मूलक होगा। यदि रेखा लंबी हो, तो व्याह धनी घराने में होगा। यदि वह हृदय-रेखा के पास है, तो व्याह बचपन में होगा। यदि कनिष्ठा-मूल के मध्य में है, तो १६ से ३० वर्ष की आयु में होगा। यदि कनिष्ठा-मूल के तल में है, तो ३० से ५० वर्ष में होगा। यदि रेखा सीधी और ऊपर को उठी हुई हो, तो वह जन्म-भर अविवाहित रहेगा। यदि विवाह हुआ भी, तो स्त्री की शीघ्र मृत्यु होगी।

संतान-रेखा—व्याह-रेखा के ऊपर कनिष्ठा-मूल में खड़ी जितनी रेखाएँ हैं, वे सभी संतान-रेखाएँ हैं। इनमें जितनी गहरी और साफ़ हों, उतने पुत्र और जितनी साधारण हों, उतनी पुत्री होती हैं। यदि रेखा टूटी-फूटी हो, तो संतान मृत होगी। यदि आड़ी रेखा से कटती हुई हो, तो संतान की मृत्यु माता-पिता के सामने होगी। ये रेखाएँ माता के हाथ में बहुत साफ़ होती हैं।

यात्रा-रेखा—यह रेखा आयु-रेखा से निकलकर कलाई की ओर अंगुष्ठ से विपरीत दिशा में जाती है। यह रेखा यदि साफ़ हो, तो मनुष्य परदेश में जायगा। यदि कलाई से एक रेखा इसे निकलकर काटती हुई कनिष्ठा-मूल तक गई हो, तो मनुष्य परदेश में ख़ूब धन उत्पन्न करेगा।

मंगल-रेखा—आयु-रेखा के मूल से जो रेखा निकलकर आयु-रेखा के समानांतर जाती है, वह मंगल-रेखा है। उसके स्पष्ट होने से मनुष्य बलिष्ठ, परिश्रमी और सफल होता है।

शत्रु-रेखा—ये रेखाएँ कनिष्ठा-मूल में आड़ी पड़कर भाग्य-रेखा को काटती हैं, ये जितनी अधिक हों, उतना ही शत्रु से अधिक कष्ट होगा।

मणिबंध-रेखा—कलाई में तीन आड़ी रेखाएँ यदि साफ और सुडौल हों, तो मनुष्य दीर्घ-जीवी और भाग्यशाली होगा तथा सुख से जीवन व्यतीत करेगा। यदि वे ज़ंजीर की भाँति हों, तो मनुष्य सदा दरिद्री बना रहेगा, और पेट के लिये सदा परिश्रम करेगा। यदि यहाँ से एक रेखा निकलकर मध्य हथेली में जाय, तो मनुष्य अधिकतर यात्रा में रहेगा। यदि तर्जनी-मूल में जाय, तो अचानक धन पावेगा। यदि अनामिका-मूल में जाय, तो बड़े लोगों का कृपा-पात्र होगा।

अन्य चिह्न

तारा—यदि अनामिका-मूल में ※ ऐसा चिह्न हो, तो मनुष्य विपत्ति में फँसेगा। मध्यमा के मूल में होने से सर्प-दंश या बिजली से मरेगा। अनामिका-मूल में होने से उसे अनायास धन-मान मिलेगा, पर ठहरेगा नहीं। यदि कनिष्ठा-मूल में हो, तो वह चोर-उचक्का है। यदि तर्जनी-मूल के नीचे यह चिह्न हो, तो मनुष्य अदालती झंझटों में फँसेगा। यदि हथेली के मध्य में हो, तो यात्रा में मृत्यु होगी। अंगुष्ठ-मूल में हो, तो कर्कशा पत्नी मिलेगी। यदि

आयु-रेखा पर हो, तो कठिन रोग का लक्षण है। बुद्धि-रेखा पर हो, तो विक्षिप्त का लक्षण है। हृदय-रेखा पर हो, तो गृहस्थी के सुख से रहित होगा।

यव—यह चिह्न एक ही रेखा के दो भागों में विभक्त होने और फिर मिलने से बनता है। यह भी अशुभ है। यदि आयु-रेखा में यव हो, तो मनुष्य जन्म रोगी रहे। बुद्धि-रेखा में हो, तो नेत्र ख़राब रहें, और गृहस्थी का सुख न मिले। भाग्य-रेखा में जिस स्थान पर यव हो, उसी अनुमान से आयु में आर्थिक हानि हो। यदि विवाह-रेखा में हो, तो उसकी पत्नी का असमय वियोग हो। तर्जनी-मूल में हो, तो उसकी प्रतिष्ठा धूल में मिले।

चौकोण—चौकोण का चिह्न तर्जनी-मूल में हो, तो सौभाग्य का लक्षण है। यह चिह्न बुद्धि, बल का द्योतक और आपत्तियों से रक्षा करता है। पर यदि चौकोण चिह्न अंगुष्ठ-मूल में हो, तो जेल की हवा खानी पड़ेगी।

बिंदु—यदि तर्जनी-मूल में हो, तो प्रतिष्ठा नष्ट हो, इससे नीचे हो, तो पैत्रिक संपत्ति जाय। हथेली के सिरे पर हो, तो दिवाला निकले। लाल रंग का हो, तो रक्त-विकार हो, नीले रंग का हों, तो विष से मृत्यु हो।

गुणा-चिह्न—× तर्जनी-मूल में हो, तो विवाह-सुख प्राप्त हो। अनामिका-मूल में हो तो सफलता में विघ्न पड़ता रहे। अंगुष्ठ-मूल में हो, तो मित्र से घोर शत्रुता हो। विवाह-रेखा पर हो, तो पति-पत्नी में किसी की बीच में ही मृत्यु हो। यदि तर्जनी के प्रथम पोर में हो, तो महाभाग्यवान् हो। कनिष्ठा के पोर में हो, तो मनुष्य अविवाहित रहे।

जाल—जो कई खड़ी-आड़ी रेखाओं से बनते हैं, अशुभ हैं। यदि आयु-रेखा के प्रारंभ में ये चिह्न हों, तो मनुष्य निंदक, व्यभिचारी और आचारहीन होगा। अनामिका-मूल में हो, तो शेख़ीबाज़, मध्यमा के मूल में हो, तो दरिद्र, कनिष्ठा-मूल में हो, तो ठग, कनिष्ठा मूल के नीचे हो, तो अल्पायु होगा। यदि हथेली के अंत में यह चिह्न हो, तो मनुष्य आत्मघात करेगा।

त्रिकोण—तर्जनी-मूल में त्रिकोण हो, तो मनुष्य कूटनीतिज्ञ, मध्यमा-मूल में हो, तो दूरदर्शी और अनामिका-मूल में हो, तो मनुष्य वैद्य हो। यदि बुद्धि-रेखा साफ़ हो और अंगुष्ठ-मूल में त्रिकोण हो तथा अँगूठा लंबा हो तो मनुष्य उत्तम राजनीतिज्ञ और सुवक्ता होगा। हृदय-रेखा पर होने से गणितज्ञ होगा। आयु-रेखा के नीचे यदि गुणा चिह्न के साथ-साथ त्रिकोण हो, तो मनुष्य धनी, प्रतिष्ठित और दर्शनशास्त्री होगा। अंगुष्ठ-मूल में होने से समाज में प्रतिष्ठित, किंतु छलिया होगा। यदि कनिष्ठ-मूल में त्रिकोण हो, तो उसकी स्त्री की मृत्यु प्रसूति में होगी।

आयत स्थान—यदि बुद्धि-रेखा और हृदय-रेखा के बीच का स्थान ख़ूब चौड़ा हो और तर्जनी-मूल में और भी चौड़ा हो गया हो, तो मनुष्य उच्च, विचारवान् और दूरदर्शी होगा। जीवन के महत्त्व को समझेगा। यदि हथेली के मध्य भाग में आकर वह तंग हो गया, तो मनुष्य ठग होगा। यदि यह स्थान हो ही नहीं, तो मनुष्य अभागा है।

फुटकर बातें—यदि बुद्धि-रेखा और सफलता-रेखा स्पष्ट हो, और कनिष्ठिका की दूसरी-तीसरी पोर में खडी लकीर हो, तो वह सफल चिकित्सक होगा।

यदि बुद्धि-रेखा सुडौल और साफ हो तथा अनामिका, कनिष्ठा-मूल और कनिष्ठा-मूल के नीचे का भाग ऊँचा हो, तो मनुष्य इंजीनियर होगा।

जिनकी हथेली बडी, उँगलियाँ गाँठदार और कनिष्ठा की पहली पोर लंबी हो तथा कनिष्ठा-मूल ऊँचा हो, तो वह मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश होगा।

वकीलों की बुद्धि-रेखा लंबी और उसका अंतिम छोर दो भागों मे विभक्त रहता है।

जिनकी उँगलियाँ चौडी तथा नरम हों, वे साहित्यिक होंगे।

पतिव्रता के हाथ मे आयु की दो रेखा होती है। यदि अँगूठे की लंबाई तर्जनी के बराबर हो, तो वह असाधारण विद्वान् होगा।

यदि आयु-रेखा अँगूठे के बिलकुल निकट से निकले, तो संतान-हीन होगा।

शंख-चक्र—उँगली के पोर में शंख-चक्र होते है। ये दोनो हाथों के देखने चाहिए। यदि हाथ में १ चक्र हो, तो वह बकवादी होगा। यदि दो चक्र होंगे, तो गुणी और ३ हों, तो व्यापारी। चार चक्रवाला दरिद्री, पाँच और छ चक्रवाला विलासी, ७ चक्रवाला सुखी, ८ चक्र-वाला रोगी, ९-१० चक्रवाला राजसुख भोग करनेवाला, एक शंख होने से सुखी, चार से गुणी, ६ से प्रतिष्ठित, पर २, ३, ५ से दरिद्र, मूर्ख, ७, ८, ९, १० होना उत्तम है।

बड़ा त्रिकोण—जो बुद्धि, आयु तथा स्वास्थ्य की रेखा से बनता है। इसका जो कोण आयु और बुद्धि की रेखा से बनता है, वह स्पष्ट हो, तो मनुष्य संयमी, उदार, बुद्धिमान् और भला होगा। यदि यह कोण चौडा हो, तो आदमी गँवार होगा। यदि वह तर्जनी-मूल में न होकर मध्यमा-मूल में हो, तो मनुष्य धूर्त और अभागा होगा।

दूसरा कोण बुद्धि और स्वास्थ्य रेखा से बनता है। यदि ऐसा ही त्रिकोण हो, तो मनुष्य रोगी रहेगा। पर यदि इधर भाग्य-रेखा से और बुद्धि-रेखा से त्रिकोण बना है, तो वह सफलता और नैरोग्य का लक्षण है। त्रिकोण का ऊपरी भाग यदि अंगुष्ठ-मूल में हो, तो आरोग्य, दीर्घजीवन और बुद्धिदाता है। त्रिकोण में अन्य चिह्न अशुभ है।

यदि कनिष्ठा-मूल का स्थान ख़ूब ऊँचा हो, तो वह शराबी बनेगा। यदि बुद्धि-रेखा हथेली के मूल तक आई हो और उसके अंतिम छोर में तारा का चिह्न हो, तो मनुष्य जल मे डूब-कर मरेगा। यदि दोनो हाथों की बुद्धि-रेखा मध्यमा के स्थान में टूटी हो, तो उसकी मृत्यु फाँसी से होती है।

प्रकरण २

मस्तिष्क-विद्या

मस्तिष्क की बनावट इस प्रकार की है कि वह शंख स्थान के पास कुछ पिचका हुआ है। और माथे के समीप और गुद्दी के पीछे जरा उभरा हुआ है। यदि छोटे मनुष्य का बडा सिर हो या लंबे मनुष्य का छोटा सिर हो, तो उत्तम है।

माथा मध्य भाग से ३ भागों में विभक्त है। पीछे को झुका हुआ, खड़ा हुआ और बाहर को निकला हुआ। माथा जितना लंबा होगा, उतनी ही विचारशक्ति अधिक और फुर्ती कम होगी। दबा हुआ छोटा और ठोस माथा जिनका होता है, वे प्रसन्नचित्त नहीं रहते। माथे के पीछे सीमाएँ जितनी अधिक टेढी होंगी, उतना ही मनुष्य विनम्र होगा। और जितना ही अधिक माथा सीधा होगा, उतना ही अधिक मनुष्य हठी और कठोर होगा। बाहर को निकला हुआ माथा नपुंसकता, निर्बलता और मूर्खता का चिह्न है। पीछे को घूमा हुआ प्राय विशाल बुद्धि का चिह्न है। जिस माथे में बहुत-सी कठोर गाँठें हों, वह मनुष्य मुस्तैद होगा। जिसका बनाव सुडौल हो, वह उच्च कोटि का मनुष्य होगा।

कपाल

जिस मनुष्य का कपाल ऊँचा और चंद्राकार होता है, वह अविकार-संपन्न होता है। जिसका कपाल चमकीला हो, वह विद्वान् होता है। जिसका छोटा होता है, वह धार्मिक होता है, जिसका नीचा रहता है, वह क्रूर और अधर्मी होता है। जिसका विषम होता है, वह धन-हीन होता है।

जिस मनुष्य के कपाल में पाँच आडी लकीरें हो, वह धनी होगा, और १०० वर्ष तक जीवेगा। चार आडी रेखा होने से वह वैभव-संपन्न होगा, और ८० वर्ष जीवेगा। तीन रेखा होने से ७० वर्ष जीवेगा। दो होने से ६० वर्ष और १ होने से अल्पायु होगा। यदि कपाल रेखाओं से हीन हो, तो भाग्यवान् और दीर्घायु होगा।

बाल

जिसके बाल चिकने, काले, पतले और घुँघराले हों, वह धनी होगा। वह विलासी और आलसी भी होगा। जिसके केश छोटे, कडे और कुछ भूरे रंग के हो वह दुर्बल, रोगी और मंद दृष्टिवाला होगा। जिसके कडे और कठोर हों, वह ज़िद्दी और मेहनती होगा। यदि तालु के बाल न हो, तो भाग्यवान् होगा। यदि बाल कडे, घने हो और कघी से भी न घूमें, तो मनुष्य हाज़िर-जवाब और खुश-मिज़ाज होगा। यदि बाल मोटे, छोटे और विषम हो, तो वह भाग्यहीन होगा।

भौंह

यदि भौंह आँख के बहुत पास हो, तो वह गणित और चित्रकला में कुशल होगा। लंबी भौंहवाला कवि होगा। घनी भौंहवाला बुद्धिमान् तथा जुटी भौंहवाला भाग्यवान् और सदाचारी होगा। यदि दोनो भौंहों के बीच की दूरी अधिक हो, तो मनुष्य परिश्रमी, सरल, उदार और अशात होगा। यदि भौंह मध्य भाग में तंग हुई, तो परस्त्रीगामी होगा। जिसकी भौंह बाल चन्द्र के समान दीर्घ, बाँकी, उन्नत और नाक के मूल से निकली हो, वह पूर्ण धनी होगा, और राजसुख भोगेगा।

बिरौनी

पतली, घनी, काली और लंबी बिरौनी दीर्घायु और सौभाग्यशाली व्यक्ति का चिह्न है।

पलक मारना

जो एक सेकेंड में पलक मारे, उसकी इच्छा कभी पूर्ण न होगी। वह लबार होगा। जिसे दो सेकेंड लगें, वह दूसरों के आश्रय में समय व्यतीत करेगा। जिसे ३-४ सेकेंड का समय लगे, वह धनी और प्रतिष्ठित होगा।

आँखें

यदि आँखें एक दूसरे से कुछ दूरी पर हों, तो मनुष्य सच्चा और स्पष्टवादी है। अधिक दूरी पर हों, तो मूर्ख, पर बिलकुल नज़दीक हो, तो कपटी, धूर्त और ठग है। जिसकी आँखें चमकदार, काली और बड़ी-बड़ी हों, वह भाग्यवान्, जिनमें कुछ पीलापन हो, वह धनी, जिनमें नीलापन हो, वह विद्वान् समझे। जिसकी आँखें गोल हो, वह १५-१६ वर्ष की आयु में मर जायगा। लंबी आँखवाला दीर्घायु होगा। ऊँची आँखवाला जवानी में मरेगा। हाथी के समान आँखवाला बली और कबूतर की-सी आँखवाला कामी होता है। कौवे की-सी आँखवाला नीच होता है। सरल मनुष्य की दृष्टि सीधी, सात्त्विक की ऊँची, क्रोधी की तिरछी और नीच की नीची रहती है।

कान

लंबे कानवाला झगड़ालू, बड़े कानवाला नम्र, छोटे कानवाला दरिद्र और स्वार्थी, टेढ़े कानवाला बुद्धि-हीन होता है। कान मोटा तथा लोम-युक्त हो, तो दीर्घायु, पुष्ट होने से नेता, मास-रहित होने से पापी और नस-युक्त लंबा होने से क्रूर होता है।

नाक

गोल नाकवाला योग्यता-पूर्वक अपना काम करता है। लंबी तथा छोर पर ऊपर उठी हुई नाकवाला जिज्ञासु और विचारवान् होता है। नीचे झुकी हुई नाकवाला मसख़रा होता है। यदि नाक छोटी और फूली हुई हो, तो मेहनती तथा आत्मविश्वासी होता है। तग नाकवाला चोर, चपटी नाकवाला रँडुआ तथा छोटी नाकवाला धर्मात्मा होता है।

होंठ

यदि ऊपर का होंठ गोलाई लिए हुए हो, तो समझना चाहिए कि मनुष्य का स्वभाव उत्तम है। यदि मोटा हो, तो आचरण दूषित है। पतला हो, तो आलसी है। स्त्री का पतला होंठ कुलटा का चिह्न है। जिसके दोनो होंठ मिले रहते हैं, वह मितभाषी, जिसके खुले रहें वह जिज्ञासु, गुलाबी होंठवाला धनी और गुणी, पुष्ट होंठवाला सुंदर, ऊँचे-नीचे होंठवाला भोगी और छोटे होंठवाला दुखी होता है। सूखा, अत्यंत पतला और फटे हुए होंठोंवाला निर्धन तथा दास रहता है।

दाँत

मज़बूत, बारीक और कुछ लाली पर दाँत हों, तो मनुष्य धन-जन मे सुखी होगा। बंदर के समान दाँतवाला दरिद्री, टेढ़े, रूखे और काले दाँतवाला निंदनीय होगा। ३२ दाँतवाला धनी, ३१वाला भोगी, ३०वाला साधारण और २९वाला दुखी होगा। २८ दाँतवाला परिवार से सुख पावेगा।

यदि बालक के नीचे के २ दाँत चार महीने के भीतर निकले, तो वह बालक भाग्य-वान् है। यदि ऊपर के प्रथम निकलें, तो अनिष्टकारी होगा। जन्मते ही दाँत आना तो बहुत अशुभ है, या वह बालक बहुत होनहार है।

जीभ

लंबी, पतली और कोमल जीभवाला मनुष्य विद्वान्, मैली जीभवाला भ्रष्टाचारी, रूखी, कड़ी और मोटी ज़बानवाला मूर्ख और दुखी होता है।

मुख

गोल और सौम्य एवं तेजस्वी मुख धनी और भोगी का होता है। माता की आकृति भाग्यवान् की होती है। धूर्त का मुँह चौकोर होता है। नीचा और टेढ़ा मुख संतान-वाले का होता है, लंबा मुँह दरिद्री का होता है।

गाल और ठोडी

मांसल और ऊँचे गालवाला मनुष्य सुखी और भोगी, तथा पिचके और रोमहीन गाल-वाला दुखी होता है। पुण्यवान् मनुष्य की ठोडी छोटी, गोल, नरम तथा भरी हुई रहती है। दरिद्र की ठोडी दुर्बल, लंबी और कड़ी होती है।

गर्दन

छोटी गर्दनवाला श्रेष्ठ, गोल गलेवाला सुखी, धनी और सुंदर तथा मोटे गलेवाला अकारण ही दुष्ट प्रकृति का होता है। लंबे गलेवाला बहुभोगी और टेढ़ी गर्दनवाला चालाक होता है। ऊँट की-सी गर्दनवाला दुखी और बगुला की-सी गर्दनवाला अहं-कारी एवं चपटे गलेवाला निर्धन होता है।

मस्तिष्क के किस भाग में कौन भाव प्रकट होते हैं। तथा अन्य शरीर-अवयवों की पहचान

भाव	मस्तिष्क चिह्न	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिह्न
अधिक जीने की इच्छा—	कान के पीछे मस्तिष्क का उन्नत स्थल	कान की लौ लंबी-चौड़ी	हाथ-पैर लंबे-चौड़े, पूर्ण संधि, भरावदार, मासल हाथ-पैर के तलुए
वैश्य-वृत्ति	दोनो कानों के बीच का प्रदेश		उँगली और पहुँचे का भीतर की ओर झुकाव
लोभ	कान के पीछे का उन्नत भाग	नाक का विस्तृत गठाव	
संयम	कान के पीछे मस्तक का उभार	नाक के चौडे नथुने	
निग्रह-वृत्ति	कान की लौ के ऊपर का मस्तक का उन्नत भाग		थोड़ा-थोड़ा करके लिखने की आदत—
उद्योग-कार्य-शक्ति	कान के ऊपर निकट का उभार	नोकीली नाक और उठे हुए कान	अँगूठे और अनामिका के पास मांसल स्थान। मोटे अक्षर
क्रिया शक्ति	कान का अग्रभाग	गाल की उभरी हड्डी	
वीरत्व		ऊँची नाक	उभरे हुए करतलपृष्ठ
हिम्मत		नासिका के मूल की उँचाई	
काम-वासना	फैला हुआ माथा	भरावदार, रक्त वर्ण ऊपर का होंठ, जिसका मध्यभाग आगे को निकला हुआ हो।	अँगूठों की जड़ मोटी और पड़ी हुई

दाम्पत्य-प्रेम	उभरा हुआ माथा		मोटा-मज़बूत अँगूठा
वात्सल्य-स्नेह	मस्तिष्क के नीचे का भरावदार प्रदेश		गोल और मरोड़दार अक्षर
मैत्रीभाव	माथे के नीचे का उभार	गोल और विस्तृत ठोढ़ी	अनामिका-मूल का उभार
उच्चाभिलाषा	मस्तिष्क के पीछे दोनों ओर का उभार	गाल पर रेखा पड़ें। ऊपर का होठ खुला रहे और दाँत चमकें	
अहंकार	मस्तिष्क के पीछे का उन्नत भाग	सीधी, लम्बी गर्दन, ऊपर का सीधा होठ	
दृढ़ता-धैर्य		नाक की जड़ का उन्नत भाग	धीरे-धीरे टेढ़े अक्षर
पूज्य भाव	मध्य मस्तक का उभार	आँख के पलक नीचे झुके हुए	
आत्माभिमान	माथे के पीछे चौरस उभार	दोनों भौंहों के बीच २-३ खड़ी रेखाएँ	
कला-कौशल	पार्श्व कपाल का उभार	प्रपूर्ण होठ नाक के भरे हुए नथुने	उँगलियों के लगे पोरुए
हास्यवृत्ति	कपाल का उच्च पार्श्व उन्नत		उँगली मूल का उभार, चचल लेखन-शैली
वक्तृत्व-शक्ति	आँख का भरावदार स्थान ऊपर और नीचे के पलक	आँख के नीचे का भरावदार स्थान	संयुक्ताक्षरवाली लेखन-शैली
सौजन्य	मध्य मस्तक के दोनों तरफ उभार		कोमल अँगूठा, मरोड़दार अक्षर

प्रकरण ३

स्वप्न-विज्ञान

स्वप्न क्या है, और वे क्यों दीखते हैं, इस पर बहुत-से वैज्ञानिक विचार करने लगे हैं। कोई इसे मस्तिष्क की क्रिया बताता है और कोई शरीर का विकार। प्राचीन ग्रंथकारों ने भी स्वप्न पर बहुत कुछ लिखा है।

वैज्ञानिकों का मत है कि स्वप्न प्रकृति को सचेत करनेवाली घड़ी है। स्वप्न देखने का अभिप्राय यह है कि उसके पैरों में यथेष्ट रक्त का अभिसरण नहीं होता है। या वह सोने से प्रथम बहुत-सा भोजन कर लेता है, जिससे उसका भार रीढ़ के ऊपर की बड़ी रक्तवाहिनी धमनी पर पड़ता है और इस कारण पैरों की ओर स्वच्छंदता से रक्त नहीं जा सकता, और वह स्वप्न में यह अनुभव करता है कि वह किसी ऊँचे स्थान से नीचे को गिर गया है। इस गिर जाने में कुछ पूर्व संस्कृति का भी प्रभाव है—जैसे वह किसी नट को १०-५ दिन पूर्व ऊपर चढ़ते देख चुका हो और उसके मन में आया हो कि कहीं यह गिर न पड़े इसमें संदेह नहीं कि स्वप्न की उत्पत्ति वाह्य कारणों से होती है। मस्तिष्क में सभी समय सभी अवस्थाओं में सोचने की क्रिया जारी रहती है। निद्रितावस्था में भी वह नष्ट नहीं होती। हाँ, विचार और तर्क करने की शक्ति का लोप हो जाता है, इसलिये किसी बात के सोचने में किसी प्रकार की बाधा नहीं रहती और वह स्वतंत्र भाव से चाहे कोई भी रास्ता पकड़ सकती है।

फ्रांस के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मरे (Mauley) ने पहलेपहल कहा था कि स्वप्न की उत्पत्ति भौतिक कारणों से होती है। उन्होंने अपने एक स्वप्न को इस प्रकार कहा है—"एक दिन सोने जाने के पहले मैं फ्रांस के विप्लव की लोमहर्षण घटनाओं को पढ़ रहा था। सो जाने पर मैंने स्वप्न में देखा कि मैं भी वध-भूमि पर उपस्थित किया गया हूँ। मेरे गले में फाँसी लगाई गई और हत्यारे ने रस्सी खींची। मेरे गले के दोनों तरफ़ तेज़ छुरी लगने-सा अनुभव हुआ। मैं जग पड़ा। मेरे शरीर से पसीना निकल रहा था। मैंने देखा कि मसहरी का एक डंडा, न मालूम-कैसे, टूटकर मेरे गले पर आड़ा गिरा हुआ है।" अवश्य स्वप्न देखने के समय वह डंडा नहीं गिरा होगा। पहले डंडा गिरा होगा, उसका उन्हें अनुभव हुआ होगा और उनकी चेतना में वे बातें उपस्थित हुई होंगी, जिन्हें उन्होंने सोने के पहले पढ़ा था। इस प्रकार यदि हम लोग अन्य स्वप्नों का भी विचार करें, तो जान पड़ेगा कि हमारे स्वप्नों का असली कारण वाह्य भौतिक घटनाएँ हैं। इन्हीं घटनाओं की सहायता

करने के लिये चेतना भी स्वप्न देखते समय बिजली की चमक की तरह आ उपस्थित होती है।

हज़ारों मनुष्यों के स्वप्नों की परीक्षा कर जाना गया है कि साधारण स्वप्न आठ प्रकार के होते हैं, जिनकी उत्पत्ति भौतिक कारणों से होती है।

कभी-कभी लोग स्वप्नावस्था में अपने को नग्न या अर्धनग्न अवस्था में उन मनुष्यों के सामने घूमते हुए पाते हैं, जिनके सामने नंगे जाना लज्जा का कारण होता है। स्वप्नद्रष्टा की जब नींद टूटती है, तो वह देखता है कि उसके शरीर का सारा या कुछ हिस्सा खुला हुआ है। कुछ लोग स्वप्न में देखते हैं कि हाथी या बाघ या सिंह, या रेल या मोटर उनके पीछे दौड़ी चली आ रही है और वे भागने की चेष्टा कर रहे हैं, किंतु उनका पैर इस प्रकार जकड़ गया है कि वे एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते। वे अपने सारे अंगों को भागने की चेष्टा में लगा देते हैं, कभी पैर से दौड़ने की चेष्टा करते हैं, तो कभी हाथ और पैर दोनों से, इसी में वे हाँफने लगते हैं, किंतु वे जहाँ-के तहाँ ही रहते हैं। ऐसे स्वप्नों के अंत में हाथी आदि जंगल में छिप जाते और तेज़ मोटर आदि दूर पर अदृश्य हो जाती हैं। उठने पर पता लगता है कि स्वप्न देखनेवाले की नाक ज़ुकाम के कारण बंद हो गई थी और श्वास लेने में उसे कष्ट हो रहा था। इन दो प्रकार के स्वप्नों में भौतिक कारण की ही प्रधानता है।

तीसरा स्वप्न उड़ने का है। जिस प्रकार मनुष्य गिरने का स्वप्न देखता है, वैसे ही आकाश में उड़ने का भी। सोते समय मनुष्य बहुधा छाती से श्वास लेता है, उस समय Diaphragm (शरीर मध्य देश) बहुत कुछ बंद रहता है। साधारण श्वास-क्रिया में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित होने से छाती के ऊपर नीचे होने का अनुभव होता है।

इसके अतिरिक्त एक ही करवट सोते रहने से उस ओर का चमड़ा सुन्न हो जाता है, और ऐसा जान पड़ता है कि बिस्तरे से कोई सरोकार ही नहीं। इसलिये मनुष्य आकाश में उड़ने का स्वप्न देखता है। आयुर्वेद में क्षय के रोगियों को प्रारंभ में उड़ने के स्वप्न आते हैं, ऐसा लिखा है।

भोजन-संबंधी स्वप्न प्रायः उपवास के कारण से आते हैं। दक्षिणी ध्रुव-अनुसंधानकारी अर्नेस्टसेक्लटन एक बार अपने अन्य साथियों से अलग हो गए और केवल कुछ टुकड़े रोटियों पर दिन बसर करने के लिये बाध्य हुए, जिससे उनको भूख की संतुष्टि नहीं होती थी। एक दिन उन्होंने देखा कि वे लंदन की एक बड़ी दावत में शामिल हुए हैं। उनके टेबुल पर अच्छे-से-अच्छा भोजन परोसा गया है। ज्यों ही उन्होंने पहला ग्रास अपने मुँह में डालना चाहा कि उनकी नींद टूट गई और अपने को बर्फ़ की चट्टान पर भूखा पड़ा पाकर अत्यंत दुःखित हुए।

फ़ारस का एक मनुष्य लोगों को तीन दिन और तीन रात भूखा छोड़ दिया करता था और उसके बाद उनके सामने थाली और जल-पात्र रखकर उन्हें ललचाया करता था। ये लोग

उसे स्वप्न में दिखाई पड़ते थे। जो लोग इस प्रकार के स्वप्न देखा करते हैं, वे सोने के पहले थोड़ा सा गरम दूध पीने से उससे रक्षा पा सकते हैं। मृत्यु और हत्या के स्वप्न की उत्पत्ति ज्यादातर अपच के कारण होती है। एक टुकड़ा रोटी ऐसे बहुत-से स्वप्नों के लिये जिम्मेदार होती है। ऐसे स्वप्न में पहले मनुष्य के शरीर में कुछ विकार पैदा होता है और उसका कारण ढूँढ़ निकालते समय मस्तिष्क अपने भंडार से भयंकर घटनाओं को ला उपस्थित करता है। इसी प्रकार दाँतों में यदि रक्त कम मात्रा में पहुँचता हो, तो सोया हुआ मनुष्य दाँत तोड़ने या उखाड़ने का स्वप्न देखता है।

बहुत दिनों के भूले हुए विचार क्योंकर स्मृति-पथ पर आते हैं, यह बतलाना टेढ़ी खीर है। विचार का भंडार मस्तिष्क में जमा रहता है। इतनी घटनाएँ घटती हैं और वे इतनी मनोरंजक होती हैं, तो भी स्वप्न देखने के बाद जगने पर हम लोग कहते हैं—"वह एक खेल था!" स्वप्न में सुनने से देखने की क्रिया अधिक होती है। एक प्रकार के स्वप्नों में कभी-कभी कोई मनुष्य देखता है कि वह थिएटर में किसी प्रधान पात्र का अभिनय कर रहा है। उसका 'पार्ट' बड़ा अच्छा हो रहा है। जाग्रतावस्था से उस समय वह अधिक चतुर हो जाता है और उसकी बातें भावमय होती हैं। स्वप्नद्रष्टा का यह भ्रांति-मूलक विचार होता है।

ऐसा सुनने में आता है कि कुछ मनुष्य निद्रितावस्था में उन सवालों को हल कर देते हैं, जिन्हें वे जाग्रतावस्था में हल करने में असमर्थ होते हैं और इसका उन्हें ज्ञान भी नहीं होता। मस्तिष्क का इस प्रकार अपने आप काम करना—जिसके साथ दिन की भी तर्क-शक्ति शामिल रहती है किंतु चेतनता का अभाव होता है—कभी-कभी बड़ा ही ख़तरनाक होता है। दिन-रात काम करने से मस्तिष्क कभी आराम नहीं करता और अधिक काम करने से यह तुरंत बेकाम हो जाता है।

यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि स्वप्न का समय अधिक होता है। साधारणतः वह आधे मिनट से अधिक नहीं होता। मैंने मनुष्यों को कहते हुए सुना है कि वे घंटों तक स्वप्न देखते रहे, किंतु कोई भी मनुष्य एक ही स्वप्न लगातार एक घंटे तक क्या दस-पाँच मिनट तक भी नहीं देख सकता। इसके अतिरिक्त ज्यों ही मनुष्य की नींद टूट जाती है, त्यों ही स्वप्न में देखी हुई बहुत-सी बातें भूल जाती हैं। किसी एक स्वप्न को आप दो-तीन मनुष्यों से कहें कि आपके वर्णन में अंतर अवश्य पड़ता जायगा और अंत में आपका सारा स्वप्न एक वाक्य में ही शेष हो जायगा। कुछ लोग जो केवल अपने धन को रक्षित करने के विचार में डूबे रहते हैं, चोर का स्वप्न देखा करते हैं। जिन्हें कभी इस प्रकार का स्वप्न देखने का मौका मिला होगा, वे जानते होंगे कि ऐसी अवस्था में डर के मारे चिल्लाया-बोला नहीं जाता।

प्राचीन ग्रंथकारों ने स्वप्न के प्रभावों पर बहुत कुछ लिखा है। हम पाठकों के मनोरंजन के लिये कुछ थोड़ा उनका परिचय यहाँ देते हैं—

इन ग्रंथकारों के मत में साधारण स्वप्नों के सिवा कुछ दैवी-स्वप्न भी होते हैं, जो अदृश्य

की प्रेरणा से होते हैं। अर्ध रात्रि के बाद जब मन और शरीर एवं आत्मा सब सुषुप्त अवस्था में होती है, उस समय ऐसे स्वप्न आते है। ऐसे स्वप्न तभी देख पड़ते है, जब मनुष्य का मन पवित्र और आत्मिक शक्तियाँ निर्विकार होती हैं। इन ग्रंथकारो का मत है कि दैवी स्वप्न फल अवश्य देता है। रात्रि के प्रथम प्रहर का स्वप्न १ वर्ष में, दूसरे प्रहर का ८ महीने में, और तीसरे प्रहर का ३ मास में फल देता है। चौथे प्रहर का स्वप्न १५ दिन में और ऊषा-काल का स्वप्न १० दिन में फल देता है, प्रात काल का स्वप्न जागने पर तुरत फल देता है। स्वप्न का फल इस प्रकार इन ग्रंथों में लिखा है—

१—स्वप्न में सफ़ेद पदार्थों का दीखना शुभ है। हाथी और देवता को छोड़कर अन्य काले पदार्थ अशुभ हैं।

२—यदि गहने-कपड़ो से लदी कन्या घर में आती दीखे, तो समझिए मनोरथ सिद्ध होगा।

३—यदि स्वप्न में हाथी दीखे, और देखनेवाले को सूँड से उठाकर अपने माथे पर बैठा ले, तो समझिए धन प्राप्त होगा।

४—यदि गर्भिणी को स्वप्न में कलश या नाग का दर्शन हो, तो उसे पुत्र प्रसव होगा।

५—यदि स्वप्न में कोई साधु-संत फल-पुष्प दे, तो समझिए उसकी विपत्ति टली।

६—तीर्थ, महल, रतन, मंदिर आदि देखने से मनुष्य विजयी होता है।

७—गोरोचन, हल्दी, पताका, गन्ना देखना शुभ है। कष्ट से मुक्ति होगी।

८—देवता के दर्शन से धन, यश और जय की प्राप्ति होती है। फलो के देखने और हाथ में आने से प्रतिष्ठा और धन की प्राप्ति होती है।

९—यदि मनुष्य स्वप्न में किसी सींग या डाढ़वाले पशु से घायल हो, तो समझिए कि उसके दिन फिरनेवाले हैं। मछली, मोती, शंख, चदन, रत्न आदि देखना भी सुदिन आने के लक्षण हैं।

१०—यदि स्वप्न में शस्त्र का घाव लगे, तो आर्थिक चिंता दूर होगी।

११—स्वप्न में राजा, हाथी, सेना, बैल, धनुष, दीपक, अन्न, फल, फूल, कुमारी, ध्वजा आदि दीखें, तो यश तथा धन की वृद्धि होती है। गाय, दूध, दही दीखने से कार्य-सिद्धि होती है। घड़ा, अग्नि, पान, मंदिर, नट और वेश्या को देखने से भावी कार्य निर्विघ्न समाप्त होता है।

१२—यदि स्वप्न में बेड़ी-हथकड़ी से अपने को जकड़ा देखे, तो उसे राज-सम्मान प्राप्त हो। यदि दिव्य पुरुष से पुस्तक मिले, तो ख्याति प्राप्त हो।

१३—स्वप्न में मुर्दा देखने से दीर्घायु होती है।

१४—मृत कुटुंबी को देखने से विपत्ति टल जाती है।

१५—सरोवर, समुद्र, नदी, तालाब, सफ़ेद साँप स्वप्न में दीखें, तो प्रिय वस्तु की प्राप्ति होगी।

१६—स्वप्न में विवाहोत्सव देखना भावी विपत्ति का सूचक है।

१७—अग्नि, चिता आदि को देखना रोग आने का चिह्न है।

१८—यदि स्वप्न में मकान की छत गिर जाय, तो अवश्य किसी संबंधी की मृत्यु होगी।

१९—यदि स्वप्न में दाँत टूट जाय या सिर के बाल झड़ जायँ, तो समझना मनुष्य पर विपत्ति आनेवाली है।

२०—यदि स्वप्न मे टूटे-फूटे बर्तन, भैंसा, कोढ़ी, सुअर, कौवा, पीव, रुधिर दीखे, तो समझिए रोग आनेवाला है।

२१—पुच्छल तारा या वृक्ष उखटकर गिरना देखना अशुभ है। अवश्य किसी बड़े कुटुंबी की मृत्यु होगी।

२२—सवारी या वृक्ष से गिरना विपत्ति सूचक है।

२३—यदि मरे हुए आत्मीय मरते हुए दीखें, तो समझो कि किसी आत्मीय की मृत्यु होगी।

२४ -यदि मृत कुटुंबी जीवित दीखें, तो समझिए आई हुई बला टल गई। यदि मृत स्वजन अपनी दुरवस्था सुनावे, तो समझो कि मनुष्य के बुरे दिन आ रहे हैं।

प्रकरण ४

आकृति-विज्ञान

जिसकी भरपूर सुंदर दाढ़ी हो, वह ईमानदार, मिलनसार और परिश्रमी होगा। जिसकी दाढ़ी कम भराव की होगी, वह अभिमानी और एकांतप्रिय होगा। जिसके माथे पर काले तिल हो, वह भाग्यवान् और बुद्धिमान् होगा। जिसको हथेली में तिल हों और मुट्ठी में बंद हो जायँ, वह मालदार और शासनकर्ता होगा। जिसकी चाल धीमी हो, वह मंद बुद्धि, जिसको तेज़ हो, पर पैर छोटा उठे, तो वह धीर और कृतकार्य होगा। स्वभाव में हुकूमत होगी। जिसका कदम बड़ा, पर विषम उठे, वह कंजूस और बुराई करनेवाला होगा। जो बात करते समय अंगों को हिलावे, वह गधा और लंपट होगा। अति चचल मनुष्य मूर्ख, मंद बुद्धि और ईर्षालु होगा। जिसका शरीर सीधा और दुर्बल हो, वह वीर, निर्दयी, घमंडी और मित-व्ययी होगा। लंबा और मोटा मनुष्य कृतघ्न होगा। लंबा और पतला आदमी ग्रस्त-व्यस्त होगा। छोटा और मोटा भी ईर्षालु और बकवादी होगा। छोटा, दुबला और सीधा शरीर होने पर मनुष्य वीर, नमकहलाल, समझदार, पर छली होगा।

जो मनुष्य झुककर चले, वह मिहनती और गुप्त भेद को छिपानेवाला होगा। जिसकी पिंडली मांसल हों तथा भरपूर बाल हो, वह शूरवीर, बलवान्, निर्बुद्धि, संतान को प्रिय और भाग्यवान् होगा। छोटी तथा लोमाच्छादित टाँगोंवाला तीक्ष्ण बुद्धि होगा। जो चलते समय छाती-पेट निकालकर चले, वह मिलनसार होगा। लंबी टाँगोवाला कम अकल होगा। कोमल पेटवाला डरपोक, अल्पाहारी होगा। कठोर पेटवाला अभिमानी होगा। अति लंबी भुजाओंवाला घमंडी और उदार, छोटी भुजाओंवाला ईमानदार, छाती पर बालोंवाला विषयी, पर सबका मित्र होगा। जिसकी छाती पर बाल न होंगे, वह सुकुमार, कायर और आरामतलब होगा। पतले कंधेवाला डरपोक और मोटी और बड़ी कंधे की हड्डीवाला बलवान्, और ईमानदार होगा।

अध्याय तीसवाँ

अध्यात्म-तत्त्व

प्रकरण १

आत्मा क्या है ?

जो आँखो के द्वारा देखता है, कान के द्वारा सुनता है, नाक के द्वारा सूँघता है, स्पर्श के द्वारा अनुभव करता है, वह आत्मा है। वह अजर-अमर है, वह न कभी नष्ट होता है, न होगा, न हुआ। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख और ज्ञान ये आत्मा के लक्षण हैं। यही आत्मा सब प्रकार के कार्यों को करनेवाला और उसके फलों को भोग करनेवाला है। वह आत्मा प्रत्येक शरीर मे भिन्न-भिन्न एवं व्यापक है। उसकी कोई आकृति नहीं है, इसलिये, वह छिन्न-भिन्न नहीं हो सकता।

शरीर और आत्मा का संयोग

शरीर और आत्मा का संयोग ही जीवन है। शरीर से आत्मा का विच्छेद होने पर ही मृत्यु होती है। शरीर आत्मा की संपत्ति है और इसके द्वारा ही आत्मा सब इच्छाओं की पूर्ति करता तथा भोगों को भोगता है। शरीर जड पदार्थों से बना है, जिसका स्थूल रूप नाशवान् है, किंतु मूल-कारण अर्थात् सूक्ष्म रूप अविनाशी है, यह भी आत्मा ही की भाँति सदा से है और सदा रहेगा।

पुनर्जन्म

प्रारब्ध और कर्मों के वश होकर आत्मा को शरीर में बद्ध होकर नाना भोग भोगना होता है। शरीर में आत्मा का बद्ध होना ही पुनर्जन्म है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र उतारकर नया पहनते हैं, वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर नवीन धारण करता है। इसी को पुनर्जन्म कहते है। यह जन्म-मरण सदैव ही बना रहता और जब तक सृष्टि का प्रवाह चलता है, चलता रहता है। आत्मा को प्रारब्ध-वश होकर पशु, पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष आदि सभी योनियों में जन्म धारण करना पडता है। जिस प्रकार आत्मा कर्म करने में स्वतंत्र है, उसी प्रकार फल भोगने में परतंत्र है। सर्व शक्तिमान् परमेश्वर, जो द्रष्टा, स्रष्टा और विधाता है, आत्मा को शासन में रखता और उसके कर्मानुसार जाति, जन्म और आयु देता है।

प्रारब्ध

पूर्वजन्मों में किए कर्म का नाम प्रारब्ध है। प्रारब्ध तीन प्रकार का होता है। संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध। संचित वह कर्म-फल है, जो जन्म-जन्मांतरों से संचित रहता है, क्रियमाण वह है, जो किया जाता रहा हो, और प्रारब्ध वह है, जो पूर्वजन्म में प्राप्त किया है। इसी को भाग्य और विधाता की रेख कहते हैं। इसी के आधार पर जगत् में सुख-दुःख और राजा-रंक देखने को मिलते हैं।

उपनिषद्-तत्त्व

सत्य के पात्र का मुँह सुनहरी ढकने से बंद है, इसलिये सत्य-धर्म को दृष्टि से देख-भाल कर सब काम सावधानी से करो। प्रकाश के मार्ग पर चलो, अंधकार के पथ को त्यागो, संसार के सर्वश्रेष्ठ स्वामी को सर्वोपरि, सर्वत्र उपस्थित समझो। उत्तम और प्रिय बात सभी चाहते हैं। परंतु धीर पुरुष को उत्तम बात ही ग्रहण करनी चाहिए, चाहे वह प्रिय न भी हो। सब वेद जिसका गान करते हैं, तपस्वीगण भी जिसका मनन करते हैं, जिसकी इच्छा से ब्रह्मचर्य धारण किया जाता है, वह संक्षिप्त नाम 'ओ३म्' है। शरीर रथ है और आत्मा इस पर सवार है, 'बुद्धि' इस रथ का सारथी है और 'मन' लगाम है, 'इंद्रियाँ' घोड़े हैं, और 'विषय' उनका गंतव्य पथ है। इंद्रिय और मन से युक्त आत्मा इसका भोक्ता है। सो जिसका सारथी सतर्क सावधान होगा—और लगाम को कसकर पकड़े रहेगा, वही इस 'जीवन' के दुर्गम पथ को पार करके 'परमपद' प्राप्त कर सकता है। उठ, जाग और वर प्राप्त कर। रास्ता दुर्गम है। सावधान रह। जैसे अग्नि और वायु एक ही होते हुए भी भिन्न-भिन्न रूप से दीख पड़ती है, उसी प्रकार से अंतरात्मा एक ही है, तो भी सब प्राणियों में भिन्न भिन्न दीख पड़ता है।

जैसे सूर्य सब लोक का नेत्र है, पर नेत्र-दोष उसे नहीं व्यापता है, उसी प्रकार सब प्राणियों में व्याप्त आत्मा लोक-दुःख से व्याप्त नहीं होता। उस आत्मा को अंतःकरण में जो धीर पुरुष देख पाते हैं उन्हें ही अनंत सुख प्राप्त होता है, अन्यों को नहीं। जहाँ सूर्य, चंद्र, तारागण और बिजली का भी प्रकाश नहीं पहुँचता, वहाँ उस आत्मा का प्रकाश पहुँचता है। तप और श्रद्धा से जो एकांत में वास करते हैं, जो शांत और विद्वान् हैं तथा भिक्षा-मात्र से गुज़ारा करते हैं, वे सूर्य-लोक को प्राप्त होकर अमृत पुरुष को पाते हैं।

'ओ३म्' शब्द को धनुष और आत्मा को बाण बनाओ, तब ब्रह्म को सावधानी से लक्ष्य वेध करो। हृदय की गाँठ खुल जायगी, और सब संशय नष्ट हो जायँगे, सब कर्म भी क्षय हो जायँगे, यदि उस ब्रह्म का दर्शन हो गया। यह आत्मा सत्य, ब्रह्मचर्य, तप और उत्तम ज्ञान से ही प्राप्त होता है। वह प्रकाशवान् सत्त्व शरीर ही के अंदर है, पर इसे देख वही सकते हैं, जो पवित्र और क्षीण-दोष हैं। यह आत्मा, बड़ी-बड़ी बातों या व्याख्यानों से नहीं प्राप्त होता, न बुद्धि से, न ज्ञान से, यह तो उसे ही प्राप्त होगा, जो इसमें लि[illegible] जायगा। यह आत्मा दुर्बल को नहीं प्राप्त होता, न आलसी को, किंतु शांत तप से प्राप्त

होता है। जो ज्ञानी ऋषिगण वीतराग तथा प्रशांत होते हैं, वे धीरता-युक्त होकर ही उसे प्राप्त कर सकते हैं, और नित्य शांति को प्राप्त होते हैं। जो कोई इस परब्रह्म को जान लेता है, ब्रह्मरूप हो जाता है। वह शोक और पाप को विजय कर लेता है, और सब बंधनों से मुक्त अमृत हो जाता है।

गीतासार

जो पुरुष सब प्रकार की मन की कामनाओं को त्याग अपनी आत्मा ही में संतुष्ट रहे, वही स्थितप्रज्ञ है। जो अशुभ और शुभ वस्तुओं से द्वेष न करे, न अनुराग करे, वही प्रज्ञावान् है। जैसे कछुआ अपने सब अंगों को सिकोड़ लेता है, उसी प्रकार प्राज्ञ पुरुष अपने-अपने विषयों में से इंद्रियों को संकुचित कर ले। यत्न करने पर भी इंद्रियाँ मन को विचलित कर देती हैं। उन सबको यत्न से वश में करके मनुष्य को ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए। विषयों के ध्यान से उनमें आसक्ति होती है और आसक्ति से काम, काम से क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से बुद्धि-नाश और बुद्धि-नाश से सर्वनाश होता है।

राग-द्वेष को त्यागकर इंद्रियों के विषयों में विचरण करे, और आत्मा को संयमशील बनावे, तब सच्चा आनंद प्राप्त होगा, जिससे सब दुःखों का अंत होगा, और बुद्धि निर्मल होगी। जो मनुष्य इंद्रियों के पीछे दौड़ते हुए मन के पीछे दौड़ता है, उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, और उसका स्वयं भी नाश हो जाता है, जैसे वायु नाव को नष्ट कर देती है। इसलिये इंद्रियों को उनके विषयों से हटाकर केंद्रीभूत करना और स्थितप्रज्ञ बनना चाहिए।

सर्वशक्तिमान् परमेश्वर

जिसने यह जगत् बनाया है, और संसार का स्वामी, नियंता और पिता है, वही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है, वह सत्-चित्-आनंद स्वरूप है, सत् का अर्थ है, जो सदैव से हो और सदैव रहे, चित् का अर्थ है—चैतन्य-युक्त, आनंद-स्वरूप का अर्थ है—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख से रहित, निर्विकार, निर्विलेप। वह सबसे बड़ा और सबसे सूक्ष्म है। वह काल से अविच्छिन्न न होने के कारण पूर्वजों का भी गुरु है। सूर्य, चंद्र, तारे, पृथ्वी सभी उसने बनाए हैं। वही इनका नियंत्रण करता है। प्रलय में सब लुप्त हो जायँगे, केवल वही शेष बच रहेगा।

आत्मवत्सर्वभूतेषु

प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह अपने आत्मा के समान ही सबको समझे। चींटी से हाथी तक सभी छोटे-बड़े प्राणियों में एक ही आत्मा है। सभी को समान कष्ट और आनंद । अपने स्वार्थ के लिये दूसरों को कष्ट न दे। मन को वश में रक्खे। मध्यम गर तप तथा संतोष से सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करे।

गोर १३५,

ओ३म् शम्